

प्रश्नसङ्क १ :

बसन्त जीवाङ्क सारवकेकर बी. ए.

स्वाध्याय (प्रश्नसङ्क),

पोस्ट- स्वाध्याय सङ्क (पारवी) पारवी [ वि. सूरत ]

संवत् १ १५ : क्रम १४४ : सङ् १९५४

द्वितीय बार

सुप्रश्न १ :

बसन्त जीवाङ्क सारवकेकर बी. ए.

पारत-सुप्रश्नसङ्क स्वाध्याय सङ्क

पोस्ट- स्वाध्याय सङ्क (पारवी) पारवी [ वि. सूरत ]



# अथर्ववेदके सुभाषित

सुभाषित सर्वदा पत्राग्रे चरते योग्य वैदर्भके  
मनवीर्य विनाग है। ये वेदके सारगुण भाग हैं। ये पदा  
निबन्धनार्थ वर्गीकृतके साथ अर्थके समेत दिये हैं। केवल  
वक्ता प्रवादक प्रचारक उपदेशक आदिकोके उपयोगमें  
ये अच्छी तरह ला सकते हैं। इनका बारंबार वैयक्तिक  
अथवा सामूहिक उच्चारण करनेसे करनेवालों तथा सुनने  
वालोंके मनोपर बड़ा हृद परिणाम हो सकता है। इससे  
वैदिक धर्मका अच्छा प्रचार हो सकता है और मानवी  
जीवनमें वैदिक धर्म मानके किये वह एक सुगम साधन  
हो सकता है।

आगेके सुभाषितोंके प्रकरणोंमें सुक्व सुभाषित और इनमें  
को अग्रा वैयक्तिक अथवा सामूहिक उच्चारणमें ला सकते  
हैं ये बताये हैं। ये सुभाषित अनेक हैं इतने ही हैं देखी  
जात नहीं और एक संक्षेपके अनेक प्रार्थ विभाग करनेसे ये  
और अनेक हो सकते हैं। पाठक इनका उपयोग करते  
जाँचो तो इनको इनकी उपयुक्तता सिद्ध हो सकती है।

अग्रा

एतद्विदं ब्रह्म वाक्पुष्पाणां ( ७।१।१ )— एतत्तु ब्रह्म  
छात्रके वक्ष्यते रहते है।

ब्रह्मैतन् विद्यात् तपसा विप्रश्नित् ( ८।१२ )— ज्ञानी  
उपसे जाने कि वह ब्रह्म है।

इहा सुपर्णा सयुजा सखाया समाना कृता परि पश्य  
आति तयो रम्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति भनभन  
म्यो ममि आकशीति ( १।१।१ )— दो उत्तम  
संस्कारके मित्र नहीं (जीव और पितृ) एक वृक्ष  
पर बैठे हैं इनमें एक पीछा एक आता है दूसरा  
न जाता हुआ बकाइता है।

अथो मक्षते परमे प्योमन् पक्षिम्येवा मधि धिन्वे  
मिथेयुः पस्तस वेद किमुवा करिष्यति प  
इच्छिबुस्तो ममी समासते ( १।१।१८ )—  
परम आकाशमें रहनेवाले आकाशोंके अक्षरोंमें सब  
देव रहते हैं। जो वह नहीं जानता वह आकाश  
क्या करेगा जो वह जानत है वे उत्तम स्वामी  
विराजते हैं।

इन्द्रं मित्रं बरुणमग्निमाहुतयो दिव्यः स सुपर्णो  
वाक्यमाह एतं सत् विद्या यमुवा वदन्ति  
मग्निं धम मातरिष्वामाहुः ( १।१।१८ )—  
एक ही सत् है उसको ज्ञानी अनेक नामोंसे पुकारते  
हैं उसको इन्द्र मित्र बरुण अग्नि दिव्य सुपर्ण  
वाक्यमाह धम मातरिषा कहते हैं।

ब्रह्म मोक्षियमाप्नोति ब्रह्मेण परमेष्ठिनम् ( १।१।  
२१ )— ज्ञान विद्याको प्राप्त करता है ज्ञान ही  
प्राप्तिही प्रत्यक्षिको जानता है।

ब्रह्म देवां अनुक्षियति ब्रह्म वैवस्वतीर्बिद्याः ब्रह्मेवम  
व्यपसर्ग ब्रह्म सत् सन्नमुष्यते ( १।१।२२ )  
— ब्रह्म देवोंके साथ रहता है ब्रह्म दिव्य अवस्थापी  
प्रधानों वक्षता है ब्रह्म ही न मात्र जानेवाला है और  
ब्रह्म ही सत्ता काय लेता है।

ब्रह्मणा भूमिर्बिदिता ब्रह्म चीरन्तरा दिता। ब्रह्मेह  
मूर्त्ये तिर्यक् आन्तरिक्ष ध्ययो हितम् ( १।१।  
२५ )— ब्रह्मने पृथिवी जगती ब्रह्मने ही सुकोक  
ऊपर रहता और अन्तरिक्षमें ब्रह्म ही तिरिष्ठा और  
आगों और कैला है।

सूर्ध्वानमस्य संसीध्यायर्धो हृदयं च यत्, मस्तिष्का  
वर्धः प्रेरयत् पञ्चमाशोऽपि क्षीरितः ( १ । १।  
२१) — सिर और हृदयको बोधी क्षीरा है और  
मस्तिष्क ऊपर प्राणको बकाता है ।

तद्वा अथर्वयः शिरः देवकोशाः समुष्मिताः ( १ । १।  
२०) — वह अथर्वका सिर देवोंका बकाता सुर  
क्षित है ।

सर्वा दिशः पुरुष आ बभूव ( १ । १। २८) — सब  
दिशाओंमें वह पुरुष है ।

यो वै तां ब्रह्मजो वेदः असुतेमाचुतां पुरं तस्मै ब्रह्म  
व ब्राह्मणं बभूव प्राप्य प्रजां बभूव ( १ । १। २९)  
— बभूवसे बभूव इस ब्रह्मकी गगरीको जो बकाता  
है उसको ब्रह्म और बभूव देव बभूव नाम ( दीर्घात् )  
और सुप्रजा देते हैं ।

अ वै त बभूवैवाति न प्राजो जरसः पुरा पुरं यो  
ब्रह्मजो वेदः अस्याः पुरुष उच्यते ( १ । १। ३० )  
— जो ब्रह्मकी इस गगरीको बकाता है उसको न  
बाँध और न माल ब्रह्मबलाके पूर्व छोड़ते हैं ।

ब्रह्मा ब्रह्मा तवद्वारा देवानां पूरयोद्या तस्यां हिर  
ण्यया कोशाः स्वर्गोऽभ्योतिषाचुताः ( १ । १। ३१ )  
— ब्रह्म ब्रह्म और भी इस विषयमें है ऐसी वह  
देवोंकी गगरी है जहाँमें पुरुषका बकाता तेजसे  
मग हुआ ज्यो ही है ।

तस्मिन् हिरण्यये कोशे अग्रे निप्रतिष्ठिते तस्मिन्  
पयस्यमारमन्वत् तस्मै ब्रह्मविदो विदुः ( १ । १।  
३२ ) — वह तेजस्वी हृदयकोषमें तीन भाषणोंके  
रहे स्वर्गमें जो ब्रह्मबलात् स्वर्गीय देव है उसको  
ब्रह्मज्ञानी जानते हैं ।

प्रधाजमानां हरिणीं यशसा सपरीचुतां पुरं हिर  
ण्ययी ब्रह्मा विधेऽपराधमिताम् ( १ । १। ३३ )  
— तेजस्वी यशसे विनी मगका हान करवैवाली  
सुवर्णमग सपराधित गगरीमें ब्रह्मा बनेक करता है ।

इत सुभाषितोंमें इससे भी छोटे ब्रह्मके सुभाषितके समान  
उपयोगमें जाने का सकते हैं इति—

ब्रह्मणा पादधामा— ब्रह्मज्ञानसे बुद्धि प्राप्त करते हैं ।

ब्रह्ममद्रिधात्— ब्रह्मको जाने ।

कचो अक्षरे देवा विवेदुः— वेदमन्त्रके बकारमें देव  
रहते हैं ।

एकं सत्— एक सत् है ।

ब्रह्म ओषधिय आमोति— ब्रह्म देवके विश्रुत्ये मग  
होता है ।

ब्रह्म देवां अनु क्षियति— ब्रह्म देवोंके घाव रक्ता है ।

शिरः देवकोशाः— सिर देवोंका बकाता है ।

सर्वा दिशः पुरुषाः— सब दिशाओंमें पुरुष है ।

जयद्वारा देवानां पूः— जो इन्द्राँकी देवोंकी गगरी है ।

पुरं हिरण्ययी ब्रह्मा विवेदुः— सुवर्णमग गगरीमें ब्रह्म  
प्रसिद्ध होता है ।

इत तरह एवोंक बड़े सुभाषितोंके देवों केनेक छोटे छोटे  
सुभाषित पैदा होते हैं । वे स्वच्छिन्न ब्रह्मका संभव जने  
का प्रथम विवेक का सकते हैं, और देवा करनेके करिवलाओं  
और सुवैवाकोंको बका ब्रह्म हो सकता है ।

### ईश्वर

प्रपद्ये पर्यां अजमिह पूषा प्रपद्ये विषा प्रपद्ये पूषिण्या  
( ७। १ ) — पुत्रोंके बन्धनिके, और इति  
कीके मार्गमें सबका पुरुषकर्ता ईश्वर प्रसन्न होता है ।

जमे अमि प्रियतमे सद्यस्ते आ च परा च अरति  
प्रजामन्— दोनों बान्धव पिय ज्ञाओंमें जयके छेक  
गरह बकाता हुआ वह ईश्वर निररता है ।

पूषेमा धाया अनु वेद सर्वाः— ( ७। १ ) — सबका  
पुरुषकर्ता ईश्वर सब विद्या उपदिशान्ताओंको जानता है ।

सो अर्धो नमप्रयतेन तेपत्— वह हम सबको निर्ध  
बनाके मार्गके के जाना है ।

स्वस्तिवा आपुषिः स्वर्गहीरोऽमसुष्मन् पुर पत्तु  
प्रजाबन्— वह मनु सबका कर्मान्त करवैवाला,  
वेदकी सबके अधिक और नमः न करण हुआ  
इमाना भेदा हो ।

अमि त्वं देवै सवितारं ओषयोः कविः कृत्स्नम् । अर्धमि  
सत्यसत्वं रत्नमर्धं अमि प्रियं मस्तिम् ( ७। १। १ )

— सबकी रक्षा करनेवाले पुत्रोंक और पुत्रोंके  
बन्धनक ज्ञानी और ह्रम कर्मकर्ता जयवेदक रत्न  
मगक प्रथम करने कोन और पिय वह देवकी है  
देवा करता है ।

कृष्णं यस्यामतिर्भां अविद्युत् सवामिनि (७।५।१)  
—त्रिषष्टा अपरिमित तेन उत्तरी बाह्यमुधार कपर  
पैर १५।३।

हिरण्यपाणिः ममिमीत् सुकृत्तुः कृपात् सा— इत्तम  
कर्म करेबाका सुवर्ने समान हिरण्यबाका प्रसु जपने  
रेबाको पैबावा है ।

साधीहि देव प्रथमाय पित्रे ( ०१५१३ )— हे देव !  
प्रथम पाकल करनेके लिये तुमने यह उत्पन्न किया है।

अध्यापनस्य परिमाणस्यै— हमने किसे उत्तम वेद  
और उत्तम ज्ञेयता दे दो ।

मयात्मन्य सभितर्वाप्यापि विबोधिषु वा सुखा मुरि  
पञ्चा— हे मन्त्रे अत्यन्तकर्ता देव । हमारे किये  
परिविषु अन्तम धन और बहुत पण्डु मिर्के ।

वमूला देवः सप्तित्वा बरेण्यो दधद्रत्न दत्त पिदुम्य  
आयुषि ( ११५५२ )— हे सचके बत्पावक दमनते  
मन्त्री लाधीय रत्नेवाके दू भेद देव ! रत्नकोको दू  
रत्न बक कीर भातु देवा दे ।

भमवपेसं— इसको जागड़ित रख ।

परिष्ठा चित् क्रमते अस्य धर्मणि— परिष्ठापन करने  
वाला इसके वाक्यों में रहकर भजन करता है ।

तां सविताः सत्यसयां सुविजामाहं नृपे सुमतिं  
विश्वव्यापाम् ( ७।१।१ )— हे सबसे बड़ादेव  
देव ! मैं सत्यकी प्रेरणा करदेवाकी विद्वद्गण रक्षा  
करदेवाकी उत्तम सुदिको प्राप्त करता हूँ ।

यामय कश्चो मनुहुत् प्रपीनां सहस्रधारां महियो  
मगाय—मिस सहस्र बतानोंसे पुत्र करनेवाली  
राक्षसी हथके देवर्षिके क्रिये बकवान् शशी बुद्धय  
है—प्राप्त करता है।

प्रज्ञापतिर्जनयति प्रज्ञा इमाः (७।१।१) — प्रज्ञापत्यक्त  
इतिर ह्य सप्त प्रज्ञाभोको ज्ञापक इति ।

धाता इधातु सुमतस्यमानः— धातु देव उच्यते मन्त्रे  
उच्यते धातु करो ।

समेत विश्वे वषसा पणि दिव एको विमूखीयि  
 र्जनासाम् (० २५१) — पुढोढे कागीते वाय  
 सय अपनी सुतिसे चढे वह वृद्धे जीव सय चढोव  
 वह अविमिद्व सत्तावे योग्य है ।

विष्णोर्तु क प्राधोष्यं वीर्याणि यः पार्थिवानि विममे  
रज्ञासि (७१७११) — सर्वव्यापक परमहमके  
पराक्रमोका इम वर्जन करते हैं जो पृथ्वीपरके  
कोशोको विरोध रीतिसे निर्माण करता है।

यो भस्ममापनुत्तरं सद्यस्य— त्रिभवे कपराका आकारा  
पैद्याया है ।

यस्योरुपु त्रिपु विक्रमणेषु अघिसिपिगित भुवनामि  
विष्ठा (१११११) — विपके हीन विक्रमोर्मे सव  
विप सुवव १११११ ।

वरुक्षयाय नमः— हमारे विशेष निवासके द्वारे  
सहाय कर।

विष्णुर्गोपा अहाम्यः ( ७।२७।५ )—प्यारक देव सरस्वक  
जीर व रुचयेवाका है ।

तद् विष्णोः परमपर्व सदा परमस्मि सूर्यः। दिव्याय  
समुत्पलतम् (७१७१०) — यह स्यात् देवता  
परम पर्व है ओ शास्त्री लोग सदा देवते हैं जैसा  
सुकोष्मे नर्य प्रकाशता है।

पृथक्सतिर्नः परि पातु पद्माहुतोत्तरस्मादधरादध्यायोः  
( ७१३१ )— ज्ञानपति धीमेष्टे नीमेष्टे और  
कपरमे इमारा पत्नीमे रक्षण करे।

इन्द्रा पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिम्यो धरीयः  
कृपोऽनु—मित्र इन्द्र नायेते जैत वीरये इमे  
मित्रोऽपि वी श्रेष्ठ वरायै ।

यो अग्नी दद्मो यो अस्तु अमृतं मोषधीर्वाक्य  
आविर्बेश य इमा धिम्वा मुचनानि आकाशे  
तस्मै दद्याप नमो अस्त्यग्नये ( ७।११।१ )—ओ  
अग्निं अहोर्नि मोषधिवत्पतिर्वाहो हे ओ हव  
मुचनीश्वरे एषता हे तस अग्निभ्यः नमः देवस्य  
नमस्तस्य हे ।

यत् परममर्थम् यथा मध्यम प्रजापतिः सत्त्वमे  
विश्वरूपं कियता रुक्मा प्र विरोधा तत्र यथा  
प्राणिनात् कियत् तत् समूहः ( ११७८ )—  
प्रजापतयस्ते इत्यम औ। मध्यम विश्वरूप निर्माण  
किंवा उत्तमोत्तर्वाभावे कियता प्रवह किंवा औ। वह  
प्रतिष्ठ यथा हुता वह कियता हे ।

कियता कृत्स्ना प्रविशेत् भूतं कियद् प्रविश्यत्स्या  
 पापेऽस्य (१।१९) — सर्वथा इहा भू



काकोमें बने हुएमें कितना पवित्र हुआ और अधिकमें होनेवालेमें कितना पवित्र होगा।

एकं सर्वंगमकृजोत्सहकृष्णमा कियता स्कम्भः प्र विवेशे तत्र (१।७१२)—जगते एक जंगको जिसने छहकृष्ण विनष्ट किया (और वह विश्व बनाया) उसमें सर्वोच्चार कितना पवित्र हुआ है ?

यत्र षोडशोऽक्षोऽक्षमापो ब्रह्म जमा विदुः असद्य यत्र सत्तास्त स्कर्मं तं ब्रूहि कृतम। स्विदेव स। (१।७११)—जहाँ षोडश षोडश है वह ब्रह्म है देमा लोग जानते हैं असत् व सत् जहाँ मित्रा है वह सर्वाचार है वह जर्मत आत्मन्मय है।

यस्मिन् भूमिरन्तरिक्षं धीर्यस्मिन्महाहिता यथासि ब्रह्मन्मः। सूर्यो वातस्तिष्ठन्महापिताः स्कर्मं तं ब्रूहि कृतम। स्विदेव स। (१।७१३)—जिसमें भूमि अन्तरिक्ष व अग्नि अन्त्र सूर्य रहे हैं वह सर्वाचार है वही आत्मन्मय है।

यस्य त्रयस्त्रिंशदेषा भंगे सर्वे समाहिताः स्कर्मं तं ब्रूहि कृतम। स्विदेव स। (१।७१४)—जिन्हे जमीनमें ठेकीस देव रहते हैं वही सर्वाचार परमेश्वर जर्मत आत्मन्मय है।

ये पुरुषे ब्रह्म विदुः ते विदुः परमेष्ठिन्मः (१।७१७)  
— जो पुरुष जमीनमें ब्रह्म जानते हैं वे परमेश्वरको जानते हैं।

यो वेद परमेष्ठिन्मं यश्च वेद प्रजापतिं ज्येष्ठं ये ब्राह्मन्मं विदुः ते स्कर्मं अनुसंविदुः। (१।७१७)  
— जो परमेश्वरी प्रजापति तथा ज्येष्ठ ब्रह्मको जानते हैं वे सर्वाचारको जानते हैं।

यस्माद्वहो भपातस्तन् यत्सर्वस्मात्पाकयन् सामावि यस्य क्षोमासि भयर्षाहिरसो मुख स्कर्मं तं ब्रूहि कृतम। स्विदेव स। (१।७१९)—जिन्हे अन्नान् दुर्ह वस्तु जिससे बने साम जिसके कोम हैं अर्घा अग्निरस जिसका मुख है वह सर्वाचार है और वही जर्मत आत्मन्मय है।

यत्रादिरपाद्य न्द्राश्च वसवश्च समाहिताः। मूर्धं च यत्र मण्यं च सर्वे षोडशः प्रतिष्ठिताः स्कर्मं तं ब्रूहि कृतम। स्विदेव स। (१।१२२)—

जिसमें वसु वरु और आदित्य रहे हैं सूर्यअग्नि और सब लोक वही रहे हैं वह सर्वाचार परमेश्वर आत्मन्मय है।

यस्य त्रयस्त्रिंशदेषा मिथि रक्षन्ति सर्वदा (१।७१२३)  
— ठेकीस देव जिसके अङ्गलिका रक्षण सर्वदा करते हैं।  
यत्र देवा ब्रह्मविदो ब्रह्म ज्येष्ठमुपासते यो वै तान् विद्यात् प्रत्यक्षं स ब्रह्मा वेदिता स्वात् (१।७१२४)—जहाँ ब्रह्मजानी ज्येष्ठ ब्रह्मकी उपासना करते हैं जो उसको मान्य मानता है वह ज्ञानी ब्रह्मा होता।

यस्य त्रयस्त्रिंशदेषा भंगे गात्रा विमेश्वरे ताव वै त्रयस्त्रिंशदेषान् एके ब्रह्मविदो विदुः (१।७१२७)—जिन्हे जगमें ठेकीस देव अन्नअन्न भवकर रहे हैं अब ठेकीस देवोंको जेके ब्रह्मजानी जानते हैं।

स्कम्मे षोडशः स्कम्मे तपः स्कम्मेऽभ्युतमाहितम् (१।७१२९)—सर्वाचार परमेश्वरमें लोक तप और अन्न रहा है।

नाम गात्रा षोडशीति पुरा सूर्यात् पुरोयसः। पदञ्च प्रथमं सप्तमूय स ह तत् स्वराज्यमियाव यस्मात्प्राम्यत् परमस्ति भूतम्। (१।७१३१)—सूर्यदेवके पूर्व और उष-कालके पूर्व जो ईश्वरका नाम होता है जो अङ्गमा जहमा ईश्वरके साथ छनत होता है उसको वह अराज्य ब्रह्म होता है जिन्हे अधिक अन्न कुछ भी नहीं है।

यस्य सृमिः प्रमाऽन्तरिक्षमृतोदरम् दिवं यश्चके मुर्धाभिं तस्य ज्येष्ठाय ब्रह्मजे नमः। (१।७१३२)  
—भूमि जिसका पाँच अन्तरिक्ष वरु और आत्मन्मय है उस ज्येष्ठ ब्रह्मके किये मेरा नमस्कार हो।

यस्य सूर्यश्चक्षुः अन्त्रमात्र पुनर्वाचः अग्निं यश्चक मास्यं तस्य ज्येष्ठाय ब्रह्मजे नमः। (१।७१३३)  
—जिसका सूर्य एक बाँक है और अन्त्र क्षुपरा बाँक है अग्नि जिसका मुख है उस ज्येष्ठ ब्रह्मके किये नमस्कार करता हूँ।

यस्य वाता प्राजापानी चक्षुरंगिरसोऽभयन् दिवो यश्चके प्रजापतीः तस्य ज्येष्ठाय ब्रह्मजे नमः। (१।७१३४)—वायु जिसके नाभ अपाव है,

अगिरस त्रितये जायते विशाणं त्रितयं ज्ञानसाधन  
( काम ) है उस अल्प ब्रह्मके किये सेरा प्रकाश है ।

स्कम्भो दाधार द्यावापृथिवी तमे हमे स्कम्भो  
दाधार उद्यन्तरिक्षम् । स्कम्भा दाधार प्रविशः  
पृथ्वीः स्कम्भ इत्वं विश्वं भुवनमा विवेश  
( १ । १०।३५ ) सर्वाधार परमेस्वरने पु पृथिवी बड़ा  
अन्तरिक्ष ऊ विद्या उपविष्टार्णं चारण भी है बड़ी  
सर्वाधार इस भुवनमें स्थापक है ।

महधर्षं भुवनस्य मध्ये तपसि कान्तं सलिलस्य  
पृष्ठे, तस्मिन् भयन्ते य उ के च देवाः बृहस्प  
स्कन्धाः परित इय द्यावाः । ( १ । १०।३६ )—बड़ा  
पृथ्वीव देव भुवनके मध्यमें है तपमें वह आश्रित  
करा है और वह ब्रह्मके ब्रह्ममागमें भी है इसीके  
आश्रयसे प्रव देव रहते हैं । अथे बृह्मके आश्रयसे  
ब्रह्मकी आकाश रहती है ।

यस्मै हस्ताभ्यां पादाभ्यां चाक्षा भोजेण चभ्रुपा  
यस्मै देवाः सदा यजिं प्रयच्छन्ति विमितेऽ  
मित स्कर्मं तं भूहि कठमा स्विदेव सः  
( १ । १०।३९ )—जिसे भगवत्पिताके किये सब देव  
जन्मे हाथों पावों चाखा काम और नाकसे भगव  
मित बलि देते हैं वह सर्वाधार परमेस्वर है वह  
आश्रित आत्मन्मय है ।

अथ तस्य हस्तं तमो ध्यावृत्तः स पाप्मना, सर्वाणि  
तस्मिन् ज्येतीति यानि भीमि प्रजापती  
( १ । १०।४० ) ब्रह्मका अन्तरिक्ष दूर हुआ वायुसे  
वह दूर हो चुका प्रजापतिमें जो तीन ग्योत्रिका है  
वे इसमें होती हैं ।

या भूतं च भव्यं च सर्वं यस्याधितिष्ठति स्यपस्य च  
कपसं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः । ( १ । १०।४१ )—  
वे भूत और भविष्य सबका अधिपता है जिसका  
ब्रह्मण स्वरूप है उस अल्प ब्रह्मके किये नमस्कार है ।

एकचक्षुर्धर्तत एकमसि सहस्राक्षरं प्र पुरो नि पद्या  
अथेन विश्वं भुवनं ज्ञानं यदस्यापेक्षतस्तद्भूय  
( १ । १०।४२ )—एक चक्षु है उसकी एक नासि है  
हजार आँखें हैं वे आँखें वीर्य होते हैं । आँखों से सब  
भुवन बना है जो दूरवा जर्ज है वह कहा है ।

तिपयिदलक्ष्मस ऊर्ध्वदुष्ठाः तस्मिन् यशो मिहित  
विश्वरूपं तत्रासत क्षुपयाः सप्त साक् ये अस्य  
गोपा महतो धम्बुः ( १ । १०।४३ )—ठिठठा  
क्षुपबला एक छोटा है उसका नीचेका भाग ऊपर  
है इसमें विश्वरूप मद्य है, वहाँ सात नदि रहते हैं  
वे इस महान्के रक्षक हैं ।

प्रजापतिश्चरति गर्भे भस्मः भजायमानो बभूव  
वि जायत ( १ । १०।४४ )—प्रजापति गर्भमें संचार  
करता है न अन्तर्मनेका अनेक प्रकारसे जन्मता है ।

पश्यति सर्वं चक्षुषा न सर्वं मनसा विदुः ( १ । १०।४५ )  
—सब नाकसे देखते हैं पर सब मनसे नहीं जानते ।

यतः स्य उदेति भस्तं यत्र च गच्छति, तदेव  
मन्येऽह उयेष्टं तदु मास्येति किं चन ( १ । १०।४६ )  
—कहाते सूर्य उदय होता है और वहाँ अस्त होता  
है, मैं जानता हूँ कि वही अस्त है और उसका गति  
कमय कोई कर नहीं सकता ।

इत्वं कस्याण्यजरा मत्स्यायामृता गृहे ( १ । १०।४७ )—  
यह कस्याय करनेवाकी मारने के मारने अमर देवता है ।

एक्रे ह देवो मनसि प्रविष्टः प्रथमा जाताः स उ गर्भे  
भस्मः ( १ । १०।४८ )—एक देव मन्त्रों प्रविष्ट  
होकर रहा है वह एक बार जन्मा पर वह फिर  
गर्भमें जाता है ।

पूर्णात् पूषमुद्वचति पूर्णं पूर्वेन सिध्यते उतो तद्व  
यिद्याम यतस्तरपरिधिष्यते ( १ । १०।४९ )—  
पूर्वसे पूर्ण बाहर जाता है पूर्वसे पूर्ण सींचा जाता है  
जब आज हम वह जाने कि कहाँसे वह सींचा  
जाता है ।

अग्निं सन्तं न जहाति अग्निं संतं न पश्यति  
( १ । १०।५० )—आग होनेपर वह छोड़ता नहीं,  
बात होनेपर भी वह शीकता नहीं ।

देवस्य पदय काप्य न ममार न जीयति—देवका  
काप्य देखो वह मरता नहीं और न वह जीर्ण  
होता है ।

या विद्यात्मन् विगत यस्मिन्धाताः प्रजा इमाः । सृज  
सृजस्य यो विद्यान् सविद्याद् आह्वयं महत्  
( १ । १०।५१ )—जो देवता हुआ जागा जानता

है जिसमें वे सब प्रजा सिरोपी है। सूत्रका सूत्र को जानना है वह बड़ा मझ जानना है।

वेदाईं सूत्रं विततं यस्मिन्नेतोता। प्रजा इमाः सूत्रं सूत्रस्याह वेदायो यत् प्राक्षणा महत् ( १। ८। ३८ )— मैं क्या हुआ तब जानना है जिसमें सब प्रजा मोपी है सूत्रका सूत्र में जानना है को बड़ा मझ है।

पुण्डरीक मधुघार विमिर्गुणमिराकृतं तस्मिन् यदाक्षमात्मन्वत् तद्वै ब्रह्मविदो विदुः ( १। ८। ३९ )— जो हस्तोबाका कमण्ड है तीन गुणोंसे वह बड़ा है उसमें पूजनीय वह है उसे ब्रह्मज्ञानी जानत है।

हृन्नुमाविर्तोषे छोटे मुमावित बगते हैं वह देखिये—  
स्वक्षित्वा सर्वधीरा— सबमें नीर ककनाम करता है।  
अर्चामि सरयसये— सब गेरककी पूजा कराता है।  
ऊर्ध्वा धम्प्यामविर्मा— जिसका अवगमित वेद ऊपर फैला है।

सुम्नु कृपात् स्था— उत्तम कर्म करनेवाका सुम्नु अपने वेदको ककनाता है।

परिमाणात्मन्— इस प्रभुकी अच्छता है।  
वया सविता वृषद्राज— सबको समननेवाका देव रत्नोंको देता है।

महं ब्रुव मुमति— मैं बचम मति प्राप्त कराता है।

प्रजापतिजनयति प्रजा— ईश्वर प्रजा उत्पन्न कराता है।

धाता वृषातु— धातक देव सबको कारण करे।

एको विदुः— एक ही व्यापक देव है।

विष्णो नु क प्रायोधं धीर्पाणि— व्यापक ईश्वरके प्राक्कम में बचन कराता है।

यस्य विप्रमनेषु अधिस्तिष्यति मुपमानि विष्वा—  
जिनके विप्रमनेमें सब निच रह हैं।

विष्णुगोपा— नामवर रक्क है।

विष्वाः परमं पदं— व्यापक देवका लेख रवान है।

बृहदपतिमः परि पातु— शानका देव इजारा रक्कन करे।

प्रजापतिः सव्यं विभ्यक्षय— परमेश्वरमें वह विभक्षय बगना।

एवं परं अङ्गोरासदग्रधा— जिसने अवना एक अंग महानका विभक्ष किया।

कतमः स्विदेय सा— वह परमेश्वर जसमें आनंदपूर्ण है।  
यस्य ब्रह्मविद्यादेया अंग सर्व समाहितः— पैनीय देव जिसके अंगोंमें रहे हैं।

पुरुषे ब्रह्म विदुः— मानव शरीरमें ब्रह्म जानते हैं।

ब्रह्मा वेदिता स्यात्— ब्रह्मा शाना होता है।

नाम नाम्ना सोहवीति— नाम को क्या है नामजब कराता है।

यस्य सूर्यश्चक्षुः— सूर्य जिसका आंख है।

समि यज्जगत् आस्यं— जगिजके जिसने सृज बगना है।

महद्यष्टं भुवनस्य मध्ये— भुवनके मध्यमें बड़ा पूज देव है।

अप तस्य हतं तमा— उसका बगनाम पूर हुआ।

तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे जमः— उस ज्येष्ठ ब्रह्मके जिनके बगनकारा है।

दिश्वं भुवनं जज्जगत्— वह सब भुवनको उत्पन्न कराता है।

प्रजापतिश्चरति गर्भे— ईश्वर सबके गर्भमें निचरता है।

न सर्वे मनसा विदुः— सबके सब ठीक तरह जानते नहीं।

तनु मायेति कज्जन— वस प्रभुका कोई बतिकमन नहीं कराता।

मर्त्यस्यासृता गुहे— मर्त्यके नरमें (शरीरमें) वह जगर रहता है।

एको ह देयो मनसि प्रविष्टः— एक देव मनके अन्दर है।

पूर्णान्तर्यं ब्रह्मवि— पूरने पूरने उत्पन्न होता है।

अग्निं सप्त य पश्यति— शान होनेपर भी (प्रभुको) देखता नहीं।

व्यस्य पदं काप्यं— देवका वह कान देको।

यक्षमाग्यत्— जगमाग्य देव ही पूजनीय है।

प्राक्षणे महत्— ब्रह्म सबसे बड़ा है।

सूत्रं विततं— एक सूत्र सर्वत्र फैला है (वह मझ है)।

यस्मिन्नेतोताः प्रजा— जिसमें वह सब प्रजा मोपी है।

न ममार स जीर्यति— वह मरता नहीं और जीर्ण नहीं होता।

प्रथमो जाता— वह (प्रभु) अवती पहिले प्रकट हुआ है।

हयं कस्यापी अजरा— वह (प्रभुपति) ककनाम करनेवाकी और जीर्ण न होनेवाकी है।

इस तरह कोट सुभावित कर दिया वह सुभावितोंसे बचत है। जो ध्वनिः या सपनाः कोकनेके योग्य हैं। पाठक इन्को बारबार बह कर देखें। इस तरह बारबार करनेसे जो कोकनेवालोंके मनपर बर्ण परिणाम होता है वह विशेष महारका है। करनेवालोंको ही इन्का अनुभव हो सकता है।

### दीर्घायु

दीर्घमायुः कृणातु मे ( ७।३।१ )— वह मेरी दीर्घ आयु करे।

सं भाष्यमग्निः सिञ्चतु प्रसया य धमेन य दीर्घमायुः कृणातु मे ( ७।३।१ )— वह अग्नि मुझ वज्रा और धमेसे पुन करे और मेरी दीर्घ आयु करे।

प्रत्योहतामश्विना मृत्युमस्य नृपामामसे मियसा धात्रीभिः ( ७।५।१ ) इ इन्होंने बेचो बचिनी ! अपनी धात्रीसे इससे मृत्युको दूर करो।

यमस्य अमिश्रस्तेरमुञ्च— यमके नाकवालोंसे मुक्त कर।

शतं सीय शरदो यद्यमानः ( ७।५।१ ) बहुतकुछ शरीर बर्त जीवो।

आयुष्यसे अतिहितं पराधैरपानः प्राणा पुनरा लायित्वा— शरीरकी कार्बोस को दुम्हारी आयु पर लयी है इस स्वात्पर प्राण और अपान पुन लैचार करें।

ममं प्राणा हासीमो अपामोऽवहाय परा गात् ( ७।५।१ )— प्राण और अपान हसे कोहकर ल चला जायें।

सप्तर्षिभ्य एमं परि ददामि त एव स्थिति जरसे बहुभ्यु— सप्तर्षियोंको मैं हम देता हूँ वे हमको कल्याण करके दुहायल्यातक ले जायें।

प्र विद्वत् प्राणापानावमद्याहाविय मञ्जं अयं जरिभ्यः शेषधिररिष्ट इह यद्यताम् ( ७।५।५ )— जैसे वह गोमाकाईं हुमते हैं वेही प्राण अपान हममें हुयें। वह कार्यरचना लज्जना है। वह विवह न होकर बहे।

आ ते प्राणं सुधामसि परा यक्ष्म सुधामसि ( ७।५।६ )— ठेरे अम्भ्र प्राणको घाला हूँ और रोगको दूर कराता हूँ।

अम्लकाय मृगये जमः प्राणा अपामा इह ते रम म्ताम् ( ८।१।१ )— अम्ल करनेवाके मृगुको जमरकार है प्राण और अपान ठेरे शरीरमें पहा रमते रहें।

इहायमस्तु पुरुष सहासुमा— वह पुरुष वही पालक साथ रहे।

इह तेऽसुरिह प्राणः इहापुरिह त मनः ( ८।१।२ )— वही ठेरा प्राण ठेरी आयु और वही ठेरा मन रम।

कल्मामातः पुरुष माय पत्याः ( ८।१।३ )— है पुरुष ! त ऊपर वह मत गिर जा।

मृत्योः पृथ्वीशमवमुञ्चमानः— मृत्युके पास लोड हो। मा पिच्छया मझाहोकात्— इस कोकसे दूर न हो। रथा मृत्युर्ब्रह्म मा प्रमेष्टा ( ८।१।५ )— ठेरे ऊपर मृत्यु रचा करे मत मर जा।

तद्यामं ते पुरुष आययान् ( ८।१।६ )— है पुरुष ! वही उदति हो लवबति न हो।

ते जीवातु दक्षतार्ति कृणाभि— तुम जीवन और दक्षता करातु हू।

आ हि रोहेमममृतं सुखं रथं— इस दुकदारी रथपर बह।

अथ शिर्षिर्द्विधमा यदासि— और हृद होकर शानका उपदेश देगा।

मा त मनस्तेन गान् मा तितो भू ( ८।१।७ )— ठेरा मन बिबिह मार्गसे न जाये गुन न काम करनेवाला न बने।

मा जीवउयः प्र मद्रा— जीवोंके जिन प्रसाद न कर। मानु गाः पितृन्— पितासे दीछ न जा।

विश्व देवा अग्नि रस्तु त्वेह— सब देव वही ठेरी धुरदा करें।

मा गतामामा र्दीर्घायाः ( ८।१।८ )— मेरे कुबोंका जाक न कर।

आ रोह तमसा उपोतिरेहि— वही आ और अन्धेरेसे बकाधर बह।

मैत्र दग्धामनु गा मीम एयः ( ८।१।९ )— इस मीमै न जा वह लवकर मार्ग है।

तम पतत् पठय, मा प्र परया मयं परस्तादुमय ते  
अर्थात्— यह बन्धनकार है इ अमुष्य । इससे न  
जा रहे मय है करे मयय है ।

अभिष्टयमाना सरवधिरस्तु ते ( ४१११ )— अवि  
ष्टिब हृदयत्वा तुसे प्रस हो । ( ५ दीर्घानु हो )  
अस्तु त आधुः पुनरा मरयि— ठेरे अम्बर हान और  
आधुको पुन भर देता हूँ ।

रस्तमो मोप शाः— रस और तमके पास न जा ।

मा प्र मेष्टाः— मत मर जा ।

जीवतां ज्यातिरभ्येष्टार्वाह ( ४११२ )— जीवितोंकी  
ओषधिको इस ओरसे प्राप्त हो ।

आ त्वा हरामि णतसारवाय— तुल्य की बचोंकी आधुको  
प्राप्त करता हूँ ।

अधुमञ्जय मृणुपाशमार्गसिन्— धातुकाओ और  
अधुमञ्जयो दूर दूता हू ।

प्राधीय आधुः प्रतरं ते दधामि— मैं ठेरे जिब दीर्घ  
आधु अधिक दीर्घ करके दूता हूँ ।

पातात् त प्राधमधिकम् ( ४११३ )— आधुके ठेरे  
जिबे प्राप्त करने करता हूँ ।

मृणुपाशुमहं तव— तुमसे ठेरा जीब मैं प्राप्त करता हू ।

यत्ते मनस्वयि तद् धारयामि— जो ठेरा मन है वह  
तुममें मैं धारण करता हू ।

एतं पितृवार्क्यं हि विद्वयामपन्— विद्वये करद लोक  
जा करने जगोके अनुष्ठ हो ।

ममरते मृणो यधुये ममाप्राप्य तेऽकरम् ( ४११४ )

— हे मृणो ! मेरे जीवके जिबे ममरकार कराया हूँ  
वया ठेरे प्राप्तकी ममन करता हूँ ।

अये जीपतु मा मृण ( ४११५ )— यह अनुष्ठ कीबे  
न जा ।

इमं समारयामि— इसको मैं मजीब करता हूँ ।

हृन्धारयामि मेघजम्— इसको मैं जीवज वैवार करके  
देता हूँ ।

मृणो मा पुनने गर्थाः— हे मृणो ! इन पुननका मत  
मत ।

जीवतां मघारिण जीवर्तामार्गार्थमहं प्रापयामां  
महमां महमत्तामिह दूष का अरिहता  
तव ( ४११६ )— इसको तुम प्राप्त हो हकाने

जीवन दैववाकी हामि न करनेवाली रक्षा करने  
वाकी रोग हानेवाकी और वध बहनेवाकी  
ओषधिको मैं देता हूँ ।

अधि बृहि ( ४११७ )— अधि जोड़

मा रमयाः— दुरा हृणी न कर

सुखेर्म— इसको छोड़ ( इसको न मन )

तदीय सत्यसर्वहाया इहास्तु— ठेरा होकर दूरे अत्युक्त  
वह पड़ा रहे ।

मघाघाघं मृकत दाम यच्छत— हे धुकिर्वा और  
संहाकर्ता ! इसको सुकी करो इसको जानन्द हो ।

अपतिम्य पुरित घनमाधुः— पाप दूर करके इसको  
दीर्घानु हो ।

असौ मृणो अधि बृहि ( ४११८ )— हे मृणो ! इसको  
आधीर्वा हो ।

इमं दयस्त— इसपर दया कर ।

उविताऽपमनु— यह ऊपर डटे और चकने कटे ।

अरिष्टः सर्वोपा सुभत् ऊरुता शतहायन आत्मना  
मुजमभुताम्— यह दीर्घावित सर्व ममनकोसे

तुम काओसे वचन काँठे सुननेवाका दूर होकर  
तो बर्तक जीववाका अपनी ताकिले अपने मोप

प्राप्त करें ।

देवानां हेतिः परि त्वा वृणपतु ( ४११९ )— देवोंका  
कच तुमसे दूर रहे ।

पारयामि त्वा रजस्त— रजोगुणसे मैं तुम वन करता हूँ ।

तत्त्वा सुत्यादीपरम्— तुम आधुके दूर बिदा है ।

जीवातसे ते परिधि दधामि— दीर्घ जीवनके जिबे  
ठेरी अर्वा मैं धारण करता हूँ ।

यय इमं तस्मात् रक्षन्तो ब्रह्मास्ते यम हृणमसि  
( ४१२० )— इस सत्यके मार्गसे इसकी सुरक्षा  
करके इसके जिबे हम आरवा कचन करते हैं ।

हृणामि ते प्रायापार्थी जलं मृत्ये दीपमायः कचसि  
( ४१२१ )— मैं ठेरे जिबे प्राप्त ममान दूता  
मृणोके वज्रज्जु हो देया कचनानरने दीर्घानु

करता हूँ ।

वैपश्यतम मदिताम् यममृताकारताऽप सेधामि  
सर्पांन्— वैपश्यतने भिन्ने मम मममृताओ मैं दूर  
करता हूँ ।

भरावराति निर्मलति परा प्राहि कम्पाद् पिशाचात्,  
रसो यत् सर्वं दुर्मृतं तत् तम इवाप हम्मासि  
( ८१११२ )— कन्तु हुगति रोग मोलमल्लक  
कन्तु रस पीनेवाके कन्तु तथा जो कुछ दूरा है वह  
यव लम्पकारके समान में दूर करता है ।

यथा न रिप्या ममृतः सधूरसस्तत् कृज्योमि, तनु  
ते समुप्यताम् ( ८१११३ )— जिससे अगर  
होकर दू नहीं मरेगा वैसा जीवित रह वह तेरा  
जीवन समुद्र हो ।

शिथे ते क्तां घावापुधिषी मसंतापे ममिधियौ—  
तरे किये छु और दुषिषी सताप न रहे और भी देने  
वाले हों ।

शे ते स्य आ तपतु— ( ८१११४ )— धुपं तेरे किये  
सुखदायक रीतिसे तरे ।

श वातो बाहु ते ह्वे— तेरे हवनको आनन्द देना हुआ  
बाहु नहे ।

शिवा ममि रक्षन्तु त्वापो दिव्याः पयस्वतीः—  
हृदिषे मल्ल कक तथा धृषीपर वहवेवाका कक मुखे  
सुखदायी हो ।

यत् ते वासा परिधान या नीयि कणुपे त्वं शिर्षं  
त तन्व तत् कृमः सर्वपक्षोऽमुक्यमस्तु ते  
( ८१११५ )— जो दू कक पहनता है जो कमर  
पर कपेटता है वह तेरे किये ककाल देनेवाका हो  
स्वर्गमें वह ऊरदा होकर न बूधे ।

यत् धुरेण मर्षयता सुतेमसा यता यपासि केशस्मधु  
शुर्मं मुक्षं मा न आयुः प्र मोषी। ( ८१११६ )—  
जो दू नापित कण्डका करनेवाके तेज भारवाके धुरेसे  
जो बाओं और मुँहोंका सुगन्ध करता है इच्छे तेरा  
सुख सुन्दर होगा है पर दू हमारी आयुको नष्ट न  
करो ।

यद्वसासि यत् पिबासि घाम्य हृष्याः पयः यदाय  
यद्वलाय सर्वं ते भक्षं भवित्यं कृज्योमि ( ८१११७ )—  
जो दू खाता है जो पीता है हृषीये घाम्य  
खाता और दूध पीता है वह आद्य और देव वर्णों  
जब तेरा भक्ष में विराहित करता है ।

भरायेभ्यो जिघत्सुभ्य इमं मे परि रक्षत ( ८१११८ )

— दूध हिँवकोंके हम मनुष्यकी सुरक्षा करो  
कोरसे करो ।

शत तेऽमुत हायनाम् वृ मुणे त्रीणि चरत्वारि कृमः  
( ८१११९ )— तेरी सौ वर्षकी बाहु जिसमें दिन-  
राजका मुगक सर्पि—गर्मी—हृदि ये तीन काक और  
कल्प—तापक—दूध और कराप्रसता ये चार लव  
काम्य तुले सुखदायक हों ।

शरदे त्वा हेमन्ताय वसन्ताय ग्रीष्माय परि वृक्षसि  
वर्षाणि शुभ्य स्योनासि येषु बर्षस्त मोषधीः  
( ८११२० )— तेरे किये वसन्त ग्रीष्म, शरद हेमन्त  
ये चार सुखदायी हों जिसमें मौसमियां बढ़ती हैं वह  
वर्षा कान्ती भी सुखदायी हो ।

स्युत्परीषे हिपदां स्युत्परीषे चतुष्पदां तस्मात्  
रवां स्युत्परीषोपतेः वदराति, स मा बिमे।  
( ८११२१ )— हिपाद और चतुष्पादोंपर स्युत्परीष  
कामिनि है इस मनुष्यसे तुले में कपर बढ़ता है  
वह दू स्युत्परीषे मत कर ।

खोऽरिप न मरिप्यसि न मरिप्यसि मा बिमे।  
( ८११२२ )— इ बहिंसित मनुष्य । दू नहीं मरेगा  
नहीं मरेगा कर मत ।

न वै तव जियस्ते— वहाँ नहीं मरते ( दीर्घ जीवन ब्रह्म  
करते हैं । )

नो यन्त्ययमं तमः— हीन जन्मेमें भी नहीं जाते ( सदा  
प्रकाशमें ही रहते हैं । )

सर्वो ये तव जीवति यमेव ब्रह्म कीयते परिधि  
जीवनाय कम् ( ८११२३ )— वहाँ सब जीवित  
रहते हैं जहाँ वह ज्ञान और दीर्घ जीवनके किये  
सुखदायी ( ब्रह्ममर्षका ब्रह्मज्ञान ) किया जाता है ।

परि त्वा पातु समानेभ्योऽभिचारान् सबन्धभ्यः  
( ८११२४ )— समान लोगोंसे और नाबन्धोंसे होने  
वाली हिंसलें तेरा रक्षण होवे ।

भमभिर्मयाऽमृतोऽतिजीवो मा ते दासिपुरस्यः  
शरीरम्— अगर वह जीव न हो दीर्घजीवी हो  
तेरे प्राण तेरे शरीरको न छोड़े ।

ये मृत्यव एकवर्त या बाष्ठा मतितायाः, मुञ्चन्तु  
तस्मात् रवां वृषा ( ८११२५ )— जो भी मनु

है जो नाथ जानेके हेतु है उस मृत्युके देव  
तुम्हारी मृति करें ।

अग्निः शरीरमसि पारयिष्यु ( ८।१।२८ )— तू कुच्छे  
पार करनेवाला अग्निका करीर हो ।

रक्षोर्हसि सपनहा— तू रोगकृमिका नाशक हो  
मनुका नाश करनेवाला हो ।

अमीघक्षातनः— तू रोवोंको दूर करनेवाला है ।

इसने कहे सुभाषित अथ उपयोगी केहे वक्तु है वह  
हेतुके—

दीर्घमायुः कृजोतु मे— मरी जायु दीव करे ।

प्रत्यौहता मृत्युमस्तु— इच्छे यावुको दूर करो ।

अमिशस्तेरमुद्वहः— छोटोसे बचानो ।

शान जीव शरदा— मी बर्ष जीवित रहे ।

अपात प्रातः पुनरा तावितौ— अपात जीव प्रातः  
पुनः वही जावे ।

मेमं प्राप्नो दासीतु— इसको प्रातः न छोडे ।

त पमं स्वस्ति मरसे हवगु— ये इसको मुकपूर्वक दूर  
अवस्थातक के जाय

परा यक्षं सुधासि ते— तेरे रोगको दूर करता हू ।

प्राणा अपाणा इह ते दमस्ता— तेरे प्राण अपाण वही रने ।

अपमस्तु पुरुरा सदासुता— अन्तरे प्राण वह पुनरु रह ।

इह प्राणः— वही तेरा प्राण रहे ।

इह आयुः— वही तेरी आयु रहे ।

इह त ममः— वही तेरा मन रहे ।

उत्क्राम ममः— वही उन्नत हो ।

प्राण पण्डा— मम मित्र न ।

सुप्तोः पञ्चवीशमयमुद्वहमास— मृत्युका प्राण छोड दे ।

उपधम त पुरुरा— ये कजुल ! तेरा कृपा उपाय हो ।

मा ते ममस्ताम गान्— तारा मन तुझे मागके न जाने ।

आरोह तमस्तः— अन्तर्वासाय ऊपर उड ।

उपातिरेदि— वक्राकको नाश कर ।

मयं परस्तातु— दूरन अब है

अमय ते अर्वाक— मी मजीब निर्मलता है ।

तमा मोष गा— अन्तर्वासाय न बल हो ।

जीवता उपतिरम्येदि— जीवितोको उपातिको नाश हो ।

पातरात्राय— बाधुमे नाश नाश हो ।

सूर्याक्षतुः— सूर्यसे अक्षि प्रक्ष हो ।

अय जीवतु— यह जीवित रहे ।

शर्म वच्छत— मुक्त प्रक्ष हो ।

अस्तमायुः— दीव आयु हो ।

अस्ता शतहायना— दूर होकर लो बर जीवित रहे ।

अद्यापि वर्म कृष्मसि— शानका कचप इसके किरे  
करता हू ।

दीर्घमायुः स्वस्ति— तुच्छे दीर्घ आयु हो ।

यमवृताभ्यस्तोऽप सेधामि सर्वात्— यम वक्रवृत्तोंको  
मे दूर करता हू ।

अमृत सज्जरा— तू अमर रहेगा ।

अभि रक्षतु त्वापा— मक तेरा रक्षण करें ।

वर्षाणि तुभ्यं स्योनामि— वर्ष तुम्हारे किरे कल्याण-  
मय हों ।

व प्ररिप्यसि मा विमोः— तू मरेगा नहीं, मर डर ।

अमन्त्रिमं— व मरनेवाला वन

अमृतोऽसि जीवा— अमर और दीर्घजीवी हो ।

इस तरह वे छोटे सुभाषित हैं । वार्म कोहू बीमार हो  
उपको उत्साह देनेके किरे वे सुभाषित अन्तः उपयोगी  
हैं । रोपी जब इसको बोके अथवा उनके किरे हुस्ता  
कोहू बोके । रोपी विश्वरेव पके पके दीर्घमायुः कृजोतु  
मे — ईश्वर मरी दीर्घ आयु करे । ऐसा बारम्बार जोक  
केहे ईश्वर महात्मक होता है और उसके अमरकी प्राण-  
तत्त्व सेजोमयी होकर वह बीरोम होकर रोमयुक्त होता है  
अर्थात् दीव आयु प्राप्त करता है । ऐसा अनुभव अनेक वन  
किता है ।

इसने लोग बोक्नेवाले हों तो रोपीके प्रतिपक्ष केमके  
अथवा हाथ मुकाहर—

परा यक्षं सुधासि ते— तेरा रोग मैं दूर करता हू ।

मेम प्राणा दासीतु— इसको प्रातः न छोडे ।

जीवता उपतिरम्येदि— जीवितोके वक्रको नाश हो ।

वे मंत्र अथवा ऐसे पाठवाके मंत्र बोके जाव, तो वि-  
भिन्न वन रोगीको आरोग्य प्राप्त होता है । पाचक मंत्रके  
अर्थका विचार करें और विश्वरेवमय अथवा मम वक्राकर  
उक्त मंत्रोंका उपयोग करें । उपयोग करनेके समय रोगीका

विकस हो और प्रयोग करनेवाला मग प्रेमसे मरा हो  
तो सत्वर पक्ष प्राप्त होता है ।

पाठक इसका अनुभव के । मगमें ललितकाम या उपहास-  
का भाव न हो ।

### रक्षण

विष्णा अमावाः प्रमुञ्चन् मानुषीभिः शिवामिः परि-  
वाहि सो गयम् ( ७८७११ )— सब रोग दूर कर  
और मानवी कष्टवालोंके साथ हमारे बरका रक्षण कर ।

एक सहाय पश्चिमिम्ह तिग्मे वि द्राघ्न् ताडि-  
वि मृया नुवस्थ ( ७८७१३ )— बालको और  
बलको ठोकर कर अनुभवोंको ताडन कर और हिंस  
कोंको मगा दे ।

रस्तु त्वाप्तयो य अम्हन्तः ( ८११११ )— जकोंमें  
रहनेवाले बलि ठेरी रक्षा करें ।

रस्तु त्वा मनुष्या यमिच्छते— अनुष्य तिसको प्रसीत  
करे है नह बलि मरी रक्षा करें ।

धैभानरो रस्तु त्वा आतरेवेदाः— निष्का भेषा मात  
देव बलि ठेरी रक्षा करें ।

दिम्यस्त्वा मा प्र धागु विघृता सह— निष्कीके साथ  
दिम्य बलि तुल न अछाये ।

रस्तु त्वा यी रस्तु पृथिवी भूर्यक्ष त्वा रक्षतां चम्ह-  
माक्ष भन्तरिं रस्तु वेवेत्स्याः ( ८१११२ )  
— पु अन्तरिक्ष पृथिवी भूर्व और चम्ह वेरा  
रक्षण करें ।

बोधक्ष त्वा प्रातबोधक्ष रस्ततां ( ८१११३ )— ज्ञान  
और निष्का ठेरी रक्षा करें ।

अस्वप्रक्ष त्वानवप्रक्ष रस्ततां— रक्षति और न  
मायका ठेरी रक्षा करें ।

गोपार्यक्ष त्वा जागृविक्ष रस्तताम्— रक्षक और जाग  
देवाका वेरा रक्षण करें ।

त त्वा रस्तु ( ८१११४ )— न ठेरी रक्षा करें ।

ते त्वा गोपायस्तु— न वेरा पाकन करें ।

तेभ्यो ममः तेभ्यः स्वाहा— इनको प्रणाम इनके  
छिने बर्जन ।

मा त्वा प्राचो बर्ज हासीत् ( ८१११५ )— प्राच ठेरी  
छिने बर्ज न छोड ।

मसुं तेऽनु हयामसि— वेर प्राचको अनुभूक करत है ।  
मा त्वा जम्हः संहनुर्मा तमो धिक्न् ( ८१११६ )—  
निनाशक घातक तथा अज्ञान तुल प्रात न हों ।

उत् त्वा मृत्पोरोपधयः सोमपात्रीरपीपरम् ( ८१११७ )  
— सोमप्राथमें रहनेवाली नौरिबिना ठेरी रक्षा करें ।

इमं सहस्रवीर्येण मृत्पोरुम्पायामसि ( ८१११८ )—  
हजारों सामर्थ्योंमें इसे हम मनुष्यसे पार करते हैं ।

उत् त्वा मृत्पोरपीपरम् ( ८१११९ )— मनुष्यसे तुल  
हम पार करते हैं ।

सं धमस्तु खयोधसा— बालुका घातन करनेवाले  
( मत्स्य ) तुलें बलवान् बनावें ।

मा त्वा स्पस्तकेदपोऽ मा त्वाचस्तो रुक्न्— बालोंको  
छोकर चिरां ठेरी छिने न रोवें ( बर्जित ठेरी मनुष्य  
ही न हो )

आहापमविह त्वा ( ८११२० )— मैंने तुलें कापा और  
प्रात छिना है ।

पुनरागाः पुनर्पवः— त फिर कला बार तू क्या  
हुका है ।

सर्वांग सर्व ते अस्तु। सधमापुक्ष तेऽविहम्— हे  
तेरुन अवधको मानव ! ठेरी दहि और पूरे जानु  
तुलें प्रात हुर है ।

व्यायात् ते अयोतिरमृक्ष त्वन् तमो अक्रमीत्  
( ८११२१ )— घरेसे अन्धकार दूर हुका और  
अयोति प्रकाशने कयी है ।

अप स्वम्हस्तु निर्वर्ति अप यक्ष्म नि हम्हसि—  
वेरसे मनुष्य रोग और विगति दूर हुर है ।

रक्षोहण नाजिनमा जिघर्मि मित्र प्रथिष्ठमुप यामि  
धर्म ( ८११२२ )— रक्षकोंके नाश करनेवाले, बल-  
वान् प्रसिद्ध मित्रको मैं प्राप्त कराया हूं जिससे मुझ  
प्रात करता हूं ।

स नो विषा स रिपः पातु मच्छम्— नह दिन-रात  
हमें अनुभवोंके बनावे ।

अयोर्धूो अर्धिया पातुधानानुप स्यूरा ( ८११२३ )—  
कोहेकी दावोंके पुत्र होकर वेमरी वातना रनेवालों  
को निनष्ट कर ।

या जिह्या मृदेवान् रमस्व— मृगनाको देव मानने  
बाकोंको अथनी जिह्यासे दूर कर ।



अप्याद्वा बुध्नाऽपि धारणात्तन्— बह्वन्तं बहवः अपने  
मुखमें मोन जावेवाकोंको हाक ( बहका नास कर । )  
सं येधाम् यातुधानान् ( ८१३१३ )— यातना देवे  
वाकोंका नास कर ।

त्यर्चं यातुधानस्य मिमिष ( ८१३१४ )— यातना देवे  
वाकोंको बमही काट जानो ।

हिंक्षागनिर्हरसा हस्येभ्यम्— हिसक बिबकी हस  
हुटका नास करे ।

ताभिर्द्विष्य हृदये यातुधानाम् प्रतीचो बाहून् मति  
भङ्गयेयाम् ( ८१३१५ )— उच खोसे यातकोंको  
हृदयमें बीच नीर हनके बाहुनोंको छोड ।

उत्तारेणान् स्पृणुहि ज्ञातव्यं उत्तारेणानां क्षुधिमि  
यातुधानान् ( ८१३१६ )— इ जातवेदो अथका कार्य  
करेवाकों और अविष्यमें अथका कान करेवाकोंकी  
हाका कर नीर खोसे यातना देवेवाकोंको दूर कर ।  
पूर्वो मि उहि शोणुषामा— वचम प्रकाशित होकर  
अनुको पराम्वु का ।

आमादुः स्त्रिकालमद्मयनी— कला मोन जावेवाके  
वर्षो हन हुनोंका कामे ।

मृचक्षसध्वमुपे रण्यधेनम् ( ८१३१७ )— मनुष्योंके  
रिपकी दहिसे हन हुटको बिबह कर ।

दिष्टं रक्षास्थमि शोणुषान् ( ८१३१८ )— हिसक राक्ष  
सोंको चारों ओरसे लपामो ।

मा त्वा ह्वन् यातुधानाः— यातना देववाके हुट तुले  
न हवावे ।

मृचक्ष रक्षाः परि पदय पितु ( ८१३१९ )— मात  
कोंका विनिजम करना हुका व राक्षसोंकी देख ।

तस्य भीति प्रात श्चांशमा— उम हुटके तीनों  
भागोंका नास कर ।

प्रेधा मृत्यं यातुधानस्य मृक्ष— बलना देवेवाकेका मृक्ष  
तीन ज्वाभेसे काट ।

विषांमुधानः प्रसिति म एतु ज्ञात या अग्ने अनुनम  
हमि ( ८१३२० )— वो जलजले लम्बका नास  
करना है वह हुट तुलारे पाछमें तीनों बाजुनोंसे  
जाव

तथा विष हृदये यातुधानाम् ( ८१३२१ )— यातना  
देवेवाके हुटके हृदयमें बीच

परा शृणीहि तपसा यातुधानाम् ( ८१३२२ )—  
यातना देवेवाकोंको सुन करके उनका नास कर ।

पराग्ने रक्षो हरसा शृणीहि— हे जम ! राक्षसोंको हर  
करके नास कर ।

पराधिषा मूरयेवाम् शृणीहि— मूर्कोंका देव मात्वे  
वाकोंको दूर करके नास कर ।

परास्तृणुषः शोणुषतः शृणीहि— दूरसे मात्वेपर हन  
होनेवाके छोड करेवाकोंको बिबह कर ।

पराध देवा वृमिन् शृणुम् ( ८१३२३ )— जव देव  
पासीको दूर करें ।

प्रत्यगेनं शपथा यन्तु सृष्टाः— गाविका उम हुटोंके  
पास चडी जाव ।

वाचास्तेन शरथ क्षत्त्रम्तु ममम्— वाणीके चोरकी  
सख मर्ममें काटे ।

विभ्रस्यतु प्रसिति यातुधानाः— हुट खनके बल्यनमें परे ।  
यो पोदयेवेन कृषिया समंके यो अहमेन यन्तुना  
यातुधानाः यो अघ्नयाया मरति क्षीरमन्त्र  
तेषां धीर्पाणि हरसापि वृक्ष ( ८१३२४ )—  
को मनुष्यका मोन जाना है बोदेका वा वृक्ष  
मोन जाना है वो हुट चौध हूच जुरावा है है  
जम । उमके धिर बपये वलसे वोट ।

विष गवां यातुधाना भरतां माधुक्ष्यतामहितये  
पुरेया परेयान् देवाः सविता वृषातु ( ८१३२५ )  
— जो हुट गाकी विष देते हैं वो हुट गीकों काटते  
हैं उनकी लपिका देव दूर करें ।

संवासरिणं पय उस्त्रियायाः तस्य माशीद् यातु  
धानो मृचक्षतः ( ८१३२६ )— हे विनिजम देव ।  
माका मर्बन मात्वे होनेवाका वृक्ष हुट न कीवे ।

वीर्यमग्ने यतमस्ति त्वत्सात् तं प्रत्यंघ मधिषा विष्य  
ममणि— जा हुट गादुरपकरी जमन पीदेगा हनके  
मर्ममें लपके बीच ।

समाह्वन् मृणसि यातुधानाम् ( ८१३२७ )— हे जमे ।  
तु सहा हुटोंका नास करता है ।

न तथा रक्षांसि शूननासु त्रिगुः— राक्षस तुले हुटमें  
पराजुल कर नहीं लपके ।

सहमूरानु वृट अघ्नया— मूर्कोंके नाच मोन बलकोंका  
मका है ।

मा ते हेत्या मुक्तस दैव्यायाः— तेरे दिव्य हथियारसे कोई कुछ न घरे ।

स्वं नो अग्रे अघरावुक्कस्तव पद्मावुत रक्षा पुर  
स्तात् ( ८१।१९ )— हे अगे ! नीकेसे ऊपरसे,  
पीछेसे और आगेसे हमारी रक्षा कर ।

प्रति त्वे ते अघरासस्तपिष्ठा अघर्षस शोशुषतो  
वृक्ष्णु— वे तेरे तपावेवाले किन पापीको जला  
देवें ।

कविः काश्येन परि पाक्ष्मे ( ८१।२ )— इ अगे !  
अपने कावसे तू ज़ापी हमारी रक्षा कर ।

सखा सखाय, अघरो अरिम्ये अगे मर्ता अमत्य  
स्वर्ष ना— तू मित्र होकर हम मित्रोंको तू बरा  
रहित हम बीम होमेवालोंको तू जबर हम मर्कोंको  
सुरक्षित रख ।

विषेण मगुरावतः प्रति स्म रक्षसो जहि ( ८१।२३ )  
— विषसे नाश करनेवाले दुष्टोंका नाश कर ।

प्रादेवीर्माया सहते हरेयाः ( ८१।२७ )— राक्षसोंके  
कपट जादूजनाको यह पराजित करता है ।

शिरींते झुंगे रक्षोऽगो विनिह्वे— राक्षसोंके नासके  
किंच करने सींगोंको चीरकर खाता है ।

ताभ्यां दुर्वां भूमिदासस्तं किमीदिम प्रवम्बम  
विपा जातवेदो वि निह्व ( ८१।२५ )— इन  
सींगोंसे कुछ डरकर, दाम बलनेवाले यूँके दुष्टको  
घामनेसे विनष्ट कर ।

प्रह्वक्षिपे ऋष्यादे घारव्वाहसे ज्यो अघमनवाय  
किमीदिमे ( ८१।२ )— जानके जगु नास  
मजक और नासवाके यूँके किंचे बिरतर देव  
बाल कीजिये ।

पुष्कतो बमे अमरत्तारम्भमे समसि प्र विष्यतम्  
( ८१।३ )— दुराधर्मीको गाढ़ अन्धकारमें पकड़  
कर बीबी ।

पतो मेपां पुनरेकमनोदयत्— इन दुष्टोंसे एक भी  
पुनः न उदे ( देना कर । )

प्रति स्मरेयां तजयमिरेषैर्घैर्तं प्रहो रक्षसो मंगुरा  
वताः ( ८१।७ )— वेपकम् बाहनोंसे दुष्टोंका पीछा  
करो । बिबाहक तथा झोड़कारी राक्षसोंका नाश करो ।

पुष्कते मा सुग भूत्— दूर कमकताको सुन्दर रूपमा  
जसमय हो ।

यो मा कदा विप्रमिदासति द्रुहः— जो दोही कदाचित्  
मुझे कष्ट देगा । उसको दूर कर ।

यो मा पाकेन मनसा धरन्त भविष्ये भनुतेभि-  
र्वक्षोभिः माप इव काशिमा संगुमीता  
असप्रस्तवास्त हम्प यक्ता ( ८१।८ )— मैं शूद्र  
अन्तःकरणसे बचनेपर भी जो अन्न भक्षणसे मुझे  
झिड़कता है मुझेमें पड़े बलके समान वह  
अन्नमानी वह हो जाये ।

यो नो रसं विप्सति पिबो अग्रे भम्बानां गर्वा  
पस्तनूमां रिपुः स्तेन स्तेयकृत् वज्रमेतु मि  
प ह्यिर्ता तप्त्वा तना व ( ८१।१ )— जो  
हमारे बोहों गीलोंके बचनेरसको बिगाड़ता है इति  
पहुँचाता है वह चोर, चतु नाशको मार डाले वह  
अरिसे पुत्रपौत्रोंसे हीन बने ।

सुविबार्मं विकिणुपे अवाप सघासवधस्यो पस्यु  
घाते तपोयत् सत्यं यत्तत्पू ऋक्षीयस्तविष्  
सोमोऽवति हम्पासत् ( ८१।१२ )— ज्ञान  
प्राप्त करनेवाले अनुभवके किंचे यह उत्तम ज्ञान है  
सत्य बार असत्यकी रक्षा बच रही है । जो सत्य  
और सत्य है उसका रक्षण होम करता है और  
असत्यका नाश करता है ।

न या स सोमो वृक्षिर्न हिनोति ( ८१।१३ )— सोम  
कुछिको कभी सहाय नहीं करता ।

न क्षत्रियं मिथुया धारयस्तं— सिन्धुवा वधदा करने  
वाके क्षत्रियों भी सोम सहाय नहीं करता ।

ह्रित रक्षो हम्पासत् पश्वत्— राक्षसोंका और असत्य  
बोझनेवालेका नाश करता है ।

अद्या मुरीय यदि यातयानो अमि ( ८१।१५ )—  
यदि मैं कुछ दू तो नाम ही मर जाऊँ ।

शुभायत रक्षसा सं पिनष्टम ( ८१।१८ )— राक्षसोंको  
पकड़ो और बीबी ।

अमि जहि रक्षसाः पर्वतेन ( ८१।१९ )— राक्षसोंको  
पथठाकड़े बच कर ।

वर्ध नून रुद्रवर्मानि यातुमन्त्रया ( ८१।२० )— दुष्टों  
पर मित्रकी केले और वनध बच कर ।

उत्कृपातुं शुश्रूक्षपातुं अदि श्वयातुमुत कोकपातु,  
सुपर्णपातुं उत शुश्रूषातु हयवेप म मृण रस  
इन्द्र ( ६।१।२२ )— कामी कोभी कामी मोही  
यमंडी मसारीको पत्थरसे मार दे इन्द्र । हमारी  
रक्षा कर ।

इन्द्र अदि पुमांस उत स्त्रिय मायया शापादानां  
( ६।१।२४ )— दे इन्द्र । तू पुस्त्रको या स्त्रीका  
पराजित कर ओ कपटका नाश करने लगा है ।

विभीषासो मूरेवैवा स्रवन्तु— मूर्खोंके उपासक गवन  
रहित होकर प्यें ।

अयं प्रतिसरो मन्त्रिर्वीर वीराय वष्यते वीर्यवात्  
सपत्न्या हारवीरः परिपाणः भुमङ्गलः ( ६।१।२५ )  
— वह प्रतिसर मन्त्रि वीरवान् वीर कायका नाक  
कानेवाका संरक्षक संगत कानेशाका धूर है वह  
वीरके लीपार कोका जाता है ।

अय मणिः सपत्न्या सुवीरः सहस्रान् वाजी सह  
मान उग्रः मत्स्यं कुर्यात् पूषपथेति वीरः  
( ६।१।२६ )— वह मणि सन्नुवाद्यक उग्रम वीर  
अनुका परामर्श करनेवाला वक्रवात् उग्रवीर हितक  
मन्त्रोंका नाक करता हुआ जाता है ।

अनेन ( इन्द्रो )ऽऽस्यत् प्रविशाम्यतः ( ६।१।२७ )—  
इस मन्त्रिके प्रभावसे इन्द्रने जाँ दिशामेनि विभव  
पात किया ।

अमनेन्द्रो मणिता वृक्षमहन् अमनासुरान् पराम्ना  
वयन् मनीषी ( ६।१।२८ )— इस मन्त्रिके प्रभावसे  
इन्द्रने वृक्षको मारा जात इसने प्रभावसे बुद्धिवात्  
इन्द्रने असुरोंका परामर्श किया ।

अय द्याक्स्य मणिः प्रतीवतः प्रतिसरः आज्ञस्त्वान्  
विमुधा यज्ञी सोऽस्त्वान् पातु सर्वतः ( ६।१।२९ )  
— वह मन्त्रिके करनेवाला मणि शत्रुपर आज्ञापन  
कानेवाका वक्रवात् वयमै रक्षनेवाका धूर है वह मन्त्र  
कोर हमारा रक्षण करे ।

द्यापायम मणिम क्षपिण्य मनीषिणा अत्रैप सर्पाः  
पूतमा पि मृषो दग्मि रक्षसः ( ६।१।३० )—  
शानी क्षपिण्य ममान हुम द्यापाय मन्त्रिस में सब क्षत्र  
वैमानोंको मीठता है और बुद्धि रक्षकोंका नाक  
करता है ।

असौ मणिं वर्म वधन्तु द्याः ( ६।१।३१ )— इस  
मन्त्रिको सब देव कटव करके मारे ।

सपत्नकर्शनो यो विभर्तीम मणिम् ( ६।१।३२ )—  
ओ इस मन्त्रिको बारन करा है वह अनुका नाक  
करता है ।

सर्वां दिशो विराजति यो विभर्तीम मणिम् ( ६।१।३३ )  
— ओ इस मन्त्रिको जालन करा है वह सब दिशा  
कोयें विराजता है ।

य धाम मांसमक्षि पौरुषेय स ये क्रविः सर्वांश्च  
क्षाम्ति केशवाः तामितो वाद्यवामसि  
( ६।१।३४ )— ओ कक्षा मांस खाते हैं ओ  
मनुष्यका मांस खाते हैं ओ वानोंवाले गवोंकी खाते  
हैं उनको बरसे इकट्ठा है ।

वैषामो मथिर्वीर्या जावमापोऽमिश्रिणिपा  
अमीषाः सर्वा रक्षास्य हृमवधि दूरमक्षत्  
( ६।१।३५ )— व्याजके समान वह दूर मन्त्रि वीर  
मिर्षिते बलाया संरक्षक निवाससे बलाता है वह  
सब रोगों और रक्षकोंको हमसे दूर के जाकर उबका  
बाध करे ।

अथो हृषीमि मेपयं यथासक्यतद्वायमाः ( ६।१।३६ )  
मै वह वीर्यक बलाता है जिसके शैवकसे वह ता  
बरे जीवित रहेगा ।

उरवा हार्य पञ्चशक्ताव्यो द्यशालातुत अथो  
यमस्य पञ्चीशात् विश्वस्याद् वैशकिस्त्रिपात्  
( ६।१।३७ )— पंच वा द्य रोगोंके बलवाक्यसे  
सब देवोंके सम्बन्धमें किसे पावोंसे दुष्टे ऊपर  
बढ़ाता है ।

यथा हनाम संतां वमिजाप्यां सहस्रदाः ( ६।१।३८ )—  
अनुक देवकों सैनिकोंको हम मारेगे ।

अभिन्ना इत्स्या द्यतां मयम् ( ६।१।३९ )— अनु इन्द्रने  
अब जालन करे ।

तेनामिधाय हस्पूनां शकः सेनामपायपत् ( ६।१।४० )  
इन्द्रने अनुकी शैवाको पकड़कर घनाया ।

इहसि आस वृद्धतः शकस्य वामिनीयतः तेन शङ्  
ममि सर्वान् मृष्यन् यथा न मुकपाति कलमम्भ-  
मिधाम् ( ६।१।४१ )— वरु शैवाकसे समर्थ वीरका  
बहा नाक वा जिससे वह सब अनुकोंको मारता वा  
जिनमेंसे कोई अनु पुरता नहीं वा ।

इदं जाल इदं इन्द्र इन्द्र सहस्रार्धस्य शतवीर्यस्य,  
तेन शत सहस्रं मयुर्धं मयुर्धं जगाम प्राको  
वस्युमाममिषाय खेनया ( ६।६।१ )— हे श्व  
इन्द्र ! तू सहस्र प्रकारसे युव है और तेरे अम्बर  
सैकड़ों सामर्थ्य हैं तेरा यह बड़ा जाल है, उससे सौ  
हजार, दस हजार काक शत्रुओंकी अपनी सेवासे  
इन्द्रने माता ।

अथ पद्यन्तामेयामायुषामि मा शकम् प्रतिषामिषु  
अथैषां बहु विम्वता इषोऽन्तु मर्मणि  
( ६।६।२ )— इन शत्रुओंके लक्ष गिने वे हमारे  
बालोंको न सह सकें इन डरनेवाले शत्रुके अर्थोपर  
हमारे बाल जायाव करें ।

इतो जय इतो विजय संजय जय ( ६।६।३ )—  
वहाँ जय प्राप्त कर पड़ते विजय कर मिड़कर  
जय प्राप्त कर जय प्राप्त कर ।

विम्बा भसीवाः प्रमुक्कम्—सब रोग दूर हो ।  
वैम्बाजरो रस्तु त्वा— निष्का मेठा ठेरी रक्षा करे ।  
प्रतिषोमञ्च रस्तुतां— निजान तेरा रक्षण करे ।  
जायुविम्ब रस्तुतां— जागनेवाला तेरा रक्षण करे ।  
आहार्य त्वा— ( मृत्युसे ) मुझे नापस काया है ।  
सर्वमायुष्य तेऽविदं— तुझे पूर्ण आयु प्राप्त हुई है ।  
अप रवम्भुत्सु निवृत्तमसि— जेसे मृत्यु दूर हुई है ।  
मिम्बहि शोभुक्षामाः—मकसित होकर शत्रुका पराजय कर ।  
रस्तुतो अहि— राजसोंकी परामृव कर ।  
अर्थ भाषिः सपत्नहा— वह मणि कजुनाचक है ।

इस प्रकार छोटे सुभाषित होते हैं । छोटे ही सुभाषित  
बोझने चाहिये वह बात नहीं है । बड़े पूरे मन्त्र भी बोझ  
जा सकते हैं । अपने पाछ समझ कितावा है रोगीके मगकी  
अवस्था कैसी है उसके बरवाले मगकी किछ स्थितिमें है ।  
इन सबका विचार करके सम्पूर्ण मन्त्र बोझना या मन्त्रका  
मात्र बोझना इसका निम्न करना योग्य है । जिस समय  
करके लोग सबसे बड़का है रोगीमें भी बरधा है । ऐसी  
अनुकूल परिस्थितिमें पूर्ण मन्त्र बोझ सकते हैं । पर जिस  
समय करके लोग बरधावे है रोगी भी बेचैन है ऐसी  
अवस्थामें छोटे सुभाषितोंका उपयोग करना उचित है ।  
समय देखकर मन्त्रभिरिताका प्रयोग करना योग्य है ।

धन

घाता वधातु नो रयि ईशामो जगतस्पतिः ( ७  
१ )— जगत्का चारमकर्ता जगत्का पाकक  
हमें बन देवे ।

स तः पूर्वैः यच्छतु— वह ईश्वर हमें पूर्ण रीतिसे  
देवे ।

घाता वधातु वाधुने मार्ची जीवातुमसिताम्  
( ७।७।२ ) धनका चारमकर्ता ईश्वर हाताके क्रिये  
करने योग्य ब्रह्म जीवमसक्ति देवे ।

वयं देवस्य धीमहि धुमति विम्बापक्षः— हम ।  
बनोंके जामी प्रभुकी उच्चम प्रतिकी चारम करते

घाता विम्बा वार्पा वधातु प्रजाकामाय दा  
दुरोणे ( ७।७।३ )— विम्बाका चारक ईश्वर ३  
बारमें चरदू बन देवे जो प्रजाका दित करनेके  
दाव देता है ।

तस्यै देवा अमृतं सं ध्ययन्तु विम्बे— उसको सब  
अमृत देवे ।

यजमानाय प्रविर्षं वधातु ( ७।७।४ )— प्रभु  
कर्ताकी बन देवें ।

अनु सम्पतामनुसम्पमानः प्रजावन्तं रयि अह  
मायम् ( ७।७।५ )— संवावके साथ न क्षीन ।  
बाका बन हमें मिले ।

तस्य वयं हेडक्षि मायि मूम— उस प्रभुके कोपमें  
क्षीन न हों ।

सुमुडीके अस्य सुमती स्वाभ— उस प्रभुके सुमति  
उत्तम कृतिमें हम रहें ।

रयि नो येदि सुमगे सुवीर्यम् ( ७।७।६ )—  
सुमगे । उत्तम वीर पुत्रोंके साथ हमें बन हो ।

तद्वक्षस्य सविता सत्यधर्मा प्रजापतिरनुमर्ता  
पक्ष्छात् ( ७।७।७ )— वह बन हमें प्रभु  
प्रजापत्तक जगत् कदा अनुकूल प्रकृति देवे ।

सा नो रयि विम्बायारं नि यच्छात् ( ७।७।८ )—  
हमें सबके रवीकारने योग्य बन देवे ।

वधातु वीरं शतश्रायमुक्थयम्— सैकड़ों दाव करने  
मर्षवर्षीय वीर पुत्रको देवे ।

रायस्योप विहितुपी द्यातु (०।१९।१) — वह ज्ञान बाकी है मैं कम और योग्य बने ।

सुमठपः सुपेशसो पामिर्वासि शानुपे बसुनि (०।१।१२) — उत्तम बुद्धिवां सुन्दर हैं जो सुम हाणके कम देती हैं ।

तुष्टाणामतुष्टाणां विशां भवतुपीणां समेतु विभ्यतो भगो मन्तर्हस्त कृत मम (०।१९।१२) — त्वासे कम करनेवाओं तथा सुस्त मनुष्योंका तथा दुर्गाओंको दूर न करनेवाओंका जो कम है वह सब एकत्र होकर मेरे हाथमें जावे ।

वर्य अयेम स्वया पुत्रा (०।१९।१३) — इन तेरे साथ रहकर कम करेंगे ।

वृत्तमस्माकमरं मश उद्वा भरे भरे — हरक पुत्रमें हमारे कार्यभागकी रक्षा कर ।

अस्मभ्यमिन्द्र वरीयः सुग कृधि (०।१९।१४) — हमारे किये भेद स्वान् पुत्रके प्राप्त होने योग्य कर ।

प्र दात्र्यां वृषया रुजः — बज्रुओंके बलोंको तोड़ ।

यो देवकामो न धर्मं त्यजिष्यसि तं रायः सुसति स्वधामिः (०।१९।१५) — जो देवकी उपलब्ध करावेस्वा करने बात कमकी रोक्ता नहीं उनके पास अनेक कम अनेक अतिथिमें साथ रहके होते हैं ।

यप दाससु प्रथमा धनाम्वरिष्ठासो वृजनीभिर्जयेम (०।१९।१६) — हम सब राजाओंमें पहिले होकर विवाहकी न प्राप्त होकर निजराजिमें ही जनोंको जीते हैं ।

वृत्त म दक्षिणे हस्ते शपो मे सस्य आहितः (०।१९।१७) — पुत्रताप मेरे दाहिने हाथमें है और काम हाथमें कम रहा है ।

गोत्रिषु भूपासमम्बजित् धर्मत्रया द्विरपयजित् — मैं गाँवें जोड़ कम और सुवर्णकी जीतनेवाका होऊँगा ।

हम विषमें मलने रहना है जो कम कमचन चाहिये । कम पुत्रा नहीं है । कमका बुद्धिमान करनेसे कम पुत्रा कम जाना है । हमकिये देहमें कमका प्राप्त करनेका व्यवहार है । कममें गाँवें जोड़ कम का पुत्र करने सब जाते हैं । जिसके मनुष्य कम हाँगा है वह कम है । जिसके प्राप्त होनेसे

मनुष्यको देना मनुष्य हो कि मैं कम हुआ हू वह कम है । देना कम मनुष्य चाहता है । वह मिले देना कम मुखा मिलेमें कहा है ।

### अतिथि-सत्कार

यो विद्यात् ब्रह्म प्रत्यक्षं परंषि यस्य संभारा, त्वयो यक्षानूच्य सामानि यक्ष होमाणि बभूव ह्यमुच्यते (१।१।१) — जो ब्रह्म ब्रह्मके जानता है, उसके कमचन यज्ञसामग्री, अर्घ्य, तीर्थ, साम कोम और बहुत इतक है देना करने है ।

इष्टे च वा एष पूर्वे च गृह्णाणामस्माति या पूर्वोऽतिथेरस्माति (१।१।११) — जो अतिथिके पूर्व भोजन करता है वह कम करनेका इष्ट पूर्व ही जाना है ।

यपय वा एष रक्षं च कर्मा च वा एष स्मरति च प्रजां च वा एष पशून् कीर्ति च वा एष यज्ञान् भिर्यं च वा एष संविद् गृह्णाणामस्माति या पूर्वोऽतिथेरस्माति (१।१।१२-१३) — दूध और रस नष्ट और समुद्र, नवा और पशु, कीर्ति और यज्ञ, भी और संज्ञा वह जाना है जो अतिथिके पूर्व भोजन करता है ।

एषा वा अतिथिर्यच्छोभियाः उत्तमात् पूर्वो नाम्नी यात् अशिषाफस्यतिपावनीयात् (१।१।१४-१५) — अतिथि भोजन है हृष्ट काम उनके पूर्व भोजन करना नहीं चाहिये अतिथिका भोजन होने पर ही कम भोजन करें ।

### यज्ञ

यजेम यज्ञमयजस्त देवाः (०।१।१) — देवोंने यज्ञके यज्ञरूपकी पूजा की ।

तामि धर्माणि प्रथमाग्यासम् — ये वर्ग उत्तम है । ते ह मार्गं महिमायाः सचस्त — ये महान् मार्ग करने सुकमय करनेकोवको प्राप्त हुए ।

यज्ञ पूर्वे साध्याः सस्ति देवाः — जहाँ पूर्वकालके साध्या करनेवाले जाकर रहे थे ।

अम्वय नोऽनुमतिपक्षं देवेषु मम्यताम् (०।१।११) — आज हमारी अनुमति देवोंमें बहूँ देना कम करने के किये किये ।

### सरस्वती

यस्ते स्तनः शशयुः, यो मयोमूः सुमयुः सुहयो  
यः सुवृक्षः । येन विश्वा पुण्यासि बायाणि  
सरस्वति तमिह धातवे कः । ( ७।१।१ )—  
हे सरस्वति देवी ! जो तेरा स्तन काष्ठित देवेवाका,  
सुख देनेवाका मनको सुख करनेवाका, पुष्टि देने-  
वाका अत्युत्तम मार्गवा करने योग्य है जिससे तु  
जब वार्षीय वृद्धावोकी पुष्टि करती है उसको वहाँ  
हमारी पुष्टिके लिये हमारी ओर कर ।

अथो देवः केतुर्विश्वामासूपतविसृ ( ७।१।१ )—  
सुम्हारा मनोदर्शक दिव्य ध्वज इस ध्वज दिव्यको  
सुसूचित करता है ।

### मातृमाया

इदेषास्मै भवतु वस्तां अतेम यस्याः पदे पुनते देव  
यन्ता ( ७।१।१ )— मातृमाया हमारे पाद परे  
जो बरने अतसे देवता समान भावभाव करनेवालोंको  
पवित्र करती है ।

### मातृभूमि

माद्विधौद्वितिरन्तरि ( ७।१।१ )— मातृभूमि  
हमारा अर्थ है मातृभूमि अन्तरिक्षको है ।

अद्वितिर्यथा स पिता स पुत्रः— मातृभूमि ही माता,  
पिता और पुत्र है ।

विश्वे देवा अद्वितिः— मातृभूमि ही सब देव हैं ।

पञ्च जना अद्वितिर्जातमद्वितिर्जगत्— मन्त्रज  
अग्नि वैश्व सृष्ट और विधाव वही मातृभूमि है जो  
भूतकाकर्म हुआ और जो मयिज्यमें होगा वह सब  
( अर्थात् जो वर्तमानकर्ममें हैं ) वह सब मातृभूमि  
ही के लिये है । ( अद्वितिः— जो एक देवी है । वह  
मातृभूमि है । )

महीम् पु मातरं सुमतानां मातरस्य पत्नीं भवसे  
हयामहे ( ७।१।१ )— मातृभूमि उत्तम अतजाति  
वोकी माता है उसका पालन करनेवाली है इसकी  
हम उत्तम अर्पण करते हैं ।

तुषिषां अजरन्तीं उक्थीं सुशामाभमद्वितिं सुम  
पीतिम्— बहुत काय वेदसे विद्वती देवा होती

है वह कभी क्षीय नहीं होती विद्वत्, सुख देने  
वाली अन्न देनेवाली और उत्तम योग्येयम चकाने  
वाली मातृभूमि है ।

सुशामाभं पृथिवीं धामनेहसं ( ७।१।१ )— उत्तम  
रक्षण करनेवाली प्रकासपुष्ट, अद्विषक हमारी मातृ  
भूमि है ।

देवीं नार्यं स्वरिजां अनागतो अन्नमर्त्या भारोहेमा  
अस्तये— वह दिव्य नौका कभी न चूनेवाली और  
उत्तम गति देनेवाले धामनेसे पुष्ट है इसपर अपने  
कल्याणके लिये हम चढ़ें ।

बाहस्य इ प्रसवे मातरं महीं अद्वितिं नाम अन्नस्त  
करामहे ( ७।१।१ )— मन्त्रकी उत्पत्तिके लिये अन्न  
देनेवाली मातृभूमिकी हम अपनी बाहीसे प्रसन्न  
गते हैं ।

ता नः धामं विवर्क्यं वि धच्छात्— वह मातृभूमि हमें  
दीप्त पुण्या पुष्ट हम सबको देवे ।

नैनाम् ममसा परो अस्ति कश्चन ( ७।१।१ )— हमसे  
अधिक अधिक योग्य कोई नहीं है ।

### राट्समा

समा च मा समितिश्चावतां प्रसापतेदुहितरौ संभि  
वारे ( ७।१।१ )— धामसमा और राट्समिति  
असापाकक राजाकी वे दो पुत्रियाँ हैं वे ज्ञान देने  
वाली समस्त मेरा ( राजा ) रक्षण करें ।

मेना संगच्छा कप मा स शिखात्— त्रिम समासइसे  
में निम्न वह छुके ( सम्भवात्मन विवर्क ) सिद्धन देवे ।

आरु वृद्धिं पितरा संगतेषु— हे राष्ट्रके विद्वत्कामीष  
सर्वको । मैं ( राजा ) सभामेंमें उत्तम भावन करूँगा ।

विद्यते स मे नाम गरिषा नाम धा अस्ति ( ७।१।१ )  
— हे राष्ट्रके । तेरा नाम अविवाली मादका बापक  
है वह मैं जानता हूँ ।

ये ते के च समासइसे मे सगु सयाचमा— जो  
मेरे अनासइ हैं वे मेरे साथ ( राजाके साथ ) समान  
भावके भावन करनेवाले हों ।

यथा मई समासीनानां यथो विज्ञानमा ददे ( ७।१।१ )  
१ )— इस जगतीं वेदें इस सर्वकोसे मैं तेज और  
ज्ञान वक्ता करता हूँ ।

मस्याः सर्वस्याः संसदो भामिन्सु मगिष कृणु— इस  
समाजा सहभागी है इन्द्र ! तू मुझे कर ।

यद्गो मनः पदागतं यद्गस्मिन्नेह वा । तद्ग आ वर्तया  
मधि मयि वो रमतां ममा ( ७१३१७ )— जो  
जायका मन दूर गया है जबवा जो इस वा उस  
विषयसे कगा है उस चित्तको मैं जीतावा हूँ तुम  
सबका मन मुझमें रमता रहे ।

विराट् वा इवमम भासीत् तस्या जातायाः सर्वं  
अभिमेद् इयमेवेदं अभिष्यतीति ( ८११ ११ )  
— प्रथम राजविहीन जबका बी उसको ऐककर  
सब भवभीत हुए वही जबका रहेगी ऐसा सब  
बनके भवमें डलकर हुआ ।

सोदकामत् सा गाहंपत्ये न्यकामत् ( ८११ १२ )—  
वह राजविहीन प्रजापति हाकाम्प हुई और गृहपति  
सकाम्पमें परिणत हुई ।

सोदकामत् सा समायां न्यकामत् ( ८११ १८ )—  
वह प्रजापति अकाम्प हुई और वह ग्रामवर्षामें  
परिणत हुई ।

सोदकामत् सा समितौ न्यकामत् ( ८११ १९ )—  
वह प्रजापति राजवर्षामें परिणत हुई ।

सोदकामत् सामग्नये न्यकामत् ( ८११ १२९ )—  
वह प्रजापति यज्ञीवर्षामें परिणत हुई ।

### ज्ञान

सज्जानं नः स्वेमि संज्ञानमरजेमि ( ७१७११ )—  
हमें स्वजनोंके ज्ञान का मित्र केवीक कोमेंके ज्ञान  
उत्तम ज्ञान प्राप्त हो ।

सज्जानमभ्यता पुषमिहास्मात्तु नि यच्छतम्— हे  
भविष्ये ! तुम दोनों हूँ उत्तम ज्ञान दो ।

संज्ञानामर्ह मनसा संशिक्षिष्या ( ७१७१२ ) मन्त्र  
इस उत्तम ज्ञान प्राप्त करे और ज्ञान होनेपर एक  
मन्त्रसे रहे ।

मा पुष्महि मनसा वैश्वेन— दिव्य मन्त्रके पुष्प होनेपर  
आपसमें विरोध न करे ।

मा घोषा उत् स्वरुद्भूते धिर्विर्हते— बहुशोक वाद्य  
होनेपर हृदयके क्रन्द न निकले ।

सहस्रपिनग्यावर्ते ते मे द्रविर्न यच्छस्यु ते मे

ब्राह्मणवर्षसम् ( १ १५३९ )— सप्तऋषिकी में  
उपासना करता हूँ, वे मुझे इन्द्र और ब्रह्मवर्षसे देवे ।

### पोषण

अग्निं पुष्टं पुष्टपतिर्व्यातु ( ७१९ ११ )— जबको पुष्ट  
करनेवाका प्रभु मुझे पुष्टि देवे ।

### सौभाग्य

वृहस्पते सवितर्वर्षयैव ( ७१९११ )— हे ब्रह्मर्ष  
देव ! हे सबके उपायक ! इसको बता ।

ज्योत्षयेन महते सौभाग्य— बड़े सौभाग्यके किये  
इसको प्रकाशित कर ।

सशितं चित् संतरं सं शिवाधि— सुखदिवालेको  
बचिक उत्तम बननेके किये सुशिक्षित कर ।

विश्व एजमनु मन्मसु देवाः— सब देव इसका अनुमो  
दन करें ।

इह राष्ट्रं पिष्टुहि सौमगाय विश्व एजमनु मन्मसु  
देवाः ( ७१९११ )— इस राष्ट्रको सामन्तवैपुल्य  
कर और सब देव इसके सहायक हों ।

मन्तः कृणुष्व मां हवि मन इक्षौ सहासति ( ७१९११ )  
—दे की ! मुझे बचने इन्द्रवैपुल्य रक्ष और हम दोनोंका  
मन साथ भिन्न रहे ।

ये ते पन्थास्वाऽथ विवो येमिर्विन्ध्यमैरवाः सेमिः  
सुप्रया येहि नो वत्सो ( ७१९११ )— जो तेरे  
कार्यके मार्ग हैं उनसे तू प्रथम विषयको चकाते हो  
उन्मुख हूँ मैं ते वत्सो ! सुखसे पुष्ट कर ।

### पकता

सं ज्ञानायाः स ममसाः सयोधयः ( ७१९ ११ )—  
एक व्यापक योग उत्तम उत्तम संतक दोहर एक  
विचारके हों ।

### आरोग्य

वि वृहत्तं विपूषीमभीषा या नो गवमाबिषेष्ट  
( ७१९११ )— जो रोग बरसे प्रविष्ट हुआ है उस  
पेकनेवाले रोगको दूर करो ।

वायेषां दूर निर्मार्ति पराधैः— दुर्गतिको दूर ही रोक दो ।  
कृतं विवेधः प्र सुमुक्तमस्मात्— किया हुआ पाप हमसे  
छुवाओ ।

युवमेताम्यसाद् विश्वा तनूषु भेषजानि यत्नम्  
( ७।१३।१ )— तुम हमारे शरीरोंमें सब जीवजोंको  
रको ।

अथ स्वतं मुच्छत यशो भसत् तनूषु यत्न कृतमेनो  
भसत्— हमारे शरीरोंमें जो बाप है उससे हमारा  
बचाव करो । हमारे किये हुए पापसे हमारी मुच्छता  
करो ।

तप

यवने तपसा तप उप तप्यामहे तया श्रियाः सुतस्य  
भूयास्य मापुष्मन्तः सुमेधसः ( ७।१३।१ )—  
हे भग्ये ! हम तप करते हैं इससे हम ज्ञानके गिर  
भीर पीछाहु और सुदिनात् बनने ।

कल्याण

भद्राश्चि भेया प्रेहि ( ७।१३ )— कल्याणसे अधिक  
अथ प्राप्त कर ।

पृहस्पतिः पुरयता ते भस्तु—ज्ञानी वेद । भाग्यवर्धक हो ।  
अथेममस्या जर मा पुधिष्या— इस मनुष्यजीव  
वीरको रको ।

आरे दानुं कुजुहि सर्ववीर— सब वीरोंके समुदायको  
समूहें दूर कर ।

दा क नस्तुचि ( ७।१३।१ )— हमारा कल्याण कर ।

प्रजां देवि रत्नत्न नः— हे देवि ! हमारे किये कजा दे दो ।

स माझे वर्चसा सुज स प्रजया समानुया  
( ७।१३।१ )— हे भग्य ! मुझे तेजसे साथ प्रजाके  
साथ और हीर्षानुके साथ मुक्त कर ।

प्राक्षणाञ्च राजा च भेनुक्यामत्वाञ्च श्रीहिञ्च यवञ्च  
मभु सप्तमम् । मधुमाञ्च भयति मधुमवस्था  
ह्यप्य भवति मधुमतो लोकाञ्च भयति य एवं  
वेत् ( ७।१३।१-२३ )— प्रजापति राजा गो बैक  
चायक श्री भीर मय के भक्त मनु हैं । जो इसका  
महाय जानता है वह भीडा होगा है वह भीडे  
कोकोंको भीतता है ।

स नः विधेय पुत्रेभ्यः भेषः भेषमिहिरसतु ( १।१३।१ )  
— वह वेदा पुत्रोंके किये कल्याण कराता है वेदा  
हमारा कल्याण करे ।

सो मयै बलमिह पुत्रे भूयोभूयः श्वाः श्वाः तेन त्वं  
ह्रियसो अहि ( १।१३।१ )— वह इसे बहुत बल  
प्रतिदिन देने जिससे दू देव करेयोंकोका पराजय  
कर ।

त विजित् चन्द्रमा मधिमसुराणां पुरोऽजयद् दान  
वामां हिरण्यपीः ( १।१३।१ )— इस मन्त्रिको  
चन्द्रमासे वारण किया जिससे वह दानवोंके सुवर्णमय  
वर्णोंको जीत सका ।

विजय

यो जो द्वेषयधरा सस्यवीर यमु शिष्वाः तमु प्राप्नो  
अहानु ( ७।१३।१ )— जो हमारा द्वेष करता है  
वह भीषे गिरे जिसका हम द्वेष करते हैं उसको  
प्राप्त होइ दूवे ।

अमे जातान् व शुवा मे सपत्नान् ( ७।१३।१ )— हे  
भग्ये ! मेरे शत्रु दूर हैं उसको दूर कर ।

प्रत्यजातान् जातवेदो मुक्ता— प्रकट व दूर नर्वाच  
जो शुल यमु हैं उनको भी दूर कर ।

अथस्पद् कुजुष्व ये वृत्तम्यथा— जो ऐश्वर्य भिड़ते हैं  
उन्को भीषे कर ।

अमागसस्यो वर्षे भवितये स्याम— शिष्वा होकर  
वरीयसाके बहूपानी हम हों ।

तमा शिष्ययुः न परा जयेये स परा शिष्ये कृत  
अस यत्नयोः ( ७।१३।१ )— दोनों जीतते हैं  
कभी पराजित नहीं होते । हममेंसे एक भी पराजित  
नहीं होता ।

सत्पतिर्बुधम्यको रपीच पत्नीवजयत् पुरोहितः  
( ७।१३।१ )— वह ब्रह्म पात्रक महाबलवान्  
रभसे देवदेवाने वीरके अमाय वरगामी होकर सन्तु-  
तैविकोंको जीतता है ।

अथस्पद् कुजुतां ये वृत्तम्यथा— जो ऐश्वर्ये चरई  
करते हैं वे भीषे गिर जाय ।

स नः पर्यवति पुर्वाणि विदवा ( ७।१३।१ )— वह  
सब दुर्गोंके पार के जाने ।

यातुपामा निर्मतिराहु रसस्ये अस्य भस्तु भन्तेन  
सत्यम् ( ७।१३।१ )— यातना देनेवाले शिष्य  
भीर राक्षस अवलम्बे यथका वाक करते हैं ।



मोजो वासस्य वृमस्य ( ७।१५।१ )— हिंसके बहको  
बराभो ।

पर्यामते पुष्पज्यात् पापास्तज्यात् मृत्या ( ७।१ ५।१ )  
इह यथा विरिचकार कश्यपे मे वृह रोषा ह ।

ब्रह्माहमन्तरं कश्यपे परा स्वप्नमुखाः शुक्लाः— मन्त्रको  
मे नीचमे रक्ता हू तिससे कोक बराभेवाले काप्य  
वृह हो ।

मेष्ताम्युष्यसिद्धन् मा मा हिंसिपुरीश्वरा ( ७।१ ७।१ )  
कंवा करा शोकर मे विरिचन करा हू अधिकारी  
मेरा नाक न करे ।

अपस्त त्वातु देवा मन्त्रु ( ७।१२।१ )— विजय  
पनेवाले तुसे देवकर देव जानम् करे ।

त्रिष्यवे योगाय ब्रह्मयोगीर्षो पुनरिम ( १ १५।१ )—  
विजय प्राप्तिके योगके त्रिषे ब्रह्मयोगीर्षे मे जानको  
बुद्ध करा हू ।

त्रिष्यवे योगाय स्रजयोगीर्षो पुनरिम ( १ १५।१ )—  
विजय प्राप्तिके योगके त्रिषे मे जानको कविबोधित  
योगीर्षे बुद्ध करा हू ।

तेम तमम्यसिद्धान्मो योऽहान् हेहि यं ययं त्रिष्यः  
( १ १५।१५ )— हम उधको वृह करते हू जो  
हमाप देव करा है और त्रिषका हम देव  
करते है ।

तं ययेयं तं दृषीय अमेन ब्रह्मणा अमेन कर्मजा  
अमया मेम्या ( १ १५।१५ )— इस कामके इस  
कर्मके इस इच्छाके उध अनुका वच को बरका  
बाध करे ।

शशुके तेजका नाश

स्त्रीर्षां च पुंसां च त्रिपतां यर्षं आ वृदे ( ७।१७।१ )  
— इस करनेवाले कीपुंस्त्रीका रीज मे केला हू ।

यावन्तो मा सपत्न्यानी आयान्ते प्रतिपदयथ। कथ  
मस्य इव सुप्तानी त्रिपतां यर्षं आ वृदे  
( ७।१७।१ )— तिसरे कथ सुधे जाते हुए देखते  
हैं वन तब अनुकोका तेज मे केला हू जैसा उगला  
मूर्ध केला है ।

मीदीः सपत्नान् मम पाह्य ( ११।११ )— मेरे अनुकासे  
मीधे मिला हू ।

अथ्यहो वाजी मम काम उग्रः कुपोतु मन्त्रमसपत्न  
मेव ( ११।१७ )— बराभी बहवाज काम ( इच्छा )  
सुधे अनुप्रापित करे ।

अहि त्वं काम मम ये सपत्न्या जन्वा तन्नास्व  
पायैनाम् ( ११।११ )— हे काम ! मेरे कनको  
तु निजव कर और उनको बने बननेमें मिला हो ।

मिरिमिद्वया अरस्ताः सन्तु सर्वे मा ते जीविषु कत  
मन्त्रनाहः ( ११।११ )— मेरे अनु कीरत और इच्छा  
रहित हूँ वार है एक दिव मी जीवित न रहें ।

महो वमस्तां प्रविशन्नरकाः ( ११।११ )— जलो  
विशतं सुधे बने ।

सर्वं अनुवीचुतामा वहन्तु— का मृमिर्षा सुधे मी जान  
देवे ।

तेऽधराक्काः म मूषतां त्रिष्या नौरिष बंधवात् ( ११।  
११ )— नौष बंधवके मूष्येपर जैसी वृष्टी है वैसी  
वे अनु नीचे मिर ।

न सायकमपुच्छानी पुनरस्ति निवर्तनम्— वानो  
अपाने अनुकोका किहो बाधनन नहीं होता ।

जसर्षवीरश्चरतु प्रपुत्तो हेम्या ( ११।११ )— अनु  
अगाथा हुआ कीरसे रचित होकर भरका रहे ।

मीदीः सपत्नान् पुच्छां मे सहलान् ( ११।१५ )—  
मेरा सामर्थ्यवात् सहलक मेरे अनुकोको नीचे  
देवित करे ।

त्वं काम मम ये सपत्न्यास्तमसाहोकात् म मुक्क  
वृत्तम् ( ११।१७ )— हे काम ! मेरे अनुकोको  
इस कोकसे वृह मवा हो ।

अयं मे वरयो ममि। सपत्नसपत्नी वृषा ( १ ११।१ )  
— वर मेरा वरममि वरवात् और अनुका नाश  
करनेवाला है ।

तेमा रम्यस्य त्वं पाह्य म मृषीदि वुरद्वयतः— वरके  
त अनुका नाश कर और वृषोका नाश कर ।

अथारयन्त वरणेन देया अम्याचारमनुप्राणां इवा  
वृषा ( १ ११।१ )— इस वरवममिसे देवेनि रीज  
रीज होमेवाले अम्याचार वृह किने ।

अयं मयिर्विद्वमेयजः ( १ ११।१ )— वर ममि अय  
मीधोके ववावा है ।

ते द्वायन्ध्वरान् पादप्याति— वह छेरे झनुओंको नीचे गिराता है ।

स्तान् दम्नुहि ये तथा क्षिपति— जो घेरा द्वय करते हैं इनको दबा दे ।

द्वेयमाव्य मयात् अयं तथा सर्वस्मात् पापात् खरयो वारयिष्यते ( १ । १३।७ ) वह वरज्यणि मावयी मयसे तथा सब पतसे तुझे बुर करेगा ।

न विमर्षि धरज्यमायुष्मात् शतशारवः । स मे राधू य स्रवं य पशुमोक्षमे दधत् ( १ । १३।१२ )— इस वरज्यमणिके धारण करा हूँ इससे मैं बीरोंमें और सौ बर्य बीरित रहनेवाला होऊँ । वह मेरे लिये राधू शतशरक पशु और मोक्ष धारण करे ।

या सपत्न्याम् मे संविद्य पूर्वान् ज्ञातौ वतापराम् ( १ । १३।१३ )— इस वरह तू मेरे पहिले का पञ्चाय होनेवाले झनुओंका वाध कर ।

य मृजीहि धातुभानाम् ( १ । १५।७९ )— वातना देनेवालोंको बुर कर ।

रामे प्यो हरता मृजीहि— हे जगड़े । जपने तेजसे रामोंको बुर कर ।

राक्षिषा मूषेवान् मृजीहि— मूँकोंको देव मानने वालोंको जपने तेजसे बुर कर ।

रपसुवपः घोशुवतः मृजीहि— वृषोंके शालोंमें वृष होनेवाले वृषोंको घोषमय क्षितिमें बुर भगा दो ।

मपामकौ वरं म इरामि जतुर्भुधि धीर्धर्मिषाय विज्ञान् खो मस्यागामि म मृष्यातु सर्वा तन्मे देवा मनु ज्ञानस्तु विदधे ( १ । १५।१५ )— इस झनु पर मैं तीक्ष्ण वर देऊँगा हूँ । उसका क्षिर सोचनेके लिये वह सब वरके सब अंग लोके, वह मेरा कार्य सब देव झनुसेलिय करें ।

मपसीयोर्धार्तुमस्य बुर्धार्थो क्षिपतः क्षिरः अपि बुध्याम्योक्षसा ( १ । १५।१६ )— झनु पैरी कुछ द्रव्यका क्षिर मैं वेगसे फेलाऊ हूँ ।

तं देवा विभ्रतो मणि सर्वाहोकात् युवाऽज्यन् ( १ । १५।१७ )— उस मणिका देवोंमें वारण किया जिससे वे बुद्धमें काँकोंका जीव लगे ।

तामिम देवता मणि मर्द्ध ददतु पुष्टये, ममिभुं स्रज यधमं सपत्न्यममम ममिम ( १ । १५।१९ )— सब देवता उस मणिको पुष्टिके लिये मुझे देवें वह मणि झनुका परामय कराता राधूका सर्वजन कराता झनुको दबाता है ।

## गौरूप

एतद्वै विद्वद्वरूपं सवद्वरूपं गौरूपम् ( १ । १५।२५ )— वह सब रूप सब विद्वद्वरूप गौका रूप है ।

वशा धीर्वशा पृथिवी वशा पिप्लुः प्रजापतिः । यशाया दुग्धमपिबन् साध्या यलक्षये ( १ । १५ । ३१ )— वशा गौकी धी वलक्षी पिप्लु तथा प्रजापति है । साध्या और वसु इस गौका वृष पीते हैं ।

वशाया दुग्धं पीत्वा साध्या यलक्षये । ते पै प्रधस्य पिप्लुपि पयो मस्या सपासते ( १ । १५ । ३२ )— साध्या और वसु दूध इस वशा गौका वृष पीकर अर्धके रूप राकर इस गौके वृषकी सपासना करते हैं ।

## पाप

यद्वर्षाधीनं वैहायण्यादनुत किं बोद्धिम आपा मा तस्मात्सर्वस्मादनुरितात् पातंहसः ( १ । १६ । २९ )— जो तीन वर्षोंके जम्हा मेंने जलमय मानव किया होगा उससे पापसे वह सब मुझे मुक्त कर ।

## माता-पिता

स खेह पुनः पितरं स मातरं ( १ । १६ । २९ )— वह जपने माता पिताको जानवा है ।

## रोग-निवारण

ये भंगानि मद्भ्यामि यद्भ्यामसो रोपणास्तथ । यद्भ्यामार्थं सर्वेषां विषं निजोक्तमहं रवत् ( १ । १६।३९ )— जो भंगोंको व्याकुल करते हैं मद् भ्यामक करते हैं वन रोगोंका निव मैं तुझसे बुर करवा हूँ ।

## विपक्षि

दीर्घार्थं दीर्घाभित्यं रक्षो अभ्यमराप्या, दुर्णाक्षीः

सर्वां युधाचस्ता अस्माकाश्यामासि ( ७।२७।  
१ )— इह कर्म कृत्वात्म जीवित ईदृशकोंका  
व्यवहार इतिवि विरपि पुने वचन ने एक विदितिया  
हमसे दूर हो निवृत्त हो ।

विम्व ह्योना

स इदं विद्वश्ममवत् ( ७।१।२ )— वह वह सब विद्व  
होता है ।

स आमवत्— वह सर्वत्र होता है ।

वेद

वेदा द्यस्ति ( ७।२९।१ )— वेद कल्याण करनेवाला है ।

सत्य मापण

ये वदन् क्षतानि ( ७।१।१ )— जो झल कोकते हैं ।

शिवास्त यका अशिवास्त यकाः सर्वा विमर्षि सुम

नस्यमानाः ( ७।३३।१ )— तुम्हारे एक प्रकरके  
कर्म कल्याण करनेवाले और हमारे कर्म कल्याण  
होते हैं । कल्याण मनवाका तु हम सबको प्राप्त  
करता है ।

सर्प

यनेन हृग्मि बुध्मिर्क मर्हि दृष्टेन आयतम् ( १ ।७।

१ )— इनोकेसे मैं निहृको मारता हूं और आरके  
दृष्टके मारता हूं ।

संपारमम्बगाद् विप्य अहिरमृत ( १ ।७।२१ )— दंत  
करनेवालेके पाद विप्य गया और वह साव मर गया ।

इय वरह वेदके कारण ७ से १ तकके सुधावित हैं ।  
इसका योग्य व्यवहार करने पसक अपना काम करने देखें  
कि वेद किस तरह कल्याण करता है ।





# अथर्ववेद

का

सुषोक् भण्ड्य

## सप्तमं काण्डम् ।

छात्रक

पं श्रीपाद वामोदर सातवलेकर

भण्ड्य-स्वाध्याय मण्डल साहित्य-वाचस्पति, गीताखण्डार

स्वाध्याय मण्डल, पारडी



पृष्ठ २ १५ शक १८८८ शक १९५८

# एक सौ एक शक्तियाँ

एकं शतं सृष्ट्योः। मर्त्येऽस्य साकं तु न्या। अनुशोऽपि ज्ञाताः ।  
 तासां पार्ष्णिना नितुतः प्र हिण्मः क्षिप्रा मृत्मर्त्यं ज्ञातवेदो नि पच्छ ॥  
 अथर्ववेद ७।१२५।३

“एक सा एक शक्तियाँ मनुष्य के शरीर के साथ उस के अन्मते ही उत्पन्न होती हैं। उन में जो पापरूप शक्तियाँ हैं, उन को हम दूर करते हैं, और वे सर्वज्ञ प्रभो ! कल्याणकारिणी शक्तियों का हमें प्रदान कर ।”



# अथर्ववेदका स्वाध्याय ।

[ अथर्ववेदका सुबोधभाष्य । ]

## सप्तम काण्ड ।

इस सप्तम काण्डके प्रथम सूक्तकी द्रवता 'आत्मा' है। आत्मा देवता सप्त द्रवताओंमें सूक्ष्म देवता होनेसे यह अत्यन्त मंगल देवता है। वेदमंत्रोंमें सर्वत्र अनेक रूपसे इसी देवताका वर्णन है—

सर्वे वेदा यत्पदधामनान्ति तर्पांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति ।  
पदिच्छन्तो ध्रुवचर्य चरन्ति तस्ये पद सप्तमेण ब्रवीमि ॥

कठ उ० १।१।१५

तथा—

वेदेभ्य सर्वैरहमेव वेद्यः ॥

म०गी० १५।१०

अर्थात् "सर्व वेदके मंत्र उसी आत्माका वर्णन करते हैं।" वदमें अनेक द्रवताएँ मलेही हों, परन्तु बड़का सूक्ष्म विषय आत्माका वर्णन करना ही है। उसी मंगलमय आत्माका वर्णन इस प्रथम सूक्तमें होनेसे और इस मंगलका वर्णन इस काण्डके प्रारम्भमें होनेसे यह सूक्त इस काण्डके प्रारम्भमें मंगलाचरणरूपही है। आत्मासे भिन्न और मंगलमय द्रवता कौनसी हो सकती है? सप्तम अधिक मंगल द्रवता यही है।

इस काण्डमें एक अथवा दो मंत्रमाले सूक्तोंकी संख्या अधिक है। बहुधा किसी दूसरे काण्डमें इस प्रकार छोट सूक्त नहीं है। यदि मंत्रसंख्याके क्रमसे सातों काण्डोंका क्रम लगाया जाये, तो इस प्रकार क्रम लग सकता है—

क्रम	काण्ड	सूक्तसंख्या	सूक्तप्रकृति
१	७ वां काण्ड	[ ११८ ]	१ मन्त्रवाले सूक्त ५६ हैं
			२ " ५२ "
२	६ ठां "	[ १४९ ]	३ " १२२ "
३	१ ला "	[ ३५ ]	४ " ३० "
४	२ रा "	[ ३६ ]	५ " २९ "
५	३ रा "	[ ३१ ]	६ " १३ "
६	४ था "	[ ४० ]	७ " २१ "
७	५ वां "	[ ३१ ]	८ " ९ "

इस सप्तम काण्डमें कुल सूक्त ११८ हैं, परन्तु चूसरी गिनतीसे १२३ भी हो सकते हैं। नीचेमें कई सूक्त ऐसे हैं कि, जिनके प्रत्येकमें दो दो सूक्त माने हैं, इस कारण चूसरी गिनतीमें ५ सूक्त बढ़ जाते हैं। हमने ये दोनों गिनतियाँ सूक्त क्रमसंख्यामें बतायी हैं।

अब इस काण्डकी मन्त्रसंख्या देखिये—

१ मन्त्रवाले सूक्त ५६ हैं और उनमें मन्त्रसंख्या ५६ है।

२ " "	२६	" "	५२
३ " "	१०	" "	३०
४ " "	११	" "	४४
५ " "	३	" "	१२
६ " "	४	" "	२४
७ " "	३	" "	२१
८ " "	३	" "	२४
९ " "	१	" "	९
११ " "	१	" "	११

कुल सूक्तसंख्या ११८

कुल मन्त्रसंख्या २८६

इन मन्त्रोंका अनुपादोम विभाग देखिये—

कुलसंख्या

अनुपाद	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	= १०
सूक्तसंख्या	१३	०	१६	१३	८	१४	८	९	१२	१६	= ११८
मन्त्रसंख्या	२८	२२	३१	३०	२५	४२	३१	२४	२१	३२	= २८६

इस सप्तम काण्डकी मंत्रसंख्या केवल २८६ है अर्थात् चतुर्थ ( ३२४ ), पञ्चम ( ३७६ ), और षष्ठ ( ४५४ ) की अपेक्षा बहुत ही कम है और प्रथम ( ९३० ), द्वितीय ( २०७ ), तृतीय ( २३० ), की अपेक्षा अधिक अर्थात् २८६ है ।

अब इस काण्डके सूक्तोंके अपि-देवता-छन्द देखिये—

## सूक्तोंके अपि-देवता-छन्द ।

सूक्त	मंत्रसंख्या	अपि	देवता	छन्द
प्रथमोऽनुवाकः । षोडशाः प्रपाठकाः ।				
१	२	अथर्वा (प्रह्ववर्चसकामः)	आरामा	१ त्रिष्टुप् २ विराज् जगती
२	१	"	"	"
३	१	"	"	"
४	१	"	वायुः	"
५	५	"	आरामा	" १ पंकी, ४ अनुष्टुप्
६ (३७)	४ (२+२)	"	अदितिः	" १ मुनिक् ३—४ विराज् जगती आर्या जगती
७ (८)	१	"	"	"
८ (९)	१	उपरिबल्लभः	बृहस्पतिः	त्रिष्टुप्
९ (१०)	४	"	पूषा	१ त्रिष्टुप् ३ त्रिष्टुप् आर्या गायत्री ४ अनुष्टुप्
१० (११)	१	शौनकाः	सरस्वती	त्रिष्टुप्
११ (१२)	१	"	"	"
१२ (१३)	४	"	समा ।	अनुष्टुप्
			१ २ सरस्वती ३ इन्द्रः ४ मन्त्रोक्ताः	
१३ (१४)	२	अथर्वा (द्विपोषधौ हर्तुकामः)	सोमा	"
द्वितीयाऽनुवाकः ।				
१४ (१५)	४	"	सविता	१ अनुष्टुप् ३ त्रिष्टुप् ४ जगती
१५ (१६)	१	मृगः	"	त्रिष्टुप्
१६ (१७)	१	"	"	"
१७ (१८)	४	"	यदुदैरयम्	" १ त्रिष्टुप् आर्या गायत्री २ अनुष्टुप् ३ ४ त्रिष्टुप्



१८ (१९)	२	अथर्वा	पृथिवी, पर्जन्याः	१ अमुष्पु १ मुरिगु विष्णु २ त्रिष्टुप्
१९ (२०)	१	ब्रह्मा	मन्त्रोक्ता	अगती
२० (२१)	१		अनमतिः	१-२ अमुष्पु ३ त्रिष्टुप् ४ मुरिगु ५ १ अगती ३ अ विश्ववरीगर्मा
२१ (२२)	१		आरमा	वाक्वरीविराड् गर्मा अगती
२२ (२३)	२		किंगोक्ताः	१ द्विपदैकावसाना विराड् गावधी, २ त्रिपदानष्टुप्

### तृतीयोऽनुवाकः ।

२३ (२४)	१	यमा	दुःस्वप्नाराताः	अमुष्पु
२४ (२५)	१	ब्रह्मा	सविता	त्रिष्टुप्
२५ (२६)	२	मेधातिथिः	विष्णुः	
२६ (२७)	८	"	"	१ २ त्रिपदाविराड् गावधी ३ अमवसाना वदपदा विराड् वाक्वरी, ४-७ गावधी ८ त्रिष्टुप्
२७ (२८)	१		मन्त्रोक्ता	त्रिष्टुप्
२८ (२९)	१		वेद्यः	"
२९ (३०)	२	"	मन्त्रोक्तः	"
३० (३१)	१	सूर्येगिरा	द्यावापृथिवी	बृहती
३१ (३२)	१	"	प्रतिपत्तिकाः	
३२ (३३)	१	ब्रह्मा	रश्मिः	मुरिगिष्टुप्
३३ (३४)	१	"	आयुः	अमुष्पु
३४ (३५)	१	"	मन्त्रोक्ता	पथ्यार्यंकिः
३५ (३६)	१	अथर्वा	सातवेद्याः	अगती
३६ (३७)	१			१ अमुष्पु २ ३ त्रिष्टुप्
३७ (३८)	१	"	अग्निः	अमुष्पु
३८ (३९)	५	"	किंगोक्ता	
		"	धनस्पतिः	" ३ अमुष्पावृष्टिक्

चतुर्थोऽनुवाकः ।

३९ (४०)	१	प्रस्कणः	मंत्रोक्ता	त्रिष्टुप्	
४० (४१)	२	,	सरस्वती		१ मुरिक्
४१ (४२)	२	"	इयेना	,	१ जगती
४२ (४३)	२		सोमाकरी	,	
४३ (४४)	१	"	वाक्	"	
४४ (४५)	१	"	इन्द्रः, विष्णुः		मुरिक् त्रिष्टुप्
४५ (४६ ४७)	२	" (४७ अथर्वा)	मेघजम्	अनुष्टुप्	
			ईर्ष्यापनयनम्		
४६ (४८)	३	अथर्वा	मंत्रोक्ता	त्रिष्टुप्	१ २ अनुष्टुप्
४७ (४९)	२	,		"	१ जगती
४८ (५०)	२				"
४९ (५१)	२		एवपत्न्यौ		१ आपी जगती
					२ अनुष्टुप् पंक्तिः
५० (५२)	९	अगिरा (कितववाचन काम)	इन्द्रः	अनुष्टुप्	३, ७ त्रिष्टुप्
					४ जगती १ मुरिक्
					त्रिष्टुप्
५१ (५३)	१		बृहस्पतिः	त्रिष्टुप्	

पञ्चमोऽनुवाकः ।

५२ (५४)	२	अथर्वा	सोमनस्यम्		१ कडुन्मती अनुष्टुप्
			अग्निनी		२ जगती
५३ (५५)	७	ब्रह्मा	आपुः, बृहस्पतिः, अग्निनी	१ त्रिष्टुप्, ३ मुरिक्	४ उष्णिगमार्गी पंक्तिः
					५-७ अनुष्टुप्
५४ (५६ ५७-१)	२	(५६) ब्रह्मा (५७) मृगः	क्रावस्ताम	अनुष्टुप्	
			इन्द्रः		
५५ (५७-२)	१	मृगः	इन्द्रः	विराट्	
५६ (५८)	८	अथर्वा	पृथिव्याद्याः	अनुष्टुप्	४ विराट् प्रस्तार पंक्तिः
			२ घनस्पतिः		
			४ ब्रह्मणस्पतिः		
५७ (५९)	२	धामदेयाः	सरस्वती	जगती	
५८ (६०)	२	कीर्यपिः	मन्त्रोक्ता	१ जगती	२ त्रिष्टुप्
५९ (६१)	१	वात्रापिः	अरिमाधानम्	अनुष्टुप्	

## पष्ठोऽनुषाकः । सप्तदशाः प्रपाठकाः

६० (६२)	७	ब्रह्मा	गृहाः वासोऽप्यतिः	अनुष्टुप्	१ परानुष्टुप् त्रिष्टुप्
६१ (६३)	२	अथर्वा	अग्निः		
६२ (६४)	१	कश्यपः मारीचः		अगती	
६३ (६५)	१	,	आवयेवाः		
६४ (६६)	२	यमः	मन्त्रोक्ताः		सुरिगानुष्टुप् शम्यक्
			मिर्क्षतिः		सारिणी बृहती
६५ (६७)	३	दुक्ताः	अपामार्गवीर्यम्	अनुष्टुप्	
६६ (६८)	१	ब्रह्मा	ब्रह्म	त्रिष्टुप्	
६७ (६८)	१		आत्मा		पुटः परोष्णिग्बृहती
६८ (७०-७१)	३	दांतातिः	सरस्वती	१ अनुष्टुप्	२ त्रिष्टुप् ३ गायत्री
६९ (७२)	१		सुक्ता		पथ्यापेक्षि
७० (७३)	५	अथर्वा	इयेना, मन्त्रोक्ताः	१ त्रिष्टुप्	२ अतिजगतीनामां
					जगती ३-५ अनु
					ष्टुप् (३ पुटः कङ्क
					मती )
७१ (७४)	१		अग्निः	अनुष्टुप्	
७२ (७५-७६)	३		इन्द्रः		२ ३ त्रिष्टुप्
७३ (७७)	११		अश्विनौ		२ पथ्याबृहती।
					१ ४ ६ जगती

## सप्तमोऽनुषाकः ।

७४ (७८)	४		मन्त्रोक्ताः आवयेवाः	अनुष्टुप्	
७५ (७९)	२	अपरिचक्षया	अज्याः	१ त्रिष्टुप्	२ ध्रुवस्ताना पथ्य
					पथा सुरिक् पथ्या
					पेक्षि ।
७६ (८०-८१)	६	अथर्वा	अपथिः प्रैयस्य		१ विराडनुष्टुप्, ३
			उपायानिन्द्रः		४ अनुष्टुप्, २ परा
					उष्णिक्, ५ सुरिग
					नुष्टुप्, ६ त्रिष्टुप्
७७ (८२)	३	अश्विगताः	मरुताः		१ त्रिपथा गायत्रीः
					२ त्रिष्टुप्, ३ जगतीः
७८ (८३)	२	अथर्वा	अग्निः		१ पराष्णिक् २ त्रिष्टुप्
७९ (८४)	४		अमायास्था	१ जगतीः	२ ४ त्रिष्टुप्
८० (८५)	४		पोषमासी, प्रजापतिः	त्रिष्टुप्	४ अनुष्टुप्

८१ (८३)	३	"	सावित्री	१ १ त्रिष्टुप्	२ सप्तार्धिका ३ अनुष्टुप् ४ ५ आ- स्तार्धिका ।
---------	---	---	----------	----------------	--

अष्टमाऽनुवाकः ।

८२ (८७)	३	शौमका (संपत्कामः) अग्निः		त्रिष्टुप्	१ ककुम्भती बृहती, ३ जगती
८३ (८८)	४	शुनयोपः	बवलाः	१ अनुष्टुप्	२ पम्पार्धिका ३ त्रि- ष्टुप् ४ बृहतीगर्भा त्रिष्टुप्
८४ (८९)	३	मृगुः	१ जातवेदा अग्निः २ ३ इन्द्रः	त्रिष्टुप्	जगती
८५ (९०)	१	अयर्षा (स्वस्त्यय- नकामः)	मार्तव्यः	"	
८६ (९१)	१	"	इन्द्रः		
८७ (९२)	१	"	इन्द्रः		जगती
८८ (९३)	१	गङ्गमान्	सप्तकाः		अथ सप्तमा बृहती
८९ (९४)	४	सिधुद्वीपः	अग्निः	अनुष्टुप्	४ त्रिपदानिष्टुपरो पिच्छ
९० (९५)	३	अंगिराः	मन्त्रोक्ताः		१ गायत्री २ विराट् पुरस्ता बृहती, ३ अथ सप्तमा पदपदा मुरिगजगती

नवमाऽनुवाकः ।

९१ (९६)	१	अयर्षा	अष्टमाः	त्रिष्टुप्	
९२ (९७)	१	"	"	"	
९३ (९८)	१	मृग्यंगिराः	इन्द्रः	गायत्री	
९४ (९९)	१	अयर्षा	सोमः	अनुष्टुप्	
९५ (१००)	३	कपिश्चलाः	गुह्री	"	२ ३ मुरिक्
९६ (१०१)	१	"	वयः	"	
९७ (१०२)	८	अयर्षा	इन्द्राग्नी	१-४ त्रिष्टुप्	५ त्रिपदार्थी मुरिगा यत्री ६ त्रिपदार्था पत्या बृहती, ७ त्रि- पदा सप्तमी मुरि- गजगती, ८ उपरि- पदा बृहती

९८ (१३)	१	"	मंजोलाः		विराद् भिष्टुप्
९९ (१०४)	१	"	"		भुरिगुणिक् भिष्टुप्
१०० (१०५)	१	अमः	वृत्स्वप्नानानम्	अनुष्टुप्	
१०१ (१०६)	१	"	"	"	
१०२ (१०७)	१	प्रजापतिः			विराद् पुरस्ताद् बृहती

दशमाऽनुषाका ।

१०३ (१०८)	१	ब्रह्मा	आत्मा	भिष्टुप्	
१०४ (१०९)	१			"	
१०५ (११०)	१	अयर्वा	मन्त्रोला	अनुष्टुप्	
१०६ (१११)	१		अभिर्जातवेदाः		बृहतीगर्मा भिष्टुप्
			वरुणश्चे		
१०७ (११२)	१	भुगुः	सूया आपन्न	अनुष्टुप्	
१०८ (११३)	२		अग्निः	२भिष्टुप्	१ बृहतीगर्मा भिष्टुप्
१०९ (११४)	७	वाक्पायणि	अग्निः		१ विराद् पुरस्ताद् बृहती अनुष्टुप् ४, ७ अनुष्टुप् २, ३ ५, ६ भिष्टुप्
११० (११५)	३	भुगुः	इन्द्राग्नी		१ गायत्रीः २भिष्टुप् ३ अनुष्टुप्
१११ (११६)	१	ब्रह्मा	धूमः		पराबृहती भिष्टुप्
११२ (११७)	२	वरुणः	मन्त्रोलाः		१ मुरिक् २ अनुष्टुप्
११३ (११८)	२	मार्गवाः	तृष्टिका		१ विराडनुष्टुप् २ शंकुमती वतुप्यवा भुरिगुणुष्टुप्
११४ (११९)	२		अग्नीषामौ	अनुष्टुप्	
११५ (१२०)	४	अयर्वागिराः	सविता, मातवेदाः	अनुष्टुप् २ ३ भिष्टुप्	
११६ (१२१)	२		अम्रमा		१ पुरोषिण् २ यका बसाना द्विपवर्षी अनुष्टुप्
११७ (१२२)	१		इन्द्रः		पथ्याबृहती
११८ (१२३)	१	"	अम्रमाः बहुदैवत्यम्	भिष्टुप्	

इस प्रकार इस सप्तम काण्डक सूक्तोंक क्रयि देवता और छन्द हैं । अब इसका क्रयिक्रमा  
नुसार सूक्तविभाग देखिय—

## आपिक्रमानुसार सूक्ताविभाग ।

१ अपर्वा आपिक १-७; १३-१४, १८; ३४-३८; ४६-४९; ५२; ५६, ६१;  
७०-७४, ७६; ७८-८१; ८५-८७, ९१-९२; ९४, ९७; ९९; १०५-१०६  
ये त्रेचालीस सूक्त हैं ।

२ ब्रह्मा आपिके १९-२२, २४, ३२-३३; ५३-५४, ६०; ६६-६७; १०३  
१०४; १११ ये पंद्रह सूक्त हैं ।

३ भृगु आपिके १५ १७; ५४ ५५, ८४; १०७-१०८; ११० ये नौ सूक्त हैं ।

४ प्रस्कण्व आपिके ३९-४५ ये सात सूक्त हैं ।

५ मेघातिथि आपिके २५-२९ ये पाँच सूक्त हैं ।

६ अपर्वागिरा ,, ११५-११८ ये चार ,, ,,

७ शौनक ,, १० १२; ८२ ,, ,, ,,

८ यम ,, २३; ६४, १००-१०१ ,, ,,

९ अगिरा ,, ५०-५१, ७७; ९० ,, ,,

१० उपरिमन्त्र ,, ८-९, ७५ ये तीन सूक्त हैं ।

११ भृग्वगिरा ,, ३०-३१; ९३ ,, ,,

१२ भार्गव ,, ११३-११४ ये दो सूक्त हैं ।

१३ शाताति ,, ६८-६९ ,, ,,

१४ पादरायणि ,, ५०, १०९ ,, ,,

१५ कश्यप ,, ६२ ६३ ,, ,,

१६ कर्पिजल ,, ०५-०६ ,, ,,

१७ यरुण आपि का ११२ चाँ एक सूक्त है ।

१८ धामवेष्ट ,, ५७ ,, ,,

१९ कौरुपथि ,, ५८ ,, ,,

२० शुक्ल ,, ६५ ,, ,,

२१ शुनःशप ,, ८३ ,, ,,

२२ गरुत्मान् ,, ८८ ,, ,,

२३ सिंधुद्वीप ,, ८० ,, ,,

२४ प्रजापति ,, १०२ ,, ,,

इस प्रकार २४ ऋषियोंके नाम इस काण्डमें हैं । इसमें भी पूर्ववत् अथर्वार्थके सूक्त सबसे अधिक अर्थात् ४३ हैं और इनमें अथर्वार्थिजिराके ४, अंगिराके ४, मिथानेसे ५१ होते हैं । ये न भी धिने गये तो भी ४३ सूक्त अकेले अथर्वार्थके नामपर हैं । यह बात देखनेसे एसा प्रतीत होता है कि इस संहितामें अथर्वार्थके सूक्त अधिक होनेसे इसका नाम 'अथर्ववेद' हुआ होगा; दूसरे दृष्टिकोण पर इसमें ऋषियोंके मन्त्र आते हैं, समस्त । इसी कारणसे इसका नाम 'मन्त्रवेद' पड़ा होगा । तथापि यह विचार सब काण्ड देखनेके पश्चात् करेंगे, क्योंकि कि उस समय सब काण्डोंका सूक्तविभाग हमारे सामने रहेगा । अब दशताक्रमानुसार सूक्तविभाग देखिये ।

### देवताक्रमानुसार सूक्त विभाग ।

१ मन्त्रोक्तदेवताके १२; १९; २७; २९; ३३; ३९; ४६-४८; ५८, ६४, ७०; ७४; ९०; ९८-९९; १०५, ११६ ये अठारह सूक्त हैं । ( विष्णुजी-वस्तुतः मन्त्रोक्त नामकी कोई देवता नहीं है, इस प्रकारके सूक्तोंमें अनेक देवताएँ रहती हैं, इसलिये अनेक देवताओंके नाम कहनेकी अपेक्षा यह एक संकेत मात्र किया है । )

२ इन्द्र देवताके १९; ३१, ४४; ५०; ५४-५६, ७२; ७६, ८४; ८६; ९३, ११७ ये बारह सूक्त हैं ।

३ अग्नि देवताके ३१-६२, ७१; ७८; ८२; ८४; ८९; १०६; १०८, १०९ ये दस सूक्त हैं ।

४ आत्मादेवताके १-६; ५; २१, ३७, १०३-१०४ ये आठ सूक्त हैं ।

५ सरस्वतीदेवताके १०-१९; ४०, ५७, ६८ ये छः सूक्त हैं ।

६ सवितादेवताके १४-१७; २४; ११५ ये छः सूक्त हैं ।

७ जातवेदा देवताके ३४; ३५; ६३, ७४, ८४; १०५ ये छः सूक्त हैं ।

८ दुःस्वप्ननाशन, २३; १००-१०२ ये चार सूक्त हैं ।

९ चन्द्रमा " ९१-९२, ११३; ११८ ये चार सूक्त हैं ।

१० वृहस्पति " ८, ५१; ५३ ये तीस सूक्त हैं ।

११ विष्णु " २५-२६; ४४ " "

१२ अश्विनी " ५२; ५३; ७३ " "

१३ अदिति " ६-७ ये दो सूक्त हैं ।

१४ सोम	॥ ११, ९४	ये दो सूक्त हैं ।
१५ बहुदेवस्य	॥ १७, ११८	॥ (यह भी देवताओंका संकेत है जैसा मन्त्रोक्तसाम छिन्ना है ।)
१६ सिंगोक्ता	॥ २२; ३७	॥ ( " " )
१७ चावापृथिवी	॥ ३०; १०२	॥
१८ वनस्पति	॥ ३८; ५६	॥
१९ आयुः	॥ ३८; ५३	॥
२० इयेनः	॥ ४१, ७०	॥
२१ वरुण	॥ ८१, १०६	॥
२२ इन्द्राग्नी	॥ ९७, ११०	॥

शेष देवता एक सूक्त वाले हैं । यमः ४, पूषा ९, सभा १९, पृथिवी १८, पर्जन्याः १८, अनुमतिः २०, वेद, २८, प्रतिपदोक्ता देवताः ३० ( यह भी अनेक देवताओंका संकेत है ), अक्षि ३६, सोमाकुरौ ४२, वाक् ४३, मेघज ४५, ईर्ष्यापनयन ४५, देवपत्न्यौ ४९, सामनस्य ५९, ऋक्साम ५४, वृद्धिः ५६, ब्रह्मणस्पतिः ५६, अरिष्टनाशन ५९, गृहाः ६०, वास्तोष्पतिः ६०; निम्नतिः ६४; अपामार्गाः ६५, ब्रह्म ६९, सुम्ब ६९, अज्याः ७५, अपचि ७६; ज्यायानिन्द्रः ७९; मरुतः ७७, अमावास्या ७९, पौर्णमासी ८०; प्रजापतिः ८०; सावित्री ८१; सूर्याचन्द्रमसौ ८१, तारुण्यः ८५, रुद्रः ८७; तक्षकः ८८, युष्मः ९५, वयः ९६; सूर्या १०७, आपः १०७, वृषभः १११; वृष्टिका १११; अग्नीषोमौ ११३,

इस प्रकार इस काण्डमें ६६ देवताएं आ गई हैं । इनमें मन्त्रोक्त, बहुदेवस्य आदि संकेतोंमें आनेवाले कई देवताएं और अधिक समिलित होनी हैं । इनकी गिनती उक्त संख्यामें नहीं की गई है । अब सूक्तोंके गणोंकी व्यवस्था देखिये—

### सप्तम काण्डके सूक्तोंके गण ।

- १ स्वस्त्यपनयनगणमें ४; ५१; ८५, ९१; ९२, ११७ ये छः सूक्त हैं ।
- २ वृहच्छान्तिगणमें ५२; ६६, ६८; ६०; ८२; ८३ ये छः सूक्त हैं ।
- ३ पत्नीघन्तगणमें ४७—४९ ये तीन सूक्त हैं ।
- ४ दुःस्वप्नमाशमगणमें १००; १०१; १०८ ये तीन सूक्त हैं ।



५ अभयगणमें ९, ९१ ये वा सूक्त हैं ।

६ पुष्टिकगणमें १४, ६० " "

७ वास्तुगणमें ४१, ६० " "

८ इन्द्रमहोत्सवके ८६, ९१ " "

९ आपुष्पगणमें ३२ वां एक सूक्त है

१० सामनस्यगणमें ८२ " "

११ कृत्यागणमें ६५ " "

१२ रौद्रगणमें ८७ " "

१३ अहोर्लिङ्गगणमें ११२ वां एक सूक्त है

१४ तक्मनाशनगणमें ११६ वां " "

इस प्रकार इस सप्तम काण्डके गणोंका विचार है । अथ सूक्तमी इसी प्रकार अन्यान्य गणोंमें विभक्त किये जा सकते हैं, परंतु यह विशेष विचारका प्रश्न है । आखिरी यह कार्य नहीं हो सकता । सूक्तोंका अर्थ निश्चित हो जानेपर यह मनविमाम परिपूर्ण किया जा सकता है ।

इतना विचार होनेके पश्चात् अब हम इस सप्तम काण्डके प्रथमसूक्तका मनन करते हैं—





# अथर्ववेदका स्वाध्याय ।

( अथर्ववेदका सुबोधभाष्य । )

सप्तम काण्ड ।

## आत्मोन्नतिका साधन ।

[ \* ]

( श्रुतिः—अथर्वा ' ब्रह्मवर्चसकामः ' । दत्ता—आत्मा । )

धीरी वा ये अनयन् वाचो अयं मनसा वा यैर्वदन्तानि ।  
तुतीयेन ब्रह्मणा वावृधानास्तुरीयेणामन्यतु नाम भेनोः ॥ १ ॥

अर्थ—( ये वा मनसा धीरी ) जो अपने मनसे ध्यानको ( वाचः अग्र अनयन् ) वाणीके मूलस्थान तक पहुँचाते हैं, तथा ( ये वा आत्मानि अवदन् ) जो सत्य बोलते हैं, वे ( तृतीयेन ब्रह्मणा वावृधानाः ) तृतीय ज्ञानसे पढ़ते हुए, ( तुरीयेण ) चतुर्थभागसे ( भेनोः नाम अमन्वत ) कामधेनुके नामका मनन करते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—( १ ) मनसे ध्यान लगाकर वाणीकी उत्पत्ति जहाँसे होती है वह वाणीका मूल देखना, ( २ ) सदा सत्य वचन बोलना, ( ३ ) ज्ञानसे संपन्न होना और ( ४ ) कामधेनु स्वरूप परमेश्वरके नामका मनन करना, ये चार आत्मोन्नतिके साधन हैं ॥ १ ॥

स वेद पुत्रः पितर स मातर स सूनुर्मुवत् स मुवत् पुनर्मघः ।  
स धामौर्गोदन्तरिक्षं स्वः स इद विश्वमभवत् स आभवत् ॥ २ ॥

अर्थ—( सः सूनुः सुवत् ) यही उत्पन्न हुआ है, ( सः पुत्रः पितर सः ) मातर वेत् ) यही अपने मातापिताको जानता है, ( सः पुनर्मघः सुवत् ) वह बारबार दान देनेवाला होता है, ( सः धां अन्तरिक्ष स्वः और्गोत् ) वह अलोक, अन्तरिक्षको और आत्ममकाशको अपने आधीन करता है, ( सः इद विश्व अभवत् ) वह यह सब विश्व बनता है, और ( सः आभवत् ) वह सर्वत्र होता है ॥ २ ॥

भावार्थ—जो यह चतुर्विध साधन करता है, उसीका जन्म सफल होता है वह अपने मातापिता स्वरूप परमात्माको जानता है, वह आत्मसर्व स्वका दान करता है, जिससे वह अमृतवन को अपनी शक्तिसे घेरता है, मानो वह यह सब विश्वरूप बनता है और वह सर्वत्र होता है ॥ २ ॥

### साधनमार्ग ।

आत्मामृतिका साधनमार्ग इस सूक्तमें कहा है । यह मार्ग चतुर्विध है, अथवा एसा समझो कि, इस मार्गको चतुर्विध कहें चार सूत्र इस सूक्तमें हैं । आत्मामृतिके चार सूत्र ये हैं—

( १ ) अतानि अवयवन्—सत्य बोलना । अर्थात् छलकपटका माध्यम न करना और अन्य शत्रुओंको भी असत्य मार्गमें प्रवृत्त होने न देना । सदा सत्यनिष्ठ, सत्यव्रती और सत्यमायी होना । ( मं० १ )

( २ ) ब्रह्मणा वाच्यमानः—ब्रह्म नाम बंधननिवारिके ज्ञान का है । ( मोक्षे धीर्मान ) ज्ञानका अर्थही बंधनसे छूटनेके उपायका ज्ञान है । इस ज्ञानसे जो बढता है अर्थात् इस ज्ञानसे जो परिपूर्ण होता है । जो आत्मज्ञानके साधनका उपाय करना चाहता है उसको यह ज्ञान अवश्य चाहिये । ( मं० २ )

( ३ ) येमोः नाम अमम्वत—कामधेनुके नाम का मनन करते हैं । मम्वतके मनकामनाकी पूर्णता करनेवाली कामधेनु परमेश्वर सन्निहित ही है उसके गुणबोधक नाम अनंत है । उन नामोंका मनन करनेसे और उन गुणोंका अपने अदर स्मरण करनेसे मनुष्यकी उन्नति होती है । ( मं० ३ )

( ४ ) मनसा चीत्ती वाचः अग्र अनयन्—मनकी एकाग्रतासे ध्यानशरीराणीके मूलस्थानको पहुँचना । यह आत्माके स्थानको प्राप्त होनेका साधन है । वाणी कैसी उत्पन्न होती है, यह देखिये—

आत्मा धुत्तथा समेत्यार्यान्ममो युक्ते विषक्षया ।

मनः कापाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम् ॥ ६ ॥

मारुतस्तूरसि चरन्मन्द्र जनयति खरम् ॥ ७ ॥

सोदीर्णो मूर्धन्यभिहतो वक्त्रमापद्य मारुतः ।

वर्णाक्षुन्नयते तेषां विभागः पञ्चषा स्मृतः ॥ ८ ॥ ( पाणिनीयशिक्षा )

( १ ) आत्मा धुत्तिसे युक्त होकर विक्षेप प्रयोजनका अनुसंधान करता है, ( २ ) पश्चात् उस प्रयोजनको शकट करनेके लिये मनको नियुक्त करता है, ( ३ ) मन शरीरके अग्नि को प्रेरित करता है, ( ४ ) यह अग्नि वायुको गति देता है, ( ५ ) यह वायु छातीसे ऊपर आकर मन्द्र स्वर करता है, ( ६ ) वह मूर्धामें आकर मूलके विविध स्थानोंमें आघात करता है, ( ७ ) विविध स्थानोंमें आघात होनेके कारण विविध वर्ण उत्पन्न होते हैं, यही वाणी है ।

वाणीकी इस प्रकार उत्पत्ति होती है । जब मनुष्य ध्यान लगाकर वाणीकी उत्पत्ति देखता है और ( वाचः अग्र ) वाणीके मूल स्थानको प्राप्त करता है, तब वह उस स्थानमें आत्माको देखता है । इस प्रकार वाणीके मूलको ईदनेके बलसे आत्माको जाना जाता है । वाणीके मूलमागको देखनेकी क्रिया अन्तर्मुख होकर अर्थात् अन्दरकी ओर देखनसे बनती है । जैसा-पहिले कोई शब्द छे । वह शब्द कई अक्षरोंका-अर्थात् वर्णोंका बना होता है, ये वर्ण एक ही वायुके मूलके विभिन्न स्थानोंमें आघात होनसे उत्पन्न होते हैं, वर्णोत्पत्तिक पूर्व जो वायु छातीमें सञ्चरता है, उसमें ये विविध वर्ण नहीं होते हैं । उससे भी पूर्व जब वायुको अग्नि प्रेरणा देता है, उसमें तो शब्दका नाम तक नहीं होता है । इसके पूर्व मनकी प्रेरणा है और इससे भी पूर्व आत्माकी बोलनेकी प्रवृत्ति होती है । इस रीतिसे अक्षर अक्षर की ओर देखनेका प्रयत्न मानसिक ध्यानपूर्वक करनेसे वाणीके मूलस्थान का पता लगता है, और वही आत्माका दर्शन होता है । यही विषय वेदमें इस प्रकार वर्णित हुआ है—

अक्षरारि वाक्पारिमिता पदानि तानि विदुर्माध्वना ये मनीषिणः ।

गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीय वाचो मनुष्या वदन्ति ॥ ४५ ॥

इन्द्र मिश्र यरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।

एक सद्धिमा बहुधा यद्वन्धर्मि यम मातरिश्वा नमाहुः ॥ ४६ ॥

अ० १ । १६४; अथर्व० ९ । ( १० ) १५ । २७-२८

“ वाणीक चार पाँच हैं, मननशील प्रब्रह्मानी उनको जानते हैं । इनमें से तीन पाँच हृदयमें गुप्त हैं, और प्रकट होनेवाला जो वाणीका चतुर्थ पाद है, वही मनुष्योंकी भाषा है जिससे मनुष्य बोलते हैं । यह वाणी अर्थात्-जिस मूल कारणसे-प्रकट होती है, वह एकही सत्य वस्तु है, परंतु ज्ञानी लोग उस एक वस्तुको अनेक नाम देते हैं, उसीको इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, यम, मातरिश्वा आदि कहते हैं । ”

यही आत्मा है, जिससे वह वाणी प्रकट होती है । इसी लिये वाणीके मूलकी खोज करते करते आत्माकी प्राप्ति होती है, ऐसा इस सूक्तमें कहा है ।

सारांशसे आत्माकी खोज करनेका माग इस प्रकार इस सूक्तमें कहा है । इसको भी यदि सक्षिप्त करना हो, तो ‘ ( १ ) सत्यनिष्ठा, ( २ ) सत्य ज्ञान, ( ३ ) मनुगुण मनन, और ( ४ ) वाक्सूलान्वेषण ’ इन चार शब्दोंसे सूचित होनेवाला यह आत्मोन्नतिकी मार्ग है । मनुष्य इस मार्गसे जाकर अपने आत्माका पता लगा सकता है और सत्यके आश्रयसे और ज्ञानके प्रकाशसे यथेष्ट उन्नति प्राप्त कर सकता है । यही ज्ञान का ‘ वचनसे सूक्त होनेका निमित्त ज्ञान ’ यह अर्थ विवक्षित है । अथ पाश्चात्त्य भौतिक ज्ञानके लिये संस्कृतमें विज्ञान शब्द है । जो इस प्रकारके अष्ट ज्ञानसे युक्त होता है, वह मनुष्य—

( ५ ) सः सन्तुः सुवत्= वही सत्ता उत्पन्न हुआ कहा जाता है । अर्थात् उसीन जन्म लिया और अपने जन्मका सार्थक किया, ऐसा कहा जा सकता है । अन्य लोग जन्म तो लेते ही हैं, परंतु उनका जन्म लेना व्यर्थ होता है, क्योंकि जन्मका प्रयोजन व सफल नहीं कर सकत अतः उनके जन्म लेनेका परिश्रम व्यर्थ होता है । उनका जन्म सफल होनेका हेतु यह है—

( ६ ) सः पुत्रः पितर मातर न्य वेत्= वह पुत्र अपने माता पिताको जानता है । अपने मातापिताको यथावत् जाननेसे पुत्रका जन्म सफल होता है । मातापिताको जानना तब होगा, जब वह अपने मातापिताके गुणोंका मनन करेगा । यह गुणोंका मनन करनेका उपदश ( नाम जन्मन्वत् । अ० १ ) प्रथम मंत्रके अन्तिम पदमें किया है । पिताका या माताका नाम लेना अथवा उनके गुणोंका मनन करना इसीलिये होता है, कि पुत्र अपने आपको सुयोग्य बनाता हुआ पिताके समान बने । माता पिताको जानने का साध्य यही है । मेरे माता पिता ऐसे ब्रह्माचारी थे, मैं भी वैसाही ब्रह्माचारी

बनूँगा । मातापिताके ज्ञाननेसे पुत्र के अदर इस प्रकार अपनी उन्नतिकी प्रेरणा होती है । यहाँ 'पुत्र' शब्द विशेष महत्त्वका अर्थ रखता है । " पुत्र " अर्थात् जो अपने आपको ( पुनाते ) पवित्र करता है और ( त्रायते ) अपनी रक्षा करता है, वह सच्चा पुत्र है । अपने आपको निर्दोष, पवित्र और शुद्ध बनाना, तथा अपने आपको दोषों और पापोंसे रक्षा करनी, यह कार्य जो करता है वह सच्चा पुत्र है, जो ऐसा नहीं करते, वे केवल अन्तुमात्र हैं । इस प्रकारका सुपूत जो होता है, वह जिस समय अपने परम पिताके गुणकर्मोंका मनन करता है, उस समय उसके मनमें यह बात आती है कि, मैं भी अपने परम पिताके समान और अपनी परम माताके समान बनूँगा । यत्न करके वैसा होऊँगा । इस विचारसे वह प्रेरित होता है, इसलिये—

( ७ ) सः पुनर्मेघः सुचलः= वह बारबार दान देनेवाला होता है । वह अपनी सभ्यता, मन, धन आदि शक्तियोंको जनताकी मलाईके लिये बारबार समर्पित करता है । दान करनेसे वह पीछे नहीं हटता । इसीका नाम सः है । अपनी शक्तियोंका यत्न करनेसे ही मनुष्य उन्नत होता जाता है । वह देखता है कि, वह परमपिता अपनी सभ्य शक्तियोंको संपूर्ण प्राणिमात्रकी मलाईके लिये समर्पित कर रहा है, इस बातको देखकर वह उसीका अनुकरण करता है । और इस प्रकार परमपिताके अनुकरणसे वह प्रतिसमय अधिकाधिक शक्ति प्राप्त करता है और इसको जितनी अधिक शक्ति मिल जाती है, उस प्रमाणसे वह उतना ही अधिक कार्यक्षेत्र व्यापता है । उदाहरणके लिये देखिये मनाई मनुष्य अपने पेटके कार्यक्षेत्रमें कार्य करता है, गृहस्थी मनुष्य अपने कुटुम्बके पोषणके कार्यक्षेत्रमें लगा रहता है, नगर सुधारक अपने नगरके कार्यक्षेत्रमें तमस होता है, राष्ट्रका नेता राष्ट्रीय कार्यक्षेत्रमें अपनी इच्छा करता है, इसके पश्चात् पशुधन कुटुम्बकी सन्तानोंकी संपूर्ण जनता को अपने परिवारमें सम्मिलित करके उनकी मलाईके लिये आरम्भसमर्पण करता है, इस प्रकार जिसको जैसी शक्ति प्राप्त होती जाती है, उस प्रकार वह अधिकाधिक विस्तृत कार्यक्षेत्रमें कार्य करता है, इस प्रकार शक्तिकी श्रद्धा होत होते अन्तर्में—

( ८ ) सः चां अन्तरिक्ष म्यः औणोत्= वह खुलोक, अन्तरिक्ष और सभ्य प्रकाशमय लोकोंको व्यापता है । मनुष्यकी शक्ति इसनी बढ़ जाती है । वह जिस समय विशेष उन्नत होता है उस समय संपूर्ण अवकाशमें उसकी व्याप्ति होती है । साधारण आत्माका 'महार्मा' बननेसे यह बात सिद्ध होती है । इससे—

( ९ ) सः इत् विश्व आभयत्= यह वह सभ्य विश्व रूप बनता है, अब उसकी

अक्षि परम सीमा तक उन्नत होती है, तब उसको अनुभव होता है कि मैं विश्वरूप बना हूँ। कई मनुष्य 'शरीररूप' होते हैं, उनके शरीरको कष्ट होनेसे वे दुःखी होते हैं, कई लोग 'कुटुम्बरूप' होते हैं उनके कुटुम्बके किसी मनुष्यको दुःख हुआ तो वे दुःखी होते हैं, कई लोग 'राष्ट्ररूप' बनते हैं उनके राष्ट्रका कोई आदमी दुःखा हुआ तो वे दुःखी बनते हैं, इसी प्रकार जो 'विश्वरूप' बनते हैं वे सपूर्ण विश्वमें किसीका भी दुःखी देखनेसे वे दुःखी होते हैं। इसी प्रकार अधिकार मेदसे उनको सुख भी होता है। इस प्रकार मनुष्यकी अक्षिक विस्तार होता जाता है और मनुष्यका विश्वरूप बन जाना उसकी उन्नतिकी परम सीमा है इस समय—

( १० ) सा आभवात्—यह सर्वत्र फैलता है अर्थात् विश्वरूप बना हुआ आत्मा विश्वभरमें फैलता है। प्रारम्भमें मनुष्य का आत्मा अपने शरीर जितना ही फैला होता है, परन्तु इसकी अक्षि बढ़ते बढ़ते और इसके कार्यक्षेत्र का विस्तार होते होते वह अन्तमें विश्वरूप बन जाता है। यह आत्माका फैलाव अक्षि विस्तारसे होता है। इसका उदाहरण ऐसा दिया जा सकता है, एक दीप है जिसका प्रकाश छोटेसे कमरेमें ही फैलता है, यदि किसी वस्तुप्रयोगसे उसकी प्रकाशक्षितिका विस्तार किया जाय, तो वही दीप दस बीस मील तक प्रकाश देनेमें समर्थ हो सकेगा। अधिकी छोटीसी चिनगारी दावानल का रूप लेती है। इस प्रकार इस जीवात्माकी अक्षिक परम विकास होनेकी कल्पना पाठक कर सकते हैं।

कई मनुष्य होते हैं उनकी आज्ञा पारिवारिक लाभ भी सुनते नहीं, इतनी उनकी अक्षि अल्पत्व होती है, परन्तु कई महात्मे ऐसे होते हैं कि, जिनकी आज्ञा होते ही लाखों और करोड़ों मनुष्य अपना बलिदान तक देनेको तैयार होते हैं, यह आत्मक्षितिके विस्तार का उदाहरण है। इसी प्रकार जाये परम सीमा तक आत्माकी अक्षिक विकास होना समझ है। इसी अक्षिविकासके चार साधन प्रथम मन्त्रमें कहे हैं। उन साधनोंका अनुष्ठान जो करेंगे, वे अपनी अक्षि विकसित होनेका अनुभव अवश्य उनमें समर्थ होंगे।

आत्मोन्नतिकी विचार होनेके कारण यह शक्त प्रत्यक्ष फलदायी है। आशा है कि, पाठक इसका अधिक मनन करके अधिकसे अधिक लाभ प्राप्त करेंगे।

## जीवात्माका वर्णन ।

[ १ ]

( श्रुतिः— अथर्षा ' ब्रह्मवर्चसकामः ' । देवता— आत्मा )

अथर्षाण पितरं देवर्षन्धु मातुर्गर्भं पितुरसु युवानम् ।

य इम यज्ञ मनसा चिकित् प्र णो वोचस्तमिहेह ब्रवः ॥ १ ॥

अर्थ— ( यः मनसा ) जो मनसे ( इम यज्ञ अथर्षाण पितर ) इस पूजनीय, अपने पास रहनेवाले पिता और ( देवर्षन्धु ) देवोंके साथ सयध रजनेवाले ( मातुः गर्भं ) माताके गर्भमें आनेवाले ( पितुः असु ) पिताके प्राण स्वरूप ( युवान ) सदा तरुण आत्माको ( चिकित् ) जानता है, वह ( इह त नः प्रवोचः ) यहाँ उसके विषयमें हमें ज्ञान कहे और ( इह ब्रवः ) यहाँ उसको बतलावे ॥ १ ॥

भाषार्थ— जो ज्ञानी अपनी मननशक्तिद्वारा इस पूजनीय, अपने पास रहनेवाले, पिताके समान रक्षक, देवाक साथ सयध करनेवाले, माताके गर्भमें आनेवाले, पिताके प्राणको चारण करनेवाले, सदा तरुण अर्थात् कभी वृद्ध न होनेवाले और न कभी बालक रहनेवाले आत्माको जानता है, यह उसके विषयका ज्ञान यहाँ इम सयधको कहे और उसका विशेष स्पष्टीकरण भी करे ॥ १ ॥

### जीवात्माके गुण ।

इस सूक्तमें मुख्यतया जीवात्माके गुण वर्णन किये हैं । इनका मनन करनेसे जीवात्माका ज्ञान हो सकता है—

१ मातुः गर्भं= माताके गर्भको प्राप्त होनेवाला जीवात्मा है । अम छेनके लिये यह माताके गर्भमें जाता है । यजुर्वेदमें इसीके विषयमें ऐसा कहा है—



पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः ।

स एव जातः स जनिष्यमाणः ।

वा० यजु० ३९ । ४

“ यह पहिले उत्पन्न हुआ था, वही इस समय गर्भमें आया है, वह पहिले अन्मावा और मविष्ममें भी जन्म लेगा ।” इस प्रकार यह धारदार जन्म लेनेवाला जीवात्मा है ।

२ पितुः अस्तु= पितासे यह प्राणशक्तिको धारण करता है । पितासे प्राणशक्ति और मातासे रक्षित प्राप्त करके यह धरीर धारण करता है ।

३ युवान= यह सदा खवान है । यह न कभी बूढ़ा होता है और न कभी बालक । इसका धरीर उत्पन्न होता है और छः विकारोंको प्राप्त होता है । ( आचते ) उत्पन्न होता है, ( अस्ति ) होता है, ( वर्धते ) बढ़ता है, ( विपरिणमते ) परिणत होता है, ( अपक्षीयत ) क्षीण होता है और ( विनश्यति ) नाशको प्राप्त होता है । यह छः विकार धरीरको प्राप्त होते हैं । इन छः विकारोंको प्राप्त होनेवाले धरीरमें रहता हुआ वह जीवात्मा सदा वरुण रहता है । यह न तो धरीरके साथ बालक बनता है और न धरीर बूढ़ होनेसे वह भी बूढ़ा होता है । यह अजर और अबालक है अर्थात् इस को युवा वयसमें रहनेवाला कहते हैं ।

४ देवयधु—यह देवोंका मार्ग है । देवोंको अपने साथ बांध देनेवाला यह जीवात्मा है । पाठक यहाँ ही अपने दृष्टमें देख कि इस जीवात्माने अपने साथ धर्मका अक्ष नेत्ररूपसे आँखके स्थानमें रखा है, वायुका अक्ष प्राणरूप से नासिका स्थानमें रखा है, इसी प्रकार अन्यान्य इन्द्रियोंके द्वारोंको लाकर रखा है । इन सब देवताओंको यह अपने साथ लाता है और अपने साथ लेजाता है । जिस प्रकार सब मार्ग मार्ग इकट्ठे रहते हैं, उसी प्रकार यह जीवात्मा यहाँ इन देवताओंका बन्धामार्ग है और ये देवताय इसके छोटे मार्ग हैं । इस प्रकार यह देवोंका बाधु है ।

अधर्वाण—( अय+अर्वाण=अधर्वा ) अपने पास अपने अन्दर रहनेवाला यह है । इसको दृढ़नेके लिये बाहर अमण करनेकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि यही सपसे समीप है, इससे समीप और बाह्य पदार्थ नहीं है ।

५ पितर—यह पिताके समान है । यह रखक है । जबतक यह धरीरमें रहता है तबतक यह धरीरकी रक्षा करता है, मानो इसकी शक्तिके धरीर रक्षित होता है । जब

यह इस शरीरको छोड़ देना है तब इस शरीरकी कोई रक्षा नहीं कर सकता । इसके इस शरीरको छोड़ देनेके पश्चात् यह शरीर सञ्जन लगता है ।

७ यज्ञ—यह यहाँ यज्ञनीय अर्थात् पूजनीय है । इसीके लिये यहाँके सब व्यवहार किये जाते हैं । अन्न, पान, भोग, नियम सब इसीकी सतृष्टीके उद्देश्यसे दिये जाते हैं । यदि यह न हो तो कोई कुछ न करेगा । जबतक यह इस शरीरमें है, तबतक ही सब भोग तथा त्याग किये जाते हैं ।

यं सात शब्द जीवात्माका वर्णन करनेके लिये इस सूक्तमें प्रयुक्त हुए हैं । जीवात्माके गुणधर्म इनका विचार करनेसे ज्ञात हो सकते हैं । इनका विचार (मनसा विवेक) मननद्वारा ही होगा । जो पाठक अपने जीवात्माका ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, वे इन शब्दोंका मनन करें । जब उत्तम मनन होगा तब वह जानी इस ज्ञानका (प्रबोध) प्रवचन करे और (इह प्रवः) यहाँ व्याख्या करे । कोई मनुष्य मनन के पूर्व प्रवचन न करे । अर्थात् जब मनन पूर्वक उत्तम ज्ञान प्राप्त हो, तब ही मनुष्य दूसरोंको इसका ज्ञान देवे ।

उपदेश देनेका अधिकार तब होता है कि जब स्वयं पूर्ण ज्ञान हुआ होता है । स्वयं उत्तम ज्ञान होनेके पूर्व जो उपदेश देनेका प्रयत्न होता है वह भ्रान्तक होता है । जानी ही उपदेश करनेका सच्चा अधिकारी है ।

यदि यह जीवात्माका ज्ञान ठीक प्रकार हुआ, तब मनुष्य परमात्माको जाननेमें समर्थ होगा । इस विषयमें अथर्ववेदकी श्रुती यहाँ देखने योग्य है—

ये पुरुषे ब्रह्म विबुधे विबुः परमेष्ठिनम् ॥

अथर्व० १० । ७ । १७

“जो सबसे प्रथम पुरुषमें स्थित ब्रह्मको जानते हैं, वेही परमेश्वरी प्रजापतिको भी जानते हैं ।” यही ज्ञान प्राप्त करनेकी रीति है । अपने शरीरान्तर्गत आत्माको जाननेसे परमात्माका ज्ञान प्राप्त हो जाता है । इस रीतिसे इस मंत्रक मननसे प्रथम जीवात्माका ज्ञान होगा और उसीको परम सीमातक विस्तृत रूपमें देखनेसे यही ज्ञान परमात्माका बोध करनेमें समर्थ होगा ।

# आत्मा का परमात्मामें प्रवेश ।

[ १ ]

( श्रुतिः- भवर्षा । देवता- आत्मा )

अथा विद्या जनपन्कर्वराणि स हि पूर्णिकुर्वराणि गातुः ।  
स प्रत्युद्देष्टुम् मन्त्रो अग्रे स्वया तन्वा तन्वा मेरयत् ॥ १ ॥

अर्थ- ( अथा वि-स्या ) इस प्रकारकी विशेष स्थिति से ( कर्वराणि जनपन् ) विविध कर्मोंको करता हुआ, ( सः ) वह ( हि वराय उक्त गातुः ) श्रेष्ठ देवकी प्राप्ति करमेके लिये विस्तृत मार्गरूप और ( घुनिः ) तेजस्वी यमता हुआ, ( सः ) वह ( मध्यः घरुण अग्रे प्रति उदैत् ) मीठास का धारण करनेवाले अग्रभागके प्रति पटुचनेके लिये ऊपर उठता है और ( स्वया तन्वा ) अपने सूक्ष्म शरीरसे उस देवके ( तन्वा मेरयत् ) सूक्ष्म तम शरीरके प्रति अपने आपको प्रेरित करता है ॥ १ ॥

भावार्थ- इस प्रकार वह श्रेष्ठ कर्मोंको करता है और उस कारण वह स्वयं परमात्माके पास जानेका श्रेष्ठ मार्ग यतानेवाला होता है और वृक्ष-रोंको प्रकाश देता है । वह स्वयं मधुर अमृतका धारण करनेवाले परमात्माके समीप प्राप्त होनेके हेतुसे अपने आपको उच्च करता है और समाधि स्थितिमें अपने सूक्ष्म शरीरसे परमात्माके विश्वव्यापक सूक्ष्मतम कारण शरीरके पास पटुचनके लिये स्वयं अपने आपको प्रेरित करता है । इस प्रकार वह स्वयं परमात्मामें प्रविष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

## जीवकी शिवम गति ।

मोक्षात्माकी परममगलमय शिवात्मामें गति किस प्रकार होती है इसका विचार इस पक्षमें किया है । इसका अनुष्ठान क्रमपूर्वक करते हैं ।—

१ अथा वि-स्या कर्-धराणि जनयन्=इस विधेय स्थितिमें रहकर यह समस्त जीव भोग्य कर्म करता है । विधेय स्थितिमें रहनेका अर्थ है सर्व साधारण मनुष्योंकी वैसी स्थिति होती है वैसी साधारण स्थितिमें न रहना । आहार, निद्रा, मय, मैथुन आदि विषयमें तथा रहन सहनेके विषयमें साधारण मनुष्य पशुके समान ही रहते हैं । इस सामान्य स्थितिका त्याग करके मनुष्य विधेय स्थितिमें रहे अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शुद्धता, सतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरभक्ति करता हुआ मनुष्य अपने आपको विधेय परिस्थितिमें रखे और उस विधेय परिस्थितिके अनुरूप भोग्य कार्य करे । इससे उसको दो सिद्धियां प्राप्त होती, वे सिद्धियां ये हैं-

२ सः दृग्निः-वह तेजस्वी बनता है, वह दूरोंका मार्गदर्शक होता है, वह जनताको चेतना देनेवाला होता है, वह अपने सबसे दूरोंको प्रकाशित करता है । तथा-

३ सः धराय उक्तः गन्तुः- वह भोग्य स्थान के पास जानेवाला विस्तृत मार्ग जैसा होता है । जिस प्रकार विस्तृत मार्गपर चलनेसे प्राप्त स्थानके प्रति मनुष्य बिना आयास जाता है, उसी प्रकार इस पुरुष का जीवन अन्य मनुष्योंके लिये विस्तृत मार्गवत् हो जाता है । अन्य मनुष्योंको दूरे दूरे मार्ग देखनका कारण नहीं होता है, इसका जीवन चरित्र देखा और उसके अनुसार चलनेका कार्य किया, तो उनका जीवन सफल हो जाता है और इस जगत्में जो घर अर्थात् भोग्य है, उस भोग्य परमात्माके पास वे सीधे पहुँच जाते हैं । इस रीतिसे वह सन्मार्गगामी पुरुष अन्य मनुष्योंके लिये मार्गदर्शक हो जाता है । वह मार्ग बताता नहीं परंतु लोग ही उसका पालचलन देखकर स्वयं उसका अनुकरण करते हुए सुचारु जाते हैं । अर्थात् वह मार्गदर्शक नहीं बनता प्रत्युत लोगोंके लिये विस्तृत मार्गरूप बनता है ।

४ सः मध्यः घट्टण अग्र प्रति उत्त पेश् । वह मधुरताके चारक अन्तिम स्थानके प्रति जानेके लिये ऊपर उठता है । जिस प्रकार सूर्य उदय होकर ऊपर ऊपर चढ़ता है और जैसा जैसा ऊपर चढ़ता है वैसा वैसा अधिकधिक तेजस्वी होता जाता है, इसी प्रकार यह समस्त पुरुष ( उदैत् ) ऊपर उठता है अर्थात् अधिकाधिक उच्च अवस्था प्राप्त करता है । इसके ऊपर उठनेका हेतु यह है कि, वह ( मध्यः अग्र ) मठासके परम केन्द्रको प्राप्त करना चाहता है मधुरताकी ओर खट है, जबकि सब मधुरता फलती है, उस स्थानको वह प्राप्त करनेका अभिलाषी होता है । और इस हेतुसे वह उत्पत्त भूमिका को अपने प्रयत्नसे प्राप्त करता है । और अन्तमें—

५ स्वया तन्वा तन्व ऐरपत= अपने सूक्ष्म ( स्वभाव ) से परमात्माके सूक्ष्मतम ( स्वभाव ) के प्रति अपने आपको प्रेरित करता है। इस मंत्रमार्गमें 'तनु' शब्द है। लौकिक सत्कृतमें यह शरीरका वाचक है यह वात सत्य है, तथापि यहाँ 'तनु' शब्दके 'सूक्ष्म, पारिक, स्वभाव, गुण, विशेषता' ये अर्थ निबध्दित हैं। ऊपर हमने तनु शब्दका सुप्रसिद्ध 'शरीर' यह अर्थ लेकर अर्थ लिखा है, तथापि हमारे मतसे इसका वास्तविक अर्थ 'जीवात्मा अपने स्वभावधर्मसे परमात्माके स्वभावधर्ममें प्रविष्ट होता है' यह है। पाठक इसका अधिक विचार करें। आत्मोन्नतिकी अवस्थामें यह अवस्था सर्वोत्कृष्ट है। यह अवस्था प्राप्त होनेके लिये ही पूर्वोक्त सब अनुष्ठान हैं।

पाठक इस सूक्तके मननसे ज्ञान सकते हैं कि, इस विधिसे किया हुआ अनुष्ठान धर्म नहीं जाता, परन्तु हरएक अवस्थामें विशेष फल देनेवाला बनता है और अन्तमें जीवात्माकी जिवात्मामें यति होती है। यही उन्नतिकी परम सीमा है।

## प्राणका साधन ।

[ ४ ]

( अथिः—अथर्वा । देवता—वायुः )

एकं या च दशमिन्ना सुहृते द्वाभ्यामिष्टे विंशत्या च ।

तिसृमिन्ना त्रिंशता च त्रिंशतिर्वा इह ता विंशतिः ॥ १ ॥

अर्थ—हे (सुहृते वायो) उत्तम प्रकार बुलाने योग्य प्राण देवता ! (एकया च दशमिः च) एक और दस से, (द्वाभ्यां विंशत्या च) दो और बीससे तथा (तिसृभिः च त्रिंशता च) तीन और तीस से तू (इष्टये वदस) यज्ञके लिये जाता है। अतः तू (त्रिंशतिः इह ताः त्रिंशतिः) विशेष योजनाओंसे उनको यहाँ मुक्त कर ॥ १ ॥

भावार्थ—हे प्रशसायोग्य प्राण ! तू ग्यारह, पाँच, और तीस वाकितियों द्वारा इस जीवनयज्ञमें कार्य करता है, अतः तू अपनी विंशति योजनाओंद्वारा सय प्रजाओंको युग्यासे मुक्त कर ॥ १ ॥

## प्राणसाधनसे मुक्ति ।

इस शरीरमें प्राणका आसन सर्वत्र चल रहा है यह सब जानते हैं । स्थूल शरीरमें पञ्च शानेत्रिय, पञ्च कर्मेन्द्रिय और इन दस इन्द्रियोंका संयोजक मस्तिष्क य ग्यारह शक्तियाँ इस प्राणके आधीन हैं । इनमेंसे प्रत्येक में जाकर यह प्राण कार्य करता है अर्थात् ये ग्यारह प्राणके कार्यस्थान हैं । इसके नतर सूक्ष्म शरीरमें येही वासना देखें ग्यारह शक्तियाँ कार्य कर रही हैं, ये भी सब प्राणके ही आधीन हैं । स्थूल शरीरकी ग्यारह और सूक्ष्म शरीरकी ग्यारह, दानों मिलकर बाईस शक्तियाँ प्राणके आधीन स्वभावस्थामें रहती हैं । तीसरे मज्जासन्तुष्टोंके ग्यारह केन्द्र जो मस्तिष्क से लेकर गुदा तक के पृष्ठवंशमें रहते हैं और जिनके आधीन शरीरके विविध भाग कार्य करते हैं, वे भी प्राणकी शक्तिसे ही अपना कार्य करनेमें समर्थ होते हैं । ये सब मिलकर तैत्थीस शक्ति केन्द्र हैं, जिनमें प्राणकी शक्ति कार्य कर रही है । मानो इन तैत्थीस केन्द्रों द्वारा प्राणको चलाया जाता है । अथवा ये तैत्थीस प्राणके रखे घाटे हैं, जिस रथमें बैठकर प्राण शरीरभर गमन करता है और यहाँका कार्य करता है ।

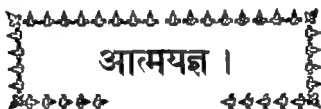
इस सूक्तमें ग्यारह, बाईस और तैत्थीस प्राणको चलाते हैं ऐसा कहा है । यह सत्त्वा इन शक्तिकेन्द्रोंकी स्रष्टा है । यह शरीर एक यज्ञशाला है, इसमें अतर्कान्वयितरिक्त यज्ञ चलाया जा रहा है । यह यज्ञ प्राणके द्वारा होता है और प्राण इन शक्तिकेन्द्रों द्वारा इस यज्ञभूमिमें आता और कार्य करता है ।

## प्राणकी योजना ।

प्राणकी ( विपुग्निः विमुञ्च ) विशेष योजनासे मुक्त कर अर्थात् प्राणकी विशेष योजना की जाय और उसके द्वारा मुक्ति प्राप्त की जाय । यहाँ विचार करना चाहिये कि प्राणकी ( विपुग्निः ) विशेष योजनामें कौनसी हैं और उनसे मुक्ति किस प्रकार होती है । यह देखनेके लिये पूर्वोक्त शक्तियाँ क्या करती हैं और इनकी स्वभाव प्रवृत्ति कैसी है यह देखना चाहिये ।

हमारे पास नष्ट है, यह यद्यपि देखनक लिय बनाया है तथापि यह दूसरोंकी ओर घुरी घुरीसे दसता है । कान श्रवण करनेके लिय बनाया है तथापि यह बहुत घुरे श्रवण सुनता है । मुख बोझनेके लिय बनाया है, परंतु वह ऐसे घुरे श्रवण बोझता है कि जिससे विविध शब्द उत्पन्न होते हैं । उपस्थ शरीर सुप्रसादनन के लिये बनाया है, परंतु वह व्यभिचार के लिये प्रवृत्त होता है । इस प्रकार इस अतर्कान्वयितरिक्त यज्ञमें

समिलित होनवाली सभ शक्तियाँ अयाग्य मार्गमें प्रवृत्त होती हैं । प्राणायाम करनेसे मनकी चपलता दूर जाती है और मन स्थिर होनेसे उक्त तैत्तरीय शक्तियाँ ठीक सीधे मार्गमें रहती हैं । प्राणकी विशेष योजनाएँ यही हैं । इन विशेष योजनाओंद्वारा निपुक्त हुआ प्राण इन तैत्तरीय शक्तियोंका प्रयत्न करता है, उनको सुराईयोंके विचारसे मुक्त करता है, और सरकार्यमें प्ररित करता है । इस प्रकार प्राणसाधनसे मुक्तिका सीधा मार्ग आक्रमण करना सुगम होता है । पाठक इस दृष्टिसे इस प्रकृतका विचार करें और प्राणसाधन द्वारा उन्नति सिद्ध करें ।



## आत्मयज्ञ ।

[ ५ ]

( श्राविः— अथर्वा । देवता—आत्मा । )

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि चर्माणि प्रथमान्यासन् ।

वे ह नार्क महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥ १ ॥

अर्थ— ( देवाः यज्ञेन यज्ञ अयजन्त ) देवगण यज्ञसे यज्ञ पुरुषकी पूजा करते हैं । ( तानि चर्माणि प्रथमानि आसन् ) वे चर्म उत्कृष्ट हैं । ( ते महिमानः नार्क सचन्ते ) वे महारथ प्राप्त करते हुए सुखपूर्ण लोकको प्राप्त होते हैं, ( यत्र पूर्वे साध्याः देवाः सन्ति ) जहाँ पूर्वक साधनसप्त देव रहते हैं ॥ १ ॥

भाषार्थ—अथ याजक अपने आत्माके योगसे परमात्माकी उपासना करते हैं, वे मामसोपासनाके यज्ञविधि सत्यसे भेद्य और मुक्त हैं । इस प्रकारकी उपासना करनेवाले भेद्य उपासकही उस सुखपूर्ण स्वर्गभूमिको प्राप्त करते हैं कि, जहाँ पूर्वकालके साधन करनेवाले प्राप्त हुए हैं ॥ १ ॥

यज्ञो यमूष स आ यमूष स प्र जज्ञे स उ वावृषे पुनः ।  
 स देवानामभिपतिर्भूष सो अस्मासु ब्रविणमा दधातु ॥ २ ॥  
 यद् देवा देवान् हविषार्पञ्ज्वामर्त्यान् मनसामर्त्येन ।  
 मदम सत्रं परमे व्योमिन् पश्येम तदुदितौ सूर्यस्य ॥ ३ ॥  
 यत् पुरुषेण हविषा यज्ञ देवा अतन्वत ।  
 अस्ति नु तस्मादोजीयो यद् विद्वन्वेनेजिरे ॥ ४ ॥

अर्थ— ( यज्ञः यमूष ) यज्ञ प्रकट हुआ, ( सः आयमूष ) वह सर्वत्र फैला, ( सः प्रजज्ञे ) वह विशेष रीतिसे ज्ञानका साधन हुआ और ( सः उ पुनः वावृषे ) वह फिर बहने लगा । ( सः देवानां अभिपतिः यमूष ) वह देवोंका अभिपति बन गया, ( सः अस्मासु ब्रविण आ दधातु ) वह हममें बन धारण करावे ॥ २ ॥

( देवाः यत् अमर्त्यान् देवान् ) देव जहाँ अमर देवोंका ( हविषा अमर्त्येन ममसा अयजन्त ) अपन हविरूप अमर मनसे यजन करते हैं ( तत्र परमे व्योमन् मयेम ) वहाँ उस परम आकाशमें हम सब आनन्द प्राप्त करते हैं । और वहाँ ही सूर्यस्य ( उदितौ तत् पश्येम ) सूर्यका उदय होनेपर उसका वह प्रकाश देखते हैं ॥ ३ ॥

( यत् देवाः ) जो देवोंने ( पुरुषेण हविषा यज्ञ अतन्वत ) पुरुषरूपी हविसे यज्ञ किया, ( तस्मात् ओजीयो नु अस्ति ) उससे अधिक यज्ञवान् क्या है ? ( यत् विद्वन्वेनेजिरे ) जो विशेष यजन द्वारा होता है ॥ ४ ॥

भावार्थ— यह मानसोपासनारूपी यज्ञ पहिले प्रकट हुआ, यह सर्वत्र फैला, उसको सधने जाना और वह फिर बहुत बह गया । वह सपूर्ण उपासकोंका मानो, स्वामी बन गया । यह यज्ञ हमें बन समर्पण करे ॥ २ ॥

याजकोंने जब अमर देवोंकी उपासना अपने अमर्त्य शक्तिसे युक्त मन द्वारा की, तब सबको आनन्द प्राप्त हुआ और जिस प्रकार सूर्योदय होनेसे प्रकाश प्राप्त होता है उस प्रकार यज्ञसे सबको आनन्द मिला ॥ ३ ॥

याजक जो यज्ञ अपने आत्मारूपी हविसे किया करते हैं, उससे भला और कौनसा यज्ञ भेद्य है ? जो कि विविध हविर्द्रव्योंक हवनसे प्राप्त हो सकता है ॥ ४ ॥



मुग्धा देवा त्व शुनार्यजन्तोश्च गोरक्षैः पुरुषार्यजत् ।

य इम यज्ञ मनसा चिकेत् प्र षो बोधस्तमिहेह त्रैवः ॥ ५ ॥

अर्थ—(मुग्धाः देवाः) मूढ़ याजक (उत्त शुना अयजन्त) कुत्तेसे यजन करते हैं (उत्त गोः अगौः पुरुषा अयजन्त) गौके अवयवोंसे बहुत प्रकार यजन करते हैं । (सः इम यज्ञ मनसा चिकेत्) जो इस यज्ञको मनसे करमा जानता है, वह (इह नः प्रयोषाः) यहाँ हमें उसका श्राव देवे और (इह त त्रैवः) यहाँ उसका उपवेश करे ॥ ५ ॥

माधार्थ— ये याजक मूढ़ हैं कि जो कुत्ते गौ आदि पशुओंके अगोंसे हवन करते हैं । जो याजक इस मानसिक यज्ञको मनसे करना जानता है वह ज्ञानीही यज्ञका उपवेश करे और यज्ञक महत्त्वका कथन करे ॥ ५ ॥

### मानस और आत्मिक यज्ञ ।

यज्ञ बहुत प्रकारके हैं, उनमें सबसे अष्ट मानस यज्ञ अथवा आत्मिक यज्ञ है । मनका समर्पण करनेसे मानस यज्ञ होता है । और आत्माका समर्पण करनेसे आत्म यज्ञ हुआ करता है । दोनोंका करीब करीब भाव एकही है । यह समर्पण परमेश्वरके लिये करना श्राव है । परमेश्वरके कार्य इस अगत्में जो होते हैं, उनमेंसे—

( १ ) सज्जनों की रक्षा

( २ ) दुष्ट जनोंको दूर करना और

( ३ ) धर्मकी व्यवस्था

य तीन कार्य परमात्माके लिये मनुष्य कर सकता है । परमात्माके अनन्त कार्य हैं, परंतु मनुष्य उन सब कार्योंको कर नहीं सकता । य तीन कार्य अपनी शक्तिके अनुसार कर सकता है । इस लिय अब मनुष्य अपने आपको इन तीन कार्योंके लिये समर्पित करता है, तब उसका समर्पण परमेश्वरके लिय हुआ, ऐसा माना जाता है । मनस और अपने आत्माकी शक्तियोंसे उक्त त्रिविध कार्य करनेका नामही अपने मनका और आत्माका परमेश्वरापण करना है ।

प्रत्येक यज्ञमें भी तीन कार्य करन होते हैं ।

( १ ) ( पूजा ) भूतोंका स्तुत्य,

( २ ) अपने अदर ( सगतिकरण ) सगतिकरण किंवा सचटन

( ३ ) और ( ज्ञान ) दुष्टोंकी सदापता ।

प्रत्येक यज्ञमें ये तीन कार्य होन ही चाहिये । इनके बिना यज्ञ सुफल और सफल नहीं होगा । मनका और आत्माका समर्पण करके जो यज्ञ करना है, वह भी इन तीन कर्मोंक साथही है । मानो, इनक बिना यज्ञ ही नहीं होगा । अर्थात्—

( १ ) सज्जनोंकी रक्षा करके उनका सत्कार करना, ( २ ) कुर्जनोंको दण्ड देकर दूर करना और पुनः कुर्जन कष्ट न देष इस लिये अपनी उत्तम सघटना करना, और ( ३ ) धर्मकी व्यवस्था करके जो सुख्य होंगे उनकी योग्य सहायता करना, यह त्रिविध यज्ञकर्म है ।

यह त्रिविध कर्म अपने मनःसमर्पण और आत्मसमर्पण द्वारा करना चाहिये । यहाँ पाठक जानत हैं कि, जिस कार्यमें मन और आत्मा लग जाता है वही कार्य ठीक हो जाता है । अपन हस्तपादादि अवयव और द्रव्य मनके बिना कार्य नहीं कर सकते मन और आत्माके समर्पण करनेका उपदेश करनेसे अपनी शक्तियाका समर्पण हुआ, ऐसा ही मानना चाहिये । इस सूक्तके तृतीय मन्त्रमें कहा है कि—

अमर्त्येन मनसा हविषा देवान् यजन्त । ( म० ३ )

“अमर मन रूपी हविष देवोंका यज्ञन करत ह ।” यीका हवन करनेका अर्थ यी उस देवताक लिये समर्पित करना और उसका स्वयं उपमाग न करना । “ इन्द्राय इदं हविः दत्तं न भम ।” इन्द्र देवताके लिय यह घृतादि हवि समर्पित किया है इस पर अब मेरा अधिकार नहीं है और न मैं इसका अपन सुखक लिय उपयोग करूंगा । इसी प्रकार अपने मन और आत्माक समर्पण करनेका सारपर्य ही यज्ञ है । अपना मन और आत्मा परमेश्वर के लिये दिया, उससे अब सुदुर्गर्भीक कार्य नहीं किये जायेंगे । जो पूर्वोक्त ईश्वरके कार्य हैं, वेही किय जायेंगे । जिस प्रकार घृतादि पदार्थ यज्ञमें दिये जात हैं, उसी प्रकार इस मानस यज्ञम मनका समर्पण किया जाता है और आत्मयज्ञमें आत्मसर्वस्वका समर्पण किया जाता है । अन्य घृतादि बात पदार्थोंका समर्पण करने द्वारा जो यज्ञ किया जाता है, उससे कई गुणा अष्ट पद यज्ञ दोगा कि, जो आत्मसमर्पण और मानस समर्पण से होगा । इसी लिय कहा है कि—

तानि यमाणि प्रथमायामन् । ( म० १ )

‘ ये मानस यगुम्प कम प्रथम अणीक हैं । ” अर्थात् ये सबसे श्रेष्ठ कृत्य ह । एक मनुष्य घृत, समिधा आदिक हवनस यज्ञ करता है और दूसरा आत्मसमर्पणस यज्ञ करता है, इन दोनोंमें आत्मसमर्पण कानबालाही अष्ट है । इसका वचन इस सूक्तमें न स्पष्टोक्त हुआ है—

यत् पुरुषेण हविषा यज्ञं वेत्ता अतन्वत ।

अस्ति नु तस्माद्वोजीयो पद्विहृष्येनेजिरे ॥ ( मं० ४ )

“याज्ञक लोग जो यज्ञ ( अपने अदरके प्रकृति पुरुषों में से ) पुरुष अर्थात् आत्माके समर्पण द्वारा किया करते हैं, उससे कौनसा दूसरा यज्ञ भेद्य है, जो दूसरे यज्ञ (आत्मा से भिन्न ) प्राकृतिक पदार्थोंके समर्पणसे किय जाते हैं ? वे तो उससे निःसन्देह गौण हैं । मनुष्यके पास प्रकृति और पुरुष, अन्न और चेतन, दह और आत्मा ये दोही पदार्थ हैं, इनमें पुरुष अथवा चेतन आत्मा भेद्य और प्रकृति गौण है । अन्य यज्ञ प्राकृतिक पदार्थोंके समर्पणसे होते हैं इस लिये वे गौण हैं, और यह मानसिक अथवा आत्मिक यज्ञ आत्मसमर्पण द्वारा होता है, इसलिये वह भेद्य है । भेद्य यज्ञ तो ध्यानी याज्ञक ही कर सकते हैं, साधारण हीन अवस्थामें रहे मूढ़ मनुष्य जो करते हैं, वह तो एक निन्दनीय ही कर्म होता है, देखिये—

मुग्धा वेत्ता उत मुनायजन्तोऽत गोरगैः पुरुषायजन्त ।

य इमं यज्ञं मनसा चिकेत प्र णो बोधस्तमिदं ह्रवः ॥ ( मं० ५ )

“मूढ़ याज्ञक कुत्तके अंगोंसे और गौयोंके अवयवोंसे यजन करते हैं ।” मूढ़ का योंके इस कृत्यको मूढ़ताकाही कृत्य कहा जाता है । इसको कोई भेद्य कर्म नहीं कर सकत । “जो भेद्य याज्ञक इस आत्मयज्ञको मनसे करनेकी विधि जानते हैं, वेही यहाँ जाकर उस यज्ञका उपदेश करें ।” पूर्वोक्त मानसयज्ञकी अपेक्षा यह मानस यज्ञ बहुत भेद्य है । जो मानसयज्ञ करना जानते हैं वही उपदेश करनेके अधिकारी हैं । इस मानसयज्ञकी महिमा देखिये—

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि यर्माणि प्रथमाभ्यासन् ।

ते ह माक महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे स्थाप्याः सन्ति देवाः ॥ ( मं० १ )

“इस आत्मयज्ञसे याज्ञक परमात्माकी पूजा करत हैं । आत्मयज्ञद्वारा परमात्म पूजा करना भेद्य कार्य है । वे याज्ञक भेद्य होकर उस स्वर्गधाममें पहुँचत हैं कि, वहाँ पहिले साधन करनेवाले पहुँच चुके हैं ।” इस प्रकार इस आत्मयज्ञकी महिमा है । किसी दूसरे गौण यज्ञसे यह भेद्य फल प्राप्त नहीं हो सकता । यह आत्मयज्ञ ही सबसे भेद्य है, इस विषयमें मन्त्र देखिये—

यज्ञो नमूष, स आयमूष, स प्रजज्ञे, स उ वाकृषे पुनः ।

स देवानामधिपतिर्यमूष, सोऽस्मासु व्रिषिणमावृषातु ॥ ( मं० २ )

“यह आत्मयज्ञ प्रकट हुआ यह आत्मयज्ञ सर्वत्र फैल गया, उसके महत्त्वको

सबने खान लिया, इस कारण वह बूढ़ गया, यहाँ तक पहुँचा कि वह देवोंका भी भविष्य पति बन गया, उससे हमें महत्त्व प्राप्त होवे । ”

यह सबसे अष्ट आत्मयज्ञही हमारा महत्त्व बढ़ानेमें समर्थ है । इसकी तुलना किसी दूसरे गौण यज्ञसे नहीं हो सकती । इस यज्ञमें (मनसा इविषा यजन्त । (म० ३) मन्त्ररूप इवि का समर्पण करना होता है । और इस यज्ञ के करनेसे—

तत्त्वं परमे व्योमन् मत्सेम । ( म० ३ )

‘उस परम आकाशमें हम खानन्दको प्राप्त होंगे’ यह इस यज्ञके करनेका फल है । इसमें ‘परम’ शब्द विशेष मनन करने योग्य है । “पर, परतर, परतम” ये शब्द एकसे एक श्रेष्ठत्वके दर्शक हैं, इनमेंसे “परतम” शब्दका ही सशुद्ध रूप ‘पर-म’ है, बाँचके ‘त’ कारका छोप हुआ । अर्थात् जो सबसे अष्ट होता है वह ‘परतम’ किंवा परम है । इस अवस्थाके पूर्वकी दो अवस्थाएँ पर और परतर इन दो शब्दों द्वारा बतायी जाती हैं । अर्थात् व्योम तीन प्रकारके हैं ( १ ) एक पर व्योम, ( २ ) दूसरा परतर व्योम और ( ३ ) तीसरा परतम किंवा परम व्योम । आधुनिक परिभाषामें यदि यही माप कोलना हो तो ‘सूक्ष्म, कारण और महाकारण’ अवस्था इन तीन शब्दोंसे ‘पर, परतर और परतम व्योम’ इनका माप व्यक्त होता है । ‘व्योमन्’ शब्द भी विशेष महत्त्व का है । इसमें ‘वि+ओम्+मन्’ ये तीन शब्द हैं, इनका क्रमपूर्वक अर्थ ‘प्रकृति+परमात्मा और जीवात्मा’ यह है । सूक्ष्म, कारण और महाकारण अवस्थाओंमें प्रकृति जीव और परमात्माका जो अनुभव होता है वह इन तीन शब्दोंसे व्यक्त होता है । इन तीन अनुभवोंमें सबसे अष्ट अनुभव ‘परम व्योम’ शब्दसे व्यक्त होता है । और यह इस यज्ञमें कहे आत्मयज्ञके करनेसे प्राप्त होता है । अन्य गौण यज्ञोंके करनेसे जो अनुभव मिलेंगे वे इससे न्यून भेषीके अर्थात् गौण होंगे क्योंकि, वे अन्य यज्ञ भी इस आत्मयज्ञसे गौण ही हैं । गौण का फल गौण और अष्ट कर्मका फल अष्ट होना स्वभाविक ही है । इस आत्मयज्ञके करनेसे जो परम व्योममें उत्तम अवस्था प्राप्त होकर फल अनुभवमें आता है । वह कैसा अनुभव हो इस विषयमें एक उदाहरण देते हैं—

सूर्यस्य उदितौ तत् पश्येम । ( म० ३ )

“सूर्यका उदय होनेपर जैसा उसका प्रकाश दिखाई देता है, उसी प्रकार हम उस खानन्दका प्रत्यक्ष अनुभव लेंगे । अर्थात् जैसा सूर्यप्रकाश भूमिपर रहनेवालोंको दिनमें प्रत्यक्ष होता है, उस प्रकार इस तृतीय व्योममें संचार करनेवाले अष्ट आत्माओंको वहाँका सुख प्रत्यक्ष होता है । जैसा यहाँ का यह सूर्य प्रत्यक्ष है उसी प्रकार वहाँ भी

एक इस सूर्यका सूर्य होगा और वह यहाँ प्रत्यक्ष ही होगा ।

इस प्रकार आत्मयज्ञका फल इस सूक्तमें कहा है । इस सूक्तमें ( पुरुषेण हविषा । म० ४ ) पुरुष अर्थात् आत्मारूपी हविसे यज्ञ तथा ( मनसा हविषा । म० ३ ) मन रूपी हविसे यज्ञ करनेका विधान है । जिस प्रकार 'सोम' का हवन होनेसे 'सोम भाम' कहा जाता है, अथ सशुक्र बीजोंका हवन होनेसे 'अजमेघ' कहा जाता है, उसी प्रकार 'पुरुष' अर्थात् आत्माका समर्पण होनेसे 'पुरुषयज्ञ, आत्मयज्ञ' तथा 'मन' का हवन होनेसे 'मानस यज्ञ' कहा जाता है । उसी प्रकार भगवद्गीता ( म० गी० अ० ४ ) में 'द्रव्ययज्ञ, तपोयज्ञ, स्वाध्याययज्ञ, ज्ञानयज्ञ, प्रज्ञयज्ञ, शत्रिययज्ञ, विषययज्ञ, कर्मयज्ञ, योगयज्ञ, प्राणयज्ञ' इत्यादि यज्ञ कहे हैं । जिस यज्ञमें जिसका समर्पण होता है वह नाम उस यज्ञका होता है ।

"पुरुष" रूपी हविका समर्पण होनेसे इस सूक्तमें वर्णित यज्ञको 'पुरुषयज्ञ' कहते हैं । यहाँ प्रकृतिपुरुषान्तर्गत पुरुष शब्द यहाँ विषयित है और वह आत्माका वाचक है । इस सूक्तमें 'पुरुषयज्ञ अथवा पुरुषमेघ' का अर्थ स्पष्ट हुआ है । वह इस स्पष्टीकरणसे विज्ञेय ज्ञाम हुआ है और इसीलिये इस सूक्तका थोडासा अधिक स्पष्टीकरण यहाँ किया है ।

### पुरुषमेघ ।

पुरुषमेघ प्रकरण पुरुषसूक्तमें है । यह पुरुष सूक्त ऋग्वेद ( म० १०।९० ) में है, वा० मनुवेद ( म० ३० ) में है । सामवेदमें थोडा है और अथर्ववेद ( कां १९।६ ) में है ।

इस पुरुषसूक्तमें जिस पुरुषमेघ यज्ञ का वर्णन है, वही यज्ञ इस सूक्तमें कहा है । इस छिपे इस सूक्त का विचार ठीक प्रकार होनेसे 'पुरुषसूक्त' के यज्ञका स्वरूप उत्तम प्रकार ध्यानमें आसकता है । दोनों सूक्तों में एकही विषयका वर्णन हुआ है । तथा इस सूक्तमें आये " यज्ञेन यज्ञमयजन्त० " तथा ' यत्पुरुषेण हविषा० ' ये मन्त्र भी पुरुष सूक्तमें आगये हैं । इससे दोनों सूक्तोंका विषय एकही है, यह बात सिद्ध होगी । पुरुषसूक्तमें कई लोग मनुष्य हवन का विषय है ऐसा मानते हैं, वह अत्यन्त भ्रष्ट है, वह बात इस सूक्तके साथ पुरुष सूक्त का मनन करनेसे स्पष्ट होगी । हमारे मतसे पुरुषसूक्तमें भी इसी आत्मयज्ञकाही विषय है ।

# मातृभूमिका यश ।

[ ६ (७) ]

( श्रुति-अथवा । देवता-अदितिः )

अदितिर्घोरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः ।

विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्वर्जितस्वम् ॥ १ ॥

महीम् पु मातरं सुव्रतानामृतस्य पत्नीमर्षसे इवामहे ।

तुविह्वामजरेन्वीमरूचीं सुप्रवीणमदितिं सुप्रवीणितिम् ॥ २ ॥

अर्थ- ( अदितिः यौः ) मातृभूमि स्वर्ग है, ( अदितिः अन्तरिक्ष ) मातृभूमि अन्तरिक्ष है, ( अदितिः माता ) मातृभूमि ही माता है, ( सः पिता सः पुत्रः ) वही पिता है और वही पुत्र है । ( अदितिः विश्वे देवाः ) मातृभूमि ही सब देव हैं, ( अदितिः पञ्च जनाः ) मातृभूमि ही पांच प्रकार के लोग हैं । ( अदितिः जात ) मातृभूमि ही उत्पन्न हुए पदार्थ हैं और ( अदितिः जनित्व ) उत्पन्न होनेवाले पदार्थ भी मातृभूमि ही है ॥ १ ॥

( सुव्रतानां मातर ) उत्तम कर्म करनेवालोंका हित करनेवाली, ( मृतस्य पत्नी ) सख्यका पाछन करनेवाली, ( तुवि-अर्षा ) बहुत प्रकारसे क्षात्र तेज दिखानेवाली, ( अ-जरेन्ती ) क्षीण न करनेवाली, ( उरूचीं ) विशाल, ( सु-प्र-वीण ) उत्तम सुख देनेवाली, ( सु-प्र-नीति ) सुखसे योगक्षेम चलानेवाली और ( अदितिं महीं ) अन्न देनेवाली वही मातृभूमिकी ( अबसे सुइवामहे व ) रक्षाके लिये प्रशंसा करते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ-मातृभूमिही हमारा स्वर्ग है, वही अन्तरिक्ष है, वही माता, पिता और पुत्रपौत्र है, वही हमारी सब देवताएँ हैं और वही हमारी जनता है, मना हुआ और बननेवाला सब कुछ हमारे लिये मातृभूमि ही है ॥ १ ॥

मातृभूमि उत्तम पुरुषार्थी मनुष्योंकी रक्षा करती है, सख्यकी रक्षक वही है, उसी मातृभूमिके लिये अनेक प्रकार के क्षात्रतेज प्रकाशित होते हैं मातृभूमि क्षीण न करनेवाली है, विशाल सुख देनेवाली है, हमें उत्तम मार्गपर चलानेवाली और हमें अन्न देनेवाली है, उससे हमारी रक्षा होती है, इसलिये हम उसका यश गाते हैं ॥ २ ॥

सुश्रामांश्च पृथिवीं धामनेहसं सुधर्मीष्वमर्दिति सुप्रणीतिम् ।

देवीं नावं स्वश्चामनांसो अस्रवन्तीमा वहेमा स्वस्वये ॥ ३ ॥

वाजस्य तु प्रसवे मातरं महीमर्दिति नाम वचसा करामहे ।

यस्या उपस्य सर्वान्तरिक्षं सा नः धर्मं त्रिवरुधं नि यच्छात् ॥ ४ ॥

अर्थ—( सुश्रामाण उत्तम रक्षा करनेवाली, ( यां अनेहस ) प्रकाशयुक्त और अर्दितक, ( सुश्रामांश्च सुप्रणीति ) उत्तम सुख देनेवाली और उत्तम योगक्षेम बल्लामेवाली ( सुधर्मा अस्त्रवन्तीं देवीं नाव ) उत्तम बल्लियों वाली, न बूनेवाली विषय मौका पर बहनेके समान ( पृथिवीं ) मातृभूमि पर ( स्वस्तये आरहेम ) कल्याणके लिये हम बहते हैं ॥ ३ ॥

( वाजस्य प्रसवे ) अन्नकी उत्पत्ति करनेके लिये ( अर्दिति मातरं महीं ) अन्न देनेवाली यही मातृभूमिका ( नाम वचसा करामहे ) वक्तृत्वसे यश गाते हैं । ( यस्याः उपस्य उरु अन्तरिक्षं ) जिसकी गोदमें विशाल अन्तरिक्ष है, ( सा नः त्रिवरुधं धर्मं नियच्छात् ) वह मातृभूमि हम सबको त्रिगुणित सुख देवे ॥ ४ ॥

भावार्थ— उत्तम बल्लियोंवाली न बूनेवाली नौकाके ऊपर बहनेके समान हम उत्तम रक्षक, तेजस्वी अभिनायक, सुखदायक, उत्तम बालक मातृभूमिके ऊपर हम अपने कल्याण के लिये उन्नत होते हैं ॥ ३ ॥

अन्नकी उत्पत्ति करनेके लिये अन्न देनेवाली मातृभूमिका यश हम गायन करते हैं । जिसके ऊपर यह बड़ा अन्तरिक्ष है, वह मातृभूमि हमें उत्तम सुख देवे ॥ ४ ॥

### मातृभूमिका यश ।

इस पदमें मातृभूमिका यश वर्णन किया है । मातृभूमि सशस्त्र उत्तम कल्याण करनेवाली है, इसका वर्णन देखिये—

१ अर्दितिः—( अहनात् अर्दितिः ) अहन अर्थात् मक्षण करनेके लिये अन्न देती है । अपनी मातृभूमि हमें अन्न देती है, इसीलिये हमारा ( धौः ) स्वर्गधाम वही है । हमारी माता पिता भी वही है, क्योंकि कि माता पिताके समान मातृभूमि हमारी पालना करती है । पुत्रादि भी वही है, क्योंकि कि ( पुनाति प्रायते ) हमें पवित्र करनेवाली और

हमारी रक्षा करनेवाली बही है । इसके अतिरिक्त यह पुष्टी करती है और उस कारण हमें ससत्ति उत्पन्न होती है, इसलिये यह उसीकी दमासे होती है, ऐसा मानना युक्ति युक्त है । हमारे त्रिलोकी के सुख मातृभूमिके कारण ही हमें प्राप्त होते हैं । ( मं० १ )

२ विश्वेदेवाः अदितिः = सब देवताएँ हमारे लिये हमारी मातृभूमि है । अर्थात् मातृभूमिकी उपासनासे सब देवताओंकी उपासना करनेका भय प्राप्त होता है । ( मंत्र १ )

३ पञ्चजनाः अदितिः = हमारी मातृभूमि ही पाँच प्रकारके लोग है । छानी, छूर, व्यापारी, कारीगर और अधिष्ठित ये पाँच प्रकारके लोग प्रत्येक राष्ट्रमें रहते हैं । मातृभूमि इन्हींसे पूर्ण होती है, इस लिये कहा जाता है कि, मातृभूमि ये पाँच प्रकारके लोग हैं और ये पाँच प्रकारके लोग ही मातृभूमि है । अर्थात् मातृभूमि का अर्थ इन पाँच प्रकारके लोगोंके साथ अपनी भूमि है । ( मं० १ )

४ जात जनिस्थ अदितिः = पूर्व कालमें बना और भविष्यमें बननेवाला सब मातृभूमिमें ही रहता है । पूर्वकालमें हमने वर्तमान कैसा किया यह भी मातृभूमिकी आज्ञाकी अवस्था से पता लग सकता है और मातृभूमिकी अवस्था भविष्य कालमें कैसी होगी, यह भी आज्ञाके हमारे व्यवहार से समझमें आसकता है । ( मं० १ )

५ सुव्रतामां माता = उत्तम सुस्कर्म्म करनेवाले मनुष्यों को यह मातृभूमि माताके समान हित करनेवाली है । ( मं० २ )

६ ऋतस्य पत्नी = सत्यव्रतका पालन करनेवाली अर्थात् उत्पत्तिष्ठ रहनेवालोंका पालन करनेवाली मातृभूमि है । ( मं० २ )

७ सुविश्रुता = विश्वके कारण विविध शौर्य करनेके लिये उत्साह उत्पन्न होता है, ऐसी यह मातृभूमि है । ( मं० २ )

८ अजरन्ती = जो इसकी शक्ति करते हैं उनको यह धीन, दीन और अधक नहीं बनाती है । ( मं० २ )

९ सुशर्मा = उत्तम सुख देनेवाली मातृभूमि है । ( मं० २-३ )

१० सुप्रणीतिः = ( सु-प्र-नीतिः ) उत्तम मार्गसे चलानेवाली, उत्तम अवस्था को पहुँचानेवाली मातृभूमि है । ( मं० २-३ ) नीति शब्द यहाँ चलानेके अर्थ में है ।

११ अनेहस् = ( अहनीया ) जो पातपाठ करने अयोग्य अथवा जो पातपाठ नहीं करती है ऐसी मातृभूमि है । ( मं० ३ )

१२ स्वस्तये आरुहेम = हमारा कल्याण होनेके लिय हम अपनी मातृभूमि में रहते हैं । मातृभूमिमें न रहे तो हमारा कल्याण नहीं होगा । जो अपनी मातृभूमिमें



रहते हैं उनका कल्याण होता है । ( म० ३ )

१३ स्वरिषा अस्त्रवन्ती वैधी नौः = जिस प्रकार उत्तम बलिबोवाली न चूने वाली, दिव्य नौका समुद्रसे पार करनेमें सहायक होती है, उसी प्रकार यह मातृभूमि हमें दुःखसागरसे पार करनेके लिये दिव्य नौकाके समान है । ( म० ३ )

१४ वाजस्य प्रसवे मातर महीं वक्षसा नाम करामहे = अन्न की विशेष उत्पत्ति करनेके कार्यमें हम सब मातृभूमिका यक्ष वाणीसे गान करते हैं । मातृभूमि हमें बहुत अन्न देती है, इस कारण उसकी हम बहुत प्रशंसा करते हैं । इस प्रकार मातृभूमिका गीत गाना प्रत्येक मनुष्यका कर्तव्य है । ( म० ४ )

१५ सा नः विबस्व धामं नियच्छात्—वह मातृभूमि हमें तीन गुणा सुख देती है । अर्थात् स्थूल शरीरका, इन्द्रियोंका और मनका सुख इस प्रकार वह त्रिविध सुख देती है । ( म० ४ )

इस सूक्तमें मातृभूमिका गुणवर्णन किया है । यह प्रत्येक मनुष्यको ध्यानमें धारण करने योग्य है । मनुष्यके लिये मातापिता मातृभूमि ही है । इसीलिये जन्मभूमिको 'मातृभूमि' तथा 'पितृदेव' भी कहते हैं । इसी प्रकार पुत्रभूमि भी यही है । उत्तम पुरुषार्थी लोगोंके लिये यही स्वर्गधाम होता है अर्थात् पुरुषार्थ न करनेवालोंके लिये यह नरक होजाता है । इसका कारण मनुष्योंका गुण या दोष ही है । मातृभूमि ही मनुष्योंका सर्वस्व है । अतः सब लोग अपनी मातृभूमिकी उचित रीतिसे भक्ति करें और उन्नतिको प्राप्त करें ।

### अदिति शब्द ।

'अदिति' शब्द वेदमें कई स्थानोंमें मिलवण अर्थमें प्रयुक्त हुआ है । एक अदिति शब्द " अद=मक्षण करना " इस पाठसे बनता है । इसका अर्थ 'अन्न देनेवाली' ऐसा होता है । यह शब्द इस सूक्तमें है । 'गौ' अदिति है क्योंकि वह दूध देती है, भूमि अदिति है क्योंकि वह अन्न, पान्य, वनस्पति आदि देती है, यौ अदिति है क्योंकि पुत्रोक्तसे अन्न वर्धता है और उससे अन्नपान मनुष्योंको मिलता है । इस प्रकार अन्न देनेवालेके अर्थमें यह अदिति शब्द है । परन्तु इसका दूसरा भी अर्थ है अथवा मानो वह अदिति शब्द दूसराही है । वह ( अ-+दिति ) जो दिति अर्थात् उच्छिद्य अथवा प्रतिवधयुक्त नहीं वह अदिति 'स्वतन्त्रता' है । ये दो शब्द परस्पर भिन्न हैं । इनमें पहिला शब्द इस सूक्तमें प्रयुक्त है । इसका पाठक स्मरण रखें ।

# मातृभूमिके भक्तोंका सहायक ईश्वर ।

[ ७ ( ८ ) ]

( ऋषिः— अथर्षा । देवता—अदितिः )

दितेः पुत्राणामदितेरकारिपुमर्षं देवानां बृहतामनर्मणाम् ।

तेषां हि धाम गमिष्वस्तमुद्रियं नैनान् नमसा पुरो अस्ति कञ्चन ॥ १ ॥

अर्थ— ( दितः ) प्रतिपद्यताके ( तेषां पुत्राणां ) निर्माता उन पुत्रोंका ( धाम समुद्रिय गमिष्व हि ) निवास समुद्र के गभीर स्थानमें है । वहाँसे उनको ( अदितेः बृहतां अनर्मणां देवानां ) स्वाधीनतासे युक्त मातृभूमिके पड़े अहिंसाशील वैषी गुणोंसे युक्त सुपुत्रोंके लिये ( अथ अकारिप ) इटाता ह । क्योंकि ( एनान् मनसा परा ) इनसे मनसे अधिक योग्य ( कञ्चन न अस्ति ) कोई भी नहीं है ॥ १ ॥

भावार्थ— पराधीनता फैलानेवाले राक्षस अथवा असुर समुद्रके मध्यमें अतिगभीर स्थानमें रहते हैं । वहाँसे उनको इटाता ह और मातृभूमिकी स्वाधीनता संपादन करनेवाले अष्ट वैषी गुणोंसे युक्त अहिंसाशील सज्जनाको योग्य स्थान करता ह । क्या कि इन सज्जनोंसे कोई दूसरा अधिक योग्य नहीं है ।

## दिति और अदिति ।

दिति और अदिति शब्दोंके अर्थ विशेष रीतिसे यहाँ दखन चाहिये । कोशोंमें इन शब्दोंके अर्थ निम्नलिखित प्रकार मिलते हैं—

( १ ) अदिति=स्वतन्त्रता, स्वातन्त्र्य, मर्यादा न रहना, अमर्याद, अखण्डित, सुखी, पवित्र, पूर्णत्व, बाणी, पृथ्वी, गौ, देवमाता इत्यादि अर्थ अदितिके हैं ।

( २ ) दिति=खण्डित, पराधीनता, मर्यादित, दुःखी, अपवित्र, अपूर्णत्व; राक्षस माता ये अर्थ दितिके हैं ।

अदितिकी प्रथा ' देवता ' है और दितिकी प्रथा ' राक्षस ' है । यह सब महाभार

तादि प्रशंसे वर्णन हुआ हुआ विषय है । इस सूक्तमें ( दितेः पुत्राणां ) दितिके पुत्रोंका स्थान अर्थात् राक्षसोंका स्थान नाश करके देवोंको सुख देता हूँ, ऐसा परमेश्वर द्वारा कहा गया है । दितिके पुत्रोंका स्थान समुद्रमें गहरे स्थानमें है, यह एक उस स्थानके प्रवेश योग्य न होनेकी बात है । वस्तुतः राक्षस जैसे समुद्रमें रहते हैं वैसे भूमिपर भी रहते हैं । गीतामें राक्षसोंके गुणोंका वर्णन इस प्रकार है—

दम्भो दुर्पाऽभिमानश्च क्रोधः पाशव्यमेव च ।

अज्ञान चाभिजातस्य पार्थ सपदमासुरीम् ।

म० गी० १६।४

“ दम्भ, दुर्प, अभिमान, क्रोध, कठोरता और अज्ञान ये राक्षसगुण हैं । ” अर्थात् राक्षस वे हैं कि जो दम्भ, घमण्डी, अभिमानी, क्रोधी, कठोर और अज्ञानी अर्थात् बन्धमुक्त होनेका ज्ञान भिन्नको नहीं है, ऐसे लोग राक्षस होते हैं । ये ऐसे हैं इसीलिये इनके व्यवहार से पारतन्त्र्य दुःख आदि फैलते हैं और जो इनकी सङ्गतमें जाते हैं, वे भी पराधीन बनते हैं । इसीलिये मन्त्रमें कहा है कि, ऐसे दुष्टोंको मैं सखाब देता हूँ और देवोंका स्थान सुदृढ करता हूँ ।

अदितिके पुत्र देव हैं । परमेश्वर इनकी सहायता करता है । राक्षसोंका दूर करना भी इसीलिये है कि, वही देव सुदृढ बनें । देवी गुण ये हैं—

“ निर्ममता, पवित्रता, बन्धमुक्त होनेका ज्ञान, दान, इन्द्रियदमन, व्रत, स्वाध्याय, तप, सरलता, अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, क्षान्ति, खुगली न करना, भूतोंपर दया, अलाम, सुदृढता, बुरा काम करनेके लिये सखा, सेवस्त्रिता, धर्मा, धैर्य, मृदुता, अद्वोद, पण्डित करना इत्यादि गुण देवोंके हैं । ( म० गी० १९। १-३ ) ये गुण भिन्नमें पढ़ गये हैं वे देव हैं । य देवही स्वतन्त्रता स्थापन करनेका कार्य करते हैं ।

परमेश्वर राक्षसवृत्तिवाले लोगोंका अन्तमें नाश करता है इसका कारण यही है कि, वे अगन्तुमें पराधीनता और दुःख पटाते हैं । और वह देवीवृत्तिवालोंकी सहायता इसीलिये करता है कि, वे देव अगन्तुमें स्वातन्त्र्य वृत्ति फैलाते हैं और सबको सुखी करनेमें दक्षिण रहते हैं । इसलिये मन्त्रमें कहा है कि ( पनान् परः कश्चन नास्ति ) इन दोनोंसे भेष्ट कोई नहीं है । इसीलिये ईश्वरकी सहायता इनको मिलती है । यह विचार करके पाठक अपने अन्दर देवी गुण बढ़ाकर निर्मम बनें और ईश्वरसहायता प्राप्त करें ।

## कल्याण प्राप्त कर ।

[ ८ (९) ]

( आपोः- उपरिषद्भ्यः । देवता- वृहस्पतिः )

मृदादधि भेषः मेहि वृहस्पतिः पुरपुता तं अस्तु ।

अयेममस्या वर आ वृथिभ्या आरेर्षन् कृणुहि सर्ववीरस् ॥ १ ॥

अर्थ— ( मृदात् अधि ) सुखसे परे जाकर ( भेषः मेहि ) परम कल्याणको प्राप्त हो । ( वृहस्पतिः ते पुरपुता अस्तु ) ज्ञानी तेरा मार्गदर्शक होवे । ( अय ) और ( अस्याः वृथिभ्याः वरे ) इस पृथ्वीके श्रेष्ठ स्थानमें ( इम सर्ववीर ) इस समय धीर समुदायको ( आरे-शत्रु कृणुहि ) शत्रुसे दूर कर ॥ १ ॥

भावार्थ— हे मनुष्य ! तू सुख प्राप्त कर, परन्तु सुख की अपेक्षा जिससे तुम्हारा परम कल्याण होगा, उस मार्गका अवलम्बन कर और वह परम कल्याणकी अवस्था प्राप्त कर । इस पृथ्वीके ऊपर जो जो श्रेष्ठ राष्ट्र हैं, उनमें समय प्रकारके धीर पुरुष उत्पन्न हों, उनके शत्रु दूर हो जाय । अर्थात् समय राष्ट्रोंमें उत्तम शान्ति स्थापित होवे ॥ १ ॥

यहाँ 'मद्र' शब्द साधारण सुख के लिये प्रयुक्त हुआ है । अम्पुदय का वाचक यह शब्द यहाँ है । वगत् में भौतिक साधनोंसे जो सुख मिलता है वह साधारण सुख है । आहार, निद्रा, निर्मयता और मैथुन सबही जो सुख है वह साधारण है । इससे जो श्रेष्ठ सुख है उसका 'भेषः' कहते हैं । मनुष्यको यह परम कल्याण प्राप्त करनेका यत्न करना चाहिये; इसके लिये ज्ञानी (वृहस्पति) पुरुषको गुरुकरके उसकी आज्ञाके अनुसार चलना चाहिये । ज्ञान भी वही है कि आ (मोक्षेधीः) बन्धन से छुटकारा पाने के लिये साधक हो । यह प्राप्त करना चाहिये । इसका उद्देश्य यह है कि इस पृथ्वीपर जो जो राष्ट्र हैं, वे श्रेष्ठ राष्ट्र बनें, और सब स्त्रीपुरुष तेजस्वी धीरपुरुषोंवाले निर्मय बनें और किसी स्थानपर उनके लिये शत्रु न रहे । मनुष्यको यह अवस्था जगत्में स्थिर करना चाहिये ।

# ईश्वरकी भक्ति ।

[ ९ ( १० ) ]

( अर्थ — उपारिबन्धनः । देवता-पूजा )

प्रपद्ये पयामजनिष्ट पूषा प्रपद्ये दिवः प्रपद्ये पृथिव्याः ।  
उमे अग्निं प्रियतमे सघस्ये आ च परा च चरति प्रजानन् ॥ १ ॥  
पूषेमा आशा अनु वेद सर्वाः सो अस्मां अभयतमेन नेषत् ।  
स्वस्तिदा आर्घुणिः सर्वशीरोप्रयुञ्छन् पुर एतु प्रजानन् ॥ २ ॥

अर्थ— ( पूषा ) पोषक ईश्वर ( दिवः प्रपद्ये ) घुलोक के मार्गमें ( पयामं प्रपद्ये ) अन्तरिक्षके विविध मार्गोंमें और ( पृथिव्याः प्रपद्ये ) पृथ्वीके ऊपरके मार्गमें ( अजनिष्ट ) प्रकट होता है । ( उमे प्रियतमे सघस्ये अग्निं ) दोनों उत्पन्न प्रिय स्थानोंमें ( प्रजानन् आ च परा च चरति ) सबको ठीक ठीक जानता हुआ समीप और दूर विचरता है ॥ १ ॥

( पूषा सर्वाः इमाः आशाः अनुवेद ) पोषणकर्ता देव सब इन दिशाओंको यथावत् जानता है । ( सः अस्मान् अभयतमेन नेषत् ) वह हम सबको उत्तम निर्भयताके मार्गसे लेजाता है । वह ( स्वस्ति-दाः आर्घुणिः ) कल्याण करनेवाला, तेजस्वी, ( सर्वशीरः ) सब प्रकारसे वीर, ( प्रजानन् ) सबका यथावत् जानता हुआ और ( अयुञ्छन् ) कभी प्रमाद न करने वाला ( पुरः एतु ) हमारा अनुयायी होवे ॥ २ ॥

भावार्थ—परमेश्वर इस त्रिलोकीके सपूर्ण स्थानोंमें उपस्थित है । वह सब सुखदायक स्थानोंको अथवा अवस्थाओं को जानता है और वह हम सबके पालनकर्ता है और दूरभी है ॥ १ ॥

यह सबका पोषण करता है और सबको यथावत् जानता है । वही हमको निर्भयताके मार्गसे ठीक प्रकार और सुरक्षित ले जाता है । वह हम सबका कल्याण करनेवाला, सब को तेज देनेवाला, सब में वीरवृत्ति उत्पन्न करनेवाला, सबकी उत्पत्तिका मार्ग जाननेवाला, और कभी प्रमाद न करनेवाला है, वही हम सबका मार्गदर्शक होवे, अर्थात् हम सब उसको अपना मार्गदर्शक मानें ॥ २ ॥

पूज् तव व्रते वय न रिष्येम कदा चन । स्तोतारस्त इह स्मसि ॥ ३ ॥

परि पूषा परस्ताद्वर्त दधातु दक्षिणम् । पुनर्नो नष्टमार्जसु स नृपेन गमेमहि ॥ ४ ॥

अर्थ—हे (पूषन्) पोषक देव ! (वय तव व्रते कदाचन न रिष्येम) हम तेरे व्रतमें रहनेसे कभी नष्ट नहीं होंगे । (इह ते स्तोतारः स्मसि) यहाँ तेरे गुणोंका गान करते हुए हम रहेंगे ॥ ३ ॥

( पूषा परस्तात् दक्षिण हस्त परि दधातु ) पोषकदेव अपना दायी हाथ हमें देवे । ( नः नष्ट पुनः नः आजतु ) हमारा बिनष्ट हुआ पदार्थ पुनः हमें प्राप्त होवे । ( नष्टेन स गमेमहि ) हम बिनष्ट हुये पदार्थ को पुनः प्राप्त करेंगे ॥ ४ ॥

भावार्थ— इस ईश्वरके व्रतानुष्ठानमें हम रहेंगे तो हम कभी बिनाशको प्राप्त नहीं होंगे, इस लिये हम उसी ईश्वरके गुणगान करते हैं ॥ ३ ॥

वह पोषक ईश्वर अपना उत्तम सहारा हमें देवे । हमारे साधना में जो बिनष्ट हुआ हो, वह योग्य समयमें हमें पुनः प्राप्त होवे ॥ ४ ॥

### भक्तका विश्वास ।

भक्तका ऐसा विश्वास होना चाहिये कि, परमेश्वर ( पूषा ) सब का पोषकता है । सबकी पुष्टी उसीकी पोषकशक्तिसे हो रही है । वह ईश्वर सर्वत्र उपस्थित है यह दूसरा विश्वास होना चाहिये कि, कोई स्वान उससे रिक्त नहीं है । तीसरा विश्वास ऐसा चाहिये कि, वह हमारे सब घरे मझे कर्मोंका मयावत् मानता है और वह ऐसा हमारे पास है वैसाही दूर है । चौथा विश्वास ऐसा चाहिये कि, वह ईश्वर ही हमें निर्ममता देकर उत्तमसे उत्तम मार्गसे छे छाटा है और कभी दुरे मार्गको नहीं पताता । वह सबका कल्याण करता है और सबको प्रकाशित करता है । कभी प्रमाद नहीं करता और सबको उत्तम प्रकार चलाता है ।

पाँचवां विश्वास ऐसा चाहिये कि, उसके व्रतानुसार चलन से किसीका कमी नाश नहीं होगा । छठा विश्वास ऐसा चाहिये कि, वह हमें उत्तम प्रकार सहारा देता रहता है, हमको ही उसके सहारेकी अपेक्षा करना चाहिये । सातवां विश्वास ऐसा चाहिये कि, यदि किसी कारण हमारा कुछ नाश हुआ तो उसकी सहायता से यह सब ठीक हो सकता है । ये विश्वास रखकर सब मनुष्योंको उचित है कि, वे ईश्वरके गुणगान करें और उन गुणोंकी धारणा अपने अंदर करके अपनी उन्नतिका साधन करें ।

# सरस्वती ।

[ १० ( ११ ) ]

( ऋषिः—शौनकः । देवता—सरस्वती )

यस्ते स्तनः सद्युष्यो मयोमूर्यः सुंजयुः सुहृषो यः सुदत्रः ।

येन विद्या पुष्पसि वार्याणि सरस्वति रमिह धारये कः ॥ १ ॥

अर्थ—हे सरस्वति ! ( या ते वाद्ययुः स्तनः ) जो तेरा शान्ति देनेवाला स्तन है और ( या मयोमूर्यः या सुंजयुः ) जो सुख देनेवाला, जो शुभ मनको देनेवाला, ( या सुहृषः सुदत्रः ) जो प्रार्थनीय और जो उत्तम पुष्टि देने वाला है, ( येन विद्या वार्याणि पुष्पसि ) जिससे तू सब वरणीय पदार्थोंकी पुष्टि करती है, ( त इह धारये कः ) उसको यहाँ हमारी पुष्टिके लिये हमारी ओर कर ॥ १ ॥

भावार्थ—सरस्वती देवी जगत्को सारवान् रस देती है, उसके स्तनमें वह पोषक गुण है, वह सुख, शान्ति, सुमनस्कता, पुष्टि आदि देता है। इससे सबका ही पोषण होता है। हे देवी ! वह तुम्हारा पोषक गुण हमारे पास कर, जिससे उत्तम रस पीकर हम सब पुष्ट हो जाय ॥ २ ॥



सरस्वती विद्या है। विद्याही सबका पोषण करती है, सबको शान्ति, सुख, सुमनस्कता और पुष्टि देती है। विद्यासेही यह लोकमें और परलोकमें उत्तम मति प्राप्त होती है। इसलिये यह विद्या हरएक को अवश्य प्राप्त करना चाहिये।

## मेघोंमें सरस्वती ।

[ ११ ( १२ ) ]

( आपि:- धौनकः । देवता- सरस्वती । )

यस्ते पृथु स्तनयिस्तुर्ध्वं श्रुष्वो देवः केतुर्विद्यमाभूयतीदम् ।

मा नो बधीर्विद्युता देव सुस्य मोत बधी रुदिमभिः सूर्येस्य ॥ १ ॥

अर्थ- ( या ते पृथुः स्तनयिस्तुः ) जो तेरा विस्तृत, गर्जना करनेवाला, ( श्रुष्वो देवः केतुः ) प्रवाहित होनेवाला और दिव्य ध्वजाके समान मार्ग दर्शक चिन्ह ( इह विश्व आभूयति ) इस जगत्को भूषित करता है, तस्य ( विद्युता ) बिजुलीसे ( मा मा बधीः ) हमें मत मार । तथा हे देव ! ( उत ) और हमारा ( सस्य सूर्यस्य रुदिमभिः मा बधीः ) श्वेत सूर्यके किरणोंसे मत नष्ट कर ॥ १ ॥

भावार्थ- हे सरस्वती ! जो तेरा विस्तृत और गर्जना करनेवाला, स्वयं वृष्टिरूपसे प्रवाहित होनेवाला, जिसमें बिजुलीकी चमक जाती है और जो इस विश्वका भूषण होता है, वह मेघ अपनी बिजुलीसे हमारा नाश न करे, परन्तु ऐसा भी न हो कि, आकाशमें पावस न आजाय, और सूर्यके तापसे हमारी सय श्वेती जल जाये । अर्थात् आकाशमें पावस आजाय, मेघ परसे और श्वेती उत्तम हो जाये, परन्तु मेघोंकी बिजुलसे किसीका नाश न हावे ॥ १ ॥

‘सरस्वती’ का दूसरा अर्थ ( सरः ) रसवाली है । अर्थात् मल देनेवाली । वह मल भगवा रस मेघोंमें रहता है और वह हमारे धान्यादिकी पुष्टी करता है । पूर्वसूक्तमें ‘विद्या’ अर्थ है और इसमें ‘वत’ अर्थ है ।



# राष्ट्रसभाकी अनुमति ।

[ १२ ( १३ ) ]

( श्रुति—श्रौतका । देवता—समा; १-२ सरस्वती, ३ इन्द्र, ४ मन्त्रोक्ता )

समा च मा समितिमावतां प्रमापयेदुदितरीं सविदाने ।

येनां संगच्छा उप मा स क्षिसाचारं वदानि पितरः सङ्गतेषु ॥१॥

विष ते स मे नाम नरिष्ठा नाम वा असि ।

ये ते के च समासदस्ते मे सन्तु सर्वावसः ॥ २ ॥

अर्थ—( सभा च समितिः च ) ग्रामसमिती और राष्ट्रसभा ये दोनों ( प्रजापतेः पुत्रीवत् पालन करनेवाले ) राजाके पुत्रीवत् पालने योग्य हैं और ये दोनों ( सविदाने ) परस्पर एकमत्य करती हुई ( मा अवतां ) सुप्त राजाकी रक्षा करें । ( येन संगच्छे ) जिससे मैं मिलूँ ( मा उपशिक्षात् ) वह मुझे शिक्षा देवे । हे ( पितरः ) रक्षको ! ( संगतेषु चारु वदानि ) सभासभामें मैं उत्तम रीतिसे बोल्हूँगा ॥ १ ॥

हे स मे ! ( ते नाम विष ) तेरा नाम इमें बिदित है । ( नरिष्ठा नाम वा असि ) ' नरिष्ठा ' अर्थात् अहिंसक यह तेरा नाम वा यज्ञ है । ( ये के च ते समासदः ) जो कोई तेरे सभासद हैं ( ते मे सर्वावसः सन्तु ) वे सुप्त राजासे समताका भाषण करनेवाले हों ॥ २ ॥

भाषार्थ—ग्रामसमिति और राष्ट्रसभा राष्ट्रमें होनी चाहिये और राजा को उनका पुत्रीवत् पालन करना चाहिये । ये दोनों सभाएँ एकमत स राष्ट्रका कार्य करें और प्रजारजन करनेवाले राजाका पालन करें । राजा जिस सभासद से राज्यशासनाधिपत्यक समति पूछे, वह सभासद योग्य समिति राजाको देवे । राजा तथा अन्य सभासद सभाओंमें सम्मतासे वादविवाद कर ॥ १ ॥

इन लोकसभाओंका नाम ' नरिष्ठा ' है, क्योंकि इनके होनेसे राजा का भी नाश नहीं होता और प्रजाका भी नाश नहीं होता है । इन सभाओंके जो सभासद हों, ये राजासे अपनी समति निष्पक्षपातसे स्पष्ट शब्दों में कहें ॥ २ ॥

एषामह समासीनानां वर्षीं विद्वानमा ददे ।

अस्याः सर्वस्याः ससदो भामिन्द्र भगिर्न कृणु ॥ ३ ॥

यद् नो मनः परागतं यद् बद्धमिह धेह पा ।

तव ह आ वर्तयामसि भविष्यो रमतां मनः ॥ ४ ॥

अर्थ—(एषां समासीनानां) इन बैठे हुए सभासदोंसे (विद्वानमा वर्षीः अहं आवदे) विशेष ज्ञानरूपी तेज मैं—राजा—स्वीकारता हूँ। हे इन्द्र ! (अस्याः सर्वस्याः ससदः) इस सब सभा का (भां भगिर्न कृणु) मुझे भागी कर ॥ ३ ॥

हे सभासदो ! (यः यत् मनः परागतं) आपका जो मन दूर गया है, (यत् वा इह वा इह वा पद) जो इसमें अपना इस विषयमें बसा रहा है, (यः तत् आवर्तयामसि) आपके उस चिन्तको मैं पुनः लौटा लेता हूँ, अब आपका (मनः भविष्य रमतां) मन मेरे ऊपर रममाण होवे ॥ ४ ॥

भावार्थ—लोकसभाओंके सदस्योंसे राज्यशासनविषयक विशेष ज्ञान राजा प्राप्त करता है और तेजस्वी बनता है। अतः राजा ऐसे सभाओंसे राज्यशासनविषयक विज्ञानका भाग अवश्य प्राप्त करे और भाग्यवान् पड़े ॥ ३ ॥

लोकसभाका कार्य करनेके समय किसी सभासदका मन इधर उधर के कार्यमें गया, तो उसको उचित है कि, मनको वापस लाकर राज्य शासनके कार्यमें ही लगा देवे। सब सभासद राजा और उसका राज्य शासन कार्य इसीमें अपना मन लगा देवें ॥ ४ ॥

राज्यशासनमें लोकसमिति ।

ग्रामसभा ।

राज्यशासन चलानेके लिये एक ग्रामसभा होनी चाहिये। ग्रामके लोगोंद्वारा चुने हुए सदस्य इस ग्रामसभा का कार्य करें। ग्राममें जो जो कार्य आरोग्य, न्याय, शिक्षा, धर्मरक्षा, उद्योगशुद्धि आदिके विषयमें होंगे, उनको निभाना इस ग्रामसभाका कार्य है। यह ग्राम—सभा अपने कार्य करनेके लिये पूर्ण स्वतंत्र होगी, इसका अर्थ यह है कि, प्रत्येक ग्राम अथवा नगर पूर्ण स्वराज्यके अधिकारोंसे युक्त होगा।

त्रिस प्रकार प्रत्येक मनुष्य अपनी उन्नतिकी कार्य करनेके लिये स्वतंत्र होता है, परंतु सार्वजनिक सर्पहितकारी कार्य करनेके लिये परवश होता है; ठीक उसी प्रकार प्रत्येक ग्राम या नगर अपनी सर्व प्रकारसे उन्नति साधन करनेके लिये पूर्ण स्वतंत्र है, परंतु सार्वदेशिक अथवा सार्वराष्ट्रीय उन्नतिके कार्योंके लिये प्रत्येक ग्राम राष्ट्रीय नियमोंसे बंधा रहेगा ।

## राष्ट्रसभा ।

सैसी प्रत्येक ग्रामके लिये ग्रामसभा, नगरके लिये नगरसभा होती है, उसी प्रकार प्रांतके लिये प्रांतसभा और राष्ट्रके लिये “ राष्ट्रीय महासभा ” होती है और यह सब राष्ट्रका शासन करती है । ग्रामसभाका अधिकार ग्रामपर और राष्ट्रसभाका राष्ट्रपर होता है । यही दो समार्य इस सूक्तमें कही हैं । ग्रामसभा और राष्ट्रीय महासमिति इन दोनोंका वर्णन होनेसे बीचकी नगरसभा और प्रांतसभा आदि सब समार्योंका वर्णन होचुका है, ऐसा समझना योग्य है । आदि और अन्तका ग्रहण करनेसे सब बीचमें स्थित अवस्थाओंका ग्रहण होजाता है । इस सार्वत्रिक नियमके अनुसार इन मंत्रोंमें ग्रामसभा और राष्ट्रसभाका वर्णन होनेसे बीचकी सब उपसमार्योंका वर्णन हुआ है, ऐसा पाठक समझे ।

## जनसभाका अधिकार ।

इन प्रवासमार्योंका अधिकार क्या है, यह एक विचारणीय प्रश्न है, इसका उत्तर इन मंत्रोंका विचार करनेसे ही मिल सकता है । प्रथम मंत्रमें कहा है कि—

सभा च समितिः च प्रजापतेः सुहितरौ ॥ ( म० १ )

“ ग्रामसभा और राष्ट्रीय महासभा ये दोनों प्रजाका पालन करनेवाले राजाकी दो पुत्रियाँ हैं । ” अर्थात् इन दोनों समार्योंका पिता राजा है और उसकी दो लड़कियाँ ये समार्य हैं । यही उत्तर इनका अधिकार निश्चित करनेके लिये पर्याप्त है ।

पिता पुत्रीका धनक है, परंतु उसका मोय करनेवाला नहीं । पुत्री पिताके अधिकारके नीचे हमेशा नहीं रहेगी, पुत्रीपर अधिकार किसी और का होगा, पिताका नहीं । इसी प्रकार राजाकी आज्ञासे राष्ट्रसभा और ग्रामसभा स्थापित होती है, राजाकी अनुमतिसे इन समार्योंके सदस्य चुनने और समार्योंके चलानेके नियम बनते हैं, इसलिये राजाही इन समार्योंका पिता, धनक अथवा उत्पादक होता है । तथापि उत्पत्ति और रक्षा

करनेकाही अधिकारी राजा है, वह उन समारंभोंपर पतिके समान शासन नहीं थला सकता । राजा इन समारंभोंका पिता या जनक है, परंतु पति अथवा शासक नहीं । लोकसभा राजाकी भोग्य नहीं । राजाके अधिकारसे निम्न लोकसभाका अधिकार स्वतंत्र है, इसी उद्देश्यसे सक्त मंत्रमें कहा है कि—

सभा च सामितिः च प्रजापालेः पुष्टितरो । ( म० १ )

“ ये दोनों सभाएं प्रजापालक राजाकी दुष्टितार्य हैं । ” यहाँ दुष्टिता छन्द विषय महत्वका है । श्रीमान् वास्काचार्यन इस छन्दकी व्युत्पत्ति इस प्रकार दी है—

पुष्टिता पूरे हिला । ( निरु० ३ । १ । ४ )

“ जो दूर रहनेपर हितकारक होती है वही दुष्टिता है । ” धर्मपत्नी पास रखने योग्य है, दुष्टिता या पुत्री दूर रखनेयोग्य है । इस व्युत्पत्तिसे स्पष्ट होजाता है, यह लोकसभा राजाकी दुष्टिता होनेके कारण ही उसके अधिकारसे बाहर रहनी चाहिये । अर्थात् ये दोनों सभाएं स्वतंत्र हैं । राजाके नियंत्रणसे ये दोनों समारंभ बाहर हैं । यह लोकसभाका अधिकार है । लोकसभाक समासद पूर्ण निर्णय हैं, सत्त्वमय प्रदर्शन करनेके लिये उनको राजासे भयभीत होना नहीं चाहिये । पूर्ण निडर होकर जो सत्य होगा, वह उनको कहना योग्य है ।

ये समारंभ ( सविदाना-ऐक्यमस्य प्राप्ता ) एकमतसे ही सब राष्ट्रका शासन व्यवहार करें। सब सदस्योंका एकमत न हो सकनेकी अवस्थामें बहुमत से कार्य करना योग्य है । परंतु बहुमतसे कार्य करना आपत्कालही समझना चाहिये, क्योंकि वेदकी आह्वा वो ( सविदाना ) एकमतसे अर्थात् सर्वसमितिसेही कार्य करनेकी है । लोकसभामें सब सदस्योंकी सर्वसमिति से जो निर्णय होगा, वह राजाके लिये भी बचन कारक होगा । इतना महत्व लोकसभाकी सर्वसमिति है । तथा यह निर्णय प्रजाके लिये भी बचनकारक होगा ।

## राजाके पितर ।

राष्ट्रसमितिके समासद ये राजाके पितर हैं । इस छक्तमें राजाने उनको, ' पितर । ' करके ही संबोधन किया है देखिये—

आक वदामि पितर। सगतेयु । ( म० २ )

“ हे पितरों ! अर्थात् हे राष्ट्रमहासभाके सब सदस्यों ! समारंभोंमें मैं याग्य मापण करूंगा । ” अर्थात् सम्प्रसासे युक्त मापण करूंगा । कभी नियमनाश मेरा मापण न होगा । हे समासदों ! सब सदस्य भी सदा इसी प्रकार सम्प्रसाके नियमोंके अनुकूल

माषण किया करें। इस मंत्रमागमें राजाने लोकसभाके समासदोंका 'पितरः' शब्द प्रयुक्त किया है। यह शब्द यहाँ देखनेयोग्य है।

लोकसभा, अथवा राष्ट्रसमिति राजाकी पुत्रियाँ हैं यह ऊपर कहा है। अब यहाँ कहा जाता है कि, इन समासोंके सदस्य राजाके 'पितर' हैं, यह कैसे हो सकता है? इस प्रश्नका उत्तर इसनाही है कि यहाँ केवल पाद्य अर्घ्य लेना उचित नहीं है, यहाँ माष और श्रद्धाका मूसार्य लेना चाहिये। पितर शब्दका अर्थ रक्षक है और उत्पादक भी है। दोनों अर्थ यहाँ लगते हैं। राजसभाके समासद राजाको चुनते और उसको राजगद्दीपर बिठलाते हैं, इसलिये वे उसके उत्पादक, जनक और पिताके समान भी हैं। इसी प्रकार राजाका उचित व्यवहार रहनेतक वे उसको राजगद्दीपर रखते और राजा अनुचित व्यवहार करने लमा, तो उसको हटाकर उसके स्थानपर सुयोग्य वृत्तरा राजा नियुक्त करते हैं, इसलिये वे राष्ट्रसभाके सदस्य राजाके रक्षक भी हैं, अर्थात् सब प्रकारसे ये सदस्य राजाके पितर हैं।

'पितृदेवो भव' पिताको देवताके समान मानकर उसका सम्मान कर, यह आज्ञा वेदानुसृत है। इस लिये राजाको उचित है कि, वह राष्ट्रमहासभाके सदस्योंका सम्मान करे, उनका गौरव करे और कभी उनका अपमान न करे। राष्ट्रसभाका यह अधिकार है।

### राजाके शिक्षक ।

राष्ट्रसभाके सदस्य राजाके गुरु भी हैं। इस विषयमें प्रथम मंत्रका माग देखने योग्य है—  
येन सगच्छे, सः मा उपशिक्षात् । ( म० १ )

'हे गुरुजनो ! हे राष्ट्रसभाके सदस्य ! तुममेंसे जिससे मैं राष्ट्रशासनके कार्यमें समर्थ पहुँचूँ, वह उस विषयमें अपनी समर्थि देकर मुझे उत्तम योग्य शिक्षा देने।' अर्थात् राजाको योग्य शिक्षा देनेवाले उत्तम गुरु राष्ट्रसभाके सदस्य हैं। ये राजाको गुरुस्थानीय हैं। 'आचार्यदेवो भव' अर्थात् गुरुजनोंका समान करना चाहिये, यह आज्ञा वैदिकधर्मकी है। इसके अनुसार वैदिकधर्मोंका राजा को उचित है कि, वह राष्ट्रसभाके सदस्योंका गौरव करे और उनसे पूर्ण आदरके साथ वर्तन करे। राष्ट्रसभा के सदस्योंका यह अधिकार है।

### समासद सत्यवादी हों ।

राजसभा अथवा किसी अन्यसभाके समासद ( सभासदः ) समान माषण करनेवाले अर्थात् वैसा देखा, माना और अनुभव किया है वैसाही सत्यसत्य बोलनेवाले हों। या वैसा सत्य एकबार कहा होगा, वैसाही सत्य प्रसंग जानेपर कहनेवाले हों। उनमें

मदल बदल करके ' हा ' को ' हा ' मिलानेवाले ' हाथी ' बहादुर न हों । निर्मय हो कर जो सत्य होगा, वही राजाको कह दें । राष्ट्रका हित किस बातमें है, इसका विचार करके जो अपना मत होगा, वह योग्य रीतिसे कहनेमें किसीसे न डरे । यह समासदों का कर्तव्य है । ( म० ९ )

## तेजप्रदाता और विज्ञानदाता ।

राजाका सेवा राष्ट्रसभाके सदस्योंसे प्राप्त होता है । इस विषयमें तृतीय मंत्रका कथन देखने योग्य है—

एषां समासीनानां वर्षाः विज्ञानं अहं आददे । ( म० ३ )

“ राष्ट्रसभाके इन सदस्योंसे मैं राजा ( वर्षा ) तेज प्राप्त करता हूँ और ( विज्ञान ) विशेष ज्ञान भी प्राप्त करता हूँ । ” यहाँ का विज्ञान राज्यशासन चलानेके विषयका विशेष ज्ञान ही है । प्रजाका हित क्या करनेसे हो सकता है, इस समय सबसे प्रथम कौनसी बात करनी चाहिये, इस समय प्रजाको कौनसे कष्ट हैं और उन कष्टोंको किस ढंगसे दूर करना चाहिये; इत्यादि विषयमें प्रजाके प्रतिनिधियोंकी योग्य समिति योग्य समय पर राजाको मिली, और तदनुसार राजाने राज्यशासन का कार्य किया, तो सब का हित हो जाता है । यह विज्ञान राष्ट्रसभाके सदस्य राजाको देंगे और राजामी उनसे समिति प्राप्त कर उचित शासनप्रबंध द्वारा सबका कल्याण करे ।

इस प्रकार प्रजा समितिसे राज्यशासन करनेवाला राजा बिरकाल राज्यपर रह सकता है और बड़ा तेजस्वी होसकता है । इसके विरुद्ध जो राजा प्रजाके प्रतिनिधियों की समिति न मान कर, अपने मन चाहे अत्याचार प्रजापर करेगा, वह राजगद्दीसे हटाया जायगा । वेदकी समिति राज्यशासनके विषय में यह है ।

## राजाका माग्य ।

राजाका संपूर्ण माग्य, ऐश्वर्य, अधिकार और वर्षस्व राष्ट्रसभाकी अनुमतिसे ही होता है । अन्यथा राजा किसी कारण भी ' राजा ' नहीं रह सकता । यह बात स्वयं राजाही कहता है, देखिये—

अस्याः संसदा मां भगिन कृणु ॥ ( म० ३ )

“ इस सभाका मुझे मागी कर । ” अर्थात् इस सभाकी अनुमतिसे रहनेके कारण मैं माग्यवान् बन् । मैं इस सभाकी अनुमतिका मागी बन्ना, अर्थात् जो निम्न समा

करगी, वह मैं मानूंगा और वैसे कार्य करूंगा । मैं उसका विरुद्ध आचरण कदापि न करूंगा । इस प्रकार जो राजा आचरण करेगा, वह माग्यमान् बन जायगा, इसमें कोई संशय नहीं है । अर्थात् राजाका माग्य प्रथाका रक्षण करनेसे ही बड़ता है, नहीं तो नहीं; यह बात यहाँ सिद्ध होगई है ।

### दत्तचित्त समासद ।

राष्ट्रसभाके, नगरसमिधिके अथवा किसी समाके समासद अपनी अपनी समाके कार्यमें दत्तचित्त रहे । किसीका मन इधर किसीका उधर ऐसा न हो । सब अपना मन समाके कार्यमें स्थिर रखकर समाका कार्य अपनी पूर्ण शक्ति लगाकर बर्हातक हो सके बर्हातक निर्दोष बनाये । इसका उपदेश इस छन्दमें निम्नलिखित प्रकार है ।—

यत्तु नो मनः परागतं यत् पद्धमिह वेह वा ।—

तद् आचर्तव्यमसि ॥ ( म० ४ )

“हे समासदो ! यदि आपका मन दूर भाग गया हो, अथवा यहाँ ही इधर उधरके अभ्यान्व बातोंमें लगा हो, उसको मैं वापस लाता हूँ ।” अर्थात् मन चंचल है, वह इधर उधर दौड़ता ही रहेगा । परंतु दृढनिश्चय करके उसको कर्तव्यकर्ममें स्थिर रखना चाहिये । और अपनी संपूर्ण शक्ति लगा कर अपना कर्तव्य बर्हातक हो सके बर्हातक निर्दोष बनाने का यत्न करना चाहिये । हरएक समासद यदि अपने मनको कहीं और ही कार्यमें लगावगा, तो समा करनेका प्रयोजन कदापि सिद्ध नहीं हो सकता । इस लिये हरएक समासदका कर्तव्य है कि, वह अपना मन समाके कार्यमें लगावे और अपनी पूरी शक्ति लगाकर समाका कार्य निर्दोष करनेके लिये अपनी पराकाष्ठा करे । इस मंत्रमाममें समासदोंका कर्तव्य कहा है । समाके समासद इसका अवश्य विचार करें ।

### नरिष्टा समा ।

इस छन्दके द्वितीय मंत्रमें समाका नाम ‘नरिष्टा’ कहा है । ‘नरिष्टा’ के दो अर्थ हैं । एक ( नरिः इष्टा ) नर अर्थात् नेता मनुष्योंका जो इष्ट है, प्रिय है अथवा नरता जिसको चाहत है । समाको मनुष्य चाहत हैं क्यों कि, इस समाद्वाराही जनताके कष्ट राजाको विदित हो जात हैं और तत्पश्चात् राजा जनको दूर कर सकता है । इस प्रकार समाके होनेसे जनताका सुख बढ सकता है, इस लिये जनता समाओंको पसंद करती है ।

‘नरिष्टा’ छन्दका दूसरा अर्थ है ( न-रिष्टा ) अर्थात् जो किसीका नाश

नहीं करती और जिसका नाश कोई नहीं कर सकता । समाके कारण प्रजाका नाश नहीं होता और जनमतके अनुसार चलनेवाले राजाकी भी रक्षा होजाती है, इसलिये राजाका भी नाश नहीं होता । इसी प्रकार जनता स्वयं राष्ट्रसमाका नाश नहीं करना चाहती और राजाका अधिकार ही नहीं है कि, जो इस राष्ट्रसमाका नाश कर सके । इस रीतिसे सब प्रकार यह समा 'अधिनाशक' है ।

इस सूक्तमें इस प्रकार वैदिक राज्यशासनके कुछ सिद्धांत कहे हैं । इनका पाठक उचित मनन करे ।

## शत्रुके तेजका नाश ।

[ १३ ( १४ ) ]

( ऋषिः—अथर्षा द्विपोषर्षोऽर्तुक्रामः । दत्ता—सोमः )

यथा सूर्यो नक्षत्राणामुर्धस्तेर्जास्वाददे ।

एवा स्त्रीणां च पुंसां च द्विपतां वर्ष आ ददे ॥ १ ॥

यावन्तो मा सपत्नानामायन्तं प्रतिपश्यथ ।

उद्यन्तस्यैव सुपत्नानां द्विपतां वर्ष आ ददे ॥ २ ॥

॥ इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

अर्थ—( यथा उद्यन् सूर्यः ) जैसा उदय होता हुआ सूर्य ( नक्षत्राणां तेर्जासि आददे ) तारोंके प्रकाशोंको लेता है, ( एवा द्विपतां स्त्रीणां च पुंसां च ) उसी प्रकार द्वेष करनेवाले स्त्रियों और पुरुषोंका ( वर्षः आददे ) तेज में लेता ॥ १ ॥

( सपत्नानां यावन्तः ) शत्रुओंमें से जितने ( मां आयन्त प्रतिपश्यथ ) मुझे आते हुए देखते हैं, उन ( सुपत्नानां द्विपतां वर्षः आददे ) सोते हुए शत्रुओंका तेज वर्षाय लेता है । ( सूर्यः इव ) जैसा सूर्य लेता है ॥ २ ॥

माधार्थ—शत्रु स्त्री हो अथवा पुरुष हो, यह सोता हो अथवा जागता हो, जो कोई शत्रुता करता है उसका तेज कम करना चाहिये, अर्थात् उस से अपना तेज बढ़ाना चाहिये ॥ १—२ ॥



## शत्रुका तेज घटाना ।

इस सूक्तमें शत्रुका तेज घटानेका उपाय कहा है । पाठक इसका उत्तम मनन करे । नक्षत्र और सूर्य की उपमासे यह विषय कहा है । जिस प्रकार सूर्य उदय होनेके पूर्व नक्षत्र चमकते रहते हैं, परंतु सूर्यका उदय होते ही नक्षत्रोंका तेज इसका हो जाता है । इसमें नक्षत्रोंका तेज घटानेके लिये सूर्य कोई यत्न नहीं करता है, परंतु सूर्य अपना तेज बढ़ाता है जिससे आपही आप नक्षत्रोंका तेज घटता है । इसी प्रकार श्रेष्ठ करने वालोंका विचार न करते हुए, अपना तेज बढ़ानेका यत्न करना चाहिये । जो शत्रुके तेजको घटानेका यत्न करेंगे वे फसेंगे, परंतु जो सूर्यके समान अपना तेज बढ़ानेका यत्न करेंगे उनका अम्बुदय होगा । शत्रुका विचार करनेके समय 'सूर्य और नक्षत्रोंका दृष्टान्त' पाठक ध्यानमें धारण करे । इससे पाठकोंको पता लग जायगा कि, शत्रुका तेज घटानेके लिये हमें क्या करना चाहिये । शत्रुकी शक्तिके कई गुणा अधिक शक्ति हमें प्राप्त करनी चाहिये, जिससे शत्रुकी शक्ति स्वयं घट जायगी और वह स्वयं नीच दब जायगा ।

## उपासना ।

[ १४ ( १५ ) ]

( अग्निः- अथर्वा । देवता- सविता । )

अग्निं त्वं देव सवितारं मोष्याः कृषिर्कृतुम् ।

अर्चामि सत्यस्य रत्नधाम्नि प्रियं मतिम् ॥ १ ॥

अर्थ- ( ओष्याः ) सवितार ) रक्षा करनेवाले शुक्लोक और पृथ्वी लोकके ( सवितार ) उत्पादक सूर्य, जो ( कृषि-कृतु ) शानी और कर्मकर्ता है, ( सत्य-स्य रत्नधा ) सत्यका प्रेरक और रमणीयताका धारक है और जो ( प्रिय मति ) प्रिय और मननीय है, ( त्वं देव आभि अर्चामि ) उस देवकी मैं पूजा करता हूँ ॥ १ ॥

भाषार्थ-सपूर्ण जगत्की रक्षा करनेवाला, सत्यका उत्पादक, शानी, जगत्कर्ता, सत्यका प्रेरक, रमणीय पदार्थोंका धारककर्ता, सत्यका प्यारा, सत्यका द्वारा ध्यान करने योग्य जो सविता देव है, उसकी मैं उपासना करता हूँ ॥ १ ॥

ऊर्ध्वा यस्यामतिर्मा अदिद्युतत् सर्वाग्नि ।

हिरण्यपाणिरभिमीत सुक्रतुः कृपात् स्वर्गः ॥ २ ॥

सावीर्हि देव प्रथमार्य पित्रे वर्ष्मार्णमस्मै वरिमाणमस्मै ।

अथास्मभ्यै सवितर्वापाणि दिवोर्दिव आ सुवा मूरि पशवः ॥ ३ ॥

दम्ना देवः सविता वरेण्यो दधद् रत्न दध्म पितृभ्य आर्युपि ।

पिषात् सोमं ममददनमिष्टे परिन्मा चित् क्रमते अस्य धर्मेणि ॥ ४ ॥

अर्थ- ( यस्य अमतिः माः ) जिसका अपरिमित तेज (सर्वाग्नि ऊर्ध्वा अदिद्युतत्) उसकी आज्ञामें रहकर ऊपर फैलता हुआ सर्वत्र प्रकाशित होता है । यह ( सुक्रतुः हिरण्यपाणिः ) उत्तम कर्म करनेवाला तेजही जिसका हस्त है, ऐसा यह देव ( कृपात् स्वः अभिमीत ) अपनी शक्तिसे प्रकाशको निर्माण करता है ॥ २ ॥

हे देव ! तू ( प्रथमार्य पित्रे हि सावीः ) पहिले पालकके लियेही इसको उत्पन्न करता है । और ( अस्मै वर्ष्माण ) इसको देह । ( अस्मै वरिमाण ) इसको श्रेष्ठता, हे ( सविता ) सविता देव ! ( अथ अस्मभ्य वापाणि ) हमारे लिये बहुत वरणीय पदार्थ, ( मूरि पशवः ) बहुत पशु आदि सब ( दिवः दिवः आसुव ) प्रतिदिन प्रदान कर ॥ ३ ॥

हे देव ! तू ( सविता वरेण्यः ) सबका प्रेरक, श्रेष्ठ, और ( दम्नाः ) शमदमयुक्त मनवाला है । तू ( पितृभ्यः रत्न दध्म आर्युपि ) पिताओंको रत्न, धन और आयु ( दधत् ) वारण करता रहा है । ( अस्य धर्मेणि सोम पिषात् ) इसीके धर्मशासनमें सोमसरूपी अन्न छेते हैं । वह ( एन ममदत्त ) इसको आनदित करता है । ( परिन्मा इष्ट चित् क्रमते ) यह गतिमान् इष्ट स्थानके प्रति संचार करता है ॥ ४ ॥

भावार्थ-जिसकी कान्ति अपरिमित है, जिसकी आज्ञाम रहकर उसीका तेज सर्वत्र फैलता है, जो उत्तम कार्य करता है और तेजके किरणही जिसके हाथ हैं, वह अपनी शक्तिस आत्मतेज फैलाता है ॥ २ ॥

इस देवने जो प्रारम्भमें मनुष्य जन्मे थे, उनके लिये सब कुछ आवश्यक पदार्थ उत्पन्न किये थे । इन मनुष्योंके लिये देह, श्रेष्ठता, आदि यही देता है । वही हमारे लिये बहुत पदार्थ, पशु आदि सब प्रतिदिन देगा ॥ ३ ॥

यह देव सबका प्रेरक, सबसे श्रेष्ठ, मानसिक शक्तियोंका दमन करने वाला है। इसीने पूर्वकालके मनुष्योंको बन बल और आयु दी थी। इसीकी शक्तिसे प्रभावित हुई वनस्पतियाँ मनुष्यादि प्राणियोंको अन्नरस देकर पुष्टि करती हैं। इसीसे सबको आनन्द मिलता है। यह देव सर्वत्र अमृति वद रीतिसे संचार करता है ॥ ४ ॥

उपास्य देवका यह वर्णन स्पष्ट है। अतः इसका विशेष स्पष्टीकरण आवश्यक नहीं है। द्विजोंके गायत्री मंत्रकी ओ देवता है, वही 'सविता' देवता इसकी है और गायत्री मंत्रके "देव, सविता, वरेभ्यः," इत्यादि शब्द जैसेके जैसे ही इस सूक्तमें हैं, मानो गायत्री मंत्र का ही अधिक स्पष्टीकरण इस सूक्तमें है। यदि पाठक गायत्रीमंत्रक साथ इस सूक्तकी तुलना करके देखेंगे, तो उनको अर्थज्ञान के विषयमें बहुत लाभ हो सकता है।

[ १५ (१५) ]

( अविः— सृगुः । देवता—सविता )

तां संवितः सत्यसर्वां सुचित्रामाह वृषे सुमर्ति विश्ववारां ।

वामस्य कण्वो अशुहत् प्रपीनां सुहस्रवारां महियो मगाय ॥ १ ॥

अर्थ—हे ( सविताः ) उत्पादक प्रभो ! ( अह सत्यसर्वां ) मैं सत्यकी प्रेरणा करनेवाली, ( सुचित्रां विश्ववारां तां सुमर्ति ) विलक्षण, सबकी रक्षा करनेवाली उस उत्तम बुद्धिको ( आशुणे ) स्वीकारता हूँ, ( यां सह स्रवारां प्रपीनां ) जिस सहस्रवाराओंसे पुष्ट करनेवाली शक्तिको ( अत्य मगाय ) अपने भाग्यके लिये ( महियोः कण्वः अशुहत् ) बलवान् हमी दोहन करता है, प्राप्त करता है ॥ १ ॥

भावार्थ—जिस शक्तिको शानी लोग प्राप्त करते हैं और श्रेष्ठ धर्मते हैं, उस सत्यप्रेरक, विलक्षण शक्तिवाली, सबकी रक्षा करनेवाली, उत्तम मति रूप बुद्धि शक्तिको मैं स्वीकारता हूँ ॥ १ ॥

गायत्री मंत्रमें कहा है कि, ( धियो यो नः प्रचोदयात् ) अपनी बुद्धियोंको सवितादेव प्रवृत्ता देता है। वही वर्णन अथ शब्दोंसे यहाँ है। गायत्रीमंत्रमें ' धी, धियः ' शब्द है, उसके बदल यहाँ ' सुमर्ति ' शब्द है। पूर्व सूक्तक समान ही यह मंत्र गायत्री मंत्र का ही आद्य विशेष स्पष्ट करता है।

## सौभाग्य के लिये बढाओ ।

[ १६ (१७) ]

( ऋषिः—भृगुः । देवता—सविता )

वृहस्पते सर्वितर्षर्ष्येन ज्योतर्षेन महते सौमगाय ।

संक्षितं चित् सतरं स क्षिणाधि विश्वं एनमनु मदन्तु देवाः ॥१॥

अर्थ—हे ( वृहस्पते सविता ) ज्ञानपते, हे उत्पादक देव ! ( एन वर्षय ) इसको बढा, ( एन महते सौमगाय ज्योतय ) इसको बढे सौभाग्यके लिये प्रकाशित कर । ( सक्षित स-तर चित् सक्षिणाधि ) पहिले ही तीक्ष्ण बुद्धिवालेको अधिक उत्तम बनानेके लिये शिक्षासे युक्त कर । ( विश्वे देवाः एन अनु मदन्तु ) सब देवताओंके इसका अनुमोदन करें ॥ १ ॥

भावार्थ— हे ज्ञानी देव ! हम सब मनुष्योंको बढाओ, हम बढा ऐश्वर्य प्राप्त होनेके लिये तुम्हारा प्रकाश अर्पण करो । हममें जो पहिले से तेजस्वी लोग हैं, उनको अधिक तेजस्वी बनानेके लिये उत्तम शिक्षा प्राप्त होवे और देवी शक्तियोंकी सहायता सबको प्राप्त होवे ॥ १ ॥



पृथ्वी, आप, तेज, वायु, सूर्य वनस्पति आदि देवताओंकी सहायता हमें उत्तम प्रकार प्राप्त हो और उनकी शक्ति प्राप्त करके हम अपनी सफलता साधन करेंगे और ऐश्वर्य के भागी हम बनेंगे । ईश्वर ऐसी परिस्थितिमें हमें रखे कि, जहाँ हमें सफल करनेके कार्यमें किसीका विरोध न होवे और हम अच्छा उन्नतिका साधन कर सकें ।

# धन और सद्बुद्धिकी प्रार्थना ।

[ १७ ( १८ ) ]

( ऋषिः—भृगुः । देवता—धाता, सविता )

धाता दधातु नो रयिमीशानो जगत्स्पतिः ।

स नः पूर्णेन यच्छतु ॥ १ ॥

धाता दधातु दाशुषे प्रार्थी जीवातुमक्षिताम् ।

वय देवस्य वीमहि सुमतिं विश्वरीचसः ॥ २ ॥

धाता विश्वा वार्या दधातु प्रजाकामाय दाशुषे दुरोणे ।

तस्मै देवा अमृतं स व्ययन्तु विश्वे देवा अदितिः सजोषाः ॥ ३ ॥

अर्थ—( धाता जगतः पतिः ईशानः ) धारणकर्ता, जगत् का स्वामी, ईश्वर ( नः रयिं दधातु ) हमें धन देवे । ( सः नः पूर्णेन यच्छतु ) वह हमें पूर्ण रीतिसे देवे ॥ १ ॥

( धाता दाशुषे ) धारणकर्ता ईश्वर दाताके लिये ( प्रार्थी अक्षिता जीवातु दधातु ) प्राप्त करनेयोग्य अक्षय जीवनशक्ति देवे । ( वय विश्वरीच सः देवस्य सुमतिं ) हम सपूर्ण धर्मोंके स्वामी ईश्वरकी सुमति ( वीमहि ) ध्यान करते हैं ॥ २ ॥

( धाता प्रजाकामाय दाशुषे ) धारक ईश्वर प्रजाकी इच्छा करनेवाले दाता के लिये ( दुरोणे विश्वा वार्या ) उसके घरमें सपूर्ण वरणीय पदार्थों को ( दधातु ) धारण करे । ( विश्वे देवाः ) सय देव, ( सजोषाः अदितिः ) प्रीतियुक्त अनन्त देवी शक्ति, तथा ( देवाः ) अन्य स्वामी ( तस्मै अमृतं स व्ययन्तु ) उसके लिये अमृत प्रदान करें ॥ ३ ॥

भावार्थ—जगत् का धारण और पालन करनेवाला ईश्वर हमें पूर्ण रीतिसे विपुल धन देवे । वह हमें दीर्घ जीवनकी शक्ति देवे । हम उसकी सुमति ध्यान करते हैं । सत्तानकी इच्छा करनेवाले दाताको उसका घर में—गृहस्थ के घरमें—रहने योग्य सब पदार्थ प्राप्त हों । सय देव दाताको

पाता रातिः संभितेदं क्षुपन्तां प्रजापतिर्निधिपतिर्नो अग्निः ।

त्वष्टा विष्णुः प्रजया संरराणो यजमानाय द्रविण दधातु ॥ ४ ॥

अर्थ—(पाता रातिः सविता)भारक,दाता,उत्पादक, (मिधिपतिः प्रजापतिः अग्निः ) निधिका पालक, प्रजारक्षक, प्रकाशरूप देव ( नः इदं क्षुपन्तां ) हमें यह देवे । तथा ( प्रजया संरराणः त्वष्टा विष्णुः ) प्रजाके साथ आन हमें रहनेवाला सूक्ष्म पदार्थोंको बनानेवाला व्यापक देव ( यजमानाय द्रविण दधातु ) यज्ञकर्ताको धन देवे ॥ ४ ॥

अमरत्वकी प्राप्ति करावें । सब जगत्का धारक, धनदाता, सपूर्ण विश्व का उत्पादक, ससाररूपी स्रजानेका रक्षक, सबका पालक, एक प्रकाश स्वरूप देव है, वह हमें सब प्रकारका सुख देवे । सब सूक्ष्मसे सूक्ष्म पदार्थोंका निर्माता, व्यापक देव उत्पादक को बनादि पदार्थ देवे ॥ १-४ ॥

यह प्रार्थना सुशेष है अतः स्वीकरण करनेकी आवश्यकता नहीं है ।

## स्वेतीसे अन्न ।

[ १८ ( १९ ) ]

( ऋषिः— अथर्व । देवता—पृथिवी, पर्जन्यः )

प्र नमस्व पृथिवि मिद्रीदुद दिव्य नमः ।

उदनो दिव्यस्य नो धातुरीक्षानो वि ष्या रतिम् ॥ १ ॥

न प्रस्तताप न हिमो ब्रह्मान् प्र नमतां पृथिवी शीरदानुः ।

आपभिदस्मै पूतमित् धरन्ति यत्र सोमः सदमित् यत्र मद्रम् ॥ २ ॥

अर्थ—हे पृथिवि ! तू ( धनमस्य ) उत्तम प्रकार पूर्ण हो । हे ( पाता ) धारक देव ! तू ( ईशानः ) हमारा ईश्वर है इस लिये ( इदं दिव्य नमः भिन्धि ) इस दिव्य भेषको छिन्नभिन्न कर और ( दिव्यस्य उन्दः रतिं विष्प ) दिव्य जलक भरे वर्तन को खोल दे ॥ १ ॥

( धन् न तताप ) उष्णता करनेवाला सूर्य नहीं तपाना, ( हिमः न

अधान ) हिम भी पीछित नहीं करता । ( जीरवानुः पृथिवी प्र नभता )  
अन्न देनेवाली पृथ्वी पूर्ण की जावे । ( आपः पित् अस्मै ) जल इसके  
लिये ( घृत इत् क्षरन्ति ) घी जैसा बहता है, ( यन्न सोमः ) जहाँ सोमा  
दि औषधियाँ होती हैं, ( तन्न सव इत् भद्र ) वहाँ सदाही कल्याण होता  
है ॥ २ ॥

भूमि हल आदि बलाकर अच्छी प्रकार तैयार की जावे । इसके बाद ईश्वरकी  
प्रार्थना की जावे कि, यह उत्तम प्रकार जल वर्षाके हमारी खेती उत्तम होनेमें सहायता  
देवे । बहुत गर्मी न पड़े, न बहुत पाछा पड़े, भूमिकी उत्तम प्रकार तैयारी की जाव,  
खेतीको पानी घी जैसा दिया जावे, अर्थात् न बहुत अधिक और न बहुत कम । इस  
प्रकार खेती करनेसे बहुत उत्तम वनस्पतियाँ उत्पन्न होती हैं और सब प्राणियोंका  
करवाण होता है ।

## प्रजाकी पुष्टि ।

[ १० ( २० ) ]

( आपिः—प्रजा । देवता—प्रजापतिः )

प्रजापतिर्जनयति प्रजा इमा घाता दधातु सुमनस्प्रमानः ।

सृजानानाः सर्जनसः सयोनयो मयि पुष्ट पुष्टपतिर्दधातु ॥ १ ॥

अर्थ—( प्रजापतिः इमाः प्रजाः जनयति ) प्रजापालक परमेश्वर इन  
सब प्रजाओंका उत्पन्न करता है, और ( सुमनस्प्रमानः घाता दधातु ) वही  
उत्तम मनवाला, धारक एवं इनका धारण करता है । इससे प्रजाप ( सृजा  
नानाः ) जान प्राप्त करके एक मतसे कार्य करमेवाली, ( समनसः ) एक  
विचारवाली और ( सयोनयः ) एक कारण से बची हो कर रहती हैं । इन  
प्रजाओंमें रहनेवाले ( मयि ) मुझे ( पुष्टिपतिः पुष्ट दधातु ) पुष्टीको देने  
वाला ईश्वर पुष्टि देवे ॥ १ ॥

प्रजाकी पुष्टि कैसी होगी अर्थात् प्रजाकी शक्ति कैसी बढ़ सक्ती है, इसका उपाय  
इस एकम कहा है, इसका नियम निम्नलिखित है—

१ सब प्रजापति एक ईश्वरको मानें और उसी एक द्रव्य को सबका उत्पादक समझें ।  
२ उसी ईश्वरकी शक्तिसे सबकी भारणा होती है ऐसा मानें और उसीको कर्ता धर्ता और हर्ता समझ ।

३ (सजानानाः) सब प्रजापति उचम ज्ञानसे युक्त हों और एकमतसे अपना कार्य करें ।

४ (समनसः) उचम द्युमसस्कार युक्त मन करके एक विचार से उचमविका कार्य करते जाय ।

५ (सयोनयः) एक कारणका ज्ञान करके सबको एक कार्यमें सघटित करें । अपने सघ बनावें और सघके नियमोंके बाहर कोई न जाय ।

इस प्रकार सघटना करनेवाले लोगोंको प्रसाधोपक ईश्वर सब प्रकारकी पुष्टि देता है । पाठक इसका विचार करें और अपनी उचमविका साधन इस सूक्तके उपदेशमें देख कर तदनुसार आचरण करके सफल हो जाय ।

## अनुमति ।

[ २० ( २१ ) ]

( ऋषिः—अथर्षा । देवता—अनुमतिः )

अन्वय नोनुमतिर्यज्ञ देवेभ्य मन्यताम् ।

अग्निर्भ हव्यपाह्नो मर्तवा दाशुपे मम ॥ १ ॥

अर्थ—( अथ नः अनुमतिः ) आज हमारी अनुमती ( देवेषु यज्ञ अनु मन्यतां ) देवता लोगोंके अन्दर सत्कर्म करनेके लिये अनुकूल होवे । ( हव्यपाहनः अग्निः ) हवनीय पदार्थोंको छ जानेवाला अग्नि ( मम दाशु पे अयतां ) हमारे दाताके लिये अनुकूल होय ॥ १ ॥

भाषार्थ—आज ही हमारी बुद्धि सत्कर्म करने के लिये अनुकूल होवे और अग्नि आदि की अनुकूलता हमें प्राप्त होवे ॥ १ ॥



अन्विदनुमते त्व मंससे श्व च नस्कृषि ।

क्षुपस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि ररास्व नः ॥ २ ॥

अनु मन्यतामनुमन्यमानः प्रजावन्त रभिमक्षीयमाणम् ।

तस्य वय हेडासि माषि भूम सुमृद्धीके अस्य सुमतौ स्याम ॥ ३ ॥

यत् ते नाम सुहव सुप्रणीतेनुमते अनुमत सुदानु ।

तेनां नो यद् पिपृहि विश्वारे रयि नो वेहि सुमगे सुवीरम् ॥ ४ ॥

अर्थ-हे ( अनुमते ) अनुकूल बुद्धी ! ( त्व इव अनुमत्ससे ) तू इस कार्य के लिये अनुमति देती है । ( नः य श कृषि ) हमारा कल्याण कर । ( आहु त हव्य क्षुपस्व ) हवन किये हुए पदार्थका स्वीकार कर । हे देवि ! ( नः प्रजां ररास्व ) हमें उत्तम सत्तान दे ॥ २ ॥

( अनुमन्यमानः ) अनुमोदन करनेवाला ( अक्षीयमाण प्रजावन्त यम अनुमन्यतां ) क्षीण न होनेवाला प्रजायुक्त यम प्राप्त करनेके लिये अनुमति देवे । ( तस्य हेडासि यम मा अपि भूम ) उसके कोषमें हम क्षीण न हों । ( अस्य सुमृद्धीके सुमतौ स्याम ) इसकी सुखकृति और सुमति में हम रहें ॥ ३ ॥

हे ( सु-प्र-नीते अनुमते ) उत्तम प्रकार नीति रखनेवाली अनुमति ! हे ( विश्ववारे ) सबको स्वीकारने योग्य ! ( यत् ते सुदानु सुहव अनुमत नाम ) जो तेरा उत्तम दानशील, उत्तम आगमय, अनुमतियुक्त पशु है, ( ततः नः यद् पिपृहि ) उससे हमारे सत्कर्मको पूर्ण कर । हे ( सुमगे ) सौभाग्यवाली ! ( न सुवीर रयि वेहि ) उत्तम धीरोंसे युक्त यम हमें दे ॥ ४ ॥

भाषार्थ- अनुकूल मति होनेसे ही यह सब कार्य होता है, इस लिये हमारी अनुमतिसे ऐसे कार्य होंगे, कि जो हमारा कल्याण करने वाले हों । हम जो दान करते हैं वह सत्कर्ममें लगे और हमें उत्तम सत्तान प्राप्त होवे ॥ २ ॥ क्षीण न होनेवाला यम और उत्तम प्रजा प्राप्त होनेके लिये जैसा सत्कर्म करना चाहिय वैसा करने में हमारी मति अनुकूल होवे । अर्थात् सदा उत्तम सुख देनेवाली सुमति हमारे पास होवे । और हम कभी कोषमें आकर सुमतिके विरुद्ध कार्य न करें ॥ ३ ॥ उत्तम नीति और सुमतिका पशु पशु है और उम में दान, त्याग, आदि श्रेष्ठ गुण हैं । इन गुणोंसे युक्त हमारे सत्कर्म हों और हमें धीरोंसे युक्त यम मिले ॥ ४ ॥

एम् यद्मनुमतिर्भगाम सुक्षेत्रायै सुवीरतायै सुवातम् ।

मद्रा मस्याः प्रमतिर्भवत् सेम यद्मभवत् देवगोपा ॥ ५ ॥

अनुमतिः सर्वमिदं बभूव यत् तिष्ठति चरति यद् च विश्वमेवंति ।

तस्यास्ते देवि सुमता स्यामानुमते अनु हि मत्स नः ॥ ६ ॥

अर्थ—(हम सुजात यज्ञ) इस प्रसिद्ध सत्कर्मके प्रति (अनुमतिः सुक्षेत्रतायै सुवीरतायै आजगाम) अनुमति उत्तम स्थान बनाने के लिये और उत्तम वीरता उत्पन्न होनेके लिये आगई है । (अस्याः प्रमतिः मद्रा बभूव) इसकी भेद्युद्धि कल्याण करनेवाली बनी है । (सा देवगोपा हम यज्ञ आ अवतु) वह देवोंद्वारा रक्षित हुई सुमति सब प्रकारसे इस सत्कर्मकी रक्षा करे ॥ ५ ॥

(यत् तिष्ठति) जो स्थिर है, (यत् चरति) जो चलता है, (यत् विश्व एजति) जो सबको चला रहा है, (इदं सर्वं अनुमतिः बभूव) यह यह सब अनुमति ही बनती है । हे देवि । (तस्याः ते सुमता स्याम) उस तेरी सुमतिमें हम रहेंगे । हे अनुमति ! (नः हि अनुमत्ससे) हमें तू अनुमति देती रह ॥ ६ ॥

भावार्थ—सुप्रसिद्ध सत्कर्म के लिये हमारी अनुकूलमति होवे, और उससे हमें उत्तम वीरत्व और उत्तम कार्यक्षेत्र प्राप्त हों । ऐसी जो सद्बुद्धि होती है वही कल्याण करती है । यह देवोंसे रक्षित होनेवाली बुद्धि हमारे चलाये सत्कर्म की रक्षा करे ॥ ५ ॥

जो स्थिर और चर पदार्थ हैं और जो उनकी बालक शक्ति है, यह सब अनुमतिसे ही पने हैं । यह अनुमति हमें अनुकूल रहे अर्थात् हमसे प्रतिकूल पताब न करावे और हमें सदा सत्कर्म करने की ही प्रेरणा करती रह ॥ ६ ॥

## अनुमतिकी शक्ति ।

‘अनुकूल बुद्धि’ को ही ‘अनुमति’ कहते हैं, अतएव जो कुछ भी बन रहा है वह अनुकूल मतिसे ही बन रहा है । चोर चोरी करता है वह अपनी अनुमतिसे करता है, योगी योगाभ्यास करता है वह अपनी अनुमतिसे ही करता है और देशभक्त स्वराज्य

पुद्गलमें समिलित होकर अपना सिर कटवाता है वह भी अपनी अनुमतिसे ही कटवाता है । तात्पर्य यह कि, जो जो मनुष्य जो कुछ कार्य, बुरा या भला, हितकारी या अहितकारी, देशोद्धारक या देशपातक, करता है वह सब अपनी अनुमतिसे ही निमित्त करके करता है । इस लिये इस सूक्तमें कहा है—

यत् तिष्ठति, चरति, यत् उ च विश्वमेजति,  
इत् सर्वं अनुमतिः यन्मूष ॥ ( म० १ )

“ जो स्थिर है, जो चल रहा है, और जो सबको जताता है, वह सब अनुमतिसे ही हुआ है । ” यह मनु छोट कार्यसे बड़े विश्वव्यापक कार्यतक व्यापनेवाला सत्य कह रहा है । जो स्थिर समस्तकी व्यवस्था है, जो चर जगत्का प्रबंध है और जो इस सब स्थिरचर जगत्को जताना है वह सब विश्वका कार्य परमेश्वर अपनी अनुमतिसे करता है । वह सपूर्ण जगत् जो चल रहा है वह परमेश्वरकी अनुमतिसे ही चल रहा है । वहां तक अनुमतिकी शक्ति है वह पाठक अनुभव करें । इसी प्रकार मनुष्य भी जो अनुकूल या प्रतिकूल कार्य करते हैं वह सब उनकी अपनी निज अनुमतिसे ही करते हैं । मनुष्य बच पनसे मरनेतक जो करता है वह सबका सब अपनी अनुमतिसे ही करता है, इतना अनुमति का साम्राज्य सब जगत्में चल रहा है । इसीलिये अपनी अनुमति अच्छे कार्योंके लिये ही होवे और बुरे कार्योंके लिये न होवे, ऐसी दृष्टता चरण करना अत्यंत आवश्यक है । यह सूचना निम्नलिखित मंत्रभाग दत्ते हैं—

देवेषु यत् अनुमयताम् । ( म० १ )

अनुमते । त्व अनुमससे, नः या कूषि । ( म० १ )

यय तस्य देवासि मा अपि मूय । ( म० ३ )

सुष्टधीके सुमतौ स्याम । ( म० ३ )

सुदानु सुहृष अनुमत माम । ( म० ४ )

सुवीर रपि मेहि । ( म० ४ )

सुमतौ स्याम । ( म० ६ )

“ देवोंमें चलनवाले सत्कर्म के लिये अनुमति हा जावे, अर्थात् राक्षसोंके जताये पातक कार्योंके लिये कदापि अनुमति न होवे ॥ अनुमतिसे ही सब कार्य होते हैं, इस लिये ऐसे कार्योंके लिये अनुमति होव कि, विषस कल्याण हो ॥ हम कभी शत्रुओंके लिये अपनी अनुमति न करें, किसीक शत्रुओंके लिये हम अनुकूल न हों ॥ सबका सुख बढ़ानेके कार्योंमें और उच्चम पुद्गलके कार्योंमें हमारी अनुकूलमति हो, अर्थात् दुःख

पढ़ानेवाले किसी कार्यके लिये हम अपनी अनुमति न दें ॥ जिसमें दान होता है और त्याग होता है, परोपकार जिसमें है ऐसे कार्योंके लिये जो अनुमति होती है, वही यज्ञ पढ़ानेवाली होती है । अर्थात् जिसमें परोपकार नहीं, किसीका मला नहीं, घुराही घुरा है वैसे कार्योंको अनुमति देनेसे अकीर्षाही होती है ॥ सदा अनुमति ऐसे ही कार्योंके लिये रखना चाहिये कि, जो धीरतायुक्त बन पढ़ानेवाले हों । मीठता और नीचतासे, बन कमानके कार्योंके लिये कभी कोई अपनी अनुमति न दें ॥ सारांश यह है कि, शुभति के लिये हमारी अनुमति होव, और दुर्भितिके लिये कदापि अनुमति न होवे ॥”

इस सूक्तमें जो विशेष महत्त्वके उपदेश हैं वे ये हैं । अनुमतिकी शक्ति बड़ी है, इसलिये उस अनुमतिको अच्छे कार्योंमें ही लगाना योग्य है, अथवा हानि होगी । इस विषयमें सबसे पहिली आज्ञा यह है—

नः अनुमतिः देवेषु यज्ञं अथ अनुमन्यताम् ॥ ( म० १ )

“हमारी अनुमति देवोंमें चलाये जानेवाले सत्कर्मके लिये आज्ञाही अनुमोदन देवे ।” यहाँ करहका वामदा नहीं, शुभकर्म आज्ञाही करना चाहिये, करहके लिये नहीं रखना चाहिये । जो सत्कर्म करना होगा वह आज ही शुरू कीजिये । सत्कर्मका लक्षण यह है कि ( देवेषु यज्ञ ) देवोंमें जो यज्ञ अर्पण होता है, वह वैसा करनके लिये अपनी अनुमति रखना चाहिये । देव कौनसा यज्ञ कर रहे हैं वह देखिये । देव वह हैं कि, जो दान देते हैं, प्रकाश देते हैं, परोपकार करते हैं । देखिये पृथिवी देवता है वह सबको आचार देती है, अस्र देवता है वह सबको शान्तिप्रसन्न देनेके लिये आत्मसमर्पण करती है, अग्नि देवता है वह क्षीतपीडितोंको गर्भी देकर सुख पहुँचाता है, सूर्य देवता सबको जीवन और प्रकाश देता है, वायु सबका प्राण बन कर सबको आयु प्रदान कर रहा है, चन्द्रमा स्वयं कष्ट भोग कर भी दूसरोंको शान्ति देनेमें तत्पर रहता है, इसी प्रकार अन्यान्य देवताएँ अद्विनिष्ठ परोपकारमें लगी हैं । यही देवताओंमें होनेवाला परोपकारमय यज्ञ है । ऐसं शुभ कर्मोंके लिये हमारी मति अनुकूल होवे । इन देवोंमें—

वायुपे हव्यवाहनः अग्निः भवताम् ( म० १ )

“हानी पुरुषके लिये हव्यवाहक अग्नि आदर्श होने ।” अग्नि ही परोपकारका आदर्श है क्योंकि वह स्वयं चलता रहनेपर भी दूसरोंको सुख देनेके लिये प्रकाशता है, क्षीतपीडितोंको गर्भी देता है और अपनी ऊर्ध्वगति कायम रखता है । हरएक अवस्थामें अपनी उच्च गति स्थिर रखनेके कार्यमें अग्निही एक अष्ट आदर्श है । अग्निका गुण ही है ( अग्नेः ऊर्ध्वज्वलन ) ‘उच्च दिशासे प्रकाशित होकर प्रगति करनेका आदर्श’ अग्निही

सबको देता है। हरएक अपनी बुद्धिमें यह आदर्श सदा रखे। और कोई मनुष्य अपनी गति हीन दिशासे कदापि होने न दे। धर्म भी देखिय अधिकरूप होनेके कारण सबसे उच्च स्थानपर रहता हुआ प्रकाशता रहता है। इसी प्रकार मनुष्य भी उच्च से उच्च अवस्था प्राप्त करे और प्रकाशित हो। कभी नीच अवस्थामें पड़कर सब न धर्म और कभी अधिकार के काँचड़में न फँसे। किस कार्यको अनुमति देनी उचित है। इस विषयमें निम्नलिखित मंत्रमाग देखिये—

अक्षीयमाण प्रजावन्त ररिं अनुमन्यताम् । ( म० ३ )

सुधीर ररिं ( अनुमन्यतां ) । ( म० ४ )

“धीन न होनेवाला, प्रजापुक्त और धीरोसे युक्त वन बढ़ानवाले जो जो भठ कर्म हों” उन कर्मोंको करनेकी अनुमति होनी चाहिय। अर्थात् कोई ऐसे दुष्ट व्यवसन बिनमें चलना नाछ होखाता है, वैसे करनेमें कदापि अनुमति नहीं होनी चाहिये। मनुष्यको क्या करना चाहिये, इस विषयमें निम्नलिखित मंत्रमाग मनन करने योग्य है—

सुक्षेत्रात्तायै सुधीरतायै अनुमतिः । ( म० ५ )

‘अपना प्रदेश उत्तम वन और उसमें धीरभाव बढ़े, इन दो कार्योंके लिये अपनी अनुमति देनी चाहिय।’ हरएक प्रकारका क्षेत्र ( सु-क्षेत्र ) उत्तमसे उत्तम क्षेत्र वन, हरएक ग्राम, नगर और प्रांत सुधर जाय, हरएक राष्ट्र सुधर कर सबसे श्रेष्ठ बन जाय, इस मार्गके लिये प्रयत्न होने चाहिये और बिनसे यह सुधार हो जावे, ऐसे कार्य करनेके लिये अनुमति देनी चाहिये। जिससे स्मान हीन हो जिससे देशका देश हीन हो, ऐसे किसी कार्यको अनुमति नहीं देनी चाहिये। इसी प्रकार अपने देशमें नगर और ग्राममें घर घरमें और व्यक्ति व्यक्तिमें उत्तम धीरता उत्पन्न होने योग्य श्रेष्ठ कर्मोंके लिये अपनी अनुमति देनी चाहिये। कभी ऐसा कोई कार्य नहीं करना चाहिय कि, जिससे अपने देशके किसी मनुष्यमें मोह भी मीरुता उत्पन्न जावे। ‘अधीरताका’ का नाछ करनेकी वेदमें आज्ञा स्पष्ट है।

सुमति इमशा ( दशगोपा ) दशोंद्वारा रक्षित हुई मति होती है अर्थात् जो बुद्धि होती है वह राक्षसोंद्वारा रक्षित होती है। इसलिये अपनी मति राक्षसोंके आधीन करना किसीको भी योग्य नहीं है। दशोंद्वारा सुरक्षित हुई जो प्रमति और विशेष श्रेष्ठ बुद्धि होती है, वही ‘मन्त्रा’ अर्थात् सच्चा कल्याण करनेवाली होती है।

इस प्रकार इस धृक्का उपदेश प्रत्यक्ष महत्वपूर्ण है। यदि पाठक इसका विशेष मनन इस प्रकार करे, या उनको अपनी मति किस प्रकार ‘प्रमति, सुमति और मन्त्रा

अनुमति ' बनाई जा सकती है, इसका मार्ग ज्ञात हो सकता है । आत्मशुद्धि करनेवालोंको यह सूक्त सचम रीतिसे मार्गदर्शक होसकता है । इस दृष्टिसे इस सूक्तका एक एक वाक्य बहुवर्णी बाधप्रद है ।



## आत्माकी उपासना ।

[ ११ ( १२ ) ]

( श्रापि:- प्रभवा । देवता-आत्मा )

समेत विश्वे वर्चसा पतिं दिव एको विभूरतिविर्नानाम् ।

स पूष्यो नूतनमाविधासत् स वर्तेनिरतु बाधृत एकमित् पुरु ॥ १ ॥

अर्थ— ( विश्वे ) आप सय लोग ( दिवः पतिं वर्चसा समेत ) प्रकाश लोकके स्वामी आत्माको स्तुतिके वर्चनोंसे प्राप्त करो । वह ( एकः जनानां विभूः अ-तिथिः ) एक है, सय जनों अर्थात् प्राणिनोंमें विभू है और उसकी आनेजानेकी तिथि निश्चित नहीं है । ( सः पूष्यः ) वह सबसे पूर्व अय स्थित होता हुआ ( नूतन आविधासत् ) नूतन उत्पन्न शरीरोंमें भी बसता है । ( त एक इत् ) उस एकके प्रति ( पुरु वर्तेभिः ) पशुत प्रकारके मार्ग ( अनुवाहते ) पशुचले हैं ॥ १ ॥

भावार्थ— सय लोग इकट्ठा हो कर प्रकाशके स्वामी आत्माकी अपने शब्दोंसे स्तुति करें । वह आत्मा एक है, और सय जनों तथा प्राणिनोंके अन्दर विद्यमान है और उसकी आनेजानेकी तिथि निश्चित नहीं है । सय से पूर्व वह विद्यमान था तथापि नूतनसे नूतन पदार्थोंमें भी वह रहता है । वह एकही है तथापि अनेक प्रकारके मार्ग उसके पास पशुचले हैं ॥ १ ॥

सब लोग आत्माका विचार करें। यह आत्मा एकही है अर्थात् सपूर्ण विश्वमें एकही है। यही स्वर्ग किंवा प्रकाशलोकका स्वामी है। हर एक मनुष्य इसके गुणोंका भान कर। यह अनेक उत्पन्न हुए पदार्थोंमें ( विभूः ) विद्यमान है और ( अतिथिः ) इसके आनमानेकी विधि किसीको पता नहीं लगती, अथवा ( अतिथिः ) यह सतत प्रेरणा करता है, सतत गति दे रहा है, विश्वको सतत घुमा रहा है किंवा यह अतिविषुत् पूज्य है। यह सब जगत् ( पृथ्वीः ) पूर्व भी था, यह कभी नहीं था ऐसा नहीं, यह गुराब पुरुष होता हुआ यह नूतन क्षीरोंमें, नूतनसे नूतन पदार्थमें रहता है। सर्वत्र व्याप्त होनेके कारण यह किसी स्थानपर नहीं एसी बात नहीं, इसलिये पुरातन और नूतन सबही पदार्थोंमें रहता है। यह आत्मा यद्यपि एक है तथापि उसके पास पड़ुचनेके मार्ग अनेक हैं। किसी मार्गसे गये तो अन्तमें उसी एकही प्राप्ति होती है। कोई मार्ग दूरका हो या कोई समीपका हो, परन्तु प्रत्येक मार्ग अन्ततक पड़ुचता है इसमें सन्देह नहीं है। इस सूक्तका वर्णन परमात्माका और कुछ मर्यादासे जीवात्माका भी है। परमात्माका क्षेत्र बड़ा और जीवात्माका छोटा है और इस रीतिसे क्षेत्रोंकी न्यूनताधिक मर्यादासे यह एकही वर्णन दोनोंका हो सकता है यह बात पाठक इस सूक्तक विचारके समक्ष ध्यानमें धारण करें। जीवात्मापरक 'अतिथि' छन्द 'अनिमित्त विधिबाला' इस अर्थमें होगा, और परमात्मापरक अर्थ होनेपर 'गतिमान्' इस अर्थमें होगा। इस प्रकार पाठक अर्थ समझकर आत्माका गुणवर्णन दोनों क्षेत्रोंमें केसा है, यह जानें और इसके विचारसे आत्माके गुणोंका अनुभव करें।

## आत्माका प्रकाश

[ १२ ( २३ ) ]

( अतिथिः—प्रकाश । देवता—मंत्रोक्ता, भद्रः । )

अयं सहस्रमा नो हृद्रे कवीनां मसिज्योतिर्विधर्मणि ॥ १ ॥

भद्रः समीचीनरूपः समरयन् ।

अरेपमः सचेतमः स्वसर मन्त्रमर्चमाश्रिते गोः ॥ २ ॥

॥ इति द्वितीयाऽनुयायः ॥

अर्थ—( अयं ) यह परमात्मा ( वि—धर्मणि ) विरुद्ध अथवा विविध मर्यादा पक्षार्थोंकी सफीर्णतामें ( नः कवीनां सहस्र हृद्रे ) हमारे ज्ञानियों

के हजारों प्रकारके वर्णमंके लिये ( मतिः ज्योतिः आ ) उत्तम बुद्धि और ज्योतिरूप होता है ॥ १ ॥

यह ( ब्रह्मः ) यज्ञ आत्मा रूपी सूर्य ( समीचीन अरेपसः ) उत्तम रीतिसे चलनेवाली, निर्दोष ( सचेतसः मनुमत्तमाः ) ज्ञान देनेवाली, ठट्ठाह पहननेवाली ( उपसः ) उपःकालकी किरणाको ( गोः खसरे चिते ) इंद्रियोंके स्वस्वकारके मार्गको बतलानेके कार्यमें ( समैरयन् ) प्रेरित करता है ॥ २ ॥

भावार्थ— विरुद्ध गुण धर्मवाले पदार्थोंमें व्यापनेवाला एक परमात्मा है । यह ज्ञानियोंको उत्तम मार्ग हजारों रीतियोंसे बतलाता है और उनको उत्तम बुद्धि तथा ज्योति देता है ॥ १ ॥

यह परमात्मा एक यज्ञ सूर्यही है, उसकी ज्ञान देनेवाली किरणें अत्यंत निर्मल, ठट्ठाह पहननेवाली, प्रकाश देनेवाली, हमारे इंद्रियोंको स्वस्वकारका मार्ग बतानेवाली हैं, अर्थात् उनसे शक्ति प्राप्त करके हमारी इंद्रियां कार्य करती हैं ॥ २ ॥

इस सूक्तमें अगत्का भी वर्णन है और उसमें व्यापनवाले परमात्माका भी वर्णन है और उसकी उपासना करनेवाले भक्तोंका भी वर्णन है ।

अगत्का वर्णन करनेवाला शब्द यह है— ( विधर्मणि ) विरुद्ध गुणधर्मवाला अगद् है, देखिये इसमें अग्नि उष्ण है और अल धीव है, पृथ्वी स्थिर है और वायु चंचल है, पृथ्वी आदि पदार्थ सावयव हैं वो आकाश निरवयव है । ऐस विरुद्ध गुणधर्मवाले पदार्थोंमें एक रस व्यापनेवाला यह आत्मा है । विरुद्ध गुणधर्मवाले पदार्थोंकी सगतिमें सदा रहनपर भी इसके गुणधर्मोंमें अदल बदल नहीं होता है । इसी प्रकार विरुद्ध गुण धर्मवाने लोगोंको अपने पास रखकर स्वयं उनको दुर्गुणोंसे दूर रखकर अपने शुभगुणोंसे उनको उन्नेजित करना चाहिये ।

मिस प्रकार परमात्मा सबको ( मतिः ज्योतिः ) सद्बुद्धि और प्रकाश देता है, उसी प्रकार अपने पास जो ज्ञान होगा वह अन्योको देना और अपने पास जितना प्रकाश होगा उतना अंधरेमें चलनेवाले दूसरे लोगोंको बतलाना चाहिये ।

यह यज्ञ है, उसकी किरणें निर्दोष हैं, यह मलहीन है, ठट्ठाह पहननेवाला है; इसी प्रकार मनुष्योंको उपेक्षित है कि, ये उच्छ बनें, निर्दोष बनें, शुद्ध और पवित्र बनें, ठट्ठाही बनें और दूसरोंको उच्छ, निर्दोष, शुद्ध, पवित्र और ठट्ठाही बनावे । इस प्रकार आत्मा क गुणोंका विचार करके व गुण अपनेमें बढ़ाने चाहिये ।



## विपत्तिको हटाना ।

[ २३ ( १४ ) ]

( ऋषिः— यमः । देवता— दुःस्वप्ननाशनः )

दौष्यं दौर्जीवित्यं रक्षो अम्यमिराय्यः ।

दुर्णाम्नीः सर्वा दुर्धाघस्ता अस्मर्त्ताश्यामसि ॥ १ ॥

अर्थ— ( दौष्यं ) दुष्ट स्वप्नोंका आना, ( दौर्जीवित्यं ) दुःस्वप्नमय जीवन होना, ( रक्षः ) हिंसकोंका उपद्रव, ( अ-म्य ) अभूति, वरिष्ठता, ( अराय्यः ) विपत्तिके कष्ट, ( दुर्णाम्नीः ) घुरे नामोंका उच्चार करना, ( सर्वा दुर्धाघः ) सब प्रकारके दुष्ट भाषण ( ताः अस्मत् नाशयामसि ) उनको हम अपने स्थानसे नष्ट करते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ— घुरे स्वप्न, कष्टका जीवन, हिंसकोंका उपद्रव, विपत्ति, वरिष्ठता, दुष्टभाषण, गालियाँ देना आदि जो जो गुराईयाँ हममें हैं, उनको हम दूर फरत हैं ॥ १ ॥

विपत्तियाँ अनेक प्रकारकी हैं, उनमें कुछ विपत्तियोंकी गणना इस स्थानपर की है। घुरे स्वप्न आना आदि विपत्ति तथा दुःखपूर्ण जीवनका अनुभव होना, य विपत्तियाँ आरोग्य न रहनस होती हैं। आरोग्य उत्तम रीतिसे रक्षणक लिये व्यायाम, योगासनों का अनुष्ठान, यमनियमपालन, प्राणायाम, वाग्य आहारविहार आदि उपाय हैं। इनके वाग्य रीतिसे करनेसे ये दो विपत्तियाँ दूर होती हैं। हिंसकोंका उपद्रव दूर करनेके लिये अपने अक्षर गुरभीर उत्पन्न करना और उस कार्यके लिये उनको लगाना चाहिये। इससे राक्षसाक आक्रमणसे हम अपना बचाव कर सकत हैं। ( अ-म्य ) अभूति और ( अ-राय्यः ) निर्धनता ये दो आर्थिक आपत्तियाँ उद्योगशुद्धि करने और बकारी दूर करनसे दूर जाती हैं। मनुष्य हरणक प्रकार आन्धो न रह, कुछ न कुछ उत्पादक काम घटा कर और अपनी धन मयति सुयोग्य उपायसे बनाय। इस प्रकार उद्योगशुद्धि करनेसे ये आर्थिक आपत्तियाँ दूर हो जाती हैं। गाली देना, घुरा भाषण करना, घुर शब्द उच्चारण करना आदि या आपत्तियाँ हैं, उनको दूर करनके लिये अपनी वाणीकी शुद्धि करना चाहिये। निषयपूर्वक मयशब्दका उच्चारण न करनसे कुछ दिनाक पश्चात् ये शब्द अपनी वाणीसे मय दूर होत हैं। इस प्रकार आत्मशुद्धि करनका मार्ग हम यत्नन बताया है। पाठक हमका विचार करे और उचित राय प्राप्त कराकर अपना उत्तार अपने प्रयत्नसे करे।

## प्रजापालक ।

[ २४ ( २५ ) ]

( ऋषिः—प्रजा । देवता—सविता )

यस्य इन्द्रो अर्चनं यदधिर्विश्वे देवा मरुतो यत् स्वर्काः ।

तदस्मभ्यं सविता सत्यधर्मा प्रजापतिरनुमतिर्नि यच्छात् ॥ १ ॥

अर्थ—( यत् ) जो इन्द्र, अग्नि, विश्वेदेव (स्वर्काः मरुत् ) उत्तम तेजस्वी मरुत् इनमेंसे प्रत्येक ( सः अस्मन्नत् ) हमारे लिये स्तोत्रता रहा है ( तत् ) वह ( सत्यधर्मा प्रजापतिः अनुमति सविता ) सत्य धर्मवाला प्रजापालक अनुमति रखनेवाला सविता ( नियच्छात् ) देवे ॥ १ ॥

हम सब प्राणिमात्रके लिये विष्णुत्, अग्नि, पृथिवी आदि सब देव तथा विविध प्रकारके वायु को काम करते हैं, वह काम हमें स्वर्गसे प्राप्त होता है, परन्तु उससे योग्य रीतिसे काम प्राप्त कराना चाहिये । क्यों कि सवा प्रजापालक वही स्वर्ग है ।

## व्यापक और श्रेष्ठ देव ।

[ २५ ( २६ ) ]

( ऋषिः—मेघतिथिः । देवता— सविता )

भयोरोमसा स्फुमिता रक्षांसि यौ वीर्यवीरतमा धाविष्ठा ।

यो पश्येत् अप्रतीतो सहोभिर्विष्णुमग्नं वरुणं पूर्वहृतिः ॥ १ ॥

यस्येदं प्रदिशि यद् निरोचते प्र चानसि वि श्व चपे क्षीमिः ।

पुरा देवस्य धर्माणा सहोभिर्विष्णुमग्नं वरुणं पूर्वहृतिः ॥ २ ॥

अर्थ—( ययोः ओजसा ) जिन दोनोंके बलसे ( रक्षांसि स्फुमिता ) लोक लोकान्तर स्थिर हुए हैं, ( यौ वीर्यैः धाविष्ठा वीरतमा ) जो दो अपने परा

कर्मोंसे बलवान् और अत्यन्त शूर हैं, ( यौ सहोभिः अप्रतीती पत्येते ) जो दो अपने बलोंसे पीछे न हटते हुए आगे बढ़ते हैं । उन दोनों ( विष्णु वरुण ) विष्णु अर्थात् व्यापक देवके प्रति और वरुण अर्थात् भेद्य देवके प्रति ( पूर्ववृत्तिः अगन् ) सबसे प्रथम प्रार्थना करता हुआ प्राप्त होता है ॥ १ ॥

( यस्य प्रदिशि ) जिसकी दिशा उपदिशाओंमें ( इव यत् विरोचते ) यह जो प्रकाशता है ( प्र अनति च ) और उत्तम रीतिसे प्राण चारण करता है, ( देवस्य धर्मणा सहोभिः ) इस देवके धर्म और बलोंसे ( शशीभिः बिभृष्टे च ) तथा शक्तियोंसे देखता है, उस ( विष्णु वरुण च पूर्ववृत्तिः अगन् ) व्यापक और भेद्य देवको सबसे प्रथम प्रार्थना करनेवाला होकर प्राप्त करता है ॥ २ ॥

भावार्थ—जिसने अपने बलस यह त्रिलोकी को अपने स्थानमें स्थिर किया है, जो अपनी विविध शक्तियोंसे अत्यन्त बलवान् और पराक्रमी हुआ है, जो कभी पीछे नहीं हटता परन्तु आगे बढ़ता है, उस व्यापक और भेद्य देवकी मैं सबसे प्रथम प्रार्थना करता हूँ, क्योंकि वह सबसे भेद्य देव है ॥ १ ॥

जिसकी शक्तिसे दिशा और उपदिशाओंमें सर्वत्र प्रकाश फैल रहा है, जिसकी जीवनशक्तिसे सब प्राणीमात्र प्राण चारण करते हैं जिस देवके निज धर्मसे और बलोंसे सब प्राणी देखते और अनुभव करते हैं । उस व्यापक और भेद्य देवकी मैं सबसे प्रथम प्रार्थना करता हूँ क्योंकि वह सबसे वरिष्ठ देव है ॥ २ ॥

यह एक ही स्पष्ट है अतः इसकी स्थापना करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है । इस एकसे प्रथम मंत्रमें दो देव भिन्न भिन्न हैं ऐसा मानकर वर्णन किया है, परन्तु दूसरे ही मंत्रमें उन दोनोंका एक माना है और एकवचनी प्रयोग हुआ है । इससे 'विष्णु और वरुण' इन दो व्यक्तियोंसे एक अमिश्र देवताका ही वर्णन अमीट है ऐसा दीखता है । पाठक इसकी अधिक खोज करें ।

# सर्वव्यापक ईश्वर ।

[ २६ (२७) ]

( ऋषिः—मेघातिथिः । देवता—विष्णुः )

विष्णोर्नु कू प्रा वीर्षं वीर्याणि यः पार्थिवानि विममे रजांसि ।

यो अस्कमायदुत्तरं सप्तस्य विश्वक्रमाणस्योपोरुगायः ॥ १ ॥

प्र तद् विष्णुं स्वयते वीर्याणि भूगो न भीमः कुक्षरो गिरिष्ठाः ।

परावत आ वंगम्यात् परस्याः ॥ २ ॥

अर्थ— (विष्णोः वीर्याणि) सर्वव्यापक ईश्वरके पराक्रमोंका ( कू प्रवोचतु ) सुख बढ़ानेवाला वर्णन निम्नय पूर्वक करता है । ( यः पार्थिवानि रजांसि विममे ) जो पृथ्वीपरके छोकोंको विशेष रीतिसे निर्माण करता है । ( या उदगायः ) जो बहुत प्रकार प्रशंसित होता हुआ (त्रैधा विश्वक्रमाणः) तीन प्रकारसे पराक्रम करता हुआ । ( उत्तर सप्तस्य अस्कमायत् ) उत्तर खर्गाय प्रकाशस्थानको स्थिर करता है ॥ १ ॥ ( तत् वीर्याणि ) उसके पराक्रम दर्शानेके लिये (विष्णुः स्वयते) वही व्यापक ईश्वर प्रशंसित होता है । वह ( भीमः भूगः न ) भयानक सिंह जैसा ( कुक्षरः गिरिष्ठाः ) सर्वत्र संचार करनेवाला और गिरि शुद्धाओंमें रहने वाला है । वह ( परस्याः परावतः ) दूरसे दूरके प्रदेशसे ( आजगम्यात् ) समीप आता है ॥ २ ॥

भावार्थ—सर्वव्यापक परमेश्वरके पराक्रम बहुत हैं । जो अपना सुख बढ़ाना चाहते हैं वे उनका वर्णन करें, उनका गायन करें । उसी परमेश्वरने तो सप्त पार्थिव पदार्थोंको विशेष कुशलतासे निर्माण किया है । इसी लिये उसकी सर्वत्र बहुत प्रशंसा होती है । वह तीनों लोकों में तीन प्रकारका पराक्रम करता है और उसीने सप्तसे ऊपरका शुलोक निराधार स्थिर किया है ॥ १ ॥

इस परमेश्वरका गुणसकीर्तन करनेसे उसके पराक्रमों का ज्ञान प्राप्त होता है और उससे उसका महत्त्व अनुभव करना सुगम होता है । जैसा सिंह गिरिकदराओंमें संचार करता है, और भूमिपर घूमता है, उसी प्रकार यह भी हृदयशुद्धाओंमें संचार करता है और इस लोकमें व्यापता है । वह दूरसे दूर रहनेपर भी भक्ति करनेपर समीपसे समीप आजाता है ॥ २ ॥

यस्यारुणु त्रिषु विक्रमेष्वधिष्ठयन्ति मुषनानि विषा ।  
 उरु विष्णो वि क्रमस्वोरु धर्माय नस्तुषि ।  
 घृतं घृतयोने पिब प्रप्र यज्ञपतिं तिर ॥ ३ ॥  
 इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा नि दधे पदा ।  
 समूढमस्य पांसुरे ॥ ४ ॥  
 श्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः ।  
 इतो घर्माणि धारयन् ॥ ५ ॥

अर्थ—(यस्य उरुषु त्रिषु विक्रमणेषु) जिसके बिनाल तीन विक्रमोंमें (विष्वा मुषनानि अधि स्थिति ) सब सुवन रहते हैं । हे (विष्णो, उरु विक्रमस्व) व्यापक देव ! विशेष विक्रम कर । ( नः क्षपाय उरु कृषि ) हमारे निवास के लिये विस्तृत स्थान दे । हे ( घृतयोने, घृत पिब ) रसको उत्पन्न करने वाले ! रसको पान कर और ( यज्ञपतिं प्र प्र तिर ) यज्ञकर्ताको पार ले जा ॥ ३ ॥

( विष्णुः इदं विचक्रमे ) व्यापक देव इस जगत्में विक्रम कर रहा है । ( पदा त्रेधा निदधे ) अपने पाँचसे तीन प्रकारसे पद रखा है । ( अस्य पांसुरे समूढ ) इसका जो पाँच बीचके लाकमें है वह शुभ है ॥ ४ ॥

( अदाभ्यः गोपाः विष्णुः ) न दबनेवाला पालक और व्यापक देव ( श्रीणि पदा विचक्रमे ) तीन पावोंको इस जगत्में रखता है और ( इतो घर्माणि धारयन् ) वहाँसे सब घर्मोंका धारण करता है ॥ ५ ॥

भावार्थ पृथ्वी अन्तरिक्ष और शुलोक इन तीनों लोकोंमें इस ईश्वरके तीन पराक्रम दिखाई देते हैं । उन पराक्रमोंसे ही इन तीन लोकोंका अस्तित्व हुआ है । इसलिये उस प्रभुकी विशेष प्रार्थना करते हैं कि वह हमें उत्तम और विस्तृत स्थान कार्य करनेके लिये अर्पण करे । हे प्रभो ! यजमान जो सत्कर्म करता है उसका रस ग्रहण करके यजमानको इस दुःखसागरसे पार कर ॥ ३ ॥

व्यापक देवका कार्य इस त्रिलोकीमें देख, उसने अपने तीन पाँच तीन लाकोंमें रमकर वहाँका कार्य किया है । पृथ्वीपर उसका कार्य दिखाई देता है, शुलोकमें भी वैसा ही अनुभवमें आता है । परन्तु मध्यस्थानीय

विष्णाः कर्माणि पश्यन्तु यतो व्रतानि पश्यन्ते ।

इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ६ ॥

यद् विष्णोः परम पद सदा पश्यन्ति सुरयः ।

दिवीधि चक्षुराततम् ॥ ७ ॥

दिनो विष्ण उत वा पृथिव्या महो विष्ण उरोगुन्तरिक्षात् ।

इस्तौ पृणस्व बहुमिर्वसम्यैराग्रयच्छ दक्षिणादोष सख्यात् ॥ ८ ॥

अर्थ— ( विष्णोः कर्माणि पश्यन्तु ) व्यापक देवके ये कार्य देखो । ( यतः व्रतानि पश्यन्ते ) जहाँसे सय गुणधर्मोंको वह देखता है । ( इन्द्रस्य युज्यः सखा ) वह जीवात्माका योग्य मित्र है ॥ ६ ॥

( विष्णोः तत् परम पद ) व्यापक देवका वह परम स्थान ( सुरयः सदा पश्यन्ति ) ज्ञानी जन सदा देखते हैं । ( दिवि आतत चक्षुः इय ) जैसा शुलोकमें कैला हुआ चक्षुरूपी सूर्य होता है ॥ ७ ॥

हे ( विष्णो ) व्यापक देव ! ( दिवः उत पृथिव्याः ) शुलोक और पृथिवीसे तथा ( महः उरः अन्तरिक्षात् ) पृथ्विस्तुत अन्तरिक्षसे ( बहुभिः वसम्यैः इस्तौ पृणस्व ) बहुत धनोंसे अपने धानों हाथ भर ल और दक्षिणात् उत सख्यात् ) दायें तथा बायें हाथोंसे ( आ अग्रयच्छ ) प्रदान करें ॥ ८ ॥

अन्तरिक्ष लोकमें उसका जो कार्य हो रहा है वह दिखाई नहीं देता ॥ ४ ॥

यह व्यापक देव किसी कारण भी न दबनेवाला और सपकी रक्षा करनेवाला है । इन तीन लोकोंमें अपने तीन पाँव रखता है और वहाँका सब कार्य करता है । यही उसके सय गुणधर्म प्रकट होते हैं ॥ ६ ॥

हे लागो ! इस सर्वव्यापक ईश्वरके ये चमत्कार देखो । जिसका प्रभाव से उसके सय व्रत यथायोग्य रीतिसे चल रहे हैं । हर एक जीवका यह परमेश्वर एक उत्तम मित्र है ॥ ६ ॥

जिस प्रकार शुलोकमें सूर्यको सय लोग देखते हैं, उसी प्रकार ज्ञानी लोग सदा उसका देखते हैं । अर्थात् यह ईश्वर इस प्रकार उनको प्रत्यक्ष होता है ॥ ७ ॥

हे सर्वव्यापक प्रभो ! पृथ्वी अन्तरिक्ष और शुलोकमेंसे बहुत धन तू अपने हाथमें लेकर अपने दोनों हाथोंसे उस धनका हमें प्रदान कर । ८ ॥

इस सूक्तमें सर्वम्पापक ईश्वरका वर्णन है । तीनों लोकोंमें जो विषय सब ब्रह्म देखाई देते हैं, वे सब उसीकी शक्तिसे हो रहे हैं । उसीने ये तीनों लोक रखे, उसीने उनका धारण किया और वही यहाँका सब ब्रह्मत्कार कर रहा है । यह सर्वम्पापक होनेपर भी साधारण लोगोंको वह प्रत्यक्ष नहीं होता है । परंतु ज्ञानी लोगोंको वह वैसा प्रत्यक्ष दिखाई देता है कि ऐसा दो पहरका सूर्य आकाशमें प्रत्यक्ष दिखाई देता है । यह इसकी महिमा सब लोग देखें और अनुभव करें ।

## मातृभाषा ।

[ २७ ( २८ ) ]

( आशि-मेधातिथिः । देवता-इडा ( मत्रोक्ता ) )

इदेवास्मां अनु वस्ता व्रतेन यस्याः पदे पुनर्ते देवयन्तः ।

घृतपर्णी शक्वरी सोमपुष्टोप यज्ञमभित वैश्वदेवी ॥ १ ॥

अर्थ- ( इडा एव व्रतेन अस्मां अनुवस्ता ) मातृभाषा ही नियमसे हमारे पास अनुकूलतासे रहे, ( यस्याः पदे देवयन्तः पुनर्ते ) जिसके पदपदमें देवताके समान आचरण करनेवाले पवित्र होते हैं । ( घृतपर्णी ) स्नेहयुक्त पदवाली, ( शक्वरी ) सामर्थ्यवती, ( सोमपुष्टा ) कलानिधि जिसके पीछे होता है, ऐसी ( वैश्वदेवी ) सब देवोंका वर्णन करनेवाली वाणी ( यज्ञ उप अभित ) यज्ञके समीप स्थिर होवे ॥ १ ॥

मातृभाषास हम कभी पराश्रय न हों, अनुकूलतास मातृभाषाका उपयोग करनेकी अवस्थामें हम सदा रहें । देवता बननेकी इच्छा करनेवाले सज्जन इस मातृभाषाके पद पदक उच्चारणके समय अपनी पवित्रता होनेका अनुभव करत हैं । अर्थात् मातृभाषाको छोड़कर किसी अन्यभाषाका उच्चारण करनेकी आवश्यकता होगई और उसन प्रमाणसे मातृभाषाका प्रतिबंध होन लगा, तो वे समझते हैं कि पदपदमें अपवित्रता हो रही है । क्योंकि मातृभाषाका इत्येक पद उच्चारण करनेवालेकरकतके साथ सबभरखता है । मातृभाषाक शब्दामें ( घृत-पर्दी ) भी मरा रहता है अर्थात् एक प्रकारका तबस्वी स्नेहरस रहता है जिसके कारण मातृभाषाका शब्दाचार अन्तःकरणपर एक विलक्षण भाव उत्पन्न होता है । मातृभाषा ( शक्वरी ) शक्तिमती भी होती है । परकाय भाषाका व्याख्यान

अवगण करनेसे सब तपस्विष्ठ स्त्रीपुरुषोंपर वैसी शक्तिका प्रभाव नहीं आया सकता, वैसा मातृमापाका व्याख्यान शक्तिका प्रदान कर सकता है। मातृमापाके पीछे (सोम कलानिधि) कलामापाका निधि रहता है। सब हुनर इसकी साथ करते हैं इस कारण इसकी शक्ति बहुत ही बढ़ावती है। यह (वैश्व+देवी=विश्वदेवाः) सब देवोंको स्थान देनेवाली होती है अर्थात् पूष्यी, आप, तेज, वायु, सूर्य, चन्द्र, विष्णु आदि देवोंका गुण वर्धन-वैज्ञानिक पदार्थ विज्ञान-इस मापामें रहनेसे इसमें देवताएँ रहनेके समान होता है। ऐसी देवी बलस युक्त मातृमापा हरएक सत्कर्ममें प्रयुक्त होवे। कभी अन्य मापाके छद्म मातृमापा बोलनेके समय प्रयुक्त न किये जाय।

इस शक्तिका एक एक छन्द मातृमापाका गौरव वर्धन कर रहा है, पाठक इसका अधिक मनन करें।

## कल्याण ।

[ २८ ( २९ ) ]

( अग्निः- मेधाविधिः । दत्ता-वेदः )

वेदः स्वस्तिर्द्रुणः स्वस्तिः परशुर्वेदिः परशुर्नः स्वस्ति ।

हविष्कृतो यक्षिमा यज्ञकामास्ते देवासो यज्ञमिमं श्रुपन्ताम् ॥ १ ॥

अर्थ— ( वेदः स्वस्ति ) ज्ञान कल्याण करनेवाला है। ( द्रु-घणः स्वस्ति ) लकड़ी काटनका कुलहाला कल्याण करनेवाला है। ( परशुः ) परशु कल्याण करनेवाला है। ( वेदिः ) यज्ञ की वेदि कल्याण करती है। ( नः परशुः स्वस्ति ) हमारा शास्त्र कल्याण करनेवाला है। ( हविष्कृतः यक्षिमाः यज्ञकामाः ) हवि बनानेवाले, पूजनीय और यज्ञ करनेकी इच्छा करनेवाले ( ते देवासः ) ये याजक ( इमं यज्ञं श्रुपन्ताम् ) इस यज्ञका प्रेमसे सेवन करें ॥ १ ॥

ज्ञान, सुतारके हथियार, लकड़ी काटनेके कुल्हाड़े, घास काटनेकी दार्त्री, समिधा तयार करनेकी परसा, वेदी, हवि, हवि तयार करनेवाले लोग, यज्ञ करनेवाले, यज्ञ की इच्छा करनेवाले ये सब कल्याण करनेवाले हैं। इसलिये इनके विषयमें उचित भद्रा धारण करना चाहिये।



## दो देवोंका सहवास ।

[ २९ ( ३० ) ]

( ऋषिः—मेघासिनिः । देवता—अग्निविष्णु )

अग्निविष्णु महि सद् वा महिस्व पाथो घृतस्य गुह्यस्य नाम ।  
 दमेदमे सप्त रत्ना दधानौ प्रति वा जिह्वा घृतमा चरण्यात् ॥ १ ॥

अग्निविष्णु महि धाम प्रियं वा वीथो घृतस्य गुह्यां क्षुपाणौ ।  
 दमेदमे सुष्टुत्या वावृधानौ प्रति वा जिह्वा घृतमचरण्यात् ॥ २ ॥

अर्थ—हे ( अग्निविष्णु ) अग्नि और विष्णु ! ( वां तत् महि महिस्व नाम ) आप दोनोंका यह बड़ा महत्त्वपूर्ण यज्ञ है, जो आप दोनों ( गुह्यस्य घृतस्य पाथः ) गुह्य घृतका पान करते हो । तथा ( दमेदमे सप्त रत्ना दधानौ ) प्रत्येक घरमें सात रत्नोंको धारण करते हैं और ( वां जिह्वा घृत प्रति आ चरण्यात् ) तुम दोनों की जिह्वा प्रत्येक यज्ञमें उस रत्नको प्राप्त करती है ॥ १ ॥

हे अग्नि और विष्णु ! ( वां धाम प्रियं ) आपका स्थान बड़ा प्रिय है । उसको ( घृतस्य गुह्या क्षुपाणौ वीथः ) धीके गुह्य रसका सेवन करते हुए प्राप्त करते हो । दमे दमे सुष्टुत्या वावृधानौ ( प्रत्येक घरमें उत्तम स्तुतिसे वृद्धिको प्राप्त होते हुए ( वां जिह्वा घृत प्रति उह चरण्यात् ) आप दोनोंकी जिह्वा उस घृतको प्राप्त करती है ॥ २ ॥

भाषार्थ—अग्नि और विष्णु ये दो देव एक स्थानमें रहते हैं उन दोनों की यही भारी महिमा है । वे दोनों शुभ रीतिसे गुह्यमें बैठकर धी भक्षण करते हैं, प्रत्येक घरमें सात रत्नोंको रखते हैं और अपनी जिह्वासे गुह्य धी का स्वाद लेते हैं ॥ १ ॥

इन दोनों देवोंका एकही बड़ा भारी प्रिय स्थान है । ये दोनों धीके गुह्य रसका स्वाद लेते हैं । हरएक घरमें स्तुतिसे बढ़ते हैं और गुह्य धीके पासही इनकी जिह्वा पहुँचती है ॥ २ ॥

इस सूक्तमें एक स्थानमें रहनेवाले दो देव हैं ऐसा कहा है । एक अग्नि और दूसरा विष्णु है । 'विष्णु' शब्द द्वारा सर्वव्यापक परमेश्वरका वर्णन इसके पूर्वके २६ वे सूक्त में हो चुका है । 'विष्णु' शब्दका दूसरा अर्थ 'सूर्य' है, सूर्य, भी बहुतही बड़ा है और इस ग्रहमालाका आधार तथा कर्ता घर्ता है । उसकी अपेक्षा अग्नि बहुतही अल्प और छोटा है । सूर्यके साथ हमारे अग्निकी तुलना की जाय तो दावानलके साथ चिनगारीकी ही कल्पना हो सकती है । अग्नि उत्पन्न होती है, अर्थात् इसका जन्म होता है यह बात हम देखते हैं, जन्मके बाद वह कुछ समय चलती रहती है और पश्चात् बुझ जाती है । ठीक यह बात जीवात्मा के जन्म होने, उसकी आयुसमाप्तिपर जीवित रहने और पश्चात् मरनेके साथ तुलना करके देखिये, तो पता लग जायगा कि यदि 'विष्णु' शब्द द्वारा सर्वव्यापक परमात्मा का ग्रहण किया जाये, तो यहां 'अग्नि' शब्दसे छोटे जीवात्माका ग्रहण किया जा सकता है । उत्पन्न होना, जीवित रहना और बुझ जाना ये तीन बातें जैसी अग्निमें हैं वैसी ही जीवात्मामें हैं और उसके साथ सदा रहनेवाला विश्वव्यापक परमात्मा है हि । यह बात वेदमें अन्यत्र भी कही है—

इहो सुपर्णा मनुजा सत्त्वाया समामं वृक्ष परिपस्वजाते ॥

‘दो सुंदर पक्षपाते पक्षी साथ रहते हैं, परस्पर मित्र हैं, ये दोनों एकही वृक्षपर रहते हैं ।’

अ० १ । १६४ । २०

यह जो दो पक्षी कहे हैं, उनमेंसे एक जीवात्मा है और दूसरा परमात्मा है । इसी प्रकार साथ रहनेवाले दो देव, एक अग्नि और दूसरा सूर्य, अथवा एक जीवात्मा और दूसरा परमात्मा है । यहाँ अग्निका जीवात्माके किन गुणोंके साथ साधर्म्य है यह ऊपर कहा है । देहके साथ बारबार सन्धित होनेके कारण पूर्वोक्त तीनों धर्म जीवात्माके ऊपर आरोपित होते हैं, क्योंकि जीवात्मा तो न जन्मता है और न मरता है । क्षरीरक ये धर्म उसपर लगाये जाते हैं । ये दोनों— जन्मे जन्मे सदा रत्ना ध्वजानौ (अ० १)

“घर घरमें सात रत्नोंको धारण करते हैं ।” ये सात रत्न यहाँ प्रत्येक जीवात्माके प्रत्येक घरमें हैं । पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और मन तथा बुद्धि ये सात रत्न हैं, इसीसे साक्षात् रणतः सब प्राणी और विक्षेपतः मनुष्य सुशोभित होते हैं, इनमें रमणीयता है । ये मनुष्यके आभूषण हैं अतः ये रत्न ही हैं । आभूषणोंमें पहने जाते हैं वे वस्तुतः रत्न नहीं हैं, ये आत्माके सात रत्न ठीक रहे तोही अवर और भूषण क्षरीरका शोभा देत हैं, अन्यथा भेषरांसे कोई शोभा नहीं होती । पाठक प्रत्येक क्षरीरमें रखे हुए इन सात रत्नोंको देखें । यजुर्वेदमें कहा है—

सप्त भाषयः प्रतिहिताः शरीरे, सप्त रक्षन्ति सखमप्रमादम् ।

सप्तापः स्वपतो लोकमीयुः ॥ यजु० ३४ । ५० ॥

“प्रत्येक शरीरमें सात अग्नि रखे हैं, ये सात इस सभास्थानकी गलती न करते हुए रखा करते हैं, ये सात नदियां सोनेवाले इस जीवात्माके लोकमें जाती हैं।” इत्यादि वर्णन भी इनही इन्द्रियोंका ही वर्णन है, सात रत्न, सात अग्नि, सात रक्षक, सात बल-प्रवाह इत्यादि वर्णन इनही जीवात्माकी सात अक्षियोंका है। ये सात रत्न अथवा यह जीवात्माकूपी अग्नि इस शरीर रूपी हवन कुण्डमें जलता रहता है तब तक रहते हैं, जब यह बुझ जाता है, तब ये रत्न भी छोड़ा देना पड़ करते हैं। ये दोनों अग्नि—

गुह्यस्य घृतस्य पाथः । ( म० १ ) घृतस्य गुह्या गुपाणौ बीधः । ( म० २ )

वां जिह्वा घृतं प्रति आ (उत्तु) चरण्यात् । ( म० १-२ )

“ये दोनों गुप्त भी पीते हैं। इनकी जिह्वा इस घीकी ओर जाती है।” यह गुप्त घृत कौनसा है? यह एक विचारणीय बात है। गुह्यार्थ जो होता है वह ‘गुप्त’ कहलाता है। वहां ‘गुहा’ शब्दसे ‘बुद्धि’ अथवा ‘अन्तःकरण’ विवक्षित है। इसमें जो इन्द्रिय रूपी गौसे निचोड़े हुए दूधका बनाया हुआ भी होता है, वह गुप्त किंवा गुप्त भी है। यह भी इस बुद्धिमें अथवा हृदयकद्वारमें रखा रहता है और इसका ये गुप्त रीतिसे सेवन करते हैं। यह बात अब पाठकोंका विदित होगई होगी, कि इस रूपकका क्या तात्पर्य है। वां महि प्रिय भाम । ( म० १ )

“इनका स्नान बड़ा है और प्रिय है।” क्यों कि यहाँ प्रेम भरा रहता है। सबका यह प्यारा है। सब इसकी ही प्राप्तिके लिये बल करते हैं। ऐसा इनका स्नान है। तथा

दमेदमे सुपुत्या वावृषानौ । ( म० २ )

‘पर परमें उत्तम स्तुतिसे बुद्धिकी प्राप्ति होते हैं।’ अर्थात् हरएक शरीरमें जहाँ-जहाँ उत्तम ईश्वरकी स्तुति होती है, वहाँ उसके क्षुभ गुणोंका नाश हो जाता है, वहाँ एक तो परमेश्वर भावकी बुद्धि होती है, और उन गुणोंकी चारजासे जीवात्माकी अक्षि बढती है। यह तो जीवात्माकी बुद्धिका उपाय ही है।

यहाँ शरीरको ‘दम’ शब्द प्रयुक्त हुआ है। जिस शरीर में इन्द्रियोंका घमन होता है और मनोवृत्तियोंका दमन होता है उसका नाम ‘दम’ है। दो प्रकारके शरीर हैं। एक में भोगवृत्ति बढती है और दूसरेमें दम वृत्ति बढायी जाती है। जिसमें दमवृत्ति बढती है उसका नाम यहाँ ‘दम’ रखा है और इस दमसे “सप्त रत्न” भी उत्तम सेवः पुम स्थितिमें रहते हैं और वहाँ ही आत्माकी अक्षि विकसित होती है। अस्तु॥

## अञ्जन ।

[ ३० ( ३१ ) ]

( ऋषिः-सुगंधिराः । देवता- धावापृथिवी, मित्रः, ब्रह्मणस्पतिः, सविता च )

स्वार्कं मे धावापृथिवी स्वार्कं मित्रो अंकरयस्व ।

स्वार्कं मे ब्रह्मणस्पतिः स्वार्कं सविता करस्व ॥ १ ॥

अर्प- ( धावापृथिवी मे सु-आकत ) शुद्धोक्त और पृथ्वी लोक मेरी आत्माओंको उत्तम अञ्जन करें । ( अथ मित्रः स्वाकत अकः ) यह मित्र मुझे अञ्जन करता है । ( ब्रह्मणस्पतिः मे स्वाकत ) ज्ञानपनि देवने मुझे उत्तम अञ्जन किया है । ( सविता स्वाकत करस्व ) सवितामे भी मेरी आत्माओंके लिये उत्तम अञ्जन किया है ॥ १ ॥

आत्ममें अञ्जन डालकर आत्माओंका आरोग्य बढ़ानेकी धृष्टना इस मंत्रद्वारा मिलती है । शुद्धोक्त पृथ्वीलोक जो वा सुष्टयन्तर्गत धर्मादि पदार्थ हैं, उनका जो तेजस्वी रूप है, वैसे मेरे आत्मा बनें । यह इच्छा इस मन्त्रमें स्पष्ट है । यह मंत्र ज्ञानाञ्जनका भी धृष्टक माना जा सकता है । जिससे दृष्टि शुद्ध होती है वह अञ्जन होता है, फिर वह साधारण अञ्जन हो, अथवा ज्ञानाञ्जन हो ।

## अपनी रक्षा ।

[ ३१ ( ३२ ) ]

( ऋषिः- सुगंधिराः । देवता- इन्द्रः )

इन्द्रो विमिषद्भुतामिन्नो अथ यावच्छ्रेष्ठा विमिषन्धरं जिन्व ।

यो नो द्रष्टव्यधरुः सत्संदीष्ट यस्तु द्विप्पस्तुष्टु प्राणो ब्रह्मातु ॥ १ ॥

अर्प-हे इन्द्र ! (यावत्-श्रेष्ठाभिः बहुलाभिः कृतिभिः) अतिश्रेष्ठ विधिप

प्रकारकी रक्षाओंसे (अथ नः जिन्व) आज हमें जीवित रख । हे (मघवन् शूर) हे धनवान् शूरवीर । (यः नः द्वेष्टि) जो हमारा द्वेष करता है (सः अघर। पदीष्ट) वह नीचे गिर जावे । (य उ द्विष्मः) जिसका हम द्वेष करने हैं (त उ प्राणः जहातु) उसको प्राण छोड़ देवे ॥ १ ॥

भाषार्थ—हे धनवान् और शूर प्रभो ! तुम्हारी जो अनेक प्रकारकी अतिश्रेष्ठ रक्षाएँ हैं, वे सब हमें प्राप्त हों और उससे हमारी रक्षा होवे और हमारा जीवन उनकी सहायतासे सुखकर होवे । जो कुछ हमारी बिनाकारण निन्दा करता है, वह गिर जावे और जिस दुष्टका हम सब द्वेष करते हैं उसका जीवन ही समाप्त हो जावे ॥ १ ॥

हम परमेश्वरकी शक्ति करें और उसकी रक्षा प्राप्त करके सुरक्षित और स्वस्थ होकर आनन्दका उपभोग करें । परंतु जो कुछ अनुप्य हम सबका द्वेषका करता है और उस कारण बिना दुष्टका हम सब द्वेष करते हैं, उसका नाश हो । दुष्टता और द्वेषका समूह नाश हो ॥

## दीर्घायुकी प्रार्थना ।

[ ३२ ( २३ ) ]

( ऋषिः—ब्रह्मा । देवता—आयुः )

उप० प्रिय० पनिमत्त० युवानमाहुतीवृषम् ।

अगन्म० बिभ्रतो० नमो० दीर्घमायुः० कृणोतु मे ॥ १ ॥

अर्थ—( प्रिय पनिमत्त ) प्रिय, स्तुतिके योग्य, ( युवान आहुतीवृष ) तरुण और आहुतियोंसे चढ़नेवाले अग्निके समीप ( नमः बिभ्रतः उप अगन्म ) अन्न पारण करते हुए हम प्राप्त होते हैं । वह ( मे दीर्घ आयुः कृणोतु ) मेरी दीर्घ आयु करे ॥ १ ॥

प्रतिदिन घर घरमें प्रव्यसित अधिमें हवन करनेसे और उस में योग्य विहित हवनीय पदार्थोंका हवन करनेसे परमात्माकी आयु वर्द्धिमत् होती है ।

## प्रजा, धन और दीर्घ आयु ।

[ ३३ ( ३४ ) ]

( ऋषिः—महा । देवता—मन्त्रोक्ता )

स मां सिञ्चन्तु मरुतः सं पूषा सं बृहस्पतिः ।

स मायमग्निः सिञ्चतु प्रज्या च चनेन च दीर्घमायुः कृणोतु मे ॥ १ ॥

अर्थ—( मरुतः मां स सिञ्चन्तु ) मरुत् मेरे ऊपर प्रजा और धनका सिंचन करें । ( पूषा बृहस्पतिः स स ) पूषा और ब्रह्मणस्पति मेरे ऊपर उसीका उत्तम रीतिसे सिंचन करें । ( अयं अग्निः प्रजया च चनेन च मां स सिञ्चतु ) यह अग्नि मेरे ऊपर प्रजा और धनका उत्तम सिंचन करे । और ( मे दीर्घ आयुः कृणोतु ) मेरी दीर्घ आयु करे ॥ १ ॥

देवताओंकी सहायतासे मुझे उत्तम सतान, विपुल धन और दीर्घ आयु प्राप्त होवे । जिस प्रकार मेघसे पानी बरसता है उस प्रकार मेरे ऊपर इनकी वृष्टि होवे । अर्थात् पर्याप्त प्रमाणमें ये मुझे प्राप्त हों । 'मरुत्' वायु किंवा प्राण है । भूद वायुसे प्राण बल-वान् होकर नीरोगता और दीर्घायु प्राप्त हो सकती है । 'ब्रह्मणस्पति' की सहायतासे धान और 'पूषा' की सहायतासे गुरी प्राप्त होगी । इसी प्रकार अग्नि शुद्धता करता है इस लिये इससे पवित्रता प्राप्त होगी और इन सबसे प्रजा, धन और दीर्घ आयुकी शक्ति होगी ।

## निष्पाप होनेकी प्रार्थना ।

[ ३४ ( ३५ ) ]

( ऋषिः—अथर्व । देवता—आत्वेदा । )

अमे जातान् प्र जुडा मे सपत्नान् प्रत्यजातान् आत्वेदो नुदस्य ।

अप्स्पद कुणुष्य ये प्रुत्तन्यवानागसस्ते वयमर्दितये स्याम ॥ १ ॥

अर्थ—हे अग्ने ! ( मे जातान् सपत्नान् प्रणुव् ) मेरे उत्पन्न हुए शत्रुओं को दूर कर । हे ( जातवेदः ) ज्ञानके उत्पादक देव । ( अजातान् प्रति नुवस्व ) प्रसिद्ध रीतिसे शत्रु न बने हुए परन्तु अंदर अंदर से शत्रुता करने वाले शत्रुओंको एकत्र म हटा दो । ( ये पूतन्यवः अथस्पव कृणुस्व ) जो सेना लेकर हमपर चढ़ाई करते हैं उनको नीचे गिरा दे । ( वय अनागसः ) हम सब निष्पाप हैं और ( अदितये स्याम ) अदीमताके लिये योग्य हों ॥ १ ॥

शानी, ज्ञानदाता प्रकाशमय देव हमारे सब शत्रुओंको हमसे दूर करे । शत्रु सुखी रीतिसे शत्रुता करनेवाले हो अथवा गुप्त रीतिसे घात करनेवाले हों, सबके सब शत्रु दूर हों । जो सैन्य लेकर हमारे ऊपर चढ़ाई करते हैं, वे भी सब अपने स्वानसे भिर जावें । हम निष्पाप बनें और दीनता हमसे दूर हो जाय । अदीनता, मज्जता तथा स्वतंत्रता हमारे पास रहे ।

## स्त्रीचिकित्सा ।

[ ३५ ( ३९ ) ]

( त्रयिः—अथर्वा । देवता—जातवेदः । )

प्रान्यान्तसपत्नान्तसहसा सहस्रं प्रत्यक्षावान् जातवेदो नुवस्व ।  
इदं राट्रं विपुहि सौमेगाय बिभ्रं धनुमजु मदन्तु देवाः ॥ १ ॥  
इमा यास्तं जुष हिराः सहस्रं धमनीकृत ।  
तासां ते सर्वासामहमर्चना भिल्लमर्पयाम् ॥ २ ॥  
परु योनेरर्षरं ते कृणोमि मा त्वां प्रमामि मून्मोत यजुः ।  
अस्वैः स्वार्जस कृणोम्यधर्मानं ते अपिधानं कृणोमि ॥ ३ ॥

अर्थ—( अग्न्यान् सपत्नान् सहसा प्रसहस्व ) दूसरे सपत्नोंको पलसे दया दे । हे ( जातवेदः ) ज्ञानप्रकाशक ! ( अजातान् प्रति नुवस्व ) न पने परन्तु आगे होनेवाले सपत्नोंको दूर कर । ( इदं राट्रं सौमेगाय ) न

विश्वहि) इस राष्ट्रको उत्तम समृद्धिके लिये परिपूर्ण करो। (विश्वे देवाः एम अनुमदन्तु) सब देव इसको अनुमोदन दें ॥ १ ॥

(याः ते इमाः घात हिराः) जो ये सौ नाडियाँ हैं, (उत सहस्र धमनीः) और हजारों धमनियाँ हैं, (ते तासां सर्वासां विध) तेरी उन सब धमनियों का छिद्र (अह अश्मना अपि अर्धा) मैं पत्थरसे षट् करता हू ॥ २ ॥

(ते घोनेः पर) तेरे गर्भस्थानसे परे जो हैं उनको (अवर कृणोमि) मैं समीप करता हू। जिससे (प्रजा उत स्रुतः) सन्तान अथवा पुत्र (त्वा मा अभिभूत्) तुझे तिरस्कृत न करे। (त्वा अस्थ प्रजस कृणोमि) तुझे अस्तुवाला अर्थात् प्राणवाला सन्तान करता हू। और (अश्मान ते अपि घान कृणोमि) पत्थर तेरा आवरण करता हू ॥ ३ ॥

इस सूक्तमें श्रीचिकित्साका विषय कहा है। विशेषकर योनिचिकित्साका महत्त्वपूर्ण विषय है। सूक्त अस्पष्ट है और समझन के लिये बहुत कठीण है। अतः इसका योग्य स्पष्टीकरण हम कर नहीं सकते। योनिस्थानकी सैकड़ों नाडियोंका छिद्र बंद करनेका विधान द्वितीय मन्त्रमें है। अर्थात् स्त्रियोंके रक्तस्रावके अथवा प्रमेह आदिके रोगको दूर करनेका सात्पर्य यहाँ प्रतीय होता है। रक्तस्राव को दूर करनेका साधन (अश्मा) पत्थर कहा है, यह किस जातीका पत्थर है इसकी खोज वैद्योंको करना चाहिये। यह कोई ऐसा पत्थर होगा कि जिसके घावपर लगानेसे, बहाते होनेवाला रक्तप्रवाह बंद होगा और रोगीको आरोग्य प्राप्त होगा। तृतीयमन्त्रमें भी इसी पत्थर का उल्लेख है। घावपर इस पत्थरको ठकन बैसा रखना है। यह विधान इसलिये होगा कि यदि किसी घावका रक्तप्रवाह एकबार लगानेसे बंद न होता होगा, तो उसपर वह औषधिका पत्थर बहुत समय तक बाँध देना उचित होगा।

किन्तु कौनका पत्थर छोट घावपर लगानेसे यहाँका रक्तप्रवाह बंद होनेका अनुभव है। इसी प्रकारका यह कोई पत्थर होगा जो स्त्रियोंके योनिस्थान के रक्तप्रवाहको रोकनेवाला यहाँ कहा है।

तृतीय मन्त्रमें सन्तान न होनेवाली स्त्रीके योनिस्थान और गर्भाशयकी नाडियों और धमनियोंका स्थान बंद करनेका उल्लेख है। इस प्रकार स्थान बंद करनेसे उस स्त्रीको सन्तान होते हैं। स्त्री और पुरुष सन्तान भी होते हैं। इस प्रकार धमनियोंका स्थान बंद करने पर संसति उस माताका तिरस्कार नहीं करती (प्रजा मा अभिभूत्) ऐसा मन्त्रका वाक्य है। प्रजा अथवा सन्तान द्वारा स्त्रीका तिरस्कार होनेका स्पष्ट अर्थ



यह है कि उस स्त्रीको सन्तान न होना । जो जिसका विरस्कार करता है, वह उसके पास नहीं जाता । यहाँ सन्तान स्त्रीका विरस्कार करता है, ऐसा कहनेसे उस स्त्रीको सन्तान नहीं होता यह बात सिद्ध है । एसी वध्या स्त्रीको ( अस्-वं प्रजस कुबोवि ) प्राणवाली प्रजा करता हूँ । पूर्वोक्त प्रकार स्त्रीकी घमनियोंका प्रवाह बदलनेसे वध्या स्त्रीको भी प्राणवाली प्रजा होती है । ' अस्व ' शब्द ' अस्-वन्, ' अस्तु-वान् ' प्राणवाला इस अर्थमें यहाँ है । यहाँ ' अस्व ' ऐसा भी पाठ है । यह पाठ माननेपर ' वलवान् ' ऐसा अर्थ होगा ।

वध्या दो प्रकारकी होती है, एक को सन्तान होती नहीं और दूसरीको सन्तान होती है परंतु मरधाती है । इन दोनों प्रकारकी वध्याओंका योनिरुपानकी नाडीबोझ रुख बदल देनेसे सन्तानोत्पत्ति करनेमें समर्थ होनेका समर्थ यहाँ कहा है । इससे इसका विचार करें । यह श्रव्य प्रयोग करनेवाले कुशल साक्षरोंका विषय है, इस विषे इस सूत्रपर विचार करना उनका कार्य है ।

ॐ नमः शिवाय ॥

## पतिपत्नीका परस्पर प्रेम ।

[ ३६ ( ३७ ) ]

( श्रुतिः— अथर्वा । देवता— अग्नि )

अथर्वानौ मधुसकाशे अनीक नौ समञ्जनम् ।

अन्तः कृणुष्व मां इदि मन इषीं सुहासति ॥ १ ॥

अर्थ— (नौ अक्षरौ मधुसकाशे) हम दोनोंकी आँखें मधुके समान मीठी हों । (नौ अनैक समञ्जन) हम दोनोंके आँखके अक्षमाण उत्तम अञ्जनसे युक्त हों । (इदि मां अन्तः कृणुष्व) अपने हृदयमें सुखे अन्तर रख । (नौ मनः इत् सह असति) हम दोनोंका मन सदा परस्पर साथ मिला रहे ॥ १ ॥

पतिपत्नीकी आँखें परस्परका अवलोकन प्रेमकी मीठी दृष्टिसे करें । एकको दखनेसे दूसरेका मानन्दका अनुभव हो । कभी पतिपत्नीमें ऐसा माघ न हो कि जिसके कारण एकका दखनेसे दूसरेके मनमें क्रोध और द्वेषका भाव आग उठ । दोनोंके आँख, उत्तम अञ्जनसे शुद्ध, पवित्र और निर्दोष हुए हों । दृष्टि शुद्ध हो । किसीकी भी दृष्टिमें अपवित्रता न हो । आँखकी पवित्रता साधारण अञ्जन करता है, उसी प्रकार ज्ञानसे भी दृष्टि की पवित्रता होती है ।

पति अपने हृदयमें पत्नीको अच्छा स्थान दे, वहाँ धर्मपतिनके सिवाय किसी दूसरी स्त्रीको स्थान न मिले । इसी प्रकार पत्नी भी अपने हृदयमें पतिको स्थान दे और कभी धर्मपतीके बिना दूसरे किसी पुरुषको वहाँ स्थान प्राप्त न हो । (हृदि मां अन्तः कृणुष्व) पतिपत्नी एक दूसरेको ही अपने हृदयमें स्थान दें ।

( मनः सह असति ) पतिपत्नीका मन एक दूसरेके साथ मिला हो, कभी विभक्त न हो । इनमेंसे कोई एक व्यक्ति दूसरेके साथ न झगड़ और अपना मन किसी दूसरी व्यक्तिके साथ न मिलाये ।

इस प्रकार पतिपत्नी रहे और गृहस्थाश्रमका व्यवहार करें । इस मंत्रमें पतिपत्नीके गृहस्थाश्रमका सर्वोत्तम आदर्श बताया है । पाठक इस सूक्तके उपदेशको अपने आचरणमें डाल देनेका यत्न करें और गृहस्थाश्रमका पूर्ण आनन्द प्राप्त करें ।

## पत्नी पतिके लिये वस्त्र बनावे ।

[ ३७ ( ३८ ) ]

( ऋषिः—अथर्व । देवता—सिंघोक्ता )

अभि स्वा मनुजातेन दर्शामि मम धाससा ।

ययासो मम केवलो नान्पासां कीर्तयाभन ॥ १ ॥

अर्थ—( मम मनुजातेन धाससा ) मेरे बिचारके साथ बनाये वस्त्रसे ( स्वा अभि दर्शामि ) मुझे मैं पाँच देती हू । ( यया केवलः मम असः ) जिससे तू एक मात्र केवल मेरा पति होकर रह और ( अन्पासां न चन कीर्तयाः ) अन्य स्त्रियोंका नाम तक लेनेवाला न हो ॥ १ ॥

स्त्री अपन हाथस धत कवि, धर्मा चलावे, धत निर्माण करे और अपनी कुशलता पूर्वक निर्माण किए हुए कपड़से पतिके पहिरनेके वस्त्र निर्माण कर । पत्नीके निर्माण किये धतसे बने हुए वस्त्र पति पहने । धत निर्माण करनेके समय पत्नी अपन आन्तरिक प्रेमके साथ धत कवि और पति भी ऐसा कपड़ा पहनना अपना वैमर्ष माने । इस प्रकार परस्पर प्रेमका व्यवहार करनेसे धमपतिभी दूसरी स्त्री का नाम नहीं लेगा, और धर्मपत्नी भी दूसरे पुरुष का नाम नहीं लगी । इस प्रकार दोनों गृहस्थाश्रमका आनन्द प्राप्त करते हुए सुखी हों ।

यह सूक्त भी गृहस्थी लोगोंको स्थानमें धारण करने योग्य उपदेश दे रहा है ।

## पतिपत्नीका एकमत ।

[ १८ ( ३९ ) ]

( अभिः-अथर्वा । देवता-वनस्पतिः )

इह खनामि भेषजं मां पश्यममिरोद्धम् ।

परायसो निवर्तनमायुतः प्रतिनन्दनम् ॥ १ ॥

येनां निवृत्त आसुरीन्द्रं देवेभ्यस्परि ।

तेनां नि कुर्वे स्वायुह यया वेसांनि सुप्रिया ॥ २ ॥

अर्थ—मैं ( इह औपध खनामि ) इस औपधि वनस्पतिको खोदती हूँ । यह औपध ( मां—पश्य ) मेरी ओर इष्टि स्वीचानेवाला और ( अमि—रोद्ध ) सय प्रकारसे पुर्वर्तनसे रोकनेवाला, ( परायतः निवर्तन ) पुर्मागमें दूर जानेवाले को भी वापस लानेवाला, और ( आयतः प्रतिनन्दन ) सय ममें रहनेवालेका आनन्द बढानेवाला है ॥ १ ॥

( आसुरी ) आसुरी नामक औपधिने ( येन देवेभ्यः परि इन्द्रं मि वक्ते ) जिस गुणके कारण देवोंके ऊपर इन्द्रको अधिक प्रभावशाली बनाया, ( तेन अह त्वां निकुर्वे ) उससे मैं तुझे प्रभावशाली बनाती हूँ, ( यया ते सुप्रिया वसानि ) जिससे तेरी प्रिय धर्मपत्नी मैं बनूगी ॥ २ ॥

भाषार्थ—मैं इस औपधिको भूमिसे खोदकर लेती हूँ, इससे मेरी ओर ही पतिकी आँखें छोंगी, अर्थात् किसी अन्य स्थानमें नहीं जावेगी, सय प्रकारके पुर्वर्तनसे बचाव होगा, यदि पुर्मागमें उसका पांव पड़ा होगा, तो वह वापस आवेगा, और वह सयमसे रहकर अथ आनन्द प्राप्त कर सकेगा ॥ १ ॥

इसका नाम आसुरी वनस्पति है । इसका प्रभावसे इन्द्र सय देवोंमें विशेष प्रभावशाली होनेके कारण अष्टयम गया । इस वनस्पतिसे मैं अपने पतिको प्रभावित करती हूँ, जिससे मैं धर्मपत्नी अपने पतिकी प्रिय सखी बनकर रहूँगी ॥ २ ॥

प्रतीची सोममसि प्रतीच्युत सूर्यम् ।

प्रतीची विश्वान्देवान् तां त्वाञ्छावदामसि ॥ ३ ॥

अहं वदामि नेत् त्वं सभायामह त्वं वद ।

ममेदसस्त्वं कर्बलो नान्यासां कीर्तयाम्न ॥ ४ ॥

यदि धासि तिरोज्जनं यदि वा नृष्यस्तिरः ।

इय इ मम त्वामोषधिर्वध्वेय न्यानयत् ॥ ५ ॥

॥ इति तृतीयोऽनुवाकः ॥

अर्थ— तू ( सोम प्रतीची असि ) चन्द्रके समुच्च रहती है, ( उत सूर्य प्रतीची ) और सूर्यके समुच्च होती है, तथा ( विश्वान् देवान् प्रतीची ) सब देवोंके समुच्च होती है । ( तां त्वा अञ्छा वदामसि ) ऐसे तेरा मैं उत्तम वर्णन करता हू ॥ ३ ॥

( अहं वदामि ) मैं बोलती हू, ( न इत् त्वं ) तू न पाल । ( त्वं सभायां अहं वद ) तू सभाम निम्नघर्षक बोल । ( त्वं केवलः मम इत् अमः ) तू केवल मेराही होकर रह, ( अन्यासां न चन कीर्तयाः ) अन्योका नाम तक न ले ॥ ४ ॥

( यदि धा तिरोज्जम असि ) यदि तू जनोंसे दूर जगलम रहा, ( यदि वा नृष्यः तिरोः ) यदि तू नदीके पार गया होगा, ता भी ( इय ओषधिः ) यह औषधि ( त्वां वध्वा ) तुझे पाँचकर ( मम नि आनयत् इ ) मेरे पास ले आवेगी ॥ ५ ॥

भावार्थ— यह धर्मपति चन्द्रके अभिमुख होकर शान्तगुण प्राप्त करती है, तथा सूर्यके समुच्च रहकर तेजास्विता प्राप्त करती है और अन्य दयास अन्यान्य दिव्य गुण लेती है । इसीलिये इसकी प्रशंसा की जाती है ॥ ३ ॥

हे पति ! घरमें मैं बोलूंगी, और मेरे भावणका अनुमादन तू कर । घरमें तू न बोल । तू सभाम शृण्व वक्तृत्व कर । परंतु घरम आकर तू केवल मेरा प्रिय पति बनकर मेरे अनुकूल रह । ऐसा करनेस तुम्ह किसी अन्य स्त्रीका नाम तक छेनकी आवश्यकता नहीं रहेगी ॥ ४ ॥

यदि तू घामम रहा या घनम गया, यदि नदीके पार गया अपवा इस ओर रहा, यह औषधि ऐसी है कि जिसके प्रभावसे तू मर माय गया हाकर मेरे पासही आवेगा, और किसी दूसरे ग्यानपर नहीं जायेगा ॥ ५ ॥

यह सूक्त स्पष्ट है इसलिये अधिक विवरण करनेकी आवश्यकता नहीं है । बतिये लिये एकही स्त्री धर्मपत्नी हो और पत्नीके लिये एकही पुरुष धर्मपती हो, यह विवाह का उत्तम आदर्श इस सूक्तने पाठकोंके समुच्च रखा है । कोई पुरुष अपनी विवाहित धर्मपत्नीका छोड़कर किसी भी दूसरी स्त्रीकी अपेक्षा न करे और कोई स्त्री अपने विवाहित धर्मपतिको छोड़कर किसी दूसरे पुरुषकी कभी अपेक्षा न करे ।

दोनों एक दूसरेके साथ प्रेमसे वध्न होकर अत्यन्त प्रेमपूर्वक व्यवहार करें और गृहस्थाश्रमका व्यवहार सुखपूर्वक करें । इस सूक्तमें 'आसुरी' वनस्पतिका उपयोग कहा है । इसका सेवन करनेसे मनुष्य पराक्रमी और उत्साही होता है, मनुष्यकी प्रवृत्ति पापाचरणकी ओर नहीं होती । ऐसा इसका फल वर्णन हुआ है । यह औषधि कौनसी है इसका पता नहीं चलता । सुविध वैद्य इसका जन्त्रेपण करें और जनताकी भलाईके लिये उसके उपयोग का प्रयोग प्रकाशित करें ।

## उत्तम वृष्टि ।

[ ३९ ( ४० ) ]

( ऋषिः—प्रस्कणः । देवता—मन्त्रोक्ता )

द्विष्य सुपूर्णं पयस बृहन्तमुपां गर्भं वृषममोर्षवीनाम् ।

अभीपतो वृष्ट्या तर्पयन्तुमा नो गोष्ठे रयिष्ठां स्थापयाति ॥ १॥

अर्थ—( द्विष्य, पयस सुवर्ण ) आकाशमें रहनेवाले, जलको पारण करनेके कारण कारण जलसे परिपूर्ण, ( अपां बृहन्त वृषभ ) जलकी बड़ी वृष्टि करनेवाले, ( ओषधीनां गर्भं ) औषधिवनस्पतियोंका गर्भ बढ़ानेवाले, ( अभीपतः वृष्ट्या तर्पयन्तु ) सब प्रकारसे वृष्टिद्वारा तृप्ति करनेवाले, ( रयि—स्यां ) गोमाधुक्त स्थानमें रहनेवाले भेचको देव ( नः गोष्ठे आ स्थापयतु ) हमारी गोशालाकी भूमिमें स्थापन करे अर्थात् हमारी भूमिमें उत्तम वृष्टि होवे ॥ १ ॥

भेच आकाशमें संचार करता है, यह जलसे परिपूर्ण होता है, जलकी वृष्टि करता है, उसके जलसे सब औषधि वनस्पतियां गर्भयुक्त होती हैं, यह अन्य रीतिसे अपनी वृष्टि द्वारा सबकी तृप्ति करता है, सबकी गोमा बढ़ाता है, यह सबका द्विष्ट करनेवाला भेच हमारी भूमिमें जहाँ हमारी गौएं रहती हैं, वहाँ उत्तम वृष्टि करावे और हम सबको तृप्त करे ।

# अमृतरसवाला देव ।

[ ४० ( ४१ ) ]

( ऋषिः— प्रसूतः । देवता— सरस्वान् )

यस्य व्रतं पशुषो यन्ति सर्वे यस्य व्रतं उपतिष्ठन्त आर्षः ।

यस्य व्रते पुष्टपतिर्निषिष्टस्त सरस्वन्तमवसे इवामहे ॥ १ ॥

आ प्रत्यर्च्य दाशुषे दासस सरस्वन्त पुष्टपतिं रयिष्ठाम् ।

रायस्पोषं भवस्य वसाना इह हुवेम सदनं रयीणाम् ॥ २ ॥

अर्थ— (सर्वे पशुषा यस्य व्रतं यन्ति) सब पशु जिसके नियमके अनुसार आते हैं, (यस्य व्रते आपः उपतिष्ठन्ति) जिसके कर्मके अनुसार जल उपस्थित होते हैं, (यस्य व्रते पुष्टपतिः निषिष्टः) जिसके व्रतमें पोषणकर्ता कार्य करता है, (त सरस्वन्त अवसे इवामहे) उस अमृतरसवाले देवकी हमारी रक्षाके लिये हम प्रार्थना करते हैं ॥ १ ॥

(दाशुषे प्रत्यर्च्य दाश्वस) दाताको प्रत्येक समय समुत्सव होकर दान देनेवाले (पुष्टपतिं सरस्वन्त) पुष्टि करने वाले, अमृतरसवाले, (रयि स्यां) ऐश्वर्यमें स्थिर रहनेवाले, (रायस्पोष भवस्य) धनकी पुष्टि करनेवाले और अन्नवाले, (रयीणां सदनं) धनोंके आश्रयस्थानरूप देवकी (इह वसाना) यहां रहनेवाले हम सब (आ हुवेम) प्रार्थना करते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ— सब पशु पक्षी जिसके नियममें रहते हैं, जल जिसके नियम से पड़ता है, जिसके नियमसे सबकी पुष्टि होती है, उस देवकी हम प्रार्थना करते हैं कि वह हमारी रक्षा करे ॥ १ ॥

हर एक दाताको जो धन देता है, सबका जो पोषण करता है, जिसके कारण सबकी शोभा होती है, जो सबके ऐश्वर्यको बढ़ाता है, और जिसके पास अन्न भी विपुल है, जिसके आश्रयसे सब धन रहते हैं, उस देवकी हम प्रार्थना करते हैं कि, उसकी कृपासे हम सब हम स्थानमें रहनेवाले लोग सुरक्षित हों ॥ २ ॥

ईश्वरके पास संपूर्ण अमृतरस है । वह स्वयं सबका पोषण करता है अतः हम उसकी प्रार्थना करते हैं कि वह हमारी रक्षा करे, हमें पुष्ट करे, हमें धनसंपन्न करे और अमृत रससे युक्त करे ।

## मनुष्योंका निरीक्षक देव ।

[ ४१ ( ४२ ) ]

( अग्निः—प्रदक्षः । देवता—इयमः )

अति धन्वान्यत्पस्तर्द इयेनो नृचक्षा अवसानदर्शः ।

तरन् विश्वान्यवरा रजांसीन्द्रेण सख्या क्षिप्र आ जगम्पात् ॥ १ ॥

इयेनो नृचक्षा दिव्यः सुपर्णः सहस्रपाच्छतयोर्निर्वयोषाः

स नो नि ब्रह्माय वसु यत् पराभृतमस्मार्कमस्तु पितृषु स्वभाषत् ॥ २ ॥

अर्थ—( अवसान—दर्शः, नृचक्षाः, इयमः ) अन्तिम अवस्थाको समझ नेवाला, सब मनुष्योंको यथायत् जाननेवाला, सूर्यवत् प्रकाशमान ईश्वर, ( धन्वानि अति अपः अति ततर्द ) रेतिले देखोंके ऊपर भी अत्यंत जल की घृष्टि करता है । तथा ( विश्वानि अवरा रजांसि ) सब निम्नभागके छोटाके प्रति ( इन्द्रेण सख्या क्षिप्र ) अपने मित्र इन्द्रके साथ कल्याण रूप होकर ( तरन् ) सबको पार करता हुआ ( आ जगम्पात् ) प्राप्त होता है ॥ १ ॥

( नृचक्षाः दिव्यः सुपर्णः ) मनुष्योंका निरीक्षक, शुलोक में रहनेवाला, जिसके उत्तम किरण है, ( सहस्रपात् शतयोनिः ) सहस्र पायोंसे सर्वत्र संचार करनेवाला, सैकड़ों प्रकारकी उत्पादक शक्तियोंसे युक्त, ( वयोषाः इयमः ) अग्निका देवनेवाला, सूर्यवत् प्रकाशमान देव ( यत् पराभृत वस्तु ) जो जो पाम प्राप्त होनेवाला धन है, वह धन ( सः नः नियच्छात् ) वह देव हम दक्ष । ( अस्माक पितृषु स्वभाषत् अस्तु ) हमारे पितरोंमें अग्निका भाग सदा रह ॥ २ ॥

सब मनुष्योंकी अन्तिम अवस्था केंसी हागी इसका यथार्थ ज्ञान रखनेवाला, सब मनुष्योंके कर्मोंका योग्य निराधुन करनेवाला, शुलोकमें प्रकाशित पूर्ण होनेवाला, जो हमारा प्रकारकी गतिधर्म सधन संचार कर सक्ता है, और जो सैकड़ों प्रकारकी उत्पा

दक शक्तियोंसे विविध पदार्थोंका उत्पन्न कर सकता है, जो सबको अपने दत्ता है, ऐसा प्रकाशमय दश रेखांश प्रदेशोंपर भी पशुत वृष्टी करता है, अर्थात् अन्यत्र वृक्षवनस्पतियों पर तो करता ही है । यह देव शुलोक से अपनी ओर जो अन्यान्य लोक लोकान्तर हैं, उनका पारण करता है, उनका कल्याण करता है, सबको दुःखसे पार करता है । इन्द्र अर्थात् जीवात्माका परम मित्र यह है और यह भूमिपर भी सर्वत्र उपस्थित होता है । यह देव अन्योंसे जो धन प्राप्त होता है वह सब उपासकोंको देताही है, परंतु अन्य भी पशुत कल्याणकारी धन देता है । वह दश हमारे पितरोंको तथा हम सबको अन्नादि पदार्थ देवे ।

## पापसे मुक्तता ।

[ ४२ ( ४३ ) ]

( ऋषिः—प्रश्नः । देवता—सोमारुद्र )

सोमारुद्रा वि वृद्धं विपृचीमसीषा या नो गर्भमाविषेत् ।  
पापेर्धा दूर निर्वृतिं पराचैः कृत विदेनः प्र मुमुक्षुमस्मत् ॥ १ ॥  
सोमारुद्रा युषमेतान्यस्मद् भिक्षा तनुपं भेषजानि पचम् ।  
अवस्यत् मुश्चत् यन्नो असत् तनुपं पच कृतमनो अस्मत् ॥ २ ॥

अर्थ—हे सोम और रुद्र ! ( या अमीषा ) जो रोग ( ना गय अविषेत् ) हमारे घरमें प्रविष्ट हुआ है, उस ( विपृचीं विवृक्षम् ) फैलनेवाले रोगको दूर करो । ( निर्वृतिं पराचैः दूर पापेर्धा ) दुर्गतिको विशेष रीतिसे दूर ही रोक दो । ( कृत विदेनः पचम् ) हमारा किया हुआ भी जो पाप है, यह ( अस्मत् प्रमुमुक्षुम् ) हमसे छुटाओ ॥ १ ॥

हे सोम और रुद्र ! ( युष अस्मात् तनुपु ) तुम दोनों हमारे शरीरोंमें ( पचानि विभ्या भेषजानि पचम् ) इन सब औषधियोंको पारण करो । ( पच नः तनुपु पच पच अस्मत् ) जा हमारा शरीरोंमें सबपरसे हुआ पाप है, उसमें ( अवस्यत् ) हमारा पचाप करो । ( अस्मत् कृत यन्नः प्रमुमुक्षुम् ) हमसे किए हुए पापमें हमारी मुक्तता करा ॥ २ ॥



‘अमीष’ नाम उन रोगोंका है कि जो आम अर्थात् पचन न हुए अन्नसे होते हैं। पेटमें जो अन्न आता है वह वहाँ हाजम न हुआ तो वहाँ ही उसका आम बनता है और उससे रोग उत्पन्न होते हैं। इन रोगोंको सोम और रुद्र ये दो देव दूर करनेमें समर्थ हैं। ‘सोम’ शब्द वनस्पति और औषधियोंका वाचक है, अर्थात् योग्य औषधि के सेवनसे आमका दोष दूर होगा। यह एक उपदेस्य यह मंत्र दे रहा है।

‘रुद्र’ नाम प्राणका है, जीवन शक्ति जो शरीरमें है। यह रौद्री शक्ति आपका दोष दूर करनेमें समर्थ है। प्राणायामसे एक तो रक्तकी शुद्धि होती है और आंतोंमें योग्य गति होनेसे दौचशुद्धि होनेके कारण आम का दोष दूर होता है।

शरीरकी सब दुर्गति आम विकारके कारण होती है अतः योग्य औषधि सेवनसे तथा प्राणायामके अभ्याससे उक्त दोष शरीरसे दूर करना योग्य है। शरीरसे कुछ नियमविरोधी आचरण होकर कुछ पाप भी बना हो, तो भी उक्त देवताओंकी सहायतासे वह दूर होगा और पापसे आनेवाली सब बिपत्ति दूर होगी।

द्वितीय मंत्रमें ( विद्यानि मयमानि ) उपर्युक्त औषधियाँ सोम और रुद्रसे प्राप्त होती हैं ऐसा कहा है। सोम तो औषधियोंका राजा ही है, अतः उसके घरमें सब औषधियाँ रहती ही हैं। रुद्र भी जीवनशक्तिमय है इसलिये वहाँ जीवनशक्ति होगी, वहाँ रोग कैसे आसकते हैं ? इस प्राणसे भी सब औषधियाँ मनुष्यका प्राप्त हो सकती हैं। इनसे पूर्ववत् शरीरके दोष और सब पाप दूर हो जाते हैं। अतः सब मनुष्य इनसे अपना आरोग्य प्राप्त करें और नरोग बनें।

## वाणी ।

[ ४३ ( ४४ ) ]

( श्रापिः प्रस्कण्वः । देवता—वाक् )

श्रियास्तु एका अश्रियास्तु एकाः सर्वा विमर्षि सुमनस्यमानः ।

तिष्ठो वाचो निर्दिता अन्तरस्मिन् धाम्नामेका वि पर्याप्तानु योषम् ॥ १ ॥

अर्थ—( ते एकाः श्रियाः ) तेरे एक प्रकारके शब्द कल्याणकारक हाते हैं, तथा ( ते एकाः अश्रियाः ) तेरे दूसरे प्रकारके शब्द अशुभ भी हाते हैं। (सुमनस्यमानः सर्वाः विमर्षि) उत्तम मनवाला तू उन सबको धारण करता है। (तिष्ठो वाचो अस्मिन् अन्तः निर्दिताः) तीन प्रकारकी वाणियाँ

इस मनुष्यके अन्दर गुप्त रहती हैं । ( तासां एका घोष अनु विपपात )  
उनमेंसे एक पक्षे स्वरमें विघोष रीतिसे बाहर व्यक्त होती है ॥ १ ॥

परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी ये वाणीके चार नाम हैं, परा नामिस्थानमें,  
पश्यन्ती हृदयस्थानमें, मध्यमा छातीके ऊपरके भागमें और वैखरी मुखमें होती है । जो  
शब्द उच्चारण जाता है वह इन चार स्थानोंसे गुजरता है । पहिली तीनों वाणिमां गुप्त  
हैं और चतुर्थ वाणी प्रकट है जो सब लोग बोलते हैं । यह चतुर्थ वैखरी वाणी मनुष्य  
श्रुम और अश्रुम दोनों प्रकारसे बोलते हैं । अतः मनुष्यका योग्य है कि वह उच्चम  
श्रुम स्वरकार युक्त मनवाला होकर श्रुम शब्दोंका ही प्रयोग करे । यही श्रुम उच्चारण  
वाणी सबका कल्याण कर सकती है ॥

## विजयी देव ।

[ ४४ ( ४५ ) ]

( श्राविः—प्रसृज्याः । देवता—इन्द्र, विष्णुः )

तुमा जिग्ययुर्न परा जयेथे न परा भिग्ये कतुरभ्यनैनयोः ।

इन्द्रं विष्णो यदयस्त्वेषां श्रेषा सहस्रं वि तदैरयेषाम् ॥ १ ॥

अर्थ—( तुमा ) दोनों इन्द्र और विष्णु ( जिग्ययुः ) विजय करते हैं । वे  
कभी ( न परा जयेथे ) पराजित नहीं होते । ( एमयोः कतुरः ) यन् न  
पराजिग्ये ) इनमेंसे एक भी कभी पराजित नहीं होता । ( इन्द्रः विष्णो  
च ) हे इन्द्र और हे विष्णु ! ( यत् अपस्त्वेषां ) जय तुम दोनों स्वर्गसे  
युद्ध करते हैं, ( तत् सहस्र श्रेषा वि ऐरयेषां ) तय हजारों शत्रुओंको तीन  
प्रकारसे भगा देते हैं ॥ १ ॥

‘विष्णु’ नाम व्यापक परमात्माका है और ‘इन्द्र’ नाम धरारिष्य इन्द्रियोंको अपनी  
शक्ति का प्रदान करनेवाले जीवामाका है । ये दोनों विजयी हैं । यही नर और  
नारायण हैं य धरारिष्य एकही रूपपर रहते हैं और विजय प्राप्त करते हैं । ये दोनों  
तथा इनमेंसे एक एक भी विजयशाली हैं । य अपने शत्रुओंको अनेक प्रकारसे भगा देते हैं ।  
पाठक इस मंत्रस यह भाव मनमें समझें कि विजयी इन्द्र या उद्दीका जीवामा है और  
विष्णु उसका परम मित्र परमात्मा है । इनकी विजयी शक्ति इनके अन्दर है, इसलिये  
यदि वे इस शक्तिका योग्य उपयोग कर सकन, तो उनका निःसन्देह विजय होगा ।

## ईर्ष्यानिवारक औषध ।

[ ४५ ( ४९, ४७ ) ]

( आपिः—प्रस्कम्भः, ४७ अक्षर्या । दधता-ईर्ष्यानिपन, मेघजम् )

जनाद् विश्वजनीनात् सिन्धुतस्पर्शामृतम् ।

दूरात् त्वा मन्य उद्धृतमीर्ष्याया नाम मेघजम् ॥ १ ॥

अमेरिशास्य दहतो दावस्य दहतः पृथक् ।

एतामेतस्येर्ष्यामुदनामिमिव क्षमय ॥ २ ॥

अर्थ—( विश्वजनीनात् जनात् ) सपूर्ण जनोके हितकारी जनपदसंतथा ( सिन्धुतः परि आभूत ) समुद्रसे जो लाया है, वह ( ईर्ष्यायाः नाम मेघज ) ईर्ष्याको दूर करनेवाला औषध है, हे औषध ! ( दूरात् त्वा उद्धृत मन्ये ) दूरसे तुझ औषधको यहां लाया है, यह मैं जानता हू ॥ १ ॥

हे औषध ! तू ( अस्य दहतः अमेः इव ) इस जलानेवाले अमिको, ( पृथक् दहतः दावस्य ) अलग जलानेवाले दावानलको अर्थात् ( एतस्य एता ईर्ष्या ) इस मनुष्यकी इस ईर्ष्याको ( उद्धृत अमि इव क्षमय ) उधर कसे अमिको शान्त करनेके समान शान्त कर ॥ २ ॥



मनमें जो ईर्ष्या स्पर्शा और द्वेषभाव होता है, वह इस औषधके प्रयोगसे दूर होता है । सुविध वैद्योको उचित है कि व इन मनके ऊपर प्रभाव करनेवाली औषधि यांही खोज करें । इस समय मानसिक रोगोंकी धीकृत्सा वैद्य करनेमें व्यसमर्थ समझे जाते हैं । यदि ये औषधियां प्राप्त हुए तो मनके रोगभी दूर होते हैं । इस छन्द में औषधिका नामवक नहीं है । यही इसकी लाभमें यही कठिनता है ।

## सिद्धिकी प्रार्थना ।

[ ४६ ( ४८ ) ] ( अग्निः—अथर्षा । देवता—मन्त्रोक्ता )

सिनीवालि पृथुपुके या देवानामसि स्वसा ।

जुपस्व हव्यमाहुष प्रजां देवि दिदिद्दि नः ॥ १ ॥

या सुबाहुः स्वहगुरिः सुपूमा यहुसवरी ।

तस्यै विद्वत्स्यै हविः सिनीवास्यै जुहोतन ॥ २ ॥

या विद्वत्पत्नीन्द्रमसि प्रतीषी सहस्रस्तुकाभियन्ती देवी ।

विष्णोः पत्नि तुम्यै राता हवीषि पतिं देवि राघसे चोदयस्व ॥ ३ ॥

अर्थ—हे ( सिनीवाली पृथु—पुके ) अन्नयुक्त और यहुतोंद्वारा प्रशसित देवी ! ( या देवानां स्वसा असि ) जो तू देवोंकी अग्निनी है । हे देवि ! तू (आहुत हव्य जुपस्व) हवन किये आहुतिपोंका स्वीकार कर । और ( नः प्रजां दिदिद्दि ) हमें उत्तम सन्तान दे ॥ १ ॥

( या सुबाहुः स्वहगुरिः ) जो उत्तम बाहुवाली और उत्तम अगुलियोंवाली, ( सुपूमा यहु—सवरी ) उत्तम अगवाली और उत्तम सन्ताम उत्पन्न करनेमें समर्थ है, ( तस्यै विद्वत्स्यै सिनीवास्यै ) उस प्रजापालक अन्नयुक्त देवताके लिये ( हविः जुहोतन ) हवि प्रदान करा ॥ २ ॥

( या विद्वत्पत्नी इन्द्र प्रतीषी असि ) जो प्रजापालन करनेवाली तू प्रभुके सन्मुख रहती है । तथा ( सहस्र—स्तुका देवी अभियन्ती ) हजारों कृपियों द्वारा प्रशसित तू देवी आगे पहती है । हे ( विष्णोः पत्नि ) विष्णुकी पत्नी ! हे देवि ! ( तुम्यै हवीषि राता ) तुम्हारे लिये मैं हवन अर्पण करता हूँ । हमारी ( राघसे पतिं चोदयस्व ) सिद्धिकी प्राप्तिके लिये अपने पतिको प्रेरित कर ॥ ३ ॥

इस सूक्तमें 'विष्णु' अर्थात् व्यापक देवकी पत्नी अर्थात् उसकी शक्तिकी प्रार्थना है । यह व्यापक ईश्वरकी शक्ति संपूर्ण अन्य देवताओंमें आकर कार्य करती है, सब अणु की पालना इसी शक्तिसे होती है । हमारा सानी मन इस शक्तिका अनुभव करते हैं, और वे इस की विविध प्रकारसे स्तुति करते हैं । यह शक्ति अपने पति सर्वव्यापक ईश्वरको प्रेरित करे और वह हमें सब प्रकारकी सिद्धि देवे ।

# अमृत-शक्ति ।

[ ४७ ( ४० ) ]

( ऋषिः— अथर्व । देवता— यन्त्रोक्ता )

कूहं देवीं सुकृतं विष्णुर्पसुमसिन् यज्ञे सुहर्वा जोहवीमि ।  
सा नो रयि विश्ववार नि यच्छाद् ददातु वीरं वृषदायमुक्थमि ॥ १ ॥  
कूहर्देवानाममृतस्य पत्नी हव्या नो अस्व हविषो जुपेत ।  
धृणोतुं मङ्गमुच्यते नो अथ रायस्पोष चिकितुषी दधातु ॥ २ ॥

अर्थ— ( सुकृत विद्यामापस सुहर्वा ) उत्तम कर्म करनेवाली, ज्ञानपूर्वक कर्म करनेवाली, स्तुतिके योग्य, (कूह देवी) पृथ्वीपर जिसका इवन होता है ऐसी दिव्य शक्तिमयी देवीको मैं (असिन् यज्ञे जोहवीमि) इस यज्ञमें बुलाता हूँ । (सा विश्ववार रयि नः नियच्छात्) वह सबको स्वीकारन योग्य घन हम देव । तथा (उक्थ्य दातुत्वात् वीरं ददातु) प्रशस्तनीय और संकष्टों दान करनेवाले वीरका प्रदान करे ॥ १ ॥

( देवानां अमृतस्य पत्नी कूह—हू ) सब देवोंके बीचमें जो पूर्णतया अमर है, उस ईश्वरकी पत्नी यह कूह, अर्थात् जिसका इवन इस पृथ्वीपर सब करने हैं, वह ( नः हव्या ) हमसे प्रशसा होमे योग्य है । वह ( अस्व हविषा जुपेत ) इस हविका सेवन करे । ( वृषाती यज्ञं धृणोतु ) इच्छा करती हुई वह देवी यज्ञका वृत्तान्त सुमे और ( चिकितुषी रायस्पोष अथ नः दधातु ) ज्ञानवाली वह देवी जनसमुद्धी आज हमें देवे ॥ २ ॥

इस पृथ्वीपर जिसका सत्कार होता है उसको ' कूह ' कहते हैं । यह ( अमृतस्य पत्नी ) अमर ईश्वर की आवि अक्ति है । और यह ईश्वर ( देवानां अमृतः ) संपूर्ण देवोंमें अमर है । इसकी अमर शक्तिसे ही सब अग्न्य देव अमर बने हैं । इस परमेश्वरी शक्तिकी हम उपासना करते हैं । वह देवी हमें घन और वीरता देवे ।

# पुष्टिकी प्रार्थना ।

[ ४८ ( ५० ) ]

( ऋषिः—अथर्षा । देवता—मंत्रोक्ता )

राकांमहं सुहृन् सुपुत्री हुवे शृणोतु नः सुमगां बोधतु त्वना ।  
सीष्मत्स्वर्षः सुप्याच्छिद्यमानया ददातु वीरं श्रुतदायमुक्थ्यम् ॥ १ ॥  
यास्तै राके सुमतयः सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुपे वसुनि ।  
तामिनीं अथ सुमना उपानहि सहस्रापोषं सुमगे रराणा ॥ २ ॥

अर्थ—( वह सुहृन् सुपुत्री राकां हुवे ) मैं उत्तम बुलानेयोग्य और स्तुती करनेयोग्य पूर्ण चन्द्रमा के समान आलङ्कारवायिनी देवीको हम बुलाते हैं । ( शृणोतु ) वह हमारी प्रकार सुनें और ( सुमगा नः त्वना बोधतु ) वह उत्तम ऐश्वर्यवाली देवी हमें अपनी शक्तिसे जगावे । ( आच्छिद्यमानया सूच्या अपः सीष्मत् ) कभी न टूटनेवाली सूईसे वह अपने कपड़े सीनेके काम सीवे और ( उक्थ्य श्रुतदाय वीरं ददातु ) वह प्रशसनीय सेकड़ों दान देनेवाले वीर पुत्रको हमें प्रदान करे ॥ १ ॥

हे ( राके ) शोभा देनेवाली देवी ! ( याः ते सुपेशसः सुमतयः ) जो तेरे उत्तम सुन्दर सुमतिर्षा हैं, ( याभिः दाशुप वसुनि ददासि ) जिनसे तू दाताको बन देती है । हे ( सुमगे ) उत्तम ऐश्वर्यसे युक्त देवी ! ( ताभिः रराणा सुमनाः ) उन शक्तिपौषे शोभनेवाली उत्तम मनवाली देवी तू ( अथ नः सहस्रापोष उपानहि ) आज हमें हजारों पुष्टिको समीप स्थानम लाकर दे ॥ २ ॥

पूर्णचन्द्रमायुक्त राका होती है । इससे बेसी प्रशंसा प्राप्त होती है वैसी ही प्रशंसा ईश्वरके तेमसे कई गुणा बढ़कर होती है । इस अनुभवसे उस अनुभवका अनुमान पाठक कर सकते हैं । इस सूक्तमें पूर्ण चन्द्रमा के वर्णन के विषये आप्पात्मिक परमात्माकी शक्तिका वर्णन किया है । यह परमात्मशक्ति हमें ज्ञान देने अज्ञानसे जगा कर प्रसुद्ध करे, और ज्ञानद्वारा हमारी उन्नति कर । इसी प्रकार हमें पुष्टि और उत्तम वीरसत्ति देने और हमारी सब प्रकारकी उन्नति करे ।

## सुखकी प्रार्थना ।

[ ४९ ( ५१ ) ]

( अग्निः—अथर्वो । देवता—देवपत्नी )

देवानां पत्नीरुत्तीरन्तु नः प्रावन्तु नस्तमये वार्षसातये ।

याः पार्थिवास्तो या अपामपि यते वा नो देवीः सुहृदाः क्षमं यच्छन्तु ॥ १ ॥

उत मा व्येतु देवपत्नीरिन्द्राण्यंष्ट्राय्यश्विनी राट् ।

आ रोदसी यग्णानी गृणोतु व्यन्तु देवीर्यं श्रुतुर्वनीनाम् ॥ २ ॥

अर्थ—( उद्गताः देवामां पत्नीः नः अवन्तु ) हमारी इच्छा करनेवाली देवताकी पत्नियां हमारी रक्षा करें । ये ( तुजये वाजसातये नः प्रावन्तु ) सन्तान और अन्नकी विपुलताक छिय हमारी रक्षा करें । ( याः पार्थिवास्तो ) जो पृथ्वीपर स्थित और ( याः अपां यते अपि ) जो कापोंकी नियमव्यवस्था स्थित हैं, ( ताः सुहृदाः देवीः ) ये उत्तम प्रशंसित देवियां ( नः क्षमं यच्छन्तु ) हम सुख द्यें ॥ १ ॥

( उत देवपत्नीः माः व्यन्तु ) और देवताकी पत्नियां ये देवियां हमारे हितकी इच्छा पर । ( इन्द्राणी ) इन्द्रकी पत्नी, ( अमायी ) अग्निकी पत्नी, ( श्विनी राट् ) अश्विनी दयोंकी पत्नी रानी, ( रोदसी ) रुद्रकी पत्नी, ( यग्णानी ) जलदेव यग्णकी पत्नी ( आश्रणोतु ) हमारी पुकार सुनें । ( जनीनां याः भानुः ) श्रियोंका जो भानुकाल है उस समय ( देवीः व्यन्तु ) ये देवियां हमारा हित करें ॥ २ ॥

देवताओंकी शक्तियां दयोंकी पत्नियां हैं । अग्नि, जल, पृथ्वी, वायु, आदि अनेक देव हैं, उनही शक्तियां भी विविध हैं । यही इनकी पत्नियां हैं । पत्नी पालन करनेवाली होती है । अग्नि शक्ति अग्निही पालन करती है, वायुशक्ति वायुका पालन करती है इसी प्रकार अथाय देवोंकी शक्तियां अथाय देवका उनका स्वरूपमें रहती हैं, अग्नि देव है अग्नी उनका पत्नियां हैं । ये सब देवशक्तियां हम सब मनुष्योंका सुख और शान्ति का प्रदान करें ।

## कर्म और विजय ।

[ ५० ( ५२ ) ]

( ऋषिः—अङ्गिराः । देवता—इन्द्र । )

यथा वृक्षमक्षनिर्विधाह्य इत्यप्रति ।  
 एवाहमथ किंतुवानसैर्ध्व्यासमप्रति ॥ १ ॥  
 तुराणामतुराणां विश्वामवर्धुपीणाम् ।  
 समैतु विश्वतो मर्गो अन्तर्हस्त कुर्व मम ॥ २ ॥

अर्थ—( यथा अक्षनिः ) जिस प्रकार बिद्युत् ( वृक्ष विधाह्य अप्रति इति ) वृक्षको सर्वदा अतुल्य रीतिसे नाश करती है, ( एव अह अथ अक्षैः किंतुवान् ) वैसे मैं आज पाशोंके साथ जुआखियोंको ( अप्रति ध्व्याम ) अतुल्य रीतिसे मारूंगा ॥ १ ॥

( तुराणां अतुराणां ) त्वरा करनेवाली तथा म-व किंवा सुस्त और ( अवर्धुपीणां विश्वां ) घुराईका वर्जन न करनेवाली प्रजाओंका ( भगः विश्वतः समैतु ) ऐश्वर्य सब ओरसे इकट्ठा होने और वह ( मम अन्तर्हस्त कृत ) मेरे हस्तके अंदर हुएके समान होव ॥ २ ॥

भावार्थ— जिस प्रकार बिजलीसे वृक्षोंका नाश होता है, उस प्रकार मैं पाशोंके साथ जुआखियांका नाश करता हू ॥ १ ॥

किसी कार्यको त्वरासे समाप्त करनेवाले सुस्तीसे समाप्त करनेवाले और घुराईयोंको दूर न करनेवाले प्रजा जन्म होते हैं। उन सब प्रजाजनोंका घन एक स्थानपर जमा होवे और वह मेरे हाथमें रह घन के समान रहे ॥ २ ॥



ईदं अग्निं स्वावसुं नमोमिरिह प्रसक्तो वि चयत् कृत नः ।

रयैरिष प्र भरे वाजयज्ञिः प्रदक्षिण मरुतां स्तोममृष्याम् ॥ ३ ॥

चयं जयेम त्वया युजा वृत् स्माकममृष्यदवा मरैमरे ।

अस्मभ्यमिन्दु वरीयः सुग कृषि प्र शत्रूणां मघवन् वृष्ण्या रुज ॥ ४ ॥

अदौ त्वा संलिखितमग्नेयमुत् सरुषम् । अग्निं वृक्रे यथा मयदवा ममामि ते कृतम् ५

अर्थ— (स्वयं अग्निं नमोभिः ईदं) अपने निज धनसे युक्त प्रकाशक देवकी नमस्कारोंद्वारा पूजा करता हू । (इह प्रसक्तः नः कृत विचयत्) यहाँ रहा हुआ यह देव हमारे किये कर्मको सङ्ग्रहित करे, जैसा (वाजयज्ञिः रयैः इव प्रमरे) अन्नयुक्त रथोंसे स्थान भर देते हैं । पश्चात् मैं (मरुतां प्रदक्षिण स्तोम ऋष्यां) मरुतोंका ओष्ठ स्तोत्र सिद्ध करता हूँ ॥ ३ ॥

(चय त्वया युजा वृत् जयेम) हम तेरी सहायतासे युक्त होकर मेरे बाले शत्रुको जीतेंगे । (भरे भरे अस्माक अघा वक् अब) प्रत्येक युद्धमें हमारे कार्यभागकी उत्कृष्ट रक्षा कर । हे इन्द्र ! अस्मभ्य वरीयः सुग कृषि) हमारे लिये वरिष्ठ स्थान सुखसे जामे योग्य कर । हे (मघवन्) धनवान् इन्द्र ! (शत्रूणां वृष्ण्या प्र रुज) शत्रुओंके बलोंको तोड़ ॥ ४ ॥

(संलिखितम् अग्नेयम्) हर एक रीतिसे खुरचनेवाले तुझ शत्रुको मैं जीत लेता हू । (उत् सरुष अग्नेयम्) और रोकनेवाले तुझ जैसे शत्रुको भी मैं जीतता हू । (यथा अग्निं वृक्रे मघत्) जैसा भेड़को भेड़िया मघता है (यथा ते कृत ममामि) ऐसे तेरे किये शत्रुवृत्त कर्मको मैं मघ डालता हू ॥ ५ ॥

भावार्थ— मैं ईश्वरकी भक्ति और उपासना करता हू । यह देव हमारे कर्मोंका निरीक्षण करे । और जिस प्रकार रथोंसे धन इकट्ठा करते हैं उस प्रकार हमारे सय सत्कर्मोंका फल इकट्ठा होवे । उसका उपभोग करते हुए हम उत्तम स्तोत्रोंका गायन करके आनन्दसे रहेंगे ॥ ३ ॥ हम ईश्वरकी सहायतासे सय शत्रुको जीतेंगे । ईश्वरकी कृपासे हर एक युद्धमें हमारे प्रयत्न सुरक्षित हों । हे देव ! हमारे शत्रुओंका बल कम करो, और हमें वरिष्ठस्थान सुखसे प्राप्त हो ॥ ४ ॥ पीडा देनेवाले और प्रतिपन्न करनेवाले शत्रुको मैं जीतता हू । जिस प्रकार भेड़िया भेड़को पराजित करता है वैसे मैं शत्रुको किये उत्तमसे उत्तम प्रयत्नको निःसफल करता हू ॥ ५ ॥

उत् प्रहामर्तिदीवा जयति कृतमिध श्रमी पि विनोति काले ।

यो देवकामो न घनं रुणद्धि समित् त रायः संवति स्वधामिः ॥ ६ ॥

गोमिष्ट्रेमामर्ति दुरेवां यवेन वा शुभं पुरुहूत विधे ।

वय राजसु प्रथमा घनान्यरिष्टासो वृजनीभिर्जयेम ॥ ७ ॥

कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सप्य आहितः । गोजिद् भूपासमश्जिद् घनजयो हिरण्यजित् ८

अर्थ—( उत् अतिदीवा प्रहं जयति ) और अत्यन्त विजयेन्नु घीर प्रहार करने वालेको भी जीत लेता है । ( श्वमी [स्व-मी] काले कृत इव विचिनोति ) अपने घनका नाश करनेवाला भूढ़ समयपर अपने किये हुए कर्मकोही विशेष रीतिसे प्राप्त करता है । ( यः देवकामः घनं न रुणद्धि ) जो देवकी वृत्तिकी इच्छा करनेवाला घनको केवल अपने लिये ही रोक रखता, ( त इत् रायः स्वधामिः ससृजति ) उसीको सप घन अपनी शक्तियोंसे उत्तम प्रकार संयुक्त होता है ॥ ६ ॥

( दुरेवां अमर्ति गोभिः तरेम ) दुर्गतिरूप कुमतिको गौओंसे पार करेंगे । है ( पुरुहूत ) पहुतों द्वारा प्रदासित देव ! ( विश्वे यवेन वा शुभ ) और हम सप जौसे भूत्वको पार करेंगे । ( वय राजसु प्रथमाः अरिष्टासः ) हम सप राजाओंम उत्कृष्ट होकर विनाशको न प्राप्त होते हुए ( वृजनीभिः घनानि जयेम ) निज शक्तियोंसे घनोंको जीतेंगे ॥ ७ ॥

( कृत मे दक्षिणे हस्ते ) पुरुषार्थ मेरे दाये हाथमें है और ( मे सप्ये जयः आहितः ) मेरे बाये हाथम विजय रम्भा है । अतः मे ( गोजिद् अश्व जिद् ) गौआ और घोडाका विजेता, । ( हिरण्यजित् घनजयः भूपास ) सुवर्ण और घनका विजेता होऊ ॥ ८ ॥

भावार्थ— विजयेन्नु घीर घातक शत्रुको भी जीत लेता है । आत्मघात करनेवाला भूढ़ मनुष्य अपने कृत कर्मको ही भोगता है । जो मनुष्य देव कार्यकलिये अपना घन समर्पण करता है और ऐसे समयमें अपन पास रोक नहीं रखता, उसीको विशेष घन प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

दुर्गति और कुमतिवा गौआकी रक्षा करके हटा देंगे । इसी प्रकार जौसे भूत्वको हटा देंगे । हम राजाओंम उत्कृष्ट राजा बनेंगे और निजशक्ति पोंस यथेष्ट घन जमायेंगे ॥ ७ ॥

अज्ञाः फलवर्ती शुचं दृष्ट गां क्षीरिणीमिव ।

स मां कृतस्य भारेया घनुः ज्ञानेन नक्षत ॥ ९ ॥

अर्थ—हे (अज्ञाः) ज्ञान विज्ञानो ! ( क्षीरिणीं गां इव ) दूधवाली गौ के समान ( फलवर्ती शुचं दृष्ट ) फलवाली बिजिगीया हमें दो । ( स्नात्रा घनुः इव ) जैसा ताँतसे घनुष्य संयुक्त होता है वैसा ( मां कृतस्य भारेया स नक्षत ) मुझको कृतकर्मकी भारा प्रयादसे युक्त कर ॥ ९ ॥

भावार्थ—मेरे दाये हाथमें पुरुषार्थ है और बाय हाथमें विजय है । इस लिये हम गौधें, घोड़े, सुवर्ण और अन्ध घन प्राप्त करेंगे ॥ ८ ॥

ज्ञानविज्ञान ये मरी आँखें बनें और उनसे बहुत दूध देनेवाली गौ के समान उत्तम फल देनेवाली बिजयच्छा हममें स्थिर रहे । जिस प्रकार ताँतसे घनुष्यके दोनों नाक जुड़े रहते हैं, उस प्रकार मेरा पुरुषार्थ मुझ फलके साथ बाँध दबे ॥ ९ ॥

### पुरुषार्थ और विजय ।

इस छन्दका सप्तम मन्त्र हर एक मनुष्यको सदा ध्यानमें धारण करने योग्य है, उसका पाठ ऐसा है—

कृत मे वक्षिणे हस्ते जयो मे सख्य आहितः ।

गोजिष् मूपासमश्वजिद्वमजयो हिरण्यजित् ॥ ( म० ८ )

“ पुरुषार्थ प्रयत्न मेरे दाये हाथमें है और विजय मेरे बाये हाथमें है । इससे मैं गौधें, घोड़े, घन और सुवर्णको जीत कर प्राप्त करनेवाला होऊंगा । ”

मनुष्यको येही विचार मनमें धारण करने चाहिये और उसको ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि अपने प्रयत्नसे अपना विषय पारों ओर हो जावे । अपना विषय कभी बाहरके प्रयत्न से नहीं होना है, वह अपने अन्दरके बलसही प्राप्त होगा । इस लिये अपने अन्दर इतना बल बढ़ और अपना विषय हा, इस के लिये प्रयत्न करना मनुष्य का प्रथम कर्तव्य है ।

‘ कृत, मेरा हाथ और वक्षि ’ ये चार प्रकारके मनुष्यके कर्म होते हैं, इनके लक्षण ये हैं—

कलिः शायानो भवति सजिहानस्तु द्वापरः ।

उत्तिष्ठमेता भवति कृत सपथते चरन् ॥ ए० ब्रा० ७।१५

“सो जाना कलि है, निद्राका त्याग द्वापर है, उठकर तैयार होना त्रेता कहलाता है, कार्य करना कृत कहलाता है ।” अर्थात् सुस्तिष्ठे कलियुग बनता है और पूर्ण पुरुषार्थसे कृत युग होता है, और बीचकी अवस्थाएँ द्वापर और त्रेता युगकी हैं । कृत, त्रेता, द्वापर और कलि ये चार नाम पुरुषार्थके चार दर्जोंके सूचक हैं । सो पुरुष प्रयत्न करके अपने हाथमें कृत नामक पुरुषार्थ लेता है, वह दूसरे हाथसे निम्नपूर्वक विषय प्राप्त कर लेता है । ‘कृत’ पुरुषार्थ मानो एक बड़े अलम्वारकी प्रचंड धारा है, वह धारा निःसन्देह विषय पहुँचा देती है—

कृतस्य धारया सा स भवत् । ( म० ९ )

“कृत नाम श्रेष्ठ पुरुषार्थकी प्रवाह धारासे समृद्ध होकर उद्दिष्ट स्थानको भेँ पहुँच आता ।” कृतनामक पुरुषार्थका लक्षण क्या है ? कृतके साथ ‘सत्य, अहिंसा प्रवृत्त पुरुषार्थ सुविष्ठ, सधर्म, सरलता, धैर्य, आदि सार्विक गुणोंका सादृश्य हमेशा रहता है । सत्ययुग कृतयुगको ही कहते हैं । सत्ययुगके मनुष्योंके जो गुण पुराणोंमें वर्णन किये हैं, वेही सार्विक शुभ गुण इस कृत नामक पुरुषार्थके साथ सदा रहते हैं, ऐसा यहाँ समझना चाहिये, जब कृत पुरुषार्थका महत्त्व पाठकोंके समुच्च आसक्तता है ।

‘कलि’ यह कोई पुरुषार्थ नहीं है, यह शब्द पुरुषार्थहीनताका घोटक है । जहाँ बिलकुल पुरुषार्थ नहीं है वहाँ कलि रहता है, आपसके झगड़े, अनाचार, अधर्म अनीति, अन्धपाठका व्यवहार सब इसके साथ रहता है । इससे मनुष्योंकी अशोचिता होती है । इसलिये इससे मनुष्योंकी बचना आवश्यक है । बीचके दो पुरुषार्थ इन दो स्थिति योंके बीचमें हैं ।

जुआहीको दूर करो ।

अपने समाजमेंसे जुआहीका दूर करनेके विषयमें इस सूक्तका पहिलाही मंत्र बड़ा बोधप्रद है, देखिये—

यथा वृक्षमपानिर्विश्वाहा हन्त्यममति ।

एवाहमप्य कितयानक्षैर्यस्यासममति ॥ ( म० १ )

“जैसे आकाशकी विष्टुद् इसका नाश करती है उस प्रकार मैं अपने समाजसे पाशोंके साथ जुआहीयोंको दूर करता हूँ ।” समाजसे जुआहीयोंको दूर करता हूँ,

अर्थात् समाजमें एकमी जुमाड़ीको नहीं रहने देता हूँ। समाजसे जुमाड़ियोंको हटाना ही समाजके जुमाड़ियोंका बंध है। जब कोई घरीरके नाखसे ही होता है और अन्य रीतिसे नहीं होता, ऐसी बात नहीं है। समाजमें जब तक जुमाड़ी रहेंगे, तबतक समाजमें पुरुषार्थका सामर्थ्य बढेगा नहीं, क्योंकि छोटे प्रयत्नसे ही घनी होनेका मास छुएसे घनतामें बढता है। अतः समाज पुरुषार्थी होनेके लिये समाजमें जुमाड़ी न रहे, ऐसा प्रबंध करना चाहिये।

### तीन प्रकारके लोग ।

समाजमें तीन प्रकारके लोग होते हैं, 'सुर, असुर और अवर्जुन' अर्थात् त्वरासे काम करनेवाला, प्रत्येक कार्यमें अत्यंत शीघ्रता करनेवाला, लड़दा लड़दीसे कार्य करके कार्यका बिगाड़नेवाले को हाते हैं वे भी पुरुषार्थ के लिये योग्य नहीं होते, क्योंकि वे शीघ्रतासे ही हाथमें लिचे कामको बिगाड़ देते हैं। दूसरे 'असुर' अर्थात् क्षिब्ध किंवा सुस्त, य अपनी सुस्तीके कारण कार्यका बिगाड़ करते हैं, अतः ये पुरुषार्थ के लिये निकम्म होते हैं। तीसरे 'अवर्जुन' अर्थात् बचन करनेयोग्य बातोंको भी दूर नहीं करत, पुराईको भी अपने पास रख देते हैं। ये लोग भी कमी पुरुषार्थ करके अपनी उन्नति नहीं कर सकते। ये तीनों प्रकारके लोग सदा हीन अवस्थामें ही रहेंगे, इनकी उन्नतिकी कोई आशा नहीं है। इसलिये मन्त्रमें कहा है कि—

तुराणामतुराणां विशामवर्जुणीणाम् ।

समैतु विश्वतो भगो अमर्त्यस्त कृत मम ॥ ( म० १ )

“शीघ्रता करनेवाले, सुस्त तथा पुराईको भी दूर न करनेवाले वे जो तीन प्रकारके लोग अपनी उन्नतिकी साधना नहीं करते, वे सदा दुर्भाग्यमें ही रहेंगे। अतः उनके पास जानेवाला धन मेरे हाथमें रहनेके समान हो जावे, क्योंकि मैं पुरुषार्थ करता हूँ।” इसका आशय यह है, कि पूर्णतः तान दापोवाले लोग ये सदा दुर्भाग्यमें ही रहेंगे और विश्वके धनका जो माग उनका प्राप्त होना था, वह उनका माग पुरुषार्थी लोगोंके हस्तगत होगा। उदाहरण के लिये यह मान लीजिये कि जगत् में १००) ६० है और संपूर्ण अगत्में १० लोगही हैं। उनमें पाँच पुरुषार्थी हैं और पाँच पूर्णतः तीन दापोसे युक्त हैं। ऐसा होनेसे एकतः धन पाँचही पुरुषार्थी लोगोंमें बाँटा जायगा और पाँच लोग दुर्भाग्य में ही सड़ते रहेंगे। यह मन्त्र आप दृष्टिसे पाठकोंको बिचार करने योग्य है। एकही ग्राममें कई लोग पुरुषार्थ से धन कमाते हैं और सुस्तीसे कई निर्धन अवस्थामें रहत हैं इसका कारण इस मन्त्रमें उक्त रीतिसे कहा है।

तृतीय मन्त्रमें कहा है कि प्रकाशक देवकी हम उपासना करते हैं और उससे पर्याप्त धन हमें मिल सकता है । अतुर्थ मन्त्रमें भी यही आशय स्पष्ट हुआ है—

वय जयेम स्वया युजा । ( म० ४ )

“हम तरे ( ईश्वरके ) साथ रहनेसे विजय प्राप्त कर सकते हैं ।” ईश्वरके साथ रहनेसे अर्थात् ईश्वरके मक्त होनेसे विजय प्राप्त होता है, यह विजय सदा विजय होता है । ईश्वरके सत्य मक्त हानसे बड़ी शक्ति प्राप्त होती है । देखिये इस विषयमें पञ्चम मन्त्रका कथन यह है—

अजैप स्वा सल्लिखितमजैपमुत सरुचम् । ( म० ५ )

“सुरक्षितवाले अर्थात् विविध प्रकारसे हुआ देनेवाले और प्रतिबन्ध करनेवाले तुझ जैसे शत्रुको मैं जीत लेता हूँ ।” अर्थात् मैं ईश्वरमक्त होनेके कारण अब मुझे सत्य मार्गसे आगे बढ़नेके लिये कोई बर नहीं है । मैं अपने पुरुषार्थ से अपनी सक्ति निःसन्देह सिद्ध करूंगा । पुरुषार्थकी सिद्धता होनेके विषयमें एक नियम है । वह यह कि धार्मिक दृष्टिसे निर्दोष पुरुषार्थ प्रयत्न करनेवाला ही जीत लेता है, अन्तमें इसीका विजय होता है । अधार्मिक का कुछ देर विजयसा हुआ, तो भी अन्तमें उसका नाश निश्चयसे होता है, इस विषयमें यह मन्त्रकी शोपणा विचार करने योग्य है—

उत प्रहामतिवीषा जयति ।

कृतमिष श्वाग्नी विधिर्नोति काले ॥ ( म० ६ )

‘निःसन्देह यह बात है कि ( अतिवीषा ) अत्यन्त विजिगीषा पुरुषार्थी मनुष्य ( प्र हां जयति ) प्रहार करनेवालेको जीतता है । और ( श्वा-ग्ना, स्वग्ना ) अपना आत्मघात करनेवाला मनुष्य ( काले ) समयमें अपने कृतकर्मका फल प्राप्त करता है ।

इस मन्त्रमें दो शब्द विशेष महत्त्वके हैं । उनका विचार करना अत्यन्त आवश्यक है ।

१ श्व-ग्नी=[ स्व-ग्नी ]=आत्मघात करनेवाला मनुष्य । जो मनुष्य अपना नाश होने योग्य कर्म करता रहता है । जिससे अपनी अधोगति होती है एव कर्म आ करता है वह आत्मघातकी है । आत्मघातकी लोगोंकी अधोगति होती है इस विषयका वर्णन ईशोपनिषद् ( पा० यजु० ४० । ३ ) में है, वहाँ पाठक वह वर्णन अवश्य देखें ।

२ अतिवीषा=इस शब्दमें ‘विष्’ पाठ “विजिगीषा, व्यवहार, स्तुति, मोद, गति” इत्यादि अर्थमें है, अतः “वीषा” शब्दका अर्थ—“ विजिगीषा अर्थात् अपनी इच्छा करनेवाला, व्यवहार उत्तम रीतिसे करनेवाला स्तुति ईश्वरकृत करनेवाला, आनन्द

पढ़ाना का कार्य करनेवाला, प्रगति करनेवाला ” इस प्रकारका होता है । ‘अतिदीर्घा’ शब्दका अर्थ ‘अत्यन्त विषयका पुरुषार्थ करनेवाला’ इत्यादि प्रकारका होता है । वह विषय करनेवाला अपने छात्रोंको अनभ्यर्था जीत लेता है ।

य अर्थ लेकर पाठक इस मंत्रका सचित विचार करे ।

### देवकाम मनुष्य ।

कई मनुष्य देवकामी होते हैं और कई असुरकामी होते हैं । देवोंके समान जिनकी इच्छा होती है, वे देवकामी मनुष्य और राक्षसोंके समान जिनकी कामना होती है, वे असुरकामी मनुष्य समझने योग्य हैं । ये क्या करते हैं इस विषयका वर्णन इसी मंत्रमें किया है, वह अब देखिये । इसी मंत्रके शब्द निम्न प्रकार रखनेसे दोनोंके लक्षण स्पष्ट हो जाते हैं—

देवकामः धन न कणादि ।

[ असुरकामः ] धन कणादि । ( म० १ )

“देवकामनावाला मनुष्य अपने धनको अपने पासही बंद नहीं रखता, परन्तु आसुरी कामनावाला मनुष्य अपने पास धन बंद करके रखता है ।” यह संश्रमाग इन दोनोंके व्यवहारका स्वरूप अच्छी प्रकार बता रहा है । कलूषलोग धन अपने पास सग्रह करत हैं, उसको बाहर व्यवहारमें जान नहीं देते, जबवा अपने स्वार्थी लोगोंके लिये रखत हैं, अतः ये राक्षसी कामनाएँ हैं । परन्तु जो मनुष्य देवी प्रवृत्तीके होते हैं, वे धन अपने पास कभी नहीं रोक्ते, परन्तु अपने सर्वस्वको सब जनताकी सहाई के लिये समर्पित करते हैं, अपनी सपूर्ण शक्तियाँ सभी कार्यमें लगाते हैं, इसलिये वे लोग उन्नतिके भागी होते हैं । यही बात इसी मंत्रके अन्तमें कही है—

त रायः स्वयाम्नि सस्रजति । ( म० १ )

“उसीको सब प्रकारके धन अपनी सब चारक शक्तियोंके साथ प्राप्त होत हैं ।” जो अपना धन देवकार्यके लिये लगाता है वही विशेष धन प्राप्त कर सकता है और वही बड़ा विजय प्राप्त कर सकता है ।

यहाँ देवकार्य कौनसा है इसका भी विचार करना चाहिये । “साधुधर्मोंका परित्राण करना, दुष्कर्म करनेवालोंका नाश करना और धर्ममर्यादा की स्थापना करना” यह त्रिविध कार्य देवकार्य कहलाता है । अर्थात् इसके विरुद्ध जो कार्य होगा वह राक्षस या आसुर कार्य समझना योग्य है । यह देवकार्य जो करता है और इस देव कार्यमें

अपनी शक्ति और धन ओ लगाता है वह दशकाम मनुष्य समझना योग्य है । इसके विरुद्ध कार्य करनेवाला मनुष्य आसुरी कामनावाला कहलाता है और वह अवन्तिका प्राप्त होता है ।

## गोरक्षा ।

सप्तम मन्त्रमें गोरक्षा का महत्त्व वर्णन किया है । यदि दुष्टोंसे बचनेका कोई उपाय साधन है तो एक मात्र गोरक्षा ही है देखिये—

दुरेषां अमर्ति गोभिः तरेम । ( म० ७ )

“दुरवस्थाकी जो बुद्धिहीन स्थिति है वह हम गौबोंकी रक्षासे दूर करेंगे ।” अर्थात् गौबोंकी सहायतासे हम अपनी दुरवस्था दूर करेंगे । देखमें सप्तम गोरक्षा हुई और विपुल रूप हरएकको प्राप्त होने लगा तो देखकी दुरवस्था निःसन्देह दूर होगी । मनुष्यका सुचारु करनेका यह एकमात्र उपाय है । इसी प्रकार—

बिम्बे यथेन ध्रुव [ तरेम ] । ( म० ७ )

“हम सब चीसे ध्रुवको दूर करेंगे ।” अर्थात् जो आदि धान्य का भक्षण करके ही हम अपनी भूखका दमन करेंगे । यहाँ माँस आदि पदार्थोंका भूखकी निवृत्तिके लिये उल्लेख नहीं है, यह बात विशेष ध्यानमें धारण करने योग्य है । गौका दूध पीना और जो गहूँ चावल आदि धान्यका भवन करना, ये दो रीतियाँ हैं जिनसे मनुष्य उत्तम होता है और अत्यन्त सुखी हो सकता है । अब अन्तिम मन्त्रका उपदेश देखिये—

अक्षा फलवर्ती शुभ दस्त । ( म० ९ )

“हे ज्ञान विज्ञानो ! फलवाला विजय हमें दो ।” यहाँ ‘अक्ष’ शब्द है, यह शब्द कोशोंमें निम्नलिखित अर्थोंमें आया है— “गाड़ीका मध्य दण्ड, आचार स्तंभ, रथ, गाड़ी, चक्र, तुलाका दण्ड, सोलनेका बज्रन ( कर्प ), विभीतक ( मिलावाँ ) रुद्राक्षका दण्ड, रुद्राक्ष इन्द्राक्ष, सूर्य, गरुड आत्मा, ज्ञान, सत्यज्ञान, विज्ञान, तारक ज्ञान, प्रज्ञाज्ञान, कानून ( लॉ, Law ) कानूनी कार्यवाही, विधिनियम, ” हमारे मतसे यहाँका ‘अक्ष’ शब्द अन्तिम आठ या नौ अर्थोंका यहाँ व्यक्त कर रहा है और इसीलिये हमने इसका अर्थ ज्ञान विज्ञान ऐसा किया है ।

धु और शीवा की उत्पत्ति एकही दिग् पातुसे होनेके कारण ‘अतिदीपा’ शब्दके प्रसंगमें जो अर्थ बताया है वही ‘शुभ’ का यहाँ अर्थ है । ‘विजिगीषा’ यह इसका यहाँ अर्थ अभिप्रेत है । ‘ज्ञान विज्ञानसे हमें फल युक्त विजय प्राप्त हो’ यह इस मन्त्रमागका यहाँ आशय है । ज्ञान विज्ञानस ही सुफल युक्त विजय प्राप्त हो सकता है ।



विद्यय ऐसा हो कि जैसी ( सीरिणी गाँ इव ) सदा वृष देनेवाली मो होती है । विद्यय प्राप्त करनेसे उसका मधुर फल भविष्यमें मिलता रहे और पुनः हमारा अन्न पात कभी न होने, यह आशय यहाँ है ।

( कृतस्य चारवामा सनधत् । म०८ ) अपने किस हुए पुरुषार्थके पारायणासे मैं उत्कर्षको सरलतया प्राप्त होऊ । बीचमें किसी प्रकारकी रुकावट न हो । जो ज्ञान विद्वानपुस्त होकर इस प्रकार परमपुरुषार्थ करेंगे वे ही निःसन्देह यज्ञके प्रामी होंगे ।

पुरुषार्थ विद्यय प्राप्त करनेवाले इस यज्ञका इस प्रकार विचार करें और गोप प्राप्त करें ।

## रक्षाकी प्रार्थना ।

[ ५१ ( ५३ ) ]

( ऋषिः—अश्विनाः । देवता—इन्द्रावृहस्पती )

वृहस्पतिर्नः परिपातु पृथादुतोत्तरस्मादधरादधायोः ।

इन्द्रः पुरतावुत मन्प्यतो नः सखा सखिभ्यो वरीयः कृणोतु ॥ १ ॥

॥ इति ऋषयोऽनुवाकः ॥

अर्थ—( वृहस्पतिः नः पृथात्, उत उत्तरस्मात् ) ज्ञानका स्वामी हमें पीछेसे, उत्तर दिशासे ( अत्रात् अधायोः पातु ) नीचेके भागसे पापी पुरुषसे बचावे । ( सखा इन्द्रः ) मित्र प्रभु ( पुरस्तात् उत मन्प्यतः ) आगसे और बीचमें से ( सखिभ्यः वरीयः नः कृणोतु ) मित्रोंमें अछ हमें बनावे ॥ १ ॥

भावार्थ—ज्ञानदेनेवाला पीछेसे, ऊपरसे और नीचेसे अर्थात् बाहरसे हमारी रक्षा करे और मित्र हमारी रक्षा समूलसे और बीचके स्थानसे करे ॥ १ ॥

ज्ञान देनेवाला और सहायक मित्र ये दोनों रक्षा करते हैं, एक बाहरसे रक्षा करता है और एक अन्दरसे रक्षा करता है । परमात्मा ज्ञान देकर बाहरसे और मित्र होकर अन्दरसे और सब ओरसे हमारी रक्षा करता है । पाठक इस रक्षाका अनुभव करें और उस परमात्माको अपना सखा मित्र मानें ।

## उत्तम ज्ञान ।

[ ५२ ( ५४ ) ]

( श्रुति-अथर्षा । देवता-सामनस्व, अभिनौ )

सुज्ञानं नः स्वेषिः सुज्ञानमरणेभिः ।

सुज्ञानमभिना युवमिहास्मासु नि यच्छसम् ॥ १ ॥

स जानामहे मनसा स विकित्वा मा युष्महि मनसा दैव्येन ।

मा घोषा उत स्युर्धुले विनिर्हिते मेयुः पप्त्रदिन्द्रस्माहन्यागते ॥ २ ॥

अर्थ— हे ( अभिनौ ) अश्विदेवो ! ( नः स्वेषिः सज्ञान ) हमें स्वर्जनोके साथ उत्तम ज्ञान प्राप्त हो । तथा ( अरणेभिः सज्ञान ) निम्न अणीके जो लोग हैं उनके साथभी हमें उत्तम ज्ञान प्राप्त हो । ( इह ) इस ससार में ( युव अस्मासु सज्ञान नियच्छत ) तुम दोनों हम सधमें उत्तम ज्ञान रखो ॥ १ ॥

( मनसा सजानामहे ) हम मनसे उत्तम ज्ञान प्राप्त करें, ( विकित्वा स ) ज्ञान प्राप्त करके एकमतसे रहें । ( मा युष्महि ) परस्पर विरोध न मचावें । ( दैव्येन मनसा ) दिव्य मनसे हम युक्त होवें । ( पप्त्रे विनिर्हिते घोषा मा उत स्युः ) बहुलोंका वध होनेके पश्चात् दुःस्वके शब्द न उत्पन्न हों । ( आगते अहनि ) अविष्य समयमें ( इन्द्रस्य इयुः मा पतत ) इन्द्रका पाण हमपर न गिरे ॥ २ ॥

## दीर्घायु ।

[ ५३ ( ५५ ) ]

( श्रुतिः— प्रजा । देवता—आयुः, बृहस्पतिः, अभिनौ च )

अमृश्रभूयादभि यत् यमस्य बृहस्पतेरभिशास्तेरमुशः ।

प्रत्याह्वामभिनो मृत्युमस्मद् देवानामग्न मिपजा क्षयीमिः ॥ १ ॥

अर्थ—हे बृहस्पते ! हे अग्ने ! तू (यत् अमृश्र-भूयात्) जो परलोकमें होने वाले (यमस्य अभिशास्तेः अमृशः) यमकी यातमाओंसे मुक्त करता है ।

स कामत् मा जहीत् शरीर प्राणापानौ ते सयुजाविह स्ताम् ।  
 शत जीव शरवो वर्षमानोषिष्टं गोपा अभिपा वसिष्ठः ॥ १ ॥  
 आयुर्वत् ते अतिहितं पराचैरपानः प्राणः पुनरा वाविताम् ।  
 अधिपदाहानिर्नीतत्वरुपस्थात् तदात्मनि पुनरा वैश्यामि से ॥ ३ ॥

हे ( देवानां भिषजो अश्विनौ ) देवोंके वैद्य अश्विनी देवो ! ( शचीभिः  
 सृस्यु अस्मत् प्रति औहतां ) शक्तियोंसे सृस्युको हमसे दूर करो ॥ १ ॥

हे प्राण और अपानो ! ( स कामतां ) शरीरमें उत्तम प्रकार संचार  
 करो । ( शरीर मा जहीत् ) शरीरको मत छोड़ो । वे दोनों इह ते सयुजौ  
 स्ताम् ) यहाँ तेरे सहचारी होकर रहें । ( वर्षमानः शरवः शत जीव )  
 पड़ता हुआ तू सौ वर्ष जीवित रह । ( ते अभिपाः वसिष्ठः गोपाः अग्निः )  
 तेरा अधिपति निवासक और रक्षक तेजस्वी देव है ॥ २ ॥

( ते यत् आयुः पराचैः अतिहितं ) तेरी जो आयु विद्वत् गतियोंसे बढ़  
 गयी है उस स्थानपर ( तौ प्राणः अपानः पुनः आहतां ) वे प्राण और  
 अपान पुनः आवें । ( अग्निः निर्नीतेः उपस्थात् तत् पुनः आहतां ) वह तेजस्वी  
 देव दुर्गतिके समीपसे पुनः छाता है, ( ते आत्मनि तत् पुनः आवेश्या  
 ममि ) तेरे अन्दर उसको पुनः स्थापन करते हैं ॥ ३ ॥

भावार्थ— परलोकमें देहपातके पश्चात् जो दुःख होते हैं उनसे मनुष्य  
 का बचाव होवे, और मनुष्यकी शक्तियोंकी उन्नति होकर उसका सृस्युसे  
 बचाव होवे ॥ १ ॥

मनुष्यके शरीरमें प्राण और अपान ठीक प्रकार संचार करते रहें ।  
 वे शरीरको शीघ्र न छोड़ दें । ये ही जीव के सहचारी हो मिश्र हैं । मनुष्य  
 पड़ता हुआ सौ वर्षतक जीवित रहे, मनुष्यका रक्षक, पालक, स्वर्णक  
 और यहाँ का जीवन सुखमय करनेवाला एकमात्र परमेश्वर है ॥ २ ॥

जो आयु विद्वत् आचरणोंके कारण घट जाती है, उसको प्राण और  
 अपान पुनः ले आवें और यहाँ स्थापित करें । वही तेजस्वी देव दुर्गतिके  
 आयुको वापस ले आवे और इसके अन्दर सुरक्षित रखे ॥ ३ ॥

मेमं प्राणो हासीन्मो अपानो विहाय परां गात् ।  
 सप्तर्विंश एन परि ददामि त एन स्वस्ति जुरते वहन्तु ॥ ४ ॥  
 प्र विंशत प्राणापानावनुद्वाहाविव प्रथम् ।  
 अयं अरिम्णः श्लेषधिररिष्ट इह वर्षताम् ॥ ५ ॥  
 आ ते प्राणं सुवामसि परा यस्मै सुवामि ते ।  
 आयुर्नो विश्वतो दधद्यमधिरेण्यः ॥ ६ ॥

अर्थ- ( हम प्राण। मा हासीत् ) इसको प्राण न छोड़े और ( अपानः अवहाय परा मा गात् ) अपान भी इसको छोड़ कर दूर न जाये । ( सप्तर्विंशः एन परि ददामि ) सात सप्तियोंके समीप इसको देता हूँ, ( ते एन जरसे स्वस्ति वहन्तु ) वे इसको वृद्धावस्थातक सुखपूर्वक ले जायें ॥ ४ ॥

हे प्राण और अपान ! ( अज अनन्वाही इव प्रविशत ) जैसे गोशाला में बैल घुसते हैं उस प्रकार तुम दोनों प्रविष्ट होओ ! ( अय जरिम्णः श्लेषधिः ) यह श्लेषधरककी पूर्ण आयुका लज्जाना है, यह ( इह अरिष्टः वर्षतां ) यहां न घटता हुआ यह जाये ॥ ५ ॥

( ते प्राण आ सुवामसि ) तेरे प्राणको मैं प्रेरित करता हूँ । ( ते यक्ष्म परा सुवामि ) तेरे क्षयरोगको मैं दूर करता हूँ । ( अय वरेण्यः अग्निः ) यह श्रेष्ठ अग्नि ( न। आयुः विश्वतः दधत् ) हमारे अन्दर आयु सय प्रकारसे धारण करे ॥ ६ ॥

भावार्थ- इस मनुष्यको प्राण और अपान न छोड़ें । सप्तर्विंशसे पने जो सप्त शानेद्रिय हैं, उनके समीप इस जीवको छोड़ देते हैं । वे इसको सौ वर्षकी पूर्ण आयु प्रदान करे ॥ ४ ॥

शरीरमें प्राण और अपान वेगसे संचार कर और इस शरीर न रखा हुआ दीर्घायुका लज्जाना पड़ावे ॥ ५ ॥

तेरे प्राणोंको प्रेरित करनेसे तेरे रोग दूर होंगे और तेरी आयु वृद्धिगत होगी ॥ ६ ॥

उद् वय समसस्पारि रोहन्तो नार्कमुत्तमम् ।

देव देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ ७ ॥

अर्थ—(वय तमसः परि उत्त) हम अन्धकार के ऊपर चढ़ें, वहाँसे (उत्तर नाक रोहन्तः) श्रेष्ठ स्वर्गमें आरोहण करते हुए ( देवत्रा उत्तम ज्योतिः) सूर्य अगन्म ) सय देवताके रक्षक उत्तम तेजस्वी सूर्य—सबके उत्पादक-द्वको प्राप्त होंगे ॥ ७ ॥

भावार्थ—हम अन्धकार को छोड़कर प्रकाशकी प्राप्तिके लिये ऊपर चढ़ते हैं, ऊपर स्वर्गमें आरोहण करते हुए सयके रक्षक तेजस्वी देवताको प्राप्त करते हैं ॥ ७ ॥

### दीघ आयु कैसी प्राप्त होगी ?

इस सूक्तमें दीर्घ आयु प्राप्त करनेका उपाय बताया है । इसलिये दीर्घायु होनेकी इच्छा करनेवाले पाठक इस सूक्तका अधिक मनन करें । दीर्घ आयु करनेवाले दो देव हैं, व अपनी शक्तियोंसे मनुष्यकी मृत्युसे रक्षा करते हैं, ये दो देव अभिनी देव हैं । अभिनी दय कौन हैं और कहाँ रहते हैं, इसका विचार करके निश्चय करना चाहिये । इसका विचार इस प्रकार होता है—

देवोंके वैय ।

अभिनी कुमार ये दयोंके दो वैय हैं, इस मंत्रमें भी इनको—

देवानां भियजो ( म० १ )

‘दवोऽ दा वैय य ई’ एसा कहा है । यहाँ देव कौनसे हैं और उनकी विक्रिशा करनेवाले य वैय कौनसे हैं, यह एक विचारणीय प्रश्न है । इनके नामोंका मनन करनेमें एक नाम हमारे सम्मुख विशेष प्रागुत्पत्तिसे आता है, जो ‘नासत्यो’ है । ( नाम त्यो=नासा-त्यो ) नासिकाके स्थानपर रहनेवाले । नासिका यह प्राणक स्थान है । प्राणक स्थानपर रहनेवाले य दो ‘आस उपप्रास’ अथवा ‘प्राण अपान’ हैं । प्राण और अपान ये दो दय इस शरीरमें रहकर इस शरीरमें जो इन्द्रियस्थानोंमें मनन दवगण हैं उनकी विक्रिशा करते हैं । प्राण स पुष्टि प्राप्त होती है और अपानम दाप दूर दाल है । इस प्रकार दाप दूर करके पुष्टि दन द्वारा य दा दय इन मर इन्द्रियोंकी विक्रिशा करते हैं । यहाँ यह अर्थ दृष्टनेस इनका ‘नास-त्य’ नाम विनदून माय प्रकाश होता है । प्राण और अपान अशक्य हुए, अथवा इनमेंम काई

मी एक अपना कार्य करनेमें असमर्थ हुआ, तो शत्रियगण भी अपना अपना कार्य करनेमें असमर्थ होते हैं । इतना शत्रियोंके आरोग्यके साथ प्राणोंके स्वास्थ्यका सम्बन्ध है । अर्थात् वेदोंमें और पुराणोंमें 'देवोंके वैद्य अश्विनी कुमार' करके सो प्रसिद्ध वैद्य हैं, वे अघ्यारमपक्षमें अपने देहमें प्राण और अपान हैं, और येही शत्रियरूपी देवोंकी चिकित्सा करते हुए इस मनुष्यको दीर्घायु देते हैं । यदि प्राणोंकी कृपा न हुई तो कोई दूसरा उपाय ही नहीं है कि जिससे मनुष्य दीर्घायु प्राप्त कर सके । यह विचार ध्यानमें रखकर यदि पाठक निम्नलिखित मन्त्र देखेंगे तो उनको उसका ठीक अर्थ ध्यानमें आसकता है, देखिये—

( हे ) देवानां भिवजौ अश्विनौ !

राशीभिः मृत्यु अस्मत् प्रत्योहताम् । ( म० १ )

'हे देवोंके वैद्य प्राण और अपानो ! अपनी विविध शक्तियोंसे मृत्युको हमसे दूर करो ।' अर्थात् प्राण और अपानही इस देहस्थानीय सब अवयवों और अंगोंकी चिकित्सा करते हैं और उनको पूर्ण निर्दोष करते हुए मनुष्यको मृत्युसे बचाते हैं । अतः मृत्यु दूर करनेके लिये उनकी प्रार्थना यहां की है । सो देव जिस वस्तुको देनेवाले हैं उनकी प्रार्थना उस वस्तुकी प्राप्तिके लिये करना योग्य ही है । इसी अर्थको मनमें धारण करके निम्नलिखित मन्त्र देखिये—

( हे ) प्राणापानौ ! स कामत, शरीर मा जहीतम् । ( म० २ )

"हे प्राण और अपानो ! शरीरमें उत्तमरीतिसे संचार करो, और शरीरको मत छोड़ो ।" यहां अश्विनौ देवताके बदले 'प्राणापानौ' शब्द ही है, और यह बताता है कि हमने सो अश्विनौ का अर्थ 'प्राण और अपान' किया है वह ठीक ही है । ये प्राण और अपान शरीरमें उत्तम प्रकार संचार करें । शरीरको इनके उत्तम संचार के लिये योग्य बनाना नारोग रहने के लिये अत्यंत आवश्यक है । शरीरका प्राणसंचारके योग्य बनानेके लिये योगशास्त्र में कहे गीटी, शक्ति, मेति आदि क्रियाएं हैं । इनसे शरीर छद्म हाता है, दोषरहित बनता है और प्राणसंचार द्वारा सर्वत्र अनारोग्य स्थिर होता है । शरीरमें प्राणापानोंका यह महत्त्व है । पाठक इस बातको मनमें रट रखें और योगसाधन के प्राण साधनसे दीर्घायु प्राप्त करें, प्राणापानोंका इतना महत्त्व है, इसीलिये कहा है कि—

इह प्राणापानौ ते सयुजौ स्ताम् । ( म० २ )

'यहां प्राण और अपान ये दोनों तेरे सहचारी मित्र बन कर रहें ।' तेरे विरोध

करनेवाले न बनें । सहचारी मित्र सदा साथ रहते हैं और सदा हित करनेवाले होते हैं इस प्रकार ये प्राणापान मनुष्यके सहचारी मित्र हैं । मनुष्य इनको ऐसा समझे और उनकी मित्रता न छोड़े । ऐसा करनेसे क्या होगा सा इसी मंत्रमें लिखा है—

धर्ममानः दात शरत्तः जीव । ( म० २ )

‘ बुद्धि और पुष्टिको प्राप्त होता हुआ तू सौ वर्ष जीवित रहेगा ’ अर्थात् प्राण और अपानको अपने अदर उत्तम अवस्थामें रखेगा तो तू पुष्ट और बलिष्ठ होकर सौ वर्षकी दीर्घायु प्राप्त कर सकेगा । दीर्घायु प्राप्त करनेका यह उपाय है, मनुष्य योगवासने कहे उपायोंका अवलंबन करके तथा प्राणायामका अभ्यास करके अपने शरीरमें प्राणापानोंको बलवान् करके कार्यक्षम बनावे, जिससे मनुष्य दीर्घायु बन सकता है । प्राण अपान ये ऐसे सहायक हैं कि वे दोषोंसे बड़ीदृढ़ आयुको भी पुनः प्राप्त करा देते हैं, देखिये—

पत ते आयुः पराधैः अतिहित

प्राणः अपानः तौ पुनः आ इताम् ॥ ( म० ३ )

“ जो तेरी आयु हीन दोषोंके कारण पटगई है, वे प्राण और अपान, पुनः उस स्थानपर आवें और वे उस आयुको वहाँ पुनः स्थापन करें । ” यह है प्राणापानोंका अधिकार । कुमार अथवा वृद्ध अवस्थामें कुछ अनियमके कारण यदि कोई ऐसे कुम्पबहार होमये, और उस कारण यदि आयु क्षीण होगई तो शुद्धिसे प्राण और अपान उस दोषको हटा देते हैं और दीर्घ आयु प्राणोपासना करनेवाले मनुष्यको अर्पण करते हैं । इस लिये कहा है—

इम प्राणः मा हासीत्, अपानः अबाहाय मा परा गत् ॥ ( म० ४ )

‘ इसको प्राण न छोड़ देवे और अपान भी इसको छोड़कर दूर न चला जावे । ’ क्योंकि प्राण और अपान इस मनुष्यके देहको छोड़ने लगे तो कोई दूसरी शक्ति मनुष्यको आयु देनेमें समर्थ नहीं होसकती । इनके रहनेपरही अन्य शक्तियाँ सहायक होती हैं । अन्य शक्तियाँ इस मन्त्रमें सप्तभि नामसे कही हैं, जो इस देहमें रहकर मनुष्य की सहायता करती हैं—

सप्तर्षिभ्य एन परिद्वामि

त एम स्थस्ति जरसे बहन्तु ॥ ( म० ४ )

“ मैं इस मनुष्यको सप्त ऋषियोंके पास देता हूँ, वे इसको बुढ़ापे तक उत्तम करवाने के मार्गसे ले चलें । ” ये सप्त ऋषि सप्त शानेन्द्रियाँ—यंश शानेन्द्रियाँ और मन तथा बुद्धि

हैं, इनके विषयमें पूर्ण स्थल में कर्षण लिखा जा चुका है। अब प्राण और अपान उत्तम अवस्थामें रहते हैं सब ये सातों इन्द्रियां उत्तम अवस्थामें रहती हैं और अनुप्य दीर्घ जीवन प्राप्त करता है। ये प्राणापान धरीरमें बलवान् रहने चाहिये। इनका बल कैसा चाहिये इस विषयमें निम्नमंत्र देखिये—

अनृषाहो व्रज इष प्राणापानौ प्रविशतम् । ( म० ५ )

“ जैसे पैल गोधालामें बेगसे प्रवेश करते हैं, वैसे प्राण और अपान बेगसे धरीरमें प्रवेश करें। प्राणका अंदर प्रवेश बलसे हावे और अपानका बाहर निःसर्ग भी बेगसे साथ हो। इनमें निर्विघ्नता न रहे यही तात्पर्य यहाँ है। अवास्तविक बेग उत्पन्न हो यह इसका मतलब नहीं है। इस प्रकार मनका बेग योग्य प्रमाणमें रहा, तो यह वार्चस्व तब आयुका खजाना ठीक अवस्थामें रहेगा। इस विषयमें मंत्र देखिये—

अय जरिष्णः शोचतिः इह अरिष्टः वर्षताम् । ( म० ५ )

“ यह दीर्घ आयुका खजाना, न्यून न होता हुआ यहाँ पड़े। ” अर्थात् पूर्वोक्त प्रकार प्राणापान अपना अपना कार्य करनेके लिये समर्थ हुए तो दीर्घायुका खजाना पड़ता जाता है। दीर्घायु प्राप्त करनेका उपाय प्राणापान को बलवान् बनाना ही है। इसी विषयमें और देखिये—

ते प्राण आसुयामि, ते पक्ष्म परा सुयामि । ( म० ६ )

“ प्राणसे तेरा जीवन बढ़ाता हूँ, और अपानसे तेरा श्वस वृद्ध करता हूँ। ” प्राण अपने साथ जीवन की शक्ति लाता है तथा धरीर जीवनमय करता है और अपान अपने साथ धरीरके श्वसको बाहर निकालता है, जिससे धरीर निर्दोष होता है। इस प्रकार ये दोनों धरीरको जीवनपूर्ण और निर्दोष बनाते हुए इसको दीर्घजीवन देते हैं। यही बात निम्नलिखित मंत्रभागमें कही है—

वरपयः अग्निः नः आयुः विश्वतः दधत् । ( म० ६ )

“ प्राणसे उत्पन्न होनेवाला भेष अग्नि हमारी आयु सब प्रकारसे चारण करे। ” यहाँ प्राणके साथ रहनेवाला जीवनाग्नि अपक्षित है। प्राणापान करनेसे, विशेष कर मत्ता करनेसे धरीरमें अग्नि बढ़नेका अनुभव सरकाळ आता है। इस दृष्टिकोण से कहा अग्नि यही धरीरस्थान की उष्णता है। यहाँ वायु अग्नि अपेक्षित नहीं है।

अगले सप्तम मंत्रमें कहा है कि हम अधिकारसे वृद्ध होकर उत्तम प्रकाशमें आयेग, और सूर्यकी ज्योतिको प्राप्त होंगे। इस मंत्रमें जो यह बात कही है, आयुष्य बढ़ानेकी दृष्टिसे इसकी बड़ी आवश्यकता है। इससे निम्नलिखित बोध मिलता है—



करनेवाले न बनें । सहचारी मित्र सदा साथ रहस हैं और सदा हित करनेवाले होते हैं इस प्रकार ये प्राणापान मनुष्यके सहचारी मित्र हैं । मनुष्य इनको ऐसा समझे और उनकी मित्रता न छोड़े । ऐसा करनेसे क्या होगा सो इसी मंत्रमें लिखा है—

वर्षमानः घात शरवः जीव । ( म० २ )

‘ शरीर और पुष्टिको प्राप्त होता हुआ तू सौ वर्ष जीवित रहेगा ’ अर्थात् प्राण और अपानको अपने अद्वर उत्तम अवस्थामें रखेगा तो तू पुष्ट और बलिष्ठ होकर सौ वर्षकी दीर्घायु प्राप्त कर सकेगा । दीर्घायु प्राप्त करनेका यह उपाय है, मनुष्य दोनोंका कहे उपायोंका अवलंबन करके तथा प्राणायामका अभ्यास करके अपने शरीरमें प्राण पानोंको बलवान् करके कार्यक्षम बनावे, जिससे मनुष्य दीर्घायु बन सकता है । प्राण अपान ये ऐसे सहायक हैं कि वे दोषोंसे बटी हुई आपुको भी पुनः प्राप्त करा देते हैं, देखिये—

यत् ते आयुः पराचैः अतिहित

प्राणः अपानः तौ पुनः आ इताम् ॥ ( म० ३ )

“ जो तेरी आयु हीन दोषोंके कारण घटगई है, वे प्राण और अपान, पुनः उस स्थानपर आचें और वे उस आयुको वहाँ पुनः स्थापन करें । ” यह है प्राणपानोंका अधिकार । कुमार अथवा तरुण अवस्थामें कुछ अनियमके कारण यदि कोई इसे कुम्भबहार होगये, और उस कारण यदि आयु क्षीण होगई तो मुक्तिसे प्राण और अपान उस दोषको हटा देते हैं और दीर्घ आयु प्राणोपासना करनेवाले मनुष्यको अर्पण करते हैं । इस लिये कहा है—

इम प्राणः मा हासीत्, अपानः अवहाय मा परा वात् ॥ ( म० ४ )

“ इसको प्राण न छोड़ देवे और अपान भी इसको छोड़कर दूर न चला जावे । ” क्योंकि प्राण और अपान इस मनुष्यके देहका छोड़ने लगे सो कोई दूसरी शक्ति मनुष्यको आपु देनेमें समर्थ नहीं होसकती । इनके रहनेपरही अन्य शक्तियाँ सहायक होती हैं । अन्य शक्तियाँ इस मंत्रमें सप्तर्षि नामसे कही हैं, जो इस दहमें रहकर मनुष्य की सहायता करती हैं—

सप्तर्षिभ्य एन परिव्रजामि

त एन स्पस्ति जरसे बहन्तु ॥ ( म० ५ )

“ मैं इस मनुष्यको सप्त ऋषियोंके पास देता हूँ, वे इसको पुनः प्राप्त कर उत्तम कल्याण का मार्ग प्रशस्त करेंगे । ” ये सप्त ऋषि सप्त ज्ञानेंद्रियों पंच ज्ञानेंद्रियों और मन तथा बुद्धि

हैं, इनके विषयमें पूर्व स्थल में कर्षण लिखा जा चुका है । अब प्राण और अपान उत्तम अवस्थामें रहते हैं तब ये सातों इंद्रियां उत्तम अवस्थामें रहती हैं और अनुप्य दीर्घ जीवन प्राप्त करता है । ये प्राणापान शरीरमें बलवान् रहने चाहिये । इनका बल कैसा चाहिये इस विषयमें निम्नमत्र देखिये—

अनन्याहो मज्ज ह्य प्राणापानौ प्रविशतम् । ( म० ५ )

“ जैसे बैल गोशालामें वेगसे प्रवेश करते हैं, वैसे प्राण और अपान वेगसे शरीरमें प्रवेश करें । प्राणका अंदर प्रवेश चलते हावे और अपानका बाहर निःस्रावण भी वेगसे साथ हो । इनमें निर्बलता न रहे यही तात्पर्य यहाँ है । अवास्तविक वेग उत्पन्न हो यह इसका मतलब नहीं है । इस प्रकार मनका वेग योग्य प्रमाणमें रहा, तो यह वार्षिक्य तक आयुका खजाना ठीक अवस्थामें रहेगा । इस विषयमें मत्र देखिये—

अय जरिष्णः शोचतिः इह अरिष्टः वर्षताम् । ( म० ५ )

“ यह दीर्घ आयुका खजाना, न्यून न होता हुआ यहाँ बड़े । ” अर्थात् पूर्वोक्त प्रकार प्राणापान अपना अपना कार्य करनेके लिये समर्थ हुए तो दीर्घायुका खजाना बढ़ता जाता है । दीर्घायु प्राप्त करनेका उपाय प्राणापान को बलवान् बनाना ही है । इसी विषयमें और देखिये—

ते प्राण आसुषामि, ते पद्म परा सुषामि । ( म० ६ )

“ प्राणसे तेरा जीवन बढ़ाया हुआ, और अपानसे तेरा श्वस वृद्ध होता है । ” प्राण अपने साथ जीवन की शक्ति लाता है तथा शरीर जीवनमय करता है और अपान अपने साथ शरीरके श्वसको बाहर निकालता है, जिससे शरीर निर्दोष होता है । इस प्रकार ये दोनों शरीरको जीवनपूर्ण और निर्दोष बनाते हुए इसको दीर्घजीवन देते हैं । यही बात निम्नलिखित मत्रभागमें कही है—

वरेण्यः अग्निः नः आयुः विश्वतः वृषत् । ( म० ६ )

“ प्राणसे उत्पन्न शनिवाला अग्नि अग्नि हमारी आयु सब प्रकारसे चारम करे । ” यहाँ प्राणके साथ रहनेवाला जीवनमय अपक्षित है । प्राणायाम करनेसे, विशेष कर मन्त्र करनेसे शरीरमें अग्नि बढ़नेका अनुभव तत्काल आता है । इस सूक्तमें कहा अग्नि यही शरीरस्थान की उष्णता है । यहाँ वायु अग्नि अपेक्षित नहीं है ।

अगले सप्तम मंत्रमें कहा है कि हम अक्षरोंसे दूर होकर उत्तम प्रकारमें आयेग, और सूर्यकी उषोविकी प्राप्त होंगे । इस मंत्रमें जो यह बात कही है, आयुष्य बढ़ानेकी दृष्टिसे इसकी बड़ी आवश्यकता है । इससे निम्नलिखित शोध मिलता है—

१ अथ तमसः परि उत् रोहन्तः—इम अधकारके ऊपर चढ़ेये । अर्थात् अधकारके स्थानमें निवास करना आपुको घटानेवाला है, अतः इम अधकारके स्थानको छोड़ते हैं और ऊपर चढ़ते हैं और—

२ उत्तम नाक रोहन्तः—उत्तम सुखदायक प्रकाशपूर्ण स्थान की प्राप्ति करते हैं, क्योंकि प्रकाश ही जीवन देनेवाला और रोगादि दोषोंको दूर करनेवाला है, इसलिये—

३ देवत्रा देव उत्तम उपोतिः सूर्य अगन्म—सब देवोंके रक्षक उत्तम तेजस्वी सूर्यदेवको प्राप्त करते हैं । सर्वेश्वर सब स्वावर अगमका प्राप्ति है अतः प्राणरूपी सूर्यको प्राप्त करनेके कारण इम अवश्य दीर्घजीवी बनेंये ।

दीर्घायु प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले लोग सूर्य प्रकाश वाले घरमें रहें और कभी अंधे कमरोंमें न रहें । इस प्रकार दीर्घायु बननेके दो उपाय इस सूक्तमें कहे हैं । एक प्राण और अपान को बलवान् बनाना और सूर्य प्रकाशको प्राप्त करना और अन्धे कमरोंमें न रहना । पाठक इस प्रकार इस सूक्तका विचार करें और इसके अमूर्त वादशेष छाम उठावें—

## ज्ञान और कर्म ।

[ ५४ ( ५६, ५७—१ ) ]

( ऋषिः—शुगुः । दत्ता—इन्द्रः )

अथ सामं यजामहे याभ्यां कर्माणि कुर्वत ।

एते सर्वसि राजतो यज्ञं देवेभ्यं यच्छतः ॥ १ ॥

अर्थ—( याभ्यां कर्माणि कुर्वते ) जिनके द्वारा कर्म करते हैं उन ( अथ साम यजामहे ) ऋषियों और सामोंसे हम सगतिकरण करते हैं । ( एते सर्वसि राजताः ) ये दोनों इस यज्ञस्थलमें प्रकाशमान होते हैं । और ये ( देवेभ्यं यज्ञं यच्छतः ) देवोंमें श्रेष्ठ कर्मका अर्पण करते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—ऋषा और साम इन मन्त्रोंसे मानवी उन्नतिके सप कर्म होते हैं, इसलिये हम इन यज्ञोंका अध्ययन करते हैं । ये ही यज्ञ इस जगत्की कर्म भूमिमें प्रकाश देनेवाले मार्गदर्शक हैं । क्योंकि ये ही देवों में सर्वकर्मकी स्थापना करते हैं ॥ १ ॥

अथ साम यदग्रार्थं हविरोजो यजुर्बलम् ।

एष मा तस्मान्मा हिंसीद् वेदः पूष्टः शचीपते ॥ २ ॥

अर्थ- (यत् ऋषि साम, यजुः) जिन् ऋषि, साम और यजु तथा ( हविः  
ओजः बल अप्राप्त ) हवन, ओज, और बलके विषयमें मैंने पूछा, हे  
( शचीपते ) बुद्धिमान् । ( तस्मात् एषः पूष्टः वेदः ) उस कारण यह पूछा  
हुआ वेद ( मा मा हिंसीत् ) मेरी हिंसा न करे ॥ २ ॥

साधारण- मैं छुट्से ऋषि, साम और यजुके विषयमें पूछता हूँ, और  
हवन की विधि, शारीरिक बल कमामेका उपाय और मानसिक बल प्राप्त  
करनेका उपाय भी पूछता हूँ । यह सब प्राप्त किया हुआ ज्ञान मेरी उन्नति  
का सहायक होवे और बाधक न बने ॥ २ ॥

इस सूक्तमें कहा है कि ऋषि, यजु और साम ये ज्ञान देनेवाले मंत्र हैं और इनसे  
मेष्ठम कर्म किया जाता है । इन कर्मोंको करके मनुष्य उन्नतिको प्राप्त करता है और  
ओज तथा बल को बढ़ाता है । उक्त मन्त्रोंसे मनुष्य ज्ञान प्राप्त करता है और उस ज्ञानसे  
कर्म करके उन्नत होता है । परन्तु किसी किसी समय मनुष्य मोहबुद्ध होकर ज्ञानका  
वुरूपयोग भी करता है और अपना नाश कर लेता है । उदाहरणार्थ कोई मनुष्य बल  
प्राप्तिके उपायका ज्ञान प्राप्त करता है और उसका अनुष्ठान करके बहुत बल कमाता है ।  
धरीरमें बल बढ़नेसे उसको भयान्त्र होती है और वही मनुष्य निर्धर्मोंको छताने लगता है  
और मिरता है । अतः इस सूक्तके अन्तिम मन्त्रमें प्रार्थना की है कि वह प्राप्त हुआ ज्ञान  
हमारा पात न करे । ज्ञान एक शक्ति है जो उपयोग कर्ताके मते पुरे प्रयोगके अनुसार  
मला दुरा परिणाम करनेवाली होती है । इसीलिये परमेश्वर से प्रार्थना की जाती है कि  
वह हमारी सश्रद्धा रखे और हमें पातपातके मार्गमें जाने ही न दें ।

## प्रकाशका मार्ग ।

[ ५५ ( ५७-२ ) ] ( ऋषिः- सुगु । दत्ता-इन्द्रः )

ये ते पन्थानोर्ष दिभो यमिर्विश्वमेरयः ।

तेभिः सुस्रया चेहि नो वसो ॥ १ ॥

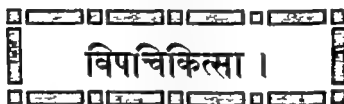
अर्थ- हे ( वसो ) सत्यके निवासक प्रभो ! ( ये ते दिवः पन्थानः ) जो

तेरे प्रकाशके मार्ग हैं, ( येभिः विश्वं अथ ऐरयाः ) जिनसे तू सब जगत्को बलाता है, ( तेभिः मां सुभया वेदि ) उनके साथ हम सबको सुखसे युक्त रख ॥ १ ॥

भावार्थ— हे प्रभो ! जो तेरे प्रकाशके मार्ग हैं और जिन से तू सब जगत्को बलाता है, उनसे हमें सुखके मार्गसे ले बल और हमें सुख दे ॥ १ ॥

मार्ग दो हैं । एक प्रकाश का और दूसरा अंधेरेका । ईश्वर प्रकाशका मार्ग बताता है और सबको सुखी करता है । परन्तु जो इस प्रभुको छोड़कर अन्धेरेके मार्गसे जाते हैं वे दुःख भोगत हैं । इसीलिये इस प्रभुकी ही प्रार्थना करना चाहिये कि यह अपना प्रकाशका मार्ग हमें दर्शावे और हमें ठीक मार्गसे ले बले ।

ॐ नमः शिवाय ॥



[ ५६ ( ५८ ) ]

( अग्निः-अथवा । देवता-इन्द्रिकादयः, २ वनस्पतिः, ४ प्रह्वामस्पतिः । )

तिरिभिराजैरसितात् पूर्वाकोः परि संवृतम् ।

यत् कृप्यर्षणो विपमिर्षं वीर्यनीनशत् ॥ १ ॥

अर्थ— ( तिरश्चि-राजे : असितात् ) तिरछी रेखावाला, काछे, ( पूर्वाकोः ककपर्वणः ) नाग और कौबे जैसे पर्वणाले साँपसे ( समृत तत् विष ) इकट्ठे हुए उस विषको ( इय वीर्यं परि अनीनशत् ) यह वनस्पती नाश करती है ॥ १ ॥

भावार्थ— जिसपर तिरछी लकीरें होती हैं और जिसके पर्व होते हैं ऐसे साँपके विषको मधु नामक वनस्पति दूर करती है ॥ १ ॥

इयं मीरुन्मधुजाता मधुमुन्मधुला मधुः ।  
 सा विहृतस्य मेपज्ययो मद्यकजर्मनी ॥ २ ॥  
 यतो दष्ट यतो धीत ततस्ते निर्हयामसि ।  
 अर्मस्य तृप्रदशिनो मद्यकस्मारस विपम् ॥ ३ ॥  
 अय यो वक्रो विपलम्पिको मुखानि वक्रा वृजिना कृणोपि ।  
 तानि त्व म्रक्षणस्पत इपिकामिष स नमः ॥ ४ ॥

अर्थ— ( इय मीरुन् मधु-जाता मधुला ) यह धनस्पति मधुरताके साथ उत्पन्न हुई मधुरता देनेवाली ( मधुदशु मधुः ) मधुरताको सुआने वाली स्वयं मधुर है । ( सा विहृतस्य मेपजी ) यह कुटिल साँपके विप की औपधि है और वह ( मद्यक-जर्मनी ) मच्छरोंका नाश करनेवाली है ॥ २ ॥

( यतः दष्ट ) जहाँ काटा गया है, ( यतः धीत ) जहाँसे खून पिया है, ( ततः ) वहाँसे ( तृप्रदशिनः अर्मस्य मद्यकस्य ) तीक्ष्ण काटनेवाले छोटे मच्छरके ( अरस विप निः हयामसि ) रसहीन विपको हम हटा देते हैं ॥ ३ ॥

हे ( म्रक्षणस्पत ) ज्ञानके स्वामिन् ! ( यः अय वक्रः वि-पः ) जो यह तेड़ा और सविस्थानम शिथिल और ( व्यगः ) कुरूप अगवाला हुआ है और जो ( मुखानि वक्रा वृजिना कृणोपि ) मुख तेड़े मेड़े और विरूप करता है, ( तानि त्व इपिका इष स नमः ) उनको तू मूसके समान सीपा कर ॥ ४ ॥

भाषार्थ— यह धनस्पति मीठे रसवाली है, मीठास के लिये प्रसिद्ध है, इसका नाम मधु है । यह विपवाधासे तेहमेड़े हुए रोगीके लिये उत्तम औपधी है । इससे मच्छर भी दूर होते हैं ॥ २ ॥

जहाँ काटा है और जहाँसे रक्त पीया है, वहाँसे मच्छर आदिके विपको उक्त औपधिके प्रयोगसे हटा देते हैं ॥ ३ ॥

विपवाधासे जो रोगी तेड़ा मेड़ा, विरूप अगवाला, इल्ले सपियोंवाला होगया है और जो अपने मुख तेड़े मेड़े करता है, उस रोगीको इस औपधीद्वारा ठीक किया जा सकता है ॥ ४ ॥

अरसस्य शार्कोटस्य नीचीनस्योपसर्पतः ।

विष शस्याविष्यथो एनमजीवमम् ॥ ५ ॥

न ते बाहोर्बलमस्ति न शीर्षे नोत मध्यतः ।

अथ किं पापमामुया पुच्छे विमर्षमर्मकम् ॥ ६ ॥

अदन्ति त्वा पिपीलिका वि वृमन्ति मयूर्यः ।

सर्वे मल प्रवाप शार्कोटमरस विषम् ॥ ७ ॥

य उमान्म्या प्रहरसि पुच्छेन चास्येन च ।

आस्यः न ते विष किम् ते पुच्छचारवसत् ॥ ८ ॥

अर्थ- ( अरसस्य नीचीनस्य उपसर्पतः ) नीरस और नीचेसे आमेवाले (अस्य शार्कोटस्य विष) इस बिच्छू या सर्पके विषको (आ अविषि) अण्डित करता हूँ, (अथो एन अजीवमम्) और इसको मार डालता हूँ ॥ ५ ॥

हे बिच्छू (ते बाहोः बल न अस्ति) तेरी बाहुओंमें बल नहीं है। (न शीर्षे नोत न मध्यतः) सिरमें नहीं और ना ही मध्य भागमें है। (अथ किं अमुया पापया) फिर क्यों इस पापवृत्तीसे (पुच्छे अर्मक विमर्षि) पूछ में घोडासा विष भारण करता है ? ॥ ६ ॥

(पिपीलिकाः त्वा अदन्ति) कीटियां मुझे खाती हैं, (मयूर्यः विवृमन्ति) मोरनियां काट डालती हैं। (सर्वे मल प्रवाप) सब मलीप्रकार कहते हैं कि (शार्कोट विष अरस) बिच्छू का विष खुष्की करनेवाला है ॥ ७ ॥

(यः पुच्छेन च आस्येन च उमान्म्या) जो तू पूछ और मुझ इन दोनों स (प्रहरसि) प्रहार करता है, परन्तु (ते आस्ये विष न) तेरे मुझमें विष नहीं है, (किं उ पुच्छाय असत्) फिर क्यों पूछमें है ? ॥ ८ ॥

भावार्थ-नीचे से आमेवाले खुष्की पैदा करनेवाले सापके या बिच्छूके विषको हम इससे दूर करते हैं और उसको हम मार भी देते हैं ॥ ५ ॥

बिच्छू का बल बाहुओंमें, सिरमें अथवा मध्यभागमें नहीं है। केवल पूछके अग्रभागमें उसका विष रहता है ॥ ६ ॥

कीटियां, मोरनियां या मुर्गियां उसको (बिच्छू और सापको भी) खाजाती हैं। इनका विष शुष्कता उत्पन्न करनेवाला है किंवा इस वनस्पतिसे यह निर्वल हो जाता है ॥ ७ ॥

विच्छू पूछसे प्रहार करता है, सुखसेभी कुछ चेतना देता है । इसके सुखमें विष नहीं है केवल पूछमें है ॥ ८ ॥

इसमें सर्वविष अथवा विच्छूका विष दूर करनेके लिये मधुनामक औषधि का उपयोग करनेको कहा है । यह छर्तिया औषध है । परंतु यह कौनसी बनस्पति है इसका पता नहीं चलता । विषबाधासे शरीरपर जो परिणाम होता है, उसका वर्णन चतुर्थ मंत्रमें है । मयंकर सर्वविषसे मनुष्य ऐसा कुरूप और तेढामेढा हो जाता है । इस सूक्तमें कहा अथ भाग सुषोष है । इस लिये उस विषयमें अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है ।

## मनुष्यकी शक्तियां ।

[ ५७ ( ५९ ) ]

( ऋषिः— ऋमदेवः । देवता—सरस्वती )

यदाशसा बर्दतो मे विबुक्षुमे यद् याचमानस्य चरंतो जनां अतु ।  
तदात्मनि तन्वा विरिष्टं सरस्वती तदा पूणद् पूवेन ॥ १ ॥

अर्थ— ( यत् आशसा बर्दतः मे विबुक्षुमे ) जो हिंसासे थोलेवाले मेरा क्षोभित हो गया है, ( यत् जनान् अनुचरतः याचमानस्य ) जो छो गोंकी सेवा करते हुए याचना करनेवालेकी व्याकुलता हो गई है, ( तत् आत्मनि मे तन्वा विरिष्टं ) यह अपनी आत्मामें और मेरे शरीरमें जो हीनता होगई है, ( तत् सरस्वती घृतेन आ पूणत् ) उसको सरस्वती घृतसे भर देये ॥ १ ॥

भाषार्थ— वफावृत्त्य करनेके समय अथवा जनसेवा करनेके समय किंवा सेवाके लिये प्रार्थना करनेके समय करनेके योग्य हलचलमें जो भी शरीरमें अथवा मनमें या आत्मामें दुःख हुआ हो, वह सरस्वती दूर करे ॥ १ ॥



सप्त धरन्ति शिञ्जव मरुत्वते पित्रे पुत्रासो अप्यवीवृतभुवार्नि ।  
उमे इदंस्थोमे अस्म राजत उमे यतेते उमे अस्म पुष्यतः ॥ २ ॥

अर्थ—(मरुत्वते शिञ्जवे सप्त धरन्ति) प्राणवाले बालकके लिये सात प्राण अथवा सात इन्द्रियशक्तियां जीवनरस देती हैं। जिस प्रकार (पित्रे पुत्रासः श्रानानि अपि अवीवृतन्) पिता के लिये पुत्र सत्य कर्मोंको करते हैं। (अस्य उमे इत्) इसके पास दो शक्तियां हैं, (अस्य उमे राजतः) इसकी दोनों शक्तियां प्रकाशती हैं, (उमे यतेते) दोनों प्रयत्न करती हैं और (अस्य उमे पुष्यतः) इसकी दोनों पोषण करती हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—चैतन्यपूर्ण बालकमें सात दैवी शक्तियां कार्य करती हैं। ये शक्तियां उसका ऐसा कार्य करती हैं कि जैसा बालक अपने पिताका कार्य करते हैं। उसके पास दो शक्तियां होती हैं जो तेज बघाती, कार्य कराती और पोषण करती हैं ॥ २ ॥

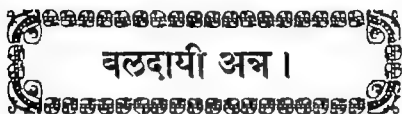
### जनसेवा ।

जनसेवा करनेके समय जो कष्ट होते हैं (जनान् अनुचरतः यद् विभुशुभम् । म० १) जनताकी सेवा करनेके समय जो शोच होता है, जो मानसिक क्लेश होते हैं अथवा जो शारीरिक क्लेश भोगने पड़ते हैं, वे सरस्वती अर्थात् विद्या देवीकी सहायतासे दूर हैं। अर्थात् मनुष्यको जनताकी सेवा करना चाहिये और उस पवित्र कार्यके करनेके समय जो कष्ट होंगे, उनको आनन्दसे रहना चाहिये। विद्या उच्चम प्रकार प्राप्त होनेके पश्चात् यह सहन शक्ति प्राप्त होती है। शानी मनुष्य ऐसा कष्टोंकी परीक्षा नहीं करता।

मानवी बालकके तथा बड़े मनुष्यके शरीरमें सात शक्तियां रहती हैं। बुद्धि, मन और पाँच ज्ञानश्रियाँ, ये सात शक्तियां हैं जो हरएक मानवी बालकमें जन्मसे रहती हैं। मानो य सातों इसके पुत्र ही हैं। पुत्रवत् ये इसकी सहायता करती हैं। जिस प्रकार पुत्र अपने पिताके कार्य सञ्चालनासे करते हैं और कोई कष्ट नहीं करते, वही प्रकार ये शक्तियां इसके कार्य अपनी शक्तिके अनुसार निष्कण्ट भावसे करती हैं।

इसके पास प्राण और अपान ये दो और विशेष प्रकार के बल हैं, इन दोनों बलोंसे इसका तज बढ़ता है, इन दोनोंके कारण यह प्रयत्न कर सकता है और इन दोनोंही सहायतासे इसकी पुष्टि होती है।

इन सब शक्तियोंसे मनुष्यकी उन्नति होती है । इनके साथ सरस्वती अर्थात् सार पाठी विधादेवी है जो मनुष्यकी सहायक देवता है । मानवी उन्नति इनसे होती है यह जानकर मनुष्य इन शक्तियोंकी रक्षा और इन्हें बढ़ा करे और अपनी उन्नति अपने प्रयत्नसे सिद्ध करे ।



## बलदायी अन्न ।

[ ५८ ( ६० ) ]

( ऋषिः—कौरुषिः । देवता—मन्त्रोक्ता इन्द्रावरुणौ )

इन्द्रावरुणा सुतपावेम सुत सोमं पिबतु मघ हृत्वमर्ता ।

युवो रथो अघ्नरो देवर्षीतये प्रति स्वसरमुप यातु पीतये ॥ १ ॥

इन्द्रावरुणा मधुमक्षमस्य धृष्णः सोमस्य धृष्णा धृषेयाम् ।

इद वामन्धः परिपिक्तमासघ्रास्मिन् यर्हिपि मादयेयाम् ॥ २ ॥

अर्थ— हे ( सुतपौ सुतधृता इन्द्रावरुणा ) उत्तम तप करनेवाले, नियम के अनुसार चलनेवाले इन्द्र और वरुणो ! ( इम सुत मघ सोम पिबत ) इस निश्चिन्ने हुए आनन्द यहानेवाले सोमरस का पान करो । ( युवोः अघ्नरः रथः ) तुम दोनोंका अर्हिसावाला रथ (देवर्षीतये, पीतये प्रतिस्वसर उपयानु) देवप्राप्ति और रक्षा करनेके लिये प्रतिष्पन्नि करता हुआ जावे ॥ १ ॥

हे ( धृष्णा इन्द्रावरुणा ) बलवान इन्द्र और वरुण ! ( मधुमक्षमस्य धृष्णाः सोमस्य धृषेयां ) अत्यन्त मधुर बलकारी सोमरस की पर्पा करो अपघा इससे बल प्राप्त करो । ( इद परिपिक्त मां अन्धः ) यह रक्षा हुआ तुम दोनोंका अन्न है । ( आस्मिन् यर्हिपि आसथ मादयेयां ) इस आसम पर बैठकर आनन्द करो ॥ २ ॥

इस छन्दमें मनुष्य किस प्रकार रहे और क्या खाए और किस प्रकार आनन्द प्राप्त करे इस विषय में लिखा है इत्थिये—

सप्त धरन्ति शिष्यं व मरुत्वते पित्रे पुत्रासो अप्यधीवृत्तश्रुतानि ।  
तुमे इदं स्योमे अस्य राजत तुमे यतेते तुमे अस्य पुष्पतः ॥ २ ॥

अर्थ—(मरुत्वते शिष्यावे सप्त धरन्ति) प्राणवाले बालकके लिये सात प्राण  
अथवा सात इन्द्रियशक्तियां जीवनरस होती हैं। जिस प्रकार (पित्रे  
पुत्रासः श्रानानि अपि अधीवृत्तन्) पिता के लिये पुत्र सत्य कर्मोंको करते  
हैं। (अस्य उमे इत्) इसके पास दो शक्तियां हैं, (अस्य उमे राजतः)  
इसकी दोनों शक्तियां प्रकाशती हैं, (उमे यतेते) दोनों प्रयत्न करती हैं  
और (अस्य उमे पुष्पतः) इसकी दोनों पोषण करती हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—वैतन्यपूर्ण बालकमें सात वैधी शक्तियां कार्य करती हैं। ये  
शक्तियां उसका ऐसा कार्य करती हैं कि जैसा बालक अपने पिताका कार्य  
करते ह। उसके पास दो शक्तियां होती हैं जो तेज बढ़ाती, कार्य कराती  
और पोषण करती हैं ॥ २ ॥

## जनसेवा ।

जनसेवा करनेके समय जो कष्ट होते हैं (जनान् अनुचरतः यद् विभुश्रुम् ।  
म० १) जनताकी सेवा करनेके समय जो शोभ होता है, जो मानसिक क्लेश होते हैं  
अथवा जा शारीरिक क्लेश भोगने पड़ते हैं, वे सरस्वती अर्थात् विद्या देवीकी सहायतासे  
दूर हों। अर्थात् मनुष्यकी जनताकी सेवा करना चाहिये और उस पवित्र कार्यके  
नेके समय जो कष्ट होंगे, उनको भानदसे रहना चाहिये। विद्या सचम प्रकार प्राप्त होनेके  
पश्चात् यह सदन शक्ति प्राप्त होती है। मानी मनुष्य ऐसे कष्टोंकी परीह नहीं करता।

मानवी बालकके तथा बड़े मनुष्यके शरीरमें सात शक्तियां रहती हैं। बुद्धि, मन  
और पाँच शान्तिशक्ति, ये सात शक्तियां हैं जो हरएक मानवी बालकमें जन्मसे रहती  
हैं। मानो य सातों इसके पुत्र ही हैं। पुत्रवत् ये इसकी सहायता करती हैं। जिस  
प्रकार पुत्र अपने पिताके कार्य सहायतासे करते हैं और कोई कष्ट नहीं करते, उसी  
प्रकार ये शक्तियां इसका कार्य अपनी शक्तिके अनुसार निष्कपट भावसे करती हैं।

इसका पास प्राण और अवाण य दो और विशेष प्रकार के बल हैं, इन दोनों बलोंसे  
इसका तन्त्र चरता है, इन दोनोंके कारण यह प्रयत्न कर सकता है और इन दोनोंकी  
सहायतासे इसकी पुष्टि होती है।

## शापका परिणाम ।

[ ५९ ( ६१ ) ]

( ऋषिः— वादरायणिः । देवता— अरिनाशनम् )

यो नः क्षपादक्षपतः क्षपतो यम् नः क्षपात् ।

वृक्ष इव विद्युता इव आ मूलादनु शुष्यतु ॥ १ ॥

॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

अर्थ— ( यः अक्षपतः नः क्षपात् ) जो क्षाप न देते हुए भी हमें क्षाप देवे और ( यः अक्षपतः नः क्षपात् ) जो क्षाप देते हुए हमें क्षाप देवे वह; ( आ मूलात् अनु शुष्यतु ) जड़से सूख जावे, जैसा ( विद्युता आहतः इव ) बिजलीसे आहत हुआ वृक्ष सूख जाता है ॥ १ ॥

किसीको क्षाप देना, गाड़ी देना या बुरासला करना या निन्दा करना बहुत ही बुरा है । इससे गाड़ी देनेवालेका ही नुकसान हो जाता है ।

## रमणीय घर ।

[ ६० ( ६२ ) ] ( ऋषिः— मन्वा । देवता— गृहाः, वास्तोष्पतिः )

ऊर्जं विभ्रद्भसुवर्णिः सुमेधा अपरेण चक्षुषा मिश्रियेण ।

गृहानैमि सुमना वन्दमानो रमन् मा विमीतु मत् ॥ १ ॥

अर्थ— ( ऊर्जं विभ्रद्भसुवर्णिः ) अन्नको चारण करनेवाला, धनका दान करनेवाला, ( सुमेधाः ) उत्तम बुद्धिमान् ( अपरेण मिश्रियेण चक्षुषा सुमना ) शान्त और मिश्रकी दृष्टि चारण करनेके कारण उत्तम मनवाला होकर तथा ( वन्दमानः ) सब श्रेष्ठ पुरुषोंको नमन करता हुआ, मैं ( गृहान् एमि ) अपने घरके पास प्राप्त होता हूँ । यहाँ तुम ( रमन् ) आनन्दसे रहो ( मत् मा विमीतु ) मुझसे मत डरो ॥ १ ॥

भाषार्थ— मैं स्वयं उत्तम अन्न, विपुलधन, श्रेष्ठबुद्धि, और मिश्रकी दृष्टि को चारण करके उत्तम विचारोंके साथ पूजनीयोंका सत्कार करता हुआ घरमें प्रवेश करता हूँ, सब लोग यहाँ आनन्दसे रहें और किसी प्रकार यहाँ मेरेसे डर उत्पन्न न हो ॥ १ ॥

१ सुतपौ= मनुष्य उत्तम तप करनेवाले हों, धीत तप्य आदि इन्हेंको सन करनेकी शक्ति अपने अदर बढ़ावे ।

२ घृतमत्तौ= नियमोंका पालन करें । नियमके विरुद्ध आचरण कदापि न करें । सब अपना आचरण उत्तम नियमानुसूल रखें ।

३ धृषणी=मनुष्य बलवान बनें, अशक्त न रहें ।

४ इन्द्रावरुणौ=मनुष्य इन्द्र के समान शूरवीर ऐश्वर्यवान्, वीर ममीर, शत्रुओंको दबाने और परास्त करनेवाला बने । वरुण के समान परिष्ठ और भेष्ठ बने । जो जो इन्द्रक और वरुण के गुण वेदमें अन्यत्र वर्णन किये हैं, पाठक उन गुणोंको अपने अदर धारण करें और इन्द्रके समान तथा वरुणके समान बननेका यत्न करें ।

५ अर्ष्वरा रथा=हिंसा रहित, कुटिलतारहित रथ हो । अर्थात् जहाँ समन करना हो वहाँ अहिंसा और अकुटिलताका सदेष्ट स्थापन करनेका यत्न किया जावे ।

६ देवधीतये=देवत्व की प्राप्ति के लिये प्रयत्न होता रहे । राक्षसत्वसे निवृत्ति होवे और दिव्य गुणोंका धारण हो ।

७ पीतये=रक्षा करनेका प्रयत्न हो । आत्मरक्षा, समावरक्षा, राष्ट्ररक्षा, जनरक्षाके लिये प्रयत्न होवे ।

८ इदं वा अग्ना=यह तुम्हारा अन्न है । हे मनुष्यो यही अन्न तुम खाओ । कौनसा यह अन्न है ? देखिये यह अन्न है—(मर्षं सुतं सोम) ईर्ष्य उत्पन्न करनेवाला सोम आदि औषधि वनस्पतियोंसे संपादित रस आदि तथा ( हृष्या मनुमत्तमस्य सोमस्य हृषेयां ) बलवर्धक तथा मधुर सोमादि औषधियों के रससे तुम सब लोग बलवान बनो ।

इस प्रकार देवों का वर्णन अपने जीवन में ढालने का प्रयत्न जानेसे वेदका ज्ञान अपने जीवन में उत्तरदा दे और जो भेष्ठ अवस्था मनुष्यको प्राप्त करनी होती है वह प्राप्त हो सकती है । इस प्रकार देवतावर्णनवाले वदमंत्रोंका अध्ययन करके पाठक बहुत मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं ।

सूनुवावन्तः सुमगा इरावन्तो हसामुदाः ।

अतृप्या अभुष्या स्तु गृहा मास्मद् विभीषन् ॥ ६ ॥

इहैव स्त मानु गातु विभ्रा रूपाणि पुष्यत ।

ऐष्यामि भद्रेणा सह भूयांसो भवता मया ॥ ७ ॥

अर्थ—हे (गृहा) धरो ! तूम (सूनुता-वन्तः सुमगाः) सत्ययुक्त और उत्तम भाग्यवाले, (इरावन्तः हसा-मुदाः) अन्नवान् और जहाँ हास्य विनोद चलरहे हैं ऐसे, (अतृप्याः अभुष्याः) जहाँ क्षुधा और तृप्ता का भय नहीं ऐसे (स्त) हो । (अस्मत् मा विभीषन्) हमसे मत डरो ॥ ६ ॥

(इह एव स्त) यहाँही रहो, (मा अनु गातु) हमसे मत भाग जाओ, (विभ्रा रूपाणि पुष्यत) विविधरूपवाले प्राणियोंको पुष्ट करो, (भद्रेण सह मा एष्यामि) कल्याणके साथ मैं तुम्हें प्राप्त होता हूँ । (मया भूयांसो भवत) मेरे साथ बहुत हो जाओ ॥ ७ ॥

भावार्थ—घर घरमें सत्य, भाग्य, अन्न, आनन्द, हास्य और श्वान और पान की विपुलता रहे ॥ ६ ॥

घर सुख हो, अस्थिर न हो, घरमें सयका उत्तम पोषण होता रहे । कल्याण और सुख सयको प्राप्त हो और हमारी शृद्धि होती रहे ॥ ७ ॥

रमणीय घर कैसा होना चाहिये, यह विषय इस सूक्तमें सुबोध रीतिसे कहा है । घरमें प्रेम रहे, द्वेष न रहे, सब लोग आनन्दसे रहें, परस्पर डरापा न हो, वहाँ धनधान्यकी सुख समृद्धि हो, गोरस विपुल हो, किसी प्रकार सुखयोग की न्यूनता न हो । इष्टमित्र आवें, आनन्द करें, कोई कमी भूखा न रहे, अन्नपान सबवाला हो, हरएक इष्टपुष्ट हो, कोई किसी कारण पीडित न हो । इस प्रकारके घर होने चाहिये । यही गृहस्यामम है ।

## तपसे मेधाकी प्राप्ति ।

[ ६१ ( ६३ ) ] ( ऋषिः—मधर्षा । देवता—अग्निः )

यदप्र तर्पमा तर्प उप तृप्यामहे तर्पः ।

प्रियाः भूतस्य भूयास्मापुष्पन्तः सुमेधसः ॥ १ ॥

अप्र तर्पस्तृप्यामहे उप तृप्यामहे तर्पः ।

भूतानि पुष्पन्ता ध्रुयमापुष्पन्तः सुमुधसः ॥ २ ॥

इमे गृहा मन्त्रो मुख ऊर्जस्वन्तः पर्यस्वन्तः । पूर्णा धामन विष्टन्तस्ते नो जानन्त्वामृतः ॥२॥  
 येषामभ्येति प्रवसतु येषु सौमनसो बहूः । गृहानुप ह्वयामहे ते नो जानन्त्वामृतः ॥३॥  
 उपहृता मूरिषनाः सखायः स्वादुसमुदः । अधुन्या अतृप्यास्त गृहा मास्मद् विभीतन ॥४॥  
 उपहृता इह गाव उपहृता अजाधर्यः । अथो अजस्य कीलाल उपहृतो गृहेषु नः ॥५॥

अर्थ- ( इमे गृहाः ) ये हमारे घर ( मयो-भुयः ऊर्जस्वन्तः पर्यस्वन्तः ) सुखदायी, वलदायक धान्यसे युक्त, और दूधसे युक्त हैं। ये ( धामेन पूर्णाः तिष्ठन्तः ) सुखसे परिपूर्ण हैं, ( ते नः आयतः जानन्तु ) वे हम आनेवाले सबको जानें ॥ २ ॥

( प्रवसतु येषां अभ्येति ) अन्दर रहता हुआ जिसके विषयमें जानता है, कि ( येषु बहूः सौमनसः ) जिसमें बहुत सुख है, ऐसे ( गृहान् उप ह्वयामहे ) घरोंके प्रति हम इष्ट मित्रोंको बुलाते हैं, ( ते नः आयतः जानन्तु ) वे आनेवाले हम सबको जानें ॥ ३ ॥

( मूरिषनाः स्वादुसमुदः सखायः उपहृताः ) बहुत घन घाले, मीठेपन से आनन्दित होनेवाले अनेक मित्र बुलाये हैं। हे ( गृहाः ) घरों! तुम ( अधुन्याः अ-तृप्याः स्त ) झुकावाले और तृप्तावासे न हो, तथा ( अस्मद् मा विभीतन ) हमसे मत डरो ॥ ४ ॥

( इह गावः उपहृताः ) यहाँ गीबें बुलाई गई तथा ( अज-अजयः उप हृताः ) पकरियाँ और भेड़ें लाई गईं। ( अथो अजस्य कीलालः ) और अजका सत्वभाग भी ( नः गृहेषु उपहृतः ) हमारे घरमें लाया है ॥ ५ ॥

भावार्थ- इन घरोंमें हमें सुख मिले, वल प्राप्त हो, और सब आनन्द से रहें ॥ २ ॥

इन घरोंमें रह कर हमें सुख का अनुभव हो, हम यहाँ इष्टमित्रोंको बुलायें और सब आनन्दसे रहें ॥ ३ ॥

बहुत घनी, आनन्दघृतीवाले बहुतमित्र घरमें बुलाये हैं, उनको यहाँ जितना चाहे उतना खानपान प्राप्त हो, यहाँ सबकी विपुलता रहे और कोई भूखा प्यासा न रहे ॥ ४ ॥

हमारे घरमें गीबें, पकरियाँ और भेड़ रह, सब प्रकारका सत्ववाला अज रहे, किसी प्रकार न्यूनता न रहे ॥ ५ ॥

## वचानेवाला देव ।

[ ६३ ( ६५ ) ] ( ऋषिः—मारीचः कश्यपः । देवता—आश्वेदाः )

पुननाजित् सहमानमभिमुख्यैर्द्वामहे परमात् सधस्यात् ।

स नः पर्यदति दुर्गाणि विश्वा क्षामत् देवोति दुरितान्यभिः ॥ १ ॥

अथ—( पुननाजित सहमान अभि ! ) शत्रुसेनाका पराजय करनेवाले सामर्थ्यवान् तेजस्वी देवको हम ( उक्थैः परमात् सधस्यात् हवामहे ) स्तोत्रोंसे उत्कृष्ट स्थानसे युगलते हैं । ( सः नः विश्वा दुर्गाणि अति पर्यत् ) यह हमें सभ दुष्टोंसे पार ले जावें । और ( वह अभिः देवः ) तेजस्वी देव ( दुरितानि अति क्षामत् ) दुरवस्थाओंका नाश करे ॥ १ ॥

भावार्थ—शत्रुका पराभव करनेवाला और शत्रुके आक्रमणोंको सहने वाला तेजवी प्रभु है, उसका हम गुणगान करते हैं और उसको अपने ओष्ठ स्थानसे यहाँ हमारे पास युगलते हैं । वह निःसन्देह हमें कष्टोंसँ बचावेगा और कठिनताओंसे पार करेगा ॥ १ ॥

इस प्रभुकी स्तुति, प्रार्थना, उपासना इत्येक मनुष्य करे और उसके यगुण अपनमें बढाव । अर्थात् उपासक भी शत्रुसेना का पराभव करे, शत्रुके हमलेको सहे अर्थात् न भाग जावे, दूसरोंको कष्टोंसे बचावे और दुरवस्थामें उनका सहायक बने ।

## पापसे बचाव ।

[ ६४ ( ६६ ) ] ( ऋषिः—यमः । देवता—मन्त्रोक्ता, निर्ऋतिः )

इदं यत् कृष्णः शुक्लनिर्मिष्यतुषर्षीपतत् ।

आपो मा तस्मात् सर्वस्माद् दुरितात् प्रान्त्यर्हसः ॥ १ ॥

इदं यत् कृष्णः शुक्लनिर्मिष्यतुषर्षीपतत् तं मुनेन ।

अपिमा तस्मादनसौ गार्हपत्या प्र मुञ्चतु ॥ २ ॥

अथ—( इदं यः कृष्णः शुक्लनिः ) यह जो काला शुक्ली पक्षी (अभि मिष्यतत् अधीपतता ) भुक्ता हुआ गिरता है । ( तस्मात् सर्वस्मात् दुरितान् अहसः ) उस सभ गिरावटके पापसे ( आपः मा पातु ) जल मरी रक्षा करे ॥ १ ॥



अर्थ—हे अग्ने ! ( तपसा यत् तपः ) तपसे जो तप किया जाता है। उस ( तपः उप तप्यामहे ) तपको हम करते हैं। उससे हम ( श्रुतस्म प्रियाः ) ज्ञानके प्रिय ( आयुष्मन्तः सुमेधसः मूपास्म ) दीर्घायुषी और उत्तम बुद्धिमान् हो जायेंगे ॥ १ ॥

हे अग्ने ! ( तपः तप्यामहे ) हम तप करते हैं और ( तपः उपतप्यामहे ) तप विशास रीतिसे करते हैं। ( वयं भुतानि शृण्वन्तः ) हम ज्ञानोपदेशा भवण करते हुए ( आयुष्मन्तः सुमेधसः ) दीर्घायुषी और उत्तम बुद्धिमान् होंगे ॥ २ ॥

भाषार्थ—हम तप करके ज्ञान प्राप्त करेंगे और दीर्घायु, बुद्धिमान और ज्ञानको चाहनेवाले बनेंगे ॥ १—२ ॥

तप करनेसे यह सिद्धि प्राप्त होती है यह इस सूक्त का आशय है, अतः जो दीर्घायु और बुद्धिमान बनना चाहत हैं वे तप करें ।

## शूर वीर ।

[ ६१ ( ६४ ) ] ( ऋषिः—मारीचः कश्यपः । द्रवता—अग्निः )

अयमग्निः सत्यैर्षिर्बुद्धवृष्णो रूषीर्ष पृथीर्नमयस् पुरोहितः ।

नामां पृथिव्यां निहितो दधिपुतदधस्पद कृणुतां ये पृतन्यवः ॥ १ ॥

अर्थ—( अयं अग्निः ) यह अग्नि समान तेजस्वी पुरुष ( सत्यपतिः बुद्धवृष्णः ) सज्जनोंका पालक, महाबलवान्, ( पुरः-हितः ) सबका अग्रणी ( रूषी इव पत्नीन् अजयत् ) महारथी जैसा पैदल सैनिकोंको जीतता है, वैसा जीतता है। ( पृथिव्यां नामा निहितः ) भूमिपर केन्द्रमें रखा है, ( दधिपुतत् ) यह प्रकाशता है, यह ( ये पृतन्यवः अभस्पद कृणुतां ) जो सेना लकर चढ़ाई करते हैं उनको पाँवके नीचे करे ॥ १ ॥

भाषार्थ—यह तेजस्वी पुरुष सज्जनोंका पालन करे, बलवान् बने, जनोंका अग्रणी बने शत्रुसेनाका पराभव करे, महारथी होये, पृथ्वीके केन्द्र स्थानपर आरुढ़ होय, तेजसे प्रकाशित होये और सैन्य लकर चढ़ाई करनेवालोंको पाँवके तल दबा देये ॥ १ ॥

मनुष्य इसप्रकार अपने गुण कर्म प्रकाशित करे और अपने राष्ट्रके केन्द्रमें विराजमान रहे।

## बचानेवाला देव ।

[ ६३ ( १५ ) ] ( श्रुतिः—मारीचः कल्पयः । देवता—आतवेदाः )

पुतनाक्षितुः सहमानमग्निमुक्थैर्हवामहे परमात् सचस्यात् ।

स नः पर्यदति दुर्गाणि विश्वा क्षामत् देवोति दुरितान्यग्निः ॥ १ ॥

अर्थ—( पूतनाजित सहमान अग्नि ! ) शत्रुसेनाका पराजय करनेवाले सामर्प्यवान् तेजस्वी देवको हम ( उक्थैः परमात् सचस्यात् हवामहे ) स्तोत्रोंसे उत्कृष्ट स्थानसे बुलाते हैं । ( सः नः विश्वा दुर्गाणि अति पर्यत् ) यह हमें सब दुष्टोंसे पार ले जावें । और ( वह अग्नि देवः ) तेजस्वी देव ( दुरितानि अति क्षामत् ) दुरवस्थाओंका नाश करे ॥ १ ॥

भावार्थ—शत्रुका पराभव करनेवाला और शत्रुके आक्रमणोंको सहने वाला तेजवी प्रभु है, उसका हम गुणगाय करते हैं और उसको अपने भेष्ट स्थानसे यहाँ हमारे पास बुलाते हैं । वह निःसन्देह हमें कष्टोंस बचावेगा और कठिनताओंसे पार करेगा ॥ १ ॥

इस प्रभुकी स्तुति, प्रार्थना, उपासना हरएक मनुष्य करे और उसके ये गुण अपनेमें बढ़ावे । अर्थात् उपासक भी शत्रुसेना का पराभव करे, शत्रुके हमसेको सहे अर्थात् न माग आवे, दुष्टोंको कष्टोंसे बचावे और दुरवस्थामें उनका सहायक बने ।

## पापसे बचाव ।

[ ६४ ( १६ ) ] ( श्रुतिः—ययः । देवता—मन्त्रोक्ता, निर्रुतिः )

इदं यत् कृष्णः शकुनिरग्निपितृषीपतत् ।

आपो मा तस्मात् सर्वस्माद् दुरितात् प्रान्त्यहेसः ॥ १ ॥

इदं यत् कृष्णः शकुनिरिवामृषिर्भक्त ते सुखेन ।

अग्निर्मा तस्मादेनसो गार्हपत्यः प्र मुञ्चतु ॥ २ ॥

अर्थ—( इदं यः कृष्णः शकुनिः ) यह जो काला शकुनी पक्षी ( अग्नि पिपितृषीपतत् ) शुकता हुआ गिरता है । ( तस्मात् सर्वस्मात् दुरितात् अहसः ) उस सब गिरावटक पापसे ( आपः मा प्रान्तु ) जल मेरी रक्षा करे ॥ १ ॥

हे ( निर्मते ) दुर्गति ! ( इत् यः कृष्णः शकुनिः ) यह जो काला शकुनी पक्षी ( ते मुखेन अवाप्तृक्षत् ) तेरे पास मुखके साथ गिरता है ( गार्हपत्यः अग्नि ) गार्हपत्य अग्नि ( तस्मात् एनसः ) उस पापसे ( मा ममुञ्चतु ) मुझे छुड़ावे ॥ १ ॥

इन दोनों मन्त्रोंके प्रथम परम दुर्गोच हैं । दूसरे चरणोंमें बल और अधिक दागझूक करके पापसे बचाते हैं यह बात सूचित की है । पहिले चरणोंसे प्रतीत होता है कि शकुनि पक्षीका गिरना या उड़ना बहुत या बहुतका दुष्टक है । परन्तु ये मन्त्र खोबके योग्य हैं ।

## अपामार्ग औषधी ।

[ १५ ( ६७ ) ] ( अग्निः—शुक्रः । देवता—अपामार्ग बीरुत् )

प्रतीचीनफलो हि स्वमपामार्गं श्रोहिष । सर्वान् मन्त्रपथान् अग्निं वरीयो यावया इवः ॥ १ ॥  
यत् पुष्कृतं यन्मर्मलं यद् वा चेरिम पापया । स्वया तव विश्वसो मुखार्पामार्गार्पं मृज्महे ॥ २ ॥  
श्यावदता कुनखिना बन्धेन यत्सुहासिम । अपामार्गं त्वया वयं सर्वं तदपं मृज्महे ॥ ३ ॥

अर्थ—हे (अपामार्ग) अपामार्ग औषधी ! (स्व प्रतीचीनफलः हि श्रोहिष) तू उलटे मोड़े हुए फलवाली होकर उगती है । अतः (यत् सर्वान् मन्त्रपथान्) मुझसे सब शापोंको ( इतः वरीयः अघियावय ) यहांसे दूर हटा दे ॥ १ ॥

( यत् पुष्कृतं ) जो पाप, ( यत् शमल ) जो दोष या कलक मैंन किया होगा अथवा ( यत् वा पापया चेरिम ) जो पापीके साथ व्यवहार किया हो, हे ( विश्वतो मुख अपामार्ग ) सर्वतोमुख अपामार्ग ! ( स्वया तव अप मृज्महे ) तेरेसे उसको हम दूर करते हैं ॥ २ ॥

( यत् श्यावदता ) काले दांतवाले ( कुनखिना ) जो बुरे नाखूनवाले ( यन्धेन सह आसिम ) बिरुपके साथ हम बैठते हैं, हे अपामार्ग ! ( तव सर्वं वयं त्वया अपमृज्महे ) यह सब दोष हम तेरेसे हटावेंते हैं ॥ ३ ॥

आचार्य— अपामार्ग औषधिके फल उलटी दिशासे बढ़ते हैं, इसलिये इस वनस्पतिसे उलटे आचरणके सब दोष हटाये जाते हैं । बुराचार, पाप, दोष, पापीका सहवास, वन्तदोष, बुर नाखून तथा रक्तदोषीका सहवास, ये स्वयं आचरित अथवा सगतसे आये दोष अपामार्गक प्रयोगसे दूर होते हैं ॥ १—३ ॥

वैद्योंको इस सूक्तका विशेष विचार करना चाहिये । दन्तदोष अपामार्ग का दान्तन करनेसे दूर होता है, यह अनुभव है । पाठक भी इसका अनुभव लें, अपामार्ग औषधी दोषनिवारक है तथापि इसका विविध रोगोंपर कैसा उपयोग करना चाहिये, यह विषय अन्वेष्य है । महाराष्ट्रमें विशेषतः श्रमिषश्चामीक्रेते द्वार में अपामार्ग के काष्ठसे ही दन्त घावन करनेकी परिपाठी इस दिन तक चली आयी है । प्रायः इसका पालन इस समय किया ही करती हैं । तथापि इस मन्त्रमें दन्तरोगका दूर होना अपामार्ग प्रयोग से कहा है और यहाँकी परिपाठी भी वैसीही है । अतः इसकी अधिक खोज करना योग्य है ।

## ब्रह्म ।

[ ६६ ( ६८ ) ] ( श्रुतिः—ब्रह्मा । देवता—ब्रह्म )

यद्यन्तरिक्षं यदि वातु आसु यदि बृक्षेषु यदि बोल्लेपेषु ।

यदभ्रवन् पृथक् उद्यमानं तद् ब्राह्मणं पुनरुत्मानुपैतुं ॥ १ ॥

अर्थ—( यदि अन्तरिक्षे यदि वाते ) यदि अन्तरिक्षमें और यदि वायुमें ( यदि वृक्षेषु यदि वा उल्लेपेषु ) यदि वृक्षोंमें अथवा यदि घासमें आप देखेंगे तो उसमें जा (आस) सदा रहा है ( यत् पश्चात् अस्तवन् ) जो प्राणीयोंमें अस्तवता है, ( तद् उद्यमानं ब्राह्मण ) वह प्रकट होनेवाला ब्रह्म ( पुनः अस्मान् उपैति ) पुनः हमें प्राप्त होता है ॥ १ ॥

भाषार्थ—जो ब्रह्म इस अवकाशमें, वायुमें, वृक्षोंमें, घासमें विराजता है, जो पशुओंमें अर्थात् प्राणियोंमें प्रकाशित होता है अर्थात् जो स्थिर चर में विद्यमान है, वह सर्वत्र प्रकाशित होनेवाला ब्रह्म हमें प्राप्त होता है ।

ब्रह्म नाम महान् आत्मतत्त्वः सर्वत्र स्थिर चरमें व्यापक है, वह सर्वत्र प्रकाशित होता है, जिसकी शक्तिसे सपूर्ण अणुको यह सुन्दर रूप मिला है, वह ब्रह्म हम सब मनुष्योंको प्राप्त हो सकता है । अतः उसकी प्राप्तिके लिये मनुष्य प्रयत्न करे ।

## आत्मा ।

[ ६७ ( ६९ ) ] ( श्रुतिः—ब्रह्मा । देवता—आत्मा )

पुनर्मत्विन्द्रियं पुनरात्मा प्रविणु ब्राह्मण च ।

पुनर्प्रयो विष्ण्या यथास्थाम कल्पयन्तामिहैव ॥ १ ॥

अर्थ—( मा इन्द्रिय पुनः एतु ) मुझे इन्द्रियशक्ति पुनः प्राप्त हो ।  
( आत्मा द्रविण ब्राह्मण च पुनः ) मुझे आत्मा चेतना और ब्रह्म पुनः  
प्राप्त हो । ( विष्ण्याः अग्नयः यथा—स्थाम ) बुद्धि आवि स्थानकी अग्नियां  
यथायोग्य स्थानमें ( इह एव पुनः कल्पयन्तां ) यहाँही पुनः समर्थ हों ॥१॥

भाषार्थ—सब इन्द्रियकी शक्तियां, ज्ञान, चेतना, आत्मा, बुद्धि, मन  
आदिकी सब चैतन्यशक्तियां मुझे प्राप्त हों और यहाँ उक्त उक्त हों ॥१॥

इन्द्रियां ज्ञानेन्द्रियां पाँच और कर्मेन्द्रियां पाँच मिलकर दस हैं, आत्मा नाम बीवका  
है, द्रविणका अर्थ यहाँ मनका उत्साह अथवा चैतन्य है, ब्राह्मणका अर्थ ब्रह्म-आत्मा-  
की ज्ञानशक्ति है । विष्ण्या-विष्ण्या का अर्थ बुद्धि अथवा अन्तःकरणकी शक्तियां हैं ।  
ये अग्निस्वरूप चेतन हैं । ये सब आत्माकी शक्तियां यहाँ स्थिर रहें, उन्नत हों और  
प्रकाशरूप होकर मुझ सहायक हों ।

## सरस्वती ।

[ ६८ ( ७०, ७१ ) ] ( ऋषिः—घन्तातिः । देवता-सरस्वती )  
सरस्वती व्रतेषु ते दिव्येषु देवि घामसु । जुपस्व हव्यमाहुत प्रजां देवि ररास्व नः ॥१॥  
इदं ते हव्यं पृतवत् सरस्वतीर्देवं पित्रुणां हविशस्यं यत् ।

इमानि च उदिता श्रुतमानि तेभिर्भयं मधुमन्तः स्याम ॥ २ ॥  
शिवा नः श्रुतमा भव सुमुष्टीका सरस्वति । मा ते युयौम सुदृष्टः ॥ ३ ॥

अर्थ—हे सरस्वति देवि ! ( ते दिव्येषु घामसु व्रतेषु ) तेरे दिव्य घामोंके  
व्रतोंमें ( आहुत हव्य जुपस्व ) हवन किया हुआ हवन सेवन कर और हे  
देवि ! ( मा प्रजां ररास्व ) हमें प्रजा दे ॥ १ ॥

हे सरस्वति ! ( ते इदं पृतवत् हव्य ) तेरा यह घीधाखा हवन है ।  
( इदं पित्रुणां हविः यत् आस्य=आहव्य ) यह पितरोंका हवि है जो न्वान  
योग्य है । ( ते इमानि उदिता श्रुतमानि ) तेरे ये प्रकाशित कल्पानकारी  
सामर्थ्य हैं, ( तेभिः यय मधुमन्तः स्याम ) उनसे हम मीठे बनेंगे ॥ २ ॥

हे सरस्वति ! ( नः सुमुष्टीका शिवा शतमा भव ) हमारे छिप स्तुति  
करने योग्य, शुभ और सुग्नकारी हो, ( ते सदाशः मा युयौम ) तेरी दृष्टिसे  
हम कदापि धिपुरुष न हूँ ॥३॥ [ सरस्वतीके उपासकोंका सदा कल्याण होता है । ]

## सुख ।

[ ६९ ( ७२ ) ] ( ऋषिः—शन्तातिः । देवता—सुख )

य नो पातौ वातु यं नस्तपतु सूर्यः ।

अहानि य मयन्तु नः य रात्री प्रति धीयतां यमुषा नो व्युच्छित ॥ १ ॥

अर्थ— ( नः वातः वा वातु ) हमारे लिये वायु सुखकर रीतिसे पड़े । ( नः सूर्यः वा तपतु ) हमारे लिये सूर्य सुखकारी होकर तपे । ( नः अहानि वा मयन्तु ) हमारे दिन सुखदायक हों । ( रात्री वा प्रतिधीयतां ) रात्री सुखकारी हो । ( उषा नः वा व्युच्छितु ) उषाकाल हमें सुख देवे ॥ १ ॥

वायु, सूर्य, दिन, रात और उषा य तथा अन्य सब पदार्थ हमें सुखदायक हों । हमारी आन्तरिक अवस्था ऐसी रहे कि हमें बाह्य भगद् सदा सुखकारी होवे और कभी दुःखदायी न हो ।

## शत्रुघ्नमन ।

[ ७० ( ७३ ) ] ( ऋषिः—अथर्वा । देवता—इन्द्र, मन्त्रोक्ता )

यत् किं चासौ मनसा यन्व चापा यमैर्बुहोति इविषा यनुषा ।

सन्मृत्पुना निर्मृतिः सविदाना पुरा मृत्पादाहुतिं हन्त्वस्य ॥ १ ॥

यातुषाना निर्मृतिराद् रक्षस्ते अस्य धन्वन्तरेण मृत्यम् ।

इन्द्रपिता ऋषा आन्यमस्य मयन्तु मा तद् स पादि यन्सौ बुहोति ॥ २ ॥

अर्थ— ( असौ यत् किं च मनसा ) यह शत्रु जो कुछ भी मनसे और ( यत् च वाचा ) जो कुछ वाणीसे करता है तथा जो कुछ ( यजुषा इविषा यज्ञैः बुहोति ) यजु हवि और यज्ञसे हवन करता है । ( अस्य यत् सविदाना निर्मृतिः ) इसका यह उद्देश्य जाननेवाली महारक्षति ( सत्यात् पुरा मृत्पुना आहुतिं हन्तु ) यज्ञकी पूर्णता होनेक पूर्वही मृत्युसे उसकी आहुति नष्ट करे ॥ १ ॥

( यातुषानाः रक्षः निर्मृतिः ) यातना देनयाले, राक्षस और विनाश प्राप्ति ये सब ( आद् उ अस्य सत्य अनृतेन प्रातु ) मिथ्यपर्यक इस दुष्ट शत्रुके मृत्युका भी अनृतसे प्राप्त करें । ( इन्द्र-पिताः देवाः ) इन्द्रद्वारा

अजिराधिराजौ श्येनौ संपातिनाविष ।

आज्यं पृतन्यसो ह्येतां यो नः कर्माभ्यामपि ॥ ३ ॥

अपाञ्चौ त उमौ बाहू अपि नद्याभ्यामपि । अग्नेर्वेषस्य मन्युना तेन तेवचिषं हविः ॥ ४ ॥

अपि नद्यामि ते बाहू अपि नद्याभ्यामपि । अग्नेर्घोरस्य मन्युना तेन तेवचिषं हविः ॥ ५ ॥

प्रेरित देव ( अस्य आज्य मध्मन्तु ) इस दुष्ट शत्रुके घृतको मर्पे । और ( यत् असौ सुहोति तत् मा सपादि ) जिस उद्देह्यसे यह हवन करता है वह सिद्ध न हो ॥ ३ ॥

( अजिर-अधिराजौ संपातिनौ श्येनौ इव ) शीघ्रगामी पक्षिराज बाज जैसे एक दूसरेपर आघात करते हैं, उस प्रकार (यः कः च मः अभि अघा यति ) जो कोई हमें पापसे कष्ट देता है उस ( पृतन्यतः आज्य इतां ) सेनावाले शत्रुका घी मष्ट कर ॥ ३ ॥

( ते उमौ बाहू अपाञ्चौ ) तुझ शत्रुके दोनों बाहू में पीछे मोड़कर पान्धता हू तथा (आस्य अपि नद्यामि) तेरा मुह मैं बाँध देता हू । ( अग्नेः वेषस्य तेन मन्युना ) अग्निदेवके उस क्रोधसे ( ते हविः अवचिष ) तेरे हविका मैं नाश करता हू ॥ ४ ॥

( ते बाहू अपि नद्यामि ) तुझ शत्रुके दोनों बाहुओंको बाँधता हू (आस्य अपि नद्यामि) मुझको भी बाँधता हू । ( घोरस्य अग्नेः तन मन्युना ) मर्यादक अग्निके उस क्रोधसे ( ते हविः अवचिष ) तेरे हविका मैं नाश करता हू ॥ ५ ॥

जो शत्रु अपने ( पृतन्यतः ) सेन्यसे हमें सताता है, और ( नः अघा यति ) हमें पापी युक्तियोंसे विविध कष्ट देता है, उस दुष्ट शत्रुके अन्य सब पन्नादि प्रयत्नभी सफल न हों । ऐसे दुष्ट शत्रु जो भी सत्य कर्म करते हैं उसका उद्देह्य इतनाही होता है कि उससे उनकी शक्ति बड़े और उस शक्तिका उपयोग हमें बढ़ाने की युक्तियोंमें वे करें । दुष्ट सोम जो कुछ सत्कर्म करते हैं, वह सत्यके प्रेमसे नहीं करते, परंतु अपनी शक्ति बढ़ानेके लिये करते हैं और वे मनमें यही इच्छा धारण करते हैं कि, इस शक्तिसे हम निर्बलोंको खूँमे और अपने मोग बढ़ावेंगे । अतः इस शक्तमें ऐसी प्रार्थना की है कि ऐसे दुष्टोंके सत्कर्मभी सफल नहीं और उनकी शक्ति न बड़े; दुष्टोंकी शक्ति घटनेसे अगत् में ध्वान्ति रह सकती है ।



## प्रभुका ध्यान ।

[ ७१ ( ७४ ) ]

[ ऋषिः—अथर्षा । देवता—अग्निः ]

परि स्वाग्ने पुरं वय विप्रं सहस्य धीमहि ।

धृषद्वर्णं दिवेदिवे इन्तारं मरुगुरावतः ॥ १ ॥

अर्थ—हे ( सहस्य अग्ने ) बलवान तजस्वी देव ! ( वय पुर विप्र धृष  
द्वर्ण ) हम सय परिपूर्ण, ज्ञानी, शत्रुका चर्पण करनेवाले ( मरुगुरावतः  
इन्तार ) विनाशकको मारनेवाले ( स्वा दिवे दिवे परि धीमहि ) तुम  
ईश्वरकी प्रतिदिन सय ओरसे स्तुति गाते हैं ॥ १ ॥

भावार्थ—परमेश्वर बलवान, अग्नि समान तेजस्वी, सर्वत्र परिपूर्ण,  
ज्ञानी शत्रुका पराजय करनेवाला, घातपात करने वालेका विनाश करने  
वाला है, अतः उसकी सय प्रकारसे स्तुति करना याग्य है ॥ १ ॥

मनुष्य ईश्वरके गुणगान गाव, उन गुणोंको अपन अदर धारण करे और ईश्वरके  
गुणोंको अपनमें बढाव । मनुष्य इन गुणोंका धारण करे यह बचानके लिये ही ईश्वरके  
गुणोंका वर्णन स्थान स्थानपर किया होता है । यहाँ अग्नि नामसे ईश्वरका वर्णन है ।  
अग्निमी उसी प्रभुकी आप्रयशक्ति लकर अग्नि गुणसे युक्त बना है । इसी प्रकार अन्ना  
न्य नाम उसी एक प्रभुके लिये प्रयुक्त होते हैं ।

## खान पान ।

[ ७२ ( ७५, ७६ ) ]

[ ऋषिः—अथर्षा । देवता—इन्द्रः ]

उत् तिष्ठताव पश्येन्द्रस्य मागमूर्तिर्यम् ।

यदि भ्रात ब्रुहोतनं यद्यभात ममर्चन ॥ १ ॥

भ्रात इविरो प्यिन्द्र प्र माहि ण्गाम स्रो अर्ध्वना वि मर्च्यम् ।

परि स्वासते निधिभिः सखायः कृष्णा न प्राञ्चपति चरन्तम् ॥ २ ॥



आत मन्य ऊर्ध्वनि आतमग्नौ सुशृत मन्ये उदृत नवीयः ।

माष्यन्दिनस्य सवनस्य दध्नः पिबेन्द्र वञ्चिन् पुरुकृपाणः ॥ ३ ॥

अर्थ—( उत तिष्ठत ) उठो और ( इन्द्रस्य ऋत्विग्य भाग अवपश्यत ) प्रभुके ऋतुके अनुकूल भागको देखो । ( यदि आत ) यदि परिपक्व हुआ हो तो ( सुहोतन ) स्वीकार करो और ( यदि अमात ममत्तन ) यदि परिपक्व हुआ हो तो उसके परिपाक होनेतक आनन्द करो ॥ १ ॥

हे ( इन्द्र ) प्रभो ! ( आत इविः ओ सुप्रयाहि ) इवि सिद्ध हुआ है, उसका प्रति तू उत्तम प्रकार प्राप्त हो ( सूरः अर्ध्वनः मध्य वि जगाम ) सूर्य अपने मार्गक मध्यमें गया है । ( सन्नायः निधिभिः स्वा परि आसत ) समान विचारवाले लोग अपने समग्रहोंके साथ तेरे चारों ओर बैठते हैं । ( कुलपाः वाजपतिं चरन्त न ) जैसे कुलपालक पुत्र सद्यपति पिताके पिघरते हुए उसके पास आते हैं ॥ २ ॥

( ऊर्ध्वनि आत मन्ये ) गायके स्तनमें परिपक्व हुआ है ऐसा मैं मानता हूँ । तत्पश्चात् ( अग्नौ आत ) अग्निपर परिपक्व हुआ है अतः ( तत् ऋत नवीयः सुशृत मन्ये ) यह सब नवीन दुग्ध उत्तम प्रकार परिपक्व हुआ है ऐसा मैं मानता हूँ । हे ( पुरुकृत् वञ्चिन् इन्द्र ) पटुत कर्म करनेवाले वञ्चपारी प्रभो ! ( जुपाणः ) उसका सेवन करता हुआ ( माष्यन्दिनस्य सवनस्य दध्नः पिय ) मष्यदिनक समय सवनके दहीका पान कर ॥ ३ ॥

भाषार्थ—उठो और ईश्वरने दिये ऋतुके अनुकूल अन्न भागको देखो । जा परिपक्व हुआ हो उसको लो और यदि कुछ अन्नभाग परिपक्व न हुआ हो, तो उसके परिपाक होने तक आनन्दसे रहो ॥ १ ॥

८ प्रभो ! यह अन्नभाग परिपक्व हुआ है, यह सिद्ध है, यहाँ प्राप्त हो, सूर्य मध्याह्न में आगया है । सद्य मित्र अपने अपन समग्रहोंको लिये हुए प्राप्त हुए हैं । जैसे पुत्र पिताके पास इकट्ठा हाते हैं वैसे हम सद्य तर पास इकट्ठा हुए हैं ॥ २ ॥

म मानता हूँ कि एक ता गायक स्तनोंमें दूध परिपक्व होता है पश्चात् अग्निपर परिपक्व होता है । नय अन्न इस प्रकार सिद्ध होता है । हे प्रभो मष्यदिनक समय इसका सेवन करो और दही पीओ ॥ ३ ॥

## भोजनका समय ।

सूर्य मध्याह्नमें जानेपर भोजन करना चाहिये, यह बात इस सूक्तसे प्रतीत होती है, देखिये—

सूरः अश्विनः मध्य विजगाम । आत इषिः सुप्रयाहि । ( म० २ )

“सूर्य मार्गके मध्यमें पहुँच चुका है अतः परिपक्व हुए अन्नके प्रति प्राप्त हो ।” यह वाक्य भोजन का समय दोपहरके बारह बजे का या उसके किञ्चित् पश्चात् का है, इस बातको स्पष्ट करता है । इषि नाम अन्नका है । यह अन्न परिपक्व हुआ हो । अन्न एकता स्वयं ( ऊबनि आत ) मायके स्तनोंमें परिपक्व होता है, जिसको हम दूध कहते हैं, यह दूध निचोड़ जानेके पश्चात् ( अघौ आत ) अधिपर पकाया जाता है । एक स्वभावतः परिपक्वता हाती है पश्चात् अधिपर परिपक्वता होती है, पश्चात् देवताओंको समर्पण करके भोजन करना होता है । दूध पकानेके पश्चात् उसका दही बनाया जाता है । यह दही ( मध्वन्दिनस्म दध्मः विष ) मध्याह्नके भोजनके समय पीना योग्य है । रात्रीके समय या सुबेरे दही पीना उचित नहीं, क्योंकि कि दही क्षीतवीर्य होता है इस कारण वह दोपहरक कृष्ण समयमें ही पीना योग्य है ।

जैसा गायके स्तनमें दूध परिपक्व होता है, उसी प्रकार ‘गो’ नाम भूमिक अदर धान्य आदिकी उत्पत्ति होती है । इसको भी परिपक्व दृष्टामें लेना चाहिये, पश्चात् अधिपर पकाकर या घूनकर उसको सेवन करना चाहिये । यह अन्न दूध हो या अन्न घान्वादि हो वह ( अत नवीयः ) सखा नया लेना योग्य है । दूध भी ताजा लेना चाहिये और धान्य भी बहुत पुराना लेना योग्य नहीं । अन्न भी पकते ही लेना चाहिये अर्थात् दोचार दिनोंके बाद पदार्थ लेने योग्य नहीं है । मध्वन्दितामें कहा है कि—

यातघाम गतरस प्रतिर्युषित च यत् ।

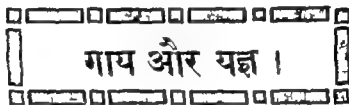
उच्छिष्टमपि आमेध्य भोजन तामसप्रियम् ॥ अ० गी० १७।१०

“जो अन्न तैयार होकर तीन घण्टे व्यतीत हुए हैं, जो नीरस है, जो दुर्गन्धयुक्त है, जो उच्छिष्ट है और अपवित्र है वह तामस लोगोंको प्रिय होता है ।” अर्थात् अन्न पकाकर तीन घण्टोंके पश्चात् उसका सेवन करना योग्य नहीं; तबतक पकानेके तीन घण्टक उसको ( अत नवीयः ) नया या ताजा कहते हैं, इसी अवस्थामें उसका सेवन करना चाहिये ।

परमेश्वर ( अग्निव्य साध ) अन्नके योग्य अन्न आगको दता है । विष अन्नमें जो

सेवन करने योग्य होता है वह अन्न, फूल, फल, रस आदि देता है । उसके पक्ष अन्नस्थानमें प्राप्त करना चाहिये और पश्चात् उसका सेवन करना चाहिये । यदि कोई फल पका न हो तो उसकी प्रतीक्षा आनन्दके साथ करना चाहिये ।

सब परिवारके तथा (सखायः) इष्टमित्र अपनी अपनी बालीमें (निधिमिः) अपने अन्न संग्रहका ले और साथ साथ पक्षितमें बैठे, सब अपने अन्नभागसे कुछ भाग देवताओंके उद्देश्यसे समर्पण करें । सब इष्टमित्र ऐसा मानें की वह ईश्वर अपने बीचमें है अथवा हम उसके चारों ओर हैं और आ अन्न भाग मिले वह आनन्दके साथ सेवन करें ।



[ ७३ ( ७७ ) ]

( आभिः—अर्घ्या । देवता अभिनौ )

समिद्धो अग्निर्वृषणा रथी दिवस्तप्तो धूमो दुहते वासिषे मधु ।

वय हि वां पुरुदमांसो अभिना हवामहे सधमादेषु कारवः ॥ १ ॥

अर्थ— हे ( वृषणौ अभिनौ ) दोनों यलवान अश्वित्वौ ! ( दिवः रथी अग्निः समिद्धः ) प्रकाशका रथ जैसा अग्नि प्रदीप्त हुआ है । यह ( धर्मः तप्तः ) तपी हुई गर्माही है । यह ( वां इषे मधु दुहन्त ) आप दोनों क लिये मधुर रस का दहन करता है । ( वय पुरु—दमांसः कारवः सध—मादेषु वां हवामहे ) हम सब यज्ञत घरवाले और कार्य करनेवाले पुरुष साथ साथ मिलकर आनन्द करनेके समय तुम दोनोंको गुलात है ॥ १ ॥

भाषा—हवनकी अग्नि प्रदीप्त हो चुकी है गौका दहन किया जाता है और हम सब आस्थिज दयताओंको गुलाते हैं ॥ १ ॥

समिद्धो अग्निरग्निना तप्तो वां घर्मे आ गंतम् ।  
 दुष्पन्ते नून वृषणेह घेनवो दन्ना मदन्ति वेचसः ॥ २ ॥  
 स्वाहाकृतः शुचिर्देवेषु यज्ञो यो अग्निर्नोभमसो देवपानः ।  
 तमु बिभ्वे अमृतासो गुषाणा गन्धर्वस्य प्रत्यास्त्रा रिहन्ति ॥ ३ ॥  
 यदुक्षियास्वाहुत धृत पयोय स वामग्निना माग आ गंतम् ।  
 माग्नी घर्तारा विद्वस्य सत्पती तप्त घर्मे पिबत रोचने दिवः ॥ ४ ॥

अर्थ- हे (वृषणो अग्निनो) बलवान् अग्निदेवो ! (अग्निः समिद्धः) अग्नि प्रदीप्त हुआ है, ( वां घर्मे तप्तः ) आपके लिये हि यह दूध तप रहा है । इसलिये ( आगत ) आओ । ( नून इह घेनवः दुष्पन्ते ) निम्नयसे यहाँ गौधें दूही जाती हैं । हे ( दन्ना ) दक्षिणीय देवो ! ( वेचसः मदन्ति ) ज्ञानी आनन्द करते हैं ॥ २ ॥

( यः अग्निनो देवपानः भमसः यज्ञः ) जो अग्निदेवोंका देव जिससे रसपान करते हैं ऐसा भमसरूपी यज्ञ है वह ( देवेषु स्वाहाकृतः शुचिः ) देवोंके अवर स्वाहा किया हुआ अतपव पवित्र है । बिभ्वे अमृतासः त उ गुषाणाः ) सद्य द्रु उसीका सेवन करते हैं और ( त उ गन्धर्वस्य आस्त्रा प्रत्यारिहन्ति ) उसीकी गन्धर्वके मुखसे पूजाभी करते हैं ॥ ३ ॥

हे ( अग्निनो ) अग्निदेवो ! ( यत् उक्षियासु आहुत घृत पयः ) जो गौओंमें राखा हुआ घृतमिश्रित दूध है, ( अय सः वां मागः ) यह वह आपका भाग है, तुम दोनों ( आगत ) आओ । हे ( माग्नी ) मधुरतापुक्त ( विद्वस्य घर्तारा ) यज्ञके चारक, ( सत्पती ) उत्तम पालको । ( दिवः रोचने तप्त घर्मे पिबत ) शुष्कोके प्रकाशमें तपाहुआ यह दूध रूपी तज पीओ ॥ ४ ॥

भाषार्थ- हे देवा ! अग्नि प्रदीप्त हुई है, दूध तप रहा है, इसलिये यहाँ आओ यह गौधें दूही जाती हैं जिससे ज्ञानी आनन्दित होते हैं ॥ २ ॥

यह पद्य पसा है कि जिसमें देवतालाग रसपान करते हैं, और वे इस पवित्र यज्ञका सेवन करते हैं और सत्कार करते हैं ॥ ३ ॥

गौक दूधमें द्रव्योंका भाग है, इसलिये इस यज्ञमें पधारो । और इस तपे हुए मधुर गारसको पीओ ॥ ४ ॥

तुमो वा घर्मो नक्षतु स्वहोता प्र वामञ्चर्युर्ध्वरतु पर्यस्वान् ।  
 मधोर्दुग्धस्याग्निना तनाया वीतं पातं पर्यस उस्त्रियायाः ॥ ५ ॥  
 उप द्रव पर्यसा गोधुगायमा घर्मे सिञ्च पर्य उस्त्रियायाः ।  
 वि नाकमरुयत् सविता वरेण्योनुप्रयार्णमुपसो वि रीजति ॥ ६ ॥  
 उप ह्रये सुदुर्षा धेनुमेवां सुहस्तो गोधुगुत दोहदेनाम् ।  
 भ्रेष्टं सुवं सविता साविष्योभीक्ष्णो घर्मेस्तदु पु प्र वीचत् ॥ ७ ॥

अर्थ- इ ( अश्विनौ ) अश्वित्वेभौ । ( तप्तः घर्मः वां नक्षतु ) तपा हुआ तेज रूपी यह दूध तुम दोनोंको प्राप्त होवे । ( स्वहोता पर्यस्वान् अश्वर्युः वां प्रचरतु ) इवनकर्ता दूध लिये हुए अश्वर्युं तुम दोनोंकी सेवा करे । ( तनायाः उस्त्रियायाः मधो दुग्धस्य पर्यसः ) छलपुष्ट गौके बुढ़े हुए मधुर दूधको ( वीत पात ) प्राप्त करो और पीओ ॥ ५ ॥

हे ( गोधुक् ) गायका दोहन करनेवाले ! ( पर्यसा ओप उपद्रव ) दूध के साथ अतिशीघ्र यहाँ आ, ( उस्त्रियायाः पर्यः घर्मे आसिञ्च ) गौका दूध कढ़ाईमें रख, और तपा । ( वरेण्यः सविता नाकं वि अरुयत् ) भ्रेष्ट सविता सुखपूर्ण स्वर्गधाम को प्रकाशित करता है और वह ( उपसः अनु प्रयाण विराजति ) उपः कालके गमनके पश्चात् विराजता है ॥ ६ ॥

( सुहस्तः एतां सुदुर्षा धेनु उपह्रये ) उत्तम हाथवाला मैं इस सुलस दोहनेयोग्य धेनुको धुलाता हूँ । ( उत गोधुक् एनां दोहत् ) और गायका दोहन करनेवाला इसका दोहन करे । ( सविता भ्रेष्ट सव नः साविष्य ) सविता यह भ्रेष्ट अल हमें दय । ( अभीष्टः घर्मः तत् उ सु प्रवीचत् ) प्रक्षीप्त तेज रूपी दूध यही पतः दवे ॥ ७ ॥

भावार्थ-हे देवो ! यह तपा हुआ रस तुम्हें प्राप्त हो । गौक इस मधुर गौरसका पान करो ॥ ५ ॥

हे गौका दाहन करनेवाले ! दूध लेकर यज्ञमें आओ । गायका दूध तपाओ । दहन करो भ्रेष्ट सवितान यह सुखमय स्वर्ग तुम्हारे लिये खुला किया है ॥ ६ ॥

मैं दूध दोहनमें कुशल हूँ, और गायका दोहनेके लिये धुलाता हूँ । दाह देवाला इसका दाहन कर । सवितान इस भ्रेष्ट रसका दिया है ॥ ७ ॥

द्विकृपवती वसुपत्नी वसूनां वत्समिच्छन्ती मनसा न्यागन् ।  
 दुहामश्विन्यां पयो अघ्नयेय सा वर्षतां महुसे सौमगाय ॥ ८ ॥  
 जुष्टो दम्नना अतिथिदुरोण इमं नो यशस्यं साहि विद्वान् ।  
 विश्वा अग्रे अभियुजो विहृत्य शश्रूयतामा मेरा भोजनानि ॥ ९ ॥  
 अग्रे अर्घे महुसे सौमगाय तव सुम्नान्युत्तमानि सन्तु ।  
 सं जास्पत्य सुयममा कृणुष्व शश्रूयतामभि तिष्ठता मर्हासि ॥ १० ॥

अर्थ— ( द्विकृपवती वसुपत्नी ) हीं हीं करनेवाली ऐश्वर्योका  
 पालन करनेवाली ( मनसा वत्स इच्छन्ती नि आगात ) मनसे पछड़ेकी  
 कामना करती हुई समीप आगई है । ( इय अघ्नया अश्विन्यां पयः दुहां )  
 यह गौ दोनों अश्विदेवोंके लिये दूध देवे । और ( सा महुते सौमगाय  
 वर्षतां ) वह यह सौमगाय के लिये पड़े ॥ ८ ॥

( दम्नना अतिथिः दुरोणे जुष्टः ) दमन किये हुए मनवाला अतिथि  
 घरमें सेवित होकर यह ( विद्वान् ) ज्ञामी ( नः इमं यज्ञ उपपाहि ) हमारे  
 इस यज्ञमें आवे । हे अग्रे ! ( विश्वा अभियुजः विहृत्य ) सब शत्रुओंका  
 वध करके ( शश्रूयतां भोजनानि आभर ) शत्रुता करनेवालोंके अन्न  
 हमारे पास ला ॥ ९ ॥

हे ( शर्घे अग्रे ) यलधान अग्रे । ( तव उत्तमानि सुम्नानि महुते सौमगाय  
 सन्तु ) तेर उत्तम तेज पड़े सौमगाय पहानेवाले हों । ( जास्पत्य सुयम स  
 आकृणुष्व ) श्रीगुरुप सयस उत्तम सयमपूर्वक होवे । ( शश्रूयतां मर्हासि  
 अभितिष्ठा ) शत्रुता करनेवालोंके बलोंका मुकाबला कर ॥ १० ॥

भाषार्थ— हींहीं करता हुई, मनसे पछड़ेकी इच्छा करनेवाली गौ यह  
 आगई है । यह अहनमीय गौ देवोंके लिये दूध देवे और पड़े सौमगाय  
 की वृद्धि करे ॥ ८ ॥

यह इन्द्रियसयमी अतिथि विद्वान् हमारे यज्ञमें आवे । हमारे सब शत्रु  
 ओंका नाश करके शत्रुओंके भोग हमारे पास ले आवे ॥ ९ ॥

ह देवे । जो तेर उत्तम तेज है यह हमारा भाग्य बढ़ावे । श्रीगुरुप  
 सयसमें उत्तम नियम रहे, अनियमसे व्यवहार न हो । शत्रुता करनेवालों  
 का पराभव करो ॥ १० ॥

सुयवसाद् भगवती हि भूया अर्धा वय भगवन्तः स्याम ।

अदि तृषमघ्ने विश्वदानीं पिबे शुद्धमुक्कमाचरेन्ती ॥ ११ ॥

॥ इति पष्ठोऽनुवाकः ॥

अर्थ— हे (अघ्ने) न मारने योग्य गौ ! तू (सु-यवस-अद् भगवती हि भूयाः) उत्तम घास खानेवाली भाग्यशालिनी हो ! (अर्धा वय भगवन्तः स्याम) और हम भाग्यवान् होंगे । (विश्वदानीं तृण अदि) सदा तृण भक्षण कर और (माचरेन्ती शुद्ध उक्क पिबे) भ्रमण करती हुई शुद्ध जल पी ॥ ११ ॥

माधार्थ— हे गौ ! तू उत्तम घास खा, और भाग्यवान् बन । तुझसे हम भाग्यशाली बनेंगे । माघ घास खावे और इधर उधर भ्रमण करती हुई शुद्ध पानी पीवे ॥ ११ ॥

गोरक्षा ।

गौकी रक्षा कैसी की जावे इस विषयमें इस सूक्तके आदेश सरण रखने योग्य हैं । देखिये—

१ सुयवस-अद्=उत्तम घास खानेवाली, अर्थात् पुरा घास अबका पुर जो न खानेवाली गौ हो । माघके वृषमें लाये हुए पदार्थका सत्व जाता है, इसलिये यदि माघ उत्तम घास खावेगी तो वृष भी नीराग और पुष्टिकारक होगा । इसलिये वह आदश स्मरण रखने योग्य है । साधारण बनाही लोग प्रायः काल गायको भ्रमणके लिये ले जाते हैं, और उस समय गौको मनुष्य का शौच-विष्ठा-भी खिलाते हैं । पाठक श्री विचार कर सकते हैं कि ऐसे पदार्थ खिलाकर उत्पन्न हुआ वृष कैसा होगा । विष्ठामें आ मुर पदार्थ होंगे, जो कृमि होंगे, उन सबका परिणाम उस वृषपर होगा, और वैसा वृष रोगकारक होगा । अतः वह गदका सदृश गापालना करनेवाला लोग भवन्तः प्यातमें धारण करें । ( म० ११ )

२ शुद्ध उक्क पिबन्ती=शुद्ध जल पीनेवाली गौ हो । अशुद्ध, मलीन, यदा दुर्गन्धयुक्त जल गौ न पीवे । इसका कारण ऊपर दिया हुआ समझना योग्य है । ( म० ११ )

३ आचरेन्ती=भ्रमण करनेवाली । गौ इधर उधर भ्रमण करती प्रकार भ्रमण करे । गौ केवल घरमें बंधी नहीं रहनी चाहिये । वह सर्वप्रकाशमें भ्रमण करनेवाली हो । सर्व प्रकाशमें घूमनेवाली गौका वृष भी पीन भाग्य होता है । ( म० ११ )

४ विश्वदार्मी तृण अग्नि=गौ सदा तृण-वास—ही खावे । दूसरे दूसरे पदार्थ न खावे । जोके खेतमें अमण करे और जो खावे । इस प्रकारकी गौका दूध उत्तम होता है । ( मं० ११ )

५ अगवतीः सूर्या=बलवती, प्रेममयी, शुभगुणयुक्त गौ हो । गायपर प्रेम करने से वह भी घरवालों पर प्रेम करती है । इस प्रकार प्रेम करनेवाली गौका दूध पीनेसे पीनेवालेका कल्याण होता है । ( मं० ११ )

ये शब्द गायकी पालना कैसे करनी चाहिये, इस बातकी सूचना देते हैं । पाठक इसका विचार करे और अपनी गौकी पालना इस प्रकार करे ।

६ सुदुधा=जो बिना आवास दोही जाती है । दोहन करनेके समय जो कष्ट नहीं देती । ( मं० ७ )

७ सुहस्तः गोधुक् एनां दोहत्=उत्तम हाथवाला मनुष्य ही गौका दूध न करे । अर्थात् दोहन करनेवाला मनुष्य अपन हाथ पहिले स्वच्छ करे, निर्मल करे और गौको दूरे । अपने हाथको फोडा कुन्सी नहीं है, ऐसा देखकर जैसे उत्तम हाथसे दोहन करे । इस आदेशका अस्मत् महत्त्व है । जो दोष गवाक्षियोंके हाथपर होगा, वह दोष दूधमें उतरेगा और वह सीधा पीनेवालाके पेटमें जावेगा । अतः हाथ स्वच्छ रखकर गायका दोहन करना चाहिये । ( मं० ७ )

८ अज्या=गाय अजम्ब है, अतः उसको ताबन भी नहीं करना चाहिये । अपनी माताके समान प्रेमसे उसकी पाठना करना योग्य है । ( मं० ८ )

९ सा महते सौमगाय चर्षता=ऐसी पाली हुई गौ बड़े सौभाग्यके साथ बढे । हर एक घरमें ऐसी गोमाता रहे, हमारी भी वही इच्छा है । ( मं० ८ )

१० वत्स इच्छन्ती=गौ बछड़ेवाली हो । मृतवत्सा न हो । मृतवत्सा गौका दूध पीनेसे पीनेवालोंके घरमें भी वही बात बन जायगी । क्यों कि यदि गौके दूधके दोषके कारण उसका बछड़ा मरा हो, तो वह दोष पीनेवालोंके शरीरमें भी बढ जायगा । अतः बछड़ेवाली गाय हो और बछड़ेकी इच्छा करनेवाली वह प्रेमसे घरमें आजाय । ( मं० ८ )

११ गोधुक् पयसा उपद्रव, टाछियायाः पयः घर्मे सिन्ध=गायका दोहन करनेवाला मनुष्य दूध लेकर क्षीयतास जावे और वह गायका दूध अग्निपर रखे । इसका मतलब यह है कि बहुत देर तक दूध कूथा न रखा जावे । जादे मनुष्य धारोष्ण ही पीवे, निचोड़ते ही पीव, परतु रखना हो तो क्षीयही अग्निपर तपाकर रखे । क्यों कि दूधमें माना प्रकारके किसी हथामेसे जाकर जम जाते हैं और वहां वे बढते हैं । अतः कभी



अपस्वामे दूध बहुत देरतक रखना नहीं चाहिये । शीघ्रही अग्निपर चढ़ाना चाहिये । ( म० ६ )

१२ मधु दुह्यते=गायका दोहन करके आ निषोढा जाता है वह मधु अर्थात् वरर ही है । क्यों कि वह बड़ा मीठा होता है । ( म० १ )

१३ तप्त पिप्पल= ठपा हुआ दूध पीओ । इसका कारण ऊपर दिया ही है ( म० ४ )

इस प्रकारके दूधका दबोके लिये समर्पण करना चाहिये । विशेषतः अभिनी देवोंका भाग गायका दूध और घी ही है, यह बात चतुर्थ मन्त्रमें कही है । अभिनी देव स्वयं देवोंके वेद्य हैं अतः उनको मालूम है कि कौनसा दूध अच्छा है और कौनसा अच्छा नहीं है । अभिनी दब दूसरा दूध पीते ही नहीं और दूसरा घी भी नहीं सेवन करते । यह बात हम सबका स्मरण रखने योग्य है । अतः मनुष्योंका गायका ही दूध और घी पीना चाहिये, और मेषका नहीं, यह बात भी इस प्रकार यहां सिद्ध हुई । इसी प्रकार बालारका दूध भी नहीं लेना चाहिये, क्यों कि वह दूध अपनी स्वच्छतासे रखा होता है इसमें कोई प्रमाण नहीं है । अतः घरघरमें गौ पालनी चाहिये और उसका दूध यज्ञमें समर्पण करना चाहिये और हवशेष भक्षण करना चाहिये ।

## गण्डमाला-चिकित्सा ।

[ ७४ ( ७८ ) ]

( आपिः-अपर्वा । देवता-मन्त्रोक्ता, ४ आचवेदाः )

अपचित्तां लोहिनीनां कृष्णा मातेर्वि शुभ्रम् ।

सर्वेर्विषस्य मूलेन सर्वा विध्यामि ता अहम् ॥ १ ॥

अर्थ—( लोहिनीनां अपचित्तां ) लाल गण्डमालाकी ( कृष्णा माता इति शुभ्रम् ) कृष्णा उत्पादक है ऐसा सुना जाता है । ( ताः सर्वाः ) उस सब गण्डमालाओंको ( देवस्य मुनेः मूलेन अहं विध्यामि ) मुनि नामक विष्णु वनस्पतिकी मूली—जड़—से मैं मादा करता हू ॥ १ ॥

भावार्थ—लाल रंगवाली गण्डमालाका नाश करकेके लिये मुनि नामक औषधी की जड़ यही उपयोगी है ॥ १ ॥

विष्वाभ्यासां प्रथमां विष्वाभ्युत मध्यमाम् ।

इदं अथन्यामिषामा छिनधि स्तुर्कामिष ॥ २ ॥

त्वाष्ट्रेणाह वचसा मि तं ईर्ष्याममीमदम् ।

अथा वा मन्युष्टे पते तस्मै ते शमयामसि ॥ ३ ॥

व्रतेन त्व व्रतपते समक्तो विश्वाहा सुमना दीदिहि ।

तं त्वा वच जातवेदः समिद्ध प्रजायन्त उषं सवेम सर्वे ॥ ४ ॥

अर्थ—(आसां प्रथमां विष्वाभि) इनके पहिली गण्डमाला को मैं बघता हू, (उत मध्यमां विष्वाभि) और मध्यमको बघता हू। (आसां जघन्यां इदं वा छिनधि) इनकी बीचली को मैं यह छेदता हू (स्तुर्कामिष) जिस प्रकार घभीको खोलते हैं ॥ २ ॥

(त्वाष्ट्रेण वचसा) सूक्ष्मता उत्पन्न करनेवाली बाणीसे (अह ते ईर्ष्यां वि अमीमदम्) मैं तेरी ईर्ष्या दूर करता हू। हे पते ! (अथ यः ते मन्युः और ओ तेरा क्रोध है, (ते त शमयामसि) तेरे उस क्रोधको हम शान्त करते हैं ॥ ३ ॥

हे (व्रतपते) व्रतपालन करनेवाले ! (त्व व्रतेन समक्तः) तू व्रतसे संयुक्त होकर (इह विश्वाहा सुमनाः दीदिहि) यहाँ सर्वदा उत्तम मनवा ला होकर प्रकाशित हो। हे (जातवेदः) अग्ने ! (सर्वे वयं त त्वा समिद्ध) हम सब उस तुझ प्रदीप्त हुए का (प्रजायन्तः उपसेदिम) प्रजायाले होकर प्राप्त होंगे ॥ ४ ॥

भाषार्थ—इससे पहिली बीचकी और अन्तकी गण्डमाला दूर होती है ॥ २ ॥

क्रोध और ईर्ष्या सूक्ष्मविचार के द्वारा दूर किये जाय ॥ ३ ॥

नियमपालन से मदा उत्तम मन रहता है और मनुष्य प्रकाशमान हो सकता है। इस प्रकार हम सब तेजस्वी होकर, पालयकोंको साथ लेते हुए हम तेजस्वी ईश्वरकी उपासना करेंगे ॥ ४ ॥

मुनि नाम ' दमनक बक, पसाख, मियाल, मदन ' इत्यादि बनेक औषधियोंका है, उनमेंसे कौनसी औषधि गण्डमाला दूर करनेवाली है इसका नियम मेषोंको करना चाहिये। क्रोध मनसे हटाना, पथ्य क नियमोंका पालन करना इत्यादि बातें आरोग्य देनेवाली हैं इसमें सन्देह नहीं है।

# गायत्री पालना ।

[ ७५ ( ७९ ) ]

( आदिः—उपरिब्रजः । देवता—अध्याः )

प्रजावतीः सुप्रसन्नं रुन्तिः शुद्धा अपः सुप्रपाण पिबन्तीः ।

मा व स्तेन ईधु माधुसः परि वो रुद्रस्व हेतिर्वृणक्तु ॥ १ ॥

प्रदद्या स्य रमतयः संहिता विश्वनाम्नी । उर्प मा देवीवेभिरेव ॥

इम गोष्ठमिद सर्वो घृत्नास्मान्समुधत् ॥ २ ॥

अर्थ—( प्रजावतीः ) उत्तम बछडोंवाली ( सुप्रसन्नं चरन्तीः ) उत्तम घासके लिये बिचरती हुई ( सु-प्र-पाने शुद्धाः अपः पिबन्तीः ) उत्तम जलस्थानपर शुद्ध जल पान करनेवाली गौवें हों । हे गौवो ! ( स्तेनः वः मा ईशत ) चोर तुमपर शासन न करे । ( मा अधशसः ) पापी भी तुमपर हुकुमत न करे । ( रुद्रस्य हेतिः वः परि वृणक्तु ) रुद्रका शास्त्र तुम्हारी रक्षा करे ॥ १ ॥

हे ( रमतयः ) आनन्द देनेवाली गौवो ! ( पदद्याः स्य ) अपने निवास स्थानको जाननेवाली हो । तुम ( संहिताः विश्वनाम्नीः देवीः ) इकट्ठी हुई पढ़त नामवाली विष्णु गौवें ( वेवेभिः मा उप एत ) विष्णु बछडोंके साथ मेरे पास आओ । ( इम गो-स्थ, इद सर्व ) इस गोशाखाको और इस घरको तथा ( अस्मान् ) हम सबको ( घृत्नेन स उधत् ) घीसे युक्त करो ॥ २ ॥

भावार्थ—गौवें उत्तम घास जानेवाली और शुद्धजल पीनेवाली हों । उनको बहुत बछड़े हों । कोई चोर और कोई पापी उनको अपने आपीन न करे । महाधीरके शास्त्र उनकी रक्षा करें ॥ १ ॥

गावें हमें आनन्द द । व अपने निवासस्थानको पढ़ानें, मिलकर रहें, अनेक नामवाली विष्णु गौवें अपने बछडोंके साथ हमारे पास आवें । और हमें भरपूर भी दवें ॥ २ ॥

इसमें भी गोपालनके आदश दिये हैं व स्मरण रखने योग्य हैं । पाठक इस सूक्तके साथ ७१ ( ७५ ) वां सूक्त अवश्य दखें ॥



# गण्डमाला की चिकित्सा ।

[ ७६ ( ८०, ८१ ) ]

( अग्निः—अथर्षा । देवता—१, २ अपचिन्तयन् । ३—६ जायान्यः, इन्द्रः । )

आ-सुस्रसः सुस्रसो असतीन्म्यो असत्तराः ।

सेहोरस्रस्ररा लवणाद् विह्वेदीयसीः ॥ १ ॥

या ग्रन्था अपचितोयो या उषपक्ष्याः ।

विजान्ति या अपचितः स्वयन्नसः ॥ २ ॥

यः कीकसाः प्रभृणाति तलीधमिवतिष्ठति ।

निर्हास्त सर्वं जायान्य यः कर्म ककुदि भितः ॥ ३ ॥

अर्थ—( सुस्रसः सुस्रसः आ ) पहनेवालीसे भी अधिक पहनेवाली,  
( असतीन्म्यः असत्तराः ) घुरीसे भी घुरी, ( सेहोः अरस्रतराः ) शुष्कसे भी  
अधिक शुष्क और ( लवणात् विह्वेदीयसीः ) नमकसे भी अधिक पानी  
निकालनेवाली गण्डमाला है ॥ १ ॥

( याः अपचितः ग्रन्थाः ) जो गण्डमाला गलेमें होती है, ( अपो या  
उषपक्ष्याः ) और जो कन्धों या पगलोंमें होती है तथा ( याः अपचितः  
विजान्ति ) जा गण्डमाला गुप्तस्थानपर होती है, ये सय ( स्वयन्नसः ) स्वयं  
पहनेवाली है ॥ २ ॥

( यः कीकसाः प्रभृणाति ) जो पसालियोंको तोड़ता है, जो ( तलीध  
मिवतिष्ठति ) तलयमें बैठता है, ( यः कः ककुदि भितः ) जो रोग  
पीठम जम गया होता है, ( त सर्वं जायान्य ) उस सय स्त्रीद्वारा आने  
वाले रोग को ( निः हाः ) निकाल दो ॥ ३ ॥

भावार्थ— सय गण्डमाला पहनेवाली, घुरी, शुष्क की उत्पन्न करनेवाली  
और द्रव उत्पन्न करनेवाली होती है ॥ १ ॥

कह गण्डमाला गलेमें, कन्धमें, गुप्तस्थानपर होती है और ये सय  
प्राप करनेवाली होती है ॥ २ ॥

इन्हींमें तलयमें, पीठम एक रोग होता है वह स्त्रीस्यपसे रोग होता  
है ॥ ३ ॥

पक्षी जायान्यः पतति स आ विक्षतिं पूरुषम् ।

तदक्षितस्य भेषजमुभयोः सुक्षतस्य च ॥ ४ ॥

त्रिष वै तं जायान्य जान यतो जायान्य जायसे ।

कथ ह तत्र त्व हनो यस्य कृष्णो द्विर्गृह ॥ ५ ॥

घृपत् पिप कलशे सोममिन्द्र वृत्रहा शूर समरे वसूनाम् ।

माध्यन्दिने सधने आ वृषस्व रथिष्ठानो रथिमस्मासु वेदि ॥ ६ ॥

अर्थ— ( पक्षी जायान्यः पतति ) पक्षीक समान यह स्त्रीसे उत्पन्न रोग उद्यता है और (सः पूरुष आविशति) वह मनुष्य के पास पहुँचता है । (तत् आक्षितस्य सुक्षतस्य उभयोः च ) वह चिरकालसे रोगग्रस्त न हुए अथवा उत्तम क्षत किंवा घणयुक्त घने होनाका ( भेषज ) औषध है ॥ ४ ॥

हे ( जायान्य ) स्त्रीसे उत्पन्न होनेवाले क्षयरोग ! ( यतः जायसे ) जहाँ से तू उत्पन्न होता है, ( ते जान विद्य वै ) तेरा जन्म हम जानते हैं । ( त्व तत्र कथ हनः ) तू वहाँ कैसा मारा जाता है (यस्य गृहे द्विः कृष्णः) जिसके घरमें हम दहन करते हैं ॥ ५ ॥

हे ( शूर घृपत् इन्द्र ) शूर, शत्रुको दयानेवाले इन्द्र ! ( कलशो साम पिप ) पात्रमें रखा सोमरस पीजो । तू ( वसूनां समरे वृत्रहा ) धनोंक युद्धमें शत्रुका पराजय करनेवाला है । ( माध्यन्दिने सधने आवृषस्व ) मध्यदिनके सधम के समय नू बलवान् हो । ( रथि स्थानः अस्मासु रथि वेदि ) तू धनक स्थान में रहकर हमें धन दे ॥ ६ ॥

भावार्थ— इसके बीज पक्षीके समान हयामें उद्यत हैं, य मनुष्यमें जाते हैं और रोग उत्पन्न करते हैं । जो लोग ऐसे रोगसे चिरकालसे ग्रस्त होते हैं, अथवा जिनमें घण होते हैं, ऐसे रोगको भी औषधसे उपचार करना चाहिये ॥ ४ ॥

स्त्रीस उत्पन्न होनेवाला क्षयरोग कैसा उत्पन्न होता है यह जानना चाहिये । जिसके घरमें दहन होता है वहाँक रोगबीज दहनमें जलजाते हैं ॥ ५ ॥

ह शूर वीर ! इस सामरसका सधन करा । तू शत्रुओंका नाश करने वाला और बलवान् है । हम धन दें ॥ ६ ॥

## गण्डमाला ।

इस एक सूक्तमें वस्तुतः मिश्र मिश्र दो सूक्त हैं । और एक का दूसरेके साथ कोई सम्बन्ध नहीं । परन्तु यदि इन दो सूक्तोंका सम्बन्ध देखना हो, तो एकही विचारसे देखा जा सकता है । पहिले दो मंत्रोंमें जिस गण्डमालाका उल्लेख है, वह गण्डमाला क्षयरोगसे उत्पन्न होती है जो क्षयरोग स्त्रीके विषयातिरेकसे उत्पन्न होता है । इस प्रकार सम्बन्ध देखनेसे ये दो सूक्त विभिन्न होते हुए भी एक स्थानपर क्यों रखे हैं, इसका ज्ञान हो सकता है ।

यह गण्डमाला बहनेवाली, सुष्की पड़ानेवाली, नमक जैसी गीली रहनेवाली, घुरा परिणाम करनेवाली, गलमें उत्पन्न होनेवाली, पसलियोंमें उत्पन्न होनेवाली, जिसकी उत्पत्ति गुप्त स्थानक विषयातिरेकसे होती है ।

इसके रोगबीज पसलियों और हड्डियोंको कमजोर करते हैं, हाथ पाँवके तलवोंमें बैठकर गर्माँ पैदा करते हैं, पीठ की रीढ़में रहते हैं । इन स्थानोंसे इनको हटाना चाहिये ।

इस क्षयके रोगबीज पृथ्वी सेसे हवामें उठते हैं और वे—

पृथ्वी जायान्यः पतति । स पूरय आचिद्यति ॥ ( म० ४ )

“पृथ्वी सेसे क्षयरोगके बीज उठते हैं और वे मनुष्यमें प्रवेश करते हैं” तथा ये ( जायान्यः ) स्त्रीसम्बन्धसे उत्पन्न होते हैं अर्थात् स्त्रीसे अति सम्बन्ध करनेसे क्षीर वीर्य हीन होता है और इन को बढनेका अवसर मिलता है ।

## हवनसे नीरोगता ।

यस्य गृहे हविः कृप्याः, तत्र हनः । ( म० ५ )

“जिसके घरमें हवन करते हैं वहाँ इनका नाश होता है” य क्षयरोगके बीज हवामें उठकर आते हैं और हवन होते ही इनका नाश होता है । यह हवनका महत्त्व है । पाठक इसका अर्थ स्मरण रखें । हवन आरोग्य देनेवाला है । इस प्रकार नीरोग बने मनुष्य शूर होते हैं, वे सोमरस पान करें, और अपने शत्रुओंका दमन करनेद्वारा अपने लिये यश और धन संपादन करें ।

## बंधनसे मुक्ति ।

[ ७७ ( ८२ ) ] ( ऋषिः—अगिराः । देवता—मरुतः )

सांतपना इदं हविर्मेरुतस्तज्जुष्टन । अस्माकोऽसी रिंशादसः ॥ १ ॥

यो नो मर्तो मरुतो दुर्हणायुस्तिरश्चितानि वसवो जिघांसति ।

द्रुहः पाशान् प्रति मुञ्चतां सस्वर्षिष्ठेन तपसा हन्तना तम् ॥ २ ॥

संवत्सरीणा मरुतः स्वर्का उरुक्षयाः सर्गणा मानुपासः ।

त अस्मत् पाशान् प्र मुञ्चन्त्वेनसः सांतपना मत्सुरा मादमिष्णवः ॥ ३ ॥

अर्थ—हे ( सां-तपनाः मरुतः=मर्-उतः ) अच्छी प्रकार शत्रुको तपाने नाले मरनेके लिये तैयार धीरो ! ( इदं तत् हविः जुष्टन ) इस हवि अन्न का सेवन करो । हे ( रिंश-अदसः ) शत्रुओंका नाश करनेवाले ! ( अस्मा क ऊती ) हमारी रक्षा करो ॥ १ ॥

हे ( वसवः मरुतः ) निवासक मरुतो ! ( यः नः मर्तः दुर्हणायुः ) हममेंसे जो मनुष्य दुष्टभाषसे युक्त होकर ( चित्तानि तिरः जिघांसति ) हमारे चित्तोंको छिपकर नाश करना चाहता है । ( सः द्रुहः पाशान् प्रतिमुञ्चतां ) उसपर श्रोहीके पाश छोड़ो और ( त तपिष्ठेन तपसा हन्तना ) उसको तापदायक तपनसे मार डालो ॥ २ ॥

( संवत्सरीणाः सु—अर्काः ) वर्ष भरतक प्रकाशनेवाले ( सर्गणाः उरुक्षयाः ) सेनासमूहके साथ बड़े घरोंमें रहनेवाले, ( मानुपासः ) मान्यी धीर ( सांतपनाः मादमिष्णवः मत्सुराः ) शत्रुको सताप देनेवाले हर्ष पढ़ानेवाले प्रसन्न ( त मर्-उतः ) वे मरनेतक छड़नेवाले धीर ( एनसः पाशान् अस्मत् प्रमुञ्चतु ) पापके पाशोंको हमसे छुड़ाव ॥ ३ ॥

भावार्थ— शत्रुको ताप देनेवाले धीर हमने दिये अन्नभागकी स्वीकार करके, शत्रुओंका नाश कर, हमारी रक्षा करें ॥ १ ॥

हममें से कोई दुष्ट मनुष्य यदि छिपकर हमारे मनोंका नाश करना चाह, तो उसको पाशोंमें बाँध कर मार डालो ॥ २ ॥

सालभर रहनेवाले, तजस्वी, अनुयायियोंके साथ बड़े घराम रहनेवाले, शत्रु को ताप देनेवाले मान्यी धीर पापसे हमें बचावे ॥ ३ ॥

इसमें क्षत्रियधर्म बताया है । क्षत्रिय क्षत्रको ताप देनेवाला शूरवीर हो, स्वधनोंको रक्षा करे, अपनेमें यदि कोई दृष्ट मनुष्य निकल आवे, तो उसका भी दण्ड देवे, सबको निर्भय बनाव और पापसु बनोंको दूर रखे ।

## बंधमुक्तता ।

[ ७८ ( ८६ ) ]

( ऋषिः—अथर्वा । देवता—अग्निः )

वि ते मुञ्चामि रक्षणां वि योक्तुं वि नियोजनम् ।

इहैव त्वमर्जस एभ्यसे ॥ १ ॥

अस्मै क्षत्राणि धारयन्तममे युनज्मि त्वा ब्रह्मणा दैव्येन ।

दीदृशः सम्यं ब्रविणेह मद्रं प्रेमं योचो हविर्दा देवताम् ॥ २ ॥

अर्थ—हे अग्ने ! ( ते रक्षणां विमुञ्चामि ) तेरी रस्सीका मैं खोलता हू । तेरे ( योक्षत्र वि ) बधनको भी मैं छोड़ता हू । ( निपाजन वि ) तेरे स्वीचकर पाँचनेवाले धधको भी मैं छोड़ता हू । (इह एव त्व अजस्रः णवि) यहाँ ही तू अहिंसित होकर रह ॥ १ ॥

हे अग्ने ! ( अस्मै क्षत्राणि धारयन्त त्वा ) इसके लिये यहाँ क्षत्रधर्मका धारण करनेवाले तुझको ( दैव्येन ब्रह्मणा ) दिव्यज्ञानके साथ ( युनज्मि ) युक्त बनाता हू । ( अस्मभ्य इह ब्रविणा दीदृशि ) हमारे लिये यहाँ बन दे । ( इम देवतासु हविर्दा प्रयोषः ) इसके बिपयमें व्यताओंमें हविसमर्पण करनेवाला करके वर्णन किया जाता है ॥ २ ॥

भावार्थ—पहिला, बीचका और निचला इस प्रकार तीनों धधनोंको मैं खोलकर तुम्हें मुक्त करता हू, इस प्रकार तू मुक्त होकर यहाँ आ ॥ १ ॥

वीरता धारण कर, दिव्यज्ञानसे युक्त हो, धन समर्पण कर, देयताओंमें हवि अर्पण कर, इसीसे तुम्हारा यश बढ़ेगा ॥ २ ॥

तीन धधन ।

धधन तीन प्रकारके रहते हैं, एक मनका धधन दूसरा अधवा बीचका बाणीका और तीसरा अधवा निचला देहका । इन तीन धधनोंसे मनुष्य बंधा है अर्थात् बद्ध



हुआ है । इससे उसको मुक्त होना है । ये वध अब खोल जाय हैं तब वह मुक्त होता है, तबतक उसकी बद्ध स्थिति है ऐसा कहते हैं ।

वधसे छूटनक लिये शत्रु अर्थात् पुरुषार्थ करनेका सामर्थ्य अवश्य चाहिये । इसके बिना कोई मनुष्य वधमुक्त होनेका यत्न भी नहीं कर सकता । इसके पश्चात् उसको ज्ञान चाहिये । ज्ञानके बिना वधनसे मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती । ज्ञानका अर्थ ( मोक्ष धार्मिक ) वधमुक्त होनेका उपाय जानना है । पुरुषार्थ द्वारा धन आदि प्राप्त करना और उस प्राप्त धनका ईश्वरार्पण बुद्धिसे समयज करना, ये दो कार्य करना मनुष्यको योग्य है । इसीसे मनुष्यके बंध दूर होते हैं । विघ्नप कर अपने धनका समर्पण अर्थात् त्याग, ( दधतासु हविर्दा ) दधताओंको समर्पण करनेसे मनुष्य बंधनसे मुक्त होता है ।

यह धृष्ट धातासा अस्पष्ट है, तथापि उक्त प्रकार इसका विचार करनेसे इसका भाव समझमें आ सकता है ।



## अमावास्या ।

[ ७९ ( ८४ ) ]

( अग्निः—अमर्षा । दधता—अमावास्या )

यत् ते देवा अकृण्वन् भागधेयममावास्ये सुवर्त्तन्वो महित्वा ।

तनां नो यज्ञ पिष्टुहि विश्ववारे रयिं नो षहि सुमगे सुवीरम् ॥ १ ॥

वार्थ—ह ( अमावास्ये ) अमावास्ये । ( ते महित्वा ) तेरे महत्त्वसे ( सब मन्त्रों द्वारा ) एवम् नियाम करनेवाले दध ( यत् भागधेय अकृण्वन् ) जो भाग्य धनात् ह, ( तन नः यज्ञ पिष्टुहि ) उससे हमारे यज्ञकी पूर्णता कर । ह ( विश्ववारे सुमगे ) सबका परमयोग्य उत्तम भाग्यधनी दधी । ( सुवीर रयिं नः षहि ) उत्तम वीरपाला धन हमें दो ॥ १ ॥

भाषा—सब दध जो भाग्य देने ॥ यह हम प्राप्त हाय और उससे हमारा यज्ञ पूर्ण हाय । तथा हमें ऐसा धन प्राप्त होय कि जिससे सब वीर ह । १ ॥

अहमेवास्म्यमावास्याऽधुमा वा वसन्ति सुकृतो मयीमे ।  
 मयि देवा उमये साध्याभेन्द्रं ज्येष्ठाः समगच्छन्तु सर्वे ॥ २ ॥  
 आगन् रात्री सङ्गमनी वधनामूर्जिं पुष्टं वस्त्राविश्रयन्ती ।  
 अमावास्यायै इविषा विधेमोर्ध्वं दुष्टानां पर्यसा न आगन् ॥ ३ ॥  
 अमावास्ये न स्वदेवान्यन्यो विद्यां रूपाणि परिभूर्क्षिजान ।  
 यत्कामास्ते जुहुमस्तथो अस्तु यय स्याम पतया रयीणाम् ॥ ४ ॥

अर्थ—( अह एव अमावास्या अस्मि ) मैं ही अमावास्या हूँ । ( मां इमे सुकृतः मयि आवसन्ति ) मरी इच्छा करत हुए य पुण्य करनेवाले लोग मेरे आश्रयसे रहते हैं । ( साध्याः इन्द्रज्येष्ठाः सर्वे उमये देवाः ) साध्य और इन्द्र आदि सब दोनों प्रकारके देव ( मयि समगच्छन्तु ) मुझमें आवर मिलत हैं ॥ २ ॥

( वसुनां संगमनी ) सब वसुओंको मिलानेवाला, ( पुष्टं ऊर्जं वसु आवेशयन्ती ) पुष्टिकारक और बलवर्धक घन दानवाली ( रात्री आगन् ) रात्री आगई है । ( अमावास्या ये इविषा विधेम ) अमावास्याके लिये हम इधमसे यजन करते हैं । क्यों कि वह ( ऊर्जं दुष्टानां पर्यसा नः आगन् ) अन्न देनेवाली दूध क साय आगई है ॥ ३ ॥

हे अमावास्ये ! ( त्वत् अन्यः पतानि विश्वा रूपाणि ) तेरेमे भिन्न इन सब रूपोंको ( परिभूः न अजान ) घेरकर कोई नहीं बना सकता । ( यत् कामाः ते जुहुम ) जिसकी इच्छा करते हुए हम तबरा यजन करते हैं ( तत् नः अस्तु ) वह हमें प्राप्त होवे । ( यय रयीणां पतया स्याम ) हम धर्मोंके स्वामी बनेंगे ॥ ४ ॥

आथार्थ—मैं अमावास्या हूँ अतः साध्य आदि सब देव तथा पुण्यकर्म करनेवाले मनुष्य मेरे आश्रयसे रहते हैं ॥ २ ॥

अमावास्या सब घन दानी है, पुष्टि, बल और घन भी देती है, अतः इसके लिये इधम किया जाये ॥ ३ ॥

हे अमावास्ये ! तेरेसे भिन्न दूसरा कोईभी नहीं है कि जो हम जगत को घेरकर बना सकता है । जिस कामनासे हम तेरा यजन करते हैं यह कामना हमारी पूर्ण होवे और हम घन के स्वामी बनें ॥ ४ ॥

## अमावास्या ।

‘अमावास्या’ का अर्थ है ‘एकत्र वास करानेवाली’ । सूर्य और चन्द्र एक स्थान पर रहते हैं अतः इस तिथि को अमावास्या कहते हैं । सूर्य उग्रस्वरूप है और चन्द्र शान्त स्वरूप है । उग्र और शान्त को एक घरमें रखनेवाली यह अमावास्या है । इसी प्रकार सब देवों को एकत्र निवास करानेवाली भी यही है । यह गुण मनुष्यों को अपने अंदर धारण कराना चाहिये । परस्पर विरोधी स्वभाववाले अितने अधिक मनुष्यों को धारण करनेका सामर्थ्य मनुष्यमें हो उतनी उसकी योग्यता होगी । ‘अमावास्या’ से यह-बोध मनुष्यों को प्राप्त हो सकता है ।

अमावास्या पर यह वक्त एक सुंदर काण्व है । यह काम्बरस देता हुआ मनुष्यको उत्तम बाध देता है । विभिन्न प्रकृतिवाले मनुष्यों को एक घरमें, एक बाठीमें, एक धर्ममें, एक राष्ट्रमें, एक कार्यमें रखकर, उन सबसे एकही कार्य कराना और उन सबकी उत्पत्ति सिद्ध करना, यह इस वक्तका उपदेशविषय है । जो हर एक व्यवहारमें नि सन्देह पाद्यप्रद होगा ।

## पूर्णिमा ।

[ ८० ( ८५ ) ]

[ अग्निः—अथर्वा । देवता—पौर्णमासी, प्रजापतिः ।

पूणो पुमादुत पूर्णो पुरस्तादुन्मभ्यत पौर्णमासी विंशत्य ।

तस्मा देवैः स्रष्टन्तो महिस्था नाकस्य पूष्टे समिधा मदेम ॥ १ ॥

अर्थ—( पश्चात् पूर्णो ) पीछेसे परिपूर्ण ( उत पुरस्तात् पूर्णो ) और आगमे भी पूर्ण तथा ( मध्यतः ) बीचमें से भी परिपूर्ण ( पौर्णमासी उव जिगाय ) पूर्णिमा हुई है । ( तस्या देवैः स्रष्टन्तः ) उसमें देवों के साथ रहने हुए हम स्रष्ट ( महिस्था नाकस्य पूष्टे इषा समवेम ) महिमासे स्वर्गके पृष्ठपर इष्टाके अनुसार आनन्दका उपभोग करगे ॥ १ ॥

भावार्थ—सब प्रकारसे परिपूर्ण होनेसे पौर्णमासीको पूर्णिमा कहत है । इस समय जा लोग देवोंकी सभाय—यज्ञमें—सगे होते हैं, वे अपनी महिमासे स्वर्गपाम प्राप्त करत हैं ॥ १ ॥

वृषमे वाजिने वय पौर्णमास यजामहे ।

स नो ददात्वर्षितां यमिमुपदस्वतीम् ॥ २ ॥

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परिभूर्जिज्ञान ।

यत्कामास्ते जुहुमस्तनो अस्तु वय स्वां पतयो रयीणाम् ॥ ३ ॥

पौर्णमासी प्रथमा यज्ञियासीदह्नां रात्रीणामतिशर्वरेषु ।

ये त्वां यज्ञैर्विज्ञिये अर्घयन्त्यमी ते नाकं सुकृतः प्रविष्टाः ॥ ४ ॥

अर्थ- ( वृषभ वाजिन पौर्णमास ) बलवान् अश्वान् पौर्णमासका ( वय यजामहे ) हम यजन करते हैं । ( सः नः ) वह हम सबको ( वासितां अन् उपदस्वतीं रयिं ददातु ) अक्षय और अविनाशी धन देवे ॥ २ ॥

हे प्रजापते ! ( स्वात् अभ्यः ) तेरेसे भिन्न ( एतानि विश्वा रूपाणि ) इन सपूर्ण रूपोंको ( परिभूः न जिज्ञान ) सर्वज्ञ व्यापकर कोई नहीं उत्पन्न कर सकता । ( यत्-कामाः ते जुहुमः ) इसकी कामना करते हुए हम तेरा यजन करते हैं, ( तत् नः अस्तु ) वह हमें प्राप्त हो । ( वय रयीणां पतयः स्याम ) हम सब धनोंके स्वामी बनेंगे ॥ ३ ॥

( पौर्णमासी ) पूर्णिमा ( अह्नां रात्रीणां अतिशर्वरेषु ) दिनोंमें तथा रात्रीयोंके अचेरोंमें ( प्रथमा यज्ञिया आसीत् ) प्रथम पूजनीय है । हे ( यज्ञिये ) पूजनीय ! ( ये त्वां यज्ञैः अर्घयन्ति ) जो तुम्हें यज्ञके द्वारा पूजते हैं, ( त अमी सुकृतः नाकं प्रविष्टाः ) वे ये सत्कर्म करनेवाले स्वर्गके पीठपर प्रविष्ट होते हैं ॥ ४ ॥

मावार्ध-पूर्णमास बल और अश्वसे युक्त होता है, इसी लिये हम सब उसका यजन करते हैं । इससे हम अक्षय धन प्राप्त करेंगे ॥ २ ॥

इस जगत्के अमन्त रूपोंको उत्पन्न करनेवाला प्रजापतिसे भिन्न कोई नहीं है । जिस कामनासे हम यज्ञ करते हैं वह पूर्ण हो और हम धन संपन्न बनेंगे ॥ ३ ॥

पूर्णिमा दिनमें और रात्रीमें पूजनेयोग्य है । हे पूर्णिमा ! तरा यजन हम करते हैं, हमें स्वर्गप्राप्तमें प्रवेश प्राप्त हावे ॥ ४ ॥

ये होनो सक्त अमावास्या और पौर्णमासीक 'दर्श और पूर्णमास' यज्ञोंक संपन्न हैं ।

## अमावास्या ।

‘अमावास्या’ का अर्थ है ‘एकत्र वास करानेवाली’ । सूर्य और चन्द्र एक स्थान पर रहते हैं अतः इस तिथि को अमावास्या कहते हैं । सूर्य उग्रस्वरूप है और चन्द्र शान्त स्वरूप है । उग्र और शान्त को एक घरमें रखनेवाली यह अमावास्या है । इसी प्रकार सब देवों को एकत्र निवास करानेवाली भी यही है । यह गुण मनुष्यों को अपने अदर प्राप्त कराना चाहिये । परस्पर विरोधी स्वभाववाले क्षितने अधिक मनुष्यों को धारण करनेका सामर्थ्य मनुष्यमें हो उसनी उसकी योग्यता होगी । ‘अमावास्या’ से यह-बोध मनुष्यों को प्राप्त हो सकता है ।

अमावास्या पर यह सूक्त एक सुन्दर काण्ड है । यह काण्डरस देता हुआ मनुष्यको उत्तम वाच देता है । विभिन्न प्रकृतिवाले मनुष्यों को एक घरमें, एक वासीमें, एक धर्ममें, एक राष्ट्रमें, एक कार्यमें रखकर, उन सबसे एकही कार्य कराना और उन सबकी उत्तम सिद्ध करना, यह इस सूक्तका उपदेशविषय है । जो हरएक व्यवहारमें निःसन्देह बोधप्रद होगा ।

## पूर्णिमा ।

[ ८० ( ८५ ) ]

[ श्रुति।—अथर्व । देवता-पौर्णमासी, प्रभाषति । ]

पूर्णा पश्चादुत पूर्णा पुरस्तादुन्मध्यतः पौर्णमासी विजाय ।

तस्यां देवैः संवसन्तो महिस्था नाकस्य पूष्ठे समिधा मदेम ॥ १ ॥

अर्थ—( पश्चात् पूर्णा ) पीछेसे परिपूर्ण ( उत पुरस्तात् पूर्णा ) और आगेसे भी पूर्ण तथा ( मध्यतः ) बीचमें से भी परिपूर्ण ( पौर्णमासी उत्त जिजाय ) पूर्णिमा हुई है । ( तस्यां देवैः संवसन्तः ) उसमें देवों के साथ रहते हुए हम सब ( महिस्था नाकस्य पूष्ठे इवा समदेम ) महिमासे स्वर्गके पृष्ठपर इच्छाके अनुसार आनन्दका उपभोग करते ॥ १ ॥

भाषार्थ—सब प्रकारसे परिपूर्ण होमसे पौर्णमासीको पूर्णिमा कहते हैं । इस समय आ लोग देवोंकी सभामें—यज्ञमें—लगे होते हैं, वे अपनी महिमासे स्वर्गप्राप्त करते हैं ॥ १ ॥

वृषम वाजिनं ध्रुवं पौर्णमासं यजामहे ।  
 स नो ददात्वर्चितां रथिमनुपदस्वसीम् ॥ २ ॥  
 प्रजापते न त्वदेवान्यन्यो विश्वा रूपाणि परिभूर्जमान ।  
 यत्कामास्ते जुहुमस्तनो अस्तु वयं स्याम पतयो रथीणाम् ॥ ३ ॥  
 पौर्णमासी प्रथमा यज्ञियासीदह्ना रात्रीणामतिशब्देषु ।  
 ये त्वा यज्ञैर्यज्ञिषे अर्घयन्त्यमी ते नाकं सुकृतुः प्रविष्टाः ॥ ४ ॥

अर्थ—( वृषम वाजिन पौर्णमास ) बलवान् अश्वान् पौर्णमासका ( वयं यजामहे ) हम यजन करते हैं । ( सः नः ) वह हम सबको ( अर्चितां अन् उपदस्वसीं रथिं ददातु ) अक्षय और अविनाशी धन देवे ॥ २ ॥

हे प्रजापते ! ( त्वत् अन्यः ) तेरेसे भिन्न ( एतानि विश्वा रूपाणि ) इन सपूर्ण रूपोंको ( परिभूः न जजान ) सर्वत्र व्यापकर कोई नहीं उत्पन्न कर सकता । ( यत्-कामाः ते जुहुमः ) इसकी कामना करते हुए हम तेरा यजन करते हैं, ( तत् नः अस्तु ) वह हमें प्राप्त हो । ( वयं रथीणां पतयः स्याम ) हम सब धनोंके स्वामी बनेंगे ॥ ३ ॥

( पौर्णमासी ) पूर्णिमा ( अह्नां रात्रीणां अतिशब्देषु ) दिनोंमें तथा रात्रीयोंके अघोरोंमें ( प्रथमा यज्ञिया आसीत् ) प्रथम पूजनीय है । हे ( यज्ञिषे ) पूजनीय ! ( ये त्वां यज्ञैः अर्घयन्ति ) जो तुम्हें यज्ञके द्वारा पूजते हैं, ( त अमी सुकृताः नाकं प्रविष्टाः ) वे ये सत्कर्म करनेवाले स्वर्गके पीठपर प्रविष्ट होते हैं ॥ ४ ॥

भाषार्थ—पूर्णिमास बल और अश्वसे युक्त होता है, इसी लिये हम सब उसका यजन करते हैं । इससे हम अक्षय धन प्राप्त करेंगे ॥ २ ॥

इस जगतके अमन्त रूपोंको उत्पन्न करनेवाला प्रजापतिसे भिन्न कोई नहीं है । जिस कामनासे हम पशु करते हैं वह पूर्ण हो और हम धन सपस धनेंगे ॥ ३ ॥

पूर्णिमा दिनमें और रात्रीय पूजनेयोग्य है । हे पूर्णिमा ! तेरा यजन हम करते हैं, हमें स्वर्गपाममें प्रवेश प्राप्त होवे ॥ ४ ॥

ये दोनों द्रष्टव्य अमावास्या और पौषमासीक 'दर्श और पूर्णमास' यज्ञोंक दृष्टक हैं ।

अमावास्याके समय बैसा यमन करना चाहिये उसी प्रकार पूर्णिमाके समय भी करना चाहिये । इससे इष्टपर लोकमें लाभ होता है ।

इसीका वर्णन इन छन्दोंमें पाठक देख सकते हैं । दर्शपूर्णमास यज्ञकी आवश्यकता इन दो छन्दोंमें स्पष्ट छन्दोंमें कही है ।

## घरके दो बालक ।

[ ८१ ( ८६ ) ]

( श्रुतिः—अर्घ्या । दत्ता—सावित्री )

पूर्वापर चरतो माययैतो शिशू क्रीडन्तौ परि यातार्जवम् ।

विश्वान्यो भुवना विश्वं श्रुर्वैन्यो विदधन्नायसे नयः ॥ १ ॥

अर्थ—( पती शिशू क्रीडन्तौ ) ये दोन बालक अर्थात् सूर्य और चन्द्र, खेलते हुए ( मायया पूर्वापर चरतः ) शक्तिसे आगे पीछे चलते हैं । और ( अर्घ्य परि यातः ) समुद्रतक घ्रमण करते हुए पहुचते हैं । ( अन्यः विश्वा भुवना विश्वे ) उनमेंसे एक सब भुवनोंको प्रकाशित करता है । और ( अन्यः शतृन् विदधत नयः जायसे ) दूसरा शतृओंको बनाता हुआ नया नया बनता है ॥ १ ॥

भावार्थ— इस घरमें दो बालक हैं, वे एकके पीछे दूसरा, अपनी शक्ति से ही खेलते हैं । खेलते हुए समुद्रतक पहुचते हैं, उनमें से एक सब जगत् को प्रकाशित करता है और दूसरा शतृओंको बनाता हुआ बारबार नवीन मचीन बनता है ॥ १ ॥

नवीनवो मवसि जायमानोह्वां केतुल्यसमिपग्रम् ।

मागं देवेभ्यो वि दधास्यायन् अ चन्द्रमस्तिरसे दीर्घमायुः ॥ २ ॥

सोमस्याशो युषां पतन्तो नाम वा असि ।

अनूनं दर्श मा कृषि प्रजया च घनेन च ॥ ३ ॥

दर्शोसि दर्शवोसि समग्रोसि समन्तः ।

समग्रः समन्तो मूयासं गोमिरसैः प्रजया पशुभिर्गृहघनेन ॥ ४ ॥

अर्थ— ( जायमाना नवः मवः मवसि ) प्रकट हाता हुआ नया नया होता है । एक ( अन्हां केतुः ) दिनोंको घतानेवाला है वह ( उपसा अग्र एवि ) उपःकालोंके अग्रभागमें होता है । ( आयन् देवेभ्यः भाग विदधासि ) वह आता हुआ देवोंके लिये विभाग समर्पण करता है । तथा ( चन्द्रमः । दीर्घ आयुः प्र तिरसे ) है चन्द्रमा । तू दीर्घ आयु अर्पण करता है ॥ २ ॥

हे ( युषां पते, सोमस्य अशः ) युद्धोंके स्वामी ! हे सोमके अश ! ( अनूनः नाम वै असि ) तू अन्यून यशवाला है । हे ( दर्श ) दर्शनीय ! ( मा प्रजया घनन च अनून कृषि ) मुझे प्रजा और घनसे परिपूर्ण कर ॥ ३ ॥

( दर्शः असि ) तू दर्शनीय है, तू ( दर्शतः असि ) दर्शनके लिये योग्य हो । तू ( स अन्तः समग्रः असि ) सय अन्तोंसे समग्र हो । ( गोभिः अश्वैः प्रजया पशुभिः गृहेः घनेन ) गौबें, घोड़े, सतान, पशु, घर और घनसे मैं ( समन्तः समग्रः मूयासं ) अन्ततक परिपूर्ण होऊ ॥ ४ ॥

भाषार्थ— इनमेंसे एक दिनके समयका हावा है जो उपःकालके अन्तिम समयमें प्रकट होता है और सय देवों को योग्य विभाग समर्पण करता है । जो दूसरा बालक है वह स्थय बारबार नवीन नवीन बनता है और सबको दीर्घ आयु देता है ॥ २ ॥

हे युद्धोंके स्वामी ! सोमके अश ! तू पूर्ण और दर्शनीय हो, अतः मुझे सतान और घनसे परिपूर्ण बना ॥ ३ ॥

तू दर्शनीय और अत्यन्त परिपूर्ण है, मैं भी गाय घोड़े आदि पशु, मत्तति, घर, घन आदिसे पूर्ण बनूंगा ॥ ४ ॥



योऽस्मान् द्वेष्टि य वय द्विष्मस्तस्य त्व प्राणेना प्यायस्व ।

आ वय प्याक्षिणीमहि गोमिरथैः प्रजया पशुभिर्गृहैर्बनेन ॥ ५ ॥

य देवा अष्टुमाप्याययन्ति यमार्धितमक्षिता मक्षयन्ति ।

तेनास्मानिन्द्रो वरुणो बृहस्पतिरा प्याययन्तु सुवन्स गोपाः ॥ ६ ॥

॥ इति सप्तमोऽनुषाकः ॥

अर्थ—(यः अस्मान् द्वेष्टि) जो हम सबका द्वेष करता है, (य वय द्विष्मः) जिसका हम सब द्वेष करते हैं, (तस्य प्राणेन आप्यायस्व) उसके प्राणसे तू बह जा, (गोभिः अथैः प्रजया, पशुभिः, गृहैः, बनेन य आप्याक्षिणी महि) गौवें घोड़े, सतति, पशु, घर और बनेसे हम बहेंगे ॥ ५ ॥

(य अष्टु देवाः आप्याययन्ति) जिस सोम को देव बहाते हैं, (य अक्षित अक्षिताः मक्षयन्ति) जिस अविनाशी को अविनाशी खाते हैं, (तेन) उस सोमसे (अस्मान्) हम सबको (सुवन्स गोपाः इन्द्रः वरुणः बृहस्पतिः) सुवनके रक्षक इन्द्र वरुण बृहस्पति ये देव (आप्याय यन्तु) बहावें ॥ ६ ॥

भावार्थ—जो कुछ हमारा द्वेष करता है और जिसका हम द्वेष करते हैं उसके प्राणका तू हरण कर और हम यमादिसे परिपूर्ण बनेंगे ॥ ५ ॥

जिस सोमको देव बहाते और भक्षण करते हैं उससे हम पुष्ट हों, जिस सुवनके रक्षक देव हमारी रक्षति करें ॥ ६ ॥

जगत्सूणी घर ।

यह सपूर्ण जगत् एक बड़ा मारी घर है, इस घरमें हम सब रहते हैं । इस घरमें दो आदर्श बालक हैं, इन बालकोंका नाम 'धर्म और चन्द्र' है । हमारे घरमें बालक कैसे हों, और माता पिताने प्रयत्न करके अपने घरके बालकोंको किस प्रकारकी शिक्षा देनी चाहिये और बालक कैसे बनने चाहियें, इस विषयका उपदेष्टा इस सूक्तमें दिया है । हर एक घरके मातापिता इस दृष्टिसे इस सूक्तका विचार करें ।

खेलनेवाले बालक ।

घरम बालक (क्रीडन्तौ शिषू) खेलनेवाले होने चाहियें रोनेवाले नहीं । बालक कमखोर, बीमार और दोषी हुए तो ही रोते रहते हैं । यदि यं बलवान्, नीराम और

किन्हीं शारीरिक दोषसे दूषित न हों, तो प्रायः रोग नहीं । मातापिताओंका उचित है कि वे गृहस्थाश्रममें एसा योग्य और नियमानुसृत व्यवहार करें कि त्रिमये गुरु, इष्ट पुरु, नीराग और आनदी बाळक उत्पन्न हों ।

## अपनी गक्तिमें चलना ।

बाळकोंमें दृष्टा गुण यह चाहिये कि वे ( मापया पूर्वापर चान्तः ) अपनी शारीरिक दक्षिणमें ही आगे पीछे चमक रहें । दृष्टाकद्वारा उगानपर उठेग, दृष्टाने चान्तः या चलेगे ऐसे परावर्त्ती बाळक न हों । मातापिता बाळकान् दुष्ट और वे नियमानुसृत चलनचाल रहें, तो उनको एसे अपनी दक्षिणमें प्रवेश करनेवाले बाळक होगे । आ मातापिता दुष्प्रवृत्ती नहीं हैं, मदापारी हैं और अनुगामी हाकर गृहस्थाश्रम का व्यवहार एसा करते हैं कि त्रिमये धार्मिक व्यवहार कहा जाय, उनको सुयोग्य बाळक होते हैं । आ नीराग और गुरु बाळक हात हैं वे किन्ना भी कष्ट दुःख या भी अपन प्रयत्नसे आग बदनका पालन करते ही रहते हैं ।

## द्विग्विजय ।

वे आग बटकर विद्वान् और पुण्याधी हाकर ( अपरं परियागः ) समुद्रक पातः और दक्षदक्षान्तरमें प्रवेश करते हैं, दिग्विजय करते हैं । अपन ही ग्राममें ही समुद्रक समान बैठते नहीं, समुद्रक ऊपरस अवस्था अन्तर्दिष्टमें मया करते हैं और दक्षदक्षान्तरमें परिभ्रमण करते हैं और पय, मदापार तथा सुखीत्या आदि वा उपदय करते हैं और सब जनताको योग्य आदय बताते हैं ।

## जगत्को प्रकाश देना ।

इस प्रकार योगपुरुषार्थ से व्यवहार करते हुए उनमें एक ( अथा विद्वानि ह्ये नानि विद्वत् ) सब जगत् का प्रकाश देना है अथवा एमें पूर्वी हुए जनता के प्रकाश में जाता है । सब दक्षदक्षान्तरमें यह एसा निव भ्रमण जाता हुआ जनताका अथाग गुरुवाक्य प्रकाशमें जानका सब जाना है ।

दृष्टा गृहस्थाश्रमी ( अनु विद्वत् ) अनुगामी हाकर अनुगाम अनुगम हाकर ( मयः आदय ) सर्वत्र जाता हाता है । विद्वान् या वही आत्मा हुए या की दुःखान् न नष्ट देना हाता है । अनुगामी हाता अनुगमे अनुगम हाता नष्टा हाता न नष्टि

औपधियोंका उपभाग करने आदिसे ब्रह्म भी तरुणके समान नवीन होना समझ है ।

सूर्य और चन्द्रपर यह रूपक प्रथम मग्न में है । पाठक इसका तथित विचार कर और अपने शालकोषी शिक्षा आदिक विषयमें योग्य उपदृष्ट प्राप्त करें । एक सूर्य जैसा पुत्र हाव आ जगत् का प्रकाश देवे, अथवा एक चन्द्र जैसा पुत्र होव कि जो (नवः नवः मवति) नवजीवन प्राप्त करनेकी विद्या संपादन करक नवीन जमा हाव और (दीर्घ आयुः प्रप्तिरते) दीर्घायु प्राप्त करे और लोगोंको भी दीर्घायु बनावे ।

### कृतव्यका भाग ।

आ जमत्को प्रकाश देता है वह (देव्यः माग विदधाति) देवोंके लिये मान्य दता है, अथवा देवोंके लिये कर्तव्य का भाग देता है अर्थात् यह इस कार्यका करे वह उस कार्यको समाप्त इस प्रकार कार्यविभागके विषयमें आज्ञाएं दता है और विभिन्न कार्यकर्ताओंसे विभिन्न कार्य कराकर एक महान कार्य परिपूर्ण करा दता है । मनुष्योंको भी यह आदर्श सामने रखना चाहिये । दक्षिण, इस सृष्टीमें जल ज्ञानवि देनेका कार्य करता है, अग्नि उपानक कार्यमें उत्तर है, वायु सुखाता है, सूमी आधार दती है, इत्यादि देव विभिन्न कार्योंका भाग भिरपर लकर अपन अपने कार्यमें उत्तर रहकर सब जगत् का महान कार्य निमा रह हैं । मानो यह मुख्य देव इन गौण देवोंको करनेके लिये कार्यभाग देता है । इसी प्रकार राष्ट्रमें मुख्य नता अन्य गौण नताओंका कर्तव्य का भाग बांट देव और व उसका योग्य रीतिसे करें, तो सबका अपन अपन कार्यका भाग करनेसे मान् कार्यकी सिद्धी हो जाती है ।

### पूर्ण हो ।

एक पूर्ण मोम होता है जो पूर्विमाके दिन प्रकाशता है । वृत्तरा सोमका जल होता है । जल भी हुआ तो भी वह पूर्ण बननेकी क्षमति रखता है, इस कारण वह न्यून नहीं है । इसीलिये उसको (अमूनः अग्नि) अमून-परिपूर्ण कहा है । वह साम जलरूप हा या पृथ हो वह अमून ही है, क्योंकि कि यदि वह जल जल हुआ ता कुछ दिनोंके बाद वह पूर्ण होगा ही अतः वह न्यून रहनवाला नहीं है । न्यून होनेपर भी वह प्रयत्नपूर्वक पूर्ण बनता है, यह पूर्ण बननेका उसका प्रयत्नार्थ हरएक मनुष्यके लिये अनुकरणीय है । इसलिये उसकी प्रार्थना तृतीय मग्नमें की जाती है कि (अमून मा कृधि) अमून-परिपूर्ण-होके कर, क्योंकि कि तू परिपूर्ण करनेवाला है, तू पूर्ण बनना

चाहता है । घन, आराध्य, प्रजा, गीण, घाह आदिमें भी परिपूर्ण मैं होऊ यह भविष्य  
यही है ।

यही माव चतुर्थ मंत्रमें कहा है : ( समन्तः समग्रः असि ) तू सब प्रकारसे समग्र  
अर्थात् पूर्ण है, मैं भी तरी ठपासनामे ( समग्र समन्तः ) पूर्ण और समग्र हाऊ ।

### दुष्टका नाश ।

जो दुष्ट हम सबका द्वेष करता है और जिस अकेले दुष्ट का द्वेष हम सब करते हैं,  
उसके हाथी होनेमें कोई सन्देह ही नहीं है । यदि ऐसा कोई मनुष्य मर सबका पात  
करे तो उसका नियमन करना आवश्यक होता है । यह द्वेष करनेवाला यही अल्पसंख्या  
वाला कहा है । ' जिस अकेलेका हम सब द्वेष करते हैं और जो अकेला हम सब का  
द्वेष करता है । ' इसमें बहुत संख्याक सज्जन और अल्पसंख्याक दुर्वर्तन होनेका संछ्छ  
है । ऐसे दुष्टोंका दधाना और सज्जनोंकी सफलता मार्ग सुलभ करना, यही धार्मिक  
मनुष्य का कर्तव्य है ।

### दिव्यमोजन ।

जो देवोंका मोजन होता है उसको देवमोजन अथवा दिव्यवाजन कहते हैं । यह  
देवोंका वाजन क्या है इस विषयमें इस सूक्तके पष्ठ मंत्रमें कहा है ।—

देवाः अष्टु आप्यायन्ति )

अक्षिताः अक्षितं अक्षयन्ति ॥ ( म० ७ )

“ दस लोग सोमको बढ़ाते हैं और ये अमर देव इस अक्षय सोमका मक्षण करते  
हैं । ” सोम यह एक वनस्पति है । इसको बढ़ाना और उसको मक्षण करना, यह देवोंका  
कर्म है । अर्थात् दस छाकाहारी ये । जो लोग देवोंक छिप मांस का प्रयोग करते हैं  
उनको बढ़क ऐसे मन्त्रोंका विषय विचार करना चाहिये । सोम देवोंका अन्न है इस  
विषयमें अनेक वेदमन्त्र हैं । और सबका तात्पर्य यही है कि आ ऊपर कहा  
है ।

पाठक इस रीतिसे इस सूक्तका विचार करें ।

## गौ ।

[ ८२ ( ८७ ) ] ( अग्निः—अनकः सपरकामः । देवता—अग्निः )

अम्यर्वित सुष्टुतिं गर्भमाभिमुस्मासु भद्रां प्रविणानि षत् ।

इमं यज्ञं नयत देवता नो धृतस्य धारा मधुमत् पवन्ताम् ॥ १ ॥

मय्यग्ने अग्निं गृह्णामि सह क्षत्रेण वर्षसां यलेन ।

मयिं प्रजां मय्यामुर्दधामि स्वाहा मय्यग्निम् ॥ २ ॥

इहैवाग्ने अग्निं धारया रयिं मा त्वा नि क्रन् पूर्वचित्ता निकारिणः ।

क्षत्रेणाग्ने सुयममस्तु तुम्यद्वपसृता वर्षतां ते अनिष्टृतः ॥ ३ ॥

अर्थ—( सु-स्तुतिं गव्य अग्निं अम्यर्वित ) उत्तम स्तुति करने योग्य गौ सप्तमी प्रगतिकी सीमाका आदर करो । ( अस्मासु भद्रां प्रविणानि षत् ) हमारे मय्यग्ने कल्याणकारी यम धारण करो । ( नः इमं यज्ञं देवता नयत ) हमारे इस यज्ञको देवताओंतक पहुँचाओ । ( धृतस्य धाराः मधुमत् पवन्तां ) धीकी धाराएँ मधुरताके साथ बहें ॥ १ ॥

( अग्न मयि क्षत्रेण वर्षसां यलेन सह अग्निं गृह्णामि ) पहिले मैं अपने अन्दर क्षात्रशौर्य, ज्ञानका तेज और बल के साथ रहनेवाले अग्निका प्रहण करता हूँ । ( मयि प्रजां ) मेरे अन्दर प्रजाको, ( मयि आयुः ) मेरे अन्दर आयुको, ( मयि अग्निं ) मेरे अन्दर अग्निको ( दधामि ) धारण करता हूँ, ( स्वाहा ) यह ठीक कहा है ॥ २ ॥

हे अग्ने ! ( इह एव रयिं आधिधारय ) यहाँ ही यम का धारण कर । ( पूर्वचित्ताः निकारिणः स्वा मा नि क्रन् ) पूर्वकालसे यम लगानेवाले अपकारी लोग तेरे सम्बन्ध में अपकार न करें । हे अग्ने ! ( क्षत्रेण तुम्य सुयममस्तु ) क्षात्रबलसे तेरे लिये उत्तम नियमम होवे । ( द्वपसृता अनिष्टृतः वर्षतां ) तेरा सेवक अर्हिसित होता हुआ बड़े ॥ ३ ॥

भाषा—गौओंकी उत्पत्तिका विचार करा, क्योंकि यही उत्तम प्रजासा क योग्य कार्य है । धी की मीठी धाराएँ बिपुल हों अर्थात् घरमें धी बिपुल हो कल्याण करनेवाला बिपुल यम प्राप्त कर और इन सबका विनियोग प्रभुकी सत्पुष्टताके पक्षमें किया जावे ॥ १ ॥

मेरे अन्दर शौर्य, ज्ञान, बल, सतति, आयु आदि स्थिर रहे ॥ २ ॥

अन्वमिच्छसामग्रमस्यदन्वहानि प्रथमो जातवेदाः ।

अनु सूर्यं उपसो अनु रश्मीननु चाषाष्टपिषी आ विवेश ॥ ४ ॥

प्रत्यमिच्छसामग्रमस्यत् प्रत्यहानि प्रथमो जातवेदाः ।

प्रति सूर्यस्य पुरुषा र्च रश्मीन् प्रति चाषाष्टपिषी आ रतान ॥ ५ ॥

घृतं तं अग्रे दिव्ये सप्तस्यै घृतेन त्वां मनुर्वा समिन्धे ।

घृतं तं देवीर्निर्त्यं आ र्हन्तु घृतं तुभ्यं दुहतां गावो अग्रे ॥ ६ ॥

अर्थ-(अग्निः उपसां अग्र अनु अक्षयत्) अग्नि-सूर्य-उपःकाष्ठोंके अग्र भागमें प्रकाश करता है। (प्रथमः जातवेदाः अहानि अनु अक्षयत्) पहिला जातवेद-सूर्य-दिनोंको प्रकाशित करता है। वही (सूर्यः अनु) सूर्य अनुकूलता के साथ (उपसः अनु) उपःकाष्ठोंक अनुकूल, (रश्मीन् अनु) किरणोंके अनुकूल, (चाषाष्टपिषी अनु आ विवेश) शुलोक और पृथ्वी लोक के बीचमें अनुकूलताके साथ व्यापता है ॥ ४ ॥

(अग्निः उपसां अग्र प्रति अक्षयत्) अग्नि-सूर्य-उपाओंक अग्र भागमें प्रकाशता है। (प्रथमः जातवेदाः अहानि प्रति अक्षयत्) पहिला जात वेद-सूर्य-दिनोंको प्रकाशित करता है। (सूर्यस्य रश्मीन् पुरुषा प्रति) सूर्यकी किरणोंको विशेष प्रकार प्रकाशित करता है। तथा (चाषाष्टपिषी प्रति आ रतान) चाषाष्टपिषीको उसीमें कैलाया है ॥ ५ ॥

हे अग्रे ! ( ते घृत दिव्ये सप्तस्ये ) तेरा घृत दिव्य स्थानमें है। ( मनुः त्वां घृतेन अद्य स इन्धे ) मनुष्य तुझ घीसे आज प्रक्षलित करता है। ( मत्स्यः देवीः ते घृत आवहन्तु ) मैं गिरामेवाली दिव्य शक्तियां तेरे घृत को ल आवें। हे अग्र ! ( गावः तुभ्यं घृत दुहतां ) गायें तेरे लिये घीको दें ॥ ६ ॥

भावार्थ-मुझ घन प्राप्त हो। अपकारी लोग अपकार मैं कर सकें। क्षात्र तेजसे सर्वत्र नियमव्यवस्था उत्तम रह। प्रभु का भक्त सेवक वृद्धिको प्राप्त होव ॥ १ ॥ सूर्य उपाके पश्चात् प्रकट होता है और दिनमें प्रकाश करता है। यह प्रकाशसे शुलोक और पृथ्वी के बीचमें व्यापता है ॥ ४-५ ॥

मनुष्य घीसे आग्निमें यजन करे, क्योंकि घीही उत्तम दिव्य स्थानमें रहनेवाला है। गायें हवमके लिय उत्तम घी तैयार करें-द्वय ॥ ६ ॥

इस छन्दमें गारुडाकी महिमा वर्णन की है। तथा गौक घृतक इवनका भी माहात्म्य वर्णन हुआ है। घृतके इवनसे रोगोंके दूर होनेकी बात इससे पूर्व (अथर्व कां० ७६।५) कही है। अतः रोग दूर होने के बाद दीर्घ आयु, बल, तन्मस्विता, ज्ञान, धन आदिका प्राप्त होना समझ है। इस प्रकार छन्दकी समाप्त देखना आग्य है।

## मुक्ति ।

[ ८४ (८८) ]

( आपिः—सुनाःशेषः । देवता—वरुणः )

अप्सु ते राजन् वरुण गृहो हिरण्ययो मिथः ।

ततो घृतव्रतो राजा सर्वा धामानि मुञ्चतु ॥ १ ॥

धाम्नो धाम्नो राजभितो वरुण मुञ्च नः ।

यदापो अघ्न्या इति वरुणेति यद्विम ततो वरुण मुञ्च नः ॥ २ ॥

अर्थ—हे वरुण राजन् ! ( ते गृहः अप्सु ) तेरा घर जलोंमें है और वह ( मिथः हिरण्ययः ) साथ साथ सुवर्णमय भी है। ( ततः घृतव्रतः राजा ) वहाँसँ व्रतपालक वह राजा ( सर्वा धामानि मुञ्चतु ) सब स्थान मुक्त-बन्धन-रहित करे ॥ १ ॥

हे वरुण राजन् ! ( इतः धाम्नः धाम्नः नः मुञ्च ) इस प्रत्येक बन्धनस्थान से हमारी मुक्तता कर। ( यत ऊचिम ) जो हम कहते हैं कि ( आपः अघ्न्याः इति ) जल अवश्य गौक समान प्राप्तव्य है और ( वरुण इति ) हे वरुण तूही अष्ट दे दे वरुण ! ( ततः नः मुञ्च ) इस कारणसे हमें मुक्त कर ॥ २ ॥

भावार्थ—हूँ सयक राजाधिराज प्रभा ! तूरा धाम सुवर्ण जैसा बन्धक नेपाला आकाश में है। वह तू इस जगत्का सख्यनिषमोंका पालन करन वाला एकमात्र राजा है। वह तू हमें सय बन्धनोंसे मुद्धाओ ॥ १ ॥

हम सयको हरणक बन्धनसे मुक्त कर। मुक्तिकी इच्छासे हम आपके गुणगान करत हूँ ॥ २ ॥

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यम मयाय ।

अधा वयमादित्य व्रते तवानागसा अदितये स्याम ॥ ३ ॥

प्रास्मत् पाशान् वरुण मुञ्च सर्वान् य उत्तमा अधमा वारुणा ये ।

दुष्पप्य दुरित नि प्वास्मदर्थ गच्छम मुकृतस्य लोकम् ॥ ४ ॥

अर्थ- हे वरुण ! ( उत्तम पाश अस्मत् उदुत्तमाय ) उत्तम पाश को हमसे जरा ढिला कर, ( अधम पाश अधमपाय ) अधम पाशको भी दूर कर, तथा ( मध्यम पाश विमयाय ) मध्यम पाशको हटा दे । हे आदित्य ! ( अधा वय तव व्रते ) अब हम तेरे नियमम रहकर ( अनागसा अदितये स्याम ) निष्पाप बनकर वचनरहित-मुक्ति-अवस्थाके लिये योग्य होंगे ॥ ३ ॥

हे वरुण ! ( ये उत्तमाः य अधमाः वारुणाः पाशाः ) ओ उत्तम मध्यम और कनिष्ठ वारुण पाश हैं उन ( सर्वान् पाशान् अस्मत् प्रमुञ्च ) सब पाशोंको हमसे दूर कर । ( दुष्पप्य दुरित अस्मत् निःस्पृ ) दुष्ट स्वप्न और पापका आवरण हमसे दूर कर । ( अथ गच्छेम मुकृतस्य लोक ) अब पुण्य लोकको हम प्राप्त होंगे ॥ ४ ॥

भावार्थ- हे भगवन् ! हमारे उत्तम, मध्यम और अधम पाश खोल दो । तेरे व्रतमें रहते हुए हम सब निष्पाप होकर बन्धनसे मुक्त होनेके लिये योग्य होंगे ॥ ३ ॥

हमारे सब पाश मुक्त कर, हमसे पाप दूर कर, जिससे हम पुण्यलोक को प्राप्त होंगे ॥ ४ ॥

### तीन पाशोंसे मुक्ति ।

मनुष्यको मुक्ति चाहिये । परन्तु वह मुक्ति बंधनकी निश्चयि हानके बिना नहीं हो सकती । उत्तम, मध्यम और अधम इतीक तीन बंधन मनुष्यको बंधनमें बाँधते हैं । सात्त्विक, राजस और तामस इतिके ये बंधन हैं जो मनुष्यका पराधीन कर रहे हैं । तमाइतीक बंधनकी अपेक्षा सात्त्विक बंधन बहुत अच्छा है इसमें सदेह नहीं, परन्तु वह बंधन ही है । लाहेकी मृत्तला का बंधन बेसा बंधन है उसी प्रकार सोनेकी मृत्तला पाँवमें अटकायी तो भी वह बंधन ही है । इसी प्रकार हीन मनाइतीकोंके बंधनकी अपेक्षा भेष्ट मनोइतीकोंका बंधन बेशक अच्छा है परन्तु वित्तइतिकोंका निरोध करनेकी





## राजाका कर्तव्य ।

[ ८४ (८९) ]

( आशिः— सृगुः । देवता— १ सातवदा अग्निः, २-३ इन्द्रः । )

अनाघृप्यो सातवेंदा अमर्त्यो विराहंने क्षत्रसृद् दीदिहीह ।

विश्वामर्मीवाः प्रमुञ्चन् मानुषीभिः शिवाभिरुष परि पाहि नो गर्भम् ॥ १ ॥

इन्द्र क्षत्रमभि वाममोजोवायथा वृषम चपणीनाम् ।

अपानुदो जनममिश्रायन्तमुहं देवेभ्यो अकृणोः लोकम् ॥ २ ॥

अर्थ— हे अम । तू (जात-वेदाः अनाघृप्यः) ज्ञान प्राप्त हुआ और अजिह्व ( अमर्त्यः विराद् ) अमर, विशेष प्रकारका सज्जाद् ( क्षत्र-भृत् इह दीदिहि ) क्षत्रियोंका भरण पोषण करनेवाला होकर यहाँ प्रकाशित हो । और ( विश्वामर्मीवाः प्रमुञ्चन् ) सष रोगोंको दूर करता हुआ ( मानुषीभिः शिवाभिः ) मनुष्योंके सघर्षी कल्याणोंके साथ ( अथ नः गय परि पाहि ) आज हमारे घरकी रक्षा कर ॥ १ ॥

हे इन्द्र ! ( चपणीनां वृषम ) मनुष्योंमें अष्ट ! तू ( वाम क्षत्र ओजः अभि आयथाः ) उत्तम क्षात्रबलके लिय प्रसिद्ध हुआ है । तू ( अमिश्रायन्त जन अप नुदः ) शत्रुता करनेवाले मनुष्यका दूर कर । और ( देवभ्यः उह लोक उ अकृणोः ) दिव्य जनोंके लिये विस्तृत स्थान कर ॥ २ ॥

भावार्थ— तू ज्ञानी, अजय, दीर्घायु, क्षात्रबलका पोषणकर्ता, विशेष भ्रेष्ठ राजा होकर यहाँ प्रकाशित हो । अपने राज्यके सष राग दूर कर और मनुष्योंके कल्याण करमेवाली पातें करके हमारे घरोंकी उत्तम रक्षा कर ॥ १ ॥

मनुष्योंमें भ्रेष्ठ वन, उत्तम क्षात्र बलकी वृद्धि कर । शत्रुता करनेवाला को दूर कर, और जो भ्रेष्ठ लोग हैं उनके लिय विस्तृत वापेक्षेत्र बना ॥ २ ॥

मुगो न भीमः कुचरो गिरिस्थाः परावत आ जगम्यात् परस्याः ।

सुक संशयं पविमिन्द्र विगम वि अश्रून्तावि वि मृचो नुदस्व ॥ ३ ॥

अर्थ (गिरिस्थाः भीमः सृगः न) पर्वतपर रहनेवाले भयकर सिंह, व्याघ्र आदि पशुके समान तू शत्रुके ऊपर ( परस्याः परावतः आ जगम्यात् ) दूरसे दूरके स्थानसे भी हमला करता है । हे इन्द्र ! तू अपने ( सुक पर्वि सशाय ) बाण और वज्रको तीक्ष्ण करके ( शश्रून् धितावि ) शत्रुओंका ताड़न कर और ( मृचः वि नुदस्व ) हिंसक लोगोंको दूर हटा दे ॥ ३ ॥

भावार्थ—जिस प्रकार पहाड़ोंपर रहनेवाला व्याघ्र अपने शत्रुपर हमला करता है उस प्रकार तू अपने दूरके शत्रुपर भी चढ़ाई कर । अपने शस्त्र तीक्ष्ण कर, शत्रुको खूब मार दे और हिंसकोंको दूर भगा दे ॥ ३ ॥

### राजा क्या कार्य करे ?

इस सूक्तमें अग्नि और इन्द्रके मिश्रिते राजाका कार्य बताया है । राजा अपने राष्ट्रमें क्या कार्य करे सो देखिये—

१ जातवेदाः—ज्ञान प्राप्त करे और अपने राष्ट्रमें ज्ञानका प्रसार करे ।

२ अनाघृण्यः—राजा ऐसा सामर्थ्यवान् बने कि वह शत्रुका केश भी हमला भागसा या पराजित न होव ।

३ वि-राट्—विशेष प्रकारका अष्ट राजा बने ।

४ क्षत्रमृत्युः—क्षत्रियोंका और क्षात्रगुणोंका मरणपोषण और सबर्जन करे ।

५ अमर्त्यः अग्निः इह दीदिविहि—अमर अधिके समान इस राष्ट्रमें प्रकाशित होता रह ।

६ विश्वाः जमीवाः प्रमुञ्चन्—अपने राष्ट्रस सब रोग दूर करे, राष्ट्रके सब लोग नीरोग हों ऐसा प्रवच करे ।

७ मानुपीभिः शिवाभिः—उत्तम कर्षणपूर्व मनुष्योंसे युक्त होव ।

८ गय परिपाहि—राष्ट्रके हरएक घरकी रक्षा कर ।

९ अर्पणीना दूयमः—राजा मनुष्योंमें अष्ट बने ।

१० वाम क्षत्र ओजः—उत्तम धात्रवस्तसे युक्त राजा शिव ।

११ अमित्रायन्त जन अपनुव—घत्रुता करनेवाले मनुष्योंको अपने दशदे दूर कर ।

- १२ देवेभ्य उरु लोक अकृणाः= सज्जनोक्त लिये विस्तृत स्थान बना देवे ।  
 १३ परस्याः परावतः आजगम्यात्=दूर दूरसे भी शत्रुके ऊपर प्रवण्ड हमला करे ।  
 १४ सूक्त पर्वि सशाय=अपने शस्त्रास्त्र उत्तम प्रकार सीक्ष्ण करके तैयार रखे ।  
 १५ शत्रून् पिताहि-शत्रुओंको विशेष ताड़न करे ।  
 १६ मृषा विनुदस्य-द्विसक जनोको अपने राष्ट्रसे दूर करे । राष्ट्रसे धारि निकाल देवे ।  
 इस प्रकार इस सूक्तसे बोध प्राप्त होता है । पौठक इसका विचार करे । इस सूक्तसे  
 ऐसे राजाके कर्तव्य कहे हैं, उसी प्रकार इत्येक मनुष्य को भी आत्मरक्षा का उपदेश  
 इसी सूक्तसे मिल सकता है ।

[ ८५ (१०) ]

( श्रुतिः—अथर्षा स्वस्त्ययनकामः । दधता-तार्क्ष्यः )

तन्मू पुं वाजिनं देवजुत् सद्दोवानं तरुतार रथानाम् ।

अरिष्टनेमिं पृतनाबिमिश्रं स्वस्तये तार्क्ष्यमिहा हुवेम ॥ १ ॥

अर्थ— ( स्य वाजिन ) उस बलवान्, ( देवजुन् सहायान् ) दिव्य पुरु  
 पोंद्वारा सेवित शक्तिवान् ( रथानां तरुतार ) रथोंको शीघ्रगतिसे चलाने  
 वाले, ( अरिष्ट—नेमि ) सुहृद् हथियारवाले ( पृतना—जिं ) शत्रुसेनाका  
 पराजय करनेवाला, ( आशु तार्क्ष्यं ) शीघ्रकारी महारथीको (स्वस्तये आहु  
 वेम ) कल्याणक लिये यहाँ हम बुलाते हैं ॥ १ ॥

इस सूक्तमें भी तार्क्ष्य अर्थात् गरुडके निपसे राजाके कर्तव्य बताये हैं—

- १ वाजिन=राजा बलवान्, अथवाला, बलवान् का समर्थ कानवाला हो ।
- २ देवजुन्=देवों अर्थात् दिव्यजनोक्त द्वारा सेवित अर्थात् जिसके पास, जिसके  
 ओहददार, धानी और सख्त दिव्य लाग होता है ।
- ३ सद्दोवान=बलवान् राजा हो ।
- ४ रथानां तरुतार=रथोंका शीघ्रगतिसे चलानेवाला राजा हो । अर्थात् राजाके  
 पास शीघ्रगामी रथ हो ।
- ५ अ-रिष्ट-नेमिः - जिसके हथियार टूट हुए न हों । अर्थात् सशस्त्रोवाला राजा  
 हो । अथवा ( अरिष्ट नेमि ) अरिष्ट अर्थात् सज्जनोंका दबानेवाला  
 राजा हो ।
- ६ पृतनाजिः - शत्रुसेनाको भीतनेवाला राजा हो ।

७ आशु - शीघ्रकारी राखा हो, हाथमें लिया हुआ कार्य शीघ्रतासे करनेवाला राखा है ।

८ ताक्ष्यः - ' ताक्ष्य ' का अर्थ ' रथ ' है । रथ जिसके पास होते हैं उसका वह नाम है । राखा उत्तम रथी हो ।

९ स्वस्तये - प्रजापतियोंका कल्याण करनेके लिये राजा प्रयत्न करे ।

इस प्रकार इस सूक्तको इसके पूर्व सूक्तके साथ पाठक पढ़ें और राजाके कर्तव्य जानें ।  
य सूक्तमी हरएक मनुष्यको साधारण आत्मरक्षाका उपदेश दे रहे हैं, उसको ग्रहण करके मनुष्य उत्तम हो ।

[ ८६ ( ९१ ) ]

( श्रुतिः- अथर्वा स्वस्त्ययनकामः । देवता-इन्द्रः )

आतारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवेहवे सुहव शूरमिन्द्रम् ।

हुवे तु शक्रं पुरुङ्गतमिन्द्रं स्वस्ति न इन्द्रो मघवान् कृणोत ॥ १ ॥

अर्थ— मैं ( आतार इन्द्र ) रक्षक प्रभुको ( अवितार इन्द्र ) सरक्षक इन्द्रको, ( हवेहवे सुहव शूर इन्द्र ) प्रत्येक कार्यमें, बुलाने योग्य उत्तम प्रकार बुलाने योग्य, शूर प्रभुको और ( पुरुङ्गत शक्र इन्द्र हुवे ) बहुतांशों द्वारा प्रार्थित शक्तिवान् प्रभुको बुलाता हूँ । वह ( मघवान् इन्द्रः न स्वस्ति कृणोत ) ऐश्वर्यवान् प्रभु हमारा कल्याण करे ॥ १ ॥

यह मन्त्र परमेश्वरका वर्णन करता हुआमी राजाके कर्तव्योंका उपदेश करता है—

१ आतार, अवितार - राजा प्रजाकी उत्तम रक्षा करे ।

२ शूरः - राजा शूर हो, डरनेवाला न होय ।

३ शक्रः - राजा शक्तिमान हो, अशक्त न हो ।

४ मघवान् - राजा अपने पास धनसंग्रह करे, राजा कमी धनहीन न बने ।

५ स्वस्ति कृणोत - राजा प्रजाका कल्याण करे ।

इसप्रकार राजप्रकरणमें इस मन्त्रसे बोध प्राप्त होता है ।

## व्यापक देव ।

[ ८७ ( १२ ) ]

( ऋषिः—अथर्वा । इयता—रुद्रः )

यो अग्नौ रुद्रो यो अप्स्यन्तर्य ओषधीर्वीरुष आविबेष्ट ।

य इमा विश्वा मुवनानि चाकलूपे तस्मै रुद्राय नमो अस्तु प्रये ॥ १ ॥

अर्थ—( यः रुद्रः अग्नौ ) जो वाणीका प्रवर्तक देव अग्निमें ( यः अप्सु अन्तः ) जो जल्लोक अन्तर ( यः ओषधीः वीरुषः आविबेष्ट ) जो औषधी और वनस्पतियोंमें प्रविष्ट हुआ है, ( यः इमा विश्वा मुवनानि चाकलूपे ) जो इन सब मुवनोंको रक्षता है, ( तस्मै अग्नये रुद्राय नमः अस्तु ) उस अग्निसमान तेजस्वी, वाणीके प्रवर्तक देवको नमस्कार है ॥ १ ॥

( रुद्र=रु+र ) रु अर्थात् वाणी किंवा शब्द इसका जो प्रवर्तक आत्मा है, वह सब स्थिर वर वदावोंमें व्याप्त है, वह अक्ष, ऋषि, ओषधि, वनस्पति सब सुवन आदिमें है, वही सबका रक्षिता है । उस तेजस्वी आत्मदेवको मेरा नमस्कार है ।

## सर्पविष ।

[ ८८ ( १३ ) ]

( ऋषिः—गङ्गमान् । इयता—उषकः )

अपेक्षारिरस्यरिवा असि ।

विषे विषमिष्ट या विषमिद् वा अपृक्थाः ।

अहिमेवाम्भोपेति त मेहि ॥ १ ॥

अर्थ—तू ( अरिः वे असि ) निश्चयसे शत्रु है । ( अरिः असि ) शत्रु ही है ( अतः अप इहि ) दूर चला जा । ( विषे विष अपृक्थाः ) विषमें विष मिला दिया है । ( विष इत वे अपृक्थाः ) निःसन्देह विष मिला दिया है । अतः ( अहिं पव आमि अप इहि ) साँपके पास ही जा और ( त जहि ) उसको मारो ॥ १ ॥

सर्पविष मनुष्यादि प्राणियोंका शत्रु है, अतः उसको मनुष्योंसे दूर रखना चाहिये । विषका उपचार विषसे ही होता है । साँपन काट लिया तो यदि वह मनुष्य ठीकी साँप को काटेगा, तो वह मनुष्य बच जाता है, परंतु मनुष्यमें इतना घेरे चाहिये । इससे विषक साथ विष मिल जाता है अर्थात् साँप के विषके साथ मनुष्यके शरीर में आया विष मिल जाता है और वह मनुष्य बच जाता है । इस विषयमें अधिक खोज करना चाहिये और निश्चय करना चाहिये, यह बात कहाँ तक सत्य है ।

## वृष्टि जल ।

[ ८९ ( ९४ ) ]

( ऋषिः—सिन्धुद्वीपः । देवता—अग्निः )

अपो दिव्या अचाविषु रसेन समपृष्महि ।

पर्यस्वानम आगमं सं मा स सृज वर्षसा ॥ १ ॥

स माग्ने वर्षसा सृज स प्रजया समायुषा ।

विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात् सह ऋषिभिः ॥ २ ॥

अर्थ—( दिव्याः आपः स अचाविष ) दिव्य जलका मैं संचय करता हूँ और ( रसेन स अपृष्महि ) उसके साथ मिलाता हूँ । हे ( अग्ने अम्र ! ( पर्यस्वान आगम ) मैं दूध लेकर तेरे पास आगया हूँ । ( त मा वर्षसा स सृज ) उस शुद्धका तेजके साथ युक्त कर ॥ १ ॥

हे अम्र ! ( मा वर्षसा प्रजया आयुषा स सृज ) शुद्ध तेज, आयु और सतति से युक्त कर । ( देवाः अस्य मे विद्युः ) देव यह मरा हेतु जानें । तथा ( ऋषिभिः सह इन्द्रः विद्यात् ) ऋषियोंके साथ इन्द्र शुद्ध जाने ॥ २ ॥

भाषार्थ—आकाशसे आनयाला वृष्टिजल मैं संग्रहित करता हूँ, उस में औषधिरस मिलाता हूँ । इसका प्रयोगसे मैं तेजस्वी बनूँगा । इस प्रयोगमें मैं दूध तथा दूआ पीता हूँ ॥ १ ॥

इसमें शुद्ध तेजस्विता, दीर्घ आयु और उत्तम सत्तान होगी । यह देवों और ऋषियोंका पलाया भाग है ॥ २ ॥

इदमापः प्र वेदतावधं च मलं च यत् ।

यथाभिदुद्रोहानृतं यथा श्लेष अमीरुणम् ॥ ३ ॥

एषोस्तेधिपीय समिदसि समेधिपीय ।

सेजोसि सेजो मयि वेदि ॥ ४ ॥

अर्थ—इ ( आपः ) जलो ! ( इत् अवयव मल च यत् ) यह जो कुछ मुझमें पाप और मल है ( प्रवहत् ) यहा जाओ । ( यत् च अभिदुद्रोह ) जो कुछ मैंने द्रोह किया था, ( यत् च अश्लेष ) जो असत्य कहा हो, ( यत् च अमीरुण श्लेषे ) और जो न बरते हुए शाप दिया हो, उसका सब दोष दूर करो ॥ ३ ॥

( एषः असि एधिपीय ) तू बड़ा है, मैं बड़ा हाऊ । ( समित असि समेधिपीय ) तू प्रकाशमान है मैं प्रकाशित होऊ । ( तेजः असि, तेजा मयि वेदि ) तू तेजस्वी है मुझमें तेज स्थापन कर ॥ ४ ॥

माषार्थ—उक्त प्रयोगसे शरीरके मल दूर होंगे और मन की पाप वासना भी दूर होगी । शाप देना आवि भाष भी हटेंगे और मनुष्य निर्दोष और शुद्ध बनेगा ॥ ३ ॥

जो लोग बड़े हैं, जो तेजस्वी हैं और जो धीर हैं उनको देखकर इतर लोग भी बड़े तेजस्वी और शूर बनें ॥ ४ ॥

### वीघायु बननेका उपाय ।

इस सूक्तमें दीर्घायु, तेजस्वी और सुवञ्जावान् होनेका उपाय बताया है । पाठक इस का विचार करें । उक्त काम प्राप्त करनेके लिय निर्दोष बनना चाहिये । मनुष्यमें शरीरके कुछ दोष होते हैं और मन शुद्धिक भी कुछ दोष होते हैं । ये दोष इस प्रकार इस सूक्तमें वर्णन किये हैं—

( १ ) अभिदुद्रोह, ( २ ) अश्लेष, ( ३ ) अमीरुण श्लेषे ।

( ४ ) अवयव मल प्रवहत् । ( म० १ )

“ ( १ ) वृद्धि का घात पात करना, कष्ट प्रयोग करना, ( २ ) असत्य मापन करना, ( ३ ) निष्ठुरतासे गालियाँ देना, ( ४ ) हत्यादि जो मनके हीन भाष हैं और जो शारीरिक दाप हैं । इनको दूर करना चाहिये । इनमें कुछ दोष मनके हैं, कुछ वाणीक हैं कुछ शरीरके हैं और कुछ अन्य प्रकारके हैं । ये सब दूर होने चाहिये तब



उत्तम तत् नितनु ) जो ऊपर उठा हो वह नीचा हो जावे । ( यथा शेषः स्त्रीषु अपाधातै ) जिस रीतिसे इनका दुष्कर्म स्त्रियोंके विषयमें न होवे उस प्रकार उत्तमक ये दुष्ट ( अनावयाः असत् ) न पहुचनेवाले हों ॥ १ ॥

भाषार्थ—हे ईश्वर ! दुष्ट और उपद्रव देनेवाले मनुष्य का बल घटा दा ॥ १ ॥  
दुष्ट मनुष्यका धन लेकर ईश्वरके शुभ कर्ममें लगा दो ॥ २ ॥

पीडा देनेवाले दुष्ट मनुष्य स्त्रियोंको कभी कष्ट न दें ऐसा प्रवचन करो ॥ ३ ॥

यह वृक्ष स्पष्ट है असः इसका विषेव विवरण करनेकी आवश्यकता नहीं । दुष्टोंके आक्रमणसे स्त्रियोंका बचाव करना चाहिये । स्त्रियोंके पास भी कोई दुष्ट मनुष्य न पहुच सके ।

## राजाका कर्तव्य ।

[ ९१ ( ९६ ) ]

( ऋषिः—अथर्वा । देवता—वन्द्रमाः )

इन्द्रः सुत्रामा स्वर्वा अर्वाभिः सुमृष्टीको मन्वतु विश्ववेदाः ।

वार्षतां द्वेपो अमय नः कुञ्जोत्तु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥ १ ॥

अर्थ—( सुत्रामा स्ववान् ) उत्तम रक्षक आत्मविश्वाससे युक्त ( विश्व वेदाः इन्द्रः अर्वाभिः सुमृष्टीकः मन्वतु ) सब धर्मोंसे युक्त प्रभु अपनी रक्षाओंसे उत्तम सुखकारी होवे । ( द्वेपोः वार्षतां ) शत्रुओंका प्रतिपक्ष करे । ( नः अभय कृणोतु ) हमारे लिये निर्भयता करे । ( सुवीर्यस्य पतयः स्याम ) हम उत्तम धनके स्वामी बनें ॥ १ ॥

भाषार्थ— राजा उत्तम रक्षक, अपने सामर्थ्यपर विश्वास रखनेवाला, धनवान्, प्रजाकी रक्षा करके उनकी सुख देनेवाला होवे । शत्रुओंको दूर करे और उनको रोक रखे । प्रजाको अभय देवे और प्रजाको धनसंपन्न कर ॥ १ ॥

यहाँ इन्द्रके वृणनके मियस रामाक गुण वर्णन किये हैं । इसी प्रकार आगेका धृष्टभी इस विषयका है—

[ १२ ( १७ ) ]

( ऋषिः—वषर्षा । देवता—चन्द्रमा । )

स सुत्रायाम् स्वर्गो इन्द्रो अस्मदाराधिद् द्वेपः सनुसर्पुषोत् ।

तस्य वष सुमसौ यक्षियस्यापि मूत्रे सौमनसे स्याम ॥ १ ॥

अर्थ—( सः सु त्रायाम् स्थवान् इन्द्रः ) वह उत्तम रक्षक आत्मशक्तिका विश्वासी प्रभु ( द्वेपः ) चातुर्गोको ( अस्मात् आरात् बिद् सनुतः सुपोत् ) हमारे पाससे निष्पन्नपूर्वक दूर करे । ( वष तस्य यक्षियस्य सुमती स्याम ) हम उस पूजनीयकी सुमतिमें रहें । ( अपि सौमनसे स्याम ) और उसके उत्तम मनोभाषमें रहें ॥ १ ॥

भावार्थ—वह उत्तम रक्षक आत्मपलसे युक्त राजा चातुर्गोको प्रजा जनोसे दूर करे । प्रजाभी उस पूजनीय राजाके विषयमें उत्तम मुक्ति धारण करे और वह भी उनके विषयमें शुभमति धारण करे ॥ १ ॥

राजा प्रजाकी रक्षा करे, प्रजाभी राजनिष्ठ रहे और दोनों एक दूसरेके विषयमें सुप्त हो धारण करें । यह वष भी प्रह्लाद वर्णन करते हुए राजाके गुण बता रहा है ।

[ १३ ( १८ ) ]

( ऋषिः—मृगश्रिः । देवता—इन्द्रः )

इन्द्रेण मन्युना वयमग्निं प्याम पृतन्यतः ।

पुनतो ब्रूण्यमिति ॥ १ ॥

अर्थ—( मन्युना इन्द्रेण वष ) उत्साहयुक्त इन्द्रके साथ रहकर हम सप्त ( पृथ्वाणि अग्निं घन्तः ) चातुर्गोको निकृपमेय रीतिसे भारते हुए ( पृतन्यतः अग्निं-स्याम ) सेना लेकर शत्रुई करनेवालोंको जीत लें ॥ १ ॥

इस सूक्त में इन्द्रके वीर्य के विषये राजाका वर्णन पूर्ववत् ही है । उत्साही और राजाके भाषिपत्यमें रहनेवाले प्रजाजन ( वृत्र ) आवरक घातुका नाश करने में समर्थ होते हैं और सैन्यके साथ शत्रुई करनेवाले बैरीका भी पराजय करनेमें समर्थ होते हैं ।

मनुष्यको दीर्घ आयु, तल्लिखता और उत्तम सतति प्राप्त होगी ।

दूधरेका द्रोह करना और गालियाँ देना आदि जो क्रोधके दोष हैं व बहुत बुराव हैं । क्रोधके कारण मनुष्यके खूनसे जीवन सञ्चका नाश होता है, और जीवन सत्त्व नष्ट होनेसे मनुष्यकी आयु घटती है, वीर्य क्षीण होनेसे सतति कमबोर होती है और अनेक प्रकारकी हानि होती है । अतः ये दोष दूर होने चाहिये ।

मनुष्यका यकृत बिगड़नेसे मनुष्य क्रोधी, द्रोही, अविचारी, असस्वभावकी आदि होता है, इसी कारण अन्य दोषभी होते हैं । शरीरमें नसनाडीमें मलसञ्च वढ़नेसे शारीरिक रोग होते हैं और इस प्रकार मनुष्यके दुःख बढ़ते जाते हैं । शरीर और मन निर्दोष होनेसे ही इसकी निवृत्ती हो सकती है । इसके लिय दिव्यजल का सेवन करना एक महत्त्वपूर्ण उपाय है ।

### दिव्यजल सेवन ।

दिव्यजल वह है कि जो मघोसे वृष्टिसे प्राप्त होता है; यहाँ ज़ुबा यज्ञद्वारा माँपका बना जल भी वैसाही काम देसकता है । इटीका जल घरमें शुद्ध पात्रोंमें संग्रहीत करना चाहिये । इस प्रकार संग्रह किया हुआ और बंद पात्रमें रखा हुआ जल एक वर्षतक उत्तम प्रकार रहता है और बिगड़ता नहीं । यही जल पीनेसे शरीर शुद्ध होता है । उपवास करके यदि यह ही बिपुल प्रमाणमें पीया जाय, तथा मस्ति आदिके लिय बरी बर्ताजाय तो शरीर की धान्तरिक शुद्धता उत्तम रीतिसे जाती है । यकृत भी शुद्ध होता है, आँसोंके दोष दूर होते हैं और अन्यान्य मल हट जात हैं । प्रायः इस प्रमाणसे सब राग दूर होजात हैं और मनुष्य तेजस्वी, सुखद और वीर्यवान् हो जाता है ।

यहाँ पाठक 'दिव्य जल' से उत्तम जल इतनाही माव न लें । गुलाफस आवा हुआ जल ऐसा अर्घ्य समझ, ऊपर से गुलाफ की ओरसे आया जल वृष्टिजल ही हाता है और यही यहाँ अपेक्षित है । इस जलमें और ( रसेन अप्रणधि ) विविध औषधियों के रस मिलाय आँगम ता लाभ विद्यत होगा इसमें कोई सन्देह नहीं है । जो दोषोंका घाती हैं उनको ही औषधी कहत हैं, अतः औषधीयोंके रस योग्य प्रमाणमें इसमें मिलानेसे बहुत लाभ होना समझ है । कौनसे औषधियोंके रस मिलाने, यह विचार दापो और रागोंक अनुमधानसे निश्चय निश्चय करना योग्य है । रोगी मनुष्य जिस जिस दापम पीडित होगा उमक निवारण के लिय उपयोगी औषधियोंके रस उस जलमें मिलाने होंगे । यह विचार साधारण मनुष्य नहीं कर सकता । उत्तम वैद्यही इस

विषयका विचार करके निश्चय कर सकता है । अतः इस विवरणके संबंध में इतना कथन पर्याप्त है ।

यह इष्टिभल शरीरका मल दूर करता है, मनके माष शरीरशुद्धीसे ही पवित्र होते हैं, इस प्रकार वह मनुष्य पवित्र और शुद्ध होता है और तेजस्वी, वर्षस्वी, ओजस्वी और सुपुत्रवाला होता है ।

## दुष्टका निवारण ।

[ १० ( १५ ) ]

( श्रपिः—अगिराः । देवता—मन्त्रोक्ताः )

अपि वृक्ष पुराणवद् व्रतैरेव गुप्तिवत् ।

ओजो दासस्य दम्भय ॥ १ ॥

यं तदस्य सम्युत वस्विन्द्रेण वि मजामहै ।

म्लापयामि भ्रजः शिघ्रं परुणस्य व्रतेन ते ॥ २ ॥

यथा श्वेषो अपायति स्त्रीषु चासुदनावयाः ।

अवस्थस्य ऋदीवतः शाङ्कुरस्य नितोदिनः ।

यदावतभव तर्चनु यदुर्ध्वं नि तर्चनु ॥ ३ ॥

॥ इति अष्टमोऽनुवाकः ॥

अर्थ—( व्रततेः पुराणवत् गुप्तिवत् इव ) लताओंकी पुराणी सूखी लकड़ियोंके समान ( दासस्य ओजः अपिवृक्ष दम्भय ) हिंसक क पलको काटो और दपाओ ॥ १ ॥

( यं तदस्य सम्युत वसु ) हम इसके उस एकछित घनको ( इन्द्रेण विमजामहै ) प्रभुके साथ पाँट देते हैं । तथा ( परुणस्य व्रतेन ) परुण देवके व्रतके साथ ( ते भ्रजः शिघ्रं म्लापयामि ) तेरे तेजके घमड़को मिटा देते हैं ॥ २ ॥

( अवस्थस्य ऋदीवतः ) जीव गाली देनेवाले, ( शाङ्कुरस्य नितोदिनः ) कटक जैसे प्यवहार करनेवाले और पीड़ा देनेवाले दुष्ट मनुष्य का ( यत् आतत ) जो फैला हुआ दुष्टृष्य है, ( तत् अयं तनु ) मिट जाये ( यत्

उत्तम तत् नितनु ) जो ऊपर उठा हो वह नीचा हो जावे । ( यथा शेषः स्त्रीषु अपायाते ) जिस रीतिसे इनका दुष्कर्म स्त्रियोंके विषयमें न होवे उस प्रकार उनतक ये दुष्ट ( अनाययाः असत् ) न पहुचनेवाले हों ॥ १ ॥

भावार्थ—हे ईश्वर । दुष्ट और उपद्रव देनेवाले मनुष्य का बल घटा दा ॥ १ ॥  
दुष्ट मनुष्यका घन लेकर ईश्वरके शुभ कर्ममें लगा दो ॥ २ ॥  
पीडा देनेवाले दुष्ट मनुष्य स्त्रियोंको कभी कष्ट न दै ऐसा प्रवच करो ॥ ३ ॥  
यह वस्तु स्पष्ट है अतः इसका विशेष विवरण करनेकी आवश्यकता नहीं । दुष्टोंके आक्रमणसे स्त्रियोंका बचाव करना चाहिये । स्त्रियोंके पास भी कोई दुष्ट मनुष्य न पहुच सके ।

## राजाका कर्तव्य ।

[ ११ ( १६ ) ]

( ऋषिः— अथर्वा । देवता—चन्द्रमाः )

इन्द्रः सुश्रामा स्वर्गा अर्वाभिः सुमृहीको मभवतु विश्ववेदाः ।  
वाचतां द्वेषो अमय नः कृणोत सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥ १ ॥

अर्थ— ( सुश्रामा स्वर्गाम् ) उत्तम रक्षक आत्मविश्वाससे युक्त ( विश्व वेदाः इन्द्रः अर्वाभिः सुमृहीकः मभवतु ) सब धनोंसे युक्त प्रभु अपनी रक्षाओंसे उत्तम सुखकारी होवे । ( द्वेषः वाचतां ) शत्रुओंका प्रतिषेध करे । ( नः अमय कृणोतु ) हमारे लिये निर्भयता करे । ( सुवीर्यस्य पतयः स्याम ) हम उत्तम धनके स्वामी बनें ॥ १ ॥

भावार्थ— राजा उत्तम रक्षक, अपने सामर्थ्यपर विश्वास रखनेवाला, धनवान्, प्रजाकी रक्षा करके उनकी सुख देनेवाला होवे । शत्रुओंको दूर करे और उनकी रोक रखे । प्रजाको अमय देवे और प्रजाको धनसंपन्न करे ॥ १ ॥

यहाँ इन्द्रके धनके विषय राजाके गुण वर्णन किये हैं । इसी प्रकार आगेका सूत्रमी इस विषयका है—

[ ११ ( १७ ) ]

( अर्पिः—अथर्षा । देवता—चन्द्रमाः )

स सुप्रामा स्वर्गो इन्द्रो अस्मदाराधिद् द्वेयः सनुतयुयोत ।  
तस्य वय सुमतौ यज्ञियस्यापि मन्त्रे सौमनसे स्याम ॥ १ ॥

अर्थ— ( सः सु प्रामा स्ववान इन्द्रः ) वह उत्तम रक्षक आत्मशक्तिका विश्वासी प्रभु ( द्वेयः ) शत्रुओंको ( अस्मात् आरात् बिह सनुतः युयोत ) हमारे पाससे निष्पन्नपूर्वक दूर करे । ( वय तस्य यज्ञियस्य सुमतौ स्याम ) हम उस पूजनीयकी सुमतिमें रहें । ( अपि सौमनसे स्याम ) और उसके उत्तम मनोभावमें रहें ॥ १ ॥

भाषार्थ— वह उत्तम रक्षक आत्मशक्तसे युक्त राजा शत्रुओंको प्रजा जनोंसे दूर करे । प्रजामी उस पूजनीय राजाके विषयमें उत्तम बुद्धि धारण कर और वह भी उनके नियममें शुभमति धारण करे ॥ १ ॥

राजा प्रजाकी रक्षा करे, प्रजामी राखनिष्ठ रहे और दोनों एक दूसरेके विषयमें सुधुड़ी चारण करे । वह एक ही प्रभुका वर्णन करते हुए राजाके गुण बता रहा है ।

[ १३ ( १८ ) ]

( अर्पिः—भृगुवज्जिरा । देवता—इन्द्रः )

इन्द्रेण मनुना क्षमामि प्याम पृतन्यतः ।  
घ्नन्तो वृत्रार्थप्रति ॥ १ ॥

अर्थ— ( मनुना इन्द्रेण वय ) उत्साहयुक्त इन्द्रके साथ रहकर हम सप ( वृत्राणि अप्रति घ्नन्तः ) शत्रुओंको निरुपमेय रीतिसे मारते हुए ( पृतन्यतः अभि—स्याम ) सेना लेकर चढ़ाई करनेवालोंको जीत लें ॥ १ ॥

इस एक में इन्द्रके वर्णन के विषये राजाका वर्णन पूर्ववत् ही है । उत्साही वीर राजाके आधिपत्यमें रहनेवाला प्रजाजन ( वृत्र ) आवरक शत्रुका नाश करने में समर्थ होते हैं और सैन्यके साथ चढ़ाई करनेवाला बैरीका भी पराभव करनेमें समर्थ होते हैं ।

## स्वावलंबनी प्रजा ।

[ ९४ ( ९९ ) ]

( ऋषिः—अथर्व । देवता—सोमः )

ध्रुवं ध्रुवेण हविषा सोमं नयामसि ।

यथा न इन्द्रः केवलीर्विश्वः समनसस्करत् ॥ १ ॥

अर्थ—( ध्रुवेण हविषा ) स्थिर हविसे ( ध्रुव सोम अब नयामसि ) स्थिर सोमको प्राप्त करते हैं । ( यथा इन्द्रः ) जिससे इन्द्र ( नः विश्वः केवलीः समनसः करत् ) हमारी प्रजाएँ दूसरेके ऊपर अवलंबन न करने वाली और उत्तम मनवाली करे ॥ १ ॥

स्थिर कर प्रदान करनेसे राजा स्थिर रहता है और वह अपनी प्रजाको ( केवलीः ) स्वतंत्र, स्वावलंबनी अर्थात् दूसर पर अवलंबन न करनेवाली और ( स-मनसः ) उत्तम मनवाली, करता है । केवल अपनी ही शक्तितसे रहनेवाली, दूसरेकी शक्तिकी सहायता न लेनेवाली जो प्रजा होती है उसका नाम वरमें 'केवली प्रजा' है । यह शब्द प्रजाकी अष्टम उन्नति का सूचक है । जिस राष्ट्रकी प्रजा केवल अपनी शक्तितसे ही रहती है और किसी प्रकार दूसरेपर निर्भर नहीं होती वह राष्ट्र पूर्ण हुआ है ऐसा मानना युक्त है ।

## हृदयके दो गीध ।

[ ९५ ( १०० ) ]

( ऋषिः—कपिश्रुतः । देवता—गृध्रौ )

उदस्य स्वासौ विधुरौ गृध्रौ धार्मिव पेततुः ।

उच्छोचनप्रशोचनावस्वोच्छोचनी हृदः ॥ १ ॥

अर्थ—( अस्य विधुरौ गृध्रौ ) इसकी व्यथा बढ़ानेवाले दो गीध ( श्याबी गृध्रौ इव ) श्यामरंगवाले गीधोंके समान ( धां उत् पेततुः ) आकाशमें उड़ते हैं । ये ( उच्छोचनप्रशोचनी ) शोक बढ़ानेवाले और सुखानेवाले हैं । ये ( अस्य हृदः उच्छोचनी ) इसके हृदयको सुखानेवाले हैं ।

भावार्थ—काम और लोभ ये दो गीध के समान दो भाव मनुष्यमें रहते हैं । ये पीड़ा बढ़ानेवाले हैं । ये दोनों शोक बढ़ानेवाले और सुखानेवाले हैं । ये हृदयको भी सुखाते हैं ॥ १ ॥

अहमेनाबुदतिष्ठिषु गानौ आन्तसदाविष ।

कुक्कुराविष कूर्जेन्साबुदधन्तौ वृक्षाविष ॥ २ ॥

आतोदिनौ नितोदिनावषौ सतोदिनावुष ।

अपि नद्याम्यस्य मेदुं य इतः स्त्री पुमान् जमार ॥ ३ ॥

अर्थ—( आन्तसदी गाथी इष ) यक हुए गीओं या बैलोंके समान ( कुजतौ कुर्कुरी इष ) चिह्नानेवाले कुत्तोंके समान, ( उत्-अवन्तौ वृक्षौ इष ) हमला करनेवाले भेड़ियोंके समान ( अह एनौ उत् अति ठिप ) मैं इन दोनोंको उलाँचता हूँ ॥ २ ॥

( आतोदिनौ नितोदिनौ ) पीड़ा देनेवाले और ब्यथा करनेवाले ( अयो उत्त सतोदिनौ ) और बुद्धि देनेवाले उन दोनोंको ( अपि नद्यामि ) मैं पाँचदेता हूँ । ( या पुमान् ) जो पुरुष या ( स्त्री ) स्त्री ( इतः मेदुं जमार ) यहाँसे प्रजननसामर्थ्य धारण करते हैं, उसका भी सयम करता हूँ ॥ ३ ॥

भावार्थ—बैलों कुत्तों या भेड़ियोंके समान मैं इन दोनों भावोंको उलाँचकर परे जाता हूँ अर्थात् इनको कामूमें रखता हूँ ॥ २ ॥

स्त्री या पुरुष इनके इच्छियोंका इसमें सयम है अतः इन पीड़ा देनेवाले दोनों भावोंको मैं यथनमें रखता हूँ ॥ ३ ॥

स्त्रीपुरुषविषयक काम और लोभ ये मनुष्यके अन्तःकरणको सुखानेवाले, पीड़ा और कष्ट देनेवाले हैं । ये गीषक समान मनुष्यके अन्तःकरणपर हमला करते हैं । अतः इनको यथनमें प्रतिबधमें रखना चाहिये । अर्थात् इन इच्छियोंका सयम करना चाहिये । सयम करनेसे ही मनुष्य सुखी होता है ।

## दोनों मूत्राशय ।

[ १६ ( १०१ ) ]

( श्रविः-कपिञ्जलः । दधता-धयः )

असदन् गावः सदन्पतद् वसतिं वर्यः ।

आस्थान् पर्यता अस्थुः ग्याग्निं पुषार्वतिष्ठिषम् ॥ १ ॥

अर्थ—( गावः सदन्ने असदन् ) गौव गाशालामें बैठती है, ( वर्यः वसतिं अपतद् ) पक्षी घासलेमें जाते हैं, ( पर्यताः आस्थामे अस्थुः ) पर्यंत



अपने स्थानमें स्थिर हैं, उसी प्रकार ( स्थाञ्जि वृषको अतिष्ठिप ) सुहर स्थानपर दोनों मूषाशायोंको स्थिर करता हू ॥ १ ॥

शरीरमें दानों और दो मूषाशय हैं, वे सुदृढ स्थानपर हैं । उनको उत्तम अवस्थामें रखनेसे शरीरका स्वास्थ्य ठीक रहता है । ये ही दो अवयव शरीरका भिन्न हू करते हैं अतः इनको ठीक अवस्थामें रखना हरएक मनुष्य का कार्य है । शत्रियसममस ही वे दोनों ठीक अवस्थामें रहते हैं और अपना कार्य करनेमें समर्थ होते हैं ।

## यज्ञ ।

[ ९७ ( १०२ ) ] ( ऋषिः— अथर्वा । देवता—इन्द्राग्नी )

यद्यपि त्वा प्रयति यज्ञे अस्मिन् होतृभिकित्वञ्चकृणीमहि ।

ध्रुवमथो ध्रुवमूता श्विष्ठ प्रविद्वान् यज्ञमूर्प याहि सोमस् ॥ १ ॥

समिन्त्र नो मनसा नेप गोभिः स सूरिर्मिहिरिबन्तं स्वस्त्या ।

स ब्रह्मणा देवाहितं यदस्ति स देवानां सुमतौ यज्ञियानाम् ॥ २ ॥

अर्थ—हे ( भिकित्वन् हातः ) ज्ञानी हवनकर्ता ! ( यत् अथ इह ) जो आज यहाँ ( अस्मिन् प्रयति यज्ञे ) इस प्रपन्नपूर्वक करने योग्य यज्ञमें हम ( त्वा अकृणीमहि ) तुझको स्वीकारते हैं । हे ( श्विष्ठ ) बलिष्ठ ! तू ( ध्रुव अथः ) स्थिरतासे आओ ( उत ध्रुव यज्ञ प्रविद्वान् ) और स्थिरयज्ञ को जाननेवाला तू ( सोम उप याहि ) सोमको पास जाओ ॥ १ ॥

हे ( इरिबन् इन्द्र ) किरणयुक्त तेजस्वी प्रभो ! ( नः मनसा गोभिः स ) हमें मनसे गौओंसे युक्त कर, ( सूरिभिः स ) विद्वानोंसे युक्त कर, ( स्वस्त्या स ) कल्याणसे युक्त कर और ( नेप ) ले बल । ( यत् देयहित अस्ति ) जो देवोंका हितकारी है उस ( ब्रह्मणा स ) ज्ञानसे युक्त कर तथा ( यज्ञियानां देवानां सुमतौ स ) पूजनीय देवोंकी उत्तम मतिमें हमें ले बल ॥ २ ॥

भावार्थ— हे ज्ञानी होता गण ! तुम्हारा वरण मैंने इस यज्ञमें किया है, यह यज्ञ उत्तम विधिपूर्वक करो । स्थिरचित्तसे रहो और शान्तिस यज्ञ समाप्त करो ॥ १ ॥

हे देव ! हमें गौयें दो, जानियोंकी सगति दो, हमारा सब प्रकार हित करो जो हितकारी ज्ञान है वह मुझे दो, सब सज्जनोंका मन मेरे विषयमें उत्तम होवे ॥ २ ॥

मानावह उद्यतो देव देवांस्तान् प्रेरय स्व अग्ने सघस्ये ।

जक्षिवांसः पपिवांसो मधून्यसौ पंच वसवो वद्वनि ॥ ३ ॥

सुगा यो देवाः सवना अकर्म य आजग्म सर्वन मा जुपाणाः ।

वहमाना भरमाणाः स्वा वद्वनि वसुं धर्मं दिवमा रोहितातु ॥ ४ ॥

यज्ञं यज्ञं गच्छ यज्ञपतिं गच्छ ।

स्वां योनिं गच्छ स्वाहा ॥ ५ ॥

अर्थ— हे देव अग्ने ! ( यान् उद्यतः देवान् ) जिन अभिलाषा करनेवाले देवोंको ( आ अवहः ) यहाँ ले आया था ( तान् स्व सघस्ये प्रेरय ) उनको अपने सघ स्थानमें प्रेरित कर । हे ( वसवः ) वसुदेवो ! ( जक्षिवांसः ) अन्न खाते हुए और मधूनि पपिवांसः मधुर रस पीते हुए हमारे लिये ( वसूनि पंच ) धर्मोंको प्रदान करो ॥ ३ ॥

हे ( देवाः ) देवो ! ( यः सु—गा सवना अकर्म ) तुम्हारे लिये उत्तम जाने योग्य घर बनाते है । ( सवने मा जुपाणाः आजग्म ) यज्ञमें मेरे दान का स्वीकार करते हुए आप आये अथ ( स्वा वसूनि वहमाना वसु भर माणाः ) अपने धर्मोंको धारण करते हुए और हमारे लिये धनका धारण करनेवाले तुम सघ ( धर्म दिवमा अनु आरोहता ) प्रकाशमान युलोकके ऊपर चढो ॥ ४ ॥

हे यज्ञ ! तू ( यज्ञ गच्छ ) यज्ञस्थानके प्रति प्राप्त हो, ( यज्ञपतिं गच्छ ) यज्ञमानको प्राप्त हो । ( स्वां योनिं गच्छ ) अपने आश्रयस्थानको प्राप्त हो, ( स्वा—हा ) स्वकीय वस्तुका त्याग ही यज्ञ है ॥ ५ ॥

भावार्थ— अग्नि इस यज्ञमें सघ देवोंको लाता और वापस पहुँचाता है । सघ देव यहाँ आँवें, अन्न खाएँ, सोमरस पीयें और हमें धर्म देव ॥ ३ ॥

हे देवो ! यह यज्ञ मानो तुम्हारा घरही धमा है । इस सोमाभिषेक आओ, साथ धन लेते आओ, वह धन हमें अर्पण करो और यज्ञसमाप्तिके पाद स्वर्गमें अपने स्थानमें जाइयेगा ॥ ४ ॥

यज्ञ यज्ञस्थानमें और यज्ञमानके पासही होता है । जिन साधर्मोंसे धनता है उनमें रहता है, स्वार्थका त्याग करना ही यज्ञ है ॥ ५ ॥

एष ते यज्ञो यज्ञपते सुहृत्कथाकः ।

सुवीर्यः स्वाहा ॥ ६ ॥

वर्षद् हुतेभ्यो वषद् हुतेभ्यः ।

देवो गातुविदो गातु विस्वा गातुर्मित ॥ ७ ॥

मनसस्पत इमं नो दिवि देवेषु यज्ञम् ।

स्वाहा दिवि स्वाहा पृथिव्यां स्वाहान्तरिक्षे स्वाहा वाते वा स्वाहा ॥ ८ ॥

अर्थ- हे ( यज्ञपते ) यज्ञकर्ता यज्ञमान ! ( एष ते यज्ञः ) यह तेरा यज्ञ (सह-सूक्त-वाक्य) उत्तम सूक्त बचनोंके साथ हुआ, अतः (सुवीर्यः) वह वीर्यवान् हुआ है, ( स्वा-हा ) स्वीकार्य अर्पणका त्याग ही यज्ञ है ॥ ६ ॥

( हुतेभ्यः वषद् ) इबम करनेवालोंको अर्पण और ( अहुतेभ्यः वषद् ) इबम न करनेवालोंके लियेभी अर्पण है । हे ( देवाः ) देवो ! आप लोग ( गातुविदः ) मार्गोंको जाननेवाले हैं, ( गातु विस्वा गातु इत ) मार्गको जानकर मार्गसे ही जाओ ॥ ७ ॥

हे ( मनसा-पते ) मनके स्वामी ! ( नः इम यज्ञ दिवि देवेषु ) हमारे इस यज्ञको शुलोकमें देवोंके मध्यमें (वां) चारण करते हैं । (दिवि स्वा-हा) शुलोकमें हमारा समर्पण, (पृथिव्यां स्वाहा) पृथिवीमें हमारा यह समर्पण पृथ्वी, और ( अन्तरिक्षे स्वाहा ) अन्तरिक्षमें तथा ( वाते स्वाहा ) वायुमें अथवा प्राणमें हमारा समर्पण पृथ्वी ॥ ८ ॥

भावार्थ- सूक्त और मन्त्रकथन पूर्वक जो यज्ञ होता है वही वीर्यवान् होता है । स्वार्पण ही यज्ञ है ॥ ६ ॥

समर्पण तो सबके लिये करना चाहिये । चाहे वे यज्ञ करनेवाले हों या न हों । मार्ग जाननेके पश्चात् उसी मार्गसे जाना उत्तम है ॥ ७ ॥

हे ममपर अधिकार रखनेवाले यज्ञमान ! जो यज्ञ तुम करोगे वह देवोंके लिये समर्पण करो, उसका समर्पण पृथ्वी, अन्तरिक्ष, और शुलोक में मित सबके लिये होवे ॥ ८ ॥

यह सूक्त यज्ञका महत्त्व वर्णन करता है । पाठक इस भावार्थका मनन करें । इससे इस सूक्तका आशय उनके समक्षमें आसकता है ।

[ १८ ( १०३ ) ]

( श्राविः—अथर्षा । देवता—मन्त्रोक्ता )

सं वृद्धिर्क्तं इविषां घृतेन समिन्त्रेण वसुना स मरुद्भिः ।

सं देवैर्विन्दैश्चमिरुक्मिन्त्रं गच्छतु इविः स्नार्हा ॥ १ ॥

अर्थ—( घृतेन इविषां वृद्धिः स अक्षत ) घी और इषन सामग्रीसे आहुती भरपूर हो, ( इन्त्रेण, वसुना, मरुद्भिः स अक्षत ) इन्द्र, वसु, मरुत् इन देवोंके साथ ( विन्दैश्चमिः देवैः स ) सब अन्य देवोंके साथ भरपूर हो । ( इविः इन्द्र गच्छतु ) यह इषन सब देवोंके मुख पर प्रसक्तो पहुँचे । ( स्ना—हा ) यह आत्मसमर्पण ही है ॥ १ ॥

इस यज्ञका सब पूर्वयज्ञके साथ है । इषनसामग्री, घी आदि पदार्थ पूर्ण रीतिसे बचाविधि यज्ञमें समर्पण किया जावे । यह सब यज्ञ परमेश्वरका समर्पण हो ऐसी बुद्धिसे अर्थात् ईश्वरार्पणबुद्धिसे किया जावे । स्वार्थत्याग—अपनी वस्तुका समर्पण—करनसे ही यज्ञ सिद्ध होता है ।

[ १९ ( १०४ ) ]

( श्राविः—अथर्षा । देवता—मन्त्रोक्ता )

परिं स्तुषीहि परिं वेदिं वेदिं मा जामि मौषीरमुषा क्षयानाम् ।

होतृपदं हरितं हिरण्यं निष्का एत यजमानस्य लोके ॥ १ ॥

अर्थ—( वेदिं परिस्तुषीहि ) वेदीके चारों ओर अच्छी प्रकार आच्छादित कर और ( परि वेदिं ) उसका भारण कर । ( असुषा क्षयानां जामि मा मौषीः ) इस यज्ञभूमिमें सोनेवाली इस हमारी पहिण अर्थात् यजमान की धर्मपत्नीके साथ कपट मत कर । ( होतृ—सदन हरित हिरण्य ) यह इषनकर्ताका घर हरियाबल से युक्त और उत्तमवर्ण युक्त है । ( यजमानस्य लोके एते निष्का ) यजमानके स्थानपर ये सिक्का, सुनहरी मोहरें, या आभूषण हैं ॥ १ ॥

वेदीके चारों ओर अत्यंत स्वच्छता रखनी चाहिये और सदा बंद स्थिर रखनी चाहिये । किसी स्त्रीके साथ कपट या धुरा वर्ताव नहीं करना चाहिये । घरके साथ हरियाबल युक्त उद्यान करके उसको उत्तम अवस्थामें रखना चाहिये । घरका उत्तम स्वच्छ अवस्थामें रखना चाहिये । यही गृहस्थीके भूषण हैं ।

## दुष्ट स्वप्न न आनेके लिये उपाय ।

[ १०० ( १०५ ) ]

( ऋषिः—यमः । देवता—दुःस्वप्ननाशनः )

पर्यावर्ते दुष्पन्थात् पापात् स्वप्न्यादभूत्याः ।

ब्रह्माहमन्तरं कृण्वे परा स्वप्नमुखाः शुचः ॥ १ ॥

अर्थ— मैं ( पापात् दुष्पन्थात् पर्यावर्ते ) पापसे दुष्ट स्वप्नसे पीछे रहता हूँ । ( अभूत्याः स्वप्न्यात् ) अवनतिकारक स्वप्नसे पीछे रहता हूँ । ( अहं अन्तरं ब्रह्म कृण्वे ) मैं बीचमें ज्ञानको रखता हूँ । ( स्वप्नमुखाः शुचः परा ) मैं दुःस्वप्न आदि शोकजनक बातोंको दूर करता हूँ ॥ १ ॥

पापसे दुष्ट स्वप्न, शारीरिक अवनति, तथा शोकमय स्वभाव बनता है । पाप शारीरिक, इन्द्रियविषयक, मानसिक, वाचिक, और बौद्धिक मछोंसे होता है अथवा पापसे इनमें मलसंचय होता है । अतः पूर्वोक्त प्रकार इन स्थानोंके मल दूर करने चाहिये, जिससे पाप कम होनेसे दुष्ट स्वप्न आना दूर होगा । शरीरादिकी शुद्धि करनेके उपाय इससे पूर्व कहे गये हैं । अपन और पापक बीचमें (ब्रह्म) अर्थात् ज्ञान किंवा परमेश्वरका मबन रखना चाहिये । इससे निःसन्देह पाप दूर होगा । मनकी शान्ति प्राप्त होकर दुरे स्वप्न कदापि नहीं आवेगा ।

[ १०१ ( १०६ ) ]

( ऋषिः—यमः । देवता—स्वप्ननाशनः )

यत् स्वप्ने अभिमन्त्रामि न प्राप्तरधिगम्यते ।

सत् उदस्तु मे शिव नहि तद् दृश्यते दिवा ॥ १ ॥

अर्थ—( यत् स्वप्ने अहं अभिमामि ) जो स्वप्नमें मैं अहं खाता हूँ वह ( प्रातः न अधिगम्यते ) सवेरे नहीं प्राप्त होता है । ( तत् सर्वं मे शिव अस्तु ) वह सब मेरे लिये शुभ होवे । ( तत् दिवा नहि दृश्यते ) वह दिनके समय नहीं दीखता ॥ १ ॥

स्वप्नमें मोमनादि मांस भागनका आदित्य दीखता है, वह सवेरे उठनपर या दिनमें नहीं दिखाई देता । अतः वह असत्य है । वह केवल मनकी विकृतिक कारण दीखता है । अतः ऐसे स्वप्न न आना ही इसलिये उत्तम ज्ञानपूर्वक यत्न करना चाहिये । जिनका वर्णन इससे पूर्व किया है ।

## उच्च बनकर रहना ।

[ १०२ ( १०७ ) ]

( ऋषिः—प्रजापतिः । देवता—मन्त्रोक्ता नानादेवताः )

नमस्कृत्य धावापृथिवीभ्यामन्तरिक्षाय मृत्यवे ।

मेधाम्यूर्जस्तिष्ठन् मा मा हिंसिपुरीश्वराः ॥ १ ॥

इति नवमोऽनुषाङ्गः ॥

अर्थ— धावापृथिवीभ्यां ) भुलोक और पृथ्वीलोक को तथा ( अन्तरिक्षाय मृत्यवे नमस्कृत्य ) अन्तरिक्ष और मृत्युको नमस्कार करके ( ऊर्ध्वः तिष्ठन् मेक्षामि=मेधामि=मिधामि ) ऊचा खड़ा होकर निरीक्षण करता हूँ । अतः ( ईश्वराः मा मा हिंसिषुः ) स्वामी - अधिकारी - मेरा नाश न करें ॥ १ ॥

भुलोक, अन्तरिक्षलोक और भूलोक इनमें रहनेवाले मातृ पुरुषोंको और मृत्युको नमस्कार करके अपनी धर्ममर्यादा के अनुसार मैं रहता हूँ । उच्च बनकर, उच्च स्थानमें रहता हुआ, उच्च विचार करता हुआ, उच्च लोगोंके साथ सख्त जोड़ता हुआ, बांछें छोड़ कर समस्तका निरीक्षण करता हूँ । और योग्य भाषण करता हूँ । अतः इस विश्वके अधिकारी मरी हिंसा न करें, मरा पातपात न करें ।

## उद्धारक क्षत्रिय ।

[ १०३ ( १०८ ) ]

( ऋषिः—प्रजा । देवता—आत्मा )

को अस्या नो द्रुहो विषयस्या उभेप्सति क्षत्रियो यस्य इच्छन् ।

को यमकामः क उ पूर्तिकामः को देन्यु वनुते दीर्घमायु ॥ १ ॥

अर्थ— ( कः=प्रजापतिः क्षत्रियः यस्य इच्छन् ) प्रजापालक क्षत्रिय प्रजाका घन यवानेकी इच्छा करता हुआ ( अस्याः अवययस्याः दृष्टः नः उभेप्सति ) परस्परके द्रोहरूप इस निन्दनीय दुर्गतिमें हमें ऊपर उठायेगा ( कः=प्रजापतिः यमकामः ) प्रजापालनरूप यमकर्ता, ( उ कः पूर्तिकामः )

और वही प्रजापालक हमारी पूर्णता करनेवाला है । (देवेषु कः दीर्घ आयुः वनुते) देवोंके अन्दर प्रजापालकही दीर्घ आयु देता है ॥ १ ॥

इस सूक्तमें उद्धार करनेवाले क्षत्रियक गुण वर्णन किये हैं, अतः इसका विशेष विचार करना योग्य है—

१ कः क्षत्रियः=(कः=प्रजापतिः=प्रजापालकः)। क्षत्रियः क्षतात् प्रायते)इससे जो प्रजाजनोका संरक्षण करता है उसका प्रजापालक क्षत्रिय कहते हैं । प्रजासंरक्षण वह एक क्षत्रियका मुख्य गुण है । 'कः' शब्दका अर्थ प्रजापालक है, यही राजा है ।

२ वस्य इच्छन्=( वसु इच्छन् ) जन की इच्छा करनेवाला प्रजाजनोका एवम् बढ़ानेकी इच्छा करनेवाला क्षत्रिय हो ।

३ अस्याः अवश्यवत्याः मुहः नः उल्लेख्यति—इस निन्दनीय आपसी कलह और पारस्परिक द्वेष्ट करनेकी अवस्थास इस प्रजाजनोका उद्धार करनेवाला क्षत्रिय हो । क्षत्रियका यही कर्तव्य है कि, वह प्रजाजनोको ऐसी शिक्षा दवे कि, वे आपसमें कलह करना छोड़ दें, पारस्परिक द्वेष्ट करना छाड़ दें ।

४ यज्ञकामः क्षत्रियः= सरकार-समिति-दानात्मक कर्मका नाम यज्ञ है । समिति करण रूप यज्ञ करनेवाला अर्थात् प्रजाजनोका संगठन करनेवाला क्षत्रिय हो । क्षत्रिय कभी प्रजामें फूट न करे और कभी आपसके द्वेष्टके भावको न बढ़ाव ।

५ पूर्तिकामः क्षत्रियः— प्रजाजनोकी सब प्रकार पूर्णता करनेवाला राजा हो । प्रजाजनोमें जो जो भ्यूनता हो उसको पूर्ण करे, और अपनी प्रजामें कभी अपूर्णता न रहने दे ।

६ दीर्घ आयुः वनुते=प्रजाजनोको दीर्घ आयु प्राप्त हो, ऐसा प्रवच करनेवाला राजा है । राजा राज्यशासनका ऐसा प्रवच करे कि जिसस प्रजाकी आयु बड़े और कभी न घट ।

इस सूक्तका इस प्रकार विचार पाठक करें और प्रजाके उद्धारक सबधमें उत्तम बोध प्राप्त करें ।

## गौको समर्थ बनाना ।

[ १०४ (१०९) ] ( ऋषिः—ब्रह्मा । देवता—आत्मा )

कः पूर्णि भेनुं वरुणेन दक्षामर्चणे सुवृषां नित्यवत्साम् ।

मृहस्पतिना सुस्यं जुषाणो यथावत् तन्वः कल्पयति ॥ १ ॥

अर्थ—(वरुणम् अथर्चणे दत्तां) वरुणने अथर्चा अर्थात् निम्नल पागीको वी हुई ( सुवृषां नित्यवत्साम् पूर्णि भेनु ) सुस्यस बुद्धनयोग्य बरसके साथ रहनेवाली विविध रगवाली गौको, ( मृहस्पतिना सुस्य जुषाणः ) ज्ञानिके साथ मित्रता करता हुआ ( यथावत् तन्वः कः=प्रजापतिः कल्पयति ) इच्छाके अनुसार शरीरके विषयमें प्रजाका पालन करनेवाला ही समर्थ करता है ॥ १ ॥

[ यह श्रुत अभी तक स्पष्ट नहीं हुआ । पाठक इसका विशेष विचार करें । गौके शरीरका सामर्थ्य बढ़ानेका विषय इसमें है । गायत्री वृष देनेकी शक्ति तथा अन्य शक्ति बढ़ानेका उपदेश इसमें है । प्रजाका पालक ज्ञानीके साथ मत्रमा करता हुआ गायको समर्थ करता है । यह आशय यही दीखता है । परंतु सब मंत्र ठीक प्रकार समझमें नहीं आता है । ]

## दिव्य वचन ।

[ १०५ (११०) ] ( ऋषिः—अथर्व । देवता—मन्त्रोक्ता )

अपक्रामन् पौरुषेयाद् वृषानो देस्यं वषः ।

प्रणीतीरम्यावतस्त्र विधेमिः सखिमिः सह ॥ १ ॥

अर्थ—( पौरुषेयात् अपक्रामन् ) सामान्य मनुष्योंक करनेयोग्य कर्मोंसे हट कर ( देव्य वषः वृषानः ) दिव्य वचनोंका स्वीकार कर, ( विधेमिः सखिमिः सह ) अपने सब मित्रोंक साथ ( प्र-नीतीः अम्यावतस्थ ) उत्कृष्ट नीतिनियमोंके अनुकूल आचरण कर ॥ १ ॥

सामान्य हीन अधिक्षित असम्य मनुष्य जैसा हीन व्यवहार करते हैं, उसका छोड़ना चाहिये । दिव्य उपदेशवचनोंका—वेदवचनोंका—स्वीकार करना चाहिये । और अपने सब मित्रोंके साथ सब उपदेशके भेद आदेशोंके अनुसार अपना आचरण करना चाहिये । उन्नतिका यही मार्ग है ।



## अमृतत्व की प्राप्ति ।

[ १०६ ( १११ ) ]

( ऋषिः—अथर्वा । देवता—जातवेदा वरुणम् )

यदस्मृति षकृम किं विदम उपारिम चरणे जातवेदः ।

तवः पाहि त्व नः प्रचेतः शुभे सखिभ्यो अमृतत्वमस्तु नः ॥ १ ॥

अर्थ—हे ( जातवेदः अग्ने ) जातवेद प्रकाश देव ! ( यत् चरणे किञ्चित् अस्मृति षकृम ) जो आचारमें किञ्चित् बिना स्मरणके हम करें और उसमें ( उपारिम ) कुछ अशुद्धि करें । हे ( प्रचेतः ) उत्कृष्ट चित्तवाले देव ! ( त्व नः पाहि ) तू हम उससे बचाओ और ( नः सखिभ्यः ) हमारे मित्रोंका ( शुभे अमृतत्वमस्तु ) शुभ मार्गमें अमरण प्राप्त हो ॥ १ ॥

यह उत्तम प्रार्थना है । “ हे प्रभो ! हम ओ आचरण करते हैं, उसमें यदि कुछ हमारे नासमझी के कारण कुछ अशुद्धि होजाय, तो उस अपराध की क्षमा हो और हमें शुभ मार्गसे अमृतत्वका प्राप्ति हो जाय । ” यह उत्तम प्रार्थना है और हरणक मनुष्यका प्रतिदिन करन योग्य है ।

[ १०७ ( ११२ ) ]

( ऋषिः—भृगुः । देवता—सूर्यः आपः च । )

अथ त्विन्तारयन्ति सप्त सूर्यस्य रश्मयः ।

आपः समुद्रियाः पारास्तास्तं द्रव्यमसितसत् ॥ १ ॥

अर्थ—( सूर्यस्य सप्त रश्मयः ) सूर्यक सात किरण ( समुद्रियाः आपः पाराः ) समुद्रकी जलधाराओंको ( द्रियः अथ तारयन्ति ) गुलाकस नीचे लात हैं । ( ताः ते द्रव्यमसितसत् ) व जलधाराएँ तेरे घास्यको रखा देने ह ॥ १ ॥

यस्य अपन क्षिणोम पृथ्वाक ऊपरके अलकी बाष्प बनाकर ऊपर लेजाता है और हमक मय बनाना है । पृथ्वा उभोकी क्षिणोम उन मणोंस पृष्टि दाती है और भूमिवा मणप्राद बहने लगत है । यह अमचत्र इसप्रकार चल्ता रहता है ।

## दुष्टोंका संहार ।

[ १०८ (११३) ]

( आपिः—मृगुः । देवता अधिः )

यो नैस्तापद् दिप्सति यो न आधिः स्वो विद्वानरेणो वा नो अमे ।

प्रतीच्ये त्वरणी दृत्वती तान् मैषाममे वास्तु भूम्नो अपत्यम् ॥ १ ॥

यो नः सुप्तान् आग्रतो वामिदासात् रिष्टो वा चरतो आतवेदः ।

वैश्वानरेण समुजां सजोपास्तान् प्रतीचो निर्देह आतवेदः ॥ २ ॥

अर्थ—हे अमे ! ( यः नः तापत् दिप्सति ) जो हमें छिपकर सताता है तथा ( यः नः आधिः ) जो हमें प्रकटरूपसे दुःख देता है । वह चाहे ( नः स्वः विद्वान् अरणाः ) हमारा अपना सबधी विद्वान् किंवा परकीय भी क्यों न हो ( तान् दृत्वती अरणी प्रतीची पतु ) उनपर द्रातवाली सोटी डलटी चले । हे अग्र ! ( एषा वास्तु मा भूत् ) इनका कोई घर न हो और ( मा अपत्य उ ) न इनको कोई सन्तान हो ॥ १ ॥

हे आतवेदः अमे ! ( यः नः सुप्तान् आग्रतः वा वामिदासात् ) जो हमें सोते हुए या जागते हुए नाश करे, ( यः तिष्ठतः वा चरतः ) जो ठहरे हुए या चलते हुए नाश करेगा । हे ( आतवेदः ) अमे ! ( वैश्वानरेण समुजां सजोपाः ) विश्वके नेता मेरे मित्रके साथ मिलकर ( तान् प्रतीचः निः दह ) उन प्रतिकूल चलनेवालोंको भस्म कर ॥ २ ॥

जो छिपकर हमारा नाश करे, या प्रकट रूपसे हमें सतावे । वह हमारा सबधी हो, मित्र हो, स्वकीय हो या परकीय हो, उस सतानेवालेका नाश किया जावे ।

सोते, जागते, खड़े हुए या चलते हुए किसी अवस्थामें हम हों, जो हमारा घात करता है, उसका भी नाश किया जावे ।

अपने सतानेवाले शत्रुकी उपेक्षा न की जावे, यह इस सूक्तका तात्पर्य है ।

# राष्ट्रका पोषण करनेवाले ।

[ १०० ( ११४ ) ]

( ऋषिः— वादरायणिः । देवता—अग्निः )

इदमुद्राय वसवे नमो यो अक्षेपु तन्वशी ।

घृतेन कलिं शिक्षामि स नो मृदासीद्वै ॥ १ ॥

घृतमप्सराभ्यो वह त्वमग्न पांसून्क्षेम्यः सिकता अपम ।

यथामाग इव्यदार्ति जुपाणा मदन्ति देवा उभयानि इव्या ॥ २ ॥

अर्थ— ( वसवे उग्राय इदं नमः ) भरणपोषण करनेवाले उग्र वीरके लिये यह नमस्कार है । ( यः अक्षेपु तन्वशी ) जो इन्द्रियोंके विषयमें अपने शरीरको वशमें रखनेवाला है, ( सः नः ईदृशो सृजति ) वह हमें ऐसी अवस्थामें भी सुख देता है । अतः मैं ( घृतेन कलिं शिक्षामि ) स्नेह से कलहको— कलह करनेवालोंको—शिक्षित करता हूँ ॥ १ ॥

हे अग्नि ! ( त्वं अप्-सराभ्यः घृतं वह ) तू जलमें सपार करनेवालोंके लिये घी ले जा । ( अक्षेम्यः पांसून् सिकताः अपमः च ) आंसोंके लिये घूली, यादू से छाना जल प्राप्त कर । ( यथामाग इव्यदार्ति जुपाणाः देवाः ) यथायोग्य प्रमाणसे इव्यभागका सेवन करनेवाले देव ( उभयानि इव्या मदन्ति ) दोनों प्रकारके इव्य पदार्थ प्राप्त करके आमदित होते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ—जो राष्ट्रका भरण और पोषण करनेवाले हैं उसको मैं प्रणाम करता हूँ । वे इन्द्रियों और शरीरको अपने स्वाधीन करनेवाले हैं । वे ही सब प्रजाओंको सदा सुख देते हैं । हमारे अंदर जो आपसमें कलह होगा उसका भस्नह स शान्त करता हूँ ॥ १ ॥

जलमें सपार करनेवालाको घी दो । आंसोंके लिये रेतसे छाना जल दो । देवताओंको यथायोग्य इवन समर्पण कर, जिससे सब आमदित हों ॥ २ ॥

अप्सरसः सधमादं मदन्ति इषिर्धानमन्तरा सूर्यं च ।

सा मे हस्तौ सं सृजन्तु घृतेन सपत्नं मे किं च रन्ध्रमन्तु ॥ ३ ॥

आदिनव प्रतिदीर्घं घृतेनास्मां अभि धर ।

पृथग्मिवाधन्यां जहि यो अस्मान् प्रतिदीर्घ्यसि ॥ ४ ॥

यो नो द्युवे घनमिदं चकार यो अक्ष्णाणां ग्रहणं श्रेयं च ।

स नो देवो इषिरिदं श्रुपाणो गन्धर्वेभिः सधमादं मदेम ॥ ५ ॥

अर्थ—(सूर्यं च इषिर्धानं अन्तरा) सूर्य और इषिर्धानके मध्य स्थानमें जो (सध—माद) साथ बसमेका स्थान है उसमें (अप्सरसः मदन्ति) अप्सराएँ आनन्दित होती हैं । (ताः मे हस्तौ) वे मेरे हाथोंको (घृतेन ससृजन्तु) घीसे युक्त करें । और (मे किं च सपत्नं रन्ध्रमन्तु) मेरे जुआड़ी का नाश करें ॥ ३ ॥

(प्रतिदीर्घ आ—दिनव) प्रतिपक्षीके साथ मैं बिजयेच्छासे लड़ता हूँ । (घृतेन अस्मान् अभिधर) घीसे हमें युक्त कर । (यः अस्मान् प्रति दीर्घ्यसि) जो हमारे साथ प्रतिपक्षी होकर व्यवहार करता है, उसको (अधन्यां पृथक् इव जहि) बिजुलीसे पृथक् नाश होता है, वैसा नष्ट कर ॥ ४ ॥

(यः नो द्युवे इदं घनं चकार) जो हमें कीड़ादि व्यवहार के लिये यह घन देता है, (यः अक्ष्णाणां ग्रहणं श्रेयं च) जो अक्षोंका ग्रहण तथा बिसोयी करण करता है (सः देवः इव नः इषिः श्रुपाणः) वह देव इस हमारे इषिका सेवन करे और हम (गन्धर्वेभिः सधमादं मदेम) गन्धर्वोंके साथ एक स्थानमें आनन्द करेंगे ॥ ५ ॥

भाषार्थ—सूर्य और इषिर्घ्न पात्रके मध्यमें जो स्थान है, उसमें सधका रहनेका स्थान है । इस स्थानमें मुझे घी प्राप्त हो और जुआड़ी का नाश हो ॥ ३ ॥

प्रतिपक्षीपर मुझे बिजय प्राप्त हो । हमें घी बहुत प्राप्त हो । जो हमारा प्रतिपक्षी होगा उसका नाश हो ॥ ४ ॥

जो हमें व्यवहार करनेके लिये घन देते हैं, उनके साथ हम आनन्द पूर्ण रहें ॥ ५ ॥

सर्वसव इति यो नामधेयमुग्रपश्या राष्ट्रमृतो ह्यध्याः ।

तेभ्यो व इन्द्रवो हविषा विधम वयं स्याम पतया रयीणाम् ॥६॥

देवान् यन्नामितो हुवे ब्रह्मचर्यं यद्विम ।

अद्यान् यद् यमूनालमे ते नो मृदन्त्वीदृशौ ॥ ७ ॥

अर्थ—( स-ससवः इति यः नामधेय ) 'सम्पक् रीतिसे बसानवाले' इस अर्थ का आपका नाम है। आप (उग्र-पश्याः) उग्र हविषाले (राष्ट्र-मृतः) राष्ट्रका भरण पोषण करने वाले और ( अक्षाः ) राष्ट्रके मानो आँसही हैं। हे ( इन्द्रवः ) ऐश्वर्यवानो ! ( तेभ्यः यः हविषा विधम ) उन तुमको हम हवि समर्पण करते हैं। और ( वय रयीणां पतयाः स्याम ) हम उनके स्वामी बनें ॥ ६ ॥

(यत् नायितः देवान् हुवे) जो आशीर्वाद प्राप्त करनेवाला मैं देवोंके लिए हवन करता हू तथा (यत् ब्रह्मचर्यं जविम) जो हमने ब्रह्मचर्यव्रतका पालन किया है। (यत् यमून अक्षान् आलमे) जो भरण करनेवाले अक्षोंका स्वीकार करता हू, (ते नः ईदृशो मृदन्तु) वे हमें ऐसी अवस्थामें सुखी कर ॥ ७ ॥

भाषार्थ— राष्ट्रका भरण पोषण करनेवाले वीर पक्षे उग्र स्वरूप के हैं। उनके कारण हम राष्ट्रके लोग अपने राष्ट्रमें सुखसे बसते हैं। उनको हम प्रजाजन करमार देते हैं और उनक प्रयत्नसे हम उनके स्वामी बनेंगे ॥६॥

मैं हवन करके देवोंका आशीर्वाद प्राप्त करता हू। उसी कारण ब्रह्मचर्यव्रत का मैं पालन करता हू। जो राष्ट्रका भरण पोषण करनेवाला है उनक प्रयत्नसे हम संपन्न सुख प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

यह युक्त पक्ष सुबोध है और कई मन्त्रभागोंका भाव कुछभी ध्यानमें नहीं आता है। अतः इसकी अधिक खोज इतना अत्यंत आवश्यक है। बड़ा प्रयत्न करनेपर भी इस समय इसकी समझ नहीं लग सकी। तथापि इस सूक्तपर जो विचार ऐसे ह, व नाथ दिव्य ह, या प्राप्त करनेवालोंक कुछ सहायक बनग—

राष्ट्रमृत ।

इसमें 'राष्ट्र-मृत' किंवा राष्ट्रीय व्यवसयक, राष्ट्र-मृत्य, राष्ट्रका भरण पोषण करने वालोंका वपन है। राष्ट्र का ( मृत ) भरण पोषण करनेवाला 'राष्ट्रमृत' कहलाता है।

इनका नाम 'सर्वसर्वा' ( स-सु ) है । उत्तम रीतिसे दूसरोंका निवास होनेके लिये सो प्रयत्न करत हैं उनका यह नाम है । ये ( सर्व-पश्याः ) सर्व रूपवाले होते हैं, जिनका स्वरूप उग्र अर्थात् वीरतायुक्त होता है । इनको ( अथाः ) अथ भी कहते हैं अर्थात् ये राष्ट्रके आँख होते हैं । इनके आँखसे मानो राष्ट्र दृश्यता है । 'अथ'का दूसरा अर्थ गाँधीजी दोनों चक्रोंके मध्यमें रहनवाली डंडी भी होता है । मानो ये राष्ट्रमृत्यु राष्ट्र चक्रका मध्यदण्ड ही है, इनहीके ऊपर राष्ट्रका चक्र घूमता है । 'अथ' शब्दके अन्य अर्थ 'आत्मा, ज्ञान, नियम, आधारसूत्र' हैं । पाठक विचार करेंगे तो उनको निश्चय होगा, कि ये अर्थ भी इनके विषयमें सार्थक हो सकते हैं । ( म० ६ )

इनका लोग ( सेव्यः इविष्य विषेय ) आशादि दें, उनको राज्यभ्यवस्थाके लिये क्रमवार दें और उनके इतकाममें रहकर ( रयीणां पतयः स्याम ) हम सब प्रजाजन जनमान्यके स्वामी होंगे । प्रजा राज्यप्रवचके छिय कर देवे और राष्ट्रसेवक राष्ट्रका ऐसा उत्तम इतकाम करें कि, जिस प्रवचमें रहकर राष्ट्रके लोग जनमान्यमपक हों । ( म० ६ )

य ( उग्राय ) उग्र वीर और राष्ट्रका ( वधु ) अरणपोषण करनेवाले हैं किंवा ये भूरे रंगवाले या गन्धभी रंगवाले हैं । इनको ( इदं नमः ) यह नमस्कार हम करत हैं क्योंकि इनके कारण हमें ( सः नः ईदं मृदाति ) एसी बिकट अवस्थामें भी सुख होता है । ( यः अथपु तन्मृच्छी ) वा इन राष्ट्रक आधारभूत चीजोंमें अपन शरीरको स्थापन करनेवाला है वही विषय प्रभावशाली है और वही सबसे अधिक योग्य है । ( म० १ )

## आपसी झगड़े दूर करनेका

### उपाय ।

आपसके झगड़ोंका नाम 'कलि' है । यह कलि सर्वथा नाश करनेवाला है । आपस के कलहोंस एकका दूसरेक साथ सघर्षण होता है, इस सघर्षण ओ अग्नि उत्पन्न होती है यह दोनोंको जलाती है । इन दोनोंके मध्यमें कुछ तेल या घी डालनेसे सघर्षण कम होता है । यत्रमें दो चक्रोंका अर्धा सघर्षण होता है वहाँ व दोनों तपते हैं वहाँ तल छोटते हैं ता उनका सघर्षण कम होता है और वे तपते नहीं । कलिको दूर करनेका भी यही उपाय है । ( घृतन कलिं शिष्यामि ) यीस आपसी कलह दूर करनेकी शिक्षा मिलती है । यत्रचक्रोंका सघर्षण अर्धा भीस कम होता है, उसी प्रकार दो मनुष्यों या दो समाजोंका झगडा भी पारस्परिक स्नेहके वर्तनसे कम हो सकता है । अतः स्नेह ( तल या घी ) सघर्षण कम करनेवाला है । यह स्नेह बढ़ानेसे आपसका झगडा दूर होता है । ( म० १ )

आपसका सगडा दूर करनेका यह अद्वितीय उपाय है । इससे जैसा वैयक्तिक लाभ हो सकता है, उसी प्रकार सामाजिक और राष्ट्रीय शान्तिका भी लाभ हो सकता है ।

द्वितीय मंत्र समझने वाला कठीण है ( म० २ ) । 'अप्सरस्' शब्दका एक अर्थ प्रसिद्ध है । उससे भिक्षा वृत्तारा अर्थ ( अप्सराः ) अलभ्य संचार करनेवाले, किंवा 'अपस' नाम 'कर्म' का है कर्मके साथ जो संचार करते हैं वे 'अप्सरस्' कहे जायेंगे । य कर्मचारी ( सध-माह मदन्ति ) एक स्थानपर रहना पसन्द करते हैं । कर्मचारियोंके लिए एक सुयोग्य स्थान हो । ऐसा स्थान होनेसे उनको आनन्द हो सकता है । इन सबको भी विपुल मिष्ठाना चाहिये और उसी प्रमाणसे अन्य स्नानपानक पदार्थ भी मिष्ठाने चाहिये । अर्थात् कर्मचारियोंकी अवस्था उत्तम रहनी चाहिये । सबको कार्य प्राप्त हो और सबको स्नानपान भी विपुल मिष्ठ ।

( मे सपत्नं क्तिव रन्ध्रवन्तु ) मेरा प्रतिपक्षी जुआड़ी नाखका प्राप्त हो । मेरा शत्रु भी नाखको प्राप्त हो और जुआड़ी भी न रहे । आपसकी शत्रुता जैसी पुरी है उसी प्रकार जुआ खेलना भी बहुत पुरा है । ( म० ३ )

( प्रतिदीप्त आदिनव ) प्रतिपक्षी हाकर युद्ध करनेको कोई लुब्धा हो, तो उसके साथ युद्ध करनेकी तैयारी में रक्खता हू, ऐसा हरएक मनुष्य कहे । ऐसी तैयारी हरएक मनुष्य रख । अर्थात् हरएक मनुष्य बलवान बने बिनासे उनको शत्रुसे डरनेका कोई कारण न रह । ( यः प्रतिदीप्सति जहि ) जो बिल्कुल पक्षी होकर युद्ध करनेको जाये उसका नाश कर । यह सर्वसामान्य आज्ञा है । शत्रुको दूर करनेकी तैयारी हरएकको करवाही चाहिये । ( म० ४ )

( यः नः शुवे घन चकार ) जो हमें क्रीडादिभ्यवहारके लिये घन देता है उसको हम भी कुछ प्रत्युपकारके रूपमें दे दें । इस मंत्रभागमें जो 'शुवे, दीप्त' आदि शब्द हैं, उनमें 'दिप्' धातु है इस धातुके अर्थ 'क्रीडा, विजिगीषा, व्यवहार, श्रुति, स्तुति, मोद, मद, स्वप्न, कान्ति, गति, प्रकाश, दान' इत्यादि हैं । प्रायः लोग पहिला 'क्रीडा' अर्थ लते हैं और ऐसे शब्दोंका अर्थ 'जुमा' करते हैं । य टाग 'विजिगीषा, व्यवहार' आदि अर्थ देखत नहीं । यदि इन अर्थोंका इस मंत्रमें स्वीकार किया जाय, तो सगति लगनेमें बड़ी सहायता होगी । इसमें जैसा क्रीडा अर्थ है उसी प्रकार अन्य विषययुक्ता व्यवहार आदी भी अर्थ हैं । य अर्थ उनसे "यः नः शुवे घन चकार" इस मंत्रभागका अर्थ 'जो हमारे विषयके कार्य के लिये हमें घन देता है, या हमारे विविध व्यवहार करनेके लिये घन देता है' इत्यादि अर्थ हो सकते हैं और य अर्थ

बहुत शोधप्रद हैं । जो व्यपहारके लिये हमें धन दे उसको प्रत्युपकारके लिये हम भी लाभका कुछ माग दें । ( म० ५ )

हम ( ब्रह्मचर्य ऊषिम ) ब्रह्मचर्यका पालन करें वीर्यका नाश न करें और बड़े सोमोसे ( नायिवः ) आशीर्वाद प्राप्त करें जिससे हमारा कल्याण होगा । ( म० ६ )

यह सूक्त बड़ा कठिन है, तथापि ये कुछ सूत्रक विचार है कि जिससे इस सूक्तको खोज हो सकेगी ।

## शत्रुका नाश ।

[ ११० ( ११५ ) ]

( ऋषिः—सृगुः । देवता—इन्द्राग्नी )

अग्न इन्द्रं वाशुपे इतो वृत्रार्ण्यप्रति ।

उमा हि वृत्रहन्तमा ॥ १ ॥

याम्नामबयुन्स्वः रयं एव वावातुस्पतुर्मुषनानि विश्वा ।

प्रर्षर्षणी वृषणा वज्रबाहू अग्निभिन्द्रं वृत्रहणा हुवेहस् ॥ २ ॥

उप स्वा देवो अग्रमीश्वमसेन वृहस्पतिः ।

इन्द्रं गीर्मिर्न आ विश यजमानाय सुन्वते ॥ ३ ॥

अर्थ—हे अग्ने ! तू और ( इन्द्रः च ) इन्द्र मिलकर ( वाशुपे ) दान देने वालेके लिये ( वृत्राणि अमति इतः ) शत्रुओंको बिना मूले मारो । क्योंकि ( उमा ) तुम दोनों ( हि वृत्रहन्तमा ) शत्रुका नाश करनेवाले हैं ॥ १ ॥

( याभ्यां अग्न एव स्वः अजपन् ) जिन दोनों की सहायतास पहिले ही स्वर्गलोकको जीत लिया था । ( यौ विश्वा सुवनामि आतस्पतुः ) ओ ओ दोनों सपूर्ण सुवनोंमें व्यापते हैं । ( प्र-वर्षणी ) मनुष्य भेष्ट, ( वृषणा ) पलवान् ( वृत्र-हणौ वज्रबाहू ) शत्रुका वध करनेवाले शस्त्रपारी ( अग्नि इन्द्र अह हुवे ) अग्नि और इन्द्रको मैं धुलाता हू ॥ २ ॥

हे इन्द्र । ( वृहस्पतिः स्वः स्वा यमसेन उप अग्रभीत् ) ज्ञानपति स्व सुप्त यमसस प्रदान करता है । ( सुन्वते यजमानाय ) सोमयाजी यजमानक कारण ( नः गीर्मिः आयिषः ) हमारे किये हुए स्तुतिके साथ यहाँ प्रवेश कर ॥ ३ ॥



## संतानका सुख ।

[ १११ ( ११६ ) ]

( ऋषिः—प्रजा । दयता—वृषभः )

इन्द्रस्य कुक्षिरासि सोमधानं आत्मा देवानामृतं मानुषाणाम् ।

इह प्रजा जन्म यास्त आसु या अन्यत्रेह तास्तै रमन्ताम् ॥ १ ॥

अर्थ—तू ( इन्द्रस्य कुक्षिः असि ) इन्द्रका पेट है, तू ( सोम-धानं ) सोमका धारक है । तू ( देवानां मानुषाणां आत्मा ) देवों और मनुष्यों का आत्मा है । ( इह प्रजाः जन्म ) यहाँ संतान उत्पन्न कर । ( याः त आसु ) जो तेरी प्रजाएँ इन भूमियोंमें निवास करती हैं, ( याः अन्यत्र ) और जो वृक्षों स्थानमें निवास करती हैं । ( त ताः रमन्तां ) बतरी प्रजाएँ सुख रहें ॥ १ ॥

मनुष्य इन्द्र अर्थात् इंद्रियोंको धरित देनेवाले आत्माका भाग-संग्रह करनेका मानो पेट ही है, इस पेटमें सोमादि वनस्पतिका संग्रह किया जावे, अर्थात् खाकाहार किया जावे । मांसाहार सर्वथा निषिद्ध है । ऐसा परिशुद्ध मनुष्य इस संसारमें उत्तम संतान उत्पन्न करे, प्रजा अपने दशमें रहे या परदेश में रहे, वह कहीं भी रहे । जहाँ रहे वहाँ जानेइसे रहे । सुख और ऐश्वर्य भाग । सुखपूर्वक रहे ।

## पापसे छुटकारा ।

[ ११५ ( ११७ ) ]

( ऋषिः—महा । दयता—आपा वरुणम् । )

सुम्भनी धार्यापृथिवी अन्तिमुक्तं महिमत ।

आपः सुप्तं सुमुपृथीस्ता नो मुञ्चन्त्वहसः ॥ १ ॥

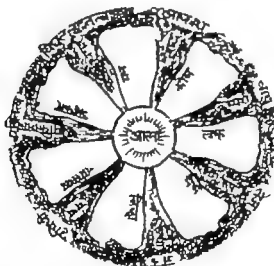
मुञ्चन्तु मा शपथ्यादृष्यो वरुण्यादित् ।

अथो यमस्य पद्वीशाद् विश्वस्मात् देवकिन्विपात् ॥ २ ॥

अर्थ— ( यावा पृथिवी शुम्भनी ) गुलाक और पृथ्वीलोक ये ( महि  
घते अन्ति सुन्न ) यहा कार्य करनेवाले, और समीपसे सुख देनेवाले हैं ।  
( सप्त द्वाः आपः ) सात दिव्य नदियां यहां ( सुस्रुवुः ) बहती हैं । ( ताः  
नः अहसः सुम्भन्तु ) वह हमें पापसे बचावें ॥ १ ॥

( मा शपथ्यात् ) मुक्त शपथसे ( अथो उत वरुण्यात् ) और वरुण देवके  
क्रोधसे ( सुम्भन्तु ) बचावें । ( अथो यमस्य पद्वीशात् ) और यमके बधन  
से तथा ( विश्वस्मात् देव किन्विपात् ) सब देवोंके प्रति किये दोषसे  
मुक्त कर ॥ २ ॥

ये गुलोक और पृथ्वीलोक बड़े सुखदायक हैं । यहां रहनेवालीं सात नदियां हमें  
पापसे और सब प्रकारके वाचिक, द्वासीरिक दापोंसे बचावें । आर्यात्मिक पक्षमें सात  
प्रवाह पञ्च ज्ञानेन्द्रिया और मन शुद्धि प हैं । आत्मासे ये सात नदियां इस प्रकार  
बहती हैं—



ये सात प्रवाह हमें सब पापोंसे बचावें और पापमुक्त करें । निःसन्देह ये नदियां  
पापसे बचानेवाली हैं ।

## तृष्णा का विष ।

[ ११२ ( ११८ ) ]

( श्रुतिः—मार्गवः । देवता—सृष्टिका )

तृष्टिके तृष्टवन्दन उदम् छिन्धि तृष्टिके ।

यथा कृतद्विष्टासोम्युष्मै अप्यावते ॥ १ ॥

तृष्टासि तृष्टिका विषा विषातुक्मसि ।

परिवृक्ता यथासंस्पृग्मस्य वृष्टेर्व ॥ २ ॥

अर्थ—हे ( तृष्टिके तृष्टिके ) झीन तृष्णा ! हे ( तृष्टवन्दने ) सोम मयी । ( अम् उत छिन्धि ) इसको काटो । ( यथा अमुष्मै शोप्यावते ) जिससे इस बलघासी पुरुषका ( कृत-द्विष्टा असः ) द्वेष करनेवासी तृ होती है ॥ १ ॥

( तृष्ठा तृष्टिका आसि ) तू तृष्णा, और सोममयी है । ( विषा विषातुक्मी आसि ) तू विषैली और विषमयी हो । ( यथा परिवृक्ता अससि ) जिससे तू भरने योग्य है ( इय मयमस्य यथा ) बैलके लिये ऐसी गाय होती है ।

तृष्णा सोमहृषी बड़ी विषमयी मनोहृषी है । वह सबको काटती है । यह सब बलघानोंका द्वेष करती है । यह एक प्रकारकी विषमयी मनोहृषी है, अतः इसके धेरका दबावमें रहना योग्य है । यह हृषी कमी मनुष्य पर सवार न हो, परतु मनुष्यके आधीन में रह ।

## दुष्टों का नाश ।

[ ११४ ( ११९ ) ]

( श्रुतिः—मार्गवः । देवता—अग्नीषोमी )

आ ते ददे वृक्षणाम्य आ तेह इर्वयाद् ददे ।

आ ते मुखस्थ सङ्गाशात् सर्वं ते वधु आ ददे ॥ १ ॥

अर्थ—( ते वृक्षणाम्यः वर्षाः आवृक्षे ) तेरी छातीसे मैं पल प्राप्त करता हू । ( अह ते इदयात् आवृक्षे ) मैं तेरे इदयसे बल लेता हू । ( ते मुखस्थ सङ्गाशात् ) तेरे मुखके पाससे ( ते सर्वं वधुः आवृक्षे ) तेरा सब तेज मैं प्राप्त करता हू ॥ १ ॥

प्रेतो यन्तु व्याघ्रिः प्रानुध्याः प्रो अशस्तयः ।

अग्नी रक्षस्विनीहन्तु सोमो हन्तु दुरस्पतीः ॥ २ ॥

( इतः व्याघ्रः प्रयन्तु ) यहाँसे व्याघ्रियाँ दूर हो जाएँ । ( अनुध्याः प्रः पुःश्व दूर हों, ( अशस्तयः प्र ठ ) अकीर्तियाँ भी दूर हों । ( अग्निः रक्षस्विनीः हन्तु ) अग्नि राक्षसिनीयोंका वध करे । ( सोमः दुरस्पतीः हन्तु ) और सोम दुराचारिणीयोंका नाश करे ॥ २ ॥

अपन छाती, हृदय मुख आदि सब अवयवोंका बल बढ़ाना चाहिये । और व्याघ्रियाँ, आपचियाँ, पीढाय और अकीर्तियाँ दूर करना चाहिये, तथा दुराचारिणी स्त्रियोंको भी दूर करना चाहिये ।

## पापी लक्षणोंको दूर करना।

[ ११५ ( १९० ) ]

( अविः—अथर्वाङ्गिराः । दधता—सविता, वासवेदाः )

प्र पृथेवः पापि लक्ष्मि नयेतः प्रामुतः पव ।

अयस्मर्येनाङ्गेन द्विपृथे त्वा संजामसि ॥ १ ॥

अर्थ—हे ( पापि लक्ष्मि ) पापघय लक्ष्मी ! ( इतः प्र पत ) यहाँसे दूर जा । ( इतः मध्य ) यहाँसे चली जा ( अमुतः प्रपत ) यहाँसे भी हट जा । ( अयस्मयम अकन ) छोड़ेके कीलसे ( त्वा द्विपृथे जा संजामसि ) तुझ द्विपृथेके लिये रण्यते है ॥ १ ॥

भावार्थ— जिस प्रकारके एश्वर्यसे पाप होता है, ठम प्रकारका एश्वर्य मेरे पास न रहे । यह तो बहुत बुरा है, अतः यह हमारे शत्रुक पास जाकर स्थिर होवे ॥ १ ॥

या मां लक्ष्मीः पतयात्पुण्यं लक्ष्मीः वन्दनवे पुण्यम् ।

अन्यत्रास्मत् सवितृस्वामिणो वा हिरण्यहस्तो वसु नो रराणः ॥ २ ॥

एकशत लक्ष्म्यो मर्त्यस्य साकं तन्वाजिनुषोर्धि जाताः ।

तासां पार्ष्णिष्ठा निरितः प्र हिष्मः शिवा अस्मभ्यं आसवेदो नि यच्छ ॥ ३ ॥

एता एता व्याकरं खिले गा विष्ठिता इव ।

रमन्तां पुण्यां लक्ष्मीयाः पापीस्ता अनीनशम् ॥ ४ ॥

अर्थ— ( या पतयात्पुण्यं लक्ष्मीः ) जो गिरानेवाली सेवन करने अयोग्य लक्ष्मी (मा अभिवस्कुन्द) मेरे उपर आगई है, (वन्दना वृक्ष इव) जैसी बेल वृक्षपर बहती है । हे ( सवितः ) सविता देव ! ( तां इतः अप प्र अस्मत् वाः ) उसको यहाँसे हमसे वृक्षरे स्थानपर रख । ( हिरण्यहस्तः नः वसु रराणः ) सुवर्णक आभूषण धारण करनेवाला तू हमें धन दे ॥ २ ॥

( मर्त्यस्य तन्वा साकं ) मनुष्यके शरीरके साथ ( अनुषाः अभि ) जन्मते ही ( एकशत लक्ष्म्यः जाताः ) एकसौ एक लक्ष्मियाँ उत्पन्न हो गई हैं । ( तासां पार्ष्णिष्ठाः इतः निः प्रहिष्मः ) उनमें से पापी लक्ष्मीको यहाँसे हम दूर करते हैं । हे ( जातवेदः ) ज्ञानी देव ! ( शिवाः अस्मभ्य नि यच्छ ) और जो कल्याणमय लक्ष्मी हैं वे हमें प्रदान कर ॥ ३ ॥

( खिले विष्ठिताः गाः इव ) बराबर भूमिपर बैठी गौओं के समान ( एता एमाः वि-आकर ) हम इन वृत्तियोंको में अलग अलग करता हू । ( याः पुण्याः लक्ष्मीः रमन्तां ) जो पुण्यकारक लक्ष्मियाँ हैं, वे यहाँ आनन्दसे रहें । ( याः पापीः ताः अनीनशः ) और जो पापी वृत्तियाँ हैं उनका नाश करता हू ॥ ४ ॥

भावार्थ— जो गिरानेवाला ऐश्वर्य मेरे पास आगया है वह मुझसे दूर होव और हमें शुभ ऐश्वर्य प्राप्त होवे ॥ २ ॥

मनुष्यको जन्मके साथ एकसौ एक शक्तियाँ प्राप्त होती हैं, उनमें कई पापमय हैं और कई पुण्य युक्त हैं । पापी हमसे दूर हों और शुभ हमारे पास आजाय ॥ ३ ॥

मैं इनको दृष्ट कर रहा हू । जो पुण्य कारक हैं वे मेरे पास रह और जो पापी हों वह मुझसे दूर हो जाय ॥ ४ ॥



इस सूक्तमें नौ प्रकारके ज्वरोंका वर्णन है इनके लक्षण देखिये—

१ स्वरः= जिस ज्वरमें शरीरका दाह होता है । यह संभवतः विषज्वर है ।

२ ज्वघनः= यह ज्वर आनेपर शरीर कांपने लगता है । यह ज्वर अतिधीन सगकर आता है ।

३ नोदनः= यह ज्वर आनेपर मनुष्य पागलसा बनता है । मस्तिष्कपर इसका मयानक परिणाम होता है ।

४ घृष्णुः= इससे मनुष्य मयमीत होत है, रोगी बड़ा बेचैनसा होता है ।

५ शीतः= सर्दीसे आनेवाला यह ज्वर है ।

६ पूर्वकृत्स्नः= शरीरकी ज्वरपूर्व अवस्थाको काट देनेवाला यह ज्वर है, अर्थात् इसके आनेसे शरीरके सब अवयव बिगड़ जाते हैं ।

७ अन्येषुः= एकदिन छोड़कर आनेवाला ज्वर ।

८ उभयघ्नः= दो दिन छोड़कर आनेवाला ज्वर ।

९ अघ्नतः= जिसका आनेका कोई नियम नहीं है ।

ये नौ प्रकारके ज्वर हैं । इनके छाननेके उपाय इससे पूर्व बताये हैं । वेदमें वृत्र के वर्णनसे ज्वर विकिरसा ( वेदे वृत्रमिषण ज्वरविकिरसा ) होती है । अर्थात् वैसा बुद्धि होकर वृत्र नाश होता है, उभी प्रकार पक्षीना आनेसे इस ज्वरका नाश होता है । अतः पक्षीना छाना इस ज्वरनिवारणका उपाय है ।

## शत्रुका निवारण ।

[ ११७ ( १२२ ) ] ( ऋषिः— अथर्वशिराः । द्रव्य-इन्द्र । )

आ मुन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्वादि मयूररोमभिः ।

मा त्या के चिद् विर्यमन् वि न पाक्षिनोति धन्वेव तौ इहि ॥ १ ॥

अर्थ— द इन्द्र । ( मुन्द्रैः मयूररोमभिः हरिभिः आयाहि ) सुन्दर मोर के पत्ताक समान सुन्दर पुच्छवाले पाखोंके साथ यहाँ आ । ( पाक्षिनः वि १ ) जैसे पक्षिका जालम पकड़ने हैं उस प्रकार ( त्या केचित् मा वि यमन ) इस काई न पकड़े । ( धन्व इय तान् अति इहि ) रेतल स्थानपरस जैसे प्ररते हैं वेम उनका अनिग्रहण कर ॥ १ ॥

इन्द्र ( इन्द्र + इन्द्र ) छत्रका विदारण करनेवाला बारका यह नाम है । एस वीर सुदर पादोंपर अथवा एस पोडोवाल रथपर सवार हाकर स्थान स्थानमें घाँप । उनको प्रति बध करनेवाला कोई न हा । यही दुष्टोंको रोके और उनको दबा कर प्रतिबधमें रखें ।

## विजयकी प्रार्थना ।

[ ११८ ( १२३ ) ]

( श्रुतिः—अथवाहिरा । दधता— चन्द्रमाः, बहुदेवत्यं )

मर्माणि ते धर्माणा छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानु वस्ताम् ।

उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तु त्वानु देवा मंदन्तु । ॥ १ ॥

॥ इति दशमोऽनुवाकः ॥

॥ सप्तम काण्ड समाप्तम् ॥

अर्थ— ( ते मर्माणि धर्माणा छादयामि ) तेरे मर्मस्थानोंको कवचसे मैं ढकता हू । ( सोमः राजा तथा अमृतेन अनुवस्ताम् ) सोम राजा तुझे अमृतसे आच्छादित करे । ( वरुणः ते उरोः वरीयोः कृणोतु ) वरुण तेरे लिये पड़ेसे बड़ा स्थान दधे । ( जयन्तु तथा देवाः अनुमदन्तु ) विजय पानवाले तुझे देखकर सब देव आनन्द करें ॥ १ ॥

युद्धके लिये बाहर जानेके समय वीर लोग अपने शरीर पर कवच धारण करें । इस प्रकार तैयार होकर वीर आनन्दसे छत्रपर इमला करनेके लिय चले और विजय प्राप्त करें । मनमें निश्चय रखें की सत्यधर्म रहकर मड़नेवाले वीरका सब देव सहाय्य करते हैं और उसके विजयस आनंदित भी होते हैं । धिनके विजयके कारण देवोंको आनन्द होमा, ऐसे ही वीर अपनमें बढाने चाहिय ।

सप्तम काण्ड समाप्तम् ॥



# अथर्ववेदका स्वाध्याय ।

## सप्तम काण्डकी विषयसूची ।

एक सौ एक शक्तिया	पृष्ठ २	१२ (१३) राष्ट्र समाकी अनुमति	४९
सप्तम काण्ड	३	राज्यशासनमें लोकसमिति,	
सूक्तोंके ऋषि-देवता छन्द	५	ग्रामसमा	४७
ऋषिकमानुसार सूक्तविभाग	११	राष्ट्रसमा	४८
देवताक्रमानुसार	१२	जनसमाका अधिकार	"
सूक्तोंके गण	१३	राजाके पितर	४९
१ आत्मोन्नतिका साधन	१५	शिक्षक	५०
साधनभाग	१६	समासद् सत्यवादी हों	"
२ जीवात्माका वर्णन	२१	तेजप्रदाता और विद्वानदाता	५१
जीवात्माके गुण		राजाका साम्य	"
३ आत्माका परमात्मामें प्रवेश	२४	इच्छित्त समासद्	५२
जीवकी शिषमें गति	"	नरिषा सभा	"
४ प्राणका साधन	२६	१३ । १४ सत्रके तेजका नाश	५३
प्राणसाधनसे मुक्ति	२७	शत्रुकातेज घटाना	५४
प्राणको योजना	"	१४, १५, १५, १६ उपासना	"
५ आत्मयज्ञ	२८	१५, १७ सीमायक लिये बढ़ाओ	५७
मानस और आत्मिक यज्ञ	३०	१७, १८ घन और सद्बुद्धिकी प्रार्थना	५८
पुण्य यज्ञ	३४	१८, १९ खरीते अन्न	५९
६।७ मातृभूमिका यज्ञ	३५	१९, २० प्रजाकी पुष्टि	६०
अदिति शम्भू	३६	२०, २१ अनुमति	६१
७।८ मातृभूमिक मक्तोंका	३८	अनुमतिकी शक्ति	६३
सहायक ईश्वर	३०	२१, २२ आत्माकी उपासना	६७
शक्ति और अदिति	"	२२, २३ आत्माका प्रकाश	६८
८।९ कसयाण प्राप्त कर	४१	२३, २४ विषयिका इटाना	७०
९।१० ईश्वरकी शक्ति	४२	२४, २५ प्रजापालक	७१
मन्त्रका पित्राज	४३	२५, २६ व्यापक और भेद दण	"
१०।११ सरस्वती	४४	२६, २७ सर्वव्यापक ईश्वर	७३
११।१२ मर्षामें सरस्वती	४	२७, २८ मातृमाता	७५
		२८, २९ कसयाण	७७

२९।३० दो देवोंका सहवास	७८
३०।३१ अञ्जन	८१
३१।३२ अपनी रक्षा	"
३२।३३ दीर्घायुकी प्रार्थना	८२
३३।३४ प्रता, धन और दीर्घ आयु	८३
३४।३५ निष्पाप होनेकी प्रार्थना	"
३५।३६ श्रीविक्रित्ता	८४
३६।३७ पतिपत्नीका परस्पर प्रेम	८५
३७।३८ पत्नी पतिकेलिय बख्ख बनावे	८७
३८।३९ पतिपत्नीका एकमत	८८
३९।४० उत्तम दृष्टि	९०
४०।४१ समुत्तरसवाला देव	९१
४१।४२ मनुष्योंका निरीक्षक देव	९२
४२।४३ पापसे मुक्तता	९३
४३।४४ बाणी	९४
४४।४५ विजयी देव	९५
४५।४६, ४७ ईर्ष्यानिवारक औषध	९६
४६।४८ सिद्धिकी प्रार्थना	९७
४७।४९ अमृत-छक्ति	९८
४८।५० पुष्टिकी प्रार्थना	९९
४९।५१ सुखकी प्रार्थना	१००
५०।५२ कर्म और विजय	१०१
पुरुषार्थ और विजय	१०४
कुम्भारकी को दूर करा	१०५
तीन प्रकारके लोग	१०६
वृषकाम मनुष्य	१०८
गारस्ता	१०९
५१।५२ रक्षाकी प्रार्थना	११०
५२।५३ उत्तम ज्ञान	१११
५३।५५ दीर्घायु	"
विषमायु कैसा प्राप्त होगी ?	११४

देवोंके वेष	११४
५४।५६, ५७-१ ज्ञान और कर्म	११८
५५।५७-२ प्रकाशका मार्ग	"
५६।५८ विपश्चिकित्सा	१२०
५७।५९ मनुष्यकी क्षक्तियाँ	१२३
अनसेवा	१२४
५८।६० बलदायी अन्न	१२५
५९।६१ व्यापका परिणाम	१२७
६०।६२ रमणीय घर	१२७
६१।६३ तपसे मेधाकी प्राप्ति	१२९
६२।६४ गुर और	१३०
६३।६५ बचानेवाला देव	१३१
६४।६६ पापसे बचाव	"
६५।६७ अपामार्ग औषधी	१३२
६६।६८ ब्रह्मा	१३३
६७।६९ आत्मा	"
६८।७०, ७१ सरस्वती	१३४
६९।७२ सुख	१३५
७०।७३ शत्रुदमन	"
७१।७४ प्रभुका ध्यान	१३७
७२।७५, ७६ खानपान	"
मोक्षका समय	१३९
७३।७७ गाय और यज्ञ	१४०
गोरक्षा	१४४
७४।७८ गण्डमाला-विक्रित्ता	१४६
७५।७९ गायकी पालना	१४८
७६।८०, ८१ गण्डमालाकी विक्रित्ता	१४९
गण्डमाला	१५१
हृदयसे निरोगता	"
७७।८२ बधनसे मुक्ति	१५२

७८।८३ बधमुत्तरा	१५३	९५।१०० हृदयके दो भीष	१८०
तीन बधन		९६।१०१ दोनों मूत्राघ्न	१८१
७९।८४ अमावास्या	१५४	९७।९९।१०२ १०४ यज्ञ	१८२
	१५६	१०० १०१।१०५ १०६ दह स्वप्न	
८०।८५ पूर्णिमा	"	न आनेके छिने तपाव	१८६
८१।८६ चरके दो बालक	१५८	१०९।१०७ उच्च जनकर रहना	१८७
अगव्रीची घर	१६०	१०९।१०८ उदारक क्षत्रिय	"
जेष्ठनेवाले बालक		१०४।१०९ मौको समर्थ बनाना	१८९
अपनी शक्तिसे बलमा	१६१	१०५।११० दिव्य बधन	"
विश्विजय		१०६ १०७।१११ ११२ असुतस्वकी	
अगवृको प्रकाश बना		प्राप्ति	१९०
कर्तव्यका भाग	१६२	१०८।११३ दुष्टोंका संहार	१९१
पूर्ण हो		१०९।११४ राष्ट्रका पोषण	
दुष्टका नाश	१६३	करनेवाले	१९२
दिव्य मोक्षण		पाहूमुख	१९५
८२ ८७ गौ	१६४	आपसी झगड़ बूर करनेका	
८३।८८ मुक्ति	१६६	उपाय	१९५
तीन पाशोंसे मुक्ति	१६७	११०।११५ शत्रुका नाश	१९७
पापसे बचो	१६८	१११।११६ सतानका सुख	१९८
व्रत धारण	"	११२।११७ पापसे छुटकारा	"
८४-८६।८९ ११ राजाका कर्तव्य	१६९	११३।११८ शृष्णाका विष	२००
राजा क्या कार्य करे ?	१७०	११४।११९ दुष्टोंका नाश	"
८७।९२ व्यापक देव	१७३	११५।१२० पापी लक्ष्मणोंको बूर	
८८।९३ सर्पविष	"	करना	२०१
८९।१०४ वृष्टिबल	१७४	११६।१२१ ज्वर	२०३
हीर्मापु यजनका उपाय	१७५	११७।१२२ शत्रुका निवारण	२०४
दिव्य अक्षसेवन	१७६	११८।१२३ विजयकी प्राप्ति	२०५
९०।९५ दुष्टका निवारण	१७७	विजयस्वर्ग	२०६
९१ ९३।९६-९८ राजाका कर्तव्य	१७८		
९४।९९ स्वावलम्बी प्रजा	१८०		



# अथर्ववेद

का

सुषोष भाष्य

## अष्टमं काण्डम् ।

उत्सक

पं श्रीपाद कामोदर सातवलेकर

अध्यक्ष- स्वाध्याय मण्डळ, आदित्य-बाबरपति, गीतासह्यार

स्वाध्याय मण्डळ, पारडी



वैद्य २ १५ अंक १८८ एम १९५८

## उन्नतिका सीधा मार्ग

उद्यानं ते पुरुष नाशयानं श्रीवातं ते दर्शयति कुशोमि ।  
आ हि रोहेमममूर्तं सुखं रश्मयः क्षिप्रिनिदधमा वेदासि ॥

अथर्ववेद ८।१।६

“ हे मनुष्य ! तेरी उन्नति के पथ में गति होवे, अवनति के पथ में न होवे । इसी कार्य के लिये तुझे आयुष्म और बल में देवा हूँ । इस सुख दात्री अमृत से परिपूर्ण ( क्षीररूपी ) रश्मि पर बढ । यहाँ अब तू वृद्ध होगा तब तू विज्ञान का उपदेश करेगा । ”



# अथर्ववेदका स्वाध्याय ।

( अथर्ववेदका सुबोध भाष्य )

## अष्टम काण्ड ।

इस अष्टम काण्डका प्रारम्भ 'दीर्घ आयु' इवताके सूक्तोंसे हुआ है। सपूर्व प्राणिमात्रोंके लिये अत्यायु कष्टदायक और दीर्घायु सुखदायक है। अतः यह देवता 'मगल' है। अत्यायुताका निवारण करना और दीर्घायु प्राप्त करना मनुष्यके लिये मुख्यतः अभीष्ट है। यही प्रारम्भके दो सूक्तोंका विषय है।

काण्ड ८ से काण्ड ११ के अन्ततकके चारों काण्डोंकी प्रकृति शीघ्रसे अधिक मन्त्रवाचक सूक्तोंकी है। प्रायः अनेक सूक्तोंमें शीघ्रसे पचीसतक मन्त्र हैं। कुछ बौद्ध सूक्तोंमें बौद्धोंसे अधिक भी मन्त्र हैं। इन सूक्तोंको 'अर्थ-सूक्त' कहते हैं। इन काण्डोंमें तथा आगे भी जो पर्याय सूक्त हैं, उनमें मन्त्रोंकी संख्या कम है। परन्तु सब पर्याय मिलकर जब एकही सूक्त है ऐसा माना जाता है, तब सूक्तकी मन्त्रसंख्या बढ़ जाती है। इस अष्टम काण्डमें अन्तिम सूक्त इस प्रकारका पर्याय सूक्त है और इस एक सूक्तमें छः पर्याय हैं, अर्थात् यह छः छः सूक्तोंका बड़ा सूक्त हुआ है। आगेके काण्डोंमें इस प्रकार पर्यायसूक्त हैं—

आठवें काण्डमें	१० वें सूक्तमें	६ पर्याय सूक्त हैं।
नववें     "	६     "	६     "     "
"     "	७     "	१     "     "
ग्यारहवें   "	३ रे   "	३     "     "
बारहवें   "	५ वें   "	७     "     "
तेरहवें   "	४ वें   "	६     "     "
पंद्रहवें   "	—	१८   "     "
सोसहवें   "	—	९     "     "

मागेके काण्डोंमें ये पर्वाय पाठक देखेंगे और छेप अर्घ्यसूक्त भी पाठक देखेंगे । इनका नाम अर्घ्यसूक्त क्यों हुआ है इसका वर्णन आगे योग्य स्थानपर करेंगे । यहाँ इस स्थानपर इस काण्डके अनुवाकोंमें सूक्तसंख्या और मंत्रसंख्या कैसी है, वह देखिये—

अनुवाक	सूक्त	दृष्टवि विभाग	पर्वायसंख्या	मंत्रसंख्या
१	१	१०+११		२१
	२	१०+१०+८		२८
२	३	१०+१०+६		२६
	४	१०+१०+५		२५
३	५	१०+१२		२३
	६	१०+१०+६		२६
४	७	१०+१०+८		२८
	८	१०+१४		२४
५	९	१०+१०+६		२६
	१०		६	३३

२५९

मंत्रसंख्याकी दृष्टिसे यह काण्ड तृतीय स्थानमें आ सकता है । ( १ ) द्वितीय काण्डकी २०७, ( २ ) तृतीय और चतुर्थकी २३०, ( ३ ) अष्टमकी २५९ ( ४ ) सप्तम काण्डकी २८६, ( ५ ) चतुर्थकी ३९४, ( ६ ) पञ्चमकी ३७६ और ( ७ ) षष्ठकी ४५४ मंत्रसंख्या है । सप्तम काण्डक अन्ततक कुल मंत्रसंख्या २१०७ हो चुकी है, इसमें अष्टम काण्डकी २५९ मिलानेसे अष्टम काण्डके अन्ततक कुल मंत्रसंख्या २३६६ होमी । अब इस काण्डके ऋषिदेवताछन्द देखिये—

सूक्तोंके ऋषि—देवता—छन्द ।

सूक्त मंत्रसंख्या ऋषि देवता छन्द

प्रथमोऽनुवाकः । अष्टादशः प्रपाठकः ।

१ २१ प्रज्ञा आपु भिषुप् । १ पुरोह भिषुप् । १ ३ १०-११  
अनुपुष्यः । ४ ९, १५, १६ मास्तारपंथकाः ।  
विषाक्षिराष्ट गावन्ती । ८ विराट् पन्थावृहती ।  
१२ अथ पन्थापदा अगती । १३ विषा पुरीष  
महावृहती । १४ अथ विषा सामी पु  
वृहती ।

१	१८	प्रज्ञा	आयुः	त्रिष्टुप् । १ २ ७ मुरिङ्ग । ३ २६ आस्तार पङ्क्तिः । ४ प्रस्तारपङ्क्तिः । ६-११ पञ्चपङ्क्तिः ८ पुर ओसिष्मती जगती । ९ पञ्चपङ्क्तिः जगती । ११ विष्टारपङ्क्तिः । १२, २३ २८ पुर बृहत्याः । १३ म्वच पद्व जगती । १९ उप बृहती । २१ सतः पङ्क्तिः । ५ १ १६-१८ २ २३-२५, २७ अनुष्टुभः । १७ त्रिष्टुप् ।
---	----	---------	------	---

### द्वितीयोऽनुवाकः ।

३	२६	जातना	अग्निः	त्रिष्टुप् । ७ १२ १४ १५, १७ २१ मुरिङ्ग । २५ पञ्चपङ्क्तिः बृहतीगमा जगती । २९ २३ अनुष्टुभी । २९ गावन्ती
४	२५	"	मन्त्रोक्तदेवता	जगती । ८-१४ १६ १७ १९, २२ २४ त्रिष्टुभः । २ २३ मुरिङ्ग । २५ अनुष्टुप् ।

### तृतीयोऽनुवाकः ।

५	२२	शुक्रः	हृत्पावृष्यं मन्त्रोक्तः ।	अनुष्टुभ् । १ ६ उपरि बृहती । २ त्रि वि गावन्ती । ३ अनु सु० जगती । ५ संस्तारपङ्क्तिर्मुनिर्गु । ६ उपरि बृहती । ७ ८ कञ्जमाली । ९ अनु पुरस्कृतिर्जगती । १ त्रिष्टुप् । ११ पञ्चपङ्क्तिः । १३ म्वच पद्व जगती । १५ पुरस्तारबृहती । १९ जगतीगमा त्रिष्टुप् । २ विराट्गमा आस्तारपङ्क्तिः । २१ परविराट् त्रिष्टुप् । २२ म्वच सतप विराट् गमा मुरिङ्ग ।
---	----	--------	-------------------------------	---

### [ एकोनविंशः प्रपाठकाः ]

६	२६	मातृगामा	मन्त्रोक्तः	अनुष्टुभ् । २ पुर बृहती । १ म्वचता पद्वदा जगती । ११ १२ १४ १६ पञ्चपङ्क्तिः ७ १५ म्वच सतप छात्री । १७ म्वच सतप जगती
---	----	----------	-------------	---

### चतुर्थोऽनुवाकः ।

७	२८	अथर्वा	आपधयः	अनुष्टुभ् । २ उप मुरिङ्गबृहती । ३ पुरस्कृतिः ४ पञ्चपङ्क्तिः अनु जगतीगमा । ५, ६ १ २५ पञ्चपङ्क्तिः । १२ पञ्च विराट्तिष्ठच्छरी १४ उप त्रिष्टु बृहती । २६ त्रिष्टु । २८ मुरिङ्ग ।
---	----	--------	-------	---



८ २४ भूम्यंगिराः धर्मस्पतिः अनुष्टुप् । २ उपरि बृहती । ३ विराट् बृहती । ४  
इन्द्रः, बु पुर् म पाङ्क्तिः । ५ आस्तापङ्क्तिः । ७ विप  
परसेनाहमनम् पाद्वन्धमा ऋतु अतिगगती । ८-१ उपरि  
बृहती । ११ पष्पाबृहती । १२ मुनिर् । १३  
वि पुर् बृहती । २ नि बु बृहती । २१  
त्रिष्टुप् २२ ऋतुपदा सङ्गरी । २३ उप बृहती ।  
२४ म्वच उज्जिगासा सङ्गरी पञ्चपदाङ्गरी ।

पञ्चमोऽनुवाकः ।

९ २९ अपसा कश्यपा विराट् त्रिष्टुप् । २ पाङ्क्तिः । ३ आस्तापङ्क्तिः ।  
सर्वे वा ऋतवः । ४ ५, २३ २५ २६ अनुष्टुभाः । ८ ११ ११  
२२ जगन्वाः । ९ मुनिर् । १४ ऋतु जगती ।  
१ (१) १३ अथर्वाचार्यः विराट् १ विपदा र्षी पङ्क्तिः । ( म ) २-०  
पाठव्यः जगन्वाः । ( दि ) २ ५ साम्यबुद्धिर्  
( दि ) ३ आर्षी अनुष्टुप् । ( दि ) ४ ०  
( १ ) १ विराट् गावन्धी । ( दि ) २ सङ्गरी बृहती  
१ विपदा साम्नी अनुष्टुप् । २ उज्जिगासा  
ऋतु उप विराट्बृहती । ३ एकप बह्व ।  
गावन्धी । ४ एकप साम्नी पङ्क्तिः । ५ विराट्  
गावन्धी । ६ आर्षी अनुष्टुप् । ७ सङ्गरी पङ्क्तिः ।  
८ आमुरी गावन्धी । ९ साम्नी अनुष्टुप् । १ सङ्गरी  
बृहती । १  
( ३ ) ८ अनुष्टुप् नि अनुष्टुप् । २ ( १ )  
आर्षी त्रिष्टुप् । ३ ५, ० ( १ ) अनुष्टुप् : प्राजा-  
पत्याः पङ्क्तिः । ४ १ ८ ( १ ) आर्षी बृहती ।  
( ४ ) १९ साम्नी जगन्धी । २ १ १ साम्नी बृहती  
३ ४ ८ आर्षी अनुष्टुभाः । १३ अनुष्टुपाङ्क्तिमि  
आमुरी गावन्धी । ११ प्राजापत्यानुष्टुप् ।  
१२ १२ आर्षी त्रिष्टुमी । १४ १५ विराट्  
गावन्धी ।  
( ५ ) १३ अनुष्टुप् साम्नी जगन्धी । १ १४  
साम्नी बह्व । १ साम्नी उज्जिग । ४ १९  
आर्षी अनुष्टुभाः । ५ उज्जिग । ८ आर्षी त्रिष्टुप् ।  
२ साम्नी उज्जिग । ७ ११ विराट् गावन्धी ।  
५ अनुष्टुप् प्राजापत्या जगती । साम्नी बृहती  
विष्टु । १५ साम्नी अनुष्टुप्

( १ )	४	"	"	१ द्विपदा विराट्पावर्गः । २ द्विपदा साम्नी भिच्छुर् । ३ द्वि प्राजापत्या भनुष्पुर् । ४ द्वि भार्गवी उधिम्यु ।
-------	---	---	---	---

इस प्रकार इस सप्तम काण्डके ऋषि-देवता-छन्द हैं । अब इनका ऋषिक्रमानुसार सूक्तविभाग देखिये—

### ऋषिक्रमानुसार सूक्तविभाग ।

१ ब्रह्मा ऋषिके	१, २	ये दो सूक्त हैं ।
२ चातन "	३, ४	" "
३ अथर्वी "	७, ९	" "
४ अथर्वार्च्य ऋषिका	१०	वाँ एक सूक्त है ।
५ शुक्र "	५	" "
६ मातृनामा "	६	" "
७ मृगशिरा "	८	" "
८ कश्यप "	९	" "
९ सर्वे ऋषयः "	९	" "

इस प्रकार नौ ऋषियोंके दूखे मन्त्र इस अष्टम काण्डमें हैं । तथापि इनमें अथर्वार्च्य नामका एक अलग ऋषि सर्वाङ्गमणीकारन माना है । वस्तुतः देखा जाय तो 'आचार्य' छन्द कभी ऋषिके साथ नहीं आता । अतः यह अथर्वी ऋषि ही होगा । यदि इसे अथर्वी ही माना जाय तो एक ऋषि कम हुआ और आठवीं खेप रहे । 'सर्वे ऋषयः' यह एक सूक्तका ऋषि माना है । परंतु यह अलग ऋषि नहीं है । क्योंकि इस काण्डके 'ब्रह्मा, चातन, अथर्वी, शुक्र, मातृनामा, मृगशिरा और कश्यप' ये सप्त ऋषिही 'सर्वे ऋषयः' का यही इस काण्डमें तात्पर्य है, अतः यह एक नाम कम करना युक्त है । अर्थात् खेप सात ऋषि रहे, जिनके देखे हुए मन्त्र इस काण्डमें हैं । 'अथर्वी और 'अथर्वार्च्य' को यदि एकही माना जाय, तो इस काण्डमें अथर्वी ऋषिके सूक्तही अधिक हैं । इस विषयमें सप्तम काण्डकी सूक्तिका में सिद्धा खेप पाठक अवश्य देखें । अब वेद्यताक्रमानुसार सूक्तविभाग देखिये—

### वेद्यताक्रमानुसार सूक्तविभाग ।

१ मन्त्रोक्ता देवताके ४—५ ये १ सूक्त हैं ।

२ आयु " १, २ " २ "

३ विशाद् देवताके ९, १० ये २ हो सक्त हैं ।

४ अग्नि देवताका ३ यह एक सक्त है ।

५ कृत्वाकृषा ॥ ५ ॥ ॥ ॥

६ ओषधयः ॥ ७ ॥ ॥ ॥

७ वनस्पति ॥ ८ ॥ ॥ ॥

८ इन्द्र ॥ ८ ॥ ॥ ॥

९ परसेनाइनन ॥ ८ ॥ ॥ ॥

इस प्रकार नौ देवताके सक्त इस काण्डमें हैं, तथापि ' यंत्रोक्तदेवता ' वह अनेक देवताओंका सामान्य नाम है । इस छिमे इन्द्रादि ओ अनेक देवताएँ इसमें आगयी हैं, उन सबको मिलानेसे कई देवताओंका वर्णन इस काण्डमें है, वह बात सिद्ध हो जायगी । इसी प्रकार ' ओषधि और वनस्पति ' ये दोनों समस्तः एकही देवता हैं । देवताओंकी सख्या निश्चित करनेमें इन बातोंका विचार करना आवश्यक है । इस काण्डमें निम्न लिखित वर्णोंके मन्त्र हैं—

१ आयुष्मन्मन्त्रके १, २ ये दो सक्त हैं ।

२ स्वस्त्वयनमन्त्र का ५ वां सक्त है ।

३ पुष्टिक मन्त्र ५ वें सक्तमें है ।

४ महाशान्ति और रौद्री शान्तिके मन्त्र ५ वें सक्तमें हैं ।

इस प्रकार इन वर्णोंके मन्त्र इस काण्डमें हैं । इन वर्णोंके अनुसन्धानसे पाठक इन सब मन्त्रोंका विचार करें ।



# अथर्ववेदका स्वाध्याय ।

( अथर्ववेदका सुषोष भाष्य । )

अष्टम काण्ड ।

## दीर्घायु प्राप्त करनेका उपाय ।

[ १ ]

( ऋषिः— ब्रह्मा । दशता-आयुः )

अन्तर्काय मृत्युषे नमः प्राणा अपाना इह ते रमन्ताम् ।  
इहायमस्तु पुरुषः सदासुता सूर्यस्य भागे अमृतस्य साक ॥ १ ॥

अर्थ—( मृत्युषे अन्तर्काय नमः ) मृत्युरूपसे सबका अन्त करनेवाले परमेश्वरको नमस्कार है । हे मनुष्य ! ( ते प्राणाः अपानाः इह रमन्ताम् ) तेरे प्राण और अपान यहाँ शरीरमें आनन्दसे रहें । ( अयं पुरुषः असुना सट ) यह मनुष्य प्राणक साथ ( इह अमृतस्य लोक सूर्यस्य भाग अस्तु ) इस अमृतके स्थानरूपी सूर्यके प्रकाशके भागमें रह ॥ १ ॥

भाषार्थ— सपूर्ण जगत्का नाश करनेवाला एक ईश्वरको हम प्रणाम करते हैं । मनुष्यके प्राण इस शरीरमें दीर्घकाल तक रह । मनुष्य दीर्घ जीवनक साथ अमृतमय सूर्यप्रकाशमें यथेष्ट विद्यमान रह ॥ १ ॥

उदेन॒ मगो॑ अग्र॒भीदुदेन॑ सोमो॑ अ॒श्रुमान् ।

उदेन॑ म॒रुतो॑ द॒वा उदि॑न्द्वा॒पी स्व॒स्तये॑ ॥ २ ॥

इ॒ह ते॒सुरि॒ह प्रा॒ण इ॒हापु॒रि॒ह ते॒ मनः॑ ।

उत् त्वा॑ नि॒श्र॒त्याः पा॒शेभ्यो॑ दै॒व्या वा॒चा य॑रामसि ॥ ३ ॥

उत् क्रा॒मातः॑ पु॒रुष॑ मा॒र्य प॒त्या मृ॒त्योः प॒रुषी॑शमवमु॒ञ्चमानः॑ ।

मा नि॒ष्ठत्या॑ अ॒स्माछो॒काद॒ग्नेः सूर्य॑स्य सु॒हृष्टः॑ ॥ ४ ॥

अर्थ—(मगः एन उत् अग्रभीत्) मग देवने इस मनुष्यको उब स्थावर रखा है, (अश्रुमान् सोमः एन उत्) तेजस्वी सोमने इसको उठाया है, (मरुतः देवाः एन उत्) मरुतदेवोंने इसको उब बनाया है, (इन्द्र-अग्नी स्वस्तये उत्) इन्द्र और अग्निने इसके कल्याणके लिये इसको उब पनाया है ॥ २ ॥

(इह त असुः) यहाँ तेरा जीवन, (इह प्राणा, इह आयुः) यहाँ प्राण, यहाँ आयु और (इह ते मनः) यहाँ तेरा मन स्थिर रहे। (दैव्या वाचा निश्रत्याः पाशेभ्यः) विषय वाणीके द्वारा अव्योगतिके काँसोंसे (त्वा उत् यरामसि) मुझ ऊपर चरते हैं ॥ ३ ॥

ह (पुरुष) मनुष्य। (अतः उत् काम) यहाँसे ऊपर चढ़, (मा अवपत्याः) मत नीचे गिर। (मृत्योः परुषीश अवमुञ्चमानः) मृत्युकी पङ्क्तिने अपने आपको छुड़ाना हुआ (अस्मात् लोकात्) इस लोकमें तथा (अग्नेः सूर्यस्य सहृष्टः) अग्नि और सूर्यके दर्शनसे अपने आपको। (मा छित्याः) मत दूर रह ॥ ४ ॥

भावार्थ—मग आदि सभ देव इसकी उन्नति करनेमें इसकी सहायता करें ॥ २ ॥

ह मनुष्य। इस शरीरमें तेरा प्राण, आयुष्य, मन और जीवन स्थिर रह। अनारोग्य रूपी दुर्गतिके पाशोंसे हम सभ तुझे ऊपर उठाते हैं ॥ ३ ॥

ह मनुष्य। तू ऊपर चढ़, मत गिर जा। मृत्युके पाशोंसे अपने आपका छुड़ाया। वीर्यायु प्राप्त कर और इस मनुष्य लोकमें तथा इस सूर्यके प्रकाशमें अपने आपका दूर न कर ॥ ४ ॥

तुभ्यं धातः पवतां मातरिष्वामं तुभ्यं वर्षन्त्वमृतान्यापः ।

सूर्यस्ते तुन्नेः श्वं तपाति त्वां मृत्युर्दयतां मा प्र मेधाः ॥ ५ ॥

उपानं ते पुरुष नाश्वयानं जीनातुं ते दक्षतातिं कृणोमि ।

आ हि रोहोमममृतं सुखं रथमथ निर्विर्विदधमा वंदासि ॥ ६ ॥

मा ते मनस्त्वत्र गान्मा तिरो मून्मा जीवेभ्यः प्र मंडो मातुं गाः पितॄन् ।

विश्वं देवा अभि रक्षन्तु स्वेह ॥ ७ ॥

अर्थ-(मातरिष्वामं धातः पवतां) अन्तरिक्षमें रहमवाला वायु तेरे लिये छुदता करता रहे । (आपः तुभ्यं मृतानि वर्षन्तां) जल तेरे लिये अमृतकी वृष्टि करे । (सूर्यः ते तन्व श तपाति) सूर्य तेरे शरीरक लिये सुखकर तपता है । (मृत्युः त्वां दयतां) मृत्यु तुझपर दया करे अर्थात् तू (मा प्रमेधाः) मत् मर जा ॥ ५ ॥

हे पुरुष ! (ते उत्-पान) तेरी उत्पत्तिकी ओर गति हो । (न अव-पान) अवपत्तिकी ओर गति न होय । इसलिये मैं (ते जीवास्तु दक्षतातिं कृणोमि) तुझे जीवन और बल देता हूँ । (इमं अमृतं सुखं रथ आरोह) इस अमरत्व देनेवाले सुखकारक शरीररूपी रथपर चढ़, (अथ निर्विः) और जब तू घृद्ध होगा, तब (विदध आवंदासि) विज्ञानका उपदेश करेगा ॥ ६ ॥

(ते मनः तत्र मा गात्) तेरा मन उस निविद्ध मार्गमें न जावे । और वहां (मा निरा मृत) मत् छीन होवे । (जीवेभ्यः मा प्रमदः) जीवोंक सपथमें प्रमाद न कर । (पितॄन् मा अनुगाः) पितरोंके पीछे न जा अर्थात् मत मर जा । (इह विश्वं देवाः त्वां अभि रक्षन्तु) यहां सपथव तेरी रक्षा करें ॥ ७ ॥

भावार्थ-वायु, जल और सूर्य तेरे लिये पवित्रता करें और तुझ दान्ति अर्पण करें । मृत्यु तेरे ऊपर दया करे अर्थात् तू दीर्घायु प्राप्त कर और शीघ्र मत् मर जा ॥ ५ ॥ हे मनुष्य ! तू ऊपर चढ़, कभी मत् गिर जा । इसी कार्यके लिये तुझ जीवन और बल दिये हूँ । तब शरीर एक सुख देनेवाला उत्तम रथ है, इससे अमरपन भी प्राप्त किया जा सकता है । इसमें रहता हुआ जब मनुष्य दीर्घजीवन प्राप्त करता है और घृद्ध होता है तब उसको पहिल अनुमय प्राप्त होनेके कारण यह दूसरोंको पाप्य उपदश देनेमें समर्थ होता है ॥ ६ ॥

मा गतानामा दीधीया ये नयन्ति परावर्तम् ।

आ रौह समसो ज्योतिरेखा ते हस्तौ रमामहे ॥ ८ ॥

इयामश्वा स्वा मा क्षयलब्ध प्रेषितौ यमस्य यौ पश्चिंसी यानौ ।

अर्वाकेहि मा ते दीध्यो मात्रं तिष्ठः पराङ्मनाः ॥ ९ ॥

मैवं पन्थामनु गा भीम एष यन् पूर्वं नेयम् तं ब्रवीमि ।

तम एतत् पुरुष मा प्र पत्था मय परस्तादमर्षं ते अर्वाक् ॥१०॥ (१)

अर्थ—( गतानां मा आदिधीयाः ) गुजरे हुआँका बिलाप न कर क्यों कि ( ये परावर्त नयन्ति ) वे तो दूर ले जाते हैं । अतः ( आ इहि ) यहाँ आ और ( तमसः ज्योतिः आरोह ) अषकारको छोड़ प्रकाशमें चढ़, ( ते हस्तौ रमामहे ) तेरे हाथोंको हम पकड़ते हैं ॥ ८ ॥

( इयामः च क्षयलः च ) काळा और श्वेत अर्थात् अषकार और प्रकाशावाल ( स्वा-यौ ) कछ न रहनेवाले दिन रात ये ( यमस्य पश्चिंसी प्रेषितौ ) नियामक वेबके दो मार्गरक्षक भेजे हैं । ( अर्वाक् एहि ) इधर आ । ( मा विदीध्यः ) मत बिलाप कर । ( अथ पराङ्मनाः मा तिष्ठ ) यहाँ बिरुद्ध दिशामें मन रक्कड़ मत रह ॥ ९ ॥

( एत पन्थाम् अनु गा गाः ) इस घुरे मार्गका अनुसरण मत कर, ( भीमः पशु ) यह भयकर मार्ग है । ( यन् पूर्वं नेयम् ) जिससे पहिले नहीं जात है

माभार्य— तेरा मन कुमार्गमें न जावे और पछि गया तो वहाँ कभी न स्थिर रहे । अन्य जीवोंक बिषयमें जा तेरा कर्तव्य है उसमें तू प्रमाद न कर । शीघ्र मरकर अपने पितरोंके पीछे शीघ्रतासे मत जा । ये सब देवता तेरी रक्षा करें ॥ ७ ॥

गुजर हुआँका शोक न कर, उससे तो अनुप्य दूर चला जाता है । यहाँ कार्यक्षेत्रमें आ, अषकार छोड़ और प्रकाशमें चिपड़ । इस कार्यके लिय हम तरा हाथ पकड़ते हैं ॥ ८ ॥

सयका नियमन करनेवाले ईश्वरक दिन ( प्रकाश ) और रात्री ( अषकार ) ये दो मार्गरक्षक हैं । ये दोमां अशाश्वत हैं, परंतु ये तेरे मार्गकी रक्षा करेंगे । अतः तू आगे चढ़, विलापमें समय न गमा दे, तथा बिरुद्ध दिशामें अपना मन कदापि न जाने दे ॥ ९ ॥

रक्षन्तु त्वाप्रयो ये अप्सर्वन्ता रक्षतु त्वा मनुष्याः यमिन्धर्वे ।  
 वैश्वानरो रक्षतु जातवेदादिभ्यस्तु मा प्र धागू विद्युता सुह ॥ ११ ॥  
 मा त्वा क्रुम्यादमि मैस्तारात् संकसुकावर ।  
 रक्षतु त्वा धौ रक्षतु पृथिवी सूर्यश्च त्वा रक्षता चन्द्रमा ॥  
 अन्तरिक्ष रक्षतु देवहेत्याः ॥ १२ ॥

(त प्रवीमि) उस विषयमें मैं कहता हूँ । हे (पुरुष) मनुष्य ! (एतत् तमः) यह अ प्रकारका मार्ग है, उस मार्गमें ( मा प्र पथाः ) मत जा । ( ते परस्तात् भय ) तरे छिये पर भय है ( अर्वाक् ते अभय ) और इधर अभय है ॥ १० ॥

( ये अप्सु अन्ता अग्रयः ) जो जलोंमें अग्नि हैं व ( त्वा रक्षन्तु ) तेरी रक्षा करें । ( य मनुष्याः इन्धने त्वा रक्षतु ) जिसको मनुष्य प्रदीप्त करते हैं वह अग्नि तेरी रक्षा करे । ( जानवद्राः वैश्वानरः रक्षतु ) ज्ञातवेद सय मनुष्योंमें रहनेवाला अग्नि तेरी रक्षा करे । ( विद्युता सह विद्यः मा धागू ) बिजुलीके साथ रहनेवाला शुलोक का अग्नि तुझ न जलावे ॥ ११ ॥

( क्रुम्यात् त्वा मा अभि मम ) कृपा मांस पानेवाला तेरा वध न करे । ( संकसुकात् आरात् चर ) नाश करनेवालेसे दूर चल । ( धौः त्वा रक्षतु ) शुलोक तेरी रक्षा करे, ( पृथिवी रक्षतु ) पृथिवी रक्षा करे । ( सूर्यः च चन्द्रमाः च त्वा रक्षता ) सूर्य और चन्द्रमा तेरी रक्षा करें । ( देवहेत्याः अन्तरिक्ष रक्षतु ) देवी आद्यानसे अन्तरिक्ष तरी रक्षा करे ॥ १२ ॥

मावार्थ- इस भवानक घर घुर मार्गस न जा । जिससे जाना योग्य नहीं उस मार्गपरस न जानके विषयमें मैं तुम्हें यह आदवा दे रहा हूँ । अर्थात् तू इस अ प्रकारके मार्गमें कदापि न जा, इसमें जानमें आगे बढ़ा भय है । अतः तू इस आर रह, इस मार्गपर नु रहना तरे लिय यहाँ अभय होगा ॥ १० ॥

जल्की उष्णता, अग्नि, विद्युत्, सूर्य तथा मानवी समाज इनमेंसे किसी से तरा अक्षयण न हो इनमें तेरी उत्तम रक्षा होव ॥ ११ ॥

पातपात करनेवाले दुष्टोंमें तेरी रक्षा होव । पृथ्वी अन्तरिक्ष, शु, चन्द्रमा, सूर्य आदि सय तरी रक्षा करें ॥ १२ ॥



बोधश्च त्वा प्रतीबोधश्च रक्षतामस्वप्नश्च त्वानवव्राणश्च रक्षताम् ।

गोपायश्च त्वा आर्यविभ रक्षताम् ॥ १३ ॥

स त्वा रक्षन्तु ते त्वा गोपायन्तु तेभ्यो नमस्तेभ्यः स्वाहा ॥ १४ ॥

जीवेभ्यस्त्वा सुहृद्रे वायुरिन्द्रो घाता दधातु सविता श्रावमाणः ।

मा त्वा प्राणो बलं हासीदसु सेनुं ह्वयामसि ॥ १५ ॥

मा त्वा जम्भः सइनुर्मा तमो विदन्मा जिह्वा बहिः प्रमथुः कृषा त्वाः ।

उत् त्वादित्या वसन्तो मनुन्दिन्द्रामी स्वस्वये ॥ १६ ॥

अर्थ— ( बोधः च प्रतीबोधः च त्वा रक्षतां ) ज्ञान और विज्ञान तारी रक्षा करें । ( अस्वप्नः च अनवव्राणः च त्वा रक्षतां ) सुस्ती न हाना और न भागना तारी रक्षा करें । तथा ( गोपायन् च आर्यविः च त्वा रक्षतां ) रक्षक और जागनेवाला तेरी रक्षा करे ॥ १३ ॥

( ते त्वा रक्षन्तु ) वे तेरी रक्षा करें । ( त त्वा गोपायन्तु ) वे तेरा पालन करें । ( तेभ्यः नमः ) उनका नमस्कार है । ( तेभ्यः स्वा-हा ) उनके लिये आत्म-समर्पण है ॥ १४ ॥

( श्रावमाणः घाता सविता वायुः इन्द्रः ) रक्षक, पोषक, प्रेरक, जीवन साधन प्रभु ( जीवेभ्यः त्वा स+उद दधातु ) सब प्राणियोंके लिये तथा तारे लिये पूर्ण उत्कृष्टता धारण करे । ( त्वा प्राणः बल मा हासीत् ) तेरे लिये प्राण बल मैं छोड़े । ( ते असु अनु ह्वयामसि ) तेरे प्राणको हम अनुकूलताके साथ बुलाते हैं ॥ १५ ॥

( जम्भः सइनु त्वा मा विदन् ) विनाशक और घातक तुझे कभी न प्राप्त करे । ( तमः त्वा मा ) अन्धकार तेरे ऊपर कभी न छाये । ( जिह्वा मा ) जिह्वा अर्थात् किसीके पुर शब्द तर अधणपथमें न आये । भला

भावाय— ज्ञान और विज्ञान, सुस्ती न करना और न भागना, रक्षा करना और जागना तारी रक्षा कर ॥ १३ ॥

जा तेरी रक्षा और पालना करते हैं, उनको प्रणाम करना और उनके लिये अपनी आराम कुछ समर्पण करना योग्य है ॥ १४ ॥

वेय मय जीवोंको और तुझको उत्पत्तिक पथमें रखे । तर पास प्राण और बल पूर्ण आए । ॥ १५ ॥

उत् त्वा पौरुत् पृथिव्युत् प्रजापतिरग्रमीत् ।

उत् त्वा मृत्योरोपधयः सोमराज्ञीरपीपरन् ॥ १७ ॥

अय देवा इहैवास्त्वय मामुत्र गादितः ।

इम सहस्र-धीरेण मृत्योरुत् पारयामसि ॥ १८ ॥

उत् त्वा मृत्योरोपीपरं स धमन्तु वयोधसः ।

मा त्वा अपस्तकेनयो मा त्वाधिरुदौ रुदन् ॥ १९ ॥

( पहिं। प्रमयु। कथा स्याः ) तू पशुकर्ता होकर घातक कैसे। हागा ? ( आदिप्या। वसवः इन्द्र-अग्नी ) आदिप्य, वसु, इन्द्र और अग्नि ( स्वस्तये ) कल्पणक लिपे ( त्वा उत् भरन्तु ) तुझ उद्यमाक प्रति छे जावें ॥ १६ ॥

( यौ। उत् ) शुलोक ( पृथिवी उत् ) पृथिवी और ( प्रजापतिः त्वा उत् अग्रमीत् ) प्रजापालक देव तुझ ऊपर उठावे । ( सोमराज्ञी। औपधयः ) सोम जिनका राजा है एसी औपधियां ( त्वा मृत्योः उत् अपीपरन् ) तुझे मृत्युसे ऊपर उठावें अर्थात् तेरी रक्षा करें ॥ १७ ॥

हे ( देवाः ) देवो ! ( अय इह एव अस्तु ) यह यहाँ इस लोकमें ही रहे, ( अय इतः अमुत्र मा गात् ) यह यहाँसे वहाँ परलोकमें न जावे । ( सहस्र धीरेण इम मृत्योः उत् पारयामसि ) हजारों बलोंसे युक्त उपायसे इस मनुष्यकी मृत्युसे हम रक्षा करते हैं ॥ १८ ॥

( मृत्योः त्वा उत् अपीपर ) मृत्युसे तुझको हम पार करत हैं । ( वयोधसः स धमन्तु ) अथ अथवा आयुका धारण करनेवाले देव तुझ पुष्ट

मावार्थ-कोई नाशक और घातक तेरे पास न पहुच । अज्ञान और अन्याकारतर पास न आवे । गुर शब्दोंका प्रयोग कोई न करे । स्मरण रख कि जो पशु करता है उसके पास माश नहीं आता और सूर्यादि सय देव तुम्हारा कल्पण करेंगे और तेरी उन्नति दानमें सहायक होंगे ॥ १६ ॥

प्रजाका पालक देव, शुलोकसे पृथ्वी पर्यंतके औपधियां आदि सय पदार्थ मृत्युसे तेरा बचाव करेंगे ॥ १७ ॥

हे देवो ! इस मनुष्यको दीर्घायु प्राप्त होवे, हमके पाससे मृत्यु दूर होवे । सहस्र प्रकारके बलोंसे युक्त औपधियोंकी सहायतासे इसके मृत्युका हमने दूर किया है ॥ १८ ॥

आहार्यमर्बिदं त्वा पुनरागाः पुनर्णवः ।

सर्वोक्तं सर्वं ते बध्नुः सर्वमार्युधं तेषिदम् ॥ २० ॥

व्युवात् ते ज्योतिरमुदप त्वत् तमो अक्रमीत् ।

अप त्वन्मुस्य निर्भ्रतिमप यदम् नि दध्मसि ॥ २१ ॥ ( २ )

करें । ( व्यस्तकेदयः अघ-रुदः ) बायोंको खोल खोलकर बुरी तरहसे रोंग  
बाली स्त्रियां ( मा त्वा रुदन्, मा त्वा ) तेरे लिये न रोयें, अर्थात् तेरी  
मृत्युके कारण हमपर रोंगेका प्रसंग न आवे ॥ १९ ॥

( त्वा आहार्य ) मैंने तुझ लाया है । ( त्वा अर्बिद ) तुझे पुनः प्राप्त किया  
है । ( पुनः मघः पुनः आगाः ) पुनः नया हाकर पुनः आगया है । इ ( स  
वांग ) सपूर्ण अगोंबाल अनुप्य ! ( ते सर्वं बध्नुः ) तेरी पूर्ण हष्टी और  
( ते सर्वं आयुः ब ) तेरी पूर्ण आयु तेरे लिये ( अर्बिद ) प्राप्त करायी  
है ॥ २० ॥

अय ( त्वत् तमः व्युवात् ) तेरे पाससे अन्धकार बला गया है । ( अप  
अक्रमीत् ) तिरसे दूर बला गया है । ( ते ज्यातिः अभूत् ) तेरा प्रकाश फैल  
गया है । ( त्वत् निर्भ्रति मृत्यु अप नि दध्मसि ) तेरस दुर्गति और मृत्यु  
को हम हटाने हैं तथा तेरेस ( यदम् अप नि दध्मसि ) रोंगको हम दूर  
करत हैं ॥ २१ ॥

भाबार्थ-अय यह मृत्युस पार हो चुका है । आयु देनेबाल इसके लिये  
आयु दें । अप स्त्रियां या पुरुष इसके लिये न रोयें, क्यों कि यह जीवित  
हुआ है ॥ १९ ॥

रुग्णम्यितिस मैंने तुझ आरोग्यम्यितिके प्रति लाया है अर्थात् तुझ  
नवीन जैसा प्राप्त किया है । माना, तू नयाही हा गया है । तेरे सब अंग  
पूर्ण हागये हैं, तब बध्नु आदि इन्द्रिय और तेरी आयु तुझ प्राप्त होगई है,  
अतः तू अब दीर्घकाल जीवित रहेगा ॥ २० ॥

अन्धकार तर पास स भाग गया है । और तेरा प्रकाश चारों आर  
फैलगाया है । दुर्गति और मृत्यु दूर हट गये हैं और राग दूर भाग गये  
ह । हम प्रकार तू नीरोंग और दीर्घायु हागया है ॥ २१ ॥

## दीर्घायु कैसी प्राप्त होगी ?

### धर्मक्षेत्र

मनुष्यके लिये यह धरीर धर्मका साधन है । यही इसका 'कुरुक्षेत्र' अथवा 'कर्म क्षेत्र' किंवा 'धर्मक्षेत्र' है । इसमें रहता हुआ और पुरुषार्थ करता हुआ यह मनुष्य अमरत्व प्राप्त कर सकता है, अथवा पुरुषार्थसे हीन होता हुआ यही जीव अमोघगति भी प्राप्त कर सकता है । इसलिये इस धरीरूपी साधनको सुरक्षित रखने और इससे अधिकसे अधिक काम लेनेके लिये इसको दीर्घकाल तक जीवित रखना आवश्यक है । इसी कारणके लिये दीर्घायु प्राप्त करनेका विषय धर्मग्रन्थोंमें आता है । इस अक्षरमें इसी धरीरक विषयमें कहा है—

इम अमृतं सुखं रय आरोह । ( मं० ६ )

'इस न मरे, सुखकारक (धरीरूपी) रथपर आरोहण कर।' इसमें 'सु+ख' शब्दसे 'सु' नाम उत्तम अवस्थामें 'ख' नाम इष्टियां जिसकी है, ऐसे आराग्यपूर्ण सुदृढ धरीरको प्राप्त करनेकी सूचना है । 'सु+ख रय' का अर्थ है जिसकी इष्टियां उत्तम हैं ऐसा यह धरीरूपी रथ मनुष्यको प्राप्त करना चाहिये । इसका दूसरा गुण 'अ+मृत' शब्दसे बताया है । मरे हुए या मुड़े जैसे दुर्बल और रोगी धरीरका 'मृत' कहते हैं, और जो सतेज, तेजस्वी, बलिष्ठ, सुदृढ, नीरोग और कार्यक्षम धरीर होता है उसको 'अ-मृत' कहते हैं । जिस धरीरको देखनेसे जीवनका प्रत्यक्ष साक्षात्कार होता है उसीको अमृत धरीर कहते हैं । धरीर कैसा होना चाहिये ? ऐसा किमीने प्रश्न किया, तो उसका उत्तर इस भगवत् ने दिया, कि 'धरीर अमृत और सुखकारक होना चाहिये' बहुत लोगोंको मृत और दुःखी धरीर प्राप्त हुए होते हैं । वैसे धरीरोंसे मनुष्यके जीवनकी सफलता हो नहीं सकती ।

### दूरका मार्ग ।

यहां धरीरको 'रय' कहा है । इसको 'रथ' इसलिये कहा है कि, इसमें बैठकर मनुष्य प्रसन्नोक्तको पंडुष्य सकता है । इतना लंबा मार्ग उत्तम रीतिसे आक्रमण करना मनुष्यको इसी धरीरसे सुगम हो जाता है । दूर ग्रामको जानेके लिये जिस प्रकार उत्तम अथरथ अथरथ ( नौका ), अधिरथ ( आगगाड़ी ) वायुरथ ( विमान ) आदि विविध रथ होते हैं, उसी प्रकार सुविधायक पटुधनके लिये इस धरीरूपी रथमें बैठकर, उसका अक्षस्थानीय इष्टियोंका सुनिश्चित करके धर्मपथपर से आना पड़ता है । इस विषयमें उपनिषदोंमें कहा है—

## रथी और रथ ।



आत्मान रथिन बिद्धि शरीर रथमेव तु ।  
 युद्धि तु सारथि बिद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥ ३ ॥  
 इन्द्रियाणि दधानादृषिपथांस्तेषु गोचरान् ।  
 आत्मेन्द्रियमनोयुक्त भोक्तव्यादुर्मनीषिणा ॥ ४ ॥  
 यस्तयविज्ञानयानमवत्ययुक्तत मनसा सदा ।  
 तस्यन्द्रियाण्यवदधानि दुष्टाश्वा इव सारथे ॥ ५ ॥  
 यस्तु विज्ञानयानमयति युक्तत मनसा सदा ।  
 तस्यन्द्रियाणि यदधानि सदाश्वा इव सारथे ॥ ६ ॥  
 यस्तयविज्ञानयानमवत्ययुक्तत मनसा सदा ।  
 न स तस्यदुष्माप्नोति मैसार नाधिगच्छति ॥ ७ ॥  
 यस्तु विज्ञानयानमयति समनस्कः सदा शनिः ।  
 न तु तस्यदुष्माप्नोति यन्मादृशो न जायत ॥ ८ ॥

विज्ञानसारथिर्यस्तु मनःप्रग्रहवाक्षरः ।

सोऽब्धनः परमाप्नोति तद्विष्णोः परम पदम् ॥ ९ ॥

कठ उ० ३

“आत्मा रथका स्वामी है, शरीर उसका रथ है, बुद्धि उसका सारथी और मन छगाम है। इन्द्रिय पाठ इस रथको जोत है, जो विषयोंके क्षेत्रोंमें संचार करते हैं। आत्मा इन्द्रियोंसे और मनसे युक्त होनेपर उसको माकृता कहा जाता है। जो विज्ञानसे हीन और समरहित मनसे युक्त है, उसके आधीन इन्द्रियरूपी बाढ नहीं रहते, अर्थात् वे रथके स्वामीको बिधर चाहे उधर फेंक देते हैं। परंतु जो विज्ञानवान् और मनका समर करनेवाला होता है, उसके आधीन उसकी संपूर्ण इन्द्रियां रहती हैं। जो विज्ञान रहित, असंयमी मनवाला और सदा अपवित्र होता है, वह उस स्थानको प्राप्त नहीं होता और बारबार सप्तर्षिमें गिरता है, परंतु जो विद्वानी, संयमी और पवित्र होता है, वह उस स्थानको प्राप्त करता है, अर्थात् बारबार भ्रान्त नहीं पड़ता। जिसका विज्ञान सारथी है और मनरूपी लगाम जिसके स्वाधीन है वही मार्गके परे जाता है वही व्यापक देवका परम स्थान है।”

इसमें इस रथका उत्तम वर्णन है, इसके घोड़े, सारथी, उत्तम सिद्धि घोड़े, अक्षि सिद्धि घोड़े, इसका जानेका मार्ग, कौन वहां जाता है और कौन नहीं पहुंच सकता, यह सब वर्णन इस स्थानपर है। इसका निवार करनेसे पाठक इस शरीररूपी रथकी योग्यता जान सकता है। यह रथ असूतकी प्राप्ति करनेवाला है, इसलिये ही इसको दीर्घकाल तक सुरक्षित रखना चाहिये और इसको नीतिवर्मी रखना चाहिये। योगी और अस्पृशी भी होनेसे यह रथ निकम्मा होता है और मनुष्यका श्रेष्ठ प्राप्त नहीं होता। मनुष्य इसपर चढ़, लगाम स्वाधीन रखे, और ज्ञान विज्ञान द्वारा योग्य मार्गसे चले, अर्थात् समरसे व्यवहार कर और अपनी उन्नतिकी मार्ग आक्रमण कर। यही माय इस सत्तद्वारा संचित किया है—

( हे ) गुरुप अतः उत्क्राम । या अवपत्त्याः । ( मं० ४ )

( हे गुरुप ) मे उत्-गाम । न अवपामम् । ( म० ५ )

“हे मनुष्य ! तू यहांसे ऊपर चढ़, नीचे न गिर । हे मनुष्य ! तेरी मति उच्च हो, नीचकी ओर न हो ।” मनुष्यको यह देह इसलिये प्राप्त हुआ है कि वह ऊपर चढ़े और कमी न गिरे । गिरना या चढ़ना इसके आधीन है। यदि यह चाहेगा तो सठ सकता है और यदि यह चाहेगा तो गिरभी सकता है। यही माय अन्य क्षणोंमें इसी सत्तमें कहा है—

## ज्योतिकी प्राप्ति ।

आ इहि । तमसः ज्योतिः आरोह । ते हस्तौ रभामहे । ( म० ८ )

“ हे मनुष्य, इस मार्गसे आ, अक्षरके मार्गको छोड़ और प्रकाशके मार्गसे ऊपर चढ़, यदि तुम्हें सहारा चाहिये तो हम तुम्हारा हाथ पकड़कर सहायता देनेको तैयार हैं । ” महापुरुष, साधु, सन्त, महात्मा, यागी, ऋषि, उच्चतिके पथमें सहायता देनेके लिये सदा तैयार रहते हैं, उनकी सहायता लनेके लिये ही अन्य मनुष्योंकी तैयारी चाहिये । जो निष्ठामे उच्चतिके पथपर चढ़ना चाहता है, उसको सहायता मिलती जाती है । न पूछत हुए उष्य अणीके पुरुष उन्नत होनेवालोंकी सहायता सदा करते ही रहते हैं । इसी विषयमें आगे कहा है—

अर्थात् एहि । अथ पराङ्मनाः मा तिष्ठ । ( म० ९ )

“ इस ओर आ । यहाँ विरुद्ध विचार मनमें धारण करके मत ठहर । ” यहाँ धर्ममार्गपर आनेका आदेश है । इससेभी विशेष महत्त्वका उपदेश यहाँ कहा है वह ‘पराङ्मनाः मा तिष्ठ’ यह है, इसमें ‘पराङ्मनाः (पर+मङ्+मनाः) यह शब्द दूरएकका विषय रीतिम ध्यानमें रखने योग्य है । इसका अर्थ (पर) शत्रुकी (अथ) अनुकूलतामें शिष्टका मन हुआ है । शत्रुकी ओर शिष्टका मन हुआ है । जो मनसे शत्रुका द्वेष चाहता है अथवा जो शत्रुको अनुकूल होकर कवल अपनी व्यक्ति का लाभ करना चाहता है और अपनी जाती का अहित होता है वा नहीं यह भी नहीं देखता । इस प्रकारका हीन विचारवाला कोई मनुष्य न होवे । यह तो शत्रुसे भी अधिक पातक है, अतः कहा है, ( पराङ्मनाः अथ मा तिष्ठ ) यहाँ विरोधियोंक आधीन अपन मनको रखकर न ठहर, अर्थात् स्वकीयोंका अनुकूल होकर ही यहाँ रह । राष्ट्रीय और जातीय दृष्टिसे भी इसका भाव अत्यन्त विचारणीय है । जो इस प्रकारक हीन प्रवृत्तिसे लागे जाते हैं जो अपने स्वार्थ के लिये समाज और राष्ट्रका पात करनेके कारण पाप करते हैं, वे दीर्घजीवी नहीं होते । हम लिये कोई मनुष्य सभी स्वार्थोंकी पूर्ति न धारण करे । सदा ब्रह्मविद्याल मनुष्य हों, जो अपना और समाजका द्वेष साधत हैं ।

## गोक्षसे आयुष्यनाश ।

घात करना भी आयुका पात करता है । कह मनुष्य गुह्य हुए पुत्रोंका नाम प्रान कर कर घात करनेमें निन व्यतीत करते रहते हैं, उनकी यही अवनति वा

होती ही है परतु साथ साथ आपु मी खीण हाती है, अतः इस सूक्तमें कहा है—

गतामां मा आदिषीथा, ये परायत नयन्ति । ( म० ८ )

“गुजरे हुए मनुष्योंका आग्रह करके शोक न करो, क्योंकि ये शोक दूरतककी गहरी भवनतिको पहुँचा देते हैं ।” शोक कानमें अपना मनही गिर जाता है । जिसका शोक किया जाता है वह तो मरा हुआ होता है, अतः उसको किसी प्रकार लाभ नहीं पहुँच सकता, परतु जो जीवित रहते हैं उनका समय व्यर्थ जाता है और इसका अति रिक्त मन उदास होता है, उसकी विचार करनेकी और भ्रष्टतम पुटपार्थ कानकी क्षति इटजाती है; इस प्रकार सदा शोकमें मग्न रहनेवाला पुरुष ईह पर लोकोके सिय निकम्मा होता है ।

पूटे और पुनर्ग मानेपर शोक न करना ठीक है, परतु अब नवप्रधान मर जाते हैं तब मी शोक करना याग्य है वा नहीं, यही कोई लाभ शका करेंगे, उसके विषयमें बेल्का कहना यह है कि—

व्यस्तकेष्टः अघकृत् त्वा मा रुदन् । ( म० १० )

“बालोंका अस्ताव्यस्त करके शिर खाल लाल, छाती पीट कर पुरी प्रकार रोन्वाला लोगमी न रायें ।” क्योंकि माणक पश्चात् शान पीटनेमें कोई लाभ नहीं हो सकता है । हमरी बात यह है कि, हम बच्चे उपदेशके अनुसार आचरण करनेसे मनुष्य की दीर्घायु होगी, अतः उसका पश्चात् रोन्पीटनेका कोई कारण ही नहीं रहेगा, क्योंकि निःसन्देह दीर्घ आयु प्राप्त करनेका उपदेश हम स्थानपर कहा है और उसके लिये एक उपाय यह है ‘मन शाकाकुल न करना’ । अतः आ मनुष्य दीर्घजीवी बनना चाहत है, कमसे कम ये लाभ ता कमी अपना मन शाकम व्याकुल न करें । यह उपदेश सर्वसाधारण जनोके लिये मी रहा बाधबद्द है । कई प्रांतों आर खानियोंमें स्थाया टालनेकी रीति है, मरणोत्तर सपर्या रात पीटत रहत है कई दशोंमें ता क्रियाया परमी रनेवाल रहे आत इ, इनका पदाही गानका जाता है । यह सब भवनतिकारक प्रया है आर उसका एकदम बन्द करना चाहिये । इस पद्धति से सपर्य जातीकी आपु पटती है ।

हिसकासे वचना ।

हूए मनुष्योंकी मगतिमें रहनममी आपु पटती है । दूर मनुष्य और दूर प्राणी पाग पाग बनकी भी भयावना रहती है अतः इनके दूर रहनेकी आज्ञा यही की है—



ऋष्यात् त्वा मा अभिमस्त । सकुसुकात् आरात् चर ॥ ( म० १२ )

जन्मः सहनुः त्वा मा विदत् । ( म० १६ )

“क्या माँस खानेवाला प्राणी या मनुष्य तरी हिंसा न करे । जो घातपात करने वाला है उससे दूर हो और जो हिंसाशील है वह तुझे न जाने ।” इसका तात्पर्य यह है कि हिंसाशील प्राणियोंके आघातसे किसी की अपमृत्यु न होवे । गीरावृक्षीसे बुद्धादिमें जो मृत्यु होती है उसका यहाँ निषेध नहीं है । दीर्घायु प्राप्त करनेवाले मनुष्य धर्मपुत्रमें न आते हुए धर्ममें छिपकर मृत्युमें बचे, यह इसका आशय नहीं । वह मृत्यु तो अमरत्व प्राप्त करनेवाली है । यहाँ जिससे बचनेका आदेश है वह हिंसक जान वशोक द्वारा हानवाली मृत्यु सिंह, व्याघ्र, साँप आदिके कारण अथवा ऐसे अन्तुओंके कारण जो अपमृत्यु होती है उससे बचनेका तथा कुसुमादि से बचनेका उपदेश यहाँ किया है । दीर्घायु प्राप्त करनेके जो इच्छुक हैं उनको सचित है कि वे इन आपत्तियोंसे अपने आप का बचाव करें ।

### अवनतिके पाश ।

जो मनुष्य दीर्घायु प्राप्त करना चाहते हैं वे अपने आपको मृत्युके और अवनतिके पाशोंसे बचावें । दीर्घायु प्राप्त करनेके उपायका आशय ही यह है, इस विषयमें देखिये—

देव्या वाचा निऋत्याः पाशोऽस्यः त्वा उद्गरामसि । ( म० ३ )

मृत्योः पदवीषा अवसुजमानः । ( म० ४ )

“दिव्य वाणी अर्थात् जो शुद्ध वाणी है, उसकी सहायतासे निर्ऋतिके पाशोंसे तुझे हम ऊपर उठाते हैं । मृत्युके पाशका हम खोसते हैं ।” निर्ऋति अर्थात् अधोगति के पाश बंध कठिन होता है । जो उनमें अटक जात है उनकी अवनति होती है । निर्ऋति क्या है ? और ऋति क्या है इसका विचार इस प्रकार है—

निर्ऋति

ऋतिः

एकाकी अवन

सैन्यममूह, सय

अगति विरुद्धगति

गति, प्रगति

पुद्गल भागना, अपर्यपुद्ग

धर्मपुद्ग

अमार्ग

मार्ग

अवनति

सशक्ति

अमत्य, अपाययता

सत्य, याग्य,

नाश, विनाश	रक्षण, अमरत्व
अपवित्रता,	पवित्रता
तम, अंधकार,	प्रकाश, स्वच्छता
सदाबट, रोग	नीरोगता,
आपत्ति, विपत्ति	सपत्ति
सकट	अनुकूलता
पिरुद्ध परिस्थिति	अनुकूल परिस्थिति
ज्ञाप	वर
मृत्यु	मृत्यु दूर करना
शसत्य, अशस्यमें रमना	सत्य, सत्याग्रह

निर्ऋतिके और मृत्युके पाश कौनसे हैं और उनसे कैसा बचाव करना चाहिये, इस की कल्पना इस कोटकका विचार करनेसे पाटकोंक मनमें सहजहीमें आसकती है। निऋतिके इन पाशोंका तोड़ना चाहिये और ऋतिके साथ अपना संबंध बाढना चाहिये। दीर्घायु प्राप्त करनेवाला इसका अच्छी प्रकार मनन करे, इसी विषयमें और देखिये—

ते मनः तत्र मा गान् । मा तिरः श्रूत । ( म० ७ )

एत पन्धान मा गाः । एष भीमः । ( म० १० )

“तेरा मन इस अधोगतिक, निऋतिके मार्गमें कभी न जावे, तथा उस मार्गमें जाकर बहीही कदापि न छिप जाव। इस अवनातिके मार्गसे मत् आ, क्योंकि यह बड़ा मयानक मार्ग है।” यह मार्ग बड़ा मयानक है, इसमें जो आते हैं वे दुर्गतिको पहुंचत है, अतः कोई मनुष्य इस मार्गसे न जाव। अर्थात् आ दूधरा सत्यका मार्ग है उससे जाकर अम्पुदप और निःशेषमकी प्राप्ति करे निऋतिका मार्ग अपकारका है, अतः बात समय ठाकरें लगती हैं और गिराबटमी मयानक होती है, अतः कहत है—

एतत् तमः, मा प्रपत्याः, ते परस्तात् भय ।

अर्पाक् अभयम् । ( म० १० )

तमः स्या मा शिदत् । ( म० १६ )

“यह अंधकार है, इसमें तू न गिर, क्योंकि इस मार्ग से ज्ञानसे तेरे छिये भागे मय उत्पन्न होगा। अवशक तू उस मार्गमें नहीं जाता और इस सत्यमार्ग परही रहता है, तब तक तू निर्भय है। मय तो उस अवस्थाके भागपर ही है। उस गिराबटके मार्ग में जानेका माह तुझे उत्पन्न न हा।”

य आदय सर्व साधारणके लिये उपयोगी हैं, अतः इनका मनन सबको करना चाह्य है । जिससे आयु क्षीण होगी उन बातोंको अपने आचरणमें लाना योग्य नहीं है । मनुष्यको प्रतिक्षणमें गिरावटके मार्गमें जानका मोह होता है, उस माहस अपन आचरण बचाव करना हरएकका कर्तव्य है । इसीसे दाघ आयु प्राप्त हेनिमें सहायता होती है । मनुष्य गिरावट के प्रसोमनमें न फस इस बातकी धृष्टता देनेके लिये निम्नलिखित मंत्र कहा है—

## ज्ञान और विज्ञान ।

योचक्ष स्वा प्रतीचोचक्ष रक्षतामस्यग्रस्य स्वानवप्राणस्य रक्षताम् ।

गोपायस्य स्वा आयुषिष्य रक्षताम् । ( मं० १३ )

“ ज्ञान और विज्ञान दुनी और आपसमें, तथा रक्षक और आप्रत तेरी रक्षा करो । ” यहाँ का य छः नाम हैं व विशेष मनन करने योग्य हैं । विशेष कर आ मनुष्य दीर्घायु प्राप्त करना चाहते हैं उनको तो ये छः शब्द बड़ी बोधप्रद हो सकते हैं—

१ योच उसको कहत हैं कि जो शरीरोंसे अमृतका ज्ञान प्राप्त होता है, या भी पहिला मास है ।

२ प्रतीचोच यह है कि जो विचार और मनन के पश्चात् सत्यज्ञान होता है तथा जो अन्यान्य प्रमाणोंकी कसौटीस भी सत्य होता है ।

यह ज्ञान और विज्ञान मनुष्यको मोहमें गिरानेवाला न हो । सत्य ज्ञान आर सत्यविज्ञान कभी गिरानेवाला अथवा मोह उत्पन्न करनेवाला नहीं जाता है, तथापि छत्रुक द्वारा का फैलाया जाता है, उसीको ज्ञान विज्ञान मान कर कई मोह काय उसको स्वीकारत हैं, और भ्रममें पड़ते हैं मोहवश होते हैं और गिरत हैं । इसलिये इस मंत्रमें कहा है कि ‘ज्ञान विज्ञान मनुष्यकी रक्षा करनेवाला हो ।’ या मनुष्य ज्ञान विज्ञान प्राप्त करत हैं व विचार करें कि जो ज्ञान विज्ञान हम स रखे हैं, वह सचा ज्ञान विज्ञान है वा नहीं और इससे हमारी सचा रक्षा होगी या नहीं । छत्रुक विषे हुए अमोत्पादक ज्ञानसे (वस्तुतः अज्ञानसे) आयु, आराग्य और बल क्षीण हो जाता है और सत्य ज्ञानसे आयु, आराग्य तथा बल शक्ति प्राप्त होता है । इससे पाठकोंको पता लगा ही होगा कि ज्ञान आर विज्ञान का महत्त्व दीर्घायुकी प्राप्तिमें कितना है अर आगे देखिये—

## फूर्ति और स्थिरता ।

( ३ ) अस्वप्न शुष्मका अर्थ निद्रा न आना नहीं है, वह तो रोगी अवस्था है । निद्रा तो मनुष्यके लिये अत्यंत आवश्यक है । यहाँ 'अ-स्वप्न' का अर्थ है 'सुस्तीका न होना' मनुष्य सुस्त रहना नहीं चाहिये । फूर्ति मनुष्यके अन्दर अवश्य चाहिये । फूर्तिके बिना मनुष्य विशेष पुरुषार्थ कर नहीं सकता । अतः यह गुण मनुष्यके लिये सहायक है ।

( ४ ) अमवव्राण का अर्थ है न मागना, मदगति न होना, पीछे न इठना । जो भूमिका प्राप्त की है, उसमें रहना और समझ हुआ तो भागे आनेकी तैयारीमें रहना ।

वस्तुतः उन्नतिके पथमें जानेके लिये ये गुण बड़े उपयोगी हैं, परंतु कई मनुष्योंमें ऐसे कुछ बेदगकी फूर्ति होती है कि उसीसे उनकी हानि होती है । इसलिये यहाँ यह मन्त्र पाठकोंको सावधान कर रहा है कि ऐसी फूर्ति और गतिसे बचो और जिसस अपनी निःसंदेह उन्नति होगी ऐसी फूर्ति अपनेमें बढाओ । पुरुषार्थी मनुष्यमें फूर्ति तो चाहिये परंतु ऐसी चाहिये कि जो विषादक न हो । पहिले कहे ज्ञान और विज्ञान गुरु आदिसे प्राप्त करने होते हैं, ये फूर्ति और गति अपनेही अन्दर होते हैं, परंतु विशेष रीतिसे उनको ढालना पड़ता है । इसके पश्चात् दो और गुण छेप हैं, उनका विचार अब देखिये—

## रक्षा और जाग्रति ।

( ५ ) गोपायन् उसका नाम होता है कि जो दूसरोंका संरक्षण करता है, इसका अर्थ रक्षा करनेवाला है ।

( ६ ) जाग्रति जागता हुआ रक्षा कार्यमें दृष्टाक्षिप्त होता है । अर्थात् य दोनों रक्षा कार्य करनेवाले हैं ।

यहाँ 'मायुषिः गोपायन् च त्वा रक्षता' । ( म० १३ ) जागता हुआ और रक्षा करनेवाला तेरी रक्षा करे ऐसा कहा है । इससे स्पष्ट होता है कि कई जागनेवाले रक्षाका कार्य नहीं करते और कई रक्षक भी रक्षाका कार्य नहीं करते । दक्षिण और रात्रीका जागता है, परंतु वह जनताकी रक्षा नहीं करता, इसी प्रकार कई रक्षक काम पर नियुक्त हुए ओहददार भी प्रजाकी रक्षा नहीं करते, परंतु रिश्ते आदि खाद्याकर प्रजाको सताते हैं । इस प्रकारके अनर्थ लोग हैं जो जागते हैं और रक्षाके कार्यमें अपने आपको रक्षते भी हैं, परंतु लोगोंकी इनसे अपने आपको बचाव करना चाहिये । क्यों

कि ये स्वार्थसाधक हैं । अतः लोग विचार करें कि सच्चे रक्षक कौन हैं और जनहित करनेके लिये कौन जागते रहते हैं । जो सच्चे रक्षक हैं उनकोही रक्षक मानना और जो स्वार्थसाधक हैं उनको दूर करना चाहिये । तभी सच्ची रक्षा होमी, कल्याण होगा, जनतामें शान्ति रहेगी और अन्तमें ऐसी सुस्थितिमें आयुमी दीर्घ होगी, और नीरोग व्यवस्था रहनेसे जनता सुखी होगी । दीर्घायु प्राप्त करनेमें वे सब बातें सहायक हैं, इनके बिना अकेलेके वैयक्तिक प्रयत्नसे पर्याप्त दीर्घायु नहीं प्राप्त हो सकती । अर्थात् सामाजिक और राजकीय परिस्थिति अनुकूल रहनेसे मनुष्यकी आयु दीर्घ होती है और प्रतिकूल होनेसे आयु घटती है । इसीलिये स्वतंत्र दण्डके लोग दीर्घजीवी होते हैं, और परतंत्र दण्डमें जल्दायु प्रजा होती है ।

### सामाजिक पाप ।

दीर्घजीवी मनुष्यको सामाजिक और राजकीय कर्तव्य भी है यह दर्शानेके उद्देशसे इस सूक्तमें स्वतंत्र आदण विधाय रीतिसे कहा है—

जीवेभ्यः मा प्रमादः । ( म० ७ )

‘सर्वे जीवोंके लिये अपना कर्तव्य करनेके समय तू प्रमाद न कर ।’ इससे स्पष्ट होता है कि हरएक मनुष्य का अन्य प्राणियोंके संबंधमें कुछ विशेष कर्तव्य है, अर्थात् अन्य मनुष्य और अन्य पशुपक्षी मीनजन्तु आदिके संबंधमें कुछ कर्तव्य हैं और उसमें प्रमाद होना नहीं चाहिये । प्रमाद होनेसे इस ब्यक्तिका और समाजकामी नुकसान होगा अतः प्रमाद न करते हुए यह कर्तव्य करना चाहिये । यह कर्तव्य ठीक प्रकार होनेसे मनुष्य दीर्घायु हो सकता है । अर्थात् इस सामाजिक कर्तव्यको निर्दोष रीतिसे करनेवाले लोग समाजमें अितने अधिक होंगे उतने उस समाजमें दोष कम होंगे, और उस प्रमाणसे उस देशके मनुष्योंकी आयु दीर्घ होगी । सामाजिक कार्य के विषय में उदासीन और सामाजिक कार्यको प्रमादयुक्त करनेवाले लोग जिस समाज में अधिक होंगे उस समाजमें अस्वायु लोगोंकी संख्या अधिक होगी । अतएव संपूर्ण समाज निर्दोष नहीं होता तबतक मनुष्यों की दीर्घायु नहीं होगी । तृपित समाजमें एक व्यक्ति कितनी भी निर्दोष हुई तथापि उस समाजके दापोंका परिणाम उस व्यक्ति पर होगा ही । इसलिये सार्विक जीवन की निर्दोषता करना आवश्यक है ।

पितृन् मा अनुगाः । ( म० ७ )

‘ह मनुष्य ! तू पितरोंक पीछे न जा ।’ अर्थात् शीघ्र न मर । यह आदण

मनुष्यको दीर्घायु प्राप्त करनेकी प्रेरणा करनेके उद्देश्यसे कहा है । यदि मनुष्य प्रयत्न करेगा, तो उसको दीर्घ जीवन प्राप्त होगा, अन्यथा उसकी आयु अल्प होती जायगी ।

### सूर्यप्रकाशसे दीर्घायु ।

दीर्घ जीवन प्राप्त करनेके लिये सूर्यप्रकाश बड़ा सहायक है । जो लोग अपनी आयु बढ़ाना चाहते हैं व इस असूतपूर्ण सूर्यप्रकाशसे अवश्य लाभ उठावें—

सूर्यो ते तन्वे सा तपानि । ( म० ५ )

अस्माद्धोकात् अग्नेः सूर्यस्य सहसा मा छित्थाः । ( म० ४ )

इह असूतस्य लोके सूर्यस्य आग आस्तु । ( म० १ )

“सूर्य तेरे शरीरको सुख देनेके लिये ही तपता है । अतः सूर्यक प्रकाशसे अपना संबंध न छाड़ । यहाँ असूतपूर्ण स्थान अर्थात् सूर्यक प्रकाशित भागमें रह ।” इसीसे दीर्घ आयु होगी । जो लोग तंग मकानके अन्दर रह कर रहते हैं, वहाँ सूर्यप्रकाश उनके नहीं मिलता वे अल्प जीवी होते हैं । शरीरके चमड़ीपर सूर्यप्रकाश छयना चाहिये । यादादा अधिक सूर्यप्रकाश चमड़ीपर लगा ता श्विनको कष्ट होते हैं वे दीर्घजीवनके अधिकारी नहीं है । मनुष्य सदा कपड़ोंसे ढकित रहते हैं अतः वे सूर्यके जीवनसे वंचित रहते हैं । यदि मनुष्य सूर्यावपन्नान करेगा तो उनके श्वेतमें सूर्यकिरणोंसे जीवनविशुद्ध पुष्पगी और उनके अधिक लाभ होगा । सूर्यके विषयमें प्रभावतिपद्म कह है—

आवृत्तयो ह वै प्राणो रयिरेव चन्द्रमा रयिर्वा एतत्सर्वं  
यन्मूर्तं चामूर्तं च तस्मान्मूर्तिरेव रयिः ॥ ५ ॥

प्राणः प्रजानामुदयत्यपे सूर्यः ॥ ८ ॥

प्रश्न उ० १

“सूर्य ही प्राण है और जो सब अन्न मृत अथवा अमूर्त है वह रयि है । यह सूर्य प्रजाओंका प्राण है जो उदयका प्राप्त होता है ।” इतनी सूर्यकी महिमा है, अतः इस श्वेतमें कहा है कि, ‘सूर्यके प्रकाशसे अपना संबंध न छाड़ ।’ क्योंकि यह सूर्यप्रकाश ऐसा है कि, जिससे मनुष्यकी आयुष्पमर्यादा हार्दिक हो जाती है । जो जो प्राणी सूर्य प्रकाशसे अपना संबंध छोड़ते हैं वे अल्पायु होते हैं । मानो, सूर्य ही जीवनका समुद्र है, इसलिय इससे दूर होना अयोग्य है । सूर्यक समान अन्य द्रव भी मनुष्यका दीर्घ जीवन करत है इस विषयमें निम्नलिखित मन्त्रमात्र दक्षिण—

मगः अशुमान्सोमः मरुतः देवाः इन्द्राग्नी स्वस्तये उत् । (म० २)  
 मातरिश्वा वातः तुम्य पयताम् । (म० ५)  
 आपः अमृतानि तुम्य वर्धन्ताम् । (म० ५)  
 इह विश्वे देवाः तुम्य रक्षन्तु । (म० ७)  
 अग्रयः जातवेदाः वैश्वानरः विष्टपः विशुतः ते रक्षन्तु । (म० ११)  
 यौः पृथिवी सूर्यः चन्द्रमाः अन्तरिक्षं त्वा रक्षताम् । (म० १२)  
 आयमाण इन्द्रः जीवेभ्यः त्वा स-उवे वधातु । (म० १५)  
 आदित्या वसव इन्द्राग्नी स्वस्तये त्वा उद्धरन्तु । (म० १६)  
 यौः पृथिवी प्रजापतिः सोमराक्षीः ओषधयः त्वा मृत्योः  
 उद्धपीपरन् । (म० १७)

“पृथ्वीस्थानर प्राप्त होनेवाली दधताएँ पृथिवी, बल (बाप), अग्नि, वायु, पशु, (सोमराक्षीः ओषधयः) सोमादि औषधियाँ, (प्रजापति) प्रजापालक राजा, वैश्वानर, जातवेदा आदि हैं, अन्तरिक्ष स्थानमें रहनेवाली अन्तरिक्ष (आपः) मेघस्थानीय बल, मातरिश्वा वातः, (मरुतः) वायु, चन्द्रमा, इन्द्र, विशुतः, (प्रजापति) मेघ आदि दधताएँ हैं और पृथिलोकमें रहनेवाली यौः, सूर्य, आदित्य, मग, प्रजापति (परम वारमा) आदि देवताएँ हैं, ये सब दधताएँ मनुष्यको दीर्घ आयुष्य देवें।” पाठक जान सकते हैं कि इनमेंसे प्रत्येक देवताका सभ्य प्राणीकी दीर्घायुष्य साथ कैसा है। प्राणी जितने पर अलसे प्राणधारण करता है, मूल लगनेपर औषधिविबनस्पतियाँ, फूलोंफलों और कन्दोंसे प्राणीका जीवन देती हैं, छत्रप्रकाश से सभी पदार्थोंमें जीवन रखता ही है इसी प्रकार अन्याय दधतासे जीवन लेकर मनुष्यादि प्राणी प्राण धारण करता है, इस विषयमें विस्तारसे कहनेकी आवश्यकता नहीं है। पाठक स्वयं विचार करके इसकी सत्यता प्रत्यक्ष देख सकते हैं।

य सब देव (व्या-वसाः) आयुकी धारणा करनेवाले हैं, य (सधमन्तु) मनुष्यमें दीर्घजीवनकी स्थापना करें। इन देवोंसे जीवनशक्ति प्राप्त करनेका ही नाम यज्ञ है, इसीलिये कहा है कि—

व्यान्माषयतानम ते देवा आवयन्तु यः ।

परस्पर आवयन्तः अयः परमवाप्स्यथ ॥ म० गी० १।११

“यज्ञ देवोंका सतृप्त कर्ता और देव तुम सबको सतृप्त करेंगे, इस प्रकार परस्परका आनन्द प्रसन्न करते हुए तुम सब परम भय प्राप्त करोगे।” इस प्रकार यह यज्ञका

संपन्न है, अतः इस सूक्तमें कहा है कि—

परिः प्रमयुः कथा स्यात् ? ( म० १६ )

“यह विधातक कैसा होगा ?” सदा यद्य विधिपूर्वक किया जाय तो कमी पात कर्ता नहीं होगा, प्रसुप्त पोषक ही होगा । इस रीतिसे सर्वादि देवोंसे शक्ति प्राप्त करके मनुष्य अपनी शक्तिका विकास कर सकता है और यहाँ आनन्दसे रहकर दीर्घ जीवन प्राप्त कर सकता है । इसी प्राणधारणके विषयम इस सूक्तमें कहा है—

ते प्राणा अपाना इह रमन्ता । अथ पुरुषः असुना सह । ( म० १ )

इह ते असुः, इह प्राणः, इह आयुः, इह ते मनः । ( म० २ )

त्वा प्राणः बल मा हासीत् । ते असु अनु ह्यामसि । ( म० १५ )

इस रीतिसे यद्यद्वारा देवताओंकी प्रसन्नता करके ‘तेरे अन्दर प्राण, अपान, आयु, मन, बल आदि स्थिर रहे ।’ अर्थात् मनुष्य को दीर्घजीवन प्राप्त हो ।

ते जीघातु वस्ततार्ति कृणोमि । ( म० ६ )

“मनुष्यमें जो जीवन और बल है” वह सब शुभकर्म करनेके लिये ही है, यद्य के लिये ही है । मनुष्य ने जो दीर्घायु प्राप्त करनी है, बहुत बल प्राप्त करना है वह इसी कार्यके लिये है, वह सब अष्टतम यद्गुरुप कर्मके लिये ही है—

अथ इह असु, अथ इतः अमुष्म मा गात् । ( म० १८ )

मृत्योः त्वा उत्पीपरम् । ( म० १९ )

त्वा आहार्य, त्वा अचिद, पुमः नवः आगाः । ( म० २० )

हे सर्वांग । ते सर्वं चक्षुः ते सर्वं आयुः च अचिदम् । ( म० २० )

त्वत् निर्मतिं मृत्यु अपनिदप्समसि । यश्म अपनिदप्समसि । ( म० २१ )

सहस्रवीर्येण इम मृत्योः उत्पारयामसि । ( म० १८ )

“यह मनुष्य इस लोकमें रहे, परलोक में न जाये, अर्थात् न मरे । मृत्युसे तुझे बचाया है । मृत्युसे तुझे लावा है, मानो तू नया बन कर आगया है, तेरा नयाही जीवन बनगया है । हे सर्वांगसम्पूर्ण मनुष्य । चक्षु, आयु आदि सब तुझे प्राप्त हुआ है । तेरेसे दुर्गति, मृत्यु और रोग दूर हुए हैं । इसीसे बलवीर्यवाली औषधियोंके प्रयोग द्वारा तुझ मृत्युसे बचा दिया है ।”

इस प्रकार दीर्घ जीवन प्राप्त करनेमें यथियत्र औषधि के विविध प्रयोग करके यह सिद्धी प्राप्त करनी होती है । इसके दीर्घजीवनीय उपाय आयुर्वेद, योगसाधन आदिमें विस्तारपूर्वक दखने योग्य हैं । अतः इनका विस्तार यहाँ करनेकी आवश्यकता नहीं ।



परंतु यहाँ ' तम और ज्योति ' का सषष मनुष्य जीवनसे कैसा है इसका विचार विशेष रीतिसे करना चाहिये ।

## तम और ज्योति ।

तमः तमः व्यधात्, अप अकमीत् । ते ज्योतिः अभूत् । ( म० २१ )

“ तेसे अन्धकार दूर हो चुका है और तेरा प्रकाश हुआ है । ” इस मन्त्रद्वारा जीवनके एक महासिद्धान्त का वर्णन किया है । मनुष्यका जीवन सषष प्रकाशका जीवन है । बहुत थोड़े लाग इसका अनुभव करते हैं । प्रत्येक मनुष्यका एक एक प्रकाशका वतुल स्वप्न है, जैसा जिसका सामर्थ्य अधिक उठना उसका वर्तुल रहा प्रमादशाली हाता है । जिसका आरिभक्त बल कम उसका प्रकाशवर्तुल भी छोटा होता है । यह छोटा या कमजोर भी हुआ तभी आकाशतक, नक्षत्रोंतक फैलने योग्य विस्तृत होता है । मनुष्य जब मरने लगता है तब यह प्रकाशवर्तुल छोटा छोटा होता जाता है, जो मरनेतक अपने अन्तिम अनुभव मोल सकता है, वह इस बातको प्रत्यक्ष रूपसे कह सकता है । अन्तिम समय घणघणम जिसका प्रकाशवर्तुल छोटा हाता है वह वैसा कहता भी है । मनुष्यकी आरमापर (समः) अन्धकार या अविद्याका आवरण पहनाही मृत्यु है । अन्तसमयमें यह वर्तुलप्रकाश कबल अगुप्तमात्र रहा तो मृत्यु होती है । यह अनुभव इस मन्त्रद्वारा व्यक्त किया है । “ हे मनुष्य ! तेरे ऊपर अन्धरेका आवरण आरहा था, वह अब दूर होगया है और पूर्ववत् तेरी ज्योति जगत्में फैल गयी है । ” यह २१ व मन्त्रमागका आशय है । यह आत्मप्रकाशका अनुभव है । यह कोई काल्पनिक बात नहीं है । जिसन जगत्का मनुष्यको ज्ञान होता है वहाँतक इसका यह प्रकाशवर्तुल फैला है । मरणसमयमें पहलिसि प्रकाशवतुल ज्ञानः ज्ञानः छाया देनेका अनुभव हाता है । जिसका ज्ञानः ज्ञानः अन्तिम अनुभव होता है वह कई घण्टे मरणके पूर्व भी कहता है कि वह प्रकाश पट रहा है, परंतु जिसको मरणपूर्व बहुत समय बहापी रहती है, यह विचारता कुछ कह नहीं सकता । बहाशाका अर्थही प्रकाशवर्तुलका सकोच होना । बहोप ज्ञानराता मनुष्य कहताही है कि मेरे आँखक सामने अंधेरा आगया । इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि इसका ज्ञा प्रकाश पैसा था वह सङ्कुचित होगया, इसलिये हमकी जीवनशक्ति कम हुई और वह मूर्च्छित होगया ।

इतन विचारम पाठकोंका इस २१ वें मन्त्रमागका अर्थनीक प्रकार विदित हुआ होगा ।

दो मार्गरक्षक ।

दयामय शायलका यमराय पधिरक्षी स्थानी । ( म० )

“काला और श्वेत ऐसे दो यमक मार्गरक्षक श्रान हैं ।” यहाँ ‘श्रान’ शब्दका अर्थ कई लोगोंने ‘कुत्ता’ किया है और इसका अर्थ ऐसा माना है कि “यमके दो कुत्ते यम ठोकके मार्गमें रहते हैं ।” परन्तु यह अर्थ ठीक नहीं है । ‘श्रान’ शब्दका अर्थ यहाँ “ ( श्रान-न, श्रान-न ) जो कल नहीं रहता ” यह है । यम नाम सूर्य अर्थात् काल है, इसके श्वेत दिन और कृष्णवर्ण रात्री का समय ये दो भाग ‘कलसक न रहनेवाले,’ केवल मात्र ही रहनेवाले हैं । इस विषयमें वदमें अन्यत्र कहा भी है—

अहम् कृष्णमहरर्णन च विभर्ते रजसी चेध्यामिः । ऋ० ६।१।१

“एक ( अहः ) दिन काला होता है और दूसरा श्वेत होता है ।” यही दिन और रात हैं । येही यमके दो-श्वेत और काले मार्गरक्षक हैं । हरएक मनुष्यके मार्गकी रक्षा ये दोनों करते हैं । इनमेंसे प्रत्येक मात्र हैं परन्तु कल तो निःसन्देह नहीं रहेंगे । ये दोनों यमके रक्षक हैं ऐसा जानकर, और हरएकके पीछे ये लगे हैं कोई इनसे छूटा नहीं है, वह जानकर इन रक्षकोंके सामने कोई पापकर्म न करे और सदा अच्छा सत्कर्म ही किया करे । पाप कर्म करनेसे ये यमके मार्गरक्षक तो किसीको छोड़ते नहीं । अर्थात् पापीको अवश्य दण्ड मिलेगा । यह दण्ड आपुकी क्षीणता ही है । अन्य रोगादि भी हैं । यह यम बड़ा प्रबल है किसीको छोड़ता नहीं, अतः उसको नम्र होकर रहना चाहिये ।—

मृत्युवे अन्तकाय नमः । ( म० १ )

मृत्युः क्षयताम् । ( म० ५ )

“मृत्युको नमस्कार हो, मृत्यु दया करे” इत्यादि प्रकार मृत्युके सामर्थ्यकी जाग्रति मनमें रखना चाहिये । और उसका हर मनमें रखना चाहिये । उससे दयाकी पाषना करना चाहिये । इसी नम्रता मनमें रही तो मनुष्य सहसा पाप नहीं करेगा । कमसे कम इससे पापप्रवृत्ति न्यून तो अवश्य होगी । इसी प्रकार—

शोपायन्ति रक्षन्ति, तेभ्यः नमः स्वाहा च । ( म० १४ )

“जो पासना और रक्षा करते हैं, उनको नमस्कार और समर्पण हो ।” इससे पूर्व पासकों और रक्षकोंकी गिमरी की है तब सबके लिये अपनी ओरसे यथायोग्य समर्पण अपश्य होना चाहिये । यही यज्ञ है । जो यज्ञके विषयमें इससे पूर्व लिखा है वह पाठक यहाँ देखें । यज्ञ और ( स्वाहा-स्वा-हा ) समर्पण एकही बात है और नमन भी उसीमें समिलित है ।

इस प्रकार विचारवान सुविज्ञ मनुष्य ब्रह्म अवस्थामें सत्य ज्ञानका उपदेश देनेमें समर्थ होता है—

### उपदेशक ।

जिर्विः विद्वथ आचक्षसि । ( म० ६ )

“ इस प्रकारका ब्रह्म मनुष्य अपने ज्ञानका उपदेश कर सकता है । ” तबतक किसी को उपदेशक होनेका अधिकारही नहीं है । इससे पूर्व ओ ओ उपदेश दिया है, उसके अनुसार आचरण करके ओ मनुष्य सदाचाररत होकर ब्रह्म होता है, वही योग्य उपदेश देनेमें समर्थ होता है । अस्तु । यह सूक्त बड़ा बोधप्रद और मार्गदर्शक है, अतः पाठक भी इससे बहुत लाभ उठावें ।

इस सूक्तके स्मरण करने योग्य उपदेश ।

(१) इहापमस्तु पुरुषः सहासुना सूर्यस्य भागे असृतस्य लोके । अ० ८ । १ । १

“ओ मनुष्य दीर्घायु प्राप्त करना चाहता है वह सूर्यके प्रकाशके प्रदेशमें रहे क्यों कि वहाँ अमृत रहता है । ”

(२) उत्क्रामातः पुरुष, माव पत्था सुख्यो । पद्भीष्ममधमुज्जमानः ॥ अ० ८ । १ । ४

“हे मनुष्य ऊपर चढ़, मत गिर, और सुस्थुके पाख ताड़ दे । ”

( ३ ) सूर्यस्ते मा तपाति । अ० ८ । १ । ५

“सूर्य तेरा कल्याण करनेके लिये तपता है । ”

( ४ ) उद्यान ते पुरुष नावयामम् । अ० ८ । १ । ६

“हे मनुष्य ! उरी उन्नति हो, अवनति न हो । ” यह वाक्य भगवद्गीता ( ६ । ५ ) के

“उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् । ” अपना उद्धार करना चाहिये, कभी गिरावट करना नहीं चाहिये इस वाक्यके समान है ।

( ५ ) मा जीवेम्या प्रमदः ॥ अ० ८ । १ । ७

“ प्राणियोंके सङ्घमें ओ कर्तव्य है उसमें प्रमाद न कर । ”

( ६ ) मा गलानामादीधीषा य नपत्ति परायतम् । अ० ८ । १ । ८

“ गत बातोंका झोक न कर व अभीगतिम द्रुतक ले जाते हैं । ”

( ७ ) मात्र तिष्ठ पराङ्मनाः । अ० ८ । १ । ९

“ यहाँ विरुद्ध दिशामें मन करके खड़ा न रह । ”

# दीर्घायु ।

[ २ ]

( शशिः—प्रसा । देवता—आयुः )

आ रमस्वेमापमृतस्य भुष्टिमाच्छिद्यमाना नृरदष्टिरस्तु ते ।

असुं तु आयुः पुनरा मरामि रत्नस्तमो मोषं गा मा प्र मेघाः ॥ १ ॥

जीवतां ज्योतिरुन्मेषुर्वाका त्वा हरामि क्षुवधरदाय ।

अवमुञ्चन् मृत्युपाशानशस्तिं द्रापीय आयुः प्रतरं ते दशामि ॥ २ ॥

अर्थ—( इमां अमृतस्य दनुष्टिं आरमस्व ) इस अमृत रसके पानको प्रारम्भ कर । ( ते जरत्—अष्टिः अच्छिद्यमाना अस्तु ) तेरा वृद्धावस्था तक जीवन भोग आविच्छिन्न रीतिसे होवे । ( ते असु आयुः पुनः आभरामि ) तेरे प्राण और जीवनको मैं तेर अन्दर पुनः भरता हू । ( रजः तमः मा उपगाः ) भोग और अज्ञानके पास न जा । ( मा प्र मेघाः ) मद् मर जा ॥ १ ॥

( जीवतां ज्योतिः अर्वाह अग्नि—एहि ) जीवित मनुष्योंकी ज्योतिको इस ओरसे प्राप्त हो । ( त्वा शत—शारदाय आ हरामि ) तुझे सौ वर्षकी आयुके लिये छाता हू । ( मृत्युपाशान अशस्तिं अवमुञ्चन् ) मृत्युके पाशों और अक्षीर्तिको हटाता हुआ ( ते प्रतरं द्रापीयः आयुः दशामि ) मैं तेरे लिये उत्कृष्ट दीर्घ आयु देता हू ॥ २ ॥

भावार्थ—हे रोगी मनुष्य । तू इस अमृतरस रूपी औषधिरसका पान कर । और दीर्घायुसे युक्त बन । तेरे अन्दर प्राण पुनः स्थिर रखता हू । तू भोगमय जीवन और अज्ञान के पास न जा । और शीघ्र न मर ॥ १ ॥

जीवित मनुष्योंमें जो एक विलक्षण तेज होता है उसे प्राप्त कर । और सौ वर्ष जीवित रह । मृत्युके पाशको तोड़ । तेरी आयु बढ़ाता हू ॥ २ ॥

वातात् ते प्राणमविद्धं सूर्यास्त्वक्षरं त्वं ।

यत् ते मनस्त्वयि सद् धारयामि सं विस्वात्रैर्वदं जिह्वा लपन् ॥ ३ ॥

प्राणेन त्वा द्विषदां चतुष्पादामधिमिष आतममि सं धमामि ।

नमस्ते मृत्यो चक्षुषे नमः प्राणाय तेकरम् ॥ ४ ॥

अयं जीवतु मा मृतेम समीरयामसि ।

कृणोम्यस्मै भेषजं मृत्यो मा पुरुषं वधीः ॥ ५ ॥

अर्थ—(वातात् ते प्राण अविद्ध) वायुसे तेरे प्राणको प्राप्त करता हूँ । (अक्षरं सूर्यात् तव चक्षु) मैंने सूर्यसे तेरे नेत्रको प्राप्त किया है । (यत् ते मनस्त्वयि धारयामि) जो तेरा मन है उसको मैं तेरे अन्दर धारण करता हूँ । (अगैः साविस्त्र) अपने सब अवयवोंको प्राप्त हो । (जिह्वा लपन् वह) जिह्वासे शब्दोच्चार करता हुआ तू बोल ॥ ३ ॥

(जात अग्निं इव) अग्नी उत्पन्न हुए अग्निके समान (त्वा द्विषदां चतुष्पादां प्राणेन सधमामि) द्विषदा और चतुष्पादोंके प्राणसे जीवन देता हूँ । हे मृत्यो ! (ते चक्षुषे नमः) तेरी नेत्र इन्द्रियके लिये नमन और (ते प्राणाय नमः अकर) तेरे प्राणके लिये मैं नमन करता हूँ ॥ ४ ॥

(अयं जीवतु) यह पुरुष जीवित रहे, (मा मृत) मत मरे । (इमं समीरयामसि) इसको हम सचेत करते हैं । (अस्मै भेषजं कृणोमि) इसके लिये मैं औषध बनाता हूँ । हे मृत्यो ! (पुरुषं मा वधीः) इस पुरुषका वध न कर ॥ ५ ॥

भावार्थ—वायुसे प्राण, सूर्यसे नेत्र तुम्हें देता हूँ । तेरे अन्दर मन स्थिर रहे । तेरे सब अवयवोंकी पुष्टी हाथे और तेरी जिह्वासे उत्तम वपतृत्व होवे ॥ ३ ॥

जिस प्रकार अग्निकी छोटी बालाको धमनसे थोड़ा थोड़ा वायु लेकर प्रदीप्त होनेमें सहायता धते हैं, ठीक उस प्रकार तेरे अन्दर रहे थोड़ेसे प्राणको हम अनेक उपायोंसे प्रदीप्त करते हैं । मृत्युको हम नमस्कार करते हैं ॥ ४ ॥

यह मनुष्य दीर्घजीवी होय, शीघ्र न मरे । ऐसी शक्ति इसमें संचालित करते हैं । इस रोगीको हम औषध धते हैं । इसकी मृत्यु न हो ॥ ५ ॥

जीवलां नघरिषां जीवन्तीमोषधीमहम् ।

आयमाणां सहमानां सहस्वतीमिह दुःस्मा अरिष्टतां तये ॥ ६ ॥

अभि ब्रूहि मा रमयाः सुजेमं तवैव सन्तसर्षहाया इहास्तु ।

मवांशर्षां मुहुरं शर्म यच्छतमपसिष्यं दुरितं घञ्मायुः ॥ ७ ॥

अस्मै मृत्यो अभि ब्रूहिमं दयस्वोदितोऽयमेतु ।

अरिष्टः सर्षाङ्गः सुभुजमरसां घञ्हायन आत्मना मुञ्चमभुताम् ॥ ८ ॥

अर्थ- ( अह अस्मै अरिष्ट-तां तये ) मैं इसको सुखका विस्तार करनेके लिये ( जीवलां ) जीवन देनेवाली ( नघरिषां ) हानि न करनेवाली ( आयमाणां सहमानां सहस्वतीं ) रक्षा करनेवाली, रोग हटानेवाली और यल बहानवाली, ( जीवन्तीं ह्रुवे ) जीवनीय औपधिको देता हू ॥ ६ ॥

( अभि ब्रूहि ) तू उपदेश कर, ( मा आरमयाः ) घुरा पताँव न कर, ( इम सुज ) इस पुरुषको जगत्में चलाओ, ( तव एव सन् ) तेराही होकर यह (सर्वहायाः इह अस्तु) पूर्ण आयु तक यहाँ रहे । (मवा-शर्षा) हे मव और शर्ष । तुम दोनों (सूहृत) सुखी करो, (शर्म यच्छत) सुख दो । (दुरित अपसिष्य) पापको दूर करके ( आयुः यत् ) दीर्घआयु चारण करो ॥ ७ ॥

हे मृत्यो ! ( अस्मै अभि ब्रूहि ) इसको उपदेश कर, ( इम दयस्व ) इस पर दया कर । ( अय इतः उत्प एतु ) यह इस विपत्तिसे ऊपर उठे । और ( अ-रिष्टा सर्षाङ्गः ) पीडा रहित सर्व अगोंसे पूर्ण, ( सु-भुत ) उत्तम ज्ञान या भक्षण शक्तिसे युक्त होकर ( जरसा घातहायनः ) वृद्धावस्थामें सौ वर्षसे युक्त होकर ( आत्मना सुज अहनुतां ) अपनी शक्तिसे अगोंको प्राप्त करे ॥ ८ ॥

भावार्थ- इसके दीर्घजीवनके लिये जीवन्ती औपधिके रसको देता हू । यह आयुष्य पढाने वाली, यल देनेवाली, दोष हटानेवाली, और रोग दूर करनेवाली है ॥ ६ ॥

इस दीर्घजीवनके उपायका जमताको उपदेश कर, कोई घुरा आभरण न करे, यह पुरुष इससे निर्दोष होकर जगत्में सत्कार करे । इसको दीर्घ जीवन प्राप्त हो । इसको सुखमय शरीर मिले, रोग और दोष दूर हो और पूर्ण आयु प्राप्त हो ॥ ७ ॥

देवानां हेतिः परिं त्वा वृणक्तु पारयामि त्वा रजसु उत् त्वा मृत्योरपीरम् ।  
आरादग्निं क्रुव्यादं निरुहं जीवातवे ते परिधिं दधामि ॥ ९ ॥

यत् ते नियानं रजस मृत्योः अनवधर्ष्यम् ।

पथ इम तस्माद् रथन्तो प्रसास्मै वर्म कृण्वसि ॥ १० ॥ ( ३ )

कृणोमि ते प्राणापानौ जरां मृत्युं दीर्घमायुः स्वस्ति ।

वैवस्वतेन प्रहितान् चरतः सर्वान् यमदूतांश्चरतोऽपि सेवामि सर्वान् ॥ ११ ॥

अर्थ- (देवानां हेतिः त्वा परिवृणक्तु) देवोंका शास्त्र तुझे दूर रख । (त्वा रजसः पारयामि) तुझे रजसुसे पार करता हू । (त्वा मृत्योः उत्त अपीरम्) तुझे मृत्युसे उठाया है, तू मृत्युसे दूर होशुका है । (क्रुव्याद अग्निं आराद निरुह) मांसभक्षक अग्निको दूर रखता हू । (ते जीवातवे परिधिं दधामि) तेरे जीवनके लिये मर्यादा निश्चित करता हू ॥ ९ ॥

हे मृत्यो ! (यत् ते अनवधर्ष्यं रजस नियान) जो तेरा अजिंक्य रजोमय मार्ग है (तस्मात् पथः इम रक्षन्तः) उस मार्गसे इस पुरुषकी रक्षा करते हुए हम (अस्मै प्रथ वर्म कृण्वसि) इसके लिये ज्ञानका कवच करते हैं ॥ १० ॥

(ते प्राणापानौ जरां मृत्युं दीर्घं आयुः स्वस्ति कृणोमि) तेरे लिये प्राण अपान, बुढ़ापा, दीर्घ आयु और अन्तमें मृत्यु कल्याणमय करता हू । (वैवस्वतेन प्रहितान् चरतः सर्वान् यमदूतान्) विवस्वान सूर्यसे उत्पन्न बालके भेजे हुए सर्वत्र संचार करनेवाले यम यमदूतोंको (अपसेवामि) मैं दूर करता हू ॥ ११ ॥

भावार्थ- इसकी आरोग्य प्राप्तिका उपदेश कर, मृत्यु इसपर इस समय व्याप करे, यह सब प्रकार अभ्युदयका प्राप्त होये, इसके सब अवयव पूर्ण रीतिमें बँटें, निर्दोष हों । यह ग्रानयान होकर पूर्णायु होये और अन्ततक अपन प्रपन्नमे अपन लिये आयुदण्ड भोग प्राप्त कर ॥ ८ ॥

सेवाक शस्त्र तुझपर न गिर। तुझे भोगवृत्तिस पर ले जाता हू। मृत्युको हटाता हू। मुदोंकी जलानेवाला अग्नि तर पाससे दूर होये और तू प्राणायुषी अन्तिम मयादातक जीवित रह ॥ ९ ॥

मृत्युका अजिंक्य माग है, तथापि उससे हम इसकी रक्षा करते हैं । और हमका ज्ञानका कवच लेत हूँ जिसमे इसकी रक्षा होगी ॥ १० ॥

आरादराति निर्भीतिं पुरो आर्हिं क्रव्यादः पिशाचान् ।

रक्षो यत् सर्वं दुर्मृतं तत् तम इवार्प हन्मसि ॥ १२ ॥

अग्नेऽष्टे प्राणममृतादाभुष्मतो बन्धे जातवेदसः ।

यथा न रिप्यां अमृतः सज्जरसस्तत् ते कृणोमि तद् ते समृभ्यताम् ॥ १३ ॥

शिषे ते स्तां घावापृथिवी अंसन्तापे अभिभिषी ।

धे ते सूर्य आ तापतु धे पातो वातु ते हृदे ।

शिषा अमि रक्षन्तु त्वापो दिव्याः पयस्वतीः ॥ १४ ॥

अर्थ—(अराति) शत्रु, (निर्भीति) दुर्गति, (आर्हिं) रोग, (क्रव्यादः) मांस मक्षक जन्तु, (पिशाचान्) मांस खानेवाले (रक्षः) विनाशक और (यत् सर्वं दुर्मृतं) जो सब अहितकारी है, (तत् तम इव) उसको अन्धकारके समान (परः आरात अपहन्मसि) दूर हटाता हूँ ॥ १२ ॥

(अमृतात् आयुष्मतः जातवेदसः अग्नेः) अमर, आयुवाले जातवेद अग्निसे (ते प्राण बन्धे) तेरे प्राणको प्राप्त करता हूँ। (यथा अमृतः न रिप्याः) जिससे अमर होकर तू न विनष्ट होगा। (सज्जः असः) उसके साथ रह, (तत् ते समृभ्यतां) वह तेरा कार्य समृद्धियुक्त होवे ॥ १३ ॥

(घावापृथिवी ते अंसन्तापे) घाँ और पृथ्वी लोक तेरे लिये सन्ताप न करनेवाले, (शिषे अभिभिषी) छुन और भीसे युक्त (स्तां) हों। (सूर्यः ते वा तापतु) सूर्य तेरे लिये सुख देता हुआ प्रकाशित होवे। (ते हृदे वातुः वा वातु) तेरे हृदयके लिये वायु सुखदायी होकर बहे। (दिव्याः पयस्वतीः आपः) आकाश के मेघमण्डल से प्राप्त होनेवाले और पृथ्वीपर बहनेवाले जलप्रवाह (श्वा शिषाः अभिभ्ररन्तु) तेरे लिये शान्ति देते हुए बहते रह ॥ १४ ॥

भाषार्थ—प्राण अपना, वृद्धावस्था, वीर्य आयु आदिके कारण तुझ सुख प्राप्त हो। सुख कष्ट देनेवाला जा होंगे उनको मैं दूर करता हूँ ॥ १२ ॥

शत्रु, विपत्ति, रोग, विनाशक, घातक, और क्षीणता करनेवाले जो होंगे उनको दूर हटाता हूँ ॥ १२ ॥

अमर और आयु देनेवाले अग्नि देवसे मैं तेरे लिये प्राण लाता हूँ। इससे तेरी मृत्यु नहीं होगी। तू यहाँ जीवित रह और समृद्धिसे युक्त हो ॥ १३ ॥



शिवास्ते सुन्तोषय उत् त्वाहार्यमर्घस्या उत्तरां पृथिवीमभि ।

तत्र त्वादित्यौ रक्षतां सूर्याचन्द्रमसांनुमा ॥ १५ ॥

यत् ते वासः परिधानं यां नीषि कृणुषे स्वम् ।

शिव ते तन्वे तत् कृणुः संस्पर्शेद्रक्षणमस्तु ते ॥ १६ ॥

यत् क्षुरेण मर्षयता सुतेजसा वप्ता वपसि केशश्मश्रु ।

शुभं सुखं मा नु आयुः प्र मोषीः ॥ १७ ॥

अर्थ—(ते ओषधयः शिवाः सन्तु) तेरे लिये औषधियां शुभ गुणयुक्त हों। (अथरस्याः उत्तरां पृथिवीं) नीचला भूमिसे ऊपरकी ऊँची भूमिपर (त्वा अभि उत् आहार्यं) तुझे देने लाया है। (तत्र सूर्याचन्द्रमसौ उभौ आदित्यौ त्वा रक्षतां) वह सूर्य और चन्द्र ये दोनों आदित्य तेरी रक्षा करें ॥ १५ ॥

(यत् ते परिधानं वासः) जो तेरा ओढ़नेका वस्त्र है, (यां त्व नीषि कृणुषे) जिस वस्त्रको तू कमरपर बाँधता है, (तत् ते तन्वे शिव कृणुः) यह तेरे शरीरके लिये सुखदायक बनाते हैं। वह वस्त्र (ते संस्पर्शे अद्रक्षण अस्तु) तेरे स्पर्शके लिये खुरदरा न होवे अर्थात् मृदु होवे ॥ १६ ॥

(वप्ता मर्षयता सुतेजसा क्षुरेण) तू नापित स्वच्छता करनेवाले तेजधारवाले छुरासे (यत् केशश्मश्रु वपसि) जो बालों और मूछाका मुहन करता है उससे (शुभं सुखं) सुदर सुख बना और (ना आयुः मा प्रमोषीः) हमारी आयुका नाश न कर ॥ १७ ॥

भाषार्थ—शुलोक अन्तरिक्षलोक, मूलाक्ष में रहनेवाले सप्त पदार्थ अर्थात् सूर्य, वायु, जल आदि सप्त तरे लिये सुख देनवाले हों ॥ १४ ॥

औषधियां तुम अपने शुभगुणोंमें सुख दें। इसको मृत्युकी हीन अवस्थामें नीगामी उष अवस्थामें मन लाया है। यहाँ सूर्याचन्द्रादि तेरी रक्षा करें। जो तेरा ओढ़न और पहननेका वस्त्र है वह तरे लिये मृदु सुगन्धकारक स्पर्श करनेवाला हो ॥ १५-१६ ॥

उत्तम तेज छुरासे नापित हुआमत बनाता है उसमें सुखभी सुदरता बढ़ती है। यह नापित किसीकी आयु का नाश न करे ॥ १७ ॥

शिवौ ते स्तां व्रीहियवावपलासार्वदोमभौ ।

एतौ यक्ष्मं वि पाधेते एतौ मुञ्चतो अंहसः ॥ १८ ॥

यदश्नासि यत् पिबसि धान्यं कृप्याः पयः ।

यदाद्यं यदनाद्य सर्वं ते अन्नमपि कृणोमि ॥ १९ ॥

अहं च त्वा रात्रये शोभाम्यां परि दक्षसि ।

अरायेभ्यो विघत्सुम्यं इमं मे परि रक्षत ॥ २० ॥ ( ४ )

शुश तेयुतं दायनान् द्वे युगे व्रीणि चत्वारि कृणुमः ।

इन्द्राग्नी विश्वे देवास्तेतु मन्वन्तामर्हणीयमानाः ॥ २१ ॥

अर्थ- ( व्रीहियवौ ते शिवौ ) चावल और जौ तेरे लिये कल्याणकारी और ( अ-पलासी अदो-मभौ स्तां ) कफ न करनेवाले और स्वानेके लिये सुख दायक हों । ( एतौ यक्ष्मं वि पाधेते ) ये दोनों रोगका नाश करते हैं, और ( एतौ अहसः मुञ्चतः ) ये दोनों पापसे मुक्त करते हैं ॥ १८ ॥

( यत् कृप्याः धान्य अश्नासि ) जो कृपिसे उत्पन्न होनेवाला धान्य तू खाता है और ( यत् पयः पिबसि ) जो दूध तू पीता है, ( यत् आद्य यदनाद्य ) जो खाने योग्य और जो खाने अयोग्य है ( ते तत् सर्वं अपि कृणोमि ) तेरे लिये वह सब विपरहित करता हू ॥ १९ ॥

( त्वा अहं च रात्रये च शोभाम्यां परिदक्षसि ) तुझे मैं दिन और रात्री इन दोनों समयोंके लिये सौंप देता हू । ( मे इमं ) मेरे इस मनुष्य की ( अरायेभ्यः विघत्सुम्यः परि रक्षत ) अदानी सूत्रोंसे रक्षा कर ॥ २० ॥

( ते शत दायनान् ) तेरी सौ वर्षकी आयु जिसमें ( द्वे युगे ) दिन रात्रीके दो सप्ति हैं, तथा ( व्रीणि ) सर्दों गर्मों और बूछी ये तीन काल और ( चत्वारि ) चाल्प, तारुण्य, मध्यम और वृद्ध ये चार अवस्थाएँ हैं

भाषार्थ- चावल, जौ आदि धान्य तेरे लिये सुखदायी, स्वानेके लिये स्वादु, कफ आदि दोष न उत्पन्न करनेवाला, मीरोगता पहानेवाला और पापवृत्ति हटानेवाला हो ॥ १८ ॥

जो कृपिका धान्य और गौका दूध खाया पीया जाता है वह सब विपरहित हो ॥ १९ ॥

दिन और रात्रीके समय शत्रुओंसे तेरी रक्षा हो ॥ २० ॥

अरदे त्वा हेमन्ताय वसन्ताय ग्रीष्माय परि दद्यासि ।

वर्षाणि तुभ्यं स्योनानि यपु वर्षन्त ओषधीः ॥ २२ ॥

मृत्युरीक्षे द्विपदां मृत्युरीक्षे चतुष्पदाय । तस्मात् त्वां मृत्योर्गोपते रुद्ररामि स मा विमेः २३  
सोऽरिष्ट न मरिष्यासि न मरिष्यासि मा विमेः । न वै तत्र त्रियन्ते नो यन्त्यधम तमः ॥ २४ ॥

इस प्रकारकी आयुको ( अ-युत कृष्णः ) अद्भुत अथवा अलक्षित करत हैं ।  
( इन्द्राग्नी विश्वेदेवाः अङ्गणीयमानाः ) इन्द्र, अग्नि और सब देव बिना  
सकोष करते हुए ( ते अनुमन्यन्तां ) तेरी आयुका अनुमोदन करें ॥ २२ ॥

( शरत् हेमन्ताय वसन्ताय ग्रीष्माय ) शरत्, हेमन्त, वसन्त, ग्रीष्म  
इन ऋतुओंके लिये ( त्वा परि दद्यासि ) तुझे हम सौंप देत हैं, । ( येऽ  
ओषधीः वर्षन्ते ) जिस ऋतुमें औषधियां बढ़ती हैं, वह ( वर्षाणि तुभ्यं  
स्योनानि ) वृष्टिका ऋतुभी तुम्हारे लिये सुखकारी हो ॥ २२ ॥

( मृत्युः द्विपदां ईशे ) मृत्यु द्विपादोंपर प्रभुत्व करता है, ( मृत्युः चतु  
ष्पदां ईशे ) मृत्यु चार पांववालों पर अधिकार चलाता है । ( तस्मात्  
गोपतेः मृत्योः ) उस जगत्के स्वामी मृत्युसे ( त्वां रुद्ररामि ) तुझे ऊपर  
उठाता हू । ( सः मा विमेः ) वह तू अप मृत्युसे मत डर ॥ २३ ॥

हे ( अ-रिष्ट ) अहिंसित मनुष्य ! ( सः न मरिष्यासि ) वह तू नहीं  
मरेगा । ( न मरिष्यासि, मा विमेः ) नहीं मरेगा, अतः मत डर । ( तत्र  
न वै त्रियन्ते ) यहां नहीं मरते हैं तथा ( अधम तमः मयन्ति ) हीन  
अन्धकारके प्रतिभी नहीं जाते हैं ॥ २४ ॥

भावार्थ— सौ वर्षकी दीर्घ आयु तुझ प्राप्त हो और इस आयुमें दोनों  
सपिकाल, सर्दी गर्मी और वृष्टिके तीनों समय, सुखकारक हों । तेरी आयु  
की पाल्यादि चारों अवस्थाएं एकके पीछे पथाक्रम तुझे प्राप्त हों ॥ २१ ॥

शरत्, हेमन्त, शिशिर और वर्षा ये सब ऋतु तुझे सुखदायी हों ।  
वृष्टिसे जो यनस्पतिपा उत्पन्न होती हैं वह तेरे लिये सुख देवें ॥ २२ ॥

सब द्विपाद, चतुष्पाद प्राणियोंपर मृत्यु अधिकार चलाता है, उस  
मृत्युके पाससे तुझे ऊपर निकाला है, अब तू मत डर ॥ २३ ॥

अप तू नहीं मरेगा । अतः अप डरनका कारण नहीं है । जहां कोई  
मरते नहीं और जहां अपेरा नहीं, उसे स्थानमें तुझको लाया है ॥ २४ ॥

सर्वो वै तत्र जीवति गौरमः पुरुषः पशुः ।

यत्रेदं ब्रह्म क्रियते परिधिर्जीवनाय कम् ॥ २५ ॥

परिं त्वा पातु समानेभ्योऽभिचारात् सर्वधुम्यः ।

अमर्म्मिन्मामूर्तोतिन्नीशो मा तं ह्यसिपूरसेनः शरीरम् ॥ २६ ॥

ये मृत्युश्च एकशतं वा नाप्या अतिताप्याः ।

मुञ्चन्तु तस्मात् त्वा देवा अर्ध्वैभानुरादधि ॥ २७ ॥

अर्थ—( यत्र इदं ब्रह्म ) जहाँ यह ज्ञान और ( जीवनाय क परिधिः क्रियते ) जीवमके छिये सुम्भमयी मर्यादा की जाती है ( तत्र ) वहाँ ( गौः अश्वा पशुः पुरुषः ) गाय, घोड़ा, पशु और मनुष्य ( सर्वः वै जीवति ) सब कोई जीवित रहता है ॥ २५ ॥

( समानेभ्यः सर्वधुम्यः ) समान पान्धवोंसे होनेवाले ( अभिचारात् त्वा परिपातु ) हमसेसे तेरी रक्षा होवे । तू ( अ-मर्म्मिन्ः अमृतः वा अति जीवः ) अक्षीण, अमर और दीर्घजीवी हो । ( असनः ते शरीर मा ह्यसिपुः ) प्राण तेरे शरीरको न छोड़ें ॥ २६ ॥

( ये एकशत मृतयः ) जो एकसौ एक सृष्टि हैं, ( वा अतिताप्याः नाप्याः ) जो पार करने योग्य नाश करनेवाली हैं ( तस्मात् ) उससे ( देवाः वैश्वा नराश्च अग्नेः ) सब देव वैश्वामर अग्निकी शक्तिसे ( त्वा ) तुझे ( अर्ध्वमुञ्चन्तु ) मुक्त करें ॥ २७ ॥

भावार्थ—जहाँ यह ज्ञान और दीर्घजीवनकी विद्या है वहाँ गाय घोड़ा मनुष्य आदि सब दीर्घायु होते हैं ॥ २५ ॥

अपने पशुपान्धवोंके आक्रमणसे तेरी रक्षा करते हैं । तू नीरोग होकर दीर्घायु हुआ है । तेरे प्राण तुझ अग्न में नहीं छोड़ने ॥ २६ ॥

जो सैंकड़ों प्रकारसे आनेवाले सृष्टि हैं, और नाशके जो अन्य साधन हैं वे परमेश्वरकी कृपासे दूर हों ॥ २७ ॥

अग्नेः शरीरमसि पारयिष्णु रक्षाहासि सपत्नहा ।

अथो अमीषचातनः पूतुर्नाम मेपजम् ॥ २८ ॥ ( ५ )

॥ इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

अर्थ—(अग्नेः पारयिष्णु शरीरं असि) अग्निका पार करनेवाला शरीर तू है ( रक्षोहा सपत्नहा असि ) घातकों और शत्रुओंका नाशक तू है । ( अथो अमीषचातनः ) और रोग दूर करनेवाला है । ( पू-तु-तु।नाम मेपज ) पवित्रता, वृद्धि और गति देनेवाला यह औषध है ॥ २८ ॥

भावार्थ—मैजस तपसका शरीर ही तेरा है । अतः तू स्वयं घातकोंका नाश करनेवाला है । तू स्वयं रोगोंको दूर करनेवाला है । तेरेही अन्दर पवित्रता, वृद्धि और गति करनेकी शक्ति है । अतः उससे तू दीर्घायु हो ॥ २८ ॥

## दीर्घायु बननेका उपाय ।

### मृत्युका सर्वाधिकार ।

दीर्घायु बननेकी इच्छा हर एक प्राणीके अन्तःकरणमें रहती है । परंतु मृत्युका अधिकार सबके ऊपर एकसा है, इस विषयमें इस सूक्तमें कहा है—

मृत्युरीषो द्विपादं मृत्युरीषो चतुष्पादम् । ( म० २३ )

“द्विपाद और चतुष्पाद इन सब प्राणियोंपर मृत्युका अधिकार है ।” द्विपाद प्राणी दो पादवाले होते हैं जैसे मनुष्य, पक्षी आदि । चतुष्पाद प्राणी चारपादवाले पशु आदि होते हैं । इनसे अन्य भी जो प्राणी हैं भिनको बहुपाद और अपाद भी कहा जासकता है, इन सब प्राणियोंपर मृत्युका प्रभुत्व है । अर्थात् मृत्युके आधीन वे सब प्राणी हैं । मृत्युके अधिकारके बाहर इनमेंसे कोई नहीं है । सबकी अन्तिममति मृत्युके आधीन है । मृत्यु जबतक इस लोकमें इन प्राणियोंको रहम देगा जबतक ही वे रहेंगे, और जिस दिन मृत्यु प्राणीको लेना चाहेगा, तब प्राणी यहसि कुछ बर्तेगा । इस क्रिये मृत्युसे दयाकी याचना करते हैं—

मृत्यो ! इमं क्षपस्व । ( म० ८ )

“हे मृत्यु ! इसपर दया कर ।” सर्वाधिकारी होता है, वह दया करेगा तो ही अपना कुछ कार्य बनेगा । और यदि उसने प्राणियोंपर क्रोध किया, तो फिर उनकी रक्षा कौन करेगा । परंतु वैसा देखा भाय तो मृत्यु के हाथमें सर्वाधिकार रहते हुए भी

यह नियमोंके प्राचीन है । वह भी विशेष नियमसे चलता है, अतः उसकी प्रसन्नता होनेके कुछ नियम हैं । उन नियमोंके अनुसार चलनेवालोंको ही लाभ हो सकता है । अतः इन नियमोंका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये, इसी ज्ञानका उपदेश करना चाहिये । यही उपदेश करने योग्य विषय है । इस कारण कहा है—

## जीवनीय विद्याका उपदेश ।

अधिगृहि । ( म० ७ ) अस्मै अधि गृहि । ( म० ८ )

अस्मै ब्रह्म धर्म कृणमसि । ( म० १० )

सर्वो वै तत्र जीवति गौरम्बः पुरुषः पशुः ।

यच्चेद ब्रह्म कृपते परिबिर्जीवमाय कम् ॥ ( म० २५ )

“मनुष्योंको इस जीवनीय विद्याका उपदेश कर । मनुष्योंको दीर्घायु बननेके नियमोंका उपदेश दे । जिसमें जीवनकी अवधितक सुखपूर्वक रहनेका और दीर्घजीवनके नियमोंका ज्ञान सबको उपदेशद्वारा दिया जाता है, वहाँ मनुष्य या दीर्घजीवी होते ही हैं, परन्तु उस देशके गाय घोड़े आदि पशु भी दीर्घजीवी होजाते हैं ।”

दीर्घजीवनकी विद्या है, उसमें प्राणियोंको दीर्घजीवन प्राप्त करनेके लिए विशेष नियम हैं । उन जीवनीय नियमोंका ज्ञान बनताको देनेके लिये उपदेशक निपुणता करना चाहिये । इनका यही कार्य होता कि ये ग्रामग्राममें जाय, वहाँकी जनताका जीवन क्रम देखें, उनका व्यवहार देखें और उनके रहने सहनेके अनुसार उनका दीर्घजीवन होनेके लिये योग्य उपदेश दें । इस प्रकार हरएक ग्रामके लोगोंको उपदेश दिया जाय । उनसे जो भूलें होती हों, उनके विषयमें उनको समझाया जाय और उनके जीवनमें ऐसा परिवर्तन लाया जाय कि, जिससे दीर्घायु प्राप्त होने योग्य दैनिक व्यवहार वे कर सकें ।

## ज्ञानका कवच ।

इस धर्मके दूसरे मंत्रमें ‘ब्रह्म धर्म’ अर्थात् ‘ज्ञानरूपी कवच’ बनानेके विषयमें कहा है । ज्ञान यह बड़ा भारी कवच है । अन्य कवच ये सुद्र कवच हैं । सबसे निम्न प्रभावशाली कवच ज्ञानका कवच है । यानी, ज्ञानके कवचकी निचली भेजीपर अन्य कवच होते हैं । इस कारण जिसन ज्ञानका कवच पहन लिया वह सबसे अधिक सुरक्षित होता है । यहाँ तो यहाँतक लिखा है कि जिसन ज्ञानका कवच पहन लिया उसको तो मृत्युकामी डर नहीं रहता । इतना ज्ञानके इस कवचका सामर्थ्य है । मृत्युका

सामर्थ्य सबसे अधिक है, परंतु जो मनुष्य ज्ञानका कवच पहनता है उसपर मृत्युके छद्ममी कार्य नहीं कर सकता । ज्ञानका कवच भित्तने पहन लिया है वह मृत्युके पाशों को तोड़ सकता है देखिये—

अवमुञ्चन्मृत्युपाशामघास्ति । ( म० ९ )

देवामां हेतिः त्वा परि वृणक्तु । ( म० ९ )

“मृत्युके पाशोंको और अवनाशिके बन्धनोंको तोड़ दो । देवोंके छद्म तुझे बर्जित करें ।” अर्थात् देवोंके छद्म तरे ऊपर न गिरे । यह अवस्था तब बनती है जब मनुष्य ज्ञानका कवच पहनता है । ज्ञानका कवच पहिने हुए मनुष्यको मृत्युके पाश बाँध नहीं सकते, दुर्गति उसके पास नहीं आसकती और देवोंके छद्म उसको काट नहीं सकते । इतना सामर्थ्य इनमें होनेसे ही इस जीवनीय विद्याका ज्ञान मनुष्यको प्राप्त करना चाहिये । इसी ज्ञानके बलसे ज्ञानी मनुष्य मृत्युको भी आदेश इनमें समर्थ होता है, देखिये—

मृत्यो ! मा पुरुष बधीः । ( म० ५ )

देवामां हेतिः परि त्वा वृणक्तु । पारयामि त्वा मृत्यारपीपरम् ।

आरावर्षिं कृष्णाव निरूहम् ॥ ( म० ९ )

यस्ते भिषान रजस मृत्यो अनवधर्ष्यम् ।

पथ इम तस्माद्भ्रजन्तो ब्रह्मास्मै वर्म कृणमसि ॥ ( म० १० )

बैधस्वतोऽन मक्षितान्यममूर्ताभ्यरतोऽपसेषामि सर्वान् । ( म० ११ )

तस्मात्स्वा मृत्योर्गोपतेकृद्भ्रामि स मा बिभेः ॥ ( म० १२ )

“हे मृत्यो ! अब तू इस पुरुषका वध न कर । देवोंके छद्मोंसे इसका वध न हो । मैं इस ज्ञानसे इसको रज तमरूपी मृत्युसे पार करता हूँ । भ्रेतदाहक अभिसे भी इसका दूर रखता हूँ । हे मृत्यो ! जो तेरा रज और तमयुक्त मार्ग है और जो अज्ञय है, उठ मार्गसे हम इसका बन्धाव करते हैं । क्योंकि हमने ज्ञानरूपी कवच इसके छिब बनाया है । इसी ज्ञानसे हम सब यमवृत्तोंको भी दूर हटा सकते हैं । मृत्युसे हम इसको ऊपर उठाते हैं, अब डरनेका कोई कारण नहीं है ।”

यह ज्ञानरूपी कवचकी महिमा है । ज्ञानी मनुष्य मृत्युको भी कह सकता है कि “हा, इस समय मरनेके लिये फुरसत नहीं है, अब समय भिलेगा, तब देखा जायगा ।” ज्ञानीको मृत्युके पाश बाँध नहीं सकते । देवोंके छद्म उसपर कार्य नहीं करते । मार्गमें मृत्युक मयस रखा करनेवाला एकमात्र ज्ञानही है । यमवृत्तोंका मय दूर करनेवाला शुद्ध ज्ञानही है । इस प्रकार यह ज्ञानकाही चमत्कार है ।

वहाँ वहाँ वेदमंत्रोंमें मृत्युका मय बटानेकी बात कही है, वहाँ इस ज्ञानसेही मृत्युमय दूर होता है ऐसा समझना चाहिये। मृत्युका मय दूर करनेवाला ज्ञान बहुत विस्तृत है। आपूर्वैद इसी जीवनीय ज्ञानको प्रकाशित करता है। इसका सारांशरूपसे वर्णन वेदमंत्रोंमें स्थानस्थानपर है। इस सूक्तमें भी थोड़ा थोड़ा यह ज्ञान दिया है देखिये—

रजस्तमः मा उपमाः । मा प्रमेष्टाः ॥ ( म० १ )

“रज अर्थात् भोगजीवन और तम अर्थात् ज्ञानहीन जीवन इन दो हीन जीवनोंको न प्राप्त हो। इनसे दूर रहनेसे तू घरेगा नहीं।” यह मंत्र जीवनीय विद्याका एक प्रधान मंत्र है। रजोगुणी जीवन और तमोगुणी जीवन जागृष्यका नाश करता है। वैसा जीवन नहीं च्यवीत करना चाहिय, जिससे मृत्युसे बचना समभव होगा। रजो और तमोगुणी जीवन का लक्षण और फल मगवज्ज्ञातामें कहा है—

कद्वचल्लभणात्पुष्पातीक्ष्णरुक्षविदाहिनः ।

आहारा राजस्तस्पेष्टा बुध्नयोऽकामयप्रदाः ॥ ९ ॥

यातयाम गतरस पूतिपर्युपित च पत् ।

उच्छिष्टमपि आमेभ्य भोजन तामसमिषम् ॥ १० ॥

म० गी० अ० १७

रजो रागात्मक विद्धि तृष्णासङ्गसमुद्भवम् ।

तस्मिन्नाति कौन्तेय कर्मसङ्गेन वेद्मिन् ॥ ७ ॥

तमस्त्वज्ञानज विद्धि मोहन सबदेहिनाम् ।

प्रमादालस्यनिद्राभिस्तस्मिन्नाति भारत ॥ ८ ॥

ज्ञानमावृणु तु तमः प्रमादे सजयस्युत ॥ ९ ॥

अमकाशोऽमवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च ।

तमस्येतानि आपन्ते विपृष्टे कुरुनन्दन ॥ ११ ॥

रजसि प्रलय गत्वा कर्मसङ्घिपु जायते ।

तथा प्रलीनस्तमसि बृहद्योमिषु जायते ॥ १२ ॥

रजस्तु फल बुध्नयमज्ञान तमसः फलम् ॥ १३ ॥

सत्त्वात्सजायते ज्ञान रजसो लोभ एव च ।

प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च ॥ १७ ॥

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्या मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः ।

जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः ॥ १८ ॥ म० गी० १४



“कड़वे, खट्टे, खारे, बहुत गरम, तीखे, रूखे और खलन पैदा करनेवाले बाहार राजस लोगोको भाते हैं और वे दुःख, शोक और रोग उत्पन्न करनेवाले होते हैं ॥ भर-  
तक पड़ा हुआ, रसरहित, बदबूवाला, रातभरका बासी, जूठा और अविविध बीजम  
सामस लोगोको प्रिय होता है ॥”

“रसोगुण रागरूप होनेसे तृष्णा और आसक्तिका मूल है। वह देहधारीको कर्म  
पाशमें बाँधता है। तमोगुण अज्ञानमूलक है। वह सब देहधारियोंको मोहमें डालता है  
और देशीको असावधानी, आलस्य, और निद्राके पाशमें बाँधता है। तम ज्ञानको हक  
कर प्रमाद कराता है। जब तमोगुणकी वृद्धि होती है तब अज्ञान, मन्दता, असावधानी  
और मोह पैदा होते हैं। रसोगुणमें मृत्यु होनेसे देहधारी कर्मसमिधोमें जलम लेता है  
और तमोगुणमें मरनेसे मूढयानिमें पैदा होता है। रसोगुणका फल दुःख और तमो  
गुणका फल अज्ञान है। सत्वगुणसे ज्ञान, रसोगुणसे शोक और तमोगुणसे असावधानी,  
मोह और अज्ञान उत्पन्न होता है। सात्विक मनुष्य ऊँचे चढ़ते हैं, राजसिक नीचे  
रहते हैं और हीनगुणके कारण तमोगुणी अधोगतिको पाते हैं।”

इस प्रकार रसोगुण और तमोगुणसे अवनति होती है, इसलिये इस सूक्तमें कहा है  
कि ( रसः तमः सा उपगाः ) रसोगुण और तमोगुणके पास न जा। क्योंकि उनसे  
गिरावट निःसन्देह होगी। रसोगुण और तमोगुणसे रोग भी बढ़ते हैं और अकालमें  
मृत्यु भी होती है, इसलिये रसोगुण और तमोगुणके पास न जानेके लिये जो इस  
सूक्तमें कहा है, वह अत्यन्त महत्त्वका उपदेश है। दीर्घायु प्राप्त करनेके इच्छुक इस  
उपदेशकी ओर विशेष ध्यान दें। इसी उपदेशको दुहराते हुए कहा है—

न ये तत्र त्रियन्ते नो यन्त्यधमं तमः ।

सोऽरिष्टं न भरिष्यसि न भरिष्यसि, सा विभेः ॥ ( म० २४ )

“जो हीन तमोगुणकी नहीं अपनाते व मरत नहीं। वह हिंसित नहीं होता, निर्वृ-  
त्त नहीं मरता, अतः तू मृत्यु डर।” यहाँ कितने बलसे कहा है देखिये। जो तमोगुणक  
पास नहीं जाता वह मरता नहीं; क्योंकि मरनका अर्थही यह है कि तमरूप अवकारण  
परा जाना। जो तमोगुणकी अपने अदर नहीं बढ़ने देगा वह अवकारणसे केशा पेरा  
जायगा !

अवकार का प्रकाशवर्तुलका घटना, प्रकाशवर्तुलका छोटा होना मृत्यु है, इस  
विषयमें प्रथम सूक्तमें जो लिखा है वह पाठक इस स्थानपर पुनः पढ़ें। उसका इस  
मन्त्रके साथ पढ़नसे ही हम मन्त्रका आशय ठीक प्रकार ध्यानमें आसकता है। तमोगुण

बढनेसे मृत्युकी समाप्ति है इसी लिये धातुकारोंने कहा है कि समोगुण से दूर रहना चाहिये । जो बाह्य कारणोंसे मृत्यु होता है उनको भी हटाना चाहिये । वे कारण निम्न लिखित मन्त्रोंमें गिने हैं—

अरात्रातिं निर्मृतिं परा ग्राहिं क्रम्याद्ः पिशाचान् ।

रक्तो यत्सर्वं दुर्मृतं तप्तम ह्वाप इमांसि । ( म० १९ )

परि त्वा पातु समानेभ्योऽभिचारात्समन्वुभ्यः ।

अमघ्निर्मवामृतोऽतिजीवो मा ते हासिपुरसवः शरीरम् ॥ ( म० २६ )

ये मृत्यव एकशत या नाष्ट्रा अतिताप्याः ।

शुभन्तु तस्मात्प्रां देवा अमर्षैश्चामरादधि ॥ ( म० २७ )

इन श्लोकोंमें मृत्युके विविध कारण कहे हैं, उनका क्रमपूर्वक विवरण देखिये—

१ अराति= जो ( राति ) परोपकार नहीं करता, स्वार्थी जीवन व्यतीत करता है, उसका अराति कहते हैं । क्रज्ज ही अराति है । जो सब योग अपने लिये योगता है वह अराति है, इस दृष्टिसे आयु क्षीण होती है ।

२ निमृति= [ निर्मृति के विपक्षमें प्रथम श्लोकके विवरणमें विस्तारसे लिखा है ] इस दुर्गतिसे आयुष्यका क्षय होता है ।

३ ग्राहि=ग्राही उन रोगोंका नाम है जो दीर्घकालतक रोगोंको पकड़े रखते हैं । जो क्षीण दूर नहीं होते । इन रोगोंसे बचना चाहिये, क्योंकि इससे आयु क्षीण होती है ।

४ क्रम्याद्=मांस खानेवाले । य भी रोगक्षयी होते हैं जो शरीरका मांस खा खाते हैं और मनुष्यको कुछ करते हैं । सिंह व्याघ्रादि पशु भी क्रम्याद् कहे जाते हैं । नरमांसमयक मनुष्य भी क्रम्याद् कहे जाते हैं । इस प्रकार क्रम्याद् बहुत प्रकारके हैं । इन सबसे बचना चाहिये । दीर्घजीवन प्राप्त करनेवाले इनके कायमें न जाय ।

५ पिशाच=शरीरके ऊपर और मांसका खानेवाले, रोगक्षयी और पूर्वोक्त हिंसक प्राणी पिशाच हैं । इनसे भी बचना चाहिये ।

६ रक्त=रक्षा करनेके विपक्षे पास आते हैं और कपटस सर्वस्व अपहरण करत हैं । ये तो रोगक्षयी भी हैं और सामाजिक और राजकीय क्षेत्रमें अत्याचारी शत्रु भी इनमें समिलित हैं । राक्षस शब्दसे इन सबका बोध होता है ।

७ दुर्मृत= जो भी भुरा होना है वह सब दूर करना चाहिये; हरएक प्रकारकी भुराईको हटाना चाहिये ।

८ तमः=प्रज्ञान, हीनता आदि सब तमोगुणके प्रकार दूर करने चाहिये । इतने हर एक प्रकारकी अवनति होती है और अल्पायु भी होती है ।

९ रजः= [ के विषयमें पूर्व स्थलमें कहा ही है, यह शब्द यहाँ इन मन्त्रोंमें नहीं आया है । पीछेके मन्त्रसे लिया है । ]

१० अभिचारः— ( समानेभ्यः सप्तधुम्यः अभिचारः ) अपने समान को अपनी सम्प्रतावाले अपने मारि हैं, उनसे हमल होते हैं । ये हमले भी विषातक होनेसे इनके कारण विपत्ति और मृत्युभी होते हैं । अतः अपने व-धुर्धाराधर्मोंमें एक विचार होना चाहिय जिससे आयु बढ़नेमें सहायता होगी । ये एक प्रकारके हमले हैं, इनसे निम्न दूसरे प्रकारके भी हमले होते हैं वे ( विषमेभ्यः अवधुम्यः अभिचारः ) अपनी सम्प्रतासे विपरीत सम्प्रतावाले छत्रमोसे जो हमले होते हैं वे भी अकाल मृत्यु करनेवाले होते हैं, अतः इस प्रकारके छत्र सदाक लिये दूर करने चाहिये । कोई किसीके ऊपर हमला न करे और सब आनन्द प्रसन्न रहते हुए सुखसे रहे ।

११ शरीर अस्वः मा हासिषुः=किसी अन्य प्रकारसे होनेवाले अकाल मृत्यु भी न हों । सब लोग ( अ-मग्निः ) मरिषल न हों, ( अ-मृतः ) अकालमें न मरे, और ( अविदीर्घः ) अविदीर्घ कालतक जीवित रहे । मनुष्यको ये तीन बातें साध्य करना है कि मरिषल न रहना, अकालमें न मरना और अविदीर्घ आयु प्राप्त करना । इनके निम्न तीन विध हैं जो ये हैं, एक मरिषल होना, रोगादिकोंसे क्षीय होना; दूसरा अकाल मृत्यु तथा ब्रह्मादिसे पीड़ित होना और अल्प आयु होना । मनुष्यका प्रयत्न इन त्रिभुजोंसे बचना है ।

१२ अकाल मृत्युः= एकसी एक मृत्यु है । मृत्यु इतने अनेक प्रकारक है । इनमें से एक अकाल मृत्युका वर्णन है । जीवनविद्याके नियमोंके अनुकूल व्यवहार करनेसे अकाल मृत्यु नहीं है । जो महामृत्यु है वह दूर होगा परंतु इटेगा नहीं, अपमृत्यु ही है — अकाल मृत्यु से सब दूर किया जासकते हैं ।

१३ अकाल मृत्युः= जो अन्य नाशक साधन हैं वे भी ( अविचार्याः ) दूर करने योग्य हैं । अकाल मृत्यु प्राणीका नाश होता है, घात होता है, क्षीयता होती है, अकाल मृत्यु होती है वे सब कारण बटाना अत्यंत आवश्यक है ।

१४ अकाल मृत्युः= अकाल मृत्यु विपत्तियोंसे बचाव करनेका नाम सुचित है । यह कर सकता है और यह प्राप्त करना मनुष्यका आवश्यक है ।

कर्तव्य है । 'वैश्वानर' की कृपासे यह सुखित प्राप्त हो सकती है । वैश्वानर उसको कहते हैं कि, ओ ( विश्व ) सब ( नर ) मनुष्योंका एक अमघ सघ हाता है । मानव सघन अपना ऐसा व्यवहार करना चाहिये कि जिससे सबका सुख बढ़े, सबकी उन्नति हो और कोई पीछे न रहे । संपादित प्रयत्नसे सबका भला हो सकता है । सघटना मानवी सभतिकी मूल मंत्र है ।

इस प्रकार इन मन्त्रोंमें मानवी विपत्तिके कारण दिये हैं और उनको दूर करनेके उपाय भी कहे हैं । पाठक इनका विशेष विचार करें ।

इसमें पूर्ण बताया हो दिया है कि वदको तीन बातें मिट्ट करना अभीष्ट है—( १ ) एक ( अ मग्निः ) लाग मग्निरुक्त न हो । हृष्टपुष्ट नाभोग और सुदृढ भवें, ( २ ) दूसरे लोग ( अ-मृतः ) अमर जीवनमें युक्त अर्थात् अमृतरूपी सुखमय जीवनवाले बनें और ( ३ ) तीसरे मनुष्य ( अतिशोभाः ) दीर्घजीवी बनें । वेदको अभीष्ट है कि मनुष्य समाज ऐसा बने, यही बात अन्य ऋग्वेदोंमें निम्नलिखित मन्त्र भागोंमें कही है—

ते आच्छिद्यमाना जरदृष्टिः अमृतु । ( म० १ )

प्राचीय आयुः प्रतर ते क्षयामि । ( म० २ )

अय जीवतु, मा मृत, इम ममीरयामि, सर्वदृष्टा इहामृतु । ( म० ७ )

"तरी अविच्छिन्न वृद्धावस्था होव । दीर्घ आयु उत्कृष्टरूपसे तब लिय चारण करता ह । यह मनुष्य जीवित रहे, मत मरे, इसका सचय करता हूं यह पूर्ण आयु हाकर यही रहे ।"

ये सब मंत्र माग मनुष्य की दीर्घ आयु हात पाय ममावकी रचना करनेके सूचक हैं । दीर्घ आयु प्राप्त करनेके लिये व्यक्तिगत बदरका तथा समाजिक बदरका पाप कम होना चाहिये, इसकी सूचना दनक लिय कहा है—

अपसत्य दुरित घसमायुः । ( म० ७ )

"पापको दूर करके दीर्घ आयुका धारण करिय ।" यही दीर्घायु प्राप्त करनेका उपाय है । बदरक बदर पाप हागा, तबतक आयु सीण ही हाती आयगी । व्यक्तिगत पाप व्यक्तिमें होता है और मघका पाप मघमें हाता है, इम पापमें अभी व्यक्तिकी बनी मघकी आयु सीण होती है । अतः पापका दूर करना दीर्घायु प्राप्ति के लिय अत्यन्त आवश्यक है । अब पाप दूर हागा, तब मनुष्य ही पक्की आयुके लिय पाय हागा—

जीयतां उपोतिः अर्घाद् अभ्येहि स्वा शतशारदाय आहरामि । (म० ९)  
ते जीयातये परिधिं दधामि । (म० ९)

“जीवित लोगोंकी ज्यातिके पास आ, तुझे सौ वर्षकी दीर्घ आयुके लिये मैं पाप करता हू । तरे लिये सौ वर्षकी आयुष्यकी अवधी निश्चित करता हू ।” यह सौ वर्षकी आयुष्य वर्षादाका निश्चय उन लोगोंके लिये हा सकता है कि जिन्होंने अपना जीवन पवित्र किया है, पापरहित किया है और पुण्य संशयसे युक्त किया है । इस द्वारा दीर्घजीवनके साथ मनुष्य के पापपुण्यका सन्ध है । पाठक इस बातका अवसर विचार करें ।

### प्राणधारणा ।

दीर्घायु प्राप्त करनेके लिये शरीरमें प्राण स्थिर रहना चाहिये । प्राण जबतक अक्षत अवस्थामें शरीरमें रहता तबतक दीर्घायु प्राप्त होना असम्भव है, यह बात स्पष्ट करना नियम कहते हैं—

ते असु आयुः पुनः आभराभि । (म० १)

‘तरी आयु और प्राणका तरे अन्दर में पुनः भर देता हूँ ।’ यह इस लिये कहा है कि पाठकके अन्दर यह विश्वास जमा रहे कि यदि किसीके प्राण अस्थिर निर्बल हुए हो, तभी उनमें पुनः बल भर दिया जा सकता है । इस कारण निर्बल बना हुआ मनुष्य इत्यादि न होष निरुत्साहित न बन, परन्तु उत्साह धारण कर कि मैं बहकी आत्माके अनुसार जल्द ही फिर नवीन बल प्राप्त कर सकता हूँ और अपने अन्दर प्राणका जीवन पुनः स्थापित करा सकता हूँ । यह किस प्रकार साध्य किया जा सकता है ? इसकी विधि यह है—

यानात् प्राणमाविद्धं रूर्णायधुरात् नय ।

यत्न मनश्चपि तद्वारयामि भविष्याद्देव्यं जिह्वालयन् ॥ (म० १)

‘वायुव प्राण एवमं चतुः तरे लिये प्राप्त करता हू इस प्रकार तू सब जगत्में युक्त है । मन भी तब अद्वय स्थापित करता हू । तू जिह्वामें साधन कर ।’ यही जावनका साधन बताया है । वायुव प्राण प्राप्त होता है, एवमं जीव प्राप्त होती है । एवमं जन कानन नवक बहुत दाय दूर दाय हैं, सुमन्त्राय प्रतिदिन टकटकी लगाकर एवमं जन कानन कानन जीव सुखर गय है, और जिनका साधनक बिना रहता नवक या न तबतक तपायन बिना साधनक रहन लग है । इसी प्रकार जिनका प्राण

स्थानके रोग होते हैं, धृग्य राग्यश्वा आदि तथा रक्त स्थानके पाण्डुरोग आदि रोग होते हैं, उनको भी शुद्ध वायुके सेवनसे और माग्य प्राणायामादि योगिक उपायोंसे पुनः आरोग्य प्राप्त होता है। इसी प्रकार मृत्तिका, अल, अग्नि क्षयप्रकाश, घनस्पति, औषधि, चन्द्रप्रकाश, विद्युत् आदिक योग्य सवनसे और उत्तम प्रयोगसे पुनः उत्तम जीवनकी और दीर्घमायु की प्राप्ति हो सकती है। दीर्घजीवन और आरोग्य प्राप्ति का विधि संक्षेपसे यह साधन है। मनुष्यके सब अंग, अवयव इन्द्रियाँ आदि सबका सुचारु रूपसे हो सकता है। यह उपाय विनामूल्य बहुत जगहोंमें होसकता है और पुणितपूर्वक करनेसे लाभ भी निश्चयसे हो सकता है। यह 'निर्गम्यविकारता' का मूलमंत्र है। पाठक इसका हम दृष्टिसे विचार करें। यह उपाय किस रीतिसे करना चाहिये, इस विषयमें निम्नलिखित मन्त्र विज्ञान मनन पूर्वक देखने योग्य है—

अग्निं जातमिष प्राणेन रथा सधमामि ॥ (म० ४)

“नवीन उत्पन्न हुए अग्निके समान प्राणसे तुमसे बल देता हूँ।” इवन कृण्डमें, धूनेमें या किसी अन्य स्थानपर अग्नि प्रदीप्त करनेके समय प्रारंभमें बहुत साधनानीसे अग्निको महत्वायु देना पड़ता है और सहज जलने योग्य छड़ी लकड़ी अग्निके साथ लगानी पड़ती है। अन्यथा अग्नि बुझ जानका भय रहता है। इसी प्रकार बीमार मनुष्य को भी सहज हावम होने योग्य अन्न दना चाहिये, प्राणायामादि योगसाधनभी पाठा पोढ़ा करना चाहिये, औषध और पथ्यका सवनभी योग्य प्रमाणसे करना चाहिये। एसा न किया तो सामक स्थानपर हानी होगी। इसलिये कहा है कि अग्नि मिलानेके समान प्राणकी छक्ति छनै, छनै, बढ़ानी चाहिये। योगसाधन, औषधिलेवन तथा अन्य उपायोंसे आरोग्यवर्धन या दीर्घजीवन प्राप्त होसकता है, परंतु सुयोग्य प्रमाणसे यह सब करना चाहिये। छरारमें भी यह जीवनाग्नि ही है। इवनकी अग्निके समानही इस को छनै, छनै, बढ़ाना पड़ता है। यह नियम हरएक पाठकको स्थानमें धारण करना आवश्यक है। क्योंकि अन्य सपूर्ण साधन उपलब्ध हो जानेपरभी इस नियमका पालन न करनेपर लाभकी आशा करना व्यर्थ है। परंतु इस रीतिसे जो लोग अपना लाभ सिद्ध होनेके लिये साधन करेंगे, उनका निःसन्देह भला हो सकता है, अतः कहा है—

कृणोमि ते प्राणायामौ जरां मृत्यु दीर्घमायुः स्वस्ति । (म० ११)

“मैं तेरे प्राण और अपान सुख करता हूँ तेरा बुढ़ापा, तरी मृत्यु और तरी दीर्घ आयुके विषयमें तेरा कष्टायाम होगा एसा प्रवच करता हूँ।” यदि जो कोई मनुष्य

अपनी दीर्घ आयु और उत्तम आरोग्यक लिये पूर्वोक्त प्रकार यज्ञ करगा, ता विषम-  
पूर्वक चलनपर उमका लाभ तो अवश्यही होगा । इस मंत्रसे यह विश्वास हरद्वक  
मनमें उत्पन्न हो सकता है । नियमपूर्वक चलनचालकी कभी अयोगति नहीं हासी ।  
आतवेदम् अग्निवे दीर्घधीयन् प्राप्त करनेके विषयमें निम्नलिखित मंत्रमें कहा है—

अग्रष्टे प्राणममृताद्यायुष्मतो वन्दे जातवेदसः ।

यथा न रिप्सा अमृतः सज्जसस्तप्ते कृणामि तदु ते समुप्यताम् ॥

( म० ११ )

“ तेरा प्राण आयुष्य बढ़ानेवाले आतवेद अग्निवे प्राप्त करता हूँ जिससे तू मर नहीं  
कर नहीं मरगा, यह तरा अमरत्व प्राप्तिका कार्य सफल होवे । ” आतवेद अग्निवे  
दीर्घायुकी प्राप्तिका समय इस मंत्रमें बताया है । अग्नि आयु देनेवाला है, ज्ञान और  
धन दनवाला है, जीवन दनवाला है अपरस्व देनेवाला है । वरमें अग्निदेवके व कार्य  
बणन किए हैं । अग्निमें ये गुण किम रीतिस प्राप्त कान होते हैं, इनका विचारपाठकों  
का करना चाहिये । हमारे विश्वास आग्नेयधर्म विशिष्ट सुवर्ण पाद आदि पदार्थोंक  
प्रयागोसे तथा मल्लातक, कश्चर चित्रक आदि वनस्पति भागोंस मनुष्य नीरागता और  
दीर्घायु प्राप्त कर सकता है । इसक अतिरिक्त ‘ अग्नि ’ शब्दका अर्थ आठ अग्नि भी  
है और अमिक द्रवमें यह अग्नि उत्तम अवस्थामें रहता हूँ तबको नीरागता और दीर्घ-  
यु प्राप्त होनेमें शकाही नहीं है । तथा जिन औषधियोगोंस आठ अग्नि उत्तम कार्य  
करनेवाला होता है व सब चिकित्साक प्रयोग इस में समिलित होत हैं ।

### जाठर अग्नि ।

जाठर अग्नि चार प्रकारका होता है । मन्द तीक्ष्ण विषम, और सम य इस आठ  
अग्नि चार मंद हैं । इनका वैधक ग्रन्थामें इस प्रकार वर्णन आता है—

मन्द्रस्तीक्ष्णोऽथ विषमा समश्चानि अतुर्विधाः ।

कफपित्तानिलाधिकपातमाग्नाः जाठराऽनलः ॥

विषमा घातजात्राणां तीक्ष्णः पित्तानिमित्तकान् ।

काम्यप्रित्तया मन्दा विचारा कफममवान् ॥

समा समानरजिता मात्रा मध्यविषयपते ।

रसयानि धैर्य मन्द्राप्रविषमाप्रानु ददिता ॥

कदाचित्पचयन मध्यवद्वापि न पचयन् ।

तीक्ष्णाग्निरिति न विद्यात्समाग्निः अष्ट उच्यते ॥ ( मा० नि० )

“ विषम आठर अग्नि वातरागोंको निर्वाण करता है, तीक्ष्ण अग्नि विष रोग बढ़ाता है, मन्दाग्नि कफविकार उत्पन्न करता है । समाग्नि उत्तम प्रमाणमें मक्षण किया हुआ अथ वायु गतिमें पचन करता है । मन्दाग्नि, तीक्ष्णाग्नि अथवा विषमाग्नि ये आठर अग्नि ठीक नहीं । इनके कारण कमी पचन होता है कमी नहीं, परंतु जो समाग्नि है । यह सबसे अष्ट है । ” अर्थात् आरोग्य और दीर्घायु प्राप्त करनेके इच्छुक लोगोंका यह समाग्नि अपनेमें स्थिर करना चाहिये । इस अग्निका स्थान अपने दक्षमें देखिये—

वामपार्श्वाग्निर्न नामैः किञ्चित्सामस्य मण्डलम् ।

तन्मध्य मण्डलं सौर्यं तन्मध्यमग्निर्धर्मस्थितः ॥

जरायुमात्रप्रच्छेदाः काचकोशस्यदीपवत् ॥ ( मा० )

तथा—

सूर्यो विधिं यथा निष्ठन् नेजोपुष्पैर्गन्धस्तिभिः ।

विद्यापयति सर्वाणि पश्यन्तानि सरांसि च ॥

तद्वृक्षराशिणां सुकन कषलननामिमाभिनः ।

मयूखैः पच्यते क्षिप्तं नानाव्यञ्जनमस्कृतम् ॥

स्थूलकायेषु मयवपु यवमात्रः प्रमाणनः ।

कृमिकोटपङ्कजेषु बालमात्रोऽब्जनिष्ठने ॥ ( रस० प्र० )

“ नाविक साम मार्गमें सामका मण्डल है, दक्षमें सूर्य मण्डल है, उसके अन्दर अग्नि व्यवस्थामें रहा है । जैसा क्षीमे में दीप होता है ” इस अग्निका सम रखना मनुष्यका कार्य है, सब बच्चोंका भी यही कार्य करना चाहिये । इसी प्रकार— “ जैसा सूर्य आकाश में रहता हुआ अपने किण्वोंस सब बल स्थानोंका सुभाता है, उस प्रकार यह आठर अग्नि प्राणियोंका मक्षण किया अथ अपने किण्वोंस पकाना है, स्थूल दृढ़वाञ्छ प्राणियोंमें यह जोकेसमान होता है और छोटे कृमियोंमें यह बाल के समान सूक्ष्म प्रमाण में रहता है । ” इसीम सब अष्ट पचता है, आरोग्य स्थिर रहता है और दीर्घ जीवन प्राप्त होता है । जैसा सूर्यके सामन पन पाइल आनमें और मेघाच्छादित दिन अनक दिवस रहनेस और एक न प्राप्त हानके कारण प्राणियोंकी पाचनशक्ति कम होती है, बर्षातमें इसी कारण पचन शक्ति क्षीण होती है, इसी प्रकार प्राणियोंक अन्दर का आठर अग्नि प्रदीप्त स्थितिमें बहुत समय न रहा तो पाचनशक्ति कम होती है, अपचन होता है राग बढ़न है आर जीवनकी मयादा क्षीण हो जाती है । इस प्रकार



आठर अग्निके सम हान और विषम हानसे प्राणियोंकी जीवन मर्यादा संचालित है। इसी कारण ( मंत्र १३ वेमें ) अग्निको अर्थात् आठर अग्निको ( आधुमत् ) आधुवाता अर्थात् आधु बढानवाला, जिसके पास आधु है, ( अमृतः ) अमर, रोमादि कम करने वाला जिसके पास राग और मृत्यु नहीं होने, ( अग्नेः प्रार्ण ) इस आठर अग्निने प्राण-शक्ति-जीवनशक्ति बढ़ती है, इत्यादि विवरण प्रयुक्त हुए हैं। इन सब विवरणोंकी सार्थकता इसका स्वरूप आठराग्निके नामानेसेही हो सकती है। इसके निम्नलिखित संस्कृत नामकी छरीरस्थ आठराग्निके विषयमें कैस समझ होत हैं यह देखिये—

१ तन्म-न-पात् = छरीर को न गिरानवाला, छरीरका पतन न होना इनवाला,

२ पाचकः = पचित्रता करनेवाला,

३ हुनसृक्, इव्यसृक् = अन्न खानेवाला,

४ पाचनः = पचन करनेवाला,

५ आभयाशः, आशापाशः = पेटमें गया अन्न खानेवाला ।

ये आठर अग्निके नाम कितने सार्थ हैं यह भी पाठक यहाँ देख सकते हैं। वहाँ तक आठर अग्निके गुणोंका वर्णन बचक ग्रंथोंमें है। पाठक इसका यहाँ विचार करें। अब अग्निके गुण वैद्यशास्त्रमें क्या लिखे हैं सो देखते हैं—

( आग्नितापः ) वात कफसाम्बताशीतकम्पमः ।

आमाशयकरः रक्तपित्तकोपनश्च ॥ ( राज० भा० )

“अग्निका ताप वात, कफ, साम्बता, शीत और कम्पको दूर करता है, रक्त और पित्तका प्रकाप करता है। आमाशय अर्थात् पेटको ठीक करता है।” यदि अग्नितापव भी वात कफ और शीत सबबक रागोंमें छाय होते हैं तो प्रतिदिन इबन करनेवाले सोय और इबनकी अग्निसे छरीरका उपानेवाल सोय कमसे कम इन रागोंसे तो बच सकते हैं। इबनसे यह एक आम वैद्यक ग्रंथोंके प्रतिपादन द्वारा सिद्ध हुआ है। अब औषधि उपानका विचार करते हैं—

### औषधिप्रयोग ।

दीर्घ आयु प्राप्त करनेके अनेक उपाय हैं, उनमें औषधिका सेवन भी एक उपाय है। योग्य औषधिका सेवन योग्य रीतिसे करनेसे राय दूर हाते हैं, नीरोमत्ता बढ़ती है और दीर्घ आयु भी प्राप्त हो जाती है। इसलिये इस ध्येयमें कहा है—

इमां अमृतस्य श्रुतिं आरभस्व । ( म० १ )

“हे मनुष्य ! तू इस अमृत रसके पानका प्रारम्भ कर ।” अर्थात् औषधीका रस जो अधिनवर्षक होगा उसका योग्य रीतिसे सेवन कर । ‘अमृत-पनुष्टि’ का अर्थ अमरत्व देनेवाला रसपान है । ऐसे रसपानका सेवन करना चाहिय कि जो अमरपनको बढ़ानेवाला हो । अमरपन का अर्थ दीर्घ जीवन, दीर्घ आरोग्य और रोगोंसे पूर्णतया दूर रहना है । जो औषधिरस इन गुणोंकी वृद्धि करते हैं उनका सेवन करना योग्य है । अतः कहा है—

कृणोम्यसौ भेषज, सुस्थो मा पुरुष वधीः ॥ ( म० ५ )

“इस मनुष्यके लिये रोगनिवृत्तिके दृष्ट्यसे मैं आराम बनाता हूँ हे सुस्थु ! अब इस पुरुषका वष न कर ।” इस मन्त्रसे स्पष्ट है कि पूर्वोक्त प्रकार विविध चिकित्साएं करनेसे मनुष्य पूर्ण स्वस्थ हो सकता है और उसका सुस्थुमय दूर हो जाता है । इसी विषयमें निम्नलिखित मन्त्र देखिय—

जीवसां नचारिषां जीवन्तीभ्योषधीमहम् ।

आयमाणां सहमानां सहस्वतीमिह हुवे स्वा अरिस्तनातये ॥ ( म० ६ )

“मैं इस रोमीकी मुखका विलार करनेक लिय जीवन देनेवाली और कमी हानी न करनेवाली रक्षा करनेवाली, रोग हटानेवाली और बल बढ़ानेवाली जीवन्ती नामक औषधीको देता हूँ ।” इस मन्त्रमें जीवन्ती औषधीका उपयोग करनेका विधान है । इस आयुधीका नाम जीवन्ती इसलिए है कि यह औषधि मनुष्यको दीर्घ जीवन देती है । ( आयमाणा ) रागोंसे बचाती है, आरोग्य देती है, ( सहस्वती ) बल देनेवाली है, मनुष्यको बलवाली करती है इतनाही नहीं परन्तु ( सहमाना ) विविध रोगोंको परास्त करती है, अपने बलसे क्षीयता आदिको हटाती है इस प्रकार अनेक रीतियोंसे ( आयमाणा ) मनुष्यकी रक्षा करती है । यह औषधी कमी किसीकी हानि नहीं ( न चारिषा ) करती, सदा किसी न किसी रूपसे लाभ ही पहुँचाती है । इस प्रकार इस जीवन्ती औषधीका वर्णन इस वेदमन्त्रमें है । इस जीवन्ती औषधीके विषयमें वेदक ग्रंथोंमें निम्नलिखित बातें मिलती हैं—

इसके फल अत्यन्त मीठे होते हैं अतः इसको ‘जीवसाक’ कहते हैं । इसके मधुर और अमधुर में दो वेद हैं । मधुर जीवन्तीसे त्रिदोष हटता है और अमधुर जीवन्तीसे पित्त दूर जाता है । मधुर जीवन्तीका रस मीठा, छीत बीर्य और परिपाक मी मधुर होता है । इससे दृष्टिदोष दूर होता है और पायः सभी राग दूर जात है । वा० सू० अ० १५ में ( बरा घात्रेषु जीवन्ती ) ठाकमें जीवन्ती अथु छाक है ऐसा कहा है । वष

धातुमें 'जीवन्ती' के अर्थ गुठबेल ( गुहूची ), इरीतकी, मदा, काकाली, इरिबी, मधुशुष, छपी, इतने हैं । इसका नाम "जीवनी जीवनीषा, जीवा जीवना, मन्त्र्य नामधया, जीव्या जीवदा, जीवदात्री, जीवमन्त्रा, मन्त्रा, मन्त्र्या यज्ञस्वा, जीवददा, पुत्रमन्त्रा, जीवद्वया सुतकरी, जीवपत्री, जीवपुष्पी" संस्कृतम और वचक प्रयोग है । इन नामोंसे स्पष्ट हो जाता है कि यह वनस्पात जीवन दनवाली है । अतः इस विषयमें कहा है—

जीवन्ती स्वर्णवर्णाभा सुराष्ट्रजा च ।

जीवनाद्योगाज्जीवन्ती नाम ॥ ( मन्त्र० व० १ )

"इस जीवन्ती औषधीका सुवर्णके समान वर्ण है, यह ( सुराष्ट्र ) काठिवासाहमें होती है । इससे दीर्घजीवन प्राप्त होता है, इस कारण इसका नाम जीवन्ती है ।"

इसके गुण ये हैं— "मधु", शीत; रक्त पीत वात शय दाह ज्वर का नाश करने वाली कफ बढ़ानेवाली, नीर्य बढ़ानेवाली, रसायनधर्मवाली और मूत्रराग दूर करनेवाली है ।

जीवन्ती शीतला स्वादुः खिर्या वीपजयापहा ।

रसायना यलकरी चक्षुष्या माहिणी सधुः । ( भा० )

चक्षुष्या सर्वदोषघ्नी जीवन्ती मधुरा हिमा ॥ ( अग्नि० ज० १९ )

इस प्रकार इस जीवन्ती औषधिक गुण हैं । पाठक इस औषधिका सेवन करें । वैद्यकग्रन्थोंमें इसके विविध प्रयोग लिखे हैं और सुयम्ब वचके द्वारा इसका सदनधिकार ज्ञान हो सकता है । यह उत्तम औषधि है और आरोग्य वल और दीर्घायु दनवाली है । इसी प्रकार निम्नलिखित मन्त्र यही दहन योग्य हैं—

शिबे ते स्नां यावापुषिषी असताप अभिभिषो ।

या ते सूर्य आलपतु या वालो पातु न ह्व्य ॥

शिवा अभि रक्षन्तु त्वापो दिव्याः पयस्वनीः ॥ ( म० १४ )

शिवास्ते सम्न्वापयथ ठ त्वाद्वायमधरहपा ठस्तरां पुषिषीमभि ।

तत्र त्वादित्यो रक्षतां सूर्याचन्द्रमसाधुमा ॥ ( म० १५ )

"शुभोक और पुष्पी लोकके सब पदार्थ वेग सताप न बढ़ावें इतनाही नहीं पाठ के तेरे लिये सोमा नीर पृथक् हवें । शय तेरे लिये सुख देव, बाधु तुझ सुख देव । वलस तुझे आनन्द प्राप्त हार । औषधियां तग सुख बढ़ावें । ये आपषिषी भूमिस साथी

हैं। धूर्ध्व और चन्द्र तेरी रक्षा करें।” इन मंत्रोंमें कहा है कि अमृतक सब पदार्थ अर्थात् धूर्ध्व, चन्द्र, वायु, जल, भूमि, औषधि, अल, वायु, तेज आदि अनन्त पदार्थ मनुष्यका सुख बढ़ावें। मनुष्यको छान्ति दें। मनुष्यका सन्ताप बढानवाळ न हों। इसका तात्पर्य यह है कि ये सब पदार्थ योग्य रीतिसे बर्ते जानपर मनुष्यका सुख बढानेवाळे होते हैं। इन पदार्थोंका उपयोग करनेकी विधि वैद्यग्रन्थोंमें अर्थात् आयुर्वेदमें लिखी है। जो पाठक साम प्राप्त करनेके इच्छुक हैं वे इसका अभ्यास करें। इसी सबधमें निम्नलिखित मंत्र देखने योग्य है—

अग्नेः शरीरमसि पारयिष्यु रक्षोहासि सपस्महा ।

अथो जमीषयातमा पुतुष्टुर्नाम मेघजम् ॥ ( म० २८ )

“अग्निका शरीर रोगोंसे पार करनेवाळा है, वह अग्निका शरीर राक्षसों (रोगजन्तुओं) का नाश करता है तथा अन्यान्य छत्रुओंको दूर करनेवाळा है। इसी प्रकार वह आमाश्वयके सब दोषोंको हटाता है। यह पुतुष्टु नामक औषध है।” अग्निका यह वर्णन हरपुरुषके ध्यानमें धारण करनेयोग्य है। अग्नि रोगोंसे पार करनेवाळा है; अहां विविध राग बढत हैं वहां अग्नि प्रदीप्त करनेसे रोगकी हवा बढाने हट जाती है और वहां नीरोधता हो जाती है। इसलिय जिस ग्राममें सर्वांगिक राग बहुत फैलते हैं उस ग्राममें नाके नाके पर और गलीगलीमें बूरत हवन किंचे जाय तो लाभकारी होगा। आबकल दूषित ग्रामों और स्थानोंमें इसीलिय आग अलाते हैं।

अग्निको ‘रक्षो-हा’ अर्थात् राक्षस संहारक कहा है, वहां राक्षस, रक्षस् तथा रक्षः छत्रुका अर्थ रोगबीज हैं। रोगबीजोंका नाश अग्नि करता है। आरोग्यके जो अन्यान्य छत्रु हैं उनका भी नाश अग्निसे होता है। रोगकृमि आदि सब रोगबीजोंका नाम राक्षस है ये राक्षस—

ये अन्नेषु विविच्यग्नि पात्रेषु विमतो जगाम् । वा० यजु० १५।३२

“जो अन्नों और पानपात्रों अर्थात् खानपानके पदार्थोंमेंसे पेटमें आकर विविध रोग उत्पन्न करते हैं ” यह वर्णन रोगबीजोंका है। रोगबीज अन्न और जल द्वारा पेटमें जाते हैं और रोग उत्पन्न करते हैं। इनके नाम रुद्र और रक्षन् आदि अनेक हैं। वहां अग्नि इन रोगबीज रूपी राक्षसोंका नाश करनेवाळा कहा है। इसी प्रकार अग्नि आमाश्वयके रोगोंको दूर करनेवाळा ( जमीषयातमा ) है। इसका वर्णन इसी छत्रुकी व्याख्यामें इससे पूर्व बताया है।

अग्नि यह एक 'पु-तु-तु' नामक औषध है। यह पुतुतु क्या है इसका विचार करना चाहिये। 'पु' का अर्थ (पवने) 'पवित्र करना, मल दूर करना, शुद्ध करना' है। 'तु' का अर्थ (शुद्धी) शुद्धि, बढना, संवर्धन होना' है और 'तु' का अर्थ (गती) 'गति, प्रगति' आदि है। जिससे 'पवित्रता शुद्धि और प्रगति होती है' उसको पुतुतु औषधि कहते हैं। चिकित्सामें क्या करना चाहिये इसका विधान इस धर्ममें हुआ है। बेध रोगी के शरीरसे रोगको दूर करनेके लिये तीन बातें करे—(१) पु=रोगीका शरीर पवित्र शुद्ध और दोषरहित करे, (२) तु=शरीरकी शुद्धि करे, शरीरको पुष्ट करे, शरीर बलवान् करे और (३) तु=शरीरकी नैरोम अवस्थामें प्रगति कर। ये तीन बातें प्रत्येक चिकित्सकको करना चाहिये तभी रोगीका प्रतिकार होगा। चिकित्साके ये तीन मुख्य कार्य हैं। जो इन कार्योंको करता है, वही उत्तम पद्म प्राप्त करता है। शरीरशुद्धि, शरीरसंवर्धन और व्याधिप्रतिकार ये तीन भाग हैं जिन भागोंका विचार करनेसे पूर्ण चिकित्सा हो जाती है। 'पु-तु-तु' इस एकही धर्मसे वेदकी चिकित्साधैलीको उत्तम रीतिसे दर्शाया है। यह सर्वान्वर्धन चिकित्साकी पद्धति है।

वेदने इस एक धर्ममें चिकित्साकी रीति कैसी उत्तम धैलीसे बताया है यह देखिये। इस रीतिका अवलम्बन करनेवाले बेध मुख का विस्तार करत हैं—

सुहृत्त धार्मै यच्छतम् । ( म० ७ )

“सुखी करो और धान्ति प्रदान करो” पूर्वोक्त प्रकार “पवित्रता, शुद्धि और प्रगति” करनेसे सब लोग सुखी होंगे और सबको धान्ति प्राप्त होगी इसमें कोई संशय नहीं है। सुख धान्ति और दीर्घ आयुष्य यही मनुष्यका प्राप्तव्य इस जन्ममें है। इसीका स्पर्शकरण करनेके लिय निम्नलिखित मन्त्र है—

अरिष्टः सर्वाङ्गः सुभुञ्जरसा शान्तहायन ।

आत्मना सुजमदनुताम् । ( म० ८ )

“इस रीतिमें सब अंगों और अणुओंसे पूर्ण, अक्षीण अणुयववाला, उत्तम ज्ञानी, वृद्धावस्थामें सी वर्षतक जीवित रहनवाला होकर अपनी शक्तिये सब योग प्राप्त करने वाला बने।” अर्थात् यह मनुष्य अतिवृद्ध अवस्थातक जीवित रहे और उस वृद्ध अवस्थामें भी अपनी शक्तिये और अपन प्रयत्नसे अपनेलिय मांग प्राप्त करे। परावस्थामी न बने, अन्ततः स्वबलम्बनशील रहे। इस ध्यानपर वेद का आदर्श बताया है।

कबल अतिबृद्ध होना वेदको मभीष्ट नहीं है, परन्तु अतिबृद्ध होते हुए नीरोग और बलवान् बनना वेदका साध्य है। प्रत्यक्ष अवयव सुदृढ़ बने, सब अवयव और शत्रिय ठीक अवस्थामें रहें, बल स्थिर रहे और यह सब होते हुए मनुष्य बृद्ध बने यह वेदका आदर्श है। वेद कहता है कि अन्यान्य उपभोगभी मनुष्य लते रहें, उत्तम कपड़े पहने और सुखसे रहें, इस विषयमें निम्नलिखित मन्त्र देखिये—

पप्ते वासः परिधान यां मीर्वि कृणुये स्वम् ।

शिष ते तन्वे तत्कृणमः स्तृपशोऽद्रूक्ष्णमस्तु ते ॥ ( म० १६ )

“ओ तेरा ओढ़नेका वस्त्र तू कमरपर बाँधता है वह कपड़ा तेरे शरीरको सुखदायक हो और वह स्पर्शकेलिये सुदृढ़ हो।” सुदर्शन न हो। इस मन्त्रका आशय स्पष्ट तो यह दीखता है कि सुदृढ़ और उत्तम कपड़ बिनका स्पर्श शरीरको उत्तम सुखकारक होता है, वैसे उत्तमोत्तम कपड़े मनुष्य पहने और शरीरका सुख लें। इसी प्रकार इक्षामत बनाकर सुखकी सुदृढ़ता बढ़ानेक विषयमें निम्नलिखित मन्त्र मनन करनेयोग्य है—

यत्छुरेण मर्चयता सुनेजसा वप्ता वपसि केशाहमभु ।

शुभं शुभं मा म आयुः प्रमोषीः ॥ ( म० १७ )

“ओ तू नापित स्वच्छता करनेवाले तेषचारवाले छुरसे ओ बालों और मूछोंका सुण्डन करता है, उससे मुख सुन्दर दीखता है, परन्तु यह सुन्दरता किसीकी आयुका नाश न करे।” उत्तम उत्तररत्न इक्षामत बनाकर सुखकी सुन्दरता बढ़ानेका उपदेश वेदमें इस प्रकार दिया है। इक्षामत बढ़नेसे मुख शोभाहीन होता है और इक्षामत बनानेसे भी मुख सुन्दर होता है, यह कहनेका उद्देश यह है कि मनुष्य इक्षामत बनावे और अपने मुखकी सुन्दरता बढ़ावे। कोई मनुष्य अपना शोभाहीन मुख न रखे। सब लोग सुन्दर, नीरोग, बलवान्, पूर्णाष्ट्र और कर्तव्यतत्पर बनें, यह वेदका उपदेश है। इसी प्रकार उत्तम मोहनके विषयमें भी वेदका उपदेश देखने योग्य है—

शिषो ते मीहियवाभयसासावबोमयी ।

एतो यक्ष्म वि याचेते एतो मुञ्चतो अहसः ॥ ( म० १८ )

“चाबल और ओ कल्याणकारी हैं, कफ दोषको दूर करनेवाले और मक्षण करनेके लिये मधुर हैं। ये यक्ष्म रोगको दूर करेंगे और दोषोंसे मुक्त करेंगे।” मोहनके विषयमें अनेक मन्त्र वेदमें हैं, उनका हम समय विचार कामकी आवश्यकता नहीं है। यहाँ केवल यही बताना है कि, मोहनके विविध पदार्थ भी वेदने दिये हैं अर्थात् शिष

प्रकार वेद बल, आरोग्य और दीर्घ आयु देना चाहता है उसी प्रकार सुदूर तक और उत्तम मानन देकर भी मनुष्यकी सुखसमृद्धि बढ़ाना चाहता है। यह सोचन निर्विघ्न होनेकी सूचना भी समय पर वेद देता है, पाठक इसको यहाँ रखें—

यदस्मासि यत्पिबासि घान्य कृष्याः पयः ।

यदाथ यदनाथ सर्वं ते अन्नमविध कुणोमि ॥ ( म० १९ )

“जो कृषिसे उत्पन्न होनेवाला घान्य तू खाता है जो दुग्धादि पशु पदार्थ पीता है वह सब खाने योग्य और जो न खानकी चीज हो, वह सब निर्विघ्न बनाता हूँ” अर्थात् वह सब खानपान विघ्न रहित हो। यहाँ विघ्ने वचनकी सावधानी धारण करनेका उपदेश दिया है। मनुष्यके खानपानमें सब गाँजा, माँग, बक्रीम, उभाखू, चा, काफ़ी, आदि अनकानेक पदार्थ विषमय हैं, इनका परिपाक भी विपद्भय है। ऐसे पदार्थ खानसे मनुष्य का स्वास्थ्य विगड़ जाता है और मनुष्य अस्वास्थ्य हो जाता है। अतः मनुष्य विचार करे कि जो पदार्थ मैं खाता और पीता हूँ वे कैसे हैं, वे निर्विघ्न हैं वा नहीं? वे आरोग्य पथक और दीर्घायुकारक हैं वा नहीं? ऐसा विचार करके मनुष्य अपने खानपानका सेवन करे। सुवाक्य पदार्थही खानपानमें आने चाहिये परंतु मनुष्यको कभी ठपित नहीं कि वह विषमय पदार्थोंकी लासकमें फँसे और अपनी शक्ति करे। अतः मनुष्यका उदा उत्तम उपदेश भवण करना चाहिये, अतः कहा है—

### उपदेशक का कार्य ।

अभि श्रूहि, मा रमयाः, सुजेम तवैव सत्सर्वहापा इहास्तु । ( म० ७ )

“उत्तम उपदेश कर, पुरा काम न कर, इस मनुष्यको अथर्वमें मेझो, तेरे निबमानु कूल चलता हुआ यह मनुष्य पूर्णायु होकर यहाँ रहे। उपदेशक इस प्रकारका उपदेश जनताको कर और जनताको ऐसे मार्गसे चलावे कि सारे लोग उपदेश सुनकर बुरे कार्यसे हटें, अगत्में जाते हुए चर्चनियमानुकूल चले और नीराग बलवान् और पूषायु बनें। तथा सब प्रकारकी उन्नति प्राप्त करें—

असौ अभिश्रूहि, इयं वयस्व, अय इतः उत्त एतु । ( म० ८ )

“इस मनुष्यको उत्तम उपदेश कर, इस पर दया कर, और इसको ऐसा मार्ग बताओ कि यह यहाँसे उन्नति करे” उक्त अवस्था प्राप्त करे। यह उपदेशकोंकी शिष्टमहारी है कि वही राष्ट्रके लागोपर उत्तम शुभ संस्कार डालें, उनको शुभ मार्ग बतावें और वे

संधि ठाठिके पयपर ल आये । जिस दृष्टके और राष्ट्रके उपदेशक इस रीतिसे अपना ज्ञान प्रचारका कर्तव्य ठाठ रीतिसे करते हैं, वहाँके लोग नीरोग, सुदृढ, दीर्घायु तथा परम पुरुषार्थी होते हैं । परमपुरुषार्थी मनुष्य अपनी आयुका योग्य उपयोग करे । मनुष्यकी आयुका उत्तरदातृ तभीके ऊपर है यह बात कोई न भूटे—

## समयविभाग ।

सात ते युत हायना द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृणमः ॥ ( म० २१ )

चारवे त्वा हेमन्ताय वसन्ताय ग्रीष्माय परि वक्षसि ।

वषाणि सुष्य स्योमानि येषु वर्षन्त ओषधीः ॥ ( म० २२ )

अह त्वा राश्रये शोभास्या परि वक्षसि ॥ ( म० २० )

“मैं तारी सौ वर्षकी आयु प्रसुष्टित करता हूँ, उसमें दो सप्ताहके ओठे, सदी गर्मी वर्षा ये तीन काल और बारह ठरुण मध्यम और वार्षिक्य ये चार अवस्थाएँ हैं । वसन्त, ग्रीष्म और वर्षा, शरत्, हेमन्त, आदि ऋतु तारे लिये शुभ कारक हों । दिन और रात्रीके समयके लिय मैं तुसे सोंप देता हूँ ।”

दीर्घ जीवन की आयुष्यमर्यादा का सौ वर्षका समय है, उसमें सौ वर्ष, वर्षमें दो मयन, छः ऋतु और तीन काल अर्थात् सदी गर्मी और वर्षा ये तीन समय हाते हैं । प्रत्येक दिनमें दो सप्ताह और दिन तथा रात्रीका समय इतने समयविभाग हाते हैं । इन समयविभागोंके लिय मनुष्य सोपा हुआ होना चाहिये । समय विभागके लिय मनुष्यका सोपा हुआ होना, इसका अर्थ यह है कि समयविभागके अनुसार मनुष्यने अपना व्यवहार करना । जो समयविभाग बनाया हो उसके अनुसार ही मनुष्यका अपना कामकाज करना चाहिये । इसीसे बहुत कार्य हाता है और ठाठिका निष्पत्ति भी हा जाता है । अतः इन मन्त्रोंके उपदेशक मनुष्य यह बाध ठा कि मनुष्यका समयविभागके अनुसार कार्य करना चाहिये, व्यर्थ बकरीमें समय गमाना उचित नहीं । अपने पास का समय होगा उसका योग्य उपयोग करना चाहिये । समय का व्यर्थ व्यर्थ नहीं जाना चाहिये ।

इस सक्तमें बहुतही उत्तमाद्यम आदेश दिये हैं, जो पाठक इन आदेशोंके अनुसार पतेंग वे निमन्देह लाभ प्राप्त कर सकते हैं । विशेषतः दीर्घायु प्राप्त करनेक इच्छुक इस सक्तमें बहुत बोध प्राप्त कर सकते हैं ।



प्रकार वेद बल, आरोग्य और दीर्घ आयु देना चाहता है सभी प्रकार सुख वस और उत्तम मानव देकर भी मनुष्यकी सुखसमृद्धि बढ़ाना चाहता है । यह मोहन निर्विघ्न होनेकी सूचना भी समय पर वेद देता है, पाठक इसको यहाँ देखें—

यदभ्यासि यत्पिबासि घान्य कृष्णः पयः ।

यदाय यदमार्घ्यं सर्वं ते अन्नमविष कृणोमि ॥ ( म० १९ )

“जो कृषिसे उत्पन्न होनेवाला घान्य तू खाता है जो दुग्धादि देव पदार्थ पीता है वह सब खाने योग्य और जो न खानकी चीज हो, वह सब निर्विघ्न बनाता हूँ” अर्थात् वह सब खानपान विष रहित हो । यहाँ विषसे बचनकी सावधानी धारण करनेका उपदेश दिया है । मनुष्यके खानपानमें मद्य गांवा, मांग अर्घ्य, तमाखू, चा, काफ़ी, आदि अनजानक पदार्थ विषमय हैं, इनका परिपाक भी विषमय है । ऐसे पदार्थ खानसे मनुष्य का स्वास्थ्य बिगड़ जाता है और मनुष्य अल्पायु हो जाता है । अतः मनुष्य विचार करे कि जो पदार्थ मैं खाता और पीता हूँ वे कैसे हैं, वे निर्विघ्न हैं वा नहीं ? वे आरोग्य वर्धक और दीर्घायुकारक हैं वा नहीं ? ऐसा विचार करके मनुष्य अपने खानपानका सेवन करे । सुवाग्य पदार्थही खानपानमें आने चाहिये परंतु मनुष्यको कमी उचित नहीं कि वह विषमय पदार्थोंकी छालचमे फंसे और अपनी हानि करे । अतः मनुष्यका सदा उत्तम उपदेश भक्षण करना चाहिये, अतः कहा है—

### उपदेशक का कार्य ।

अधि गृहि, मा रमथाः, सृजेम तन्नैव सन्त्सर्वहापा इहास्तु । ( म० ७ )

“ उत्तम उपदेश कर, बुरा काम न कर, इस मनुष्यको अगत्में भेजो, तेरे निबन्धन कुछ चलता हुआ यह मनुष्य पूर्णायु होकर यहाँ रहे । उपदेशक इस प्रकारका उपदेश अनजानाको कर और अनजानाको ऐसे मार्गसे जलावे कि सारे लोग उपदेश सुनकर बुरे कार्यसे हटें, अगत्में आते हुए वर्धनियमानुसूल चलें और नीराग चलवान् और पूजाइ बनें । तथा सब प्रकारकी उन्नति प्राप्त करें—

असौ अधिगृहि, हम दयस्व, अय इतः उध् पतु । ( म० ८ )

“ इस मनुष्यको उत्तम उपदेश कर, इस पर दया कर, और हमको ऐसा मार्ग बताओ कि यह यहाँसे उन्नति करे ” उध् अवस्था प्राप्त करे । यह उपदेशकोंकी जिम्मेवारी है कि वही राष्ट्रके लोगोंपर उत्तम शुभ संस्कार डालें, उनकी शुभ मार्ग बतावें और वे

साथे उषातिके पयपर ल भावें । जिस दशके और राष्ट्रक उपदेशक इस रीतिसे अपना ज्ञान प्रचारका कर्तव्य उत्तम रीतिसे करत हैं, वहाँके लोग नीरोग, सुख, दीर्घायु तथा परम पुरुषार्थी होते हैं । परमपुरुषार्थी मनुष्य अपनी आयुका योग्य उपयोग करे । मनुष्यकी आयुका उत्तरदाहण उसीके ऊपर है यह बात कोई न भूले—

### समयविभाग ।

शात ते पुत हायनान्द्रे युगे त्रीणि चत्वारि कृणमः ॥ ( म० २१ )

शारदे तथा हेमन्ताय वसन्ताय ग्रीष्माय परि वक्ष्यसि ।

वर्षाणि शुभ्य स्योनानि येषु वर्षन्त ओषधीः ॥ ( म० २२ )

अह्म तथा रात्रये चोभाभ्यां परि वक्ष्यसि ॥ ( म० २० )

“मैं तारी सौ वर्षकी आयु अलुगिहस करता हूँ, उसमें दो सप्ताहके जोड़े, सदीं गर्मी वर्षा ये तीन काल और बारह वरुण मध्यम और बार्बक्य ये चार अवस्थाएँ हैं । वसन्त, ग्रीष्म और वर्षा, शरत्, हेमन्त, आदि ऋतु चरे लिये शुभ करक हों । दिन और रात्रीके समयके लिय मैं तुझ सोंप देता हूँ ।”

दीर्घ जीवन की आयुष्यमर्यादा का सौ वर्षका समय है, उसमें सौ वर्ष, वर्षमें दो जयन, छः ऋतु और तीन काल अर्थात् सदीं गर्मी और वर्षा ये तीन समय होते हैं । प्रत्येक दिनमें दो सप्ताहकाल और दिन तथा रात्रीका समय इतने समयविभाग होते हैं । इन समयविभागोंके लिय मनुष्य सोचा हुआ होना चाहिये । समय विभागके लिय मनुष्यका सोचा हुआ होना, इसका अर्थ यह है कि समयविभागके अनुसार मनुष्यने अपना व्यवहार करना । जो समयविभाग बनाया हो उसके अनुसार ही मनुष्यको अपना कामकाज करना चाहिये । इसीसे बहुत कार्य हाता दे और उद्यतिक निश्चय भी हा जाता है । अतः इन मंत्रोंके उपदेशसे मनुष्य यह बाध लव कि मनुष्यको समयविभागक अनुसार कार्य करना चाहिये, व्यर्थ बेकारीमें समय गमाना उचित नहीं । अपने पास जा समय होगा उसका योग्य उपयोग करना चाहिये । समय का व्यय व्यर्थ नहीं होना चाहिये ।

इस सकलमें बहुतही उत्तमोत्तम आदेश दिये हैं, जो पाठक इन आदेशके अनुसार प्रयोग वे निःसन्देह लाभ प्राप्त कर सकते हैं । विशेषतः दीर्घायु प्राप्त करनेक इष्टक इस एकतस बहुत बोध प्राप्त कर सकत हैं ।

## दुष्टोंका नाश ।

[ १ ]

( अग्निः—यातना । देवता—अग्निः )

रक्षोहर्षं शमिन्मा बिषमि मित्रं प्रविष्टमुपं यामि धर्मं ।  
 शिशानो अग्निः कर्तुमिः समिद्धः स नो दिवा स रिपः पातु नक्तं ॥१॥  
 अयोदध्ने अरिषा यातुपानानुपं स्पृष्ट वातवदः समिद्धः ।  
 आ जिह्वया मूरदेवान् रमस्व क्रुम्यादौ वृष्ट्वारि वत्स्वासन् ॥२॥

अर्थ—( रक्षो—हण बाजिन प्रविष्ट मित्र आ जिघमि ) राक्षसोंका नाश करनेवाला बलवान् प्रसिद्ध मित्रको मैं प्रकाशित करता हूँ । और उससे ( धर्म उपयामि ) सुख प्राप्त करता हूँ । ( सः कर्तुमिः समिद्धः ) वह यज्ञोंसे प्रवीत हुआ ( शिशानः अग्निः ) तीक्ष्ण अग्नि ( सः नः दिवा नक्त रिपः पातुः ) हमें दिन रात्र शत्रुओंसे बचावे ॥ १ ॥

हे ( यातवेदः ) यातवेद अग्ने ! ( समिद्धः अयोदध्ने ) प्रवीत होकर लोहकी दाहोंसे युक्त होकर ( अरिषा यातु-पानान् उपस्पृष्ट ) अपने प्रकाशसे यातना देनेवालोंको जला । तथा ( मूरदेवान् जिह्वया आरमस्व ) मूढविशेषोंको अपनी जिह्वारूप ज्वालासे ठीक करना आरम कर । ( वृष्ट्वा ) बलयुक्त होकर ( क्रुम्यादौ आसमि अपि वत्स ) मांस खानेवाला हिसकों को अपने घुन्घमें डाल ॥ २ ॥

भावार्थ— दुष्टोंका नाश करनेवाला बलवान् प्रसिद्ध हितकर्ता सदा प्रशसनीय है । इससे सुख प्राप्त होता है । वह उत्तम प्रशस्त कर्म करनेवाला, तीक्ष्ण अपवा उग्र, प्रयत्न करके हमें दिन रात शत्रुओंसे बचावे ॥ १ ॥

शानी अपन नेत्रसे दुष्टोंको मिथैल करे, मूढ़ोंको अपने जिह्वाके उपदेसों से सुपारे । मांस भक्षक क्रूरोंको अपने घुन्घसे आकृष्टादित करे अर्थात् क्रूरतासे मिथैल करे ॥ २ ॥

उमोर्मपारिभुषं धेहि दंष्ट्रीं हिंसः शिशानो धरं परं च ।

उत्तान्तरिक्षे परि याद्यमे जम्भे स धेद्यमि यातुधानान् ॥ ३ ॥

अग्ने त्वयै यातुधानस्य भिन्धि हिंसाधनिर्हरसा हन्त्वेनम् ।

प्र पर्वाणि जातवेदः शृणीहि क्रव्यात् कविष्णुर्वि धिनोत्सेनम् ॥ ४ ॥

यत्रेदानीं पश्यसि जातवेदस्तिष्ठन्तमग्र उद्य या चरन्तम् ।

उत्तान्तरिक्षे पतन्तं यातुधानं समस्ता बिभ्यु क्षर्षा शिशानः ॥ ५ ॥

अर्थ—हे (उमयाभिन् अग्ने) दाहों को जामनेवाले अग्ने ! तू (हिंसः शिशानः) शत्रुओंकी हिंसा करनेवाला तीक्ष्ण बन कर (अधर पर च उमो) इससे निकृष्ट और उत्कृष्ट दोनों प्रकारके शत्रुओंको अपने (दंष्ट्री उपधेहि) दाहोंमें रख । (उत्त अन्तरिक्षे परिपाहि) और अन्तरिक्षमें तू संचार कर । और वहाँसे (जम्भेः यातु-धानान् अभिसधेहि) अपने जयझोंसे यातना देनेवाले शत्रुओंपर चढ़ाई कर ॥ ३ ॥

हे अग्ने ! (यातुधानस्य त्वयै भिन्धि) कष्ट देनेवालेकी त्वचाको छिन्न भिन्न कर । (हिंस-अशमिः हरसा एन हन्तु) हिंसक बिभ्यु वेगसे इसका माश करे । हे (जातवेदः) जातवेद ! शत्रुके (पर्वाणि शृणीहि) पर्वोंको काट । (कविष्णुः क्रव्यात् एन विधिमोक्षु) मांसभक्षक क्रूर प्राणी इस दुष्टको पकड़ पकड़ कर ला जाय ॥ ४ ॥

हे (जातवेदः) ज्ञानी अग्ने ! तू (यद्य इदानीं) जहाँ अब (तिष्ठन्त चरन्त उत्त अन्तरिक्षे पतन्त यातुधान पश्यसि) खड़े हुए, घूमण करने वाल और अन्तरिक्षमें संचार करनेवाले यातना देनेवाले दुष्टको देखता है वहाँ (शिशानः अस्मा शर्षा) तीक्ष्ण शस्त्र फेंकनेवाला शत्रुहिंसक तू (त बिभ्य) उस शत्रुका डेध कर ॥ ५ ॥

भावार्थ—दोनों को जामनेवाला दध बलवान और निर्यस हिंसकोंको अपने कानूमें रखे । सय स्थानपर संचार करके कष्ट देनेवाले दुष्टोंको दबावे ॥ ३ ॥ दुष्टोंको पीट कर उनके चमड़ेको छिन्नभिन्न कर । पिसुलीके आघातसे दुष्टोंका माश हो । दुष्टोंक जोड़ोंको काटो । मांस भक्षक हिंसक और क्रूर को पकड़ पकड़कर नाश करो ॥ ४ ॥ जहाँ कष्ट देनेवाले हिंसक दुष्ट होंगे वहाँ उनको दबा दिया जावे ॥ ५ ॥

यदप्र अथ मिथुना क्षपातो यद् वाचस्तुष्टं जनयन्त रेमाः ।  
 मन्यामेनसः शरण्या इ आर्यते यातया विभ्य हृदय यातुधानान् ॥ १२ ॥  
 परा शृणीहि तपसा यातुधानान् पराभे रसो हरसा शृणीहि ।  
 पराचिपा मूर्देवान् शृणीहि परासुतृपः शोशुचतः शृणीहि ॥ १३ ॥  
 पराप देवा वृजिनं शृणन्तु प्रत्यगेन क्षपया यन्तु सृष्टाः ।  
 वाचास्तेनं शरवः श्रव्यन्तु मर्मन् विश्वस्यैतु प्रसिति यातुधानः ॥ १४ ॥

अर्थ-हे अग्ने ! (यत् अथ मिथुना क्षपातः) जो आज दोनों एक दूसरेको क्षापते हैं, (यद् रेमाः वाचः तुष्टं जनयन्त) जो आक्रोश करनेवाले वाणीकी कठोरता प्रकाशित करने हैं । (या मन्योः मनसः शरण्या याजते) जो मोपी मनसे शस्त्र होता है (तया यातुधानान् हृदये विभ्य) उससे पीछकोको हृदयमें घेब डाल ॥ १२ ॥

(यातुधानान् तपसा परा शृणीहि) यातना देनेवालाको अपने तपसे दूर करके नाश कर । और हे अग्ने ! (हरसा रसः परा शृणीहि) अपने बलसे दूर करके नाश कर । (मूर्देवान् अर्चिषा परा शृणीहि) मूर्होंको अपने तेजसे दूर करके नाश कर तथा (असुतृपः शोशुचतः पराशृणीहि) दूसरेक प्राणी पर तृप्त होनेवाले शोक करनेवाले दुष्टोंको भी दूर करके नाश कर ॥ १३ ॥

(देवाः अथ वृजिनं परा शृणन्तु) देव आज पाप करनेवाले पापीको दूर करें । (सृष्टाः क्षपया एन प्रत्यक् यन्तु) भजी हुई गालियाँ उनके प्रति धापस जाय । (वाचा स्तेन शरवः मर्मन् श्रव्यन्तु) वाणीके शोरको शस्त्र मर्मोंमें काटे । (यातुधानः विश्वस्य प्रसिति एतु) यातना देनेवाला तुष्ट सपके पक्षमें जाय ॥ १४ ॥

भावार्थ- जो तुष्ट परस्परको क्षाप दते हैं और आक्रोश करके कठोर भाषण पोखते हैं, उनके मनके तुष्ट भावोंसे जो घातक परिणाम होता है, उससे दुष्टों का हृदय जल जाय ॥ १२ ॥

जो तुष्ट लोगोंका कष्ट दन हैं उनके अपने तप, बल और तेजसे दूर कर और उनका नाश कर । मूर्होंकी उपासना करनेवालोंको भी दूर कर । जो दूसरेक प्राण लेकर तृप्त होते हैं उनका खलाते हुए हटा दो ॥ १३ ॥

पापी अनुप्यका और पापको दूर किया जाय । गालियाँ दी हुई देने

यः पौरुषयेण ऋषिषा समरुक्ते यो अश्व्येन पशुना यातुधानः ।  
 यो अघ्न्याया मरति क्षीरमग्ने सेषां क्षीर्षाणि हरसापि वृष ॥ १५ ॥  
 विषं गवां यातुधानां भरन्तामा वृषन्तामदितये दुरेबाः ।  
 परैवान् देवः सविता ददातु परां मागमोर्षधीनां अयन्ताम् ॥ १६ ॥  
 सवत्सरीण पय उल्लिषायास्तस्य माक्षीद् यातुधानो नृचक्षः ।  
 पीयूषमग्ने यतमस्तिवृप्तात् तं प्रत्यंचमर्षिषा बिष्य मर्माणि ॥ १७ ॥

अर्थ—(यः पौरुषयेण ऋषिषा समरुक्ते) जो मनुष्यक मांससे अपन आपको पुष्ट करता है और (यः यातुधाना अश्व्येन पशुना) जो कुछ अश्व आदि पशुके मांससे अपन आपको पुष्ट करता है, हे अग्ने ! (यः अघ्न्यायाः क्षीर मरति) जो गायका दूध बुराकर ले जाता है (तेषां क्षीर्षाणि हरसा अपि वृष) उनके सिरोंको अपन पलसे तोड़ डाल ॥ १५ ॥

(यातुधानाः गवां विष भरन्तां) जो कुछ गौओंको बिष देने हैं, और (दुरेबाः अदितये आब्रुवन्तां) जो कुछ गौको काटने हैं, (सविता देवः पमान् परा ददातु) सविता देव इनको दूर हटावे । (ओषधीनां माग परामयन्तां) इनको औषधियोंका भाग भी न दिया जावे ॥ १६ ॥

हे (वृ-चक्षः) मनुष्योंके निरीक्षक ! (उल्लिषायाः सवत्सरीण पयः) गायका वर्षमर प्राप्त होनेवाला जो दूध है (तस्य यातुधानः मा माक्षीद्) उसका पान यातना देनेवाला कुछ न करे । हे अग्ने ! (यतमः पीयूषं निवृप्तात्) उनमेंसे जो कुछ दूधस्वी अवृणको पीयेगा, (त प्रत्यञ्च अर्षिषा मर्माणि बिष्य) उसको सबके समुक्त अपने तेजसे मर्मस्थानमें बँध डाल ॥ १७ ॥

बाँलेके पास बापस जाँय । बाणीसे चारी करनवालक मर्मस्थान शस्त्रोंसे काटे जाँय । जनताको यातना देनेवालाको प्रतिषर्षमें रखो ॥ १४ ॥

मनुष्यका घाँबे आदि पशुका मांस खा कर जो कुछ अपना शरीर पुष्ट करता है और गायका दूध चोरी करके पीता है उसका सिर काट ॥ १५ ॥

जो कुछ मनुष्य गौको बिष देने हैं और गौ काटने हैं उनको समाजसे हटाया जावे और उनको भाग्यादिका भाग भी न दिया जावे ॥ १६ ॥

हे मनुष्योंका क्षित करनेवाले ! गायका दूध कुछ मनुष्य न पीव । जो कुछ बुराकर पीयेगा उसको शारीरिक दण्ड दिया जावे ॥ १७ ॥

यश्चेरिषुः सुनर्ममानो अमे प्राचा क्षुत्स्यो अश्वनिमिर्दिहानः ।  
 तामिर्विष्य हृदये यातुधानान् प्रतीचो बाहून् प्रति भक्ष्येषाम् ॥ ६ ॥  
 उत्तारं धान्सृणुहि आसवेद उत्तारं भार्गो ऋष्टिर्मर्यातुधानान् ।  
 अमे पूर्वो नि अहि घोष्ठुधान आमादः द्विक्कास्तमदन्त्वेनीः ॥ ७ ॥  
 इह प्र ब्रूहि यतमः सो अमे यातुधानो य इद कृणोति ।  
 तमा रमस्व समिधा यविष्ठ नृधर्षसमष्टुपे रन्ध्रवेतम् ॥ ८ ॥

अर्थ—हे अग्ने ! ( पक्षीः ) सत्कर्मोंद्वारा बहता हुआ तू ( इषूः सनम मानः ) अपने बाणोंको ठीक करके ( प्राचा ) बाणसि उपदेश करता हुआ ( शल्पान् अशमीभिः विह्वलः ) शस्त्रोंको बिजुलीसे तीक्ष्ण करता हुआ ( तामिः प्रतीचा यातुधानान् हृदये विष्य ) उससे शत्रुके संमुख होकर उन बुद्धोंको हृदयपर वेध करके, ( एषां बाहून् प्रति भिक्ष्य ) इनके बाहुओंका ताड़ बाल ॥ ६ ॥

हे जातवेद ! ( उत्त आरं धान् उत्त आरे भाणान् ) सत्कार्यका आरम्भ करनेवाले और किय हुए लोगोंको ( ऋष्टिभिः सृणुहि ) शस्त्रोंसे सुरक्षित रख । हे अग्ने ! ( यातुधानान् पूर्वः घोष्ठुधनः निजहि ) बुद्धोंको सबसे प्रथम प्रकाशित होकर नाश कर । ( आमादः एनीः द्विक्काः एम अदन्तु ) मांस खानेवाले पक्षी इनको आजायें ॥ ७ ॥

हे अग्ने ! ( या यातुधामः इद कृणोति ) जो बुद्ध यह बुद्ध कार्य करता है ( यतमः सः इह प्रब्रूहि ) वह कीनसा है यह पहा कह दे । ( त आर मस्व ) उसकी दण्ड देना आरम्भ कर । ( त समिधा आरमस्व ) उसको छकड़ियोंसे जलाना आरम्भ कर । ( नृधर्षसः समष्टुपे एम रन्ध्रय ) मनुष्यों के हितकी दृष्टिसे इस बुद्धका नाश कर ॥ ८ ॥

भार्यार्थ—सत्कर्मोंस बहा, अपने शस्त्रास्त्र तैयार रखो, बाणीसे उत्तम उपदेश करो, अपने शस्त्रोंको बिजुलीसे तीक्ष्ण करो, और उनसे शत्रुओंके हृदयोंका वेध करो, तथा उनका पाहुका छेदन करो ॥ ६ ॥

शुभ कर्म करनेवालोंकी रक्षा अपने शस्त्रोंसे कर । बुद्धोंका नाश कर । मांस खानेवाले पक्षी बुद्धोंका मांस खायें ॥ ७ ॥

जो बुद्ध है उसकी बुद्धता यहाँ कहो उनको दण्ड दो, जनताका हित करनेकी दृष्टिसे उनका नाश कर ॥ ८ ॥

तीक्ष्णेनपि चक्षुषा रक्ष यज्ञं प्राप्स्य वसुभ्यः प्रणय प्रचतः ।  
 हिंस्रं रक्षांस्यपि शोशुषान् मा स्वा दमन् यातुषानां नचक्षः ॥ ९ ॥  
 नृचक्षः रक्षः परि पश्य विष्णु तस्य प्राणिं प्रति क्षणीक्षमां ।  
 तस्यापि पृथीर्हरसा क्षणीहि त्रेधा मूर्ते यातुषानस्य वृक्ष ॥ १० ॥ ( ६ )  
 त्रिर्षीनुषानः प्रसितिं त एत्सुतं यो अयं अनृतेन इति ।  
 तमर्षिषा स्फूर्जयन् आतवेदः समक्षमेन गुणते नि युक्चिः ॥ ११ ॥

अर्थ— हे अग्नि ! ( तीक्ष्णन चक्षुषा प्राप्स्य यज्ञ रक्ष ) तू अपन तीक्ष्ण  
 आँखसे अष्ट यज्ञकी रक्षा कर । हे ( प्र—चतः ) ज्ञानी ! तू ( वसुभ्यः  
 प्रणय ) वसुओंकेलिये उसको ले जा । हे ( च—चक्षः ) छोगोंक निरीक्षक  
 हिंस्र रक्षांसि आनेशाचन् ) हिंसकका और राक्षसोंको तपात हुए (स्वा)  
 तुझको ( यातुषामा मा दमन् ) पातना दनबाल न द्याये ॥ ९ ॥

हे अग्ने ! तू ( नृ चक्षः ) विष्णु रक्षः परिपश्य ) मनुष्योंका निरीक्षण  
 करता हुआ सब दिशाओंमें राक्षसोंका देख । ( तस्य प्राणिं अपा प्रति  
 क्षणीहि ) उसकी तीनों अग्रभागों का भाश कर । ( तस्य पृथीः हरसा  
 क्षणीहि ) उसकी पसुलियोंको अपन बलसे तोड़ । ( यातुषानस्य वृक्ष  
 अया वृक्ष ) यातना दनबालकी जड़ तीनों प्रकारोंसे काट डाल ॥ १० ॥

हे अग्नि ! ( यः अकृतेन मृत इति ) जो असत्यन सत्यका भाश करता  
 है, वह ( यातुषानः त प्रसितिं विः एतु ) कुछ तरे बन्धनमें तीन प्रकारोंसे  
 प्राप्त हार । हे जातवेद ! ( त अर्षिषा स्फूर्जयन् ) उसको अपन प्रकाशसे  
 प्रभावित करना हुआ तू ( एव समक्ष गुणत नि युक्चि ) इसको अपन  
 सामने ईशस्तुति करमबासक हितके लिये प्रतिबन्धमें रख ॥ ११ ॥

भावार्थ—अपनी दृष्टिसे-शक्तिसे सत्कर्मका सरक्षण कर । और  
 निवासकोंकी आर उछे ले चले । हिंसकोंका अपन तजसे हटा और ऐसा  
 कर कि कुछ कुछ न द्याये ॥ ९ ॥ जननाकी रक्षा करनेके लिये तू सय  
 दिशाओंसे दुष्टोंको दूढ़ निकाल । और उनके तीनों प्रकारके प्रयत्नोंको  
 प्रतिबंध कर । दुष्टोंकी पीठ तोड़ और उनकी जड़ उखाड़ दो ॥ १० ॥

जो असत्यसे सत्यको द्याता है उस दुष्टको बधनमें डाल । अपने तेजसे  
 उसको मितवश कर और ईश्वर भजनक सम्मुख उसको प्रतिपद्य कर ॥ ११ ॥



यदेम अथ मिथुना क्षपातो यद् वाचस्तुष्टं जनयन्त रेमाः ।  
 मन्यार्मनसः शरण्या ३ आपते यातया विष्णु हृदये यातुधानान् ॥ १२ ॥  
 परा शृणीहि तपसा यातुधानान् पराभे रसो हरसा शृणीहि ।  
 पराधिपा मूर्देवान् शृणीहि परासुतृपः शोशुचतः शृणीहि ॥ १३ ॥  
 पराप देवा वृजिन शृणन्तु प्रत्यर्गेन क्षपया यन्तु सुष्टाः ।  
 वाचास्तेन शरव ऋच्छन्तु मर्मेन् विश्वस्येतु प्रसिति यातुधानः ॥ १४ ॥

अर्थ-हे अग्ने ! (यत् अथ मिथुना क्षपातः) जो आज दोनों एक दूसरेको शापते हैं, (यत् रेमाः वाचः तुष्टं जनयन्त) जो आक्रोश करनवाले वाणीकी कठोरता प्रकाशित करने हैं । (या मन्योः मनसः शरण्या याजत) जो क्रोधी मनसे शास्त्र होता है (तया यातुधानान् हृदये विष्णु) उससे पीछकोको हृदयमें घेब डाल ॥ १२ ॥

(यातुधानान् तपसा परा शृणीहि) यातना देनेवालाको अपने तपसे दूर करके नाश कर । और इ अग्न ! (हरसा रसः परा शृणीहि) अपने बलसे दूर करके नाश कर । मूर्देवान् अर्चिपा परा शृणीहि । मूर्दोंको अपने तजसे दूर करके नाश कर तथा (असुतृपः शोशुचतः पराशृणीहि) दूसरोंक प्राणों पर तृप्त होनेवाले शोक करनवाले दुष्टोंकी भी दूर करके नाश कर ॥ १३ ॥

(देवाः अथ वृजिन परा शृणन्तु) देव आज पाप करनेवाले पापीको दूर करें । (सुष्टाः क्षपयाः एन प्रत्यर्ग्य यन्तु) भजी हुई गालियाँ उनके प्रति वापस जाय । (वाचा स्तेन शरवः मर्मेन् ऋच्छन्तु) वाणीके शोरको शास्त्र मर्मोंमें काटे । (यातुधानः विश्वस्य प्रसिति एतु) यातना देनेवाला तुष्ट सबके वन्धनमें जाय ॥ १४ ॥

भाषार्थ- जो तुष्ट परस्परको शाप देने हैं और आक्रोश करके कठोर भाषण पोल्ते हैं, उनके मनके दुष्ट भावोंस जा घातक परिणाम होता है, उसमें दुष्टों- हृदय जल जावें ॥ १२ ॥

जो तुष्ट लोगोंका कष्ट देने हैं उनको अपने तप, बल और तेजसे दूर कर और उनका नाश कर । मूर्दोंकी उपासना करनेवालोंकी भी दूर कर । जो दूसरेक प्राण र कर तृप्त हात हैं उनका कलाते हुए हटा दो ॥ १३ ॥

पार्षा मनुष्यका और पापको दूर किया जाय । गालियाँ दी हुई देने

यः पौरुषयेण ऋषिर्षा समृद्धे यो अश्व्येन पशुना यातुधानः ।  
 यो अघ्न्याया भरति क्षीरमग्रे तेषां क्षीर्षाणि हरसापि वृष ॥ १५ ॥  
 विषं गवां यातुधानां भरन्तामा वृषन्तामदितये दुरेबाः ।  
 परैरान् देवः सविता ददातु परा मागमोर्षधीनां अघ्न्याम् ॥ १६ ॥  
 सवत्सरीण पय उस्त्रियायास्तस्य माशीद् यातुधानो नृपक्ष ।  
 पीयूषमग्रे यतमस्तिवृषात् तं प्रत्यक्षमर्षिषा विष्णु मर्मणि ॥ १७ ॥

अर्थ—(यः पौरुषयेण ऋषिर्षा समृद्धे) जो मनुष्यक मांससे अपने आपको पुष्ट करता है और (यः यातुधानः अश्व्येन पशुना) जो बुष्ट अश्व आदि पशुके मांससे अपने आपका पुष्ट करता है, हे अग्ने ! (यः अघ्न्यायाः क्षीर भरति) जो गायका दूध चुराकर ले जाता है (तेषां क्षीर्षाणि हरसा अपि वृष) उनके सिरोंको अपने बलसे तोड़ डाल ॥ १५ ॥

(यातुधानाः गवां विष भरन्तां) जो बुष्ट गौओंको विष देने हैं, और (दुरेबाः अदितये आहृषन्तां) जो बुष्ट गौको काटने हैं (सविता देवः पयाम् परा ददातु) सविता देव इनको दूर हटावे । (ओषधीनां माग पराजयन्तां) इनको औषधियोंका भाग भी न दिया जावे ॥ १६ ॥

हे (वृ-वृक्षः) मनुष्योंके निरीक्षक ! (उस्त्रियायाः सवत्सरीण पयः) गायका वर्षभर प्राप्त होनेवाला जो दूध है (तस्य यातुधानः मा आशीद्) उसका पान पातना देनेवाला बुष्ट न करे । हे अग्ने ! (यतमः पीयूषं नितृ प्लात्) उनमेंसे जो बुष्ट रूपरूपी अमृतको पीयेगा, (त प्रत्यक्षं अर्षिषा मर्मणि विष्णु) उसको सबके समक्ष अपने तेजसे मर्मस्थानमें बध डाल ॥ १७ ॥

बालेके पास बापस जाय । बाणीसे चारी करनेवाला कर्मस्थान शस्त्रोंसे काटे जाय । जनताको यातना देनेवाला प्रतिपक्षमें रह्यो ॥ १४ ॥

मनुष्यका घाबे आदि पशुका मांस खा कर जो बुष्ट अपना शरीर पुष्ट करता है और गायका दूध चोरी करके पीता है उसका सिर काट ॥ १५ ॥

जो बुष्ट मनुष्य गौको विष देने हैं और गौ काटने हैं उनको समाजसे हटाया जावे और उनका धाग्यादिका भाग भी न दिया जावे ॥ १६ ॥

हे मनुष्योंका हित करनेवाले ! गायका दूध बुष्ट मनुष्य न पीव । जो बुष्ट चुराकर पीयेगा उसको शारीरिक दण्ड दिया जावे ॥ १७ ॥

सुनादय मृणसि यावुषानान् न त्वा रक्षांसि पृतनासु जिम्बुः ।

सहस्राननु दह क्रम्यादा मा ते इत्या मुक्षत देव्यायाः ॥ १८ ॥

त नो अथ अपरादुक्तस्त्व पश्चादुत रक्षा पुरस्तात् ।

प्रति त्य ते अजरास्तपिष्ठा अपर्धसु शशुषतो दहन्तु ॥ १९ ॥

पश्चात् पुरस्तादपरादुत्तरात् कविः काव्येन परि पाक्ष्ये ।

सखा सखायमुनरी अग्निमे अथ मर्तो अमर्त्यस्त्वं नः ॥ २० ॥ ( ७ )

अर्थ-हे अग्नि ! तू ( यावुषामान् समात् मृणसि, यानमा दनवात् बुध्नो ) का सदा नाश करता है । ( रक्षांसि स्वा पृतनासु न जिम्बुः ) राक्षस तुष्ट युद्धों में नहीं जीत सकते । ( सहस्रान् क्रम्यादाः अमुनह ) मूढों के साथ भास-मक्षकों को जला दे । ( ते देव्यायाः इत्याः ) वे तारे दिव्य शास्त्राक्षस ( मा मुक्षत ) न छूट जाय ॥ १८ ॥

हे अग्ने ! ( त्व नः अपरात् उक्तः पश्चात् उत पुरस्तात् रक्ष ) तू हमें नीचे से उपरसे पीछे से और आग से रक्षा कर । ( त एव शोशुषतः अजरास्तपिष्ठा ) वे सप तेजस्वी, अक्षीण होकर तपोनवाले ( अपरात् प्रति दहन्तु ) पापीका जला दें ॥ १९ ॥

हे अग्नि ! तू ( कविः काव्येन ) कवि है अतः अपने काव्यसे ( पश्चात् पुरस्तात् अपरात् उत उत्तरात् परिपाक्षि ) पीछे से आग से नीचे से और ऊपर से सब रीतिसे रक्षा कर । ( त्व सखा सखाय ) तू मित्र है अतः मुझ जैसे मित्रकी, ( अजराः जग्मिण ) तू जरारहित है अतः मुझ जराग्रस्त की और ( अमरः मर्त्यान् नः परिपाक्षि ) तू अमर है अतः हम मरनवालोंकी रक्षा कर ॥ २० ॥

भावार्थ-तू सदा बुध्नों का नाश करता है, तुष्ट राक्षस पराभूत नहीं कर सकत । तू भास-मक्षकों को जला, तरे पाणस से बुध्न न छूटें ॥ १८ ॥

तू सप आरसे हमारी रक्षा कर । तेजस्वी लोग पापियों को दण्ड दें ॥ १९ ॥

तू कवि, मित्र जरारहित और अमर है अतः तू हमारी रक्षा कर । हम तेरे मित्र बनना चाहते हैं । हम जराग्रस्त होते हैं और मृत्युसे भी ग्रस्त हैं अतः तू हमारी सहायता कर ॥ २० ॥

तदग्रे चक्षुः प्रति चेहि रेमे छंफारुओ येन पपसि यातुषानान् ।

अपर्यवज्ज्योतिषा दैव्येन सुखं पूर्वन्तमपितं न्योषि ॥ २१ ॥

परि स्वापे पुरं वृष विप्रं सहस्य वीमहि ।

धुपद्वर्धे दिवे दिवे हुन्तारं मङ्गुरावतः ॥ २२ ॥

विपेण मङ्गुरावतः प्रति स्म रक्षसो जहि ।

अग्रे तिग्मेन शोचिषा तपुःप्रामिरुषिमिः ॥ २३ ॥

अर्थ- अग्न ! ( यम जफा-ऊज यातुषानान् पपसि ) जिससे तु  
छापोक्षारा ठाकरे लगानवाले पुष्टोंका निरीक्षण करना है । ( तत् चक्षुः रमे  
प्रतिपदि ) वह आँख शार मचानवालपर रख । ( अपर्यव-ज्ज दैव्यम रूपो  
तिषा ) अहिंसक दिव्य तजस ( सत्य अचित पूर्वन्त ) सत्य अचित माक्ष  
करनेवालेको ( नि ओष ) जला दो ॥ २१ ॥

हे अग्न ! इ ( सहस्य ) बलवान् । ( वृष ) हम सब ( विप्र पुर ) जामी  
और पूर्णता करनेवाले, ( धुपद्वर्ध ) धर्षण करनेवाले और ( मङ्गुरावतः  
हुन्तार ) बिमासकोंका नाश करनेवाले, ( स्वा दिवे दिव परिधीमहि )  
तेरा प्रतिदिन ध्यान करते हैं ॥ २२ ॥

हे अग्न ! ( तिग्मेन शोचिषा ) तीक्ष्ण नेजसे युक्त ( तपुः प्रामिः  
अर्षिमिः ) तपानवाले तजकी क्षितियोंसे ( विपेण मङ्गुरावतः रक्षसः प्रति  
जहि स्म ) विपक्ष नाश करनेवाले राक्षसोंका नाश कर ॥ २३ ॥

आचार्य- जो पुष्ट लाधे मारकर हमारे शरीर तोड़न हैं तथा जो बिरुद्ध  
कोलाहल मचाने हैं उनका तू दण्ड । तू अपम तजस हमारा नाश  
करनेवालेका नाश कर ॥ २१ ॥

जामी, धनकाममा पूर्ण करनेवाले जल्लुका धर्षण करनेवाले, पुष्टोंका  
नाश करनेवाले तुष्ट बलवान् देव का हम सब प्रतिदिन ध्यान करते  
हैं ॥ २२ ॥

विप देकर जगन्में नाश करनेवाले पुष्टोंका नाश तू अपने तीक्ष्ण  
और ठम नेजसे कर ॥ २३ ॥

वि न्यातिषा वृद्धा मांस्यभिरुषिर्विधानि कृणुते महिस्वा ।  
 प्रादेवीर्मायाः संहते वुरेवाः शिश्विषि शृङ्गे रक्षोभ्यो विनिश्चने ॥ २४ ॥  
 ये तु शृङ्गे अजरे जातवेदस्तिग्महेती प्रहस्यसिसे ।  
 ताम्बां दुर्हार्दमां महासन्त किपीदिनं प्रत्यक्षं मृषिषा जातवेदो वि निश्च ॥ २५ ॥  
 अग्नी रक्षोसि सधति शुक्रशोधिर्मर्यः ।  
 शुचिः पावक ईजाः ॥ २६ ॥ ( ८ )

अर्थ—(अग्निः वृद्धा ज्योतिषा विधाति) अग्नि विशेष तेजस प्रकाशता है । ( महिस्वा विधानि आभिः कृणुते ) अपने सामर्थ्यसे सब जगत का प्रकट करता है । ( अक्षीः वुरेवाः मायाः प्रसङ्गे ) राक्षसोंकी बुद्ध्यायक कपटजाओंको जीतता है । ( शृङ्गे रक्षोभ्यः विनिश्चने शिश्विषि ) अपने दोनों सींग राक्षसोंका नाश करनेकेछिये तीक्ष्ण करता है ॥ २४ ॥

हे (जातवेदः) वेदज्ञ ! (ये ते अजरे तिग्म-हेती) जो तेरे तीक्ष्ण हथियार के समान (प्रहस्यसिसे शृङ्गे) ज्ञानसे तीक्ष्ण किये हुए सींग हैं, हे जातवेद ! (ताम्बां) उन दोनों सींगोंसे और (अभिषा) अपने तेजस (दुर्हार्द किपीदिन अभिदासन्त) कुछ हृदय मूके और वृद्धों का नाश करनेवाले कुछका (प्रत्यक्ष वि निश्च) सामने नाश कर ॥ २५ ॥

(शुक्रशाभिः अमर्यः) शुद्ध प्रकाशवाला अमर (शुचिः पावकः ईजा) पवित्र, शुद्धता करनेवाला स्तुत्य अग्नि (रक्षोसि सधति) राक्षसोंका नाश करता है ॥ २६ ॥

भावार्थ—अग्नि विशेष तेजसे प्रकाशता है और अपने सामर्थ्यसे जगतको प्रकाशित करता है । राक्षसोंक कपट जाळ वूर करके उनके नाशक छिये अपने दोनों सींग तीक्ष्ण करता है ॥ २४ ॥

तेरे सींग तीक्ष्ण हथियार जैसे हैं और वे ज्ञानसे तीक्ष्ण हुए हैं, उनसे और अपने तेजसे कुछ हृदयवाले घातकी शत्रुका नाश कर ॥ २५ ॥

शुद्ध, तेजस्वी, अमर, पवित्र, शुद्धता करनेवाला प्रशसनीय अग्नि राक्षसोंका नाश करनेवाला है ॥ २६ ॥

## दुष्टोंके लक्षण ।

इस सूक्तमें दुष्ट मनुष्योंका नाश करनेका विषय है । अतः दुष्ट कौन है इसका पहिले निश्चय करना चाहिये । यह निश्चय न हुआ तो कदाचित् दुष्ट बचगा और दुष्टका ही नाश अज्ञानसे किया जायगा । अतः पहले इस सूक्तमें दुष्टोंके लक्षण कहे हैं, देखिये—

१ दुर्हार्दः ( दुः+हार्द )=दुष्ट हृदयवाला, जिसके अन्तःकरणमें दुष्ट विचार रहते हैं, जो दुष्ट भाव मनमें धारण करता है, जो हृदयमें पातपातकी कल्पनाओंको धारण करता है । ( म० २५ )

२ रक्षः, राक्षसः ( रक्षति )=जो रक्षण करनेका आविर्भाव पताकर पात करता है । जो बाहरसे रक्षा करनेका ढोंग रचकर अन्दरसे छसीका नाश करता रहता है । ( म० ९ )

३ असु-दृष्टुः=जो दूसरोंके प्राणोंका बलि लेकर सुख होता है, जो दूसरोंका नाश करके अपना स्वार्थसाधन करता है, जो दूसरोंका पात करके अपनी पुष्टि करता है । ( १३ )

४ धूर्वन्=जो दूसरोंका पात पात आर नाश करता है । ( ११ )

५ अगुरावत्=जो दूसरोंका सत्यानाश करता है । ( १२ )

६ अभिदासन्=जो दूसरोंका बध करता है, दूसरोंका बधनमें डालता है, दूसरोंको गुलाम बनाता है, दूसरोंका पारतन्त्र्यमें रखकर स्वयं अपने भाग बढ़ाता है, जो दूसरोंको दास बनाता है । ( २५ )

७ हिंस्रः ( ३ ) ; दाकः ( १४ )=जो हिंसा करता है, पातपात करता है । दूसरोंका नाश करता है ।

८ दाफा-दृष्टुः=अपनी छायाँके प्रहारोंसे जो दूसरोंको मारता है, दूसरोंके अवयव छायाँकी मारसे टाढ़ दता है । ( २१ )

९ रिपुः=हिंसक, पात पात करनेवाला, जो दूसरोंका विस्मंस करता है । ( १ )

१० ऋष्यात् ( ९ ), क्रविष्णुः, आमाद ( ४ )=जो मौस खाता है, जो कया मौस खाता है, जो रक्त पीता है, जो दूसरोंके जीवनपर जीवित रहता है ।

११ यः पौरुषेण अदृष्टेन क्रविषा, यः पशुमा समस्त- जो मनुष्य, अथ और अन्धाय पशुओंके मांससे अपना शरीर पुष्ट करता है, जो पशुपक्षियोंके मांस से अपने आपको पुष्ट करता है, जो अपन पटक सिय दूसरोंका जीव लता है । ( १५ )

१२ कुरेवाः अश्विनय आश्विन्यां— आ दुष्ट गायका काटता है अथवा कटवाता है । अ-द्विषि अर्थात् द्विषनीय यौका भी जो बच करता है । ( १६ )

१३ गवां विष भरमतां— गौबोंको आ विष देते हैं और विषसे यौका बच करत है । ( १६ )

१४ किमीक्षिन्— ( किं-इदानीं ) अब आज क्या खाये, कल तमका बच किया और पट पासा, आज किसका बच करके पटपूरी करें इसका आ सदा विचार करत हैं । आ कमी दुष्टोंका पात किंच बिना नहीं रहत । ( २५ )

१५ यातुपानः ( यातु+पानाः ) = यातना इनका, दुष्टोंको सतानका, दुष्टोंका पीडा इनका । ( २ )

१६ कुरेवाः— ( कुरा+एव )— दुष्ट मार्गपर चलनेवाला, कुरे कायमें प्रवृत्त इत्तर दुष्टोंका कह देकर अपना सुख बढ़ानका प्रयत्न करनेवाला । ( २४ )

१७ अद्विषीः मायाः— ( अ-द्विष्य मायाः ) आ दुर्गाई आर कपट करत हैं, आ पासा इत्तर दुष्टोंको छूत हैं, पाकवासीसे अपना एश्वर्य बढ़ात हैं । ( २४ )

१८ कृजिनः = आ पाप करता है, पाप कर्ममें प्रवृत्त होता है । ( १४ )

१९ बाष्पास्तेमः ( बाष्पा+स्तेनः )— आ बाणिका बार है जिसका भाषण सत्य नहीं होता । आ एक बोलता है और दुष्टादी करता है, जो विश्वास रखन अयोग्य है । ( १४ )

२० मृद्वेषः, ( २ ) सहमृगः ( १८ ) = पात पात करनेवाला मूढ, डाहकोंके साथ रहनेवाला, महामूर्ख, महापातकी, महाद्विषक । ( २ )

२१ मिथुना वापानः— एक दुष्टोंका घालिवाँ दत्त हैं, परस्पर कुरे दुष्टोंके त्रयोध करते हैं । अपशब्द वास्तव हैं । ( १९ )

ये सब दुष्ट हैं । ये दुष्टोंके सङ्घण हैं । पाठक इन वचनोंका विचार करके अपने समाजमें अथवा इस समाजमें इन सङ्घणोंसे युक्त कौन कौन हैं, इसका निश्चय करें और उन दुष्टोंको दूर करनेका प्रयत्न करें । इन सङ्घणोंका विचार करके पाठक भ्रष्ट सङ्घोंके सङ्घण भी जान सकते हैं । जैसा ' जो दुष्टोंका पात पात नहीं करत आ किसीकी दिसा नहीं करते, जो अद्विषा भावसे वर्तत हैं जो सदा सत्य वासते हैं, कमी कपट नहीं करते, हृदयमें शुद्ध भाव बाण करत हैं, कमी किसीका नाश करके अपना पद भरना नहीं चाहते, पातु अपन प्रयत्नसे दुष्टोंका सुख बढ़ाना चाहते हैं दुष्ट मनुष्योंके साथ कमी नहीं रहते, सुलसे कमी कुरे शब्द नहीं उच्चारत आ पाप कर्ममें प्रवृत्त नहीं

होते, जो मांस मोक्षन नहीं करत, जो दूसरोंको मारपीट नहीं करते, जो दूसरोंको दासमाससे छुटानेके लिये प्रयत्न करत हैं, जो दूसरोंकी रक्षा करते हैं।" जो ऐसा शुद्ध सदाचार रखते हैं वे सज्जन कहे जात हैं। इन सज्जनोंको पूर्वोक्त दुष्ट दुर्जन सदा कष्ट दते हैं, अतः दुष्टोंको दूर करना धर्म होता है। सज्जनोंका परिश्रान करना, दुष्ट दुर्जनोका नाश करना और धर्मकी व्यवस्था स्थापित करना यह सब भय पुरुषोंका कर्तव्य है। जो यह कर्तव्य करेंगे वेही आदरक योग्य पुरुष हैं। यही मनुष्यका धर्म है, अतः इस सूक्त द्वारा कहा है कि इन दुष्टोंका नाश करना चाहिये। नाश करनेका भाव यह है—कि उनका दुष्ट भाव दूर करना, उनके स्वभाव का सुधार करना, उनको दुष्ट व्यवहारसे निवृत्त करना, उनको समाज या राष्ट्रसे वशिष्ठ करना और इतनेसे भी कार्य न हुआ, तो उनका नाश करना। इस सूक्तका यह कार्य है। अब इन दुष्टोंका नाश करनेवाला कैसा हो, इस विषयमें देखिये—

### दुष्टोंका नाश करनेवाला कैसा हो ?

पूर्वोक्त विचारणमें दुष्टोंके लक्षण कहे हैं, इन लक्षणोंसे दुष्टोंकी पहचान हो सकती है। इन लक्षणोंसे दुष्टोंका ज्ञान होनेके पश्चात् उनका नाश करनेका कार्य कौन करे, इसका विचार करना चाहिये। हरएक मनुष्य दुष्टोंका नाश करनेका कार्य करनेका अधिकारी नहीं है, यह कार्य विशेष जिम्मेवारी का कार्य है, अतः यह कार्य विशेष साधनान्तासे होना चाहिये और विशेष योग्यतावाले मनुष्यके आधीन यह कार्य रहना चाहिये। इस विषयके निर्देश इस सूक्तमें हैं, उनका अब यही विचार करत हैं—

१ मित्रः ( म० १ ), सखा ( म० २० )=जो मनुष्य सब मनुष्योंकी ओर मित्रताका वर्तव्य करता है, जो सबका सखा अर्थात् हित चाहनेवाला है। जनताका हित करनेमें जो उत्तर रहता है,

२ विप्रः ( म० २१ ), कविः ( म० २० )=जो विशेष प्राज्ञ अर्थात् ज्ञानी है, जो कवि है अर्थात् कान्तदर्शी है, जो दूरदृष्टि है, जो महाराजस हरएक बातका विचार कर सकता है, जो पवित्र दृष्टिके साथ सब बातोंका आगेपीछेका विचार करनेमें शतुर है,

३ जातवेदः (शातवेदः)=जो ज्ञानी है, जिसने अध्ययन उत्तम प्रकारसे पूर्ण किया है, जो बहुभुत और वेदशास्त्रज्ञ है, जिसके अद्वैत ज्ञानकी दृष्टि उत्पन्न हुई है, ( म० ३ )

४ अथर्ववक्षः दिव्यव्योतिः ( म० २१ )=जो ( अ-धर्म ) अपवृत्त स्थितप्राप्त योगीके समान दिव्य तेजस प्रकट है, जिसने योगसाधनादि द्वारा अपना मन स्थिर



किया है, आ पञ्चल वृत्तिशाला नहीं है, जो छान्ति और गभीरतासे सब बातोंका विचार कर सकता है और शीघ्रता करके जो कार्यका विगार नहीं करता है ।

५ शुक्लशोभिः, शुचिः, पावकाः ( म० २५ ) = आ पवित्र तमसे युक्त, स्वयं आचारसे शुद्ध, और पवित्रता करनेवाला है, जो स्वयं पवित्र विचार, पवित्र ठगार और पवित्र आचारसे युक्त है, जिसका मन, बुद्धि, चित्त आदि अन्तरिक्षप्रपञ्च तथा जिसके बाह्य इन्द्रिय पवित्र हैं और शुद्ध व्यवहारशील करते हैं,

६ ईक्ष्यः ( म० २६ ), प्रपिष्टः ( म० १ ) पूर्वोक्त कारणसे जो प्रशसनीय है, स्तुति करने योग्य है, सब लोग जिसके पवित्र आचारकी प्रशंसा करते हैं,

७ वाजी ( म० १ ), सहस्रपा ( म० २२ ) = जो बलवान है, कर्तव्य करनेका निश्चय होनेके पश्चात् जो निश्चयपूर्वक अपन बलसे उसको निभाता है, आ प्रतिपक्षीको पराजित कर सकता है, आ अपने बलसे अपने कर्तव्य कर सकता है,

८ ब्रह्मसंशितः ( म० २१ ) = ज्ञानसे तीक्ष्ण, ज्ञानसे तेजस्वी, ज्ञानसे सुसंस्कृत, ज्ञानसे प्रशसायुक्त बना हुआ,

९ अजरः, अमर्त्यः ( म० २० ) = अजरहित और मृत्युरहित बना हुआ, क्षीय न होनेवाला और मृत्युधे न करनेवाला, दशोक समान जराहृतयुक्त दूर रहनेवाला, दिव्यजीवन युक्त,

१० ऋतुभिः समिद्धः ( म० १ ) = विविध सत्कर्मोंसे प्रदीप्त हुआ भोग प्रशस्ततम कर्मोंसे प्रकाशित, सत्यमय प्रशसनीय उत्तम कर्म करनेवाला, जिससे उत्तम कर्मही होते हैं,

११ शिक्षानः ( म० १ ) = तीक्ष्ण, तेजस्वी,

१२ तार्क्ष्यः ( म० ५ ) = शत्रुघ्नोका नाश करनेवाला,

१३ प्रतीक्षः ( म० ६ ) = दुष्टोंका सामना करनेवाला, शत्रुघ्नोके समुत्पन्न तथा होकर उनका प्रतिकार करनेवाला,

१४ भगुराचलः इन्ता ( म० २२ ) = घातकोंका नाश करनेवाला,

१५ रक्षोहा ( म० १ ) = राक्षस, क्रूरकर्म करनेवालोंका नाश करनेवाला,

१६ मरुपादः अविषहस्व ( म० २ ) = मरिचमधकों, दूसरोंके शीवनोंपर अपनी पुरी करनेवालोंको दशमो,

१७ अर्चिषा पातुपानान् उपस्पृश ( म० २ ) = अपन तेजसे दूसरोंको पातना देनवालोंका नाश कर,

१८ दिया नक्त रिषा पातु ( म० १ ) = दिन रात्र घातकों से मन्त्रनोंकी रक्षा कर,

१९ अम्भैः यासुषानान् सधेहि (म० ३) = इधियाँ से दुष्टोंको दण्ड दे ।

इस दृग्से इस सूक्तमें दुष्टोंका नाश कौन करे इस विषयमें कहा है । दुष्टोंका नाश करनेवाला घानी, घान्ध, सम बुद्धि रखनवाला, गमीर, विचारवान् जनताका हित करनेवाला, पवित्र विचारवाला ऐसा सुयोग्य पुरुष होना चाहिये । हरएक मनुष्य यह पवित्र कार्य कर नहीं सकता । जिससे कभी अन्याय होनेकी समाधान नहीं होती, ऐसे सन्धन के आधीन यह अधिकार होना चाहिये । पाठक स्मरण रखें कि जब कभी न्यायाधीश अथवा दण्डविधान करनेके कार्य के लिय किसी मनुष्य को निपुक्त करना हो, तो उस स्थान के लिये इन गुणोंसे युक्त पुरुष निपुक्त किया जाव । और इन गुणोंस युक्त मनुष्य ही उस स्थान पर आकर कार्य करे । इस दृष्टीसे इस सूक्त के मन्त्र बड़े उपयोगी हैं । इस सार्वत्रिक पुरुषसे कभी अन्याय नहीं होगा, जो योग्य हागा, वही कार्य वह करगा, और सब मनुष्योंका इसक कार्य से सतोष होगा ।

इन दुष्टोंको जो दण्ड देना याग्य है वह दण्डोंक विविध प्रकार भी इस सूक्तमें लिखे हैं, जो इन मन्त्रोंमें स्पष्ट लिखे हैं, तथापि सुबोधता के लिये वर्णन पदां करते हैं—

### दण्डका विधान ।

इस समयतक जो विवरण किया उससे दुष्टोंके लक्षण और दुष्टोंका दण्ड देनेवालों के लक्षण ज्ञात हुए । दुष्टोंको दण्ड देनेवालोंके लक्षणोंमें भी अन्तिम कुछ लक्षण ऐसे हैं कि जिनसे दण्डविधान का भी पता चल सकता है । अब इसी दण्डविधान का अधिक विचार करते हैं—

१ रक्षो-हा = इस शब्दस राक्षसोंको 'बध' दण्ड योग्य है यह सिद्ध हाता है । 'रन्' चातुका दूसरा अर्थ 'गति' है । यह अर्थ लिया जाव ता राक्षसों का अपन स्थान से मगादना अर्थात् 'दशस निकाल दना' यह अर्थ हागा । 'रक्षस्' ( रक्षन्ति यस्मात् हति रक्षः ) शब्दका अर्थ जिसस सुरक्षित रहनेकी आवश्यकता हाती है, जिसस जनता का बचाव किया जाता है । इस दुष्टोंको ऐसे स्थानमें रखना और उनपर एसा पहरा रखना कि य दुष्ट दुष्टोंका यासनान दे सकें, आदि बाध इसस प्राप्त होता है । ( म० १ )

२ अपोवष्टः = सोहेकी दाढ़े । इस यन्त्रमें दुष्टको रख कर उसका नाश करना । ऊपरसे और नापेस कील आकर दुष्टके शरीर को काटते हैं । ( म० २ )

३ प्रन्धादः अपिपत्स्व = दुष्टोंके मांस पर अपन शरीर की पुष्टी कानवालों को बंद करके रख, केदमें रख, (स्व मांस्व ) ऐसा खाद्य पदार्थ अपन मुखमें पद रवा खाता है, उस प्रकार उन दुष्टोंको रख । ( म० २ )

४ अघर पर च दष्टो उपवेहि=दोनों प्रकारक कनिष्ठ और अष्ट द्युको बचनी दाढ़ोंमें बंद रख । अर्थात् उसको हथर सपर हिलनेका प्रतिबंध कर । ( म० ३ )

५ यातुधानान् जमैः सवेहि=यातना देनेवालोंपर अबड़ोंके समान झल्लोंक साथ चढ़ाई कर । झल्लासे उनका नाश कर । ( म० ३ )

६ यातुधानस्य त्वच मिन्धि=यातना देनेवाले दुष्टोंकी चमड़ी छिन्न बिच्छिन्न कर । अर्थात् उनको इतना ताड़नकर कि उनकी चमड़ी फट जाय । ( म० ४ )

७ हिंस्र-अशानिः एन हरसा हन्तु=हिंसक बिल्ली इनका बच बेमते करे । अर्थात् विष्णुके प्रयोगसे इन दुष्टोंका बच किया जाय । ( म० ४ )

८ पर्वाणि प्रभृणीहि=दुष्टके सोढ़ोंको काट दो । ( म० ४ )

९ प्रविष्णुः कृष्यात् एन विचिनोतु=मांसभक्षक सिंह व्याघ्र आदि प्राणियों द्वारा दुष्टोंके शरीरोंका बच किया जावे । ( म० ४ )

१० यातुधान विष्य=यातना देनेवाले दुष्टको बाण आदिसे बेच डाल । ( म० ५ )  
हृदये विष्य=हृदयपर बाण मार । ( म० ५ )

११ एषां पाहून् प्रतिमिधि = दुष्टोंके पाहु काट दे । ( म० ५ )

१२ यातुधानान् ऋष्टिभिः स्पृशुहि=यातना देनेवालोंका झल्लोंसे धक्का कर । ( म० ७ )

१३ यातुधानान् निजहि = दूसरोंका यातना देनेवालोंका नाश कर । ( आमादः एनीः अदन्तु ) दूसरोंका मांस खाकर अपनी पुष्टी करनेवालोंको भीच का जाय । ( म० ७ )

१४ रक्षा प्रति शृणीहि = राक्षसोंका नाश कर । ( म० १० )

१५ पृथीः हरसा शृणीहि=दुष्टोंकी पसलियां बेगसे तोड़ द । ( यातुधानस्य मूल पृथ्वी ) यातना देनेवाले दुष्टका जड़ काट डाल । ( म० १० )

१६ यातुधान निपुशधि = यातना देनेवालोंका कारागृहमें रख । ( म० ११ )

१७ यातुधानान् हृदये विष्य=यातना देनेवाले दुष्टोंका हृदयमें बेच कर । ( म० १२ )

१८ असुतृषः पराजणीहि = दूसरोंके प्राणोंका लेकर अपनी वृष्टी करनेवाले दुष्टोंका नाश कर । उनका दूर करके उनका नाश कर । ( म० १३ )

१९ मर्मन् प्राप्स्य-तु = दुष्टोंके मर्म स्थान काट जाय । ( म० १४ )

२० यातुधाना प्रसिति एतु = दुष्ट बचनस्थान-कारागार-को प्राप्त जावे । अर्थात् दुष्टोंका कारागृहमें रखा जाय । ( म० १४ )

२१ तेषां वीपाणि पृथ्वी = दुष्टोंके तिर काट जाय । ( म० १५ )

२२ पातुषानः उल्लियायाः सप्तस्सरीणि पयः माशीत् = दुष्टको गायका दूध एक वर्षतक पीनेको न दिया जाये। एक वर्ष गायका दूध पीनेको न देना यह एक दण्ड है। आजकल तो जो मैसकाही दूध पात हैं, उनको तो यही दण्ड स्वभावतः हो रहा है, क्योंकि गायका दूध बहुतोंको प्राप्तही नहीं होता है। आजकल कैदियोंको मैसकाही दूध दिया जायगा तो उनको कुछ भी पुरा नहीं प्रतीत होगा। परंतु वैदिक कालमें गायका दूध पीनेके लिये न मिलनामी एक दण्ड माना जाता था। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि कारागृहवासी कैदियोंको भी गायका दूध पीनेको प्रतिदिन मिलता होगा और जो विशेष प्रकारके दुष्ट लोग होंग, उनकोही वर्षभरतक गायका दूध न देनेका दण्ड होता होगा। इसी लिय आगे इसी मंत्रमें कहा है कि— ( यतमः पीयूष तिसृप्सात् त मर्मणि विध्य )—इन दुष्टोंको गायका दूध न पीनेका दण्ड होनेपर भी जो दुष्ट घोरी करके या अन्य युक्तिसे गायका दूध पीनेकी चष्टा करेगा, उसके मर्म स्थानको बेध डाल । इससे स्पष्ट होता है कि विशेष प्रकारके घोर अत्याचारी कैदियोंको ही गायका दूध न पीनेका दण्ड होता था, और एत खेती यदि गायका दूध नियम तोड़कर पीयेंगे, तो उनको कठोर दण्ड दिया जाता था। ( म० १७ ) इस दण्डकी दृष्टीसे इस मंत्रका विचार पाठक अवश्य करें।

२३ अघशास दृष्टु = पापीको खलासा जाये। यह वधदण्ड है। वहां बलाकर वध करना है। ( म० १९ ) यही माव ( पूर्वत न्योप ) बिनाश करनेवालेका वध कर, नाश कर अथवा खलाकर नाश कर, इस आदेशमें है।

२४ रक्षन्मः प्रतिजहि=दुष्ट राष्ट्रोंका नाश कर। ( म० २३ )

२५ दुर्हाद अग्निदासन्त विनिक्ष्व = दुष्ट हृदयवाले और दूसरोंको दास बना नेवाले दुष्ट का नाश कर। ( म० २५ )

इस प्रकार विविध प्रकारके दण्डोंका विधान इस सूक्तमें है। विविध प्रकारके अपराधोंके प्रमाणसे य विविध दंड देना योग्य ही है। जो श्रान्ती और समयस्थ विद्वान न्यायाधीश होगा वही अपराधोंकी न्यूनाधिकताके अनुसार न्यूनाधिक दण्ड दे सकता है। किस अपराध को कौनसा दण्ड देना योग्य है, इसका विचार करनेवाला श्रान्त और गोमीर स्वभाववाला न्यायाधीश जाना योग्य है, यह विचार इसी विवरणमें इसके पूर्व हो चुका है, उसका हेतु इस पाठकोंके मनमें अब आगया होगा।

इस दृष्टीसे पाठक इस सूक्तका विचार करें और न्यायप्रमाका कार्य करनेकी रीति जानें।

# शत्रुदमन ।

[ ४ ]

( श्रापिः— चातनः । देवता—इन्द्रासोमौ )

इन्द्रासोमा त्वर्पतं रक्षं उञ्जतु न्यर्पितं वृषणा तमोवृषः ।  
 परां क्षुणीतमवितो न्योषितं इतं नृदेषां नि शिञ्जीतमत्त्रिभ्यः ॥ १ ॥  
 इन्द्रासोमा समुषश्चसमुष्यं च त्वर्पयस्तु चूर्वाभिर्मां इव ।  
 ब्रह्मद्विषे ऋष्यादे घोरचक्षसे द्वेषो घचमनवाय किमीदिने ॥ २ ॥

अर्थ— हे ( वृषणा ) बलवान् इन्द्र और सोम ! ( रक्षः तपत ) राजाओं को ताप दो, ( उञ्जत ) उनको मारो । ( तमो-वृषः निअर्पयत ) अघकार बहानेवालोंको नीचे हटा दो । ( अ-वितः परा क्षुणीत ) अन्तःकरण रहित दुष्टोंको नाश करो, ( वि ओषत, इत, ) उनका नाश करो, उनका वध करो । उनको ( नृदेषां ) इकाल दो, ( अत्त्रिणः निशिञ्जीत ) दूसरोंको आनेवालोंको नियल करो ॥ १ ॥

हे इन्द्र और सोम ! ( अग्निमान् चक्ष इव ) आगपर चले हुए हाण्डोंके समान ( अघशस अघ अभि ) पाप करनेवाले पापीके सन्मुख ( तपुः स पयस्तु ) ताप-दुःख-देता रहे । ( ब्रह्मद्विषे ऋष्यादे ) शानक शत्रु, मांसभक्षक, ( घोरचक्षसे किमीदिने ) ब्रूहस्पिबाल दुष्टके साथ ( अनवाय द्वेषः घच ) निरन्तर द्वेषका धारण कीजिय ॥ २ ॥

भाषार्थ—दुष्टोंको दण्ड दो, उनको ताड़न करो, अज्ञान फैलानेवालोंको घूर हटा दो दुष्ट हृदयवालों का समाज से बाहर करो, उनका वध भी करो, अथवा उनको बाहर इकाल दो । जो दूसरोंको ध्वाते हैं उनको निर्बल बनाओ ॥ १ ॥

जो सदा पाप करता है उसको कठिन दण्ड दे । शान का नाश करने वाले, मांसभक्षक ब्रू और हिंसकों का दूष करो ॥ २ ॥

इन्द्रासोमा दुष्कृतो धृमे अन्तरनारम्भणे तमसि प्र विध्यतम् ।

यतो नैपो पुनरेकमनोदयत् सध्व धीमस्तु सहसे मन्युमष्टवः ॥ ३ ॥

इन्द्रासोमा धृतेयस दिवो यध स पृथिव्या अघशसाय तर्हणम् ।

उत् तक्षत् स्वर्षे पर्वतेभ्यो येन रसो वावृधान निजूर्ध्वः ॥ ४ ॥

इन्द्रासोमा धृतेयस दिवस्पर्षधितप्रेमिर्भुवमश्मन्मभिः ।

सधुर्वधमिरजरेभिरत्त्रिणो नि पशानि विध्यत यन्तु निस्वरम् ॥ ५ ॥

अर्थ—हे इन्द्र और सोम ! ( अनारम्भणे वध तमसि अन्तः ) अगाध आवरक अन्धकारके बीचमें ( दुष्कृतः प्रविध्यत ) दुष्कर्म करनेवालोंको बध डालो, ( यतः एषा एकः वन ) जिससे इनमेंसे एकभी ( न उत्त अपत् ) न उठ करे । इस प्रकारका ( वा म-युमत् तत् शवः ) आपका उत्साहयुक्त बध पल ( सहसे अस्तु ) शत्रुघ्नमनके लिये होवे ॥ ३ ॥

हे इन्द्र और सोम ! आप दोनों ( अघ-शसाय ) पाप करनेवाले दुष्ट मनुष्य के लिये ( दिवः पृथिव्याः ) शुलोक और पृथ्वी लोकके बीचमें ( तर्हण वध सधर्तयत् ) बिनाशक वध करनेवाले शस्त्रको प्रवृत्त करो । ( पर्वतेभ्यः स्वर्ष उत् तक्षत् ) पर्वतमिवासी शत्रुओंके लिये अति तीक्ष्ण शस्त्र सिद्ध रखो । ( येन वावृधान रक्षः निजूर्ध्वः ) जिससे पहले वाल राक्षसोंका तुम नाश करो ॥ ४ ॥

हे इन्द्र और सोम ! ( युध ) तुम दोनों ( अग्निमेभिः अश्मन्मभिः ) आग्निमें तपे और कौलादसे पने हुए ( अजरेभिः तधुर्वधेभिः ) क्षीण न होने वाले और सताप देकर वध करनेवाले शस्त्रोंसे ( दिवः अत्त्रिणः परिवर्तयत् ) शुलोकसे भोगी लोगोंको हटा दो और ( पशानि नि विध्यत ) कठिण स्याममें उनकी बध करो, जिससे वे ( निस्वर यन्तु ) शब्द न करते हुए भाग जाय ॥ ५ ॥

भावार्थ— गाढ़ अन्धकारमें रहनेवाले, दुष्कर्मियोंको बध डालो । ऐसी स्थिति करो कि इनमेंसे एक भी फिर बध देनेके लिये न बच जावे । तुम्हारा उत्साहयुक्त पल अपने बिजय के लिये ही लग जावे ॥ ३ ॥

पाप करनेवाले दुष्टकी निन्दा करो और बध करो । उनकी दूर करनेके लिये अपने शस्त्र सिद्ध रखो जिससे तुम उनका नाश कर सकोगे ॥ ४ ॥

इन्द्रासोमा परि वा भूतु विश्वं इयं मतिः कस्याश्चैव वाजिना ।  
 यां वा होत्रा परिहितोमि मेधयेमा ब्रह्माणि नृपती इव जिन्वतम् ॥ ६ ॥  
 प्रति स्मरेयां तुजयन्निरेवैतं द्रुहो रक्षसो भङ्गुरावतः ।  
 इन्द्रासोमा बुष्कृते मा सुगं भूय यो मां कदा भिदमिदासति द्रुहुः ॥ ७ ॥  
 यो मा पाकेन मनसा चरन्तमभिषष्टे अमृतैर्मिर्वचोभिः ।  
 आप इव काशिना सगृभीता असन्तस्त्वासत इन्द्र वृक्ता ॥ ८ ॥

अर्थ- हे इन्द्र और सोम ! ( कदा याजिना अम्बा इव ) जैसे बर्मपक्षी पलवान घोड़ोंसे सपचित होती है वैसेही (इय मतिः) यह हमारी बुद्धि (वां परि भूतु) तुमको सय प्रकार प्राप्त होवे । (यां होत्रां वां मेधया परिहितो मि) इस आह्वान करनेवाली याणीको अपनी बुद्धिके साथ तुम्हारे प्रति प्रेरित करता हूँ, अतः तुम दोनों (नृपती इव) राजाओंके समान (ब्रह्माणि आ जिन्वत) इन स्तुति वाक्योंको प्रेमसे स्वीकार करो ॥ ६ ॥

हे इन्द्र और सोम ! (तुजयन्निः पयैः प्रतिसारेयां) वेगवान् बाहनोंसे दुष्टोंके गतिका पीछा करो । (अगुरावतः द्रुहो रक्षसः इत) विनाशक और द्रोहशील राक्षसोंका नाश करो । (बुष्कृते सुगं मा भूय) उस बुष्कर्म करनेवालेको सुखमे घूमनेका अवकाश न हो । (या द्रुहुः कदाचित् मा भिदमिदासति) जो दुष्ट कभी मुझे कष्ट पहुँचायेगा ॥ ७ ॥

हे इन्द्र ! (पाकेन मनसा चरन्त मा) परिपक्व शुद्ध मनसे आचरण करनेवाले मुझको (या अमृतैः वचोभिः अभिषष्टे) जो असत्य वचनोंसे भिदकता है, (काशिना सगृभीताः आपः इव) सुह्रीद्वारा पकड़े जलके समान वह (असतः वपता) असत्य वचन बोलनेवाला (अ-सन् असु) न होनेके समान होवे ॥ ८ ॥

भावार्थ-अग्निमें तपा कर कौलादसे यनाये अतितीक्ष्ण और शत्रु का नाश करनेमें समर्थ शस्त्रोंसे अपने दुष्ट शत्रुओंको घेस डालो जिससे वे न गिरलाते हुए नाश को प्राप्त हों ॥ ५ ॥ तुम्हारे अन्दर यह विचार-शत्रुनाश करमका विचार स्थिर रहे जिससे तुम प्रशंसा को प्राप्त होंगे जैसे पन्दिज ना मे राजा लोक प्रशंसित होते हैं ॥ ६ ॥ यगवान् बाहनोंमे बैठकर शत्रुओं का पीछा करा । सब दुष्टोंका प्राप्त करके उनका नाश करो । दुष्ट बर्म करनेवाले तुम्हारे समाजमें सुखमें न घमण कर सकें । और किसीका कष्ट

ये पाकशंस विहरन्त एवैर्ये वा मूर्ध्न दूषयन्ति स्वधार्मिः ।

अहये वा तान् प्रददातु सोम आ वा दधातु निर्मैतरुपस्यै ॥ ९ ॥

यो नो रमु दिप्सति पित्वो अग्र अर्धानां गवां यस्तनूनाम् ।

रिपु स्तेन स्तेमकृद् दृष्टमैतु नि प हीयतां तुन्वात्र तना च ॥ १० ॥ ( ९ )

पर सो अस्तु तुन्वात्र तना च तिस्रः पृथिवीरघा अस्तु विश्वाः ।

प्रति छप्पतु यशो अस्य देवा यो मा दिवा दिप्सन्ति यश्च नक्तम् ॥ ११ ॥

अर्थ—( ये एवैः पाकशंस विहरन्त ) जो विशेष गति साधनोंसे परिपक्व बुद्धिवालेको विशेष प्रकारसे हराते हैं, ( य वा मूर्ध्न स्वधार्मिः दूषयन्ति ) जो अच्छे मनुष्यको अशोंसे दूषित करते हैं, ( सोमः वा तान् अहये प्रददातु ) सोम इन वुष्टोंको साँपके लिये साँप देवे अथवा ( निर्मैतः उपस्ये वा आदधातु ) बिनाशके समीप इनको पहुँचावे ॥ ९ ॥

हे अग्ने ! ( यः नः पितृभ्य रस दिप्सति ) जो हमारे अन्नके रसको बिगाड़ता है, ( यः अश्वानां गवां तनूनां ) जो घोड़ों गौओं और अन्य शरीरोंका नाश करता है, वह ( स्तमकृद् रिपुः स्तेनः ) चोरी करनेवाला शत्रुरूपी चोर ( दृष्टमैतु ) नाशको प्राप्त होवे । ( सा तन्वा तना च नि हीयतां ) यह शरीरसे और पुत्रादिसे हीन बने ॥ १० ॥

हे देवों ! ( यः मा दिवा ) जो सृष्ट दिनके समय ( यः च नक्तं दिप्सति ) और जो रात्रीके समय पीड़ा देता है, ( सा तन्वा तना च परः अस्तु ) वह अपने शरीरके साथ और पुत्रके साथ दूर रहे, ( विश्वाः तिस्रः पृथिवीः अपः अस्तु ) सप्त मीनों मूषिमागोंसे भींचे रह और ( अस्य यशः प्रति छप्पतु ) इसका यश सुख जाय ॥ ११ ॥

न पहुँचावे ॥ ७ ॥ शुद्ध मनसे कार्य करनेवालेको जो बिना कारण झूठ गालि पाँदेता है, वह असत्यवादी जीवित न रहनेवाला के समान बन जाये । ८ ॥

जो वुष्ट अपने अनेक साधनोंसे सबजनों को छूटते हैं, और अच्छे आदमियों के अशोंका बिगाड़ करते हैं, वे वध के लिये योग्य हैं ॥ ९ ॥

जो अन्नरसोंको बिगाड़ता है, मनुष्यों और पशुआ का घान करता है, चोरी करता है वह अपने घालपक्योंके साथ नाश को प्राप्त होवे ॥ १० ॥

जो वुष्ट दिन रात्र दूसराको पीड़ा देता है यह अपने घाल पक्यों के साथ नाशको प्राप्त होवे और उसका यश कम होय ॥ ११ ॥



सुविज्ञानं चिकित्सुषे जनाय सचासंश्च वर्चसी पस्पृषाते ।

स्योर्येत् सत्यं यंतरुज्जीयस्तदित् सोमोषति इन्त्यासत् ॥ १२ ॥

न वा उ सोमो वृजिनं हिनोति न क्षत्रियं मिथुया धारयन्तम् ।

हन्ति रक्षो इन्त्यासद् वदन्तमुमाधिन्द्रस् प्रसितो ज्ञयात् ॥ १३ ॥

यदि वाहमनंतदेवो अस्मि मोघं वा देवो अप्यूहे अग्ने ।

किमस्मभ्यं जातवेदो हृणीषे द्रोषवाचस्ते निष्प्रय संचन्ताम् ॥ १४ ॥

अर्थ—( चिकित्सुषे जनाय सुविज्ञान ) ज्ञान प्राप्त करनेवाले मनुष्यके लिये यह उत्तम ज्ञान कहा जाता है कि, ( सत् च असत् च ) सत्य और असत्य ( वचसी पस्पृषाते ) भाषणोंमें स्पर्शा रहती है । ( तयोः यत् सत्य ) उनमें जो सत्य है और ( यतरत् रुज्जीयः ) जो सरल है, ( तत् इत् सोमः अषति ) उसकी सोम रक्षा करता है और ( असत् हन्ति ) असत्य का विनाश करता है ॥ १२ ॥ ( सोमः वृजिनं न वा उ हिनोति ) सोम पापको कभी नहीं सहाय करता, ( मिथुया धारयन्त क्षत्रियं न ) मिथ्या व्यवहार करनेवाले क्षत्रियको कभी नहीं सहाय करता । ( रक्षः हन्ति ) वह राक्षसोंको मारता है, ( असत् वदन्त इन्ति ) असत्य बोलनेवालेको मारता है, ये दोनों ( इन्द्रस्य प्रसितो ज्ञयाते ) इन्द्रके वचनमें रहते हैं ॥ १३ ॥

( यदि वा अहं अमृतदेवः अस्मि ) यदि मैं असत्यका उपासक बनूँ, ( अपि वा देवान् मोघ ऊहे ) अथवा द्रव्योंकी व्यर्थ उपासना करूँ, तोही मैं ( जातवेदः अस्मि ) जातवेद अग्ने ! ( अस्मभ्यं हृणीषे किं ) हमारे ऊपर क्रोध करोगे क्या ! ( द्रोषवाचः ते निष्प्रय संचन्ताम् ) द्रोहका भाषण करने वाले तो विनाशको प्राप्त होंगे ॥ १४ ॥

भावार्थ—मैं सब लोगोंका यह सत्य ज्ञान कहा जाता है कि सत्य और असत्यकी स्पर्शा इस जगत् में चल रही है । जो सत्य और जो सीधा है उसकी रक्षा परमेश्वर करता है और जो असत्य है उसका नाश करता है ॥ १२ ॥

जो पाप करता है, मिथ्या व्यवहार करता है, असत्य भाषण करता है और धातपात करता है उनका वचनमें डालना चाहिये अथवा उनका पक्ष करना चाहिये । १३ ॥

यदि हममें असत्य कहा अथवा द्रव्योंकी पूजा कपटस की, तो हमारी अपागति होगी । मैं द्राहका भाषण करनेवाले नाशको प्राप्त होंगे ॥ १४ ॥

अथा मुरीय यदि यातुधानो अस्मि यदि वायुस्तप पूरुपस्य ।  
अथा स धीरेर्दशमिर्वि यूया यो मा मोघं यातुधानेस्याह ॥ १५ ॥  
यो मायातु यातुधानेस्याह यो वा रक्षाः शुचिरस्मीत्याह ।  
इन्द्रस्तं हन्तु महता वधेन विश्वस्य अन्तोर्धमस्यदीष्ट ॥ १६ ॥  
प्र या जिगाति खगलेव नक्रम्य द्रुहस्तन्वीं गृहमाना ।  
वधमनन्तमव सा पदीष्ट प्रायाणो मन्तु रक्षस उपन्दैः ॥ १७ ॥

अर्थ—(यदि यातुधानः अस्मि) यदि मैं पीडा देनेवाला हूँ (यदि वा पूरुपस्य आयुः तप) और यदि मैं किसी मनुष्यकी आयुको ताप देऊँ तो (अथ मुरीय) आजही मर जाऊँ । (अथा) और (यः मा मोघं यातुधान इति आह) जो मुझे व्यर्थ दुष्ट करके कहता है, (सः दशमिः धीरेः वि यूयाः) वह वसों धीरोंसे विद्युत्त हो जाय ॥ १५ ॥

(यः मा अ-यातु यातुधान इति आह) जो मुझ पातना न देनेवालेको दुष्ट करके कहता है, (यः वा) और जो (रक्षाः) स्वयं राक्षस होते हुए भी (शुचिः अस्मि इति आह) मैं शुद्ध हूँ ऐसा कहता है । (इन्द्रः त महता वधेन हन्तु) इन्द्र उसको बड़े बधपूर्णसे मारे । और वह (विश्वस्य अन्तोः अधमः पदीष्ट) सप्त प्राणियोंसे नीचे गिर जावे ॥ १६ ॥

(या मवत स्वर्गला इव) जो रात्रिके समय उल्लुनीके समान (तन्ध गृहमाना) अपने दारीरको छिपाती हुई (प्रजिगाति) जाती है और (द्रुहः अपजिगाति) द्रोह करके मटकती है, (सा अनन्त वध पदीष्ट) वह अगाध गहमें गिरपड़े और (प्रायाणः रक्षसः उपन्दैः मन्तु) पत्थर राक्षसोंको शब्दोंके साथ मारे ॥ १७ ॥

भावार्थ—यदि मैंने किसीका पीडा दी हो अथवा किसी क स्वास्थ्यमें बिगाड़ किया हो, तो मेरी मृत्यु हो जावे । परन्तु मैं ऐसा कभी नहीं किया है तथापि जो मुझे दुष्ट करके कहना है उसका वसों प्राण दूर हों ॥ १५ ॥

मैं शुद्धाचार होत हुए मुझ दुष्ट करके कह और जा बुराचारी स्वयं दुष्ट होते हुए अपने आपको पवित्र कहना रहे, उसका वध होये और वह सप्तसे अधोगतिको प्राप्त होय ॥ १६ ॥

जो उल्लूक समान रात्रिके समय छिपाछिपकर दुष्टभावसे संचार करती है वह गहमें पड़े और पत्थरोंसे उसका वध किया जाये ॥ १७ ॥

वि तिष्ठन् मरुता विह्वलन्त्यतः शृमायत रक्षसः सं पिनष्टन ।  
 धयो ये मृत्वा पश्यन्ति नक्तमिमे वा रिपा दधिरे देव अश्वरे ॥ १८ ॥  
 प्र वत्स्य दिवोऽमानमिन्द्र सोमशित मघधन्स शिशाधि ।  
 प्राक्तो अपाक्तो अशरादुदक्तोऽभि अहि रससः पर्यतेन ॥ १९ ॥  
 एत उ स्ये पतयन्ति श्रयावत् इन्द्र दिप्सन्ति दिप्सवोदाम्यम् ।  
 शिशीते शक्रः पिशुनभ्यो वध नून सृजदशनि यातुमङ्गयः ॥ २० ॥ (१०)

अर्थ-हे (मरुतः) मरुतो! ( बिष्णु वि तिष्ठन् ) प्रजाओंमें बिशेष प्रकारसे  
 डहरो । ( इच्छत ) अपना कार्य करनेकी इच्छा करो, ( रक्षसः शृमायत )  
 राक्षसोंको एकटो और उनको ( सपिनष्टन ) पीस डालो । ( ये धयोः मृत्वा  
 जो पक्षियोंके समान होकर ( नक्तमिः पतयन्ति ) रात्रियोंमें घूमते हैं,  
 ( ये वा ) अथवा जो ( देवे अश्वरे रिपा दधिरे ) यज्ञ देवके विषयमें बि  
 नाशक भाव धारण करते हैं ॥ १८ ॥

हे ( मघधन् इन्द्र ) धनवान् इन्द्र ! ( दिवः अहमान प्रवर्तय ) सुष्ठोकसे  
 अहमात्मको चला और ( सोमशित स शिशाधि ) सोमद्वारा तीक्ष्ण किये  
 हुए शस्त्रको नियमसे प्ररित कर । ( पर्यतेन ) पर्यतात्मसे ( प्राक्तः अपाक्तः  
 अशरात् उदक्तः रक्षसः ) सामनेसे पीछल, नीचेसे और ऊपरसे राक्षसों  
 को ( अभिजहि ) बिनाश कर ॥ १९ ॥

( एते उ स्य द्वय-यातवः ) ये वे कुत्तोंके समान यताव करनेवाले कुष्ट  
 ( पतयन्ति ) हमला चढ़ाने हैं, ( दिप्सयः अदाम्य इन्द्र दिप्सन्ति ) हिंसक  
 शत्रु न दमनेवाले इन्द्रको सताते हैं । ( शक्रः पिशुनेभ्यः वध शिशीते )  
 इन्द्र इन हीन कुत्तोंको वधवण्ड दगा है । ( यातुमङ्गयः अशनि नून सृजन् )  
 यातना देनेवालोंके लिये बिशुन्को अजता है ॥ २० ॥

भाषार्थ-प्रजाजनोंमें दुश्मतासे पहारा करो, कुष्ठका डूबकर निकासनेकी  
 इच्छा करो, कुष्ठोंका एकटो, उनको पीस डालो, जो कुष्ट राष्ट्रीक समय  
 सवार परत हैं और ईश्वर तथा यज्ञ के विषय में घुरा भाव धारण करत  
 हैं, उनका नाश किया जावे ॥ १८ ॥

अपन तीक्ष्ण शस्त्रास्त्रोंसे कुष्ठोंको सय ओर से मारो ॥ १९ ॥

जो कुत्ता के समान कुष्ट है, जो दूसरों की हिंसा करते हैं, उनका वध  
 और नाश शस्त्रास्त्रोंसे किया जाय ॥ २० ॥

इन्द्रो यातुनाममरत् पराशरो हविर्मयीनामम्प्राविवासताम् ।

अमीदुं शक्रः परशुर्यया धनं पात्रैव मिन्दन्तस्त एतु रक्षसः ॥ २१ ॥

उलूकपातु शुशुलूकपातु जहि श्वयातुमुत् कार्कपातुम् ।

सुपर्णयातुमुत् गृध्रयातुं इषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र ॥ २२ ॥

मा नो रक्षो अभि नद् यातुमावदपोच्छन्तु मिथुना ये किमीदिनः ।

पृथिवी नः पार्थिवात्पात्वहेतो सरिषं दिव्यात् पात्वस्मान् ॥ २३ ॥

अर्थ-(इन्द्रः) इन्द्र(हविर्मयीनां) हविषोंक विनाशक (अभि आविवासतां) समीप स्थित ( यातुमां ) यातना देनेवाले दुष्टोंको ( परा-शरः अमरत् ) दूर इटाकर नाश करनेवाला होता है । ( पथा धन परशुः ) जैसे धनको कुलहाडा काटता है, तथा जैसे ( पात्रा इव ) मिट्टीक धर्मनोंको तोड़ा जाता है उस प्रकार ( शक्रः ) समर्थ इन्द्र ( सतः रक्षसः मिन्दन् ) उपस्थित राक्षसोंको तोड़ता हुआ ( इन् उ अभि एतु ) आगे बढ़े ॥ २१ ॥

हे इन्द्र ! ( कौकपातु ) खिडियोंक समान व्यवहार करनेवाले अर्थात् कामी, ( शुशुलूकपातु ) भेड़ियेके समान वर्ताव करनेवाले अर्थात् क्रोधी, ( गृध्रयातु ) गीधके समान वर्ताव करनेवाले अर्थात् लोभी, ( उलूकपातु ) उलूके समान वर्ताव करनेवाले अर्थात् मोहित, ( सुपर्णयातु ) गरुडक समान वर्ताव करनेवाले अर्थात् घमडी, ( उत श्वयातु ) और कुत्तेक समान आपसमें झगडा करनेवाले अर्थात् मत्सरी लोगोंका ( जहि ) मार और ( इषदा इव ) जैसे पत्थरोंसे पक्षीको मारते हैं वैसे ( रक्षः प्रमृण ) राक्षसों का नाश कर ॥ २२ ॥

( यातुमावत् रक्षः नः मा अभिमद् ) यातना देनेवाला राक्षस हमतक न आवे । ( य किमीदिनः ) जो मूखे हैं और जा ( मिथुनाः अप उच्छन्तु ) घातक हैं वे दूर भाग जावें । ( पार्थिवात् अहसः ) पृथिवी सबधी पापसे ( पृथिवी नः पातु ) पृथिवी हमारी रक्षा करे । तथा ( दिव्यात् अहसः ) सुलोक सबधी पापसे ( अन्तरिक्ष अस्मान् पातु ) अन्तरिक्ष हमें पचावे ॥ २३ ॥

भावार्थ-यक्षोंका नाश करनेवाले, इधनसामग्री पिगाइनवाले दूसरोंको सतानेवाले दुष्टोंको इटावो और जैसे पशुसे धन का नाश किया जाता है वैसे उनका नाश किया जावे ॥ २१ ॥

इन्द्रं ब्रुहि पुमांसं यातुधानमुत स्त्रियं मायया शार्शदानाम् ।  
 विघ्नीवासो मूर्देवा श्रदन्तु मा ते रक्षन्त्सूर्यमुषरन्तम् ॥ २४ ॥  
 प्रति चक्षु वि चक्ष्वेन्द्रश्च सोम जागृतम् ।  
 रघोभ्यो वषमस्पतमृशनिं यातुमद्रघः ॥ २५ ॥ ( ११ )

॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

अर्थ—हे इन्द्र ! (यातुधान पुमांस) यातना देनेवाले पुरुषको तथा (मायया शाशदानां स्त्रिय) कपटसे व्यवहार करनेवाली स्त्रीको (जहि) नाश कर । (मूर्देवाः विघ्नीवासः श्रदन्तु) मूर्खोंके उपासक गर्वन रहित होकर नाश को प्राप्त हों । (ते उषरन्त सूर्य मा रक्षन्) वे ऊपर उदयको प्राप्त होने वाले सूर्यको न देख सकें ॥ २४ ॥

हे सोम ! (इन्द्रः प्रतिचक्षु) इन्द्र निरीक्षण करे, (विचक्ष्व) विशेष प्रकारसे देखे । आप दोनों (जागृत) जाग्रत रहो । (रक्षोभ्यः यातुमद्रघः) राक्षस और पीडक इन सबको (वष अशनिं) मृत्पुवण्ड और वज्रवण्ड (अव्यत) अर्पण करो ॥ २५ ॥

भावार्थ—कामी, कोधी, लोभी, अज्ञानी, घमखी और मत्सरी ये छः प्रकार के दुष्ट हैं, इनका नाश कर ॥ २२ ॥

यातना देनेवाले हमसे दूर हों, सदा मूर्ख रहनेके समान व्यवहार करनेवाले दुष्ट दूर भाग जायें । पृथ्वी और स्वर्ग सबच से होनेवाले सब पापोंसे हम बच जाय ॥ २३ ॥

यातना देनेवाला पुरुष हो या स्त्री हो, उसका नाश हो । मूर्खोंके अनुपायियोंकी गर्वम काटी जाय । ये दुष्ट सूर्योदय होने तक भी जीवित न रहें ॥ २४ ॥

निरीक्षण करो और सबका अवलोकन करो, आगते रहो । जो राक्षस अर्थात् यातना करनेवाले और दूसरोंका सतानेवाले हों, उसको वष का वण्ड दिया जावे ॥ २५ ॥

## दुष्टोंका दमन

दुष्ट मनुष्योंका दमन करनेका विषय इस सूक्तमें है। यही विषय पूर्वसूक्तमें भी था। 'वातन' श्रपिके सूक्तोंमें प्रायः ऐसे ही शत्रुदमनके विषय हुआ करते हैं। 'वातन' शब्दका ही अर्थ 'हटाना, हटा देना, निकाल देना, हार करना, नाश करना' है। यह श्रपिके नाम का अर्थ ही इनके नामपर मिलनेवाले सूक्तोंके तात्पर्यमें दिखाई देता है, यह बात विशेष रीतिसे विचार करने योग्य है। शत्रुको हटानेका उपदेश करनेवाले सूक्तोंके श्रपिके नाम का भी 'शत्रुको हटाना' ही अर्थ है, ऐसे अर्थवाला यही एक सूक्त और यही श्रपि है ऐसा नहीं है। कई अन्य सूक्तोंमें यह बात ऐसीही दिखाई देती है। अग्नेहमे ( अ० १० सू० १८६ का ) 'उलो वातायनः' श्रपि है और इसमें शत्रु बाधु जीवन देनेवाला है ऐसा विषय आया है। वातायन का अर्थ खिडकी है और खिडकी का सषष शत्रु हवा चरमें आनेके साथ है। इस प्रकार कई श्रपियोंके नाम और उनके सूक्तोंके आशय परस्पर सञ्चित हैं यह बात विशेष मनन करने योग्य है। अस्तु। इस सूक्तमें दुष्टोंका दमन करनेका उपदेश है। अतः प्रथम दुष्टोंके कुछ लक्षण पहा देखत हैं। पूर्व सूक्त के विवरण के प्रसंगमें भिन लक्षणोंका विचार किया है, उनको यहाँ नहीं दुहरावेंगे। इस सूक्तमें जो नये लक्षण आगये हैं वेही यहाँ देखेंगे—

## दुष्टोंके लक्षण ।

पूर्वके सूक्तमें 'रक्षः, राक्षसः, भगुराश्वः, क्रम्पात्, किमीदिन् वातुधान, मूरदेव' ये शब्द दुष्ट वाचक आगये हैं, इसलिये पाठक इनके अर्थ यहाँ देखें। जो लक्षण पूर्व सूक्तमें नहीं दिये और इस सूक्तमें विशेष रूपसे कहे हैं, उनका ही विचार यहाँ अब करते हैं—

१ तमोवृष्-अज्ञानका बढानेवाले, अज्ञान फैलानेवाले, ज्ञानप्रसारका प्रतिषेध करने वाले, ज्ञान देनेवालोंको कष्ट देनेवाले अथवा उनको रुकावट करनेवाले, ( मं० १ )

२ अचित्त-भिनको चित्त नहीं है, अर्थात् जिसका अन्तःकरण उत्तम नहीं है, श्रेष्ठ मनुष्यके चित्तके समान जिसका चित्त नहीं, किंवा जिसके मनमें दृष्टताक विचार है। ( Heartless ) ( मं० १ ) पूर्व सूक्तमें इसीका माध बतानेवाला 'बुद्धाव' शब्द है।

३ अत्रिन्-( अत्रि इति ) जो दूसरोंकी जान लकर अपनी पुष्टी करता है, अपन स्वार्थके लिये जो दूसरोंके गलोंपर शूरी बसाता है। ( मं० १ )

४ अघ अघवासाः-पाप कर्मक अिये जिसका नाम विरूपात हुआ है, जिसके पाप कर्मके कारण ही जिसको सब लोग जानते हैं । ( म० २ )

५ मत्तद्विप्-ज्ञानका रूप करनेवाला, ज्ञानका प्रतिरूप करनेवाला, ज्ञान प्रसारने रुद्रावटे ठरपन करनेवाला । ( म० २ ) तमोवृष्ट् ( म० १ ) यह छन्द इसी अर्थका सूचक है ।

६ दुष्कृत्-दुष्कर्म करनेवाला पापी । ( म० ३ )

७ दुह्-द्राह करनेवाले, जो विश्वासघात करते हैं, जो कपटसे छत्रमार करते हैं, जो अत्याचारी हैं । ( म० ७ )

८ अमृतमिः यचोमिः अभिषष्टे- असत्य मापण करता है, असत्य बगही देकर दूसरोंको बध पड़वाता है । ( म० ८ )

९ असतः यन्ता ( म० ८ ), असत् यदन् ( म० १३ )- असत्य बचन बोलनेवाला ।

१० ये एवैः बि-हरन्ते- जा विविध साधनोंसे दूसरोंके घनादिकोंका विषय रीतिसे हरण करते हैं । ( म० ९ )

११ स्वधामिः अद्र वृषयति- जा अपनी शक्तियोंसे दूसरोंको वृषण देते हैं। जो अशोकेंद्रा मले मनुष्योंको वृषित करत हैं, घुरे मध प्रयोमसे सज्जनोंको बध पड़वाते हैं । ( म० ९ )

१२ स्तेनः, स्तेमकृत्- चोर और चोरी करनेवाला, अधवा चोरोंका समठन बनानेवाला बड़ा डाकू । ( म० १० )

१३ त्रिपुः- जा छत्रता करता है, छल कपट करनेवाला है । ( म० १० )

१४ मिथुया चारयन्- मिथ्या व्यवहार करनेवाला, मिथ्या मापको चारण करनेवाला । ( म० १३ )

१५ अमृतवेचः- असत्य का ठपासक, सदा असत्यविचार, असत्य मापण और असत्य आधार करनेवाला । ( म० १४ )

१६ देवान् मोघ ऊह ( यद्वाति )- जो देवोंको व्यर्थ सठाकर घूमता है, जो कपटसे दूरतामोक सस्वष करता है, जो स्वयं मक्तिहीन होता हुआ अपने स्वार्थ साधन के लिये दैत्योंके महोत्सव रचता है । ( म० १४ )

१७ द्रोहवाक् द्राहयुक्ता मापण करनेवाला, कठार मापण करनेवाला, दूसरोंको दुष्ट दनक लिये कठार मापण करनेवाला । ( म० १४ )

१८ रक्षः शुचिः अस्मि इति आह-जो स्वयं राक्षस होता हुआ अपने आपको छुड़ और पवित्र बताता है । ( म० १६ )

१९ अपातु पातुपान इत्याह-जो मलेको पुरा कहके पुकारता है । ( म० १६ )

२० तन्व गृह्णामा नक्त प्रजिगाति-छिपकर रात्रीके समय हमला करती है । ( म० १७ )

२१ विप्लुः-हिंसक, घातक, ( म० २० )

२२ पिशुनः-धुगली करनेवाला ( म० २० )

२३ इविर्मयिन्-इबिका नाश करनेवाला ( म० २१ )

२४ कौकयातुः-बिडियाके समान काम व्यवहार करनेवाला अर्थात् असत्य काम व्यवहारमें आसक्त, ( म० २२ )

२५ शुशुक्कयातुः-मेढियेके समान झूठा करनेवाला, झूठासे दूसरोंका नाश करनेवाला, महाझूठ,

२६ गृध्रयातुः-भीषके सहान दूसरोंके जीवन लेकर हस होनेवाला, लोभी, इसीको पूर्व सूक्तमें ' अस्तु-तृप् ' कहा है,

२७ सुपर्णयातुः-गरुडके समान ऊपरही ऊपर चर्मबसे व्यवहार करनेवाला, गर्बिष्ठ, धर्मही,

२८ उक्कयातुः-उक्कके समान दिशामीत बीसे व्यवहार करनेवाला अर्थात् महाभूट,

२९ अघातुः-दुष्टोंके समान आपसमें लड़नेवाला, स्वजातीयोंसे लड़ना और दूसरोंके सामने सांगूठ बाधन करना, ऐसे नीच स्वभाववाला, ( म० २२ )

३० मापया शाशदासः-कपटसे सब व्यवहार करनेवाला, कपटी छली । ( म२४ )  
इतने लक्षण दुष्टोंके हैं ऐसा इस सूक्तमें कहा है । पूर्व सूक्तमें २१ और इस सूक्तमें २९ लक्षण दुष्टोंके कहे हैं, दोनों सूक्तोंके मिलकर पचास लक्षण हुए हैं । इन पचास लक्षणोंसे दुष्टोंकी पहचान हो सकती है । ये दुष्टों और राक्षसोंके लक्षण हैं । इन लक्षणोंकी तुलना भीमझमझीताके ( अ० १५ में कहे ) आसुर सपत्तिके लक्षणोंके साथ करनेसे दुष्टोंका निश्चय करनेमें बड़ी सहायता हो सकती है । ये राक्षस कोई भिन्न योनीके प्राणी नहीं हैं, ये मानवजातीमें ही हुए स्वभावके की पुरुष हैं, यह बात यहां भूलना नहीं चाहिये । अतः इन राक्षसोंसे अपनी रक्षा करनेका तात्पर्य अपने समाज क



उनको ऐसे दबावमें रखें कि वे धुराई न कर सकें। सज्जनोंकी रक्षा करनेके लिये दुष्टोंपर इस रीतिसे दबाव रखना अत्यंत आवश्यक है, इसलिये ही कहा है कि—

इय मतिः विश्वताः परिभूतु । ( म० ६ )

“यह भावप्रस्था और सज्जनरक्षा करनेकी शक्ति मनुष्योंमें सर्वत्र, अर्थात् उन नगरोंके नागरिकोंमें स्थिर रहे।” कोई मनुष्य इसको न भूलें और—

वा मनुयुमतः शासः सहसे अस्तु । ( म० १ )

“तुम्हारा उत्साह प्रकट मत अपने विषय और शत्रुकी पराजयके लिये समर्पित हो।” शत्रु तो वेही लोग हैं कि जिनके लक्षण इस शक्तमें और दूर शक्तमें हुए। इसके साथ करे हैं। इन दुष्टोंको दूर करने और सज्जनोंकी रक्षा करनेके कार्यके लिये। बका बल समाना चाहिये। इसके करनेका उद्देश्य क्या है, इसका ज्ञान पाठकोंको स शक्तके मननसे ही हो सकता है। दुष्टोंके संचारके मार्ग बंद हों और सज्जनोंके मार्ग अधिक खुले हों। यह बात अनेक प्रयत्नोंसे साध्य करना चाहिये। हर एक मनुष्य अपने अपने कार्यक्षेत्रमें इस बातकी सिद्धताके लिये परम प्रयत्न करे। इस यत्न का स्वरूप यह है—

असत्यः वयता अ-सन् अस्तु । ( म० ८ )

“असत्य मापण करनेवाला अर्थात् दुष्ट मनुष्य (अ-सन्) न होनेके समान होवे।” होनेके समान होनेका अर्थ यही है कि वह दुष्ट मनुष्य या तो प्रतिबन्धमें रहे, कारा में रखा जावे, निग्राणीमें रहे, उसके दुष्टताके मार्ग उसके लिये खुले न रहें, क्रिया की ऐसी व्यवस्था की जावे कि वह अपनी दुष्टताके कर्म किसी प्रकार भी कर न सके। यहाँ तक को मनन किया है उसका स्वभाव इस मन्त्रमागसे पाठक हों और पि ठगाकर इस दुष्टोंक प्रभव विषयक बोध प्राप्त कर सकें।

### सत्यका रक्षक ईश्वर ।

इस शक्तमें एक महत्वपूर्ण बात कही है वह ‘सत्यका रक्षक परमेश्वर है’ ऐसा है। सत्यमार्गपर जानेवालेके समुदाय अमन्त आपत्तियाँ आसहीं दुर्ग तो वह अब नहीं डरेगा, क्योंकि वह इस आदर्शके अनुसार जान जायगा कि उसका परमेश्वर है। अब सत्यका रक्षक परमेश्वर है तब उसको डरानेवाला कौन हो गा है ! इसविषयमें दृष्टिये—

सुमिश्रान चिकित्सुषे जमाय सचासद्य वयसी पस्पृधाते ।

तपोर्यस्सत्स्य यतरहजीयस्तद्विस्सोमोऽयति हन्त्यासत् ॥

( मं० १२ )

“ यह उत्तम ज्ञान ज्ञानी बननेकी इच्छा करनेवाले मनुष्यके हितके लिये कहा जाता है कि सत्य और असत्य भाषण की इस जगत्में स्पर्धा चल रही है । उनमेंसे जो सत्य और जो सीधा होता है, उसकी परमेश्वर रक्षा करता है और जो असत्य और झूठिلا होता है उसका नाश करता है । ” अर्थात् सत्यका पालन करनेवाले और सरस आचरण करनेवाले मनुष्यकी रक्षा परमेश्वर स्वयं करता है और असत्य भाषणी तथा झूठिल व्यवहार करनेवाले का नाश करता है । हरएक मनुष्य इस ईश्वर के नियमका स्मरण रखें और अपना आचरण सीधा और सत्यके अनुसार रखें । जो अपना आचरण ऐसा रखेंगे वे कभी दोषी नहीं हो सकते और उनको ईश्वर की ओरसे कभी दण्ड नहीं मिल सकता । परमेश्वरकी रक्षा प्राप्त करनेका यह एक उत्तम उपाय है । आज्ञा है कि पाठक ईद इस वेदके सदेशसे लाभ उठावेंगे और परमेश्वरकी रक्षामें सुरक्षित रहते हुए धर्म और सरसताके मार्गसं जाकर अपने आपको कुतकृत्य करेंगे ।

जो ऐसा आचरण करेंगे और सत्य पालनमें दृष्टान्त होंगे वे कभी दुष्ट नहीं होंगे । परन्तु दुष्ट वे बनेंगे जो असत्य और झूठिल व्यवहार करेंगे । इन दुष्टोंको दण्ड देना परमेश्वरकाही कार्य है । इनको विविध दण्ड दिये जाते हैं, वे इस प्रकार हैं—

वधदण्ड ।

इन दुष्टोंको वध दण्ड देनेके विषयमें निम्नलिखित मन्त्रायाम प्रमाण हैं—

अतिभ्रणः हतः, म्योषतः,

अधशास तर्हण वध वर्तयतम् । ( मं० ४ )

दुहः मधुरावतः रक्षसः हतम् । ( मं० ७ )

रक्षः हन्ति । असत् वदन्तं हन्ति । ( मं० १३ )

त महता वधेन हन्तु । ( मं० १४ )

पिष्टुमेभ्यो वध शिषीति । ( मं० २० )

रक्षोभ्यो वध । ( मं० २५ )

“ भोगी, पापी, प्रोही, नाश करनेवाले, असत्य भाषण करनेवाले, जुगसी करने वाले, जो राक्षसघृणीवाले लोग होंगे वे वधदण्डके लिये योग्य हैं । इसी प्रकार—

पुष्कृतः अनारम्भणे तमसि यमे प्रविष्यतम् । ( मं० ३ )

अथवा मानव जातीके दुष्ट अनोखे रखा करना है । इसीलिये इस सूक्तमें कहा है—

प्रतिबद्ध, विचक्ष, जाग्रतम् । ( म० १५ )

“प्रत्येक स्थानपर देख, विशेष रीतिसे देख और जाग्रत रह ।” य तीनो उद्देश आत्मरक्षाकी दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्व के हैं, या इस अवस्थाकी रक्षा करनेके कार्यमें निपुण होत हैं, जो स्वयं सेवक होकर जनताकी रक्षा करना चाहते हैं व पहिल जाग्रत रहें, व सोचें । अपनी रक्षा जाग्रत रहनेसे ही हो सकती है । जो सोचते हैं या जो मुक्त हैं वे अपनी रक्षा नहीं कर सकते । जाग्रत रहनेके पश्चात् ( प्रतिबद्ध ) प्रत्येक मनुष्यका व्यवहार देखना चाहिये, अपने और पराये सब मनुष्योंके व्यवहारकी अच्छी प्रकार परीक्षा करनी चाहिये । और देखना चाहिये कि कौन मनुष्य सहायक है और कौन पातक है । यह निरीक्षण ( विचक्ष ) विशेष रीतिसे करना चाहिये, पराईके साथ निरीक्षण करना चाहिये, क्यों कि कई क्षुब्ध ऐसे होते हैं कि जो मित्रता कानके निपटे पास आते हैं और किस समय कपटसे मछा काट दते हैं, इसका स्मृती नहीं चलता । अतः हरएक बातका विशेष दृष्टांसे निरीक्षण करना योग्य है । अपनी रक्षा करनेके इच्छुक पाठक इन तीन आज्ञाओंका अच्छी प्रकार समझ लें । इसी भाव का अधिक स्पष्टीकरण करनेवाली आज्ञाएं १८ व मंत्रमें निम्नलिखित प्रकार आती हैं—

बिभु वितिष्ठन्, बिभु इच्छत, रक्षसः पृथ्वापत,  
रक्षसः सपिमष्टम् । ( म० १८ )

“प्रजाजनोमें विशेष प्रकारसे उपस्थित रहो, प्रजाजनोमें क्षान्ति सुख स्थापन करनेकी इच्छा करो, और इस कार्यके लिये राक्षसोंको हूँद निकालो, उनको पकड़े रहो और उनका पीस ढाँडो ।” यहाँ प्रजाजनोमें विशेष रीतिसे उपस्थित होनेकी आज्ञा है, साधारण मनुष्य होते हैं वैसे रहनेकी आज्ञा यहाँ नहीं है, यहाँ बत करता है कि असाधारण रीतिसे प्रजाजनोमें सर्वत्र संचार करो, विविध रूपोंको धारण करके सब अनोखा विशेष कपालके साथ निरीक्षण करो, और पता लगा दो कि कौन मनुष्य राक्षस है और कौन देव है । सजनोंकी रक्षा और दुर्बलोंका नाश करनेके लिये पहिल ये सज्जन हैं और ये दुर्बल हैं इस का निश्चय करना चाहिये । यह निश्चय विशेष निरीक्षण के बिना नहीं हो सकता, अतः यह आज्ञा करी है ।

( बिभु इच्छत ) प्रजाजनोमें क्षान्ति और सुख स्थापन करनेकी इच्छा धारण करा, इसी उद्देशसे प्रजाजनोमें विविध प्रकारसे उपस्थित हो जाओ और राक्षस कौन हैं इस बातका पता लगा दो । जो राक्षस हैं ऐसा निश्चित ज्ञान हो जायगा, उन राक्षसोंको

(गुमापत) पकड़ रखो, उनको अनसमाजमें धूमनेसे रोक दो, उनकी हठधर पर बघन डालो और उनको (सपिनहन) पीस डालो । यहाँ पीसनका अर्थ धूम करना अर्थात् नहीं है । उनके संगठन तोड़ दो, उनके संगठन बहने न दो, उनको अलग अलग करके उनका नाश करो । उनको असफल बनाओ । इसी विषयमें देखिये—

रक्षसः प्राक्तो अपाक्तो अचरात् उदक्तः जहि । ( म० १९ )

“ इन दुष्टोंको सामनेसे, पीछेसे, नीचेसे, और ऊपरसे अर्थात् सब ओरसे प्रतिबन्धमें रखकर नष्ट करो । ” यहाँ उनके देहोंको काटनेका तात्पर्य नहीं है । शरीर उनका बेशक जीवित रहें, परन्तु उनकी गति (प्राक्तः) सामनेसे रुक जाय, (अपाक्तः) वे पीछे न जा सकें, (अचरात्) वे नीचे न जा सकें, और (उदक्तः) ऊपरभी न हो सकें, अर्थात् चारों ओरसे उनकी हलचल बंद हो जावे और वे ऐसे प्रतिबन्धमें रहें कि वे किसी प्रकार दुष्टता न कर सकें । इस प्रकार वे अपनी दुष्टतामें असफल हुए तो उनका मानो पूर्ण नाश ही हुआ । अर्थात् यहाँ उनको दुष्ट कर्म करनेसे रोकना अथवा उनकी दुष्टताका नाश करना अर्थात् है, इसीलिये कहा है—

उभौ प्रसितौ चापाते । ( म० २३ )

“ दोनों प्रकारके हुए बचनमें सोते रहें । ” अर्थात् कारागारमें पड़े, जिससे वे भागे पीछे नीचे और ऊपर दिल् न सकें । ये हुए पुरुष हों या स्त्रियाँ हों, दोनोंको समान रीतिसे प्रतिबन्ध करना चाहिये, इस विषयमें त्रिभुजलिखित मन्त्र देखने योग्य है—

पुमांस पातुधान जहि । मापया प्रासादानां क्रिय जहि । ( म० २४ )

“ पुरुष हुए हो, या कपटाचारिणी स्त्री हो, दोनोंको सभी प्रकार असफल करना चाहिये । ” स्त्री है इसलिये ठसको धमा करना योग्य नहीं, क्योंकि एक दुष्ट अनेकोंको कष्ट पहुँचाता है, अतः किसी दुष्टकोभी धमा नहीं होनी चाहिये । सबही दुष्ट लोग अपनी दुष्टता छोटें और सज्जन बनें, ऐसा प्रयत्न होना आवश्यक है । राष्ट्रमें ऐसी व्यवस्था करना चाहिये कि—

दुष्कृते सुग मा भूत् । ( म० ७ )

“ दुष्कर्म करनेवाले हुए मनुष्य इधर उधर सुखसे न भूमें । ” उनके अप्रण के लिये प्रतिबन्ध हो । जब वे अपनी दुष्टता छोड़ देंग तब, उनको सब प्रदेष्टमें अप्रण करना सुगम होवे । इस उपदृष्टसे पता लगता है कि वेद चाहता है कि राष्ट्रका प्रबंध करन वाले अपने राष्ट्रमें अथवा ग्रामके प्रबंधकर्त्ता ग्रामके हुए मनुष्योंकी एक पूर्ण सूची बनावें, और उनके ऊपर निगाही रखें, वे कहाँ रहत हैं क्या करते हैं यह देखें, और

उनको ऐसे दबावमें रखें कि वे झुर्झाई न कर सकें । सज्जनोंकी रक्षा करनेके लिये दुष्टोंपर इस रीतिसे दबाव रखना अत्यंत आवश्यक है, इसलिये ही कहा है कि—

इय मतिः विश्वतः परिभूतु । ( म० ६ )

“यह आत्मरक्षा और सज्जनरक्षा करनेकी बुद्धि मनुष्योंमें सर्वत्र, अर्थात् सब नगरोंके नागरिकोंमें स्थिर रहे ।” कोई मनुष्य इसको न भुलें और—

वा मन्युमत् शयः सहसे अस्तु । ( म० ७ )

“सुन्दारा सरसाह युक्त बल अपने विषय और शत्रुकी पराजयके लिये तबर्षित हो ।” शत्रु या वेही लोग हैं कि जिनके लक्षण इस सूक्तमें और पूर्व सूक्तमें दृष्टात्माके साथ कहे हैं । इन दुष्टोंको दूर करने और सज्जनोंकी रक्षा करनेके कार्यके लिये इसका बल लगाना चाहिये । इसके करनेका उद्देश्य क्या है, इसका ज्ञान पाठकोंको स सूक्तके मननसे ही हो सकता है । दुष्टोंके सत्कारके मार्ग बंद हों और सज्जनोंके मार्ग अधिक खुले हों । यह बात अनेक प्रयत्नोंसे साध्य करना चाहिये । इत्येक लुप्य अपने अपने कार्यक्षेत्रमें इस बातकी सिद्धताके लिये परम प्रयत्न करे । इस पल का स्वरूप यह है—

असतः शक्ता अ-सन् अस्तु । ( म० ८ )

“असत्य भाषण करनेवाला अर्थात् दुष्ट मनुष्य (अ-सन्) न होनेके समान होवे ।” होनेके समान होनेका अर्थ यही है कि वह दुष्ट मनुष्य या तो प्रतिबन्धमें रहे, कक्षा में रखा जावे, निग्राणीमें रहे, उसके दुष्टताके मार्ग उसके लिये खुले न रहें, किन्ना की ऐसी व्यवस्था की जावे कि वह अपनी दुष्टताके कर्म किसी प्रकार भी कर न सके । यहाँ तक सो मनन किया है उसका सब-कुछ इस मात्रमागसे पाठक देखें और नि निग्राहक इस दुष्टोंके प्रबंध विषयक बोध प्राप्त कर सकें ।

सत्यका रक्षक ईश्वर ।

इस सूक्तमें एक महत्वपूर्ण बात कही है वह ‘सत्यका रक्षक परमेश्वर है’ ऐसा है । सत्यमार्गपर आनेवालेके समुदाय अनन्त आपत्तियाँ आसहीं हुई तो वह भय नहीं डरेगा, क्योंकि वह इस आदर्शके अनुसार श्रान जायगा कि उसका परमेश्वर है । जब सत्यका रक्षक परमेश्वर है तो उसको डरानेवाला कौन हो गा है ? इसविषयमें देखिये—

सुविज्ञान पिकितुये जनाय सधासय अयस्त्रि पस्पृषाते ।

तपोर्यस्तस्थ यतरहजीपस्तद्विस्तोमोऽयति हन्त्पासत् ॥

( म० १२ )

“ यह उत्तम ज्ञान ज्ञानी बननेकी इच्छा करनेवाले मनुष्यके हितके लिये कहा जाता है कि सत्य और असत्य भाषण की इस जगत्में स्पर्धा चल रही है । उनमेंसे जो सत्य और जो सीधा होता है, उसकी परमेश्वर रक्षा करता है और जो असत्य और कूटिल होता है उसका नाश करता है । ” अर्थात् सत्यका पाछन करनेवाले और सरल आचरण करनेवाले मनुष्यकी रक्षा परमेश्वर स्वयं करता है और असत्य भाषणी तथा कूटिल व्यवहार करनेवाले का नाश करता है । हरएक मनुष्य इस ईश्वर के नियमका स्मरण रखें और अपना आचरण सीधा और सत्यके अनुसार रखें । जो अपना आचरण ऐसा रखेंगे वे कभी दोषी नहीं हो सकते और उनको ईश्वर की ओरसे कभी दण्ड नहीं मिल सकता । परमेश्वरकी रक्षा प्राप्त करनेका यह एक उत्तम उपाय है । आशा है कि पाठक ईद इस बेदके सदेष्टसे लाभ उठावेंगे और परमेश्वरकी रक्षामें सुरक्षित रहते हुए धर्म और सरलताके मार्गसे आकर अपने आपको कृतकृत्ष करेंगे ।

जो ऐसा आचरण करेंगे और सत्य पाछनमें दक्षिण होंगे वे कभी दुष्ट नहीं होंगे । परन्तु दुष्ट वे बनेंगे जो असत्य और कूटिल व्यवहार करेंगे । इन दुष्टोंको दण्ड देना परमेश्वरकाही कार्य है । इनको विविध दण्ड दिये जाते हैं, वे इस प्रकार हैं—

वधदण्ड ।

इन दुष्टोंको बध दण्ड देनेके विषयमें निम्नलिखित मन्त्रमात्र प्रमाण हैं—

अस्त्रिणः इत, न्योपत,

अघघास तर्हण बध वर्तयतम् । ( म० ४ )

हुहः भगुरावतः रक्षसः इतम् । ( म० ७ )

रक्षः इन्ति । असत् अवन्त इन्ति । ( म० १३ )

त महता वधेन हन्तु । ( म० १६ )

पिशुमेभ्यो बध सिध्यति । ( म० २० )

रक्षोभ्यो बध । ( म० २५ )

“ मोगी, पापी, प्रोही, नाश करनेवाले, असत्य भाषण करनेवाले, जुमली करन वाले, जो राजसङ्घर्षवाले लोग होंगे वे बधदण्डके लिये योग्य हैं । इसी प्रकार—

बुष्कृतः अनारभणे तमासि बधे प्रविष्यतम् । ( म० ३ )

सा अनन्त वध अथ पक्षीह । ( म० १७ )

अम्रिततोभिः अहमहन्मभिः तपुर्बोधेभिः अग्निषः विष्पतम् । ( म० १८ )

“ दृष्ट कर्म करनेवालोंको अथकारके स्थानमें रक्खो और उनपर अस्त्रका वध करो । अधिकमें ठपे, फौलादसे बने, पातक अस्त्रसे भोगी लोगोंका वध करो । ” वध करनेका अर्थ यह है कि उनपर अस्त्र फेंककर उनके छाीरको पायल करना । बाबाँसे बधवा पक्षुकी गोलीसे बध करना आदि वध दूरसे ही किया जाता है । इसी प्रकार—

पातुमङ्गयः अघार्नि सृजत । ( म० १९ )

पातुमङ्गयः अघार्नि अस्वतम् । ( म० २० )

मूरवेवा विघ्नीयास्तः ऋदन्तु । ( म० २४ )

तान् निर्धतेः उपत्ये आदधातु । ( म० ९ )

प्रोषवाचः निर्धाय सचन्ताम् । ( म० १४ )

“ पातना दनेवालोंपर विजली छोड़ी जावे, मूढ़ोंके उपासकोंका गला काट जावे, वेनायके द्वारपर पक्षुचें, द्राहका मावण करनेवाले नाशकों प्राप्त हों । ” इस प्रकार वध करीब वध दण्ड ही है । तथापि इसमें अन्य प्रकारका नाशभी सम्भवनीय है । पत्थरोंसे दुष्टका वध करनेका भी उल्लेख है—

प्रावाणाः रक्षसः उपत्येः मन्तु । ( म० १७ )

इपदा इव रक्षः प्रमृण । ( म० २९ )

“ पत्थरोंसे राक्षसोंका वध किया जावे । ” जो राक्षस है ऐसा नियम हो जाय, उसको किसी स्थानपर खड़ा करके अथवा इसके साथ रखीसे बाँधकर दूरसे उत्तर पत्थर मारनेसे उसका वध हो जायगा । इस प्रकारका वधदण्ड इस समय अफगानि स्थानमें है । पाठकोंको विचार करना चाहिये कि यह रीति और इस मन्त्रमें कही रीति एकही है वा भिन्न हैं ।

## देशसे निकाल देना ।

पातुर्ना पराधारः अभवत् । रक्षसः भिदन् पशु । ( म० २१ )

“ पातना दनवालोंको दूर करनेवाला भी राक्षसोंको खड्गता हुआ पशु । ” यह भीरका लक्षण है, वह भीर पातना दनवालोंके कर्तव्योंको सह नहीं सकता । यही पाठक ‘परा+धर’ शब्द देखिये कैसे विलक्षण अर्थमें पड़ा है । ( परा ) दूर ल आकर ( धर ) नाश करनेवाला जो भीर है उसको पराधर कहत है । राक्षसोंको समाजसे और ग्रामसे

दूर करना चाहिये, य कभी ग्रामवासियोंको कष्ट देनेके लिये न जायें, इस विषयमें वेदकी आज्ञा देखिये—

अशितः परा दूष्णीत, जुवेयाम् । ( म० १ )

यतः एवार्ः पुनः एकश्च न उदयत् । ( म० ३ )

पातुमावत् रक्षः मः मा अभिनङ् । ( म० १३ )

किमीदिनः मिथुना अपोच्छत्तु ( म० १३ )

“बिचको सद्व्य अन्तःकरण नहीं है वे दूर इटाये जाय, इनमेंसे एक भी फिर न छोट सके, मिथ्याचारी सब दूर भाग जायें ।” ये सब आज्ञाएँ दुष्टोंको राज्यसे बाहर करनेका ही भाव बताती हैं । इस प्रकार देखते निकाला हुआ कार्य दुष्ट फिर देखमें या ग्राममें न आसके । ऐसा करनेसे ही प्रजा सुखी रह सकती है ।

### दुष्टोंको तपाना ।

दुष्ट दुर्बलोंको सत्ताप देनेका भी एक दण्ड इस धर्ममें कहा है, विचार करना चाहिये कि इस तपानेका अर्थ क्या है । इस विषयके श्रृंग ये हैं—

रक्षः तपत, उज्जत । ( म० १ )

अथशास अथ तपुः ययस्तु । ( म० १ )

“राक्षसों दुष्टों, पापहृत्विषासोंको तप दो ।” उनको सत्ताप उत्पन्न कर । किन शास्त्रोंसे सत्ताप उत्पन्न करना है, इसका यहाँ उल्लेख नहीं । तपानि धर्मका विचार करनेसे हमें ऐसा प्रतीत होता है कि जब दुष्ट अपनी दुष्टताके कार्यसे इटाये जायें और चारों ओरसे उनको रोका जायगा, तब उनको सत्ताप होगा और इस प्रकारका सत्ताप ही यहाँ असीट होगा ।

### दुष्टोंका द्वेष ।

वस्तुतः देखा जाय तो कोई मनुष्य किसीका कभी द्वेष न करे । परस्पर मित्रद्विष्टीसे द्वेष । यह निःसंदेह धर्म है । परन्तु दुष्ट मनुष्य और दुष्टता का द्वेष करनेकी आज्ञा वेद देता है । यदि द्वेष करना हो तो दुष्ट मनुष्योंका और उनकी दुष्टता का द्वेष करना योग्य है देखिये—

ब्रह्मद्विषे कल्प्याथे धोरवक्षसे किमीदिने अमवाप

द्वेषो वक्षाम् । ( म० १ )

“ब्रह्मका द्वेष करनेवाले, माँसमोक्षी, क्रूरद्विष्टी, सदा योगविचार करनेवाले दुष्टके



साथ निरंतर द्वेष करो ।” यदि द्वेष करना है, तो इससे द्वेष करो, अन्यथा ( मित्रस्व-  
बन्धुषा समीक्षामहे । यजु० ) मित्रकी दृष्टिसे सबकी ओर देखो और किसीका कभी  
द्वेष न करो । द्वेष करना हो तो केवल दुष्टोंके साथ ही द्वेष करना चाहिये । स्वर्ग-  
प्राप्ति के लिए दुष्टोंसे द्वेष करना योग्य है । मनुष्य स्वयं पापसे बचनेके लिये इस प्रकार  
प्रार्थना करे—

पार्थिवात् विद्यात् च अहसः नः पातु । ( म० २३ )

“ भूमिके संबंधसे तथा स्वर्गके प्रयत्नमें जो पाप होगा, उससे हमें बचाओ ।” इस  
प्रकार मनुष्य ईश्वरकी प्रार्थना करे । अपने आपको पापसे बचावे । ऐसे मनुष्यको ही  
अर्थात् स्वयं पापसे बचनेवालेको ही दुष्टका द्वेष करनेका अधिकार है । जो स्वयं पाप  
करता है उसको दूसरेका द्वेष करनेका अधिकार नहीं है ।

### पापीकी अधोगति ।

पापी दुष्ट मनुष्यकी अधोगति होती है, उसकी अकीर्ति होती है, वह बदनाम  
होता है इस विषयमें इस सूक्तमें निम्नलिखित मन्त्रमात्र मिलते हैं—

अस्य यशः प्रतिशुष्यतु ।

यः दिवानक्तं दिप्सति स अयः अस्तु । ( म० ११ )

स्तेनकृत् स्तेनः रिपुः वृद्ध पतु । स तन्वा तना च

निहीयताम् । ( म० १० )

स वृक्षभिः वीरैः वि यूयाः । ( म० १५ )

विश्वस्य जन्तोः अघमः पस्पदीष्ट । ( म० १६ )

“ इस दुष्टका अश्रु नष्ट हो जावे, जो दिनरात दुष्टता करता है वह नीचे गिरे, जो  
छोटेरा दुष्ट बड़ा ठन धनसे हीन होवे, वह बालबच्चोंसे हीन होवे । उसके इसीप्राय वृ-  
द्ध हो । ऐसा दुष्ट सब प्राणियोंसे भी सबसे नीचे गिर जावे ” अर्थात् जो इस प्रकारका  
दुष्ट है वह परमेश्वरीय नियमसे अधोगतिको प्राप्त होता है, अब तक वह अपनी दुष्टता  
नहीं छोड़ता तब तक उसकी उन्नतिकी कोई आशा नहीं है । उन्नतिकी इच्छा है तो  
दुष्टता छोड़नी ही आवश्यकता है, यह बात यहाँ सिद्ध होती है । सब दुष्टोंको उन्नति  
का यह मार्ग खुला है, अर्थात् उन्नतिकी साधन करना उनके आधीन है । वे यदि  
पूर्वोक्त प्रकार ‘ पापसे बचनेके लिये ’ ईश्वरकी प्रार्थना करेंगे तो उनमें दुष्टता छोड़ने  
का बल आ जायगा । इसके नियम ये हैं—

## आत्मदण्ड ।

यः अ-यातु यातुचान इत्याह ।

यः रक्षः शुचिः आस्मि इत्याह । ( म० १५ )

“मलेको पुरा कहना और अपवित्रको पवित्र समझना” यह दुष्टका लक्षण है । छोटत होना चाहते हैं व ऐसा न करें, वे सो मलेको भला, पुरेको पुरा, राक्षसको साक्षस, पवित्रको पवित्र, अपवित्रको अपवित्र कहनेका अभ्यास करें । न करते हुए ऐसा माननेसे और माननेके अनुकूल कहनेसे आरम्भक बल बढ़ता है । इसी रीतिसे हरएक मनुष्य कहे कि—

यदि यातुचानोऽस्मि, यदि वा पुरुषस्य आयुः ततप,  
अथा मुरीय । ( म० १५ )

“यदि मैं किसीको यातना देनेवाला बनू अथवा किसी मनुष्यको ताप दूं तो मैं आसही मर जाऊ ।” ऐसा छत्त होनेवाला मनुष्य कहे अर्थात् यदि अपने हाथसे कुछ पाप या दोष हुआ होगा, तो उसका प्रायश्चित्त लेनेको मनुष्य तैयार रहना चाहिये । अपने द्वारा विशेष दोष होनेपर मरनेतक तैयार होना चाहिये । जिसकी भिस प्रमाणसे इस प्रकारकी तैयारी होगी, वह उस प्रमाणसे छत्त होगा । पाठक यह छत्त होनेका मार्ग अपने मनमें धारण करें, इसका बहुत विचार करें और इसको अपने जीवनमें बर्हातक हो सके ठाछनेका यत्न करें । इस आत्मदण्डके मार्गसे मनुष्य क्षीप्र छत्त हो सकता है ।

## प्रतिसर मणि ।

[ ५ ]

( ऋषिः—शुक्रः । देवता—कृत्यावृषण, मन्त्रोक्तदेवताः )

अयं प्रतिसरो मणिर्वीरो वीराय वक्ष्यते ।

वीर्यवान्सपत्नहा शूरवीरः परिपाणः सुमङ्गलः ॥ १ ॥

अयं मणिः सपत्नहा सुवीरः सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः ।

प्रत्यक्कृत्या वृषयमेति वीरः ॥ २ ॥

अर्थ—( अयं प्रतिसरः ) यह शत्रुके ऊपर आक्रमण करनेवाला, ( वीर्यवान् वीरः ) वीर्ययुक्त वीर ( सपत्नहा परिपाणः ) शत्रुका नाश करनेवाला और सब प्रकारकी रक्षा करनेवाला, ( सुमङ्गलः शूरवीरः ) मङ्गल करनेवाला शूरवीरका बिन्दुरूप ( मणिः वीराय वक्ष्यते ) मणि वीर पुरुषके ऊपर बाँधा जाता है ॥ १ ॥

( अयं मणिः ) यह मणि ( सपत्नहा सुवीरः ) शत्रुका नाश करनेवाला उत्तम वीर ( सहस्वान् वाजी ) शत्रुवेगको सहन करनेवाला बलवान् ( सहमानः उग्रः वीरः ) शत्रुपराजय करनेवाला उग्र वीर ( कृत्याः वृषयन् एति ) घातक प्रयोगोंको बिकल करता हुआ जाता है ॥ २ ॥

भावार्थ—यह मणि [ या पत्थक ] शूरवीर पराक्रमी शत्रुनाशक मणिकारी है, अतः यह वीरके शरीर पर बाँधा जाता है ॥ १ ॥

यह मणि बलवान् शत्रुनाशक, उग्र वीर है जो सब शत्रुके घातक प्रयोगोंको दूर करता है ॥ २ ॥

अनेनेन्द्रो मणिना वृषभहभनेनामुरान् परामावय मनीषी ।  
अनेनावपद् पावापृषिषी उमे इमे अनेनावपद् प्रदिशुषर्तः ॥ ३ ॥  
अय स्राक्त्यो मणिः प्रतीवर्तः प्रतिसरः ।  
ओषस्यान् विमुषो वशी सो अस्मान् पातु सर्वतः ॥ ४ ॥  
तदगिराह तद् सोम आह बृहस्पतिः सविता तदिन्द्रः ।  
ते मे देवाः पुरोहिताः प्रतीषी कृत्वाः प्रतिसरैरवन्तु ॥ ५ ॥

अर्थ—(अनेन मणिना इन्द्रः वृष अहन्) इस मणिसे इन्द्रने वृषका नाश किया, (अनेन मनीषी असुरान् परामावयत्) इसीसे सयमी वीरने असुरोंका पराभव किया । (अनेन उमे इमे पावापृषिषी अजयत्) इसीसे ये दोनों युद्धोक्त और पृषिषी लोक जीत लिये, (अनेन वतस्रा प्रदिशः अजयत्) इसीसे चारों दिशाओंको जीत लिया ॥ ३ ॥

(अय स्राक्त्यः मणिः) यह प्रगति करनेवाला मणि (प्रतिवर्तः प्रतिसरः) शत्रुओंपर हमला करनेवाला और उनपर धावा करनेवाला (ओज स्यान् विमुषः वशी) बलशाली युद्धमें गमन करनेवाला और वशी है, यह (अस्मान् सर्वतः पातु) हम सबकी सब प्रकारसे रक्षा करे ॥ ४ ॥

(अग्निः तत् आह) अग्निने यह कह दिया, (सोमः तत् उ आह) सोम ने भी यह कहा, (बृहस्पतिः सविता इन्द्रः तत्) बृहस्पति सविता और इन्द्रने भी वही कहा है । (ते पुरोहिताः देवाः) ये अग्रेसर देव (प्रतिमरैः मे कृत्वाः प्रतीषीः अजन्तु) हमलोंसे मेरे ऊपर आनेवाले घातक प्रयोग विरुद्धदिशासे हटा दें ॥ ५ ॥

भावार्थ—इस मणिसे इन्द्रने वृषको मारा, राक्षसोंका पराभव किया, पावापृषिषीको जीत लिया, और सब दिशाओंमें विजय किया ॥ ३ ॥

यह शत्रुपर धावा करनेवाला, बलवान् शत्रुको वश करनेवाला मणि हमारी रक्षा करे ॥ ४ ॥

सब देव इस मणिके द्वारा मेरे ऊपर किये घातक प्रयोग हटा दें ॥ ५ ॥

अन्तर्दधे चावापृथिवी उताहृत सूर्यम् ।

ये मे देवाः पुरोहिताः प्रसीधीः कृत्वाः प्रतिपुरैरञ्जन्तु ॥ ६ ॥

ये आक्स्य मणिं अना वर्मीणि कृण्वते। सूर्ये इव दिवमारुह्य वि कृत्वा वापते वशी॥७॥

आक्स्येन मणिनः ऋषिणेषु मनीषिणा । अजैषु सखाः पृतना नि मृषो हन्मि रक्षसः ८

याः कृत्वा आङ्गिरसीर्याः कृत्वा आसुरीर्याः कृत्वाः स्वयंकृता या उ चान्तेभि  
रामृताः । उमयीस्ताः परां यन्तु परावर्तो नवर्ति नाम्नाः अति ॥ ९ ॥

अर्थ—(चावापृथिवी अन्तः दधे) शुलोक और पृथ्वी लोकको मैं अपने  
अन्दर धारण करता हूँ ( उताः अहः उत सूर्यम् ) दिनको और सूर्यको भी  
अन्दर रखता हूँ । ये अग्नेसर देव हमलोंसे मेरे ऊपर होनेवाले घातक  
प्रयोग विरुद्ध दिशासे हटा देंगे ॥ ६ ॥

( ये जनाः आक्स्य मणिं ) जो लोग प्रगतिशील इस मणिको ( वर्माणि  
कृण्वते ) कवचोंके स्थानपर करते हैं, ये ( सूर्यः इव दिव आरुह्य ) सूर्यके  
समान शुलोक पर चढ़ कर ( वशी ) सपको वशमें करता हुआ ( कृत्वा  
वि वापते ) घातक प्रयोगोंका नाश करते हैं ॥ ७ ॥

(मनीषिणा ऋषिणा इव) ज्ञानी ऋषिके समान इस (आक्स्येन मणिना)  
प्रगतिशील मणिके द्वारा ( सखाः पृतनाः अजैषु ) सब शत्रुसेनाओंको  
पराभूत करता हूँ और ( रक्षसः मृषा वि हन्मि ) राक्षसोंको पुच्छों  
मारता हूँ ॥ ८ ॥

( याः आङ्गिरसीः कृत्वा ) जो आङ्गिरस घातक प्रयोग हैं, ( याः आसुरीः  
कृत्वा ) जो असुराके घातक प्रयोग हैं, ( याः स्वयंकृताः कृत्वा ) जो  
स्वयं किये हुए घातक प्रयोग हैं, ( याः उ अग्नेभिः आमृताः ) जो अग्नि  
द्वारा मर दिये गये हैं, ( उमयीः ताः नवर्ति नाम्नाः अति ) दोनों वे सब  
नये नदियाँ परे ( परावर्ताः परा यन्तु ) दूर स्थानको जावें ॥ ९ ॥

आयर्ष—शुलोक, पृथ्वी, सूर्य और दिन की शक्तियाँ मैं अपने अन्दर  
धारण करता हूँ । ये सब मेरे ऊपर किये विनाशक प्रयोग हटा देंगे ॥६॥  
जा लोग कवचरूप इस मणिका धारण करते हैं व सूर्यक समान तेजस्वी  
दाकर अपने ऊपर किये हुए घातक प्रयोगोंको हटा देने हैं॥७॥ इस मणिक  
द्वारा सब शत्रुसेनाका जीत लिया है । और पुच्छोंको मार दिया है ॥८॥

अस्मै मणिं वर्मं यन्नन्तु देवा इन्द्रो विष्णुः सविता रुद्रो अग्निः ।

प्रजापतिः परमेष्ठी विराट् वैश्वानर ऋषयश्च सर्वे ॥ १० ॥ ( १२ )

उत्तमो अस्वोर्षधीनामनुद्धान् अगस्तामिव व्याघ्रः स्वपदामिव ।

यमेच्छामाविदाम् तं प्रतिस्पर्धनमन्तितम् ॥ ११ ॥

स इद् व्याघ्रो भवत्यथो सिंहो अथो वृषा ।

अथो सपत्नकर्षणो यो विमर्तुमि मणिम् ॥ १२ ॥

अर्ध-इन्द्र, विष्णु, सविता, रुद्र, अग्नि, प्रजापति, परमेष्ठी, विराट्, और वैश्वानर, ये सप्त ( देवाः ) देव तथा ( सर्वे च ऋषयः ) सप्त ऋषि ( अस्मै मणिं वर्मं यन्नन्तु ) इस धीरके शरीरपर मणिरूप कवच को पविं ॥ १० ॥

( ओषधीनां उत्तमः असि ) औषधियोंमें तू उत्तम है, ( अगतां अनुद्धान् इव ) जैसे गतिशीलोंमें बैल और ( स्वपदां व्याघ्रः इव ) व्याघ्रोंमें बाघ होता है । ( य एच्छाम् ) जिसकी हम इच्छा करें ( त प्रतिस्पर्धनम् ) उस प्रतिस्पर्धीको ( अन्तितमं अविदाम् ) मरा हुआ पावें ॥ ११ ॥

( यः इमं मणिं विमर्ति ) जो इस मणीका धारण करता है, ( सः इव व्याघ्रः भवति ) वह मिःसन्नेह बाघ के समान ( अथो सिंहः अथो वृषा ) सिंहके समान अथवा बैलके समान ( अथो सपत्नकर्षणः ) शत्रुका वध करनेवाला होता है ॥ १२ ॥

भाष्यार्थ-सप्त प्रकारके घातक प्रयोग इसके द्वारा दूर होते हैं ॥ ९ ॥

सप्त देव और ऋषि अपनी शक्तियोंसे इस मणिको मेरे शरीरपर पविं ॥ १० ॥

यह मणि सप्तसे उत्तम है । इसके धारण करनेपर जिसको चाहे जीत सकते हैं ॥ ११ ॥

जो इस मणिको धारण करता है वह परबल होकर अपने सप्त शत्रुओंको जीतता है ॥ १२ ॥

नैनं घनन्त्यप्सरसो न गन्धर्वा न मर्त्याः ।  
 सर्वा दिशो वि राजति यो विमर्तीमं मणिम् ॥ १३ ॥  
 कश्यपस्त्वामसृजत कश्यपस्त्वा समैरयत् ।  
 अविमस्त्वेन्द्रो मानुषे विभ्रत् सभेपिणेजियत्  
 मणिं सहस्रवीर्यं वर्मं देवा अकृष्वत् ॥ १४ ॥  
 यस्त्वा कृत्याभिर्पस्त्वा दीक्षाभिर्पश्यैस्त्वा जिघांसति ।  
 प्रत्यक् त्वमिन्द्र तं जहि वज्रेण क्षतपर्षणा ॥ १५ ॥

अर्थ— ( यः इमं मणिं विमर्ति ) जो इस मणिका धारण करता है वह ( सर्वाः दिशः विराजति ) सब दिशाओंमें शोभता है । ( एनं अप्सरसः न प्रान्ति इसको अप्सराएं नहीं मारतीं और ( न गन्धर्वाः न मर्त्याः ) न गन्धर्व और नाहि मनुष्य मार सकते हैं ॥ १३ ॥

( कश्यपः त्वां असृजत ) कश्यपने तुझे बनाया है, ( कश्यपः त्वा समैरयत् ) कश्यपने तुझे मेरित किया । ( इन्द्रः त्वा मानुषे सभेपिणे विभ्रत् ) इन्द्रने तुझे मानवी सभाममें धारण किया और ( अजयत् ) विजय किया । ऐसे ( सहस्रवीर्यं मणिं ) सहस्र सामर्थ्यवान् मणिको ( देवाः वर्मं अकृष्वत् ) देवोंने कवच रूप बनाया है ॥ १४ ॥

हे इन्द्र ! ( यः त्वा कृत्याभिः ) जो तुझे मारक प्रयोगोंसे, ( यः त्वा दीक्षाभिः ) जो तुझे दीक्षाओंसे, अथवा ( यः त्वा पश्यैः जिघांसति ) जो तुझे पड़ोंसे मारना चाहता है, ( तं ) उसको ( त्वं ) तू ( क्षतपर्षणा वज्रेण प्रत्यक् जहि ) शौकड़ों पक्षोंवाले वज्रसे प्रत्येक स्थानमें मार ॥ १५ ॥

भावार्थ— इस मणिका धारण करनेवाला सब दिशाओंमें विराजता है और इसका बच कोई कर नहीं सकते ॥ १३ ॥

कश्यप के द्वारा इस मणि निर्माण करनेकी कक्षाका प्रारंभ हुआ । इसको इन्द्रने सबसे पहिले धारण किया था और जगतमें विजय भी किया था ॥ १४ ॥

इस मणिधारणसे सब मारक प्रयोग दूर होते हैं । हर एक प्रकारके मारक प्रयोग इससे हटते हैं ॥ १५ ॥

अयमिद् वै प्रतीवर्त्त ओन्नस्वान् सनयो मणिः ।  
 प्रजां घनं च रक्षतु परिपाणः सुमङ्गलः ॥ १६ ॥  
 असपत्न नो अघरादसपत्न न उत्तरात् ।  
 इन्द्रासपत्नं नः पृथ्वाज्योतिः शूर पुरस्कृषि ॥ १७ ॥  
 वर्म मे घातापृषिवी वर्मावर्म्मं सूर्यः ।  
 वर्म म इन्द्राभिश्च वर्म घाता दधातु मे ॥ १८ ॥

अर्थ—(अय इत् वै) यह निम्नयसे (प्रतिवर्त्तः) शास्त्रपर हमला करनेवाला (परिपाणः सजयः) रक्षक और बिजयी, (सुमङ्गलः मणिः) उत्तम मङ्गल करनेवाला मणि है, (प्रजां घनं च रक्षतु) यह हमारी सतान और सपत्तिकी रक्षा करे ॥ १६ ॥

हे शूर इन्द्र ! (नः अघरात् असपत्न) हमारे नीचेसे अबिरोध, (नः उत्तरात् असपत्न) हमारे ऊपरसे अबिरोध, (नः पृथ्वात् असपत्न) हमारे पीछेसे अबिरोध वर्ष्मक (ज्योतिः पुरः कृषि) हमारे सन्मुख कर ॥ १७ ॥

(घातापृषिवी मे वर्म) घातापृषिवी मेरे लिये कवच धारण करावें, (अहः वर्म, सूर्यः वर्म) दिन और सूर्य मेरे लिये कवच पहनावें । (इन्द्रः च अग्निः च घाता च) इन्द्र, अग्नि और घाता ये तीनों देव प्रत्येकमें (मे वर्म दधातु) मेरे लिये कवच पहनावें ॥ १८ ॥

भावार्थ—शात्रुको दूर करके रक्षा करनेवाला यह मणि है । इसका धारण करनेवालेका कल्याण होता है, प्रजा और घनकी रक्षा इससे होती है ॥ १६ ॥

हमारी रक्षा चारों ओरसे होती रहे और हमारे सन्मुख प्रकाशका मार्ग स्थिर रहे ॥ १७ ॥

सय देव इस कवच धारण करनेमें मुझे सहायक हों । यह देवी शक्तिसे युक्त हो ॥ १८ ॥



ऐन्द्राग्रं वर्मं बहुलं यदुग्रं विषं देवा नाति विष्यन्ति सर्वे ।  
 तन्मे तन्वं श्रवतां सर्वतो वृद्धायुष्मां जरदृष्टिर्यथासानि ॥ १९ ॥  
 वा मां रुग्णं देवमणिर्महा अरिष्टतासये ।  
 इम मे विममिसंविष्यन्व तनूपान् त्रिवरुणमोजसे ॥ २० ॥  
 अस्मिन्निन्द्रो नि वपायु नृम्यामिमं देवासो अभिसंविष्यन्व ।  
 दीर्घायुत्वाय वृद्धायुष्मायुष्मान् जरदृष्टिर्यथासत् ॥ २१ ॥

अर्थ- ( सर्वे बिन्धे देवाः ) सय देव ( यत् न अतिविष्यन्ति ) जिस का अतिक्रमण कर नहीं सकते ( तत् उग्रं बहुल ऐन्द्राग्रं वृहत् वर्म ) वह उग्र, बड़ा इन्द्र और अग्निका बड़ा कवच ( मे तन्व सर्वतोऽश्रवतां ) मेरे शरीर की रक्षा सब ओरसे करे । ( यथा ) जिससे मैं ( जरदृष्टिः ) वृद्धावस्थातक कार्य व्याप्ति करनेवाला ( आयुष्मान् असानि ) दीर्घायु होऊ ॥ १९ ॥

यह ( देवमणिः ) दिव्य मणि ( मा मही अ-रिष्ट-तासये ) मुझपर बड़ी सुख सृष्टिके लिये ( आरुग्णत् ) आरुह्य होवे । ( इम मे वि ) इस शत्रु नाशक ( तनूपान् त्रिवरुण ) शरीर रक्षक और तीनों बलोंके रक्षकों ( ओजसे अभि संविष्यन्व ) बलके लिये आभित होवे ॥ २० ॥

( अस्मिन् इन्द्रः वृष्ण निवपायु ) इसमें इन्द्र बल धारण करे, ( देवासो इम अभि संविष्यन्व ) देव इसमें प्रविष्ट हों ( यथा ) जिससे ( वृद्धावस्थायाय दीर्घायुत्वाय ) दीर्घायुकी दीर्घायुके लिये ( आयुष्मान् जरदृष्टिः असत् ) दीर्घजीवी और वृद्धावस्थातक सुख रहे ॥ २१ ॥

भावार्थ—सय देवी शक्तिसे युक्त इस मणिरूप कवचसे मेरी उत्तम रक्षा होवे और मेरी आयु दीर्घ होवे ॥ १९ ॥

इस दिव्य मणिके शरीरपर धारण करनेसे मेरी रक्षा होवे और मेरे बलकी वृद्धि होवे ॥ २० ॥

इसमें सय देव अपने बलकी स्थापना करें जिससे मुझे दातायुवाला दीर्घजीवन प्राप्त हो ॥ २१ ॥

स्वस्तिदा विष्ठां पतिर्वृत्रहा विमृषो वृषी ।

इन्द्रो यमातु ते मणिं विंशीवाँ अपराजितः सोमपा अभयकरो वृषा ।

स त्वा रथतु सर्वतो दिवा नक्तं च विधतः ॥ २२ ॥

अर्थ—( स्वस्तिदा विष्ठांपतिः वृत्रहा ) कल्याण करनेवाला, प्रजापालक  
शात्रुनाशक, ( विमृषः वृषी ) शत्रुओंको वधमें करनेवाला, ( जिगीषा अपरा-  
जितः सोमपा अभयकरः ) विजयी, अपराजित, सोमरस पीनेवाला, सोम्य  
( वृषा इन्द्रः ) पलवान् इन्द्र ( ते मणिं यमातु ) तेरे शरीरपर मणिको बांध।  
( सः सर्वतः दिवा नक्तं ) वह सय ओरसे दिनरात ( त्वा विश्वतः पातु )  
तेरी सय ओरसे रक्षा करे ॥ २२ ॥

भावार्थ—शूरवीर शात्रुनाशक पलवान् विजयी जेता पुरुष इस मणिको  
शरीरपर बांधे जिससे उसकी दिनरात रक्षा होवे ॥ २२ ॥

### मणिधारण ।

इस सूक्तमें मणिधारण का विषय है। कदापि का कथन है कि यहाँ ' मणि ' शब्दसे  
वीर पुरुषका प्रश्न किया जावे। परन्तु यह बात सत्य नहीं है। इस प्रकार अर्थका  
अनर्थ करना किसीको भी योग्य नहीं है। इस सूक्तमें कहा मणि किसी वनस्पति का  
बनाया जाता है और उस का धारण शरीर पर किया जाता है। प्रायः गलेमें धाँचा  
जाता होगा। जिस प्रकार आबकलके सैनिकोंका विशेष शौर्यवीर्य धैर्यक कार्य करनेपर  
' पदक ' दिया जाता है और वह पदक छातीपर लटकाया जाता है, उसी प्रकारका  
यह मणि गलेमें या हाथपर किंवा बाहुपर बाँधा जाता है। यह एक शौर्यका अथवा  
अनदितके कार्य करनेका चिह्न है। इसके धारण करनेसे वीरकी प्रतिष्ठा पटती है, उस  
का उत्साह बढ़ता है, और उत्साह पढ़नेसे वह मनुष्य अधिक पराक्रम करनेके लिये  
समर्थ होता है।

पहिले किये हुए शौर्यके कार्यके लिये अधिकारी पुरुषोंसे ईनाम मिठवानेपर अधिक  
पराक्रम करनेका साहस मनुष्य करता है, अर्थात् वह ईनाम, या पदक, अथवा अन्य  
प्रकार का सम्मान वीरता बढ़ानेवाला, रक्षाका काय करनेवाला, उत्तम वीरता करने  
वाला, उन्नतता बढ़ानेवाला, इत्यादि गुणविशिष्ट है एसा मानना अपाय्य नहीं है। इसी

सदेश्यसे इस सक्तमें इस मणिके गुण " सुवीरः, वाभी, उग्र " आदि कहे हैं। अन्य वर्णन भी इसी दृष्टिसे विचार करके जानने योग्य है।

### एक शका ।

कई लोग कहते हैं कि इसकी सकडीसे बना हुआ यह ' मणि ' वीरता बढ़ानेवाला, मंगल करनेवाला और बल बढ़ानेवाला कैसा हो सकता है, चूकी सकडीके मणिमें यह सामर्थ्य नहीं होता, अतः यहाँके मणिछन्दसे ' वीर सेनापति ' अर्थ सेना योग्य है। यह युक्ति अथवा यह विचारपद्धति विवेकयुक्त नहीं है। सरकारका सिपाही हाथमें एक विशेष प्रकार का काष्ठ लेकर, और विशेष प्रकार का पोशाख धारण करके हजारों लोगोंमें जाता है और निहर होकर उनको धमकाता है और विशेष कार्य करता है। वह सामर्थ्य उसके अन्दर उस सरकारी पोशाख और सरकारी बिन्दुके काष्ठधारणसे ही आता है। वस्तुतः देखा जाय तो उसकी शारीरिक शक्ति अन्य लोगोंके समान ही होती है। परंतु सरकारी बिन्दु धारण करनेसे उसकी शक्ति कई गुणा बढ़ जाती है। इसी प्रकार यह विशेष सन्मानका मणि अब महाराजाके द्वारा किसी वीर पुष्पको दिया जाता, या शरीरपर बाँधा जाता है, तो यह शक्तिवृद्ध होनेसे इसके धारणसे उस पुष्पका बल और धीर्य बहुत बढ़ जाना स्वाभाविक है।

इस दृष्टिसे इस सक्तका विचार पाठक करें और इसका आश्रय समझें। वह सक्त इस दृष्टिसे देखनेसे बहुत सरल है अतः प्रत्येक मंत्रका अधिक स्पष्टीकरण करनेकी आवश्यकता नहीं है।

## गर्भदोषनिवारण ।

[ ६ ]

( शक्तिः— मातृनामा । दधता— मन्त्रोक्ता )

यौ त्वे मातुन्ममार्त्तं आवायाः पतिवेदनौ ।

दुर्गामा तत्र मा गृधदलिर्ष उत वत्सपः ॥ १ ॥

पल्लानुपलालौ शर्कुं कोकं मलिम्लुच पलीजकम् ।

आभेर्षं वृषिवाससमुषग्रीव प्रमीलिनम् ॥ २ ॥

अर्थ—( आतापाः ते ) उत्पन्न होते ही तेरे ( यौ पतिवेदनौ ) जो पतिको प्राप्त होनेवाले दोना भाग तेरी ( माता उन्ममार्त्तं ) माताने स्वच्छ किये थे ( तत्र ) उनमें ( दुर्गामा, अलिशः उत वत्सपः ) दुर्गामा, अलिश तथा वत्सप ये रोगकृमि ( मा गृधत् ) न पहुँचें ॥ १ ॥

( पल्लानुपलालौ ) मांस और मांससपथी, ( शर्कुं ) हिंसक, ( कोक ) कामसपथी अथवा वीर्यसपथी, ( मलिम्लुच पलीजक ) मलिन, पलित रोग, ( आभेर्ष ) चिपकनेवाले, ( वृषिवासस ) रूपहीनता करनेवाले, ( वृषग्रीव ) रीछके समान गर्दन बनानेवाले, ( प्रमीलिन ) आंख मूंदनेवाले रोगोंको मैं दूर करता हू ॥ २ ॥

भावार्थ—बच्चा उत्पन्न होते ही स्तनमें तथा अन्यत्र रोग उत्पन्न करनेवाले कृमि न पहुँचें ॥ १ ॥

मांसमें उत्पन्न होनेवाले, हिंसक, वीर्यद्रोष उत्पन्न करनेवाले, पाल सफेद करनेवाले, कुरूपता पहननेवाले गर्भमें रोग बनानेवाले आम्बोंमें सुस्ती लानेवाले रोगोंको मैं दूर करता हू ॥ २ ॥

मा स वृत्तो मोषं सुप ऊरु माषं सुपोन्तरा ।  
 कृणोम्यस्यै मेपञ्च वज्रं दुर्णामुच्चारतनम् ॥ ३ ॥  
 दुर्णामां च सुनामां चोमा संवृत्तमिच्छतः ।  
 अरायानप हन्मः सुनामा स्त्रैर्मिच्छताम् ॥ ४ ॥  
 यः कृष्णः केभ्यस्तुर स्तम्बज उत तुष्टिकः ।  
 अरायानस्या मुष्काम्यां भंससोप हन्मसि ॥ ५ ॥

अर्थ—( मा स वृत्तः ) मत रह, ( मा उप सुप ) न पास जा, ( ऊरु अन्तरा  
 मा अथ सुप ) जघाओंके बीच न रह । ( अस्यै भेषज कृणोमि ) इसक  
 लिय औषध बनाता हूँ, यह औषध ( वज्र दुर्णामुच्चारतन ) वज्र नामक है  
 इससे दुर्णाम कृमि दूर होते हैं ॥ ३ ॥

( दुर्णामा च सुनामा च उमा ) दुष्ट नामवाला और उत्तम नामवाला  
 ये दोनों ( स वृत्त इच्छतः ) संगति करना चाहते हैं, उनमेंसे ( अ-रायान  
 अप हन्मः ) निकटोंका हम नाश करते हैं और जो ( सुनामा ) उत्तम  
 नामवाला है वह ( स्त्रैर्मिच्छतां ) स्त्रीजातिकी इच्छा करे ॥ ४ ॥

( यः कृष्णः ) जो काला ( केभ्य अस्तुरः ) पालोंवाला अस्तुर है, ( स्तम्बज  
 उत तुष्टिकः ) जो शरीर स्तम्भमें रहता है अथवा स्तम्भमें रहता है इन  
 ( अरायान् ) दुष्टोंका ( अस्याः मुष्काम्यां ) इस स्त्रीक दोमों प्रदेशोंसे तथा  
 ( भंससः ) कटिप्रदेशसे ( अप हन्मि ) हटा देता हूँ ॥ ५ ॥

माषार्थ-रोगजन्तु पास न रहे, प्रसवस्थानमें जघाओंके मध्यमें न जावे,  
 इसको दूर करनेके लिये यह औषध बनाता हूँ, यह वज्र नामक औषध  
 इस दुष्ट कृमिको दूर करता है ॥ ३ ॥

दो प्रकारके कृमि होते हैं, एक दुष्ट और दूसरा हितकारी । दोनों  
 पास आते हैं, उनमें दुष्टको हटाते हैं और उत्तम को स्त्री जातीक पास  
 रक्खते हैं ॥ ४ ॥

काला, पालोंवाला, प्राणघातक, स्तम्भवाला, शरीरके स्तम्भमें रहनेवाला,  
 घातकी, क्षीणता यथानवाला कृमि है, उसको स्त्रीके अग्रपक्षोंसे हटा देता  
 है ॥ ५ ॥

अनुविधं प्रमृशन्तं ऋष्यादमुत रेरिहम् ।  
 अरायाँश्चकिष्किणौ यजः पिबो अनीनशत् ॥ ६ ॥  
 यस्त्वा स्वप्ने निपद्यतु भ्राता मूत्वा पितेर्व च ।  
 प्रजस्तान्तसंहतामिवः क्लीयरूपस्तिरीटिनः ॥ ७ ॥  
 यस्त्वा स्वपन्ती त्सरति यस्त्वा दिप्सति जाग्रतीम् ।  
 छायामिव प्र तान्तसूर्यः परिक्रामन् अनीनशत् ॥ ८ ॥

अर्थ (अनुविधं प्रमृशन्तं) गन्ध लेनेसे नाश करनेवाले, स्पर्श करनेवाले, लेका नाश करनेवाले, (ऋष्याद् उत रेरिह) मांस खानेवाले और हिंसक (चकिष्किणः अरायान्) कुत्तेके समान कष्ट देनेवाले निःसंश्व करनेवाले रोगपीजाको (पिबः यजः अनीनशत्) पीला यज औपच नाश करता है ॥ ६ ॥

(भ्राता मूत्वा) भाई यनकर (पिता इव च) अथवा पिता यनकर, (त्वा यः स्वप्ने निपद्यते) तेरे पास जो स्वप्नमें आता है, (क्लीयरूपान् तान् तिरीटिनः) क्लीयरूप उन गुप्त रहनेवाले रोजपीजाको (इतः यजः संहतां) यहांस यज औपच हटा देंगे ॥ ७ ॥

(स्वपन्ती त्वा यः त्सरति) सोनी हुई तेरे पास जो आता है, (यः जाग्रती त्वा दिप्सति) जो जागती हुई तेरे पास आकर कष्ट पहुंचाता है, (सूर्यः छायां इव) सूर्य जैसा अन्धकारका नाश करता है, उस प्रकार (परिक्रामन् प्र अनीनशत्) घ्रमण करता हुआ उनका नाश करे ॥ ८ ॥

भाषार्थ—कई बिभी सूपमेसे प्राणघात करते हैं, कई स्पर्शसे नाश करते हैं, कई मांसको क्षीण करते हैं, कई अन्य रीतिसे घात करते हैं, कई कष्ट देते हैं; उन सय रोगपीजाको पीली यज औपचि हटादेती है ॥ ६ ॥

भाई अथवा पिताके स्वप्ने स्वप्नमें जो आते हैं, व निर्यल हैं, परन्तु घातक होत हैं, उनको हम यज औपचिसे हटाया जा सकता है ॥ ७ ॥

सोनेकी अवस्थामें अथवा जागनेकी अवस्थामें जो रोगपीज पास आते हैं, उनको सूर्य अन्धकार का नाश करने के समान नाश करता है ॥ ८ ॥

यः कृणोति मृतवत्सामवतोकामिमां स्त्रियम् ।

तमोषधे त्वं नाशयस्माः कमलमञ्जिवम् ॥ ९ ॥

ये शालाः परि नृस्यन्ति साय गर्दमनादिनः ।

कुसुला ये च कुक्षिलाः ककुमाः करुमाः सिमाः ।

तानोषधे त्वं गन्धेन विपूषीनान् वि नाशय ॥ १० ॥ ( १४ )

अर्थ—( यः इमां स्त्रिय ) जो इस स्त्रीको ( मृतवत्सां अवतोकामिमां कृणोति ) मरे पक्षीवाली अथवा गर्भपात होनेवाली करता है, हे औषधे ! ( त्वं अस्माः त नाशय ) तू इसके उस रोगका नाश कर तथा ( कमलमञ्जिवम् अजिब ) गर्भद्वाररूपी कमल को रोगरहित कर ॥ ९ ॥

( ये गर्दमनादिनः ) जो गधेके समान शब्द करनेवाले ( साय शालाः परिमृष्यन्ति ) साय कालके समय घरोंके चारों ओर नाचते हैं, ( कुसुलाः कुक्षिलाः ) सूईके समान अम्र भागवाले, पड़े पेट वाले, ( ककुमाः करुमाः सिमाः ) तेड़े मेड़े, बुरा शब्द करनेवाले, छोटे रोगाक्षिमि हैं, हे औषधे ! ( त्वं तान् गन्धेन ) तू उनकी अपने गंधसे ( विपूषीनान् विनाशय ) फैला कर नाश कर ॥ १० ॥

भावार्थ—जो रोगपीज स्त्रीको मृतवत्सा अथवा गर्भपात करनेवाली बनाते हैं, उन रोगपीजोंका नाश कर और उस स्त्रीका गर्भस्थान नीराग बना ॥ ९ ॥

गधेके समान बुरा शब्द करनेवाले मच्छर आदि जो सायकालके समय घरक पास नाचत और गाते रहते हैं, जिनके मुखमें सूईके समान चुभन वाला शस्त्र रहता है, जिनका पेट बड़ा, और तेढामेढा होता है और जिनके शब्दसे दुःख होता है, उन रोगक्षिमी मच्छर आदिकोंको उग्र गंधवाली औषधिसे चारों ओर फैलाकर नाश करो ॥ १० ॥

ये कुकुषाः कुहुरभाः कुर्वाणानि विप्र्रिणि ।  
 क्लीषा इय प्रनृत्यन्ता वने य कुवन् पाप तानिना नाशयामसि ॥ ११ ॥  
 य मृषं न निनिक्षन्त आपर्षन्नमसु त्रिषः ।  
 अरापान वल्लभाविना दुर्गन्धीन्द्राहिनाम्यान् मर्षवान नाशयामसि ॥ १२ ॥  
 य आत्मानमनिमात्रमर्ष आषाय विप्र्रिणि ।  
 स्त्रीणां श्रणिप्रतादिन इन्द्र रक्षामि नाशय ॥ १३ ॥

अर्थ (य कुकुषाः कुहुरभाः) जा पुरा जन्तु करन ह और धादस यमकने ह और जो ( क्लीषाः कुर्वाणि विप्र्रिणि ) पाप्मन्याले दुष्टकरणके साधनाको धारण करत ह, ( ये पाप कुर्वन् ) जा जन्तु करन हुए ( क्लीषा इय वन प्रनृत्यन्तः ) क्लीषाक समान वनमें नाचन ह, ( तान् इतः नाशयामसि ) उनको यहाँस नाश करन ह ॥ ११ ॥

( य त्रिषः आपर्षन्न अमु सूर्ये न निनिक्षन्त ) जा शुभाकस आनवाळ इस सूर्यको नहः सुहम कर सकन, उन (अरापान वल्लभाविनाः) मृष्यहीन करनेवाळ यर्मम रहनेवाळ ( दुर्गन्धीन्द्राहिनाम्यान् ) दुर्गंधवाळ रक्त युक्त सुहयाळे, ( मर्षवान नाशयामसि ) मच्छराको यहाँस नाश करो ॥ १२ ॥

( यः आत्मान अनिमात्र अमु आषाय ) जा अपन आपका अन्यत रूपम् कथपर बडाकर ( विप्र्रिणि ) धारण करना ह, ह इन्द्र ! उन ( स्त्रीणां प्रतादिनः रक्षामि नाशय ) स्त्रियाँक गर्भयोगका पीटा करनेवाळ राग मृषियाँका नाश कर ॥ १३ ॥

भाषा-पुरा जन्तु करनेवाळ, मय मित्कर बडा आवाज करनेवाळ, सुलभ वादन और श्रुत करनक साधन रखनेवाळ, वनम मायमवाळ रागात्पादक मच्छर आदि निमियाँका यहाँस हटा आ ॥ ११ ॥

शुभाकस प्रकाशनवाळ सूर्यक प्रकाश का जा सह नहीं सकन, दुर्गंधि पुरा यर्म आदि पदार्थोंम जो रहन ह, उन रक्त रीनवाळ मच्छराका कम नाश करन ह ॥ १२ ॥

जा अपन आपका कथक सार उपर ही उपर धारण करना ह, वह रागकम स्त्रीक गर्भयोगका राग बनानवाळ ह, उनका नाश कर ॥ १३ ॥



यः कृष्णोर्ति मृतवत्सामवतोक्तामिमां स्त्रियम् ।

तमोपधे स्व नाशयस्वाः कमलमञ्जिषम् ॥ ९ ॥

ये शालाः परि नृत्स्यन्ति साय गर्दमनादिनः ।

कुसुला ये च कुक्षिलाः कंकुमाः कुरुमाः क्षिमाः ।

तानोपधे स्व गधेन विपूषीनान् वि नाशय ॥ १० ॥ ( १४ )

अर्थ—( यः इमां स्त्रिय ) जो इस स्त्रीको ( मृतवत्सामवतोक्तां कृष्णोर्ति ) मरे पक्षावाली अथवा गर्भपात होनेवाली करता है, हे स्त्रीवधे ! ( स्व मस्याः त नाशय ) तू इसके उस रोगका नाश कर तथा ( कमल मञ्जिष ) गर्भद्वाररूपी कमल को रोगरहित कर ॥ ९ ॥

( ये गर्दमनादिनः ) जो गधेके समान शब्द करनेवाले ( साय शालाः परि नृत्स्यन्ति ) साय कालके समय घरोंके चारों ओर नाचते हैं, ( कुसुलाः कुक्षिलाः ) सुईके समान अम्र भागवाले, बड़े पेट वाले, ( कंकुमाः ककुमाः क्षिमाः ) तेड़े मेड़े, घुरा शब्द करनेवाले, छोटे रोगक्रिमि हैं; हे स्त्रीवधे ! ( स्व तान् गधेन ) तू उनको अपने गधसे ( विपूषीनान् विनाशय ) फैला कर नाश कर ॥ १० ॥

भावार्थ—जो रोगपीडित स्त्रीको मृतवत्साम अथवा गर्भपात करनेवाली पनात है, उन रोगपीडितोंका नाश कर और उस स्त्रीका गर्भस्थान नीराग बना ॥ ९ ॥

गधेक समान घुरा शब्द करनेवाले मच्छर आदि जो सायकालके समय घरक पास नाचत और गाते रहते हैं, जिनके सुन्धमें सुईके समान चुभन वाला शस्त्र रहता है, जिनका पेट बड़ा, और तेड़ामेड़ा होता है और जिनके शब्दसे दुःख होता है, उन रोगक्रिमि मच्छर आदिकोंको उग्र गधवाली औषधिसे चारा ओर फैलाकर नाश करो ॥ १० ॥

ये कुटुम्भाः कुटूम्भाः कृत्तीदृशानि निघ्नन्ति ।

ह्रीषा इव प्रनृत्पन्तो वने य कुर्वन्त घोषं तानितो नाशयामसि ॥ ११ ॥

ये सूर्यं न तितिक्षन्त आतर्पन्तममुं दिवः ।

अरापान् वस्तवासिनीं दुर्गं घ्रीछोहिताम्यान् मक्कान् नाशयामसि ॥ १२ ॥

य आत्मानमतिमात्रमसे आषाय विघ्नति ।

स्त्रीणां भोगिप्रतोदिन इन्द्र रक्षांसि नाशय ॥ १३ ॥

अर्थ (ये कुटुम्भाः कुटूम्भाः) जा बुरा शब्द करते हैं और थोड़ेसे चमकते हैं और जो (कृत्ती, दृशानि विघ्नति) काटनेवाले वृक्ष करनेके साधनोंको धारण करते हैं, (ये घोष कुर्वन्ते) जो शब्द करते हुए (ह्रीषा इव वने प्रनृत्पन्तः) ह्रीषाके समान वनमें नाचते हैं, (तान् इतः नाशयामसि) उनको यहाँसे नाश करते हैं ॥ ११ ॥

(ये दिवः आपतन्त अमुं सूर्यं न तितिक्षन्ते) जो शुलोकसे आनेवाले इस सूर्यको नहीं सहन कर सकते, उन (अरापान् वस्तवासिनः) सत्त्वहीन करनेवाले चर्ममें रहनेवाले (दुर्गन्धीन् छोहिताम्यान्) दुर्गंधवाले रक्त युक्त मुहवाले, (मक्कान् नाशयामसि) मक्कराको यहाँसे नाश करो ॥ १२ ॥

(यः आत्मानमतिमात्रमसे आषाय) जो अपने आपको अत्यन्त रूपसे कंधेपर चढाकर (विघ्नति) धारण करता है, हे इन्द्र ! उन (स्त्रीणां प्रतोदिनः रक्षांसि नाशय) स्त्रियोंके गर्भभागको पीड़ा करनेवाले रोग कृमियोंका नाश कर ॥ १३ ॥

भाषार्थ-बुरा शब्द करनेवाले, सप मिलकर बड़ा आवाज करनेवाले, मुखमें काटने और वृक्ष करनेके साधन रखनेवाले, वनमें नाचनेवाले रागोत्पादक मक्कर आदि विभिन्नियोंको यहाँसे हटा दो ॥ ११ ॥

शुलोकसे प्रकाशनेवाले सूर्यके प्रकाश का जो सह नहीं सकते, दुर्गंध युक्त चर्म आदि पदार्थोंमें जो रहते हैं, उन रक्त पीनेवाले मक्कराको हम नाश करते हैं ॥ १२ ॥

जो अपने आपको कन्धेक सहार ऊपर ही ऊपर धारण करता है, यह रोगकृमि स्त्रीके गर्भाशयका रोग पनानेवाला है, उसका नाश कर ॥ १३ ॥

य पूर्वं षष्ठोऽं यन्ति हस्ते शृङ्गाणि विभ्रतः ।

आपाकेष्टाः प्रहासिनः स्तम्भे ये कुर्वन्तु ज्योतिस्तान्तिवो नाशयामसि ॥ १४ ॥

येषां प्रधात् प्रपदानि पुरः पाष्णीः पुरो मुखी ।

खलजाः शकधूमजा उरुण्डा ये च मन्मटाः कुम्भमुष्का अपाशयः ।

तानस्या ब्रह्मणस्पते प्रतीवोधेन नाशय ॥ १५ ॥

पर्यस्ताश्च अग्रचक्ष्वा अस्त्रिणाः सन्तु पण्डगाः ।

अब मेपज पादय य इमाः सविष्टस्तपतिः स्वपतिं त्रिपम् ॥ १६ ॥

अर्थ ( ये पूर्वं हरते शृङ्गाणि विभ्रतः ) जो पहिले अपने हाथ में सींगों का लेकर ( वक्त्रः यन्ति ) स्त्री के पास पहुँचते हैं, ( ये आपाकेष्टाः प्रहासिनः ) जो पाक स्थान में रहते हैं और जो हँसते हैं, ( ये स्तम्भे ज्योतिः कुर्वन्ते ) जो स्तम्भ में प्रकाश करते हैं, ( इतः तान् नाशयामसि ) यहाँ से उनको नाश करते हैं ॥ १४ ॥

( येषां प्रपदानि प्रधात् ) जिनके पाँव पीछे और ( पाष्णीः पुरः ) पक्षियों आगे हैं और ( मुख्या पुरः ) मुख भी आगे है, ( खलजाः शकधूमजाः ) जल में उत्पन्न, गोबर के धूम से उत्पन्न, ( उरुण्डा ये च मन्मटाः ) जो बड़े मुखवाले और कष्ट पहननेवाले ( कुम्भमुष्काः अपाशयः ) बड़े अण्डवाले गतिमान होते हैं उनको हे ब्रह्मणस्पते ! ( अस्याः तान् ) इस स्त्री के उन रोगबीजों को ( प्रतीवोधेन नाशय ) ज्ञान से नाश कर ॥ १५ ॥

( पर्यस्ता-अक्षाः ) जिनकी आँखें बिलंबी हैं, ( अ-प्र-चक्ष्वाः ) विशेष क्षीण, ( पण्डगाः ) निर्बुद्ध मनुष्य ( अ-स्त्रिणाः सन्तु ) स्त्रीसुख से रहित हो । ( इमा स्वपतिं त्रिपम् ) इस अपने पतिके साथ रहनेवाली स्त्री को जो ( अ-पतिः सविष्टस्तपतिः ) स्वयं किसीका पति न होता हुआ प्राप्त करने की इच्छा करता है, हे ( मेपज ) औपध । उसको ( अवपादय ) नीचे गिरा ॥ १६ ॥

भाषार्थ-जो अपने पास सींग रखता है, पाण्डूदन्त रहते हैं, जो समकत हैं और त्रिपाक पाम जाकर रोग उत्पन्न करता है, उन रागद्विषों का यहाँ से नाश करो ॥ १४ ॥ इनके पाँव पीछे की ओर और एहि आगे की ओर होती है, मुख भी आगे की ओर होता है, जो गोबर आदि से उत्पन्न होते हैं वे बड़ा कष्ट देनेवाले रागबीज यहाँ से हटा दो ॥ १५ ॥

उद्धर्षिण सुनिकेश अम्भयन्त मरीमुक्षम् ।

उपेयन्तमुद्धम्बलं पुण्डेलमुत शालुहम् ॥

पदा प्र विष्य पाष्ण्यां स्थालीं गौरिव स्पन्दना ॥ १७ ॥

यस्ते गर्भं प्रतिमुद्याज्जातं वा मारयाति ते ।

पिष्टस्तमुग्रघन्वा कृणोतु हृदयाविषम् ॥ १८ ॥

ये अन्नो ज्ञातान् मारयन्ति स्मृतिंका अनुधरेते ।

स्त्रीभागान् पिबन्ते गन्धर्वांश्च वातो अन्नमिवाबतु ॥ १९ ॥

अर्थ—(स्पन्दना गौः स्थालीं इव) कूदनेवाली गाय जिस प्रकार घुसपात्रको छायसे इकेलती है उस प्रकार (पाष्ण्यां पदा च) पंखि और पक्षसे (उद्धर्षिण सुनिकेश) झूटमूठ करनेवाले, सुनियोंके समान केशधारी कपटी, (अम्भयन्त मरीमुक्षं) हिंसक और बुरा स्पर्श करनेवाले (उपेयन्त उद्धम्बलं) पास जानेवाले, मारनेवाले, (पुण्डेल उत शालुह) भयानक मुँह वाले और बुद्धको (प्रविष्य) बिशेष रीतिसे वेच डाल ॥ १७ ॥

(या ते गर्भं प्रतिमुद्यात्) जो तेरे गर्भका नाश करे, और (ते जात वा मारयाति) तेरे जन्मे हुए बालक को जो मारता है, (त) उसको (उग्रघन्वा पिणः) उग्रघनुषांरी पीतवर्णवाला (हृदयाविष कृणोतु) हृदयमें प्रहार करे ॥ १८ ॥

(ये अन्नः ज्ञातान् मारयन्ति) जो आपे उत्पन्न गर्भोंको मारते हैं, जो (स्मृतिंकाः अनुधरेते) प्रसूती गृहमें रहते हैं, उन (गन्धर्वांश्च स्त्रीभागान्) गन्धवान् स्त्रीयोंके भागमें रहेवाले रोगकृमियोंको (पिणः) पीली बज औषधि (वातः अन्न इव) वायु मेघको हटा है वैसे (अजतु) हटा देवे ॥ १९ ॥

भाषार्थ—जिनकी आँखें खराब होती हैं, जो बिशेष क्षीण हैं, वे स्त्रीसे सम्पत्ति न रखें। जो पुरुष अपनी स्त्रीको छोड़ कर अम्पकी स्त्रीसे कुकर्म करता है, उसको औषधसे गिरा दो ॥ १७ ॥

जैसी गौ महीका धर्तन तोड़ती है, उस प्रकार पंखी और पाँव से झूठे, सुनिवेशधारी, हिंसक दम्भी आदि सब प्रकारके दुष्ट मनुष्यको वेच डाल ॥ १७ ॥ जो गर्भका नाश करेगा, अथवा उत्पन्न हुए बालकको खावेगा, उसके हृदयपर प्रहार कर ॥ १८ ॥

परिसृष्टं धारयतु यद्वितं मावं पाहि तत् ।

गर्भं च उग्रौ रक्षतां भेषजौ नीषिमार्यौ ॥ २० ॥ ( १५ )

पवीनसात् तज्जस्वाद्गच्छायकादुत नम्रकात् ।

प्रजायै पत्ये त्वा पिङ्गः परि पातु किमीदिनः ॥ २१ ॥

इषास्त्र्याचतुरक्षात् पञ्चपादादनग्गुरे ।

वृन्तादभि प्रसर्पेत् परि पाहि बरीवृतात् ॥ २२ ॥

अर्थ—( परिसृष्ट धारयतु ) सब प्रकारसे उत्पन्न हुए गर्भका धारण करे । ( यत् हित तत् मा अय पाहि ) जो गर्भ रक्षा है वह न गिरे । ( नीषिमार्यौ उग्रौ भेषजौ ) कपड़ेमें धारण करने योग्य दोनों उग्र औषध ( ते नम्र रक्षतां ) तेरे गर्भकी रक्षा करें ॥ २० ॥

( पवीनसात् तज्जस्वाद् ) बज्रसमान नाकवाले, बड़े गालवाले, ( ज्ञाव कात् उत नम्रकात् ) काले और नगे ( किमीदिनः ) भूले रोगक्षमिसे ( प्रजायै पत्ये ) प्रजा और पतिके सुखके कारण ( पिङ्गः त्वा परिपातु ) पीला औषध तेरी रक्षा करे ॥ २१ ॥

( इषास्त्र्यात् चतुरक्षात् ) दो सुखवाले, चार आँखवाले, ( पञ्चपादात् अनग्गुरे ) पाँच पाँववाले और बिना अशुष्टियोंवाले ( अभिप्रसर्पेत् बरीवृतात् वृन्तात् ) आगे बढ़नेवाले घेरे हुए जड़ोंसे युक्तसे ( परिपाहि ) रक्षा कर ॥ २२ ॥

वाचार्थ—जो जन्मे बाळकोंको मारता है, जो सूतिकाग्रहमें रहते हैं, जो क्षिपोंक पास रहते हैं उम रोगक्षमियोंको यह पीछी औषधि दूर करे ॥ २० ॥ गर्भाशयमें गर्भकी उत्तम धारणा हो, गर्भ न गिरे, दोनों उग्र औषधियाँ गर्भकी रक्षा करें ॥ २० ॥

प्रजाकी सुरक्षितता के लिये बज्रनासिकावाले, बड़े गालवाले, काले भूले रोगक्षमिसे पीछी औषधिके द्वारा तेरी रक्षा करते हैं ॥ २१ ॥

दो सुखवाले, चार आँखवाले, पाँच पाँववाले, अशुष्टिरहित, रोगक्षमि जो पास आते हैं, उनसे रक्षा हो ॥ २२ ॥

य आम मांसमदन्ति पौरुषेयं च ये क्रुधिः ।  
 गर्भान् खादन्ति केशवास्तानितो नाशयामसि ॥ २३ ॥  
 ये सूर्यात् परिसर्पन्ति स्नुषेव शशुरादधि ।  
 वज्रं तर्षां पिङ्गं हृदयेऽधि नि बिभ्यताम् ॥ २४ ॥  
 पिङ्गं रक्ष नार्यमानं मा पुमांसं स्त्रियं क्रन् ।  
 आप्ताहो गर्भान्मा वमन् वापस्तेतः किमीदिनः ॥ २५ ॥  
 अप्रजास्त्व मार्तवस्तमाद् रोवमपमावयम् ।  
 वृक्षादिब्रह्मं कृत्वाग्निं प्रति मुञ्च तत् ॥ २६ ॥ ( २६ )  
 ॥ इति तृतीयोऽनुवाकः ॥

अर्थ—( ये आम मांस अदन्ति ) जो कदा मांस खाते हैं, ( ये च पौरुषेय क्रुधिः ) और जो पुरुषका मांस खाते हैं, ( केशवाः गर्भान् खादन्ति ) बाछोंवाले जो गर्भोंको खाते हैं ( तान् इतः नाशयामसि ) उनको पहासे हम हटा देते हैं ॥ २३ ॥

( ये सूर्यात् परिसर्पन्ति ) जो सूर्यसे पीछे हटते हैं ( शशुरात् स्नुषा इव अधि ) जैसे शशुरस बहुत दूर जाती है । ( वज्रः च पिङ्गः च ) वज्र और पिङ्ग ( तेषां हृदये अधि निबिभ्यताम् ) उनके हृदयके ऊपर डेध करें ॥ २४ ॥

हे ( पिङ्ग ) पीछे औपच ! ( आयमानं रक्ष ) उत्पन्न होनेवाले बाछककी रक्षा कर ( पुमांसं स्त्रियं मा क्रन् ) पुरुष और स्त्रीको न मारें । ( आप्ताहः गर्भान् मा वमन् ) अण्ड खानेवाले गर्भोंका न नाश करें । ( इतः किमीदिनः वापस्व ) पहासे खूबे किमियोंको दूर कर ॥ २५ ॥

( अप्रजास्त्व ) बच्चापन, ( मार्तवस्तमाद् ) बच्चोंका मरना, ( आत रोव ) रोमा पीटना, ( अयं आवय ) पापका भोग ( तत् ) यह सब बुझ ( वृक्षाद् ब्रज इव ) वृक्षसे फल गिरनेके समान ( अग्निं प्रतिमुञ्च ) अग्नि स्थान में छोड़ दो ॥ २६ ॥

भावार्थ—जो कदा मांस खाते हैं, गर्भोंको खाते हैं, उनको पहासे नाश कर ॥ २३ ॥

जो कृमि सूर्यसे छिपते हैं, सूर्यकिरणोंके सामने ठहर नहीं सकते, उनका नाश वज्र औपचिसे कर ॥ २४ ॥

उत्पन्न होनेवाले बच्चेकी रक्षा कर । स्त्री पुरुषको सुख न दो । अण्ड स्थानेवाले गर्भका नाश न करे । पुष्टीको यहाँसे दूर कर ॥ २५ ॥

ध्यापन, पचे भरना, रोनेकी ओर प्रवृत्ति, पाप प्रवृत्ति, ये सब दोष हट जाय । पृष्ठसे फूल गिरनेके समान ये सब दोष मनुष्यसे दूर हों ॥ २६ ॥

### प्रसूतिके दोष ।

प्रसूतिके समय स्त्रियोंको विविध रोग होते हैं, उसका कारण मलिनता है, अतः इस स्थानकी पवित्रता करके और कुछ औषधियोंका उपयोग करके स्त्रियोंके प्रसूतिके कष्ट दूर करने चाहिये, इस महत्वपूर्ण विषयका वर्णन इस सूक्तमें कहा है । इसका अर्थ 'मातृ-नामा' है अर्थात् यह माता है । माताओंके अनुभव सूक्ष्मरीतिसे इकट्ठा करके सग्रह करके जो अनुभवज्ञान प्राप्त हो सकता है, वह इस सूक्तमें है । इस सूक्त का विषय इसी सूक्तके ९ व मन्त्रमें कहा है—

यः स्त्रियं मृतवत्सं अयतोकां करोमि ।

अस्याः तं नाशय, कमल अक्षिष्य ( कुरु ) ॥ ( म० ९ )

“जिस रोगके कारण स्त्रीक बच्चा मरते हैं, अथवा जिस दोषसे स्त्रीका गर्भ पतनका प्राप्त होता है, उस स्त्रीका वह दोष दूर करना चाहिये और उसके गर्भाश्रयको निर्दोष बनाना चाहिये । यह इस सूक्तका साध्य है । स्त्रीका गर्भपात न हाथ और बाल बच भी दीर्घायु हों । यह उपाय करना इस सूक्तका वाञ्छित विषय है । यह विषय सब स्त्रीजातिका हित करनेवाला होनेके कारण बड़ा उपयुगी है । सब कुटुम्बी इससे लाभ उठा सकते हैं । इस सूक्तमें कहा है कि एतिकाश्रुमें कुछ रागबीज होते हैं अथवा बारह घुसते हैं, उनका नाश करनेके लिये 'बभ्र पिंग' नामक औषधि है, देखिये—

ये अग्रः जालान् मारयन्ति, सूतिकाः अनुशोते ।

स्त्रीभागान् पिङ्गः अजसु ॥ ( म० १९ )

“जा रागबीज अम दुष्ट बणोंका मारते हैं, ये एतिकाश्रुमें रहते हैं, वेही स्त्रियोंक भागोंमें पहुँचते हैं । उनका दूर करनेके लिये पिंग नामक औषधि है ।” इस पिंग औषधिकी विचार हम आगे करेंगे, यहाँ इतनाही दखना है कि ये रागबीज एतिकाश्रुमें ममोंक कारण उत्पन्न होते हैं । और इसके कारण गर्भसाध होता है, गर्भपात

होता है और बचभी मरवाते हैं । प्रायः सूर्यकाशमें अज्ञानी लोग अन्धेरा रहते हैं, सूर्यप्रकाश वहाँ नहीं पहुँचता, अतः अंधेरेके दोषसे ये रोगभीषण वहाँ होते और बढ़ते हैं, ये सूर्यप्रकाशमें नहीं रहते, इस विषयमें निम्नलिखित मन्त्र देखिये—

ये सूर्यात् परिसर्पयन्ति स्तुपेष श्वशुरादपि ।

यजः तेषां हृदये अग्नि निविध्यताम् । ( म० २४ )

“ ये रोगभीषण सूर्यप्रकाशसे दूर भागते हैं जिस प्रकार बहुत श्वशुरसे दूर भागती है । उन रोगक्रियोंके हृदयोंपर यज औषधि बड़ा चक्का लगाती है । ” यहाँ उपमा उत्तम रीतिसे विचार करनेयोग्य है । बहुत अर्थात् स्तुपा श्वशुरके पास नहीं ठहरती, वह उसके ससूखमी खड़ी नहीं होती, श्वशुर जाते ही पीछे हटकर भागती है । उसी प्रकार ये रोगभीषण सूर्यप्रकाश के ससूख खड़े नहीं रह सकते, सूर्यप्रकाशमें जीवित भी नहीं रह सकते, वहाँ सूर्यप्रकाश पहुँचता है वहाँ य नहीं रहते । अतः अहाँ नीरोगता करनेकी इच्छा हो वहाँ सूर्यप्रकाश विपुल रखना चाहिये । यदि प्रसूतिसृष्टिके रोगभीषण नष्ट करनेकी इच्छा हो तो वहाँ सूर्यप्रकाश पहुँचानेकी व्यवस्था करना चाहिये ।

यज औषधि इनके हृदयोंपर प्रहार करती है ऐसा वहाँ कहा है, इससे इनको हृदय है यह बात सिद्ध होती है । अर्थात् य रोगभीषण हृदयवाले होनेस कृमिरूप हैं, ये निर्जीव नहीं हैं, य कृमि चूँकि अंधेरेमें बढ़ते हैं और सूर्यप्रकाशमेंनाशको प्राप्त होते हैं, अतः इनसे बचनेका उपाय सूर्यप्रकाश ही है यह बात निश्चित होगयी है । परमेश्वर ने सूर्यप्रकाश एक ऐसी औषधि दी है कि जिससे अनेक रोग दूर होते हैं और मनुष्य नीराग और दीर्घायु हो सकता है । इसलिये कहा है—

अप्रजास्त्वं मारुतवत्स रोद अथ आशय प्रतिसृज्य । ( म० २६ )

“संतान न होना, बच्चे पैदा होनेके बाद मरने, उसकारण रोने पीटनेका समय होना, पापाचारणमें प्रवृत्ति होना, इत्यादि बातोंस मनुष्यको मुक्त होना चाहिये । ” अर्थात् मनुष्यको ऐसा प्रवृत्त करना चाहिये कि घरमें सतति पैदा होने, उत्पन्न हुए बच्चे न मरे दीर्घकाल जीवित रहें, मनुष्यको कुटुंबियोंकी मृत्युके कारण राने पीटनेका समय न आवे, सब कुटुंबि जानबूझे कालक्रमण करते रहें और किसीकी प्रवृत्ति पापकी ओर न होवे । यह साध्य करनेके लिये विपुल सूर्यप्रकाशमें रहनेकी अत्यंत आवश्यकता है । इसका कार्यकारणमात्र यह है कि सूर्यप्रकाशस नीरोगता होती है,



रोगबीज दूर होते हैं, नीरोग होनेसे शरीर पुष्ट और वीर्यवान् होता है । बीजुक्तोंसे शरीर वीर्यवान और दृढपुष्ट होनेसे ऐसे दोनों पतिपत्नियोंसे होनेवाला बर्मावान उत्पन्न होता है, वह स्थिर होता है सत्तान नीरोग, बलवान और सुदृढ होता है, वीर्यवीर होता है, बर्माव् ऐसे सत्तान होनेसे अपमृत्युके कारण होनेवाली रोगेपीडनेकी सम्भावना नहीं होती, इत्यादि साम पाठक विचार करके जान सकते हैं । प्रवृत्तिगृहका आरोग्य रखनेसे ऐसे अनेक लाभ होते हैं । और प्रवृत्तिगृहका आरोग्य सूर्यप्रकाशसे स्थिर हो सकता है, अतः कहा है—

यः स्वपन्तीं जाग्रतीं विप्सति ( त ) सूर्यः अग्निनाम् ॥ ( म० ८ )

“ जो रोगबीज सोती हुई या जागती हुई स्त्रीके शरीरमें आकर उनको कष्ट देता है, उस रोगबीजका नाश सूर्य करता है । ” सूर्यप्रकाशसे ये सब रोगबीज दूर होवें, रोगयन्तु भी सूर्यप्रकाशसे दूर हटवें हैं, यह बात आजका नवीन ज्ञान भी कहता है । अब पाठक देखें कि यदि हमारे प्रवृत्तिगृह इस वेदाश्रमके अनुसार बनाये जायें, तो कितना कल्याण होगा । परंतु इसका विचार बहुत थोड़े लोग करते हैं, इसी सूर्यप्रकाशका महत्त्व निम्नलिखित मन्त्रमें विशेष रीतिसे कहा है—

ये सूर्य न तिलिक्ते तान् माशायामसि । ( म० १९ )

“ या सूर्यको नहीं सह सकत उन रोगकृमियोंका नाश हम करते हैं । ” यहाँ कहा है कि ये रोगयन्तु सूर्यप्रकाशको सह नहीं सकते । अन्धकारमें ही ये होव, बढ़वें और रोगास्पति करवें हैं । जो सूर्यप्रकाशको सह नहीं सकते, वे सूर्यप्रकाशसे ही नष्ट होवें हैं । वृत्तिगृहका आरोग्य इस प्रकार सूर्यप्रकाशसे सहसहीमें प्राप्त हो सकता है अतः कहा है—

यः गर्भं प्रतिशृणात् जात वा मारयाति ।

त पिंगः घृक्षयाविष शृणोतु । ( म० १८ )

“ जो रोगकृमि गर्भका नाश करता है, अग्निमें दूषण बचका नाश करता है, उतका पिंगलघर्णका सूर्य ( अथवा पीली औषधि ) दृश्यमें बध करक नाश कर । ” यहाँ ‘ पिंग ’ शब्दके दोनों अर्थ होना संभव है । सूर्य भी ( पिंगल ) पीठ वर्ण हाता है और वह वनस्पति भी पीलीदि पीली हाती है । जो रोगकृमि पूर्वोक्त प्रकार प्रवृत्तिगृहमें अश्वमेध और मधिनवामे उत्पन्न होवें हैं, वे इस प्रकार नाश करवें—

य आम मांस म्नाशति, ये पीरुपय न मविः ।

वशायाः गर्भान् प्यादति तान् इतः माशायामसि । ( म० २३ )

“ ये रोगजन्तु धरीरका कषाहि मांस खाते हैं, मानवी धरीर के पुत्र वहाँके वहाँही खाते हैं, येही गर्भोंको खाते हैं, अतः उन का नाश करना उचित है । ” उनका नाश करना सूर्यप्रकाशसेहि हो सकता है । अब ये रोगक्रिमी धरीरमें घुसत हैं तब वहाँ व खाते हैं वहाँ रक्त और मांस खाकर मनुष्यको क्षीण करते हैं, और यदि ये गर्भमें पहुँचे तब गर्भको भी सुखा देते हैं, इसलिये सूर्यप्रकाश की धारण जाना अत्यन्त योग्य है । अतः कहा है—

पिंग जायमान रक्त, पुर्मांस स्त्रिय मा कन् ।

आण्डादः गर्भान् मा दमन्, इतः किमीदिमः पाचस्व ॥ ( म० २६ )

पिंगलवर्ण धर्म ( मयवा औषध ) धन्मे हुए घालककी रक्षा करता है, स्त्री या पुरुष को रोगका अन्तर नहीं देता, गर्भोंको रोगक्रिमि दबा नहीं सकते, और ये जो भूखे क्रिमी हैं उनको सूर्यप्रकाश ही धूर इटादेता है । ” ये सूर्यप्रकाशसे लाभ होते हैं । इस मन्त्रमें इन रोगक्रिमियोंका नाम ‘किमीदिन्’ और ‘आण्डादः’ कहा है । किमीदिन्का अर्थ (किं-इदानीं) अब क्या खायें, अब क्या खायें, ऐसा कहनेवाले ये कृमी होते हैं अर्थात् ये सदा भूखे होते हैं । कभी इनकी भूख शान्त नहीं होती, क्योंकि इनको अनुकूल पदार्थ खानेको मिला, तो वे बहुत संख्यामें बढ़ते हैं और अधिक खानेकी इच्छा करते हैं । इसी प्रकार ये ( आण्डादः ) अण्डमें स्थित बीर्यको खाजाते हैं और मनुष्यको निर्बीर्य बनादेते हैं, इसलिये इनका हमला होनेसे मनुष्य अकालमें मरता है, परन्तु यदि वह मनुष्य सूर्यप्रकाशसे नीरोग बननेका यत्न करेगा, तो इसकी अकालमृत्यु इटती है ।

ये रोगबीज प्रसूतिगृहमें स्त्रीके धरीरपर हमला करते हैं और उसके धरीरमें रोग उत्पन्न होता है । रोग उत्पन्न होनेके पश्चात् उसके निवारणका उपाय करनेकी अपेक्षा रोग न होनेका यत्न करना अधिक सामकारी है, इसलिये कहा है—

जास्तायाः दुर्गामा अलिङ्गः वत्सपः मर गृहत् । ( म० १ )

“ घालक जन्मतेही दुर्गामा, अलिङ्ग और वत्सप ये रोगबीज स्त्रीपर हमला करनेकी इच्छा न करें । ” प्रसूतिगृहमें ये रोगक्रिमी होते हैं और स्त्रीपर हमला करते हैं । अतः ऐसा प्रवचन करना चाहिये कि, ये कृमि प्रसूतिगृहमें न उत्पन्न हों, उत्पन्न हुए तो स्त्रीके धरीरपर हमला न करें, हमला किया तो रोग उत्पन्न करनेमें समर्थ न हों । प्रसूतिगृहमें बज्र नामक औषधि रखनेसे अथवा सूर्यकिरण वहाँ पहुँचानेसे यह बात सिद्ध हो सकती है, अतः कहा है—

यज्ज दुर्गामायातन । ( म० २ )

“सर्व औषधी इष दुर्नाम नायक रोगभीषको दूर करनेवासी होती है ।” वह वनस्पति प्रकृतिगृहमें रखनेसे वहाँ का आरोग्य स्थिर रह सकता है । सब कृमि रोग उत्पन्न करते हैं एसी बात नहीं है, इन कृमियोंमें दो प्रकारके कृमि हैं, उनमेंसे एक अच्छा है और दूसरा बुरा, इस विषयमें निम्नलिखित मंत्र देखने योग्य है—

सुर्णामा च सुनामा च उभौ सवृत इच्छतः ।

अरायान् अप इन्मः । सुनामा क्षीण इच्छताम् ॥ ( म० ४ )

“दो प्रकारके ये कृमि हैं, एक ( सुनामा ) उच्चम नामवाला अर्थात् जो क्षीरमें हितकारी है और दूसरा ( दुः-नामा ) दुष्ट नामवाला, जिससे क्षीरमें रोग उत्पन्न होते हैं । ये दोनों क्षीरपर आक्रमण करना चाहते हैं । इनमें खो ( अ-रावात् ) कृष्ण, अजुदार अथवा दुष्ट होते हैं उनका नाश हम करते हैं; और जो उच्चम हैं वे खीरे पास पहुँचें ।” अर्थात् उच्चम कृमि मनुष्यके लिये हितकारक हैं, परन्तु जो रोगजनक हैं वे ही पाठक हैं, अतः ऐशा प्रवच होना चाहिये कि वे पाठक रोगजनक वहाँ किसीके कष्ट न पहुँचा सकें । ये कृमि किस रूपके होते हैं, इस का वर्णन निम्नलिखित मन्त्रमें कहा है—

द्रुपास्यात् चतुरक्षात् पञ्चपदात् अमशुरैः ।

अभिसर्पतः परिवृतात् श्वन्तात्परिपाहि । ( म० १२ )

“इन कृमियोंको दो मुख, चार आँख और पाँच पाँव होते हैं । इनको अगुलियाँ नहीं होती । ये हमला चढ़ाते हैं, और सषष्पक्षि से रहते हैं, इनसे बचना चाहिये ।” यह इन कृमियोंका वर्णन है, इसके साथ निम्नलिखित वर्णन और देखिये—

पेर्पा प्रपदामि पश्चात्, पाष्णीं मुष्णामि च पुरः ।

अलजाः शकधूमजाः तरुण्डाः मदमटाः कुम्भसृक्काः

अयाशवाः । अस्थाः तान् प्रतिबोधेम माशाय । ( म० १५ )

“इनके पाँच पीछेकी और तथा एड़ी और मुख आगेकी ओर होता है ।” इन कृमियोंका वर्णन करनेवाले शब्द इस मन्त्रमें ‘अलजाः, शकधूमजाः, तरुण्डाः, मदमटाः, कुम्भसृक्काः, अयाशवाः’ ये हैं, इनमें ‘शकधूमज’ शब्दका अर्थ ‘गोबरक धूँसे उत्पन्न’ है, अन्य शब्दोंके अर्थ अभीतक विशेष विचार करने योग्य स्पष्ट नहीं हुए हैं । पाठक इनकी खोज करें और अधिक यत्नके द्वारा इनके अर्थको जानें । इस दृष्टमें ऐसे और भी बहुतसे शब्द हैं कि जिनका अर्थ स्पष्ट सुलभ नहीं है । ये कृमि स्त्रियोंकी प्रीतिमें रोग उत्पन्न करते हैं, इस विषयमें कहा है—

ये हस्ते शृगाणि विघ्नतः वध्यः यन्ति ।

ये स्तम्भे ज्योतिः कुर्वन्ते ।

ये आ-पाके-ष्ठाः प्रहासिनः नाशयामसि ।

( म० १४ )

“जो हाथोंमें अपने सोंगोको धारण करत हैं और सिके पात्र पहुचते हैं, जो चमकते हैं और पाकघालामें निवास करते हैं, उन का नाश करते हैं ।” ऐसे कुमि स्त्रियोंके शरीरमें घुसते हैं और वहाँ विविध रोग उत्पन्न करते हैं, मतः इनका नाश करना योग्य है । इस वर्णन का ‘ स्तम्भे ज्योतिः करनेका ’ क्या अर्थ है इसका ज्ञान नहीं होता । इसकी भी खोज होनी चाहिये । इस सूक्तमें रोगभक्तियोंके दो भेद कहे हैं एक सूक्ष्म और एक बड़े । यद्वातक सूक्ष्मकुमियोंका वर्णन हुआ अब बड़े मच्छर जैसे कुमियोंका वर्णन देखिये—

### मच्छरोंका गायन ।

गर्दभनादिनः कुसूलाः कुक्षिलाः करुमाः सिमाः ।

साय छाळाः परिवृष्यन्ति, तान् गन्धेन नाशय ॥ ( म० १० )

“ गधे बैसा शब्द करनेवाले, भिनके पास जुमानेके लिये छर्छे बैस इधियार होत हैं भिनका पेट बड़ा होता है, जो सायकालके समय घरके पास नाचते हैं, इनका गाय से नाश कर । ” यह वर्णन प्रायः मच्छरों अथवा मच्छर जैसे कीड़ोंका वर्णन है । वे शब्द करते हैं, सायकाल इनका शब्द सुनाई दता है, इनके काटनेकी सुरवात बड़ी तीक्ष्ण होती है । इनका नाश करनेके लिये उग्रगन्धबाल अथवा सुगन्धबाले पदार्थ बलाना चाहिये । ऊद या धूप बलानेसे और घरमें इसका धुँवाँ करनेसे मच्छर इटते हैं, यह वाक्यका भी अनुभव है । इसी प्रकार उग्रगन्धबाले पदार्थ भी बलानेसे इन कीड़ों को हटाया जा सकता है । इन्हींका वर्णन निम्नलिखित मन्त्रमें है—

### मच्छरोंके शस्त्र ।

कुक्कुन्धाः कुक्कुरमाः कृतीः दृशानि विघ्नति ।

ये घोष कुर्वन्तः यमे प्रवृष्यन्तः, तान् नाशयामसि । ( म० ११ )

“( कृतीः ) काटनेवाले ( दृशानि ) दश करनेके साधन अपनेपास धारण करत हैं । ये शब्द करते हैं और अङ्गलमें नाच करते हैं, इनका नाश करते हैं । ” यह वर्णन भी

पूर्वके समानही मच्छरोंका वर्णन है। मच्छरोंके मुखोंमें जो काटनेके साधन होते हैं, उनका नाम यहाँ 'दूर्ध' दिया है। और काटनेके कारणहि इनको 'कृती' अर्थात् कटनेवाला कहा है। ये ज्वरादिको बढ़ाते हैं इसलिये इनका उग्रमन्त्रवाले पदार्थ बलकर नाश करना उचित है। इस मन्त्रमें और पूर्व मन्त्रमें कई ऐसे शब्द हैं कि बिनाक मर्ष स्पष्ट नहीं प्राप्त होता। ये शब्द खोखले याग्य हैं। तथा और देखिये—

### मच्छरोंके स्थान ।

अरायान् वस्तवास्मिन् दुर्गन्धीन् लोहितास्थान्  
मककान् नाशयामसि ॥ ( म० १२ )

“ ये कुमि वस्त अर्थात् चर्म आदिपर रहते हैं, इनको दुर्गन्ध आती है, इनके हाथ लाल होत हैं, इन मच्छकोंका अर्थात् मच्छरोंका नाश करते हैं। ” इस वंश में 'मकक' शब्द बहुत करके मच्छरोंका वाचक है। 'वस्त' शब्दके निश्चित अर्थ की भी खोज करना आवश्यक है। इन कुमियोंको यहाँ 'अराय' कहा है। इस शब्दका अर्थ 'न देनेवाला' है। ये कुमि आरोग्यको नहीं देते, खुनको नहीं देते, आयुष्यको नहीं देते तथा शरीरकी घोमाओ और बलकीभी नहीं देते हैं। क्योंकि इनसे अनक रोग होत हैं और उस कारण तक पाठोंका क्षय होता है। इन रोगकृषिकोंके कुछ लक्षण निम्नलिखित शब्दोंद्वारा प्रकट होते हैं, अतः ये शब्द अब देखिये, द्वितीय मन्त्रमें निम्नलिखित रोगवन्तुओंके नाम हैं—

### रोगकिमियोंके नाम ।

१ पलाल-अनुपलाली— मांस बिनको अनुकूल है, मांस रखे जो बढ़ते हैं, मांस खाकर बिनकी वृद्धि होती है।

२ शार्कुः— हिंसक, जो नाश करते हैं,

३ कोकः— कामको बढ़ाकर भीर्यनाश करनेवाले,

४ मालिभ्लप्— मलीनतासे बढ़नेवाले, मलीनतामें उत्पन्न होनेवाले,

५ पलीजकाः— पलित रोगका करनेवाले,

६ आभ्रपः— किसीके साथ रहनेवाले,

७ प्रमीलिन— मुर्ती छानवाल,

इस मंत्रक अथशब्द "अभिवामस्, अश्वमीव" य आश करने योग्य है क्योंकि इनका भय स्पष्ट नहीं हुआ है। पंचम मंत्रमें निम्नलिखित शब्द हैं—

८ कृष्णः=काले रंगवाले, किंवा खींचनेवाले,

९ केही=बाछोंवाले अथवा, सन्तुवाले,

१० अ-सुरः=प्राण घात करनेवाले,

११ तुण्डिकः=छोटे मुँहवाले,

१२ अ-रायः=प्रारोग्यादि न देनेवाले,

इस पञ्चम मंत्रमें 'स्तब्ज' शब्द है, इसका अर्थ समझमें नहीं आता है । अतः वह श्लोक की अपेक्षा करता है । पद्यमंत्रमें निम्नलिखित शब्द हैं—

१३ अमुज्जिघ्रः=घूषनेसे शरीरमें प्रवेश करनेवाले, नासिका द्वारा शरीरमें प्रवेश करनेवाले, फेफड़ोंमें जो खात हैं,

१४ प्रसृचान्=स्पर्श करनेवाले, स्पर्शसे प्राप्त होनेवाले, स्पर्शजन्य रोगके बीज,

१५ कृष्पाद्=मांस खानेवाले, शरीरका रक्त और मांस खानेवाले,

१६ रेरिह्=हिंसक, पातक, नाशक,

१७ श्वकिष्की=कुत्तेके समान पीड़ा करनेवाले,

इसी प्रकार अन्य मंत्रोंमें जो शब्द हैं, उनका भी यही विचार करेंगे तो उनसे इन रोगकुर्मियोंका ज्ञान हो सकता है

इन सब रोगबीजोंको 'पिंग बज' बुर करता है । इस विषयमें निम्नलिखित मंत्र माय देखने योग्य है—

## पिंग बज ।

परिस्तुष्ट चारयतु हित मा अवपादि ।

उग्रौ मेपजौ गर्भं रक्षताम् ॥ ( म० २० )

पथीमसात् लगत्वात् छागकात् मग्नकात् किमीदिनः ।

प्रजापे पत्य पिंगः परिपातु ॥ ( म० २१ )

“गर्भाश्रयमें आधान किया हुआ गर्भ उत्तम रीतिसे धारण किया जाये, गर्भाश्रयमें स्थित गर्भ पतनको न प्राप्त हो या वह दोनों तीस औपचर्या उसकी रक्षा करे । इन रोग बीजोंसे उत्तम सतान होनेके लिये पिंग वनस्पतिसे गर्भाश्रयकी रक्षा होवे ।”

इसीसे मंत्रके रोगबीजनाशक शब्द बड़े दुर्बोध हैं तथा इस अन्तर्में कहे “पिंग बज” वनस्पतिका भी कुछ पता नहीं चलता कि यह वह वनस्पति कौनसी है । वैषक

प्रथोमे इसका नाम नहीं है। अतः इसकी खोज होना कठीन है। श्री० सायनाचार्यजीने अपने अथर्वभाष्यमें इस सूक्तपर भाष्य करते हुए इसका अर्थ 'अथर्वसर्व' किया है, अर्थात् "सफ़द सरीसा, सर्पों, राई।" समर्थ है यही 'पिंग वज्र' का अर्थ होना इस गुण वैद्यकप्रथोमे निम्नलिखित प्रकार दिये हैं—

### पिंगवज्र के गुण ।

तिफ्तः तीक्ष्णोष्णः वातकफघ्न, उष्णः कृमिकुष्ठघ्नः ।

सितासित भेदेन द्विधा । ( राज० )

कटूष्णो वातशूलनुत् । गुल्मकण्डूकुष्ठघ्नापहः ।

वातरक्तघ्नहापहः । त्वग्दोषघ्नमनो विषभूतघ्नापहः ।

सर्पपतैलगुणाः—वातकफविकारघ्न कृमिकुष्ठघ्न चक्षुष्यम् ।

"सरीसा तिक्त, तीक्ष्ण, उष्ण, वात और कफको हटानेवाला, कृमि और कुष्ठरोगों को दूर करनेवाला है। श्वेत और काला ऐसे इसके दो भेद हैं। यह कटु, उष्ण, वात शूलका नाश करनेवाला, गुल्म, कण्डू, कुष्ठ, घ्न का नाश करनेवाला है। वात रक्त दापको दूर करनेवाला, त्वग्दोषको दूर करनेवाला, विषसे उत्पन्न ममको हटानेवाला है। सरीसके तैलके गुण ये हैं—वात कफ विकारको दूर करता है, कृमि और कुष्ठ नाश करता है और आँखके लिये हितकर है।"

इसवर्णनमें सर्पोंका गुण कृमिनाशक, कुष्ठनाशक दिया है जो पूर्वोक्त सूक्तके उपर श्लोक साथ संगत है, अतः बहुत समर्थ है कि यही अर्थ 'पिंग वज्र' का होना। इसकी विषय ग्राह्य होना अत्यन्त आवश्यक है। वस्तुतः यह सब सूक्त हि विभिन्न ग्राह्य करने योग्य है क्योंकि इसके कई द्रव्य और कई वाक्य दूषोप ई और आधुनिक काश्याम इनका अध करनेके लिये कोई विषय सहायता नहीं मिलती है। अिनके साथ ग्राह्य करनेके विषय साधन हैं व इस दिशासे यत्न करें।

## औपधि ।

[ ७ ]

( ऋषिः— अथर्षा । देवता—औपधयः । )

या वज्रवो यामं द्रुक्ता रोहिणीरुत पृथ्वयः ।

असिक्नीः कृष्णा औपधीः सर्वा अञ्छार्चदामसि ॥ १ ॥

श्रायन्तामिमं पुरुषं यस्माद् देवेर्पितावधि ।

यासां घाप्तिता पृथिवी माता समुद्रो मूलं धीरुषां वसूषं ॥ २ ॥

अर्थ—( पाः ) जो औपधियाँ ( वज्रवः ) पोषण करनेवाली, ( पाः व द्रुक्ताः ) जो वीर्य बढ़ानेवाली ( उत रोहिणी ) और जो बढ़ानेवाली तथा ( पृथ्वयः ) जो विविध रंगवाली ( असिक्नीः कृष्णाः औपधीः ) इषाम, काली औपधियाँ हैं उम ( सर्वाः अञ्छा आचदामसि ) सबको मुख्यतया पुकारते हैं ॥ १ ॥

( इम पुरुष ) इस मनुष्यको ( देव—इपितात् यस्मात् ) देवसे प्रेरित रोगसे ( अपि आयम्तां ) बचावें । ( यासां धीरुषां ) जिन औपधियोंका ( धीः पिता ) बुलोक पिता, पृथिवी माता और समुद्र मूल ( वसूषं ) हुआ है ॥ २ ॥

भावार्थ—कई औपधियाँ पोषण करनेवाली, कई वीर्य बढ़ानेवाली और कई मांसको भरनेवाली हैं । ये विविध रंगरूपवाली, इषाम और काली हैं इनका औपधिप्रयोगम उपयोग होता है ॥ १ ॥

औपधियाँ भूमिपर उगती हैं और इनकी रक्षा आकाशस्थ सूर्यादिकों से होती है । ये औपधियाँ जल वायु आदि देवोंके प्रकोपसे होनेवाले रोगोंसे बचाती हैं ॥ २ ॥



आपो अग्रे दिव्या ओषधयः ।

तास्ते यस्मिन्स्यः मन्त्रादन्नादनीनशन् ॥ ३ ॥

प्रस्तुणती स्तम्बिनीरेकशुक्लाः प्रतन्वतीरोषधीरा वदामि ।

अंशुमतीः काण्डिनीर्या विशाखा हवामि ये वीरुषो वैश्वदेवीरुग्राः पुरुषजीवनीः ॥ ४ ॥

यद् वः सहः सहमाना वीर्यं, यन् यो बलम् ।

तेनेममस्माद् यस्मात् पुरुष सुश्वतोषधीर्यो कृणोमि भेषजम् ॥ ५ ॥

अर्थ—(आपः अग्रे) जल मुख्य है और (ओषधयः दिव्याः) औषधियाँ भी दिव्य हैं । (ताः ते एनस्य पक्ष्म) ये तेरे पापसे उत्पन्न रोगको (अगात् अगात् अनीनशन्) अगमत्यगसे नाश करते हैं ॥ ३ ॥

(प्रस्तुणतीः) विशेष बिस्तारवाली, (स्तम्बिनीः) गुरुओंवाली, (एकशुक्लाः) एक कोपलवाली, (प्रतन्वतीः) बहुत फैलनेवाली, (ओषधीः आपदामि) औषधियाँ मैं पुकारता हूँ । (अंशुमतीः) प्रकाशवाली (काण्डिनीः) पदोंवाली (याः विशाखाः) जो शाखारहित हैं (त आहवामि) मैं तेरे लिये उनको पुकारता हूँ । ये (वीरुषः वैश्वदेवीः) औषधियाँ विशेष वैबी शक्तिसे युक्त (उग्राः पुरुषजीवनीः) प्रभाव युक्त और मनुष्यका जीवन बढ़ानेवाली हैं ॥ ४ ॥

ह (सहमानाः औषधीः) रोगनाशक औषधियाँ । (यत् वः सहः) जो तुम्हारी सामर्थ्य है, (यत् यो वीर्यं बलम्) और जो वीर्य और बल हैं (तव इमं पुण्यं) उससे इस पुण्यको (अस्मात् यस्मात् सुश्वतम्) इस रोगसे पनाओ । (अग्रे भेषजं कृणोमि) और मैं औषध बनाता हूँ ॥ ५ ॥

भाषार्थ— मुख्य औषध जल है, औषधियाँ भी दिव्य वीर्यवाली हैं । ये वनस्पतियाँ पापसे उत्पन्न होनेवाले हर एक रोगसे पनाती हैं ॥ ३ ॥

यह औषधियाँ बहुत फैलती हैं, यह गुरुओंवाली होती हैं, कई कापतों वाली रहती हैं, कईपाका बिस्तार बहुत होता है । इन सबकी प्रशंसा आनुवंश प्रमाणों वाली है । ये वनस्पतियाँ अनेक दिव्यदायिणीय युक्त होती हैं और मनुष्यका जीवनजीवन करती हैं ॥ ४ ॥

औषधियों का सामर्थ्य, वीर्य और बल है, उससे इस मनुष्यका पर राग दूर होव । इसीके लिये यह औषध बनाया जाता है ॥ ५ ॥

जीवलां नधारिषां जीवन्तीमोषधीमहम् ।  
 अरुणपरीमृगयन्तीं पुष्पां मधुमतीमिह हुवेस्मा अगृह्णाताम्ये ॥ ६ ॥  
 इहा यन्तु प्रचेतसो मेदिनीवर्षसो मम ।  
 यद्येम पारयामसि पुरुष दुरितादधि ॥ ७ ॥  
 अर्पेद्यासो अपां गर्भो या रोहन्ति पुनर्गवाः ।  
 ध्रुवाः सहस्रनाम्नीर्मेपजीः सन्ध्यामृताः ॥ ८ ॥

अर्थ—(जीवलां जीवन्तीं) आयु देनेवाली (नधारिषां) हानि न करनेवाली (अरुणतीं) जीवनमें रुकावट न करनेवाली (उत्तयतीं मधुमतीं) उठाने वाली मीठी (पुष्पां ओषधीं) फुलावाली औषधीको (इह अस्मै अगृह्णाताम्ये अहं हुवे) यहां इसकी निरोगता प्राप्तिके लिये मैं बुलाता हूँ ॥ ६ ॥

(प्रचेतसः मम वचसः) ज्ञानी सुस वैद्यके वचनोंसे (मेदिनीः इह आ यन्तु) पुष्टिकारक औषधियां यहां आजायें । (यथा) जिससे (इमं पुरुषं) इस पुरुषको (दुरितात् अधि पारयामसि) पापके दुःखरूप भोगसे पार करते हैं ॥ ७ ॥

(याः मेपजीः) जो औषधियां, (अग्नेः घासः) अग्निका अन्न और (अपां गर्भः) जलोंका गर्भरूप (पुनः-नवाः रोहन्ति) पुनः नवीन जैसी बढ़ती हैं वे (सहस्रनाम्नीः) हजार नामवाली (आभृताः ध्रुवाः सन्तु) छापी हुई औषधियां स्थिर हों ॥ ८ ॥

भावार्थ—जीवनशक्ति बढ़ानेवाली, दीर्घजीवन देनेवाली, न्यूनता न करनेवाली, शरीररूपापार में रुकावट न करनेवाली, शरीरकी सुस्थिति बढ़ानेवाली, मधुरपरिपाकवाली फूलोंवाली औषधि इस प्रकारके औषधियोंको इस मनुष्यके आरोग्य लिये मैं लाता हूँ ॥ ६ ॥

मेरे वचनके अनुसार ये सय औषधियां मिलकर इस मनुष्यको निरोग बनायें । इसका यह रोग पापाचरणसे हुआ है ॥ ७ ॥

ये औषधियां अग्निका भोजनरूप हैं और ये जलका धारण करती हैं, ये बारबार बढ़ती हैं । इनके नाम हजारों हैं । ये गुणधर्मसे स्थिर हों ॥ ८ ॥

अवर्तेन्वा उवकात्मान् ओषधयः ।

मृपिन्तु दुरित तीक्ष्णशृङ्गयः ॥ ९ ॥

उन्मुञ्चन्तीर्विरुणा उग्रा या विषदूषणीः ।

अयो मलासनाशनीः कृस्यादूषणीश्च यास्ता इहा यन्त्वोषणीः ॥ १० ॥ (१०)

अपक्नीताः सहीयसीर्वीरुघो या अमिष्टुताः ।

त्रायन्तामस्मिन् ग्रामे गामसं पुरुषं पशुम् ॥ ११ ॥

अर्थ—( अवका-उल्काः उवकात्मानः ) शीवाखमें उत्पन्न होनेवाली, अलजिनका आत्मा है ( तीक्ष्णशृङ्गयः ओषधयः ) तीखे सींगवाली औषधियाँ ( दुरित विक्रमन्तु ) पापरूपी रोगको दूर करें ॥ ९ ॥

( उन्मुञ्चन्तीः विरुणाः ) रोगसे मुक्त करनेवाली, विशेष रगरूपवाली ( उग्राः विषदूषणीः ) तीव्र, विषनाशक ( अयो मलासनाशनीः ) और कफको दूर करनेवाली, ( कृस्यादूषणीः या ओषधीः ) घातक प्रयोगोंका नाश करनेवाली जो औषधियाँ हैं, ( ताः इह आपन्तु ) वे यहाँ प्राप्त हों ॥ १० ॥

( अमिष्टुताः अपक्नीताः ) प्रशसित और मोखसे प्राप्त की हुई ( या सहीयसीः वीरुघः ) जो बलवाली औषधियाँ हैं वे ( अस्मिन् ग्रामे ) इस नगरमें ( गां अश्व पुरुष पशु ) गौ, घोडा, मनुष्य और अन्य पशुकी ( त्रायन्तां ) रक्षा करें ॥ ११ ॥

भावार्थ—शीवालसे उत्क्रान्त होकर औषधियाँ यमी, ये सब पापरूपी दोषसे मनुष्योंकी बचावें ॥ ९ ॥

रोगको दूर करनेवाली, तीव्र शुणवाली, शरीरसे विषको दूर करनेवाली कफका दोष दूर करनेवाली, घातपात दूर करनेवाली औषधियाँ इस स्थानपर उपयोगी हों ॥ १० ॥

वीर्यवती औषधियाँ इस ग्रामके गौ, घोड़े और मनुष्य आदिकोंकी रक्षा करें ॥ ११ ॥

मधुमन्मूलं मधुमदग्रमासां मधुमन्मर्घ्यं वीरुषां मधुम् ।  
 मधुमत् पर्णं मधुमत् पुष्पमासां मधोः समेक्ता अमृतस्य मधो  
 घृतमर्षं दुहतां गोपुरोगवम् ॥ १२ ॥  
 यावतीः किर्यतीभिः पृथिव्यामप्योषधीः ।  
 ता मां सहस्रपर्णो मृत्योर्मृष्वन्तं हंसः ॥ १३ ॥  
 वैयाघ्रो मणिर्वीरुषां प्रायमाणो भिषास्तिपाः ।  
 अमीचाः सर्वा रक्षांसि दूरमस्मत् ॥ १४ ॥

अर्थ- ( आसां वीरुषां ) इन औपधियोंका ( मूल मधुमत् ) मूल मीठा है, ( अग्र मधुमत् ) अग्रभाग मीठा है, ( मध्य मधुमत् यन्मूष ) मध्यभाग भी मीठा है । ( आसां पर्णं मधुमत् ) इनका पत्ता मधु और ( पुष्प मधुमत् ) फूल भी मीठा है । यह औपधियां ( मधोः समेक्ता ) मधुसे भरपूर सी थी हैं । ये ( अमृतस्य मधोः ) अमृतका अन्न हैं । ये औपधियां ( गो-पुरो-गव ) गाय जिसके अग्रभागमें रक्खी होती है वेशा ( घृत अन्न दुहतां ) घी और अन्न देव ॥ १२ ॥

( पृथिव्यां यावतीः किर्यतीः इमाः औपधीः ) पृथ्वीपर जितनी कितनी ये औपधियां हैं ( ताः सहस्रपर्ण्यः ) वे हजार पत्तावाली औपधियां ( मां अहसः मृत्योः मृष्वन्तु ) मुझे पापस्वी मृत्युसे बचावें ॥ १३ ॥

( वीरुषां वैयाघ्रः मणिः ) औपधियोंसे बना वैयाघ्र जैसा प्रतापी मणि ( अभिषास्ति-पाः प्रायमाणः ) विनाशसे बचानेवाला सरक्षक है । वह ( सर्वाः अमीचाः ) सब रोगोंको और ( रक्षांसि ) रोगकृमियोंको ( अस्मत् दूर अप अभि हन्तु ) हमसे दूर ले जाकर मारे ॥ १४ ॥

भाषार्थ- इन औपधियोंका मूल, मध्य और अग्रभाग, तथा उनके पत्ते और फूल मीठ हैं । यह अमृतका ही भोजन है, इससे गौ आदि प्राणि पोंके लिये विपुल घृतादिकी प्राप्ति हो ॥ १२ ॥

पृथ्वीपर जो भी औपधियां हैं उन अनन्त पत्तावाली औपधियां हम सबको मृत्युसे बचावें ॥ १३ ॥

औपधियोंसे बना मणि विनाशसे बचानेवाला होता है; यह सब रोगों, और रोगधीजोंको हम सबसे दूर करे ॥ १४ ॥

सिंहस्यैव स्तनयोः स विजन्तेमेरिष विजन्तु आभृताभ्यः ।

गवां यक्ष्मः पुरुषाणां वीरुद्धिरतिमुक्तो नाभ्यां एतु श्रोत्राः ॥ १५ ॥

मुमुक्षाना ओषधभोगैर्वैश्वानरादधि ।

भूमिं सतन्वतीरितु यासां राजा वनस्पतिः ॥ १६ ॥

या रोहन्त्याग्निरसीः पर्वतेषु समेषु च ।

ता नः पर्यस्वतीः क्षिमा ओषधीः सन्तु वंदे ॥ १७ ॥

अर्थ—( आभृताभ्यः ) लाई हुई औषधियोंसे रोग ( स विजन्ते ) मयभीत होते हैं ( स्तनयोः सिंहस्य इव ) जैसे गर्जनेवाले सिंहसे और ( अग्नेः इव विजन्ते ) जैसे अग्निसे घयरते हैं । ( वीरुद्धिः अतिमुक्तः ) औषधियोंसे मगाया हुआ ( गवां पुरुषाणां यक्ष्मः ) गौओं और पुरुषोंका रोग ( नाभ्यां श्रोत्राः एतु ) नाकाओंसे जाने योग्य नदियोंसे दूर बछा जावे ॥ १५ ॥

( यासां राजा वनस्पतिः ) जिनका राजा वनस्पति है, वे ( ओषधयः ) औषधियाँ ( मुमुक्षाना ) रोगोंसे छुटाती हुई ( वैश्वानरात् अग्नेः अधि ) वैश्वानर अग्निके ऊपर स्थित ( भूमिं सतन्वतीः इतः ) भूमिपर फैलती हुई जाय ॥ १६ ॥

( याः आग्निरसीः ) जो अगोंमें रस बढ़ानेवाली औषधियाँ ( पर्वतेषु समेषु च रोहन्ति ) पहाड़ों और समभूमिपर फैलती हैं ( ताः क्षिमा पयस्वतीः आपधीः ) वे क्षुब्ध, रसवाली औषधियाँ ( नः हृदे वा सन्तु ) हमारे हृदयोंमें शान्ति देनेवाली होव ॥ १७ ॥

भावार्थ—जिस प्रकार शेरसे सब प्राणी डरते हैं, उस प्रकार औषधियोंसे रोग डरते हैं । अतः इन औषधियोंसे गौओं और मनुष्योंके रोग दूर हों ॥ १५ ॥

सब राजाके राज्यमें ये सब औषधियाँ इस विशाल भूमिपर फैल जाय ॥ १६ ॥

औषधियाँ अग्निरस बढ़ानेवाली हैं, ये पहाड़ों और समभूमिपर उगती हैं ये सब रसदार औषधियाँ हमारे हृदयोंको शान्ति दें ॥ १७ ॥

याम्नाहं वेदं धीरुषो याम्ना पश्यामि चक्षुषा ।

अज्ञाता जानीमम या यासु विद्य च सम्भृतम् ॥ १८ ॥

सर्वाः समग्रा ओषधीर्वोषन्तु धर्षसो मम ।

यथेम पारयामसि पुरुषं दुरितादधि ॥ १९ ॥

अमृत्यो दुर्मो धीरुषा सोमो राजामृतं हविः ।

ग्रीहिं यवम मेपजौ दिवस्पुत्रावमर्त्या ॥ २० ॥ ( १८ )

उजिहीष्णे स्तनयस्यमिहन्दत्योपधीः ।

यदा धः शुभिमातरः पर्जन्यो रेतसावसि ॥ २१ ॥

अर्थ—( अहं याः धीरुषः वेदं ) मैं जिन औपधियोंको जानता हूँ, ( याः च चक्षुषा पश्यामि ) और जो मैं आँखसे देखता हूँ ( याः अज्ञाताः जानीमः ) जो नहीं जानी हुई औपधियाँ अथ हम जानते हैं ( यासु च सम्भृत विद्य ) जिनमें धीर्य भरपूर है ऐसा हम जानते हैं ॥ १८ ॥

( सर्वाः समग्राः औपधीः ) सब संपूर्ण औपधियाँ ( मम धर्षसः पोषन्तु ) मेरे वचनसे जानें, ( यथा ) जिन रीतिसे ( हम पुरुष दुरितात् अधि पारयामसि ) इस पुरुषको पापरूपी रोगसे छुड़ाते हैं ॥ १९ ॥

( अमृत्यः ) पीपल, ( दुर्मः ) कुशा, ( धीरुषा राजा सोमः ) औपधियोंका राजा सोम, ( हविः अमृत ) अन्न और जल, ( ग्रीहिः यवः च ) चावल और जौ, ( अमर्त्या मेपजौ ) अमर औपधियाँ हैं। ये ( दिवः पुत्रौ ) पुत्रोंके पुत्रवत् पालन करते हैं ॥ २० ॥

( यदा पर्जन्यः स्तनयति अभिकन्दति ) जब पर्जन्य गर्जता है और शब्द करता है कि हूँ ( शुभिमातरः औपधीः ) पृथ्वीसे उत्पन्न होनेवाली औपधियों ! ( उजिहीष्णे ) ऊपर उठो, तब ( पर्जन्यः रेतसा धः अवसि ) पर्जन्य अपने जलसे आपकी रक्षा करता है ॥ २१ ॥

भावार्थ— जिन औपधियोंको हम पहचानते हैं और जिनको नहीं पहचानते, उन सबमें स्थित धीर्य जानना चाहिये ॥ १८ ॥ सब औपधियाँ मरे अन्तु फूल रहकर इस मनुष्यको पापरूप रोगसे बचावें ॥ १९ ॥ पीपल, दुर्म, औपधियोंका राजा सोम, अन्न जल, चावल और जौ ये सब दिव्य औपधियाँ हैं। इनसे अमरत्व अर्थात् धीर्वायुष्य की प्राप्ति हो सकती है ॥ २० ॥ यही गर्जना करके मघ औपधियोंसे कहता है कि अब ऊपर उठो ॥ २१ ॥

तस्यामृतस्येव बलं पुरुष पाययोमसि ।

अथो कृणोमि मेघञ यथासंस्तुतहायनः ॥ २२ ॥

पराहो वेद धीरुषं नकुलो वेद मेघजीम् ।

सर्पा गंधर्वा या विदुस्ता अस्मा अवसे हवे ॥ २३ ॥

याः सुपर्णा आगिरसीर्दिव्या या रुषटो विदुः ।

ययांसि इत्ता या विदुर्याम् सर्वे पृथग्निः ।

मृगा या विदुरोपधीस्ता अस्मा अवसे हवे ॥ २४ ॥

अर्थ—(तस्य अमृतस्य इमं बलं) उस अमृतका यह बल (इमं पुरुष पायामसि) इस पुरुषको पिलाते हैं । (अथो कृणोमि मेघञ्) और औषध पनाता हूँ, (यथा यातहायनः वसत्) जिससे सतानु होता है ॥ २२ ॥

(पराहः धीरुषं वेद) सूकर औषधीको जानता है, (नकुलः मेघजी वेद) नेयला औषधीको पशुजानता है, (सर्पा गंधर्वाः याः विदुः) सर्प और गंधर्व जिनको जानते हैं, (ताः समी अवसे हवे) उनका इसकी रक्षाने लिये बुलाते हैं ॥ २३ ॥

(सुपर्णाः याः आगिरसीः) गरुड जिन अगरसवाली औषधियोंको (विदुः) जानते हैं, (याः दिव्याः रुषटो विदुः) जिन दिव्य औषधियोंको शीटियाँ जानते हैं, (ययांसि इत्ता याः विदुः) पक्षी और हंस जिनको पशु जानते हैं, (याः पृथग् पृथग्निः) जिनका सब पक्षी जानते हैं (याः आपधी मृगाः विदुः) जिन आपधियोंको हरिन जानते हैं, (ताः अस्मी अपम हवे) उनका इसकी रक्षा लिये बुलाते हैं ॥ २४ ॥

भाषार्थ—उसी का बल औषधियोंमें समर्पित हुआ है जो मनुष्यको पिलाया जाता है और जिसमें मनुष्य दीर्घायु पनता है ॥ २२ ॥

गृध्र, भक्षक, सर्प, गन्धर्व व औषधियाँ जानते हैं । इन औषधियोंमें प्राणियोंकी रक्षा है ॥ २३ ॥

गरुड शीटियाँ, पक्षी, हंस, मृग आदि जिन औषधियोंको जानते हैं उनमें प्राणियोंकी रक्षा की जाय ॥ २४ ॥

यावतीनामोपधीनां गावः प्राभन्त्यध्या यावतीनामज्रावयः ।

तावतीस्तुम्युमापधीः शर्मं यच्छन्त्वामृताः ॥ २५ ॥

यावतीषु मनुष्या भिषजो विदुः ।

तावतीर्विश्वमेपजीरा मरामि स्वामि ॥ २६ ॥

पुष्पवतीः प्रसूमतीः फलिनीरफला उत ।

समातर इव दुहामस्मा अरिष्टतातये ॥ २७ ॥

उत् स्वाहार्यं पञ्चशलादयो दशशलादुत ।

अयो यमस्य पद्वीशाद् विश्वस्माद् देवकिल्बिपात् ॥ २८ ॥ (१९)

अर्थ-(यावतीनां औपधीनां) जिन औपधियाको (अध्याः गावः प्राभन्ति) अवश्य गौवं जाती हैं, (यावतीनां अज्रावयः) जिनको भेड़, बकरियां जाती हैं, (तावतीः आभृताः औपधीः) उतनी छाई हुई औपधियां (तुम्यु शर्मं यच्छन्तु) तुम्हारे लिये सुख देवें ॥ २५ ॥

(भिषजः मनुष्याः) वैद्य लोग (यावतीषु भिषजो विदुः) जितनी औपधियोंमें औपध प्रयोग जानते हैं, (तावतीः विश्वमेपजीरा) उतनी सप औपधवाली औपधियां (स्वां मरामि आमरामि) मेरे पास सप ओरसे लाता हू ॥ २६ ॥

(पुष्पवतीः प्रसूमतीः) फूलवाली, पल्लवोंवाली, (फलिनीरफला) उत अफला। फलोंवाली और फलरहित औपधियां (अरिष्ट अरिष्टतातये) इसकी सुख शान्तिके विस्तारके लिये (समातरः इव दुहतां) उत्तम माताआके समान रस प्रदान करें ॥ २७ ॥

(पञ्चशलात् उत दशशलात्) पाँच प्रकारके और दस प्रकारके दुःखोंसे (अयो यमस्य पद्वीशाद्) और यमकी येड़ियोंसे और (विश्वस्माद् देव किल्बिपात्) सप देवोंके सपधमें किये पापोंसे (स्वा उत् आहार्यं) तुझे कपर उठाया है ॥ २८ ॥

भावार्थ-जो औपधियां गौव, भेड़ और बकरियां ग्वाती हैं उनसे मनुष्योंका कल्याण हो ॥ २५ ॥

मनुष्य जिनसे औपध यमाना जानते हैं, उन सपको यहाँ लाते हैं ॥ २६ ॥



तस्यामृतस्येव बलं पुरुषं पाययामसि ।

अयो कृणोमि भेषजं यथासंस्तुतहापनः ॥ २२ ॥

घराहो वेदं वीरुधं नकुलो वेदं भेषजीम् ।

सर्पा गन्धर्वा या विदुस्ता अस्मा अवसे हुवे ॥ २३ ॥

याः सुपर्णा आगिरसीदिव्या या रघटो विदुः ।

वयांसि ह्मा या विदुर्याम् सर्वे पक्षिणः ।

मृगा या विदुरोपधीस्ता अस्मा अवसे हुवे ॥ २४ ॥

अर्थ—(तस्य अमृतस्य इमं बलं) उस अमृतका यह बल (इमं पुरुषं पाय यामसि) इस पुरुषको पिलाते हैं । (अयो कृणोमि भेषजं) और औषध पनाता हूँ, (यथा संस्तुतहापनः अस्मात्) जिससे क्षतायु होता है ॥ २२ ॥

(घराहो वेदं वीरुधं येदं) सूकर औषधीको जानता है, (नकुलोः नेबजी वेदं) नेबला औषधीको पचानता है, (सर्पाः गन्धर्वाः याः विदुः) सर्प और गन्धर्व जिनको जानते हैं, (ताः अस्मा अवसे हुवे) उनका इसकी रक्षा के लिये बुलाते हैं ॥ २३ ॥

(सुपर्णाः याः आगिरसीः) गरुड जिन अगरसवाली औषधियोंको (विदुः) जानते हैं, (याः दिव्याः रघटः विदुः) जिन दिव्य औषधियोंको वीरुधों जानते हैं, (वयांसि ह्मा याः विदुः) पक्षी और हंस जिनका यह नाम है, (याः य सर्वे पक्षिणः) जिनको सब पक्षी जानते हैं (याः आपधीः मृगाः विदुः) जिन औषधियोंको हरिण जानते हैं, (ताः अस्मा अपसे हुवे) उनका इसकी रक्षा के लिये बुलाते हैं ॥ २४ ॥

भाषार्थ—उसी का बल औषधियोंमें समहित हुआ है जो अनुष्यको पिलाया जाता है और जिसमें अनुष्य दीर्घायु बनता है ॥ २२ ॥

सूँर, नेबला, माँप, गन्धर्व ये औषधियाँ जानते हैं । इन औषधियोंसे प्राणियोंकी रक्षा हो ॥ २३ ॥

गरुड विरुधों, पक्षी, हंस, मृग आदि जिन औषधियोंको जानते हैं उनमें प्राणियोंकी रक्षा की जाय ॥ २४ ॥

यावतीनामोपधीनां गावः प्राभन्त्यध्या यावतीनामजावयः ।

तावतीस्तुभ्यमोपधीः शर्मं यच्छन्त्वामृताः ॥ २५ ॥

यावतीषु मनुष्या भिषज्ज विदुः ।

तावतीर्विश्वमेपजीरा भ्रामि स्वामि ॥ २६ ॥

पुष्पवतीः प्रस्रमतीः फलिनीरफला उव ।

समातर इव दुहामस्मा अरिष्टतातये ॥ २७ ॥

उत् त्वाहार्यं पञ्चशलादयो दशशलादुत ।

अयो यमस्य पद्मीशाद् विश्वस्माद् देवकिल्बिपात् ॥ २८ ॥ (१९)

अर्थ-(यावतीनां औपधीनां)जिन औपधियाको(अध्याः गावः प्राभन्ति) अवश्य गौधें खाती हैं, ( यावतीनां अजावयः ) जिनको भेड़, बकरियां खाती हैं, ( तावतीः आमृताः औपधीः ) उतनी लाई हुई औपधियां ( तुभ्य शर्मं यच्छन्तु ) तुम्हारे लिये सुख देवें ॥ २५ ॥

( भिषजः मनुष्याः ) वैद्य लोग ( यावतीषु मेपज विदुः ) जितनी औपधियोंमें औपध प्रयोग जानते हैं, ( तावतीः विश्वमेपजीः ) उतनी सब औपधवाली औपधियां ( त्वां अभि आभ्रामि ) तेरे पास सब ओरसे लाता हू ॥ २६ ॥

( पुष्पवतीः प्रस्रमतीः ) फूलवाली, पल्लवावाली, ( फलवतीः उत अफलाः ) फलोंवाली और फलरहित औपधियां ( अस्मै अरिष्टतातये ) इसकी सुख शान्तिके विस्तारके लिये ( समातरः इव दुहतां ) उसम माताआके समान रस प्रदान करें ॥ २७ ॥

( पञ्चशलात् उत दशशलात् ) पांच प्रकारके और दस प्रकारके दुआओंसे ( अयो यमस्य पद्मीशात् ) और यमकी पेड़ियोंसे और ( विश्वस्माद् देव किल्बिपात् ) सब देवोंके सपथम किये पापोंसे ( त्वा उत् आहार्यं ) तुझे ऊपर उठाया है ॥ २८ ॥

भावार्थ-जो औपधियां गौध, भेड़ और बकरियां खाती हैं उनसे मनुष्योंका कल्याण हो ॥ २५ ॥

मनुष्य जिनसे औपध यमाना जानते हैं, उन सबको यहां लाते हैं ॥ २६ ॥

## अमर्त्य औषध ।

धीर्द्विष्यन्मन्त्रं मेघजो अमर्त्यौ ॥ ( म० २० )

“ पावल और जो अमर होनेकी औषधियाँ हैं । ” ऐसा कहा है । यह बहुत सात्विक मोहन है । इसी प्रकार सोम नामक जो अमृत रस है । यह भी अमरत्व देने वाला है ऐसा—

सोमो राजा अमृत इषिः । ( म० २० )

इस मन्त्रमें कहा है । तथा—

मघोः सम्पत्ता अमृतस्य भक्षः । घृतं अन्नं  
गोपुरोगणं पुङ्गवाम् । ( म० १९ )

“ मधुरतासे समीभित अमृतवास, धीसे मिभित अन्न और योरस यह अमृत अन्न है । ”

इस प्रकार इस सूक्तमें जो अनेक बार उपदेश कहा है वह भीमङ्गपत्रद्वीताके वचनके अन्तर्देखने योग्य है । मनुष्य इस प्रकारका सात्विक अन्न भक्षण करे और दीर्घायु, नीरोगता और सुख प्राप्त करे ।

जीवन्ता, जीवन्ती, मरुघती, रोहिणी, कृष्णा, असिक्नी आदि नाम औषधियोंके नामक हैं ।

१ जीवन्ती=यह औषधी दीर्घजीवन करनेवाली है, क्योंकि इसको (सर्व-दोष-मार्ग) सब दोष दूर करनेवाली वैद्यक ग्रंथोंमें कहा है । इसकी साक भी बड़ी हितकारी है ।

२ कृष्णा=यह नाम अनेक उत्तमोत्तम वनस्पतियोंका है, जो विविध औषधियोंमें प्रयुक्त होती हैं ।

३ जीवन्ता=यह नाम सिंहविष्यली का है । यह औषधि बड़ी आरोग्यप्रद है ।

इनमेंसे कई औषधियाँ दीर्घायु देनेवाले पाकादिमें पड़ती हैं । कई वैद्यक ग्रंथोंमें इसका वर्णन है, पाठक यह वर्णन वहाँ देखें ।

सूक्तकी अन्यान्य बातें सुबोध हैं अतः उनका अधिक स्पष्टीकरण करनेकी बात आवश्यकता नहीं है । पाठक इस दृष्टिसे इस सूक्तका विचार करेंगे तो उनको इसका आश्चर्य स्पष्ट हो जायगा ।

## पराक्रमसे विजय ।

[ ८ ]

( श्रविः— शृगज्जिराः । देवता—इन्द्रः, वनस्पतिः, परसेनाहननं च )

इन्द्रो मन्थतु मन्थिता शक्रः शूरः पुरंदरः ।

यथा इनाम सेना अभिघ्राणा सहस्रशः ॥ १ ॥

पुतिरज्जुर्कृष्णानी पूर्ति सेना कृणोत्वमम् ।

धूममग्निं पराह्वयामित्रा इत्स्वा दधता मयम् ॥ २ ॥

अर्थ—( पुर—दरः शूरः शक्रः मथिता इन्द्रः ) शत्रुके नगरोंको तोड़ने वाला शूर समर्थ शत्रुसैन्यका मन्थनकर्ता इन्द्र ( मन्थतु ) शत्रुसेनाका मन्थन करे । ( यथा ) जिसकी शक्तिसे ( अभिघ्राणा सहस्रशः सेना ) शत्रुओंके हजारों सैनिकोंको ( इमाम ) हम मारे ॥ १ ॥

( उपष्मामी श्रुति—रज्जुः ) सिलगाई हुई दुर्गन्धयुक्त रस्ती ( अम् सेना पूर्ति कृणोतु ) इस सेनाको दुर्गन्धयुक्त करे । ( धूम अग्निं पराह्वय ) धूम और अग्निको दूर से देखकर ( अमित्रा इत्स्वा मय आदधता ) शत्रु हृदयोंमें भय धारण करें ॥ २ ॥

भावार्थ—शूरवीर शत्रुओंके कीलोंको तोड़े और शत्रुसैन्यको मथ डाले । हम भी सहस्रों शत्रुवीराको मारे ॥ १ ॥

शत्रुसेना पर हमला करनेके लिये सिलगाई हुई पारुदकी पसी शत्रु सैन्यमें घड़मूडाला धूँवाँ उत्पन्न करे । जिस धूँवेको और ज्वालाको देखकर शत्रु भयभीत हों ॥ २ ॥

अमूर्तमृत्यु निः शृणीहि सादामूर्त खदिराभिरम् ।

ताम्रभङ्ग इव मज्जन्तां हन्त्येनान् वधको वधैः ॥ ३ ॥

पल्लवानमूर्त परुषाहः कुणोत्तु हन्त्येनान् वधको वधैः ।

क्षिप्रं शूर इव मज्जन्तां बृहज्जाटेन सदिताः ॥ ४ ॥

अन्तरिक्षं आलमासीज्जालदण्डा दिक्षो महीः ।

सेनाभिषाय दस्यूनां शक्रः सेनामपापत् ॥ ५ ॥

अर्थ-हे (अमृत-रूप)मोटे पर बड़े वीर! (अमूर्त निः शृणीहि) इनको काओ । हे (ताम्र-र) शत्रुको खानेवाले वीर ! (अमूर्त अजिर ताम्र) इनको भीम खाओ । (ताम्र-मज्ज इव) शीघ्र भजन करनेवाले के समान (मज्जन्तां) भग्न किये जाय । और (वधः वधैः एनान् हन्तु) वध करनेवाला शत्रुओं से इनको मारे ॥ ३ ॥

(पल्लव-आहः) कठोर आह्वान करनेवाला वीर (अमूर्त पल्लवान कुणोत्तु) इनको कठार बनावे । (वधकः वधैः एनान् हन्तु) वधकर्ता शत्रुओं से इनका वध करे । (बृहत्-जाटेन सदिताः) बड़े जाख से बड़े हुए शत्रु (शूर इव क्षिप्र मज्जन्तां) सरकड़े के समान शीघ्र भूट जाय ॥ ४ ॥

(अन्तरिक्ष जाल आसीत्) अन्तरिक्ष जाल है, और (महीः दिक्षा जालदण्डाः) बिस्तृत दिशाएँ जाल के दण्डे हैं । (तेन दस्यूनां सेनां अभिषाय) उससे शत्रुकी सेनाको पकड़ कर (शक्रः अप अवापत्) शूर वीर भगाता है ॥ ५ ॥

भावार्थ-शुद्धसवार शत्रुको मारें । हमारे वीर शत्रुको खाजायें, जर्जर उनका माया करें । हमारे वीर अपने शत्रुओं से शत्रुका नाश करें ॥ ३ ॥

हमारा सेनापति अपने भाषण से हमारे सैनिकोंको घेरज देकर कठोर बनायें । हमारे वीर शत्रुसेनाका नाश करें । बड़े जाख के अन्दर शत्रुसेनियोंको पकड़कर नाश करें ॥ ४ ॥

यह अन्तरिक्ष यज्ञ जाल है, इसके दण्ड ये यही दिशाएँ हैं । इस जाल से शत्रुको पकड़कर शूर वीर उनका माया करें ॥ ५ ॥

बृहत्ति जालं बृहत्तः शक्रस्य वाजिनीवतः ।

तेन शत्रून्ममि सर्वान् न्युक्ञि यथा न मुच्यते कसममनैषाम् ॥ ६ ॥

बृहत् से जालं बृहत् इन्द्र शूर सहस्रार्थस्य शतवर्षस्य ।

तेन शत्रुं सहस्रमयुतं न्युर्विद अघानं शक्रो वस्यूनामभिधाय सेनया ॥ ७ ॥

अयं लोको जालमासीच्छक्रस्य महतो महान् ।

तेनाहमिन्द्रजालेनायुंस्वमसाभि वषामि सर्वान् ॥ ८ ॥

अर्थ- (वाजिनीवतः बृहत्तः शक्रस्य) सेनाके साथ रहनेवाले बड़े इन्द्रका (बृहत् हि जाल) बड़ा जाल है । (तेन सर्वान् शत्रून् अभिम्युञ्ज) उससे सब शत्रुओंको सब ओरसे आधीम कर, (यथा पर्वा कतमःवन न मुच्यते) जिससे इनमेंसे एक भी न छूट सके ॥ ६ ॥

हे (शूर इन्द्र) शूर इन्द्र ! (सहस्रार्थस्य शतवर्षस्य बृहत्तः ते) सहस्रों द्वारा पूजित और सैकड़ों सामर्थ्यवाले बड़े सुष्ट इन्द्र का (बृहत् जाल) बड़ा जाल है । (तेन अभिधाय) उस जालसे घेरकर तथा (सेनया) अपनी सेनाके द्वारा (शक्रः) इन्द्र (वस्यूनां शत सहस्र अयुत न्युर्विद अभिधाय अघान) शत्रुओंके सैकड़ों हजारों लाखों और करोड़ों सैनिकोंको मारता है ॥ ७ ॥

(महतः शक्रस्य) बड़े इन्द्रका (अयं महान् लोको) यह बड़ा लोक (जाल आसीत्) जाल था । (तेन इन्द्रजालेन) उस इन्द्रके जालसे (सर्वान् अमून् तमसा अह अभिवषामि) सब इन शत्रुवीरोंको अन्धेरेसे घेरता हू ॥ ८ ॥

भावार्थ-सेनाके साथ हमला करनेवाले इन्द्रके पास बड़ा जाल है । उससे शत्रुसैन्य पान्धा जाता है और कोई बच नहीं सकता ॥ ६ ॥

अनेक पराक्रम करनेवाले पूजनीय इन्द्रदेव का बड़ा जाल है उस जाल में शत्रुसैनिक पान्धे जाते हैं और उनके हजारों और लाखों मारे जाते हैं ॥ ७ ॥

बड़े इन्द्रका यह बिस्तृत लोकहि बड़ा जाल है । इस इन्द्रजालमें सब शत्रु अन्धकारसे पान्धे जाते हैं ॥ ८ ॥

सेदिरुमा व्यूद्धिरार्तिमानपवाचना ।

भर्मस्तन्त्रीषु मोहं चैरमूनमि दधामि सर्वान् ॥ ९ ॥

मृत्युवेमून प्र यच्छामि मृत्युपाशैरमी सिताः ।

मृत्योर्ये अथला वृतास्तेभ्य एतान् प्रति नयामि बुद्ध्या ॥१०॥ (१०)

नयेतामून मृत्युवृता यमवृता अपोम्मस ।

परः सहस्रा इत्यन्तां तथेह्येनान् मर्त्यं मुबस्य ॥ ११ ॥

अर्थ—( उमा सेदिः ) बन्दी यकाबट, ( व्यूद्धिः ) भिर्चनता ( अनपवाचना  
आर्तिः ) अकथनीय कष्ट, ( भर्मा ) कष्ट, परिभ्रम, ( तन्त्रीः ) मोह, ( च )  
आलस्य और मोह, ( तैः ) अमून सर्पान् अग्निदधामि ) उनसे इन सब काहु  
ओंको मैं घेरता हू ॥ ९ ॥

( अमून मृत्युवे प्रयच्छामि ) इन शत्रुओंको मैं मृत्युके छिये सौंप देता  
हू ( मृत्युपाशैः अमी सिताः ) मृत्युके पाशोंसे ये बांधे हैं । ( मृत्योः ये  
अथ-लाः वृताः ) मृत्युके जो पापसे मारनेवाले वृत्त हैं ( तेभ्यः एतान् बुद्ध्या  
प्रति नयामि ) उनके पास इनको बांध कर ले जाता हू ॥ १० ॥

हे ( मृत्युवृताः ) मृत्युके वृत्तों ! ( अमून यमत ) इनको ले चला । हे  
( यमवृताः ) यमके वृत्तों ! ( अपोम्मस ) इनको समाप्त करो । ( परः  
सहस्रा इत्यन्तां ) हजारोंसे अधिक मारे जाय । ( एतान् मुबस्य मर्त्य  
तृणेह ) इनको ईश्वरके मतानुसार नाश करो ॥ ११ ॥

भाषार्थ—यकाबट, निर्व्यमता, कष्ट, परिभ्रम, आलस्य, अज्ञान इत्यादिसे  
शत्रुओंको घेरते हैं ॥ ९ ॥

उम शत्रुओंको मृत्युके पास अजता हू । मृत्युपाशोंसे ये बांधे गये हैं।  
मृत्युके ये मारक वृत्त हैं उनके पास शत्रुओंको ले जाता हू ॥ १० ॥

मृत्युके वृत्त हमारे शत्रुओंको पकड़ें, यमवृत्त उनकी समाप्ति करें । इस  
प्रकार हजारों शत्रु मारे जाय ॥ ११ ॥

साध्या एकं जालदण्डमुद्यत्यं यन्त्योर्जसा ।

रुद्रा एकं वसवः परमादित्यैरेकं उद्यतः ॥ १२ ॥

विश्वे देवा उपरिष्ठादुन्नन्तो यन्त्योर्जसा ।

मघ्येन धन्तो यन्तु सेनामङ्गिरसो महीम् ॥ १३ ॥

वनस्पतीन् वानस्पत्यानोपपीरुत वीरुधः ।

द्विपादतृप्पादिष्णामि यथा सेनामूर्मं हनम् ॥ १४ ॥

अर्थ—( साध्याः एकं जालदण्ड उद्यत्यं ) साध्य देव एक जालके दण्डको उठाकर ( ओजसा यन्ति ) बलके साथ जाते हैं । ( रुद्राः एकं ) रुद्रदेव एक को, ( वसवः एकं ) वसुदेव एकको पकड़ते हैं और ( आदित्यैः एकः उद्यतः ) आदित्य देवोंने एक उठाया है ॥ १२ ॥

( विश्वे देवाः उपरिष्ठात् उन्नन्तः ) विश्वे देव ऊपर हि ऊपरसे दुष्टोंको ध्वाते हुए ( ओजसा यन्ति ) बलसे बलते हैं ( अगिरसः मघ्येन महीं सेनां प्रन्तः ) अगिरस पीछमें बड़ी सेनाका नाश करके ( यन्तु ) जावें ॥ १३ ॥

( वनस्पतीन् वानस्पत्यान् ) वनस्पति और उनसे बने पदार्थ, ( औपभीः उत वीरुधः ) औपधियाँ और लताएँ, ( तृप्पाद्विपाद ) चार पाँववाले और दो पाँववाले इनको ( इष्णामि ) मैं प्रेरित करता हूँ, ( यथा जम् सेनां हनन् ) जिससे इस सेनाका नाश करते हैं ॥ १४ ॥

भावार्थ—साध्य, रुद्र, वसु और आदित्य ये इस जालके चारों नवोंको पकड़कर वेगसे खींचते हैं ॥ १२ ॥

विश्वेदेव ऊपरसे हमला चढ़ाते हैं और अगिरसोंने शत्रुसेनाके मध्य भागमें हमला चढ़ाया है ॥ १३ ॥

वनस्पति, वनस्पतिसे बने पदार्थ, औपधि, लता, द्विपाद और तृप्पाद आदि सब मेरे सहायक हों और हमकी सहायतासे मैं शत्रुका नाश करूँ ॥ १४ ॥



गन्धर्वाप्सरसः सर्पान् देवान् पुण्यजान् पितॄन् ।  
 हृष्टान् हृष्टानिष्णामि यथा सेनामम् हनन् ॥ १५ ॥  
 इमं सृष्ट्वा मृत्युपाशा यानाक्रमन् न मुच्यसे ।  
 अमुष्या हन्तु सेनाया इदं कूर्टं सहस्रशः ॥ १६ ॥  
 धर्मः समिद्धो अग्निनामं होमः सहस्रशः ।  
 मयम् धूमिबाहुम् शर्वं सेनामम् हतम् ॥ १७ ॥

अर्थ—( गन्धर्वाप्सरसः सर्पान् ) गन्धर्व, अप्सरा, सर्प ( देवान् पुण्यजान् पितॄन् ) देव, पुण्यजन्म और पितर इन ( हृष्टान् अहृष्टान् इष्णामि ) देव और न देवे हुआओंको मैं प्रेरित करता हूँ ( यथा अम् सेनां हनन् ) जिससे इस सेनाका नाश करते हैं ॥ १५ ॥

( इमे मृत्युपाशाः उक्ताः ) ये मृत्युके पाश रखे हैं ( यान् आक्रमन् न मुच्यसे ) जिनका आक्रमण करके तू नहीं छूटेगा । ( अमुष्याः सेनायाः ) इस सेनाके ( इदं कूर्टं ) इस केन्द्रको ( सहस्रशः हन्तु ) सहस्र प्रकारसे हनन करे ॥ १६ ॥

( अथ धर्मः होमः ) यह प्रकीर्त हुआ ( अग्निना सहस्रशः समिद्धः ) अग्निद्वारा सहस्रों प्रकारोंसे प्रज्वलित हुआ है । ( मयम् धूमिबाहुम् शर्वम् ) मय और विविध बाहुपाशा शर्व ये तुम दोनों ( अम् सेनां हतम् ) इस सेनाको मारो ॥ १७ ॥

भावार्थ— गन्धर्व, अप्सराएँ, सर्प, देव, पुण्यजन्म, पितर, परिचित और अपरिचित मुझे सहायता करें, जिनकी सहायतासे मैं शत्रुका नाश करूँ ॥ १५ ॥

ये मृत्युपाश लगाये हैं, इनमेंसे कोई नहीं छूटेगा, इस शत्रुसेनाका यह केन्द्र सब प्रकारसे मैं नाश करूँगा ॥ १६ ॥

यह यज्ञ अग्निसे प्रकीर्त हुआ है । इस यज्ञके द्वारा शत्रुसेना नाश हावे ॥ १७ ॥

मृत्योरायमा पद्यन्तां सुखं सेविं वषं मयम् ।

इन्द्रमाधुखालाम्पां वषं सेनामम् इतम् ॥ १८ ॥

पराजिताः प्र असतामित्रा नृत्ता घाततु प्रस्रणा ।

बृहस्पतिप्रणुत्तानां मामीषां मोचि कथन ॥ १९ ॥

अर्षं पद्यन्तामेपामायुषानि मा शकन् प्रतिघामिषुम् ।

अर्षेयां बहु बिम्पतामिषं घन्तु मर्मणि ॥ २० ॥

स कौशतामेनान् पावापृषिषी समन्तरिक्ष सह देवतामिः ।

मा ज्ञातारं मा प्रतिष्ठां विदन्त मिषो विघ्नाना उपं यन्तु मृत्युम् ॥ २१ ॥

अर्थ—( मृत्योः आप सुखं सेविं वषं मयम् ) मृत्युसे कष्ट, दुःख, वषम, वष और मयको ( आपद्यन्तां ) प्राप्त होओ । हे वष ! ( इन्द्रः व ) और इन्द्र तुम दोनों ( अम् सेनां इतम् ) इस सेनाको मारो ॥ १८ ॥

हे ( अमित्राः ) शत्रुओ ! तुम ( पराजिताः प्र असत ) पराजित होकर अस्त होओ । ( प्रस्रणा नृत्ताः घाततु ) हानसे प्रेरित होकर भाग जाओ । ( बृहस्पति-प्रणुत्तानां मामीषां ) शमीके द्वारा प्रेरित हुए इनमेंसे ( कथन मा मोचि ) कोई भी एक न बचे ॥ १९ ॥

( एषां आयुषानि अवपद्यन्तां ) इनके शस्त्रास्त्र गिर जाय । ( प्रतिघां ह्यु मा शकन् ) प्रतिपक्षसे आये बाणको ये न सह सकें । ( अथ एषां बहु बिम्पतां ) अब हमको बहुत डर लगे । इनके ( मर्मणि ह्यवः प्रन्तु ) मर्मोंमें बाण लगें ॥ २० ॥

( पावापृषिषी एमान् सक्रोशन्तां ) चुलोक और पृषिषी हमकी निंदा करें । ( अन्तरिक्ष देवतामिः सह स ) अन्तरिक्ष देवोंके साथ हमकी निंदा करें । ( ज्ञातार मा ) शमीको ये न प्राप्त करें ( मा प्रतिष्ठां विदन्त ) प्रतिष्ठाको भी ये प्राप्त न करें । ( मिषः बिघ्नानाः मृत्यु उपपन्तु ) परस्पर विघ्न करते हुए ये सब मृत्युको प्राप्त हों ॥ २१ ॥

भावार्थ—मृत्युसे कष्ट, दुःख, वषम, वष और मय शत्रुको प्राप्त होवे । और इस प्रकार मयभीत हुए शत्रुका नाश होवे ॥ १८ ॥

शत्रु पराजित हों, वे भाग जाय । हमारे शमी वीर द्वारा प्रेरित हुए शत्रु किसी प्रकारभी न बचें ॥ १९ ॥

दिष्टमर्तस्रोभृतयोर्वेधरथस्य पुरोडाशाः क्षुफा अन्तरिक्षमुद्रिः ।

धावापृथिवी पक्षसी अतुवोभीक्ष्णान्तर्देशाः किंकरा वाक् परिरथ्यम् ॥२२॥

सवत्सरो रथः परिवत्सरो रथोपस्यो विराडीवापी रथमुखम् ।

इन्द्रः सव्यष्टाचन्द्रमाः सारथिः ॥ २३ ॥

अर्थ— ( अतुवः दिष्टाः ) चार दिशाएँ ( वेधरथस्य अन्तर्गत्यः ) वेधरथ की घोड़ियाँ हैं ( पुरोडाशाः क्षुफाः ) पुरोडाश खुर हैं । ( अन्तरिक्ष उद्रिः ) अन्तरिक्ष ऊपरका भाग है । ( धावापृथिवी पक्षसी ) खुलोक और पृथिवी ये दोनों पासे हैं । ( अतुवः अभीक्षाः ) अतु रक्षियाँ हैं । ( अन्तर्देशाः किंकराः ) बीचके प्रदेश रथरक्षक हैं और ( वाक् परिरथ्यम् ) बाकी रथका अन्य भाग है ॥ २२ ॥

( सवत्सरा रथः ) वर्ष रथ है, ( परिवत्सरा रथोपस्यः ) परिवत्सरा रथमें बैठनेका स्थान है, ( विराड् ईवा ) विराड् जोतनेका घण्ट है, ( अग्नि रथमुखम् ) अग्नि रथका मुख है । ( इन्द्रः सव्यष्टाः ) इन्द्र चारों ओर बैठनेवाला है और ( चन्द्रमाः सारथिः ) चन्द्र सारथी है ॥ २३ ॥

भावार्थ— शत्रुके शस्त्र गिर जाय, वे हमारे शस्त्रास्त्रोंको न सह सकें, वे डर जाय, और इनके मर्म वेचे जाय ॥ २० ॥

सब लोग इन शत्रुओंकी निंदा करें, हमारे शत्रुको किसी ज़ाबीकी सहायता न प्राप्त हो, वे किसी स्थानपर न ठहर सकें । वे आपसमें एक दूसरेको टकराते हुए मर जाय ॥ २१ ॥

वेधरथकी घोड़ियाँ चारों दिशाएँ हैं, उस रथके विविध भाग पुरोडाश, अन्तरिक्ष, खुलोक, पृथिवी, ये हैं । छः अतु घोड़ियोंके लगाम हैं, बीचके स्थान-सरक्षक मीकर हैं और वाणी हि मध्यस्थान है ॥ २२ ॥

सवत्सरा, परिवत्सरा, विराट्, अग्नि ये क्रमशः रथ, बैठनेका स्थान, घण्ट और रथमुख हैं, इन्द्र इस रथमें चारों ओर बैठता है और चन्द्रमा सारथ्य करता है ॥ २३ ॥

इतो जयेतो वि जय सं जय जय स्वाहा ।

इमे जयन्तु परामी जयन्तां स्वाहैभ्यो दुरादामीभ्यः ।

नीललोहितेनामूनम्यवसनोमि ॥ २४ ॥ ( २१ )

॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥

अर्थ— ( इतः जय ) यहाँसे जय प्राप्त कर ( इतः विजय ) यहाँसे विजय हो । ( सजय जय ) अच्छी प्रकार जय प्राप्त कर (स्व-आहा) आत्मसमर्पण कर ( इमे जयन्तु ) ये हमारे वीर जय प्राप्त करें । ( अमी पराजयन्तां ) ये शत्रुसैनिक पराभवको प्राप्त हों । ( एभ्यः स्वाहा ) इनके लिये शुभ वचन ( अमीभ्यः दुराहा ) इन शत्रुओंके लिये बुरा वचन । ( नीललोहितेन अमून अमि अवसनोमि ) नील और लोहित-रक्तसे इन शत्रुओंको सब प्रकार गिराता हूँ ॥ २४ ॥

भावार्थ— इस प्रकार जय प्राप्त कर, विजय संपादन कर । आत्मसमर्पणसे ही जय मिलता है । ये हमारे वीर जय प्राप्त करें । शत्रुका पराजय हो । अपने लोगोंको शुभ आशीर्वाद । शत्रुको शप । सब शत्रुओंकी गिरावट हो ॥ २४ ॥

## युद्धकी नीति ।

युद्धनीतिका वर्णन करनेवाले सूक्त वेदमें अनेक हैं, परंतु इस सूक्तमें ' बाल-युद्ध ' का वर्णन है, यह इस सूक्तकी विशेषता है । बालमें शत्रुसैन्यको पकड़कर सब सैनिक बालमें बचे सानके पश्चात् उनका उचित व्यवहारों से बच करनेका नाम बालयुद्ध है । पाठकोंने बाल देखहि होंगे । प्रायः मछलियाँ पकड़नेवाले धीवरछोग छत्रके बाल बनाव हैं और उसमें मछलियाँ पकड़ते हैं । ये सूत्रके बाल युद्धमें उपयोगी नहीं होते, क्योंकि शत्रुक सैनिक यदि इस छत्रके बालमें पकड़े गये, तो वे अपने शीर्ष्य शत्रुसे बाल काटकर बाहर आसकते हैं । अतः यहाँका युद्धका बाल ऐसा होना चाहिय कि, जो सहजहिमें काटा न जासके ।

बाजकलके युद्धमें तारोंके बाल, अथवा कटकित तारोंके बाल बर्तते हैं । बहुत समझ है कि जिस इन्द्रबाल का वर्णन इस सूक्तमें किया है, यह इसी प्रकारके सोहेके

कटकित अथवा अन्य तारोंका हि जाल होगा । इन्द्रके छत्र राक्षस हैं, वे बलाज और क्षत्राक्षसपन्न होते हैं, वे कदापि छत्रके जाल से बांध जायेंगे और सशस्त्रों को बांध जायेंगे यह समझ नहीं है । इस छत्रमें इन्द्रने इस जालके द्वारा हमारों और छत्रों को बांधा और मारा ऐसा वर्णन है, अतः यह जाल निःसन्देह सोहेछ होना योग्य है । इसका वर्णन इस प्रकार है—

बृहज्जालेन सखिताः क्षिप्रं अरुणन्ताम् । ( म० ४ )

शक्रस्य अन्तरिक्षं जाल आसीत् । महीविशः जालवृण्णा ।

तेन अभिघाप वस्यूनां सेनां अपावपत् । ( म० ५ )

वाजिनीवतः शक्रस्य बृहत् जालम् । तेन सर्वान् प्राञ्चन्

न्युञ्ज, यथा पर्वां कतमश्मन म भुङ्घाते ॥ ( म० ६ )

हे शूर इन्द्र ! शतवीर्यस्य ते बृहत् जालम् । तेन वस्यूनां

सहस्रं अयुतं जघान ॥ ( म० ७ )

“ इन्द्र स्वयं बड़ा शूर है, उसके पास सैन्यमी बहुत है । वह स्वयं सैकड़ों प्रकारके पराक्रम करता है । उसका बड़ाभारी जाल है । मानो उसका जाल इस अन्तरिक्ष जैसा विस्तृत है । तारों दिशामोंमें उसके जालके स्तम्भ खड़े किये होते हैं । इस विस्तृत जालमें छत्रकी सेना पकड़ी जाती है, और एकवार सेना इस जालमें पकड़ी गयी, ता उनमेंसे एकमी नहीं बच सकता । इस रीतिसे इस ईश्वरके जालबुद्ध द्वारा इन्द्र हमारों और छत्रों को बांधा और मारा करता है । ” इन मन्त्रभागोंमें यह वर्णन बड़ा मनोरम है और जालबुद्ध का महत्त्व भी इससे प्रकट होता है, एकवार छत्र जालमें बन्ध गये, तो ऐसा प्रतीत होता है कि उनकी हलचल भी बन्द हो जाती है । इस प्रकार जालसे बांधे गये छत्रोंका बच करना बड़ा सख्त कार्य होता है क्योंकि इन्द्र एक बार छत्रोंको जालमें पकड़कर पश्चात् अपने सैनिकोंसेहि उनका बच कराता है, ऐसा इसी छत्रमें कहा है—

प्राक्तः सेनया तेन ( जालेन वत् ) वस्यूनां सहस्रं जघान । ( म० ७ )

“ इन्द्र अपनी सेनाद्वारा उस जालसे बांधे गये छत्रोंके हमारों सैनिकोंको मारता है । ” इस वर्णनसे स्पष्ट होजाता है कि जालमें बांधे छत्रसैन्यका बच करना सख्त कार्य है । यह जाल पृथ्वीपर बहुत बड़ा फैलाया जाता है इसविषयमें निम्नलिखित मन्त्र दण्डिय—

अथ महान् लोकाः शक्रस्य जाल आसीत् ।  
 तेन इन्द्रजालेन सर्षात् तमसा अभिवृषामि ॥ ( म० ८ )  
 साध्याः रुद्राः वसवः जालदण्ड उपरिष्ठोऽजसा यन्ति ।  
 आदित्यैः एकः ( दण्डः ) उद्यतः ॥ ( म० १२ )  
 विश्वेदेवाः ओजसा उपरिष्ठात् यन्तु ।  
 अगिरसः मध्येन सेनां जन्तः यन्तु ॥ ( म० १३ )

“ इस पृथ्वीपर इन्द्रका जाल फैला है । इस इन्द्रके जालसे सब अशुभोंको अपनेरेसे घेरते हैं । साध्व, रुद्र, वसु और आदित्य ये सब देव जालका एक एक स्तंभ पकड़कर वेगसे दौड़ते हैं । विश्वदेव और आगिरसभी अशुभोंके बीचमें और ऊपरसे हमला करते हैं । ” इतना विस्तार इस जालका होता है । इस जालसे सब पृथ्वी और अन्तः रिष मरजाता है, अर्थात् अशुभका सब सैन्य चारों ओर से इस जालके द्वारा पराजित होता है । इन मन्त्रोंसे एसा प्रतीत होता है कि जिस प्रकार अशुभका सैन्य घूमता है, उसी रीतिसे यह जालभी घुमाया जाता है । इसीलिये जालके दण्ड पकड़कर वसु, रुद्र, आदित्य और साध्व वेगसे प्रमण करते हैं । विश्वेदेव अपने सैन्यसे ऊपरके भागसे हमला करते हैं और आगिरसोंकी सेना बीचमें हमला करता है । इस प्रकार अशुभोंको युद्धमें रलकर वसु रुद्र और आदित्य जालदण्डोंको पकड़कर दौड़ दौड़ कर अशुभोंके इर्द गिर्द जालको दण्डोंके आधारपर ऐसे ढंगसे जाल रचते हैं, कि अशुभ न जानवे हुए स्वयंही जालमें आकर फँस जाय । यह युद्धकी छल की बात है और जो युद्धविद्या जानते हैं उनके हि समझमें यह बात आसकरी है । यहाँ मन्त्रोंद्वारा एकविषय प्रकट हुआ है । इन मन्त्र मागोंका विचार करके पाठक भी इस विषयका थोड़ासा ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं । यहाँ साध्व, वसु, रुद्र, आदित्य, विश्वेदेव और आगिरस ये सेनाविभागों और सेनाध्यक्षोंके नाम हैं । इनके विशेष कार्य युद्धभूमिमें होते हैं, अथः य अलग अलग नाम इनके होव हैं । इन सबका मुख्य इन्द्र है, इसका कार्य ( इन्द्र ) अशुभका भिदारण करना है । इसका कार्य प्रथम मन्त्रने इस प्रकार कहा है—

मन्विता शूरः शक्रः पुरन्दरः इन्द्रः मन्थसु । ( म० १ )

“ अशुभोंके मथन करनेवाला इन्द्र शूर और समर्थ होकर ( पुरन्दरः ) अशुभोंके किलोंका मदन करे । ” इसमें प्रत्येक शब्द इन्द्रका कार्य बता रहा है । अशुभोंके किलोंका तोड़नका कार्य इन्द्र करता है, किलोंसे अशुभसैन्यको बाहर निकालकर, उनको अपने

आलोसे बान्धकर मारता है । इस इकार यह आलपुत्र की नीति है ।

इस शीतिके आलपुत्रके सामान अपने पास रहे तो छत्रुपर विजय प्राप्त करनेका विश्वास अपने सैनिकोंमें जाता है और वे कह कसते हैं—

अमित्राणां सहस्रशः सेनाः इनाम । ( म० १ )

वचकः वधैः एमान् हन्तु । ( म० १, ४ )

अमून् निः शृणीहि । अमून् अजिर लाव । ( म० ३ )

मृत्यवे अमून् प्रयच्छामि । अमी मृत्युपाशैः सिताः ।

मृत्योः ये अपला वृताः तेभ्यः एमान् पशून्वा प्रतिनयामि ॥ ( म० १० )

मृत्युवृता अमून् नयत । यमवृता अपश्मिन्त ।

परःसहस्रा ह यन्ताम् ॥ ( म० ११ )

यथा अमु सेमां हनन् । ( म० १४, १५ )

उताः मृत्युपाशाः पान् आक्रम्य न मुच्यसे ।

अमुप्याः सेनायाः इव कूर्त सहस्रशः हन्तु । ( म० १६ )

“छत्रुके हजारों सैनिकोंको हम मारेंगे । वचके साधनोंसे इनको मारें । इन छत्रुके निःश्रवण मारो । इनकी मृत्युको सीप बता हू । ये मृत्युके पाशसे बांधे हैं । इन छत्रुओंको बांधकर मैं मृत्युके वृत्तोंके बाल करता हू । यमवृत्त इनको छ चले, यमवृत्त इनको सीप लें और हजारोंका वध किया जावे । इस सपूर्ण सेनाका नाश किया जावे । ये मृत्युके पाश फैलाये हैं, इनसे नहीं छुटोगे, इस छत्रुसेनाके इस केन्द्रको प्राप्त कर उनके हजारों सैनिक मारे जाय ॥”

इस प्रकारकी भाषा तभी बोली जा सकती है कि जब छत्रुको पकड़कर घसका वध करना निश्चित सा हो । आलमें पकड़े छत्रुका वध करना निश्चित और सहज होता है इसी लिये आलपोषी वीर इस प्रकारके निश्चयात्मक वाक्य बोल सकते हैं । इसी प्रकारके वाक्य और दृष्टिये—

पराजिताः अमित्राः प्र असन्तां प्रयच्छा मुत्ताः वायत ।

मृत्युपतिमणुत्तानां अर्मापां कथन मा भोषि ॥ ( म० १९ )

“पराजित हुए छत्रु प्राक्का प्राप्त हों, मगाय छत्रु मागतो हुए दौड़ जायें । मगाय इन छत्रुओंमेंसे भी कह न बच ।” ये शब्द छत्रुपराजय का निश्चय बता रहे हैं । आल

युद्धका यह महत्त्व है कि एक बार उसमें फसा छत्रु बचना असम्भव है । आत्ममें फसे छत्रुकी अवस्था कैसी बनती है देखिये—

एषा आयुधानि अवपच्यन्ताम् । इयु प्रतिष्ठा मा शाकन् ।

एषां बहु विन्यता इषयः मर्माणि भन्तु । ( म० २० )

“इन छत्रुओंके आयुध गिरजाय । हमारे छत्रोंको ये सह न सके । इन बहुत बबराये छत्रुओंके मर्मोंमें हमारे छत्र आघात करें । ” तथा और देखिये—

जातार प्रतिष्ठा मा विदन्त । मिषो विमानाः मृत्यु उपयन्तु । ( म० २१ )

“छत्रु मयसीत होकर कियर मी आभवको न प्राप्त हों, उनको कोई उत्तम सलाह देनेवाला न मिले । व आपसमें एक दूसरेको विम करके हुए मृत्युको प्राप्त हों । ” यह अवस्था छत्रुकी तब होगी जब की अपने निश्चित विजयकी समाप्ति हो ।

इन्द्रः शर्वः च अश्रुजालाम्पा अमू सेनां हतम् । ( म० १८ )

“इन्द्र और शर्व बहुत और आलोंके द्वारा इस सेनाको मारे । ” इस मंत्रमें आत्म-युद्धकी शक्ति बताई है । सपूर्ण छत्रुसेनाको मारना केवल आत्मयुद्धसे ही सम्भवनीय है । आत्ममें पकड़े गये छत्रुसेनापर कितनी मयानक आपत्ति आती है इसकी कल्पना अगले मंत्रमामसे हो सकती है—

मृत्योः आर्धं क्षुभ सेर्वि वच मय आपच्यन्ताम् । ( म० १८ )

आत्ममें पकड़े गये छत्रुओंपर ‘मृत्युके समान कष्ट, भूख, बचन, वच और मय’ आपड़ते हैं । छत्रुका कोई मनुष्य इनसे बच नहीं सकता । छत्रुसेनापर ऐसी मयानक आपत्ति आती है इसलिये वह आत्मयुद्ध छत्रुको बहुत दूर उत्पन्न करनेवाला होता है । इसी मंत्रके साथ निम्नलिखित मंत्र देखिये—

सेविः उमा ष्टुद्रिः आर्तिः अनपवाचमा भमः तन्द्री मोहः

च तेः अमून सर्वांश्च अभिदधामि । ( म० ० )

“बचन, उग्र विपत्ति, न कहने योग्य कष्ट, भय, आत्मस्य, मोह इनसे ये सब हमारे छत्रु घेरें हो जाय । ” इसकी सिद्धि होनेके लिये युद्धमें आत्मप्रयोग निःसन्देह उपकारक है । आत्ममें तथा भीर कितना मी बलवान हुआ तो मी वह कुछ प्रतिकार करनेमें असमर्थ होजाता है । इसलिये शुक्तिसे छत्रुको आत्ममें बाँध देनेसे उनका पूर्ण तथा नाश हो जाता है । इस युद्धमें और एक दुर्गोभास का प्रयोग वर्णन किया है वह भी बड़ा पार प्रयोग है देखिये—



## दुर्गंधयुक्त घूँवा ।

पुतिरज्जुः उपष्मानी अमृ सेमां पूर्तिं कृणोतु । ( म० १ )

“ दुर्गंधयुक्त रस्सी बसाकर इस सेनामें सर्वत्र दुर्गंधीको फैला देने । ” कुछ विवेक साधायनिक पदार्थोंसे यह रस्सी भियांगी रहती है । इस रस्सीको बसाकर-सिद्धमात्र उसको अश्वसेनामें फैलानेसे अश्वसेनामें ऐसी दुर्गंधी फैलती है कि उससे अस्त इष्ट अश्वोंके सैनिक युद्ध करनेमें असमर्थ हो जाते हैं । इससे कितना मय प्राप्त होता है देखिये—

धूममग्निं पराहृदय अमिधा हृत्स्वाहृदतां भय । ( मं० २ )

“ पूर्वोक्त धूममय अग्नि दूरसे देखकर पशुओंके सब लोग हृदयोंमें भय उत्पन्न करते हैं । ” इतना यह दुर्गन्धाक्ष महामयंकर है । एकवार यह ( पुतिरज्जु ) दुर्गन्धकी रस्सीका बलना प्रारम्भ होकर दुर्गंध फैलने लगा तो सब सैनिक किसी भी कार्यके छिन्न बड़े निष्क्रमे हो जाते हैं और मानने लगते हैं कि अब अपने नाश का सबब आपका है । यदि आल प्रयोग और यह दुर्गंध प्रयोग ये दोनों प्रयोग किये जाय, तो अश्वोंकी भी नाश करना बिलकुल आसानीसे होसकता है । इस प्रकार ये दोनों प्रयोग करनेसे अपना विजय होता है अतः कहा है—

## विजय ।

इतो जय विजय सजय जय स्वाहा ।

इमे जयन्तु परामी जयन्तां स्वाहेभ्यो तुराहामीभ्यः ॥ ( मं० १४ )

“ इस पूर्वोक्त बुद्धिसे जय और विजय प्राप्त करो, यह तुम्हारा उत्तम अब हो । ये तुम्हारे सैनिक विजयी हों, तुम्हारे अश्व पराजित हों । तुम्हारा उत्तम करपात्र हो, तुम्हारे अश्वोंका अकल्पाव हो । ” इस प्रकार अन्तमें इस आलपुष्ट करनेवालोंको धूम आशीर्वाद दिया है ।

इस प्रकार वेदमें उपदेश किये आलपुष्टका वर्णन है । पाठक इसका विचार करके वेदकी शुद्धनीति जानें ।

“ इन्द्र आल ” धूम आध्यात्मिक वर्णन का भी माय बताया है । इस दृष्टीसे इस धूम का विचार कोई करे । यह विषय अन्वेषणीय है ।

# एकही उपास्य देव !

[ ९ ]

( ऋषिः— अथर्वा, कश्यपः, सर्षे वा ऋषयः । देवता—विराट् )

कुतुस्तौ शतौ कृतमः सो अर्धः कस्मात्लोकात् कृतमस्याः पृथिव्याः ।

वत्सो विराजः सलिलादुदैतां तौ त्वां पृच्छामि कतरेण दुग्धा ॥ १ ॥

यो अक्रन्दयत् सलिलं महित्वा योनिं कृत्वा त्रिभुवं घापानः ।

वत्सः कामदुषो विराजः स गुहां चक्रे तन्वाः पराचैः ॥ २ ॥

अर्थ—( तौ कृतः जातौ ) ये दोनों कहाँसे प्रकट हुए ? (सः अर्धः कृतमः) वह कौनसा अर्धभाग है ? और वह ( कस्मात् लोकात् ) कौनसे लोक से और ( कृतमस्याः पृथिव्याः ) कौनसे भूविभागके ऊपर ( सलिलात् विराजः ) आप तत्त्वसे विराजके ( वत्सो इत् पेटां ) दोनों बच्चे प्रकट होते हैं ! ( तौ त्वा पृच्छामि ) उन दोनों के बिपणमें तुझे मैं पूछता हूँ । उन मेंसे वह गौ ( कतरेण दुग्धा ) किससे दही जाती है ! ॥ १ ॥

( त्रिभुजं योनिं कृत्वा ) तीन भुजावाला आश्रयस्थान बनाकर ( घापानः यः ) विभाम करनेवाला जो अपने ( महित्वा सलिलं अक्रन्दयत् ) महत्त्वसे जलको प्रक्षुब्ध बनाता है । ( विराजः कामदुषः स वत्सः ) विराज रूपी कामधेनुका वह बच्चा ( पराचैः गुहां ) दूर और शुभ ( तन्वाः चक्रे ) शरीरोंकी बनाता है ॥ २ ॥

भाषार्थ—( क्रीत्वा और पुरुषत्वा ) ये दोनों कहाँसे प्रकट होगये हैं ? इसमें वह भाषा भाग कहाँसे माना जाता है ? कौनसी पृथ्वीके ऊपर कौनसे स्थानसे किस जलतत्त्वसे विराट् उत्पन्न होकर उसके ( रयि और प्राण ये ) दोनों बच्चे किस प्रकार उत्पन्न हुए ? उस विराट् रूपी गौका दोहन किस बच्चेके साथ हुआ ? ये प्रश्न मैं तुझसे पूछता हूँ ॥ १ ॥

त्रिगुणमयी प्रकृतिमें व्यापमेवाला अपनी शक्तिसे ही उसमें गति उत्पन्न करता है । उससे विराट् नामक कामधेनु होती है, उसीका वह बच्चा है, जो दूरकी गुहामें अपने शरीरोंको बनाता है ॥ २ ॥

मानि त्रीणि ब्रूहन्ति येषां चतुर्थं विद्युनक्ति वाचम् ।  
 अद्यैतद् विद्यात् तपसा विपश्चिद् यस्मिन्नेकं ब्रूयते यस्मिन्नेकम् ॥ ३ ॥  
 ब्रूतः परि सामानि ब्रूयात् पञ्चाधि निर्मिता ।  
 ब्रूद् ब्रूहत्या निर्मितं कुतोधि ब्रूहती मिता ॥ ४ ॥  
 ब्रूहती परि मात्राया मातुर्मात्राधि निर्मिता ।  
 माया इ अत्रे मायाया मायाया मातली परि ॥ ५ ॥

अर्थ—( पानि ब्रूहन्ति त्रीणि ) जो बड़े तीन हैं और ( येषां चतुर्थं वाचं विद्युनक्ति ) जिनका चौथा वाणीको प्रकट करता है । ( विपश्चित् तपसा ) शानी तपसे ( एतत् ब्रह्म विद्यात् ) इसको ब्रह्म जाने । ( यस्मिन् एकं पुरुष मे ) जिसमें एकका योग किया जाता है और ( यस्मिन् एक ) जिसमें एकका होता है ॥ ३ ॥

( ब्रूतः पछात् परि ) बड़े पछके ऊपर ( पञ्च सामानि अधि निर्मिता ) पांच सामोंका निर्माण हुआ है । ( ब्रूहत्याः ब्रूहत् निर्मित ) बड़ीसे बड़ा बनाया है । ( ब्रूहती कुतः अधि निर्मिता ) बड़ी कहाँसे निर्माण हुई है ॥ ४ ॥

( मातुः मात्रायाः परि ) माताकी तन्मात्राके आधारपर ( ब्रूहती मात्रा अधिनिर्मिता ) बड़ी मात्रा निर्माण हुई है । ( माया इ मायायाः अत्रे ) माया निम्नपसे मायासे उत्पन्न होती है । और ( मायायाः परि मातली ) मायाके ऊपर मातली है ॥ ५ ॥

भावार्थ— तीन बड़े तत्त्व हैं । जो चौथा है वह वाणीको प्रेरित करता है । शानी तपसे इस ब्रह्मको जानता है, जिसमें एक ( मन ) का योग किया जाता है ॥ ३ ॥

बड़े छठे तत्त्वके आधारपर पांच सामोंकी रचना हुई है । यहीसे हि बड़ेका निर्माण होता है । परन्तु पहिली बड़ी कहाँसे होती है ? ॥ ४ ॥

प्रकृतिमातासे तन्मात्रा की उत्पत्ति होती है और उससे पृथिवी आदिकी उत्पत्ति होती है । मायासे इस प्रकार माया की उत्पत्ति होती है । और इस मायाके ऊपर माया का निरीक्षक भी है ॥ ५ ॥

वैश्वानरस्य प्रतिमोपरि द्यौर्यावद् रोदसी विषयाधे अग्निः ।  
 ततः पृष्ठादामुर्वो यन्ति स्तोमा उदितो यन्त्यमि पृष्ठमहः ॥ ६ ॥  
 पद् त्वा पृच्छाम ऋषयः कश्यपेमे त्व हि युक्तं युगुधे योग्यं च ।  
 विराजमादुर्ध्वगणः पितर तां नो वि वैहि यतिषा सखिम्यः ॥ ७ ॥  
 यां प्रच्युतामनु यज्ञाः प्रच्यवन्त उपतिष्ठन्त उपतिष्ठमानाम् ।  
 यस्यां व्रते प्रसवे यक्षमेवति सा विरादृषयः परमे व्योमिन् ॥ ८ ॥

अर्थ—(उपरि यो। वैश्वानरस्य प्रतिमा) ऊपर जो गुलोक है वह वैश्वानरकी प्रतिमा है । ( यावत् अग्निः रोदसी विषयाधे ) जहातक अग्नि गुलोक और पृथिवीको बाधित करता है । ( ततः अमृतः पृष्ठात् स्तोमाः आपन्ति ) वहाँ से दूरके छठ स्थानसे स्ताम आते हैं । और वे ( इतः अहः पष्ठ अग्नि उत्पन्ति ) यहाँस छठे दिन ऊपर उठते हैं ॥ ६ ॥

हे कश्यप ! ( हमे पद् ऋषयः त्वा पृच्छामः ) ये हम छः ऋषि सुप्तसे प्रश्न पूछते हैं क्यों कि ( त्व हि युक्त योग्य च युगुधे ) तू हि युक्त और योग्यको संयुक्त करता है । ( विराज ग्रन्थणः पितर आहुः ) विराज को ग्रन्थाका पिता कहते हैं । ( तां नः सखिम्यः ) उसको हम मित्रों को ( यतिषा विषेहि ) जितने प्रकारों से हो उतने प्रकारोंसे वर्णन करो ॥ ७ ॥

हे ( ऋषयः ) ऋषिगण ! ( यां प्रच्युतां ) जिसके स्थानसे चलनेपर ( यज्ञाः अनु प्रच्यवन्ते ) यज्ञ चलते हैं । और जिसके ( उपतिष्ठमानां उपतिष्ठन्ते ) उपस्थित होनेसे उपस्थित होते हैं । ( यस्याः प्रसवे व्रते ) जिसके प्रकट होनेके निषममें ( यक्ष एजति ) यजनीय देव हलचल करता है । ( सा विराट् ) वह विराट् ( परमे व्योमिन् ) परम आकाशमें है ॥ ८ ॥

भावार्थ—वैश्वानर उतना है कि जितनी यो है । जहातक गुलोकसे पृथ्वी तक अन्तर है उसमें वैश्वानरकी व्याप्ति है । वैश्वानर छठवां है, जिससे स्तोम और यज्ञ प्रचलित होते हैं और ये सप्त फिर उर्ध्वमें जा मिलते हैं ॥ ६ ॥

हे कश्यप ! ये हम छः ऋषि सुप्तसे पूछते हैं । तू सप्तको योग्य स्थानमें नियुक्त करता है । अतः इसका उत्तर दो । विराट् ग्रन्थाका पिता कहते हैं उस पिपयमें हम सप्तको सप्त प्रकारसे कहो ॥ ७ ॥

हे ऋषिगण ! जिसके चलनेसे यज्ञ चलते और जिसके स्थिर होनेसे

अप्राप्यैति प्राणेन प्राणतीर्णा विराद् स्वराजमभ्येति पश्चात् ।

भिन्नं मृद्यन्तीमभिरूपा विराज् पश्यन्ति स्वे न स्वे पश्यन्त्येनाम् ॥९॥

को विराजो मिथुनस्व प्रवेष्ट कः श्रुत्वा क उ कल्पमस्याः ।

क्रमान् को अस्याः कतिधा विदुग्धाम् को अस्या धाम कतिधा म्युष्टीः ॥१०॥

अर्थ- ( अ-प्राणा प्राणतीर्णा प्राणेन पति ) स्वयं बिना प्राण होकर भी प्राणवालोंके प्राणके साथ चलती है। पश्चात् ( विराद् स्वराज अभ्येति ) विराद् स्वयं प्रकाशके पास पहुँचती है। ( विन्ध मृद्यन्ती अभिरूपा विराज ) सबको स्पर्श करनेवाली अनुरूप विराड्को ( स्वे पश्यन्ति ) वे कई देखते हैं, परंतु ( स्वे एनां न पश्यन्ति ) वे इसको नहीं देखते ॥ ९ ॥

( विराजः मिथुनस्व कः प्रवेष्ट ) विराद् के स्त्रीत्व और पुरुषत्वको कौन जानता है ? ( कः श्रुत्वा ) कौन श्रुतियोंको और ( कः अस्याः कल्प उ ) कौन इसके कल्पको जानता है ? ( अस्याः क्रमान् कः ) इसके क्रमोंको कौन जानता है ? ( कतिधा विदुग्धाम् ) कितनी बार बोझी गयी यह कौन जानता है ? ( कः अस्याः धाम ) कौन इसका स्थान जानता है और ( कतिधा म्युष्टीः ) कितनी प्रकारसे इसके प्रभात समय होते हैं ? ॥ १० ॥

यज्ञ स्थिर होते हैं, जिसकी प्रेरणासे आत्मा प्रेरणा करता है वही विराद् देवता है ॥ ८ ॥

यह विराद् अथ प्राणवाली न होती हुई प्राणियोंके प्राणके साथ चलती है। तथा यह विराद् अथप्रकाश आत्माके पास भी पहुँचती है। सबका स्पर्श करनेवाले इस विराड्को कई देखते हैं और कई इसका वक्ष नहीं सकते ॥ ९ ॥

इस विरादके अन्तर स्त्रीत्व और पुरुषत्व किस प्रकार रहता है। इसके श्रुत और कल्प किस क्रमसे होते हैं ? और कौन इसको पचावत् जानता है ? इस विराड्का धाम किसने देखा है, और इसके प्रभातसमयका किसको पता है ? इस विराड्का कितने प्रकारोंसे बोझन किया है अर्थात् कितने रस इससे भिन्न होते हैं ॥ १० ॥

इयमेव सा या प्रथमा व्योम्हदास्वितरासु चरति प्रविष्टा ।  
 नृहान्तो अस्या महिमानो अन्तर्वधूजिगाय नवगज्जनित्री ॥ ११ ॥  
 छन्दःपक्षे उपसा पेपिशाने समानं योनिमनु स चरेते ।  
 सूर्यपत्नी स चरतः प्रजानुषी केशुमती अजरे भूरितसा ॥ १२ ॥  
 अतस्य पन्थामनु तिस्र आगुस्रयो घर्मा अनु रेत आगुः ।  
 प्रजामेका जिन्वत्युर्जमेका राष्ट्रमेका रक्षति देवयूनाम् ॥ १३ ॥

अर्थ—(इय एव सा या प्रथमा व्योम्हदा) यही वह है कि जो पहिली होकर प्रकाशित होती है, जो ( आसु इतरासु प्रविष्टा चरति ) इनमें और अन्यो में प्रविष्ट होकर चलती है । ( अस्या अन्तः महान्तः महिमानः ) इस में पड़ी शक्तियाँ हैं । ( नवगज्जनित्री वधू जिगाय ) नूतन जमनी वधू के समान सयको जीतती है ॥ ११ ॥

( छन्दःपक्षे उपसा पेपिशाने ) छन्द के दो पक्ष उपासे सुन्दर बनते हुए ( समान योनिं अनु सचरेते ) एक स्थान को लक्ष्य करके चलते हैं । ( प्रजानुषी केशुमती सूर्यपत्नी ) जानती हुई केशुवाली सूर्यपत्नी प्रभा (अजरे भूरितसा सचरतः) अजर बहुत वीर्यवाली संचार करती हैं ॥ १२ ॥

( तिस्रः अतस्य पन्थां अनु आगुः ) तीनों सत्यके मार्गको अनुकूल होती हैं । ( घर्मा घर्माः रेतः अनु आगुः ) तीनों यज्ञ वीर्यका अनुकूल हाते है । ( एका प्रजा जिन्वति ) एक प्रजा-सतति-को तृप्त करती है । ( एका ऊर्जं ) दूसरी बलकी रक्षा करती है और ( एका देव-यू-मां राष्ट्र रक्षति ) तीसरी देवके साथ योग करनेवालोंके राष्ट्रकी रक्षा करती है ॥ १३ ॥

भावार्थ— यही विराह पहिली प्रकाशित हुई है, जो अन्योमें प्रविष्ट होकर विचरती है । इसके अन्दर पड़ी पड़ी शक्तियाँ हैं । यह नववधूके समान सय पर प्रभाव डालती है ॥ ११ ॥

छन्द के दो पक्ष हैं, जो एकहि छन्दमें अनुकूलतासे कार्य करते हैं । जैसी सूर्यपत्नी प्रभा उपाकालसे प्रकाशित होनका प्रारम्भ होता है, उसी प्रकार ये दोनों छन्दक पक्ष अक्षीण होकर विशेष बलके साथ सूर्यत्र संचार करते हैं ॥ १२ ॥

तीनों शक्तियाँ सत्यके अनुकूलताके साथ होती हैं तथा तीनों यज्ञ

अग्नीषोमावदधुर्या तुरीयासीद् यज्ञस्य पञ्चागृपयः कल्पयन्तः ।  
 गायत्रीं त्रिष्टुभं अगतीमनुष्टुभं बृहदकीं यजमानाय स्वर्गामरन्तीम् ॥१४॥  
 पञ्च षुष्टिरनु पञ्च दोहा गां पञ्चनाम्नीमृतषोनु पञ्च ।  
 पञ्च दिशः पञ्चदशेन कृतास्ता एकमूर्तीरुभि लोकेकम् ॥१५॥  
 पद् भ्राता भूता प्रथमवर्तस्य पद् सामानि पद् बहु वहन्ति ।  
 पद् योग सिरमनु सामसाम पद् बहुर्धाषोपुषिषीः पद् धीः ॥ १६ ॥

अर्थ—(अग्नीषोमो यज्ञस्य पक्षौ) अग्नि और सोम ये दो यज्ञके दो पक्ष हैं ऐसा (अथवा कल्पयन्तः) ऋषियोंने माना है । ( या तुरीया आसीत् ) जो चतुर्थ अवस्था है, उसको और ( गायत्रीं त्रिष्टुभं जगतीं अनुष्टुभं ) गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती और अनुष्टुप् रूपसे (यजमानाय स्वः आमरन्तीं बृहदकीं ) यजमानको प्रकाश देनेवाली पक्षी उपासनाको वे ( ब्रह्म ) पारण करते हैं ॥ १४ ॥

( पञ्च व्युष्टीः ) पाँच उपाए, ( पञ्च दोहाः अनु ) पाँच अनुकूल दोहन समय ( पञ्चनाम्नीं गां अनु ) नामवाली पाँच अनुरूप गौ, ( पञ्च ऋतवः ) पाँच ऋतु, ( पञ्चदशेन पञ्च दिशः कलुताः ) पद्मद्वारे पाँच दिशाओंको अनुकूल किया है, ( ताः एकमूर्तीः ) वे सब एक सिरवाले होकर ( एक लोके अभि ) एक लोकके चारों ओर हैं ॥ १५ ॥

( ऋतस्य प्रथमजाः ) सत्यका पहिला प्रवर्तक ( बहू भूताः जाताः ) छा भूत बने हैं । ( बहू उ सामानि ) छा साम ( बहू—बहु वहन्ति ) छा दिनोंको ले जाते हैं । ( बहू योग सिरमनु साम-साम ) छा बेल जोते हुए इसको साम साम कहते हैं, ( यावापुषिषीः बहू आहुः ) युष्माकसे पुष्पी पर्यंत छा केन्द्र हैं, जिनको ( बहू उर्धीः ) छा आगे कहते हैं ॥ १६ ॥

वैर्यक साथ चलते हैं । एक सत्तामकी रक्षा, दूसरी बलकी रक्षा और तीसरी देवके उपासकोंके राष्ट्रकी रक्षा करती है ॥ १३ ॥

अग्नि और सोम ये यज्ञके दो पक्ष हैं यह पात ऋषियोंने मानी है । और वे ऐसा भी मानते हैं कि जो चतुर्थ अवस्था है वह त्रिष्टुप् जगती अनुष्टुप् रूपसे यजमानके लिये स्वर्गका सुख भर देती है ॥ १४ ॥

एक गोक अनुकूल पाँच उपाए, पाँच दोहन समय हैं, पाँच ऋतु,

पदाङ्गुः शीतान् पद्म मास उष्णानुत्तु नो म्रुव यत्तमोत्तिरिक्तः ।

सप्त सुपर्णा कवयो नि पेटुः सप्त छन्दास्पनु सप्त दीक्षाः ॥ १७ ॥

सप्त होमाः समिधो ह सप्त मधूनि सप्तर्वषो ह सप्त ।

सप्तान्मानि परि मृतमायन् ताः सप्तगृध्रा इति शुभ्रमा ययम् ॥ १८ ॥

अर्थ—( पद्म शीतान् आहुः ) छः शीतकालके महिने हैं, ( पद्म उष्णान् मासः ) छः उष्णकालके महिने हैं । ( नः ऋतु म्रुहि ) इनके ऋतु हमें बताताओ, ( यतमः अतिरिक्तः ) इनमें कौनसा विशेष रिक्त है ? ( सप्त सुपर्णाः कवयः ) सात उत्तमपक्षिबाल कवि ( निपेटुः ) निवास करते हैं । ( सप्त छन्दांसि ) सात छन्द हैं ( अनु सप्त दीक्षाः ) उनके अनुकूल सात दीक्षा भी हैं ॥ १७ ॥

( सप्त होमाः ) सात यज्ञ हैं, ( समिधः ह सप्त ) समिधाए सात हैं ( मधूनि सप्त ) सात मधु और ( सप्त ऋतवः ह ) सात ऋतु हैं । ( सप्त आज्यानि भूत परि आपन् ) सात प्रकारके घृत सप्त जगत्त्रय प्राप्त हैं, ( ताः सप्तगृध्राः ) ये सात गीष हैं ( इति यय शुभ्रम् ) ऐसा हम सुनते हैं ॥ १८ ॥

पाँच दिशाएँ, इनके ऊपर एकका अधिकार है । इस एकके पास सबको पहुँचना है ॥ १५ ॥

सत्यमार्गका प्रथम प्रवर्तक आत्मा है, उससे छः तत्त्व उत्पन्न हुए हैं । छः साम छः दिनोंका यज्ञ समाप्त करते हैं । जिस प्रकार छः बैल जोते हुए इसको किसान खेताते हैं, वैसा ही यह साम छः दिनोंवाले यज्ञको खेताता है । जगत्त्रय सुलोक और पृथिवी के अन्दर भी छः पृथ्वी सरीखे गोल हैं ॥ १६ ॥

शीतकालके छः मास हैं, उष्ण कालके भी छः मास हैं । इनके ऋतु हमें बताओ और यह भी बताओ कि हममें रिक्त कौन है ? सात कवि उत्तम पत्र लेकर यहाँ बैठे हैं, उनके साथ सात छन्द हैं, और सात दीक्षाएँ भी हैं ॥ १७ ॥

सात होम, सात समिधाएँ, सात षाड़, सात ऋतु, और सात घृत मृतमात्रके चारों ओर हैं । उनके साथ सात गीष भी हैं ऐसा हम सुनते हैं ॥ १८ ॥



सप्त छन्दांसि चतुरश्रराण्यन्यो अन्यस्मिन् अप्यर्पितानि ।

कथं स्तोमाः प्रति तिष्ठन्ति तेषु तानि स्तोमेषु कथमर्पितानि ॥ १९ ॥

कथं गायत्री त्रिवृत् व्यापि कथं त्रिष्टुप् पञ्चदशेन कल्पते ।

त्रयस्त्रिंशेन जगती कथमनुष्टुप् कथमैकविंशः ॥ २० ॥

अष्ट आता भूता प्रथमजर्तस्याष्टेन्द्रस्त्रिंशो दैव्या ये ।

अष्टयोनिरदितिष्टपुत्राष्टमी रात्रिर्माभि इव्यमेति ॥ २१ ॥

अर्थ- ( सप्त छन्दांसि ) सात छन्द हैं, ( चतुराणि चतुः ) उनसे आठ बार हैं। ये ( अन्यः अन्यस्मिन् ) एक दूसरेमें (अभि आ अपर्पितानि) समर्पित हैं। ( स्तोमाः तेषु कथं प्रति तिष्ठन्ति ) स्तोम इनमें कैसे रहते हैं ? ( तानि स्तोमेषु कथं अपर्पितानि ) वे स्तोमोंमें कैसे समर्पित हुए हैं ॥ १९ ॥

( गायत्री त्रिवृत् कथं व्याप ) गायत्री त्रिवृत् को कैसे व्यापती है ? ( कथं त्रिष्टुप् पञ्चदशेन कल्पते ) कैसे त्रिष्टुप् पञ्चदश से होता है ? ( त्रयस्त्रिंशेन जगती कथं ) तैत्तिरीयसे जगती कैसी होती है और ( अनुष्टुप् एकविंशः कथं ) अनुष्टुप् इक्कीस का कैसे होता है ॥ २० ॥

( सप्तस्य प्रथमजाः अष्ट भूताः जाताः ) सप्तके पहिले प्रवर्तकसे आठ भूत उत्पन्न होगये हैं। हे इन्द्र ! ( ये दैव्याः ऋत्विजाः अष्ट ) जो दिव्य ऋत्विज हैं वे भी आठ हैं। ( अदितिः अष्टयोनिः अष्टपुत्रा ) अदिति आठ उत्पत्तिस्थानवाली है और उसको आठ पुत्र भी हैं। ( अष्टमी रात्रिः ) अष्टमी रात्रिको ( इव्य अभि पति ) इव्य प्राप्त होता है ॥ २१ ॥

भाषार्थ-सात छन्द, उनके आठ उत्तर पक्ष, एक दूसरेके साथ मिल हुए होते हैं। ये स्तोमोंमें कैसे रहते हैं और ये स्तोम उनमें कैसे रहते हैं ॥ १९ ॥

गायत्रीमें त्रिवृत्को कैसे व्याप है ? त्रिष्टुप् पञ्चदशके साथ कैसा पुक्त हुआ है। तैत्तिरीयके साथ जगती कैसी व्यापती है और अनुष्टुप् इक्कीससे कैसे सम्बन्ध रखता है ॥ २० ॥

सप्तके पहिले प्रवर्तकसे आठ तत्त्व उत्पन्न हुए हैं। ये आठ दिव्य ऋत्विज हैं। अदितिके भी ये आठ पुत्र हैं। आठवीं रात्री से यही अदिति इव्यमीय पदार्थोंको प्राप्त होती है ॥ २१ ॥

इत्थं भेषो मन्यमानेदमागमं पुष्पाकं सुख्ये अहमस्मि शेवा ।

समानजन्मा ऋतुरस्ति वः शिवः स वः सर्वाः सं चरति प्रज्ञान् ॥२२॥

अष्टेन्द्रस्य पद् यमस्य ऋषीणां सप्त सप्तधा ।

अथा मनुष्याः नोपधीस्तौ उ यम्भानुं सेचिरे ॥ २३ ॥

केवलीन्द्राय दुवुहे हि गृष्टिर्वैषं पीयूषं प्रथमं बुधाना ।

अथातर्पयन्तुरमनुष्या देवान् मनुष्याः असुरानुत ऋषीन् ॥ २४ ॥

अर्थ- (इत्थं भेषः मन्यमानः) इस प्रकार कल्याणको माननेवाली ( इह पुष्पाकं सुख्ये ) इस प्रकार तुम्हारी मित्रतामें ( आगम ) आगयी हू ( अहं शेवा अस्मि ) मैं सेवनीय हू । ( समान-जन्मा वः ऋतुः ) तुम्हारे साथ उत्पन्न हुआ तुम्हारा पक्ष ( शिवः अस्तु ) कल्याणकारी होवे । ( सः प्रज्ञान् ) वह जानता हुआ ( वः सर्वाः सचरति ) तुम सबमें सचार करता है ॥ २२ ॥

( इन्द्रस्य अष्ट ) इन्द्रके आठ, ( यमस्य पद् ) यमके छः ( ऋषीणां सप्तधा सप्त ) ऋषियोंके सात प्रकारके सात हैं । ( पद् आपः ) पाँच प्रकारके जल ( तान् मनुष्यान् ओषधीः ) उन मनुष्यों और ओषधियोंके प्रति ( उ अनु सेचिरे ) अनुकूलतासे सिंचन करते हैं ॥ २३ ॥

( केवली गृष्टिः ) केवल गौहि ( पीयूषं प्रथमं बुधाना ) अमृतरूपी दूध सबसे प्रथम देनेवाली ( इन्द्राय वषा दुवुहे ) इन्द्रके लिये अनुकूलताके साथ बुझती है । ( अथ ) और ( अतुरः ) चारों देव मनुष्य असुर और ऋषियों को ( अतर्पयन् ) चार प्रकारसे तृप्त करती है ॥ २४ ॥

भावार्थ- इस प्रकार अपना कल्याण है यह जानकर आपकी मित्रतामें मैं प्राप्त हुई हू । मैं सेवनीय हू । आपका पक्ष सयके सम प्रयत्नसे होनेवाला है । वह आपके लिये कल्याणकारी होवे । वह पक्ष आप सयमें प्रचलित रहे ॥ २२ ॥

इन्द्रक आठ, यमके छः, ऋषियोंके सात प्रकारके सात हैं । पाँच प्रकारके जल ओषधियोंमें प्रविष्ट होकर सप्त मनुष्योंकी सेवा करते हैं ॥ २३ ॥

केवल एक गौ अमृतरूपी दूध देती हुई इन्द्रके लिये अपना दुग्ध अर्पण करती है । और यही देव, मनुष्य, असुर और ऋषियोंको चारों प्रकारसे तृप्त करती है ॥ २४ ॥

सप्त छन्दांसि चतुरवराण्यन्यो अन्यस्मिन्मध्यापितानि ।

कथं स्तोमाः प्रति तिष्ठन्ति तेषु तानि स्तोमेषु कथमापितानि ॥ १९ ॥

कथं गायत्री त्रिवृत् व्यापि कथं त्रिष्टुप् पञ्चदशेन कल्पते ।

त्रयस्त्रिंशेन जगती कथमेनष्टुप् कथमेकविंशः ॥ २० ॥

अष्ट आवा मृता प्रथमज्वत्स्याष्टेन्द्रतिजो वैष्वा ये ।

अष्टयोनिरदितिरष्टपुत्राष्टमी रात्रिमभि इष्यमैति ॥ २१ ॥

अर्थ- ( सप्त छन्दांसि ) सात छन्द हैं, ( चतुराणि चतुः ) उनसे चार हैं। ये ( अन्यः अन्यस्मिन् ) एक दूसरेमें ( अथि आ अपितानि ) समर्पित हैं। ( स्तोमाः तेषु कथं प्रति तिष्ठन्ति ) स्तोम उनमें कैसे रहते हैं ? ( तानि स्तोमेषु कथं अपितानि ) वे स्तोमोंमें कैसे समर्पित हुए हैं ॥ १९ ॥

( गायत्री त्रिवृत् कथं व्याप ) गायत्री त्रिवृत् को कैसे व्यापती है ? ( कथं त्रिष्टुप् पञ्चदशेन कल्पते ) कैसे त्रिष्टुप् पञ्चदश से होता है ? ( त्रयस्त्रिंशेन जगती कथं ) तैत्तिरीयसे जगती कैसी होती है और ( अष्टुष्टुप् एकविंशः कथं ) अष्टुष्टुप् इक्कीस का कैसे होता है ? ॥ २० ॥

( अथस्य प्रथमजाः अष्ट मृताः जाताः ) सस्यके पहिले प्रवर्तकसे आठ मृत उत्पन्न होगये हैं। हे इन्द्र ! ( ये वैष्वाः अस्विजाः अष्ट ) जो द्विष ऋत्विज हैं वे भी आठ हैं। ( अदितिः अष्टयोनिः अष्टपुत्रा ) अदिति आठ उत्पत्तिस्थानवाली है और उसको आठ पुत्र भी हैं। ( अष्टमी रात्रिः ) अष्टमी रात्रिको ( इष्य अभि एति ) इष्य प्राप्त होता है ॥ २१ ॥

भाषार्थ-सात छन्द, उनके चार उत्तर पक्ष, एक दूसरेके साथ मिल हुए होते हैं। ये स्तोमोंमें कैसे रहते हैं और ये स्तोम उनमें कैसे रहते हैं ॥ १९ ॥

गायत्रीमें त्रिवृत्को कैसे व्यापा है ? त्रिष्टुप् पञ्चदशके साथ कैसा युक्त हुआ है। तैत्तिरीयके साथ जगती कैसी व्यापती है और अष्टुष्टुप् इक्कीससे कैसे सर्वध रक्षता है ॥ २० ॥

सस्यके पहिले प्रवर्तकसे आठ तरफ उत्पन्न हुए हैं। ये आठ द्विष ऋत्विज हैं। अदितिके भी ये आठ पुत्र हैं। आठवीं रात्री से यही अदिति इषनीय पदार्थोंका प्राप्त होती है ॥ २१ ॥

इत्थं भेयो मन्यमानेदमागमं युष्मार्कं सस्ये अहमस्मि श्रेवा ।

समानजन्मा ऋतुरस्ति यः शिवः स यः सर्वाः स चरति प्रबान् ॥ २२ ॥

अष्टेन्द्रस्य पद् यमस्य ऋषीणां सप्त सप्तधा ।

अपा मनुष्याश्च नोपधीस्तां उ पञ्चानु सेचिरे ॥ २३ ॥

केवलीन्द्राय दुदुहे हि गृष्टिर्वैषी पीयूषं प्रथमं दुहाना ।

अथावर्षयन्चतुरेभ्युर्षां दधान् मनुष्यांश्च असुरान् च ऋषीन् ॥ २४ ॥

अर्थ- (इत्थं श्रेयः मन्यमाना) इस प्रकार कल्याणको माननेवाली ( इद् युष्माकं सस्ये ) इस प्रकार तुम्हारी मित्रतामें ( आगम ) आगयी हू ( अहं श्रेवा अस्मि ) मैं सेवनीय हू । ( समान-जन्मा यः ऋतुः ) तुम्हारे साथ उत्पन्न हुआ तुम्हारा यज्ञ ( शिवः अस्तु ) कल्याणकारी होवे । ( सः प्रजामन् ) वह जानता हुआ ( यः सर्वाः सचरति ) तुम सबमें सचार करता है ॥ २२ ॥

( इन्द्रस्य अष्ट ) इन्द्रके आठ, ( यमस्य पद् ) यमके छः ( ऋषीणां सप्तधा सप्त ) ऋषियोंके सात प्रकारके सात हैं । ( पञ्च आपः ) पाँच प्रकारके जल ( तान् मनुष्यान् ओपधीः ) उन मनुष्यों और ओपधियोंके प्रति ( उ अनु सेचिरे ) अनुकूलतासे सिंचन करते हैं ॥ २३ ॥

( केवली गृष्टिः ) केवल गौहि ( पीयूषं प्रथमं दुहाना ) अमृतरूपी दूध सबसे प्रथम देनेवाली ( इन्द्राय यज्ञं दुदुहे ) इन्द्रके लिये अनुकूलताके साथ दुहती है । ( अथ ) और ( चतुरः ) चारों देव मनुष्य असुर और ऋषियों को ( चतुर्षां अवर्षयत् ) चार प्रकारसे तृप्त करती है ॥ २४ ॥

भावार्थ- इस प्रकार अपना कल्याण है यह जानकर आपकी मित्रतामें मैं प्राप्त हुई हू । मैं सेवनीय हू । आपका यज्ञ आपके सम प्रयत्नसे होनेवाला है । यह आपके लिये कल्याणकारी होवे । वह यज्ञ आप सबमें प्रयत्नित रहे ॥ २२ ॥

इन्द्रक आठ, यमके छः, ऋषियोंक सात प्रकारके सात हैं । पाँच प्रकारके जल ओपधियोंमें प्रक्षिप्त होकर मय मनुष्योंकी सेवा करते हैं ॥ २३ ॥

केवल एक गौ अमृतरूपी दूध देती हुई इन्द्रके लिये अपना दुग्ध अर्पण करती है । और यही देव, मनुष्य, असुर और ऋषियोंको चारों प्रकारसे तृप्त करती है ॥ २४ ॥

को नु गौः क एकऋषिः किमु धाम का आशिर्वा ।

यसं पृथिव्यामेकवृद्धैर्कृतुः कृतमो नु सः ॥ २५ ॥

एको गौरैक एकऋषिरैक धामैकधाशिर्वा ।

यद्धं पृथिव्यामेकवृद्धैर्कृतुर्नाति रिच्यते ॥ २६ ॥ ( २४ )

अर्थ—( कः नु गौः ) कौन गौ है ? ( काः एका ऋषिः ) कौन एक ऋषि है ।  
( किं उ धाम ) कौनसा धाम है ? ( काः आशिर्वा ) कौनसे आशिर्वा  
है ? ( पृथिव्यां एकवृत्त यज्ञ ) पृथ्वीमें एकहि व्यापक पूजनिय देव है ।  
( सः एकऋतुः कः नु ) यह एक ऋतु कौनसा है भला ? ॥ २५ ॥

( एका गौः ) एकहि गौ है, ( एका एकऋषिः ) एकहि एक ऋषि है ।  
( एक धाम ) एकहि धाम है, ( आशिर्वाः एकधा ) आशिर्वाह एकहि प्रकार  
दिया जाता है । ( पृथिव्यां एकवृत्त यज्ञ ) पृथ्वीपर एकहि व्यापक पूज्य  
देव है । ( एका ऋतुः ) एक हि ऋतु है । ( न अतिरिच्यते ) उससे बढ़कर  
दूसरा कोई नहीं है ॥ २६ ॥

आचार्य—यह एक गौ कौन है ? वह एक ऋषि कौन है, उसका धाम कहा  
है ? उसके आशिर्वाह कौनसे है ? इस पृथ्वीपर एक उपास्य कौन है ? और  
एक ऋतु कौनसा है ? ॥ २५ ॥

एकहि गौ है, और एकही ऋषि है, उसका धाम भी एकहि है, आशिर्वाह  
भी एकहि रीतिसे होता है । पृथ्वीभर एकहि पूज्य देव है । सबका ऋतु  
भी एकहि है । उसका अतिक्रमण कोई कर नहीं सकते ॥ २६ ॥

एक उपास्य देव ।

सर्वपूर्ण पृथ्वीपर भित्तने मनुष्य है, उन सबका एकहि उपास्य देव है यह बात इस  
छकते अन्तिम मन्त्रम कही है, दधिय—

पृथिव्यां एकवृत्त यज्ञम् न अतिरिच्यते ( म० २६ )

“ इस सर्वपूर्ण पृथ्वीपर एक ही सर्वव्यापक सबका उपास्य देव है । हमका प्रति  
क्रमण कार्य कर नहीं सकता । ” क्योंकि इसकी शक्ति सर्वोपरि है । इसी उपास्य देव  
की मददमा हम छकतम वणन की है, परंतु वणन की रीति ऐसी गूढ़ है कि कर्त्त मंत्रोक्त  
मय विचार करनेपर भी पूणतया समझमें नहीं आता । तथापि इस समयतक त्रिगुणी

खोज हुई है उसके अनुसार कुछ स्पष्टीकरण यहाँ करते हैं । इसके पश्चात् पाठक अधिक खोज करनेका यत्न करें ।

इस सूक्तके पहिले मन्त्रमें “कृतः तौ जातौ ?” वे दो कहाँसे प्रकट हुए, यह प्रश्न पूछा है । अर्थात् किसी एक पदार्थसे ये जगत्में सुप्रसिद्ध हो पदार्थ कैसे उत्पन्न हुए यह प्रश्नका तात्पर्य है । स्त्री और पुरुष, रवि और प्राण, इन दोनोंका सांकेतिक नाम चन्द्र और सूर्ययी है । यहाँ ये चाँद और सूरज अपेक्षित नहीं हैं, परन्तु जगत् की सोमशक्ति और अग्निशक्ति अपेक्षित है । इसी सूक्तके चौदहवें मन्त्रमें ‘अग्नी-योमौ’ शब्द है । यह शब्द इस जगत्की आग्नेयी शक्ति और सोमशक्तिका वाचक है । इस जगत्को ‘अग्नीयोमीय जगत्’ कहते हैं क्योंकि इसमें बेहि दो पदार्थ हैं । जो रसात्मक ध्वान्त शक्ति है वह सोमकी है और जो उग्र तीव्र तथा स्रष्टा है वह आग्नेयी शक्ति है । इन दोनोंको रवि प्राण, चन्द्र सूर्य, इका विंगछा, प्रकृति पुरुष, सब चैतन्य अनात्मा आत्मा, इस प्रकारके अनेक नाम हैं । इन अनेक इन्द्रशब्दक नामोंसे दो तत्त्वों का ज्ञान होता है । जिसको स्त्री और पुरुष कहा जाता है । ये दो उत्पन्न होनेके पूर्व एकत्री तत्त्व विद्यमान था, इस एकसे ये दो तत्त्व कैसे उत्पन्न हुए ? मनुष्यको इसी प्रश्नका विचार करके जानना चाहिये कि इन दोनोंका मूल कहाँ है ।

मूल एक तत्त्व था, उसके एक अक्षसे प्रकृतिपुरुषकी उत्पत्ति हुई; छेप छो रहा, उसके विपक्षमें ‘कतमः सा अर्चः’ वह अर्थ कौनसा है, जिसमें स्त्रीपुरुषशक्ति विभिन्न नहीं हुई वह मूलतत्त्वका आधा भाग कहाँ रहा है ? इसी विषयमें वेदमें कहा है  
अग्निपावृष्णैस्तु देवैः पुरुषः पादोऽस्त्येहामवत्पुनः ॥ १० ( १०।१०।४ )

“इसके तीन हिस्से ऊपर हैं और इसका एक भाग हि यहाँ बारबार बनता है ।” अर्थात् मूलतत्त्वका योढासा हिस्सा इस जगत्में विविधरूपोंका धारण करता है किन्तु स्त्रीपुरुषरूप से दिखाई देता है । यह विभाग—

कस्माद्भोकात्कतमस्याः पृथिव्याः । ( मं० १ )

“किस लोकसे कौनसी पृथ्वीके किस विभागपर प्रकट हुआ है ?” अर्थात् इस जगत्में अनंत पृथ्वीलोक हैं, उनमेंसे किस भूमिपर और उस भूमिके किस विभागपर यह प्रकट हुआ है और यह आया कहाँसे ? तत्त्वज्ञान की दृष्टिसे ये सब प्रश्न विचार करने योग्य हैं । इस अपने भूविभागपर भी सर्वत्र एक समान प्राणियोंकी उत्पत्ति नहीं हुई । किसी स्थानपर हाँगाँ और अन्यत्र फेसी । इसी प्रकार सर्वत्र समझना चाहिये और कई प्रयोगप्रह ऐसे हैं कि जहाँ इस प्रकारके प्राणी अभी तक बनेनी नहीं हैं ।

## गौके दो बच्चे ।

ये स्त्रीपुरुष दो बच्चोंके समान हैं । ये अपनी माता का दूध पीते हैं ये बानों—

वत्सो विराजः सखिलाहुर्वेताम् ( म० १ )

“ ये विराट् रूपी गौके दोनों बच्चे जगत् बननेके पूर्व जो सर्वत्र प्राकृतिक सद्भूत था, उससे उदयको प्राप्त हुए । ” प्रायः प्रथम अठ प्रकट होता है और उत्पत्ति उत्पत्ति होती है, बच्चा उत्पन्न होनेके पूर्व भी कुछ उत्पन्न होता है इस भूमिपर भी प्रारंभमें कुछ था, उसमें बनस्पतियों उत्पन्न हुई उसी जलमें जलजन्तु उत्पन्न हुए । इस प्रकार सबका उदय अलसे ही है । अन्यसे लेकर अंततक यह ‘ ज-ल ’ ही साथ देने वाला है । इस स्त्रीपुरुषका अलसे ही उदय हुआ है । ये दोनों बच्चे इस एकहि वेतुके हैं । इनमेंसे कौन अपनी माताका दूध पीता है यह प्रश्न निम्न मन्त्रभागमें पूछा है—

तौ त्वा पूच्छामि कतरेण वुग्धा । ( म० १ )

“ उन दोनोंके विषयमें मैं पूछता हूँ कि उनमेंसे किसने अपनी माताका दूध पीया है ? ” और किसने नहीं पीया ? यहाँ प्रकृति पुरुष इन दोनों बच्चोंमें कौन प्रकृति माता गौके दूधसे पुष्ट होता है और कौन नहीं होता है यह प्रश्नका भाव है । सबका इस प्रश्नका विचार करना चाहिये । अपनेहि अदर देखिये, अपने अदर देह और आत्मा है, येहि प्रकृति पुरुष हैं । इनमेंसे प्राकृतिक पुष्टिवाचनोंसे देहकी पुष्टि की जाती है, आत्माकी नहीं, अर्थात् देहहि अपनी प्रकृतिमाताका दूध पीकर पुष्ट होता है । आत्मा सदा ए रस रहता है । इस प्रकार विचार करके प्रश्नका भाव और उसका उत्तर जानना चाहिये ।

इस विश्वकी रचना होनेके पूर्व कैसी अवस्था थी ? यह एक प्रश्न तत्त्वज्ञानका विचार करनेवालोंके सम्मुख आता है इसका उत्तर बंदने ‘ सखिल अवस्था ’ भी ऐसा दिया है । अगाध, अपरपार, अति धान्त और गंभीर महासागरकी ओ अवस्था होती है उसके समान प्राकृतिक परमाणुओंका समुद्र अति घाँट था । उसमें कुछमी हलचल न थी, कुछमी यून्याधिकता नहीं थी सर्वत्र धान्तता थी । यहाँ प्रश्न उत्पन्न होता है, कि ऐसी शान्तिकी स्थितिमें चञ्चलता किसने उत्पन्न की । यदि चञ्चलता उसी समुद्रका स्वयः सिद्ध भ्रम माना जाय, तो उसमें धान्ति कैसे हो सकती है ? यदि न माना जाय, तो यह अशान्ति किसने उत्पन्न की ? इसका उत्तर इस प्रकार द्वितीय मन्त्र दिया है—

त्रि-भुज पोर्नि कृत्वा पायामः । ( म० २ )

“सर्व रज और तम रूपी तीन गुणोंसे युक्त प्राकृतिक बिलोनेपर सोनेबाना यह एक देव है ।” जबतक यह ( ज्ञाना ) सोया हुआ रहता है, तब तक इस प्राकृतिक समुद्रमें बिलकूल हलचल नहीं होती, इसकी निद्रा समाप्त होनेतक सर्वत्र शान्ति फैली रहती है । जब यह जागने लगता है तब इस में हलचल होती है ।

यः महिषा सलिल अक्रन्दयत् । ( म० २ )

“जो अपनी महिमासे इस सलिल अवस्थामें बड़ी हलचल शुरू करता है ।” यह तीन गुणोंपर सोता है इस कारण वे हलचल कर नहीं सकते, परंतु जब यह जागता है तब वे हलचल के लिये खुले होते हैं और सत्वगुण समता चाहता, रजोगुण खिलपिली मचाना चाहता, और तमोगुण स्तब्धता चाहता है । इस प्रकार उस एकहि सलिलके ये तीनों परमाणु एक दूसरेपर अपने अपने विभिन्न गुणोंके कारण आपसमें हमला करते हैं और इस कारण उसका शान्त सलिल प्रभुत्व होता है । और इस प्रथम का कारण उस उपास्य देवकी ‘महिमा’ ही है । शान्त सलिल में शोभ करना और शोभमें फिर शान्ति स्थापन करना, यही उसकी महिमा है ।

विराजः कामधुजः सः यत्सः गुहा तन्वा चक्रे । ( म० २ )

“इस विराट् रूपी कामधेनुका यह बच्चा गुहाके अंदर अपने रहनेके लिये तीन छरीर बनाता है ।” ये तीन छरीर (गुहा) गुप्त हैं, प्रकट नहीं हैं, प्रकट होते तो गुहाके अन्दर न होते । ये सूक्ष्म छरीर, कारण छरीर और महाकारणछरीर हैं । किंवा प्राण छरीर, सूक्ष्मछरीर और कारणछरीर ये तीन छरीर हैं । ये छरीर गुप्त हैं और इनके कारणहि इस जगत् की स्थिति है । यह आत्मदेव ये छरीर (गुहा) अति गुप्त रीतिसे करता है, इस कारण इनकी उत्पत्ति, स्थिति, वृद्धि आदिका पता साधारण लोगोंको नहीं लगता ।

यामि त्रीणि पृहन्ति, चतुर्थं वाच नियुनक्ति । ( म० ३ )

“ये तीनों छरीर बड़े विलक्षण छरीरसे युक्त हैं, इनमें बड़ी शक्ति है । जो चौथा छरीर है उस चतुर्थ छरीरके साथ वाणीका योग होता है । यही स्पूल छरीर है ।” यह स्पूल छरीर माषण करता है, वक्त्ररूप करता है, आत्माके अंदरके माष प्रकट करता है । इसके अन्दर गुप्त तीन छरीर हैं, परंतु उनमेंसे एक ही इस प्रकार वक्त्ररूप करनेमें समर्थ नहीं है । जिससे यह सब जगत् निर्माण होता है उसको मल कहते हैं, इस मलका ज्ञान तपस होता है, दखिये—



विपश्चित् तपसा एनत् ब्रह्म विधात् । ( म० ३ )

“सानी मनुष्य तपसे इस ब्रह्मको जानता है ।” अर्थात् अज्ञानी मनुष्य इसका जाननेमें असमर्थ है, तपके बिना कोई भी इसे जान नहीं सकता । विपश्चित् ( वि-पश् चित् ) का अर्थ “जो अगत्को विशेष धर्म दृष्टीसे देखता है” ऐसा है । यही इस ब्रह्मका ज्ञान सकता है, जो साधारण दृष्टीसे इस अगत्का निरीक्षण करता है, वह नहीं जान सकता । इसके जाननेकी रीति यह है—

यस्मिन् एक ( मनः ) युज्यते । ( म० ३ )

“जिसमें एक मनका योग किया जाता है ।” जिस तपमें एक अपने मनका योग किया करते हैं । इस मनके योगसेहि अर्थात् चित्तवृत्ति निरोधसे जब यह आध्यात्मिक मन ध्यान्त और स्थिर होता है, तब उस विज्ञानी पुरुषका ब्रह्मका साक्षात्कार होता है । सबसे पहिले—

बृहत्याः बृहत् निर्मितम् । ( म० ४ )

“बड़ी प्रकृतिसे ब्रह्म तब निर्माण हुआ ।” पहिले प्रथम मन्त्रकी व्याख्या प्रथममें कहा है कि सबसे पूर्व प्राकृतिक ध्यान्त समुद्र था । इस महती देवी प्रकृतिसे ( बृहत् ) महत्तम उत्पन्न हुआ । यही सबसे पहिला सर्ग है । यहाँ ( पृथ्वी ) देवी महती मूल प्रकृतिसे यह महत्त्वकी उत्पत्ति बताई । परन्तु यहाँ धका होती है कि यह मूल प्रकृति—

बृहती कुतः अधिमिता ? ( म० ४ )

“महती देवी प्रकृति कहाँसे बनी ?” इस प्रकार प्रश्न पूछे जाय तो अनवस्थाग्र गहि हागा । अतः द्वितीयमन्त्र कहा है, कि एक सलिल अवस्था सबसे प्रथम थी । यही सबसे पहिली अवस्था है, यह कैसी बनी ऐसा प्रश्न काँ न करे । क्योंकि यह सबसे प्रथम अवस्था है । इसी महती प्रकृतिके साथ एक आत्मा ध्यान करता था । इसमेंही पूर्व काँ नहीं है । इस प्रकार सबसे पूर्वके य दानों है । अतः ये कहते उत्पन्न हुए एका प्रश्न काँ न पूछ । तबज्ञानमें इस प्रकार अनवस्थाग्रसंग करना पडा दोष गिना है । अस्तु ।

बृहतः परि पन्थ सामा अधिनिर्मितानि । ( म० ४ )

“इस महत्त्वक ऊपर, अर्थात् इस महत्तरका मसाला लेकर पाँच सामोका रपना हुआ है ।” महत्तमस पाँच तन्मात्रोद्गी उत्पत्ति यहाँ कही है । यहाँ तक आ मुष्टिका बजन हुआ वह इस प्रकार बताया जाता है—

- |  |   |
|--|---|
| १ मूलप्रकृति, सलिल,<br>माता, वृक्षी, विराट्, कामधेनु | पुरुष, प्रज्ञा, स्वराट्<br>मय, वैश्वानर, विराट् |
| २ महत्तरव<br>वृक्ष, कारण<br>माया                     | कारणदेह<br>जीव, वत्सल, प्रज्ञा                  |
| ३ पञ्च तन्मात्र,<br>पञ्च साम,                        | पञ्च सूक्ष्म इन्द्रिय                           |
| ४ क्षीर स्थूल  | ॥ स्थूल इन्द्रियां ॥ निरीक्षक                   |

यहां तक स्पष्टिचना का तीसरा युग यहाँ वर्णित हुआ है, इनसे जीवात्मा को ज्ञान्ति प्राप्त होती है इस लिये इनका नाम यहाँ साम है । और इस क्षीरधारी आत्मा के जीवन को आगे 'मय' का रूपक बताना है, उस विद्येपकार्यके लिये भी यहाँ इनको साम नामसे दर्शाया है यह बात स्पष्ट है । यही बात अगले मंत्रमें अन्य शब्दोंसे कही है—

मायाया परि वृक्षी । मातुः माया अभिनिर्मिता । ( म० ५ )

“ वृक्षी प्रकृति तन्मात्राके ऊपर है । वह आदिमाता है । इस माता से तन्मात्रा निर्माण हो गई । ” यहाँ माता, आदिमाता, अणुमाता, वृक्षी ये मूलप्रकृतिके ही नाम हैं । उससे पञ्च तन्मात्राओंकी उत्पत्ति होती है । यहाँ एक प्रकृतिके पाँच विभिन्न गुणधर्मवाले पदार्थ तत्त्व बने यह इसकी विशेषता है । इसीको कहते हैं—

मायायाः माया जज्ञे । मायायाः परि मातली । ( म० ५ )

“ आदिमायासे वृक्षी माया बनी, और मायाके ऊपर निरीक्षक भी तैयार हुआ । ” मूल आदिमायासे यह प्राकृतिक क्षीर बना और उसका अभिप्राय या निरीक्षक जीवात्मा भी बना । यह चतुर्थ अवस्थाकी सृष्टि है, इसीका नाम अणु है । आदि मायासे यह माया रची गयी है । इसका निरीक्षक यहाँ आत्मा है । यहाँ तक अधिकृत मूल प्रकृतिसे विकृत अणुका निर्माण होनेका वर्णन इन पाँच मंत्रोंमें किया गया । अब इसमें व्यापक देवका वर्णन करते हैं—

वैश्वानरकी प्रतिमा ।

वैश्वानरस्य प्रतिमोपरि चौर्यायद्रोदसी विषयाये अग्निः । ( म० ६ )

“ वैश्वानरकी प्रतिमा उसनी है कि धितना शुलोक ऊपर विस्तृत है और अर्धांक

मयिका तेष फैला है ।" अर्थात् यह वैश्वानर भूलोकसे भूलोक तक फैला है, वही विश्वका नेता है अतः इस को वैश्वानर कहते हैं । यह वैश्वानर प्रकृतिके साथ रहता हुआ जगत्के सब रचनादि कार्य करता है । सपूर्ण जगत्का यदि कोई प्रमुख नेता है तो वह यही है । यह छठा है । पूर्वोक्त कोटकमें (१) स्थूल, (२) सूक्ष्म, (३) कर्मण, (४) मूल प्रकृति, (५) जीव ये पाँच और यह (६) वैश्वानर छठवाँ है । पहिले चार ब्रह्म हैं और अन्तके दो चेतन हैं । इस छठ वैश्वानरसे—

ततः पश्चात् अमृत उदितः स्तोमाः आपन्ति । ( म० ६ )

"उस छठे वैश्वानरसे प्रकाशित होनेवाले मनुष्य वहाँ मनुष्यलोकमें जाते हैं ।" यही मुख्य द्रव्य सब यज्ञोंका प्रकाशक है । मनुष्यकी उत्पत्तिके साथ जो यह उत्पन्न होता है वह यही है । और वेदिक यज्ञकर्म ( यज्ञः पठ अभि यन्ति ) दिनके वह भागकी समाप्ति के समय पुनः उसीके पास पहुँचते हैं । उसीसे ज्ञान और कर्मकी प्रेरणा होती है और उसीमें वह अन्तमें जा मिलती है । इसको सबका द्रष्टा कहते हैं, इसलिये इसको कश्यप ( पद्मकः ) देखनेवाला सबका द्रष्टा किंवा निरीक्षक कहा है । यह—

स्य हि युक्त योग्य च युयुक्ते । ( म० ७ )

"युक्त और योग्य का संबोध करता है ।" जो पदार्थ जहाँ रखना योग्य है और वैसा संयुक्त करना उचित है उसी प्रकार वह सबकी योजना यथायोग्य करता है, उसमें कोई गलती नहीं करता । इसीलिये उससे इस प्रकार संयोग्य सृष्टिकी रचना निर्दोष होती है । वह उत्तम द्रष्टा होनेसे भी जहाँ जो पदार्थ वैसा चाहिये वह उसको ठीक प्रकार ज्ञात होता है और वैसा वह बनाता है । यदि वह योग्य द्रष्टा न होता तो संयोग्य संसारका बनाना उसके लिये असम्भव हो जाता । उससे अविगण प्रश्न करते हैं—

इमे यद् अप्रपयः ( जय ) त्वां पूच्छामः । ( म० ७ )

"हम उः अवि तुम्हें प्रश्न पूछते हैं ।" वैश्वानरसे प्रश्न करनेका अधिकार अवि योंकाहि है । कौन दूसरा उसको प्रश्न पूछ सकता है ? और वह भी किस दूसरेको उत्तर क्यों देगा । उससे प्रश्न पूछनेके लिये भी विषयकी सुस्पष्टता चाहिये और उससे उत्तर लेनेकी भी तयारी चाहिये । वैसी तयारी अविमुनिपोंकी होती है, इस कारण वे वैश्वानर से प्रश्न पूछते हैं और उससे उत्तर लेते हैं । धन्य हैं उनकी कि जो परमात्मासे अपना इस प्रकार संबंध जोड़ सकते हैं । वस्तुतः हरएक मनुष्य जो यहाँ आया है वह इस प्रकारकी योग्यता प्राप्त करनेके लियेहि आया है । परंतु बहुत बड़े लोग इस व्यवस्था तक अपनी उत्पत्ति कर सकते हैं । अविपोंका प्रश्न इस प्रकार है—

विराज ब्रह्मणः पितर आहुः तां नः सन्निभ्यः यतिषा विधेहि । (म० ७)

“विराज् को प्रसादा पिता कहते हैं, वह किस प्रकार होता है वह बात हम सबको कहिये।” यहाँ “आत्मा-परमात्मा, ब्रह्मा-ब्रह्म, पुरुष-पुरुषोत्तम, इन्द्र महेन्द्र” य पुत्र और पिताके समुक्त नाम हैं। यह पितापुत्रसम्बन्ध किस प्रकार है यह महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। हर एक मनुष्यको इसका विचार करना चाहिये और अपना और अपने पिताका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। मनुष्य को तो अपना भी ज्ञान नहीं है और न अपने पिताका ज्ञान उसको है। जहाँ अपना भी ज्ञान नहीं वहाँ पिताका ज्ञान कहाँ स समवनीय है।

पूछो कि काएकमें ‘विराज्’ अथवा ‘विराट्’ य शब्द प्रकृति और पुरुष के लिये समानतया लिखे हैं। इन मन्त्रोंमें भी विराज् शब्द पुल्लिंगमें है और स्त्रीलिंगमें भी है। जो तो पुल्लिंग में है वह आत्मा, परमात्मवाचक है और जो स्त्रीलिंगमें है वह प्रकृति, आदि शक्ति आदिका वाचक है परन्तु सर्वत्र यह नियम भी नहीं है क्योंकि पितामाता वही होनेसे दोनों प्रयोग उस एक के लिये भी होते हैं। ‘वि-राज्’ शब्दका अर्थ ‘विशेष ऐश्वर्य’ है, इस कारण यह शब्द दानोंके लिये प्रयुक्त होता है।

यहाँ ‘प्रसा’ पुराण पुरुषसे उत्पन्न होनेके कारण जीवात्माका नाम है, उसका पिता पुरुष या परमात्मा है। पाठक यहाँ देखें कि सबत्र वेदमें पितापुत्रोंके नाम एक जैसे हैं, दोनोंको ‘इन्द्र, आत्मा, पुरुष, विराट्’ आदि नाम हैं। पिताकी शक्ति बड़ी और पुत्रकी शक्ति अल्प है। तथापि गुणधर्म और कर्म समान हैं। इससे पुत्रको पता लग सकता है कि यद्यपि मेरी शक्ति अल्प अल्प है तथापि मैं उसको बढ़ाकर अपने पिताके समान ‘समर्थ’ बन सकता हूँ। यही विश्वास दिलानेके हेतुस इस मन्त्रके प्रश्नकी प्रवृत्ति हुई है। इसका विशेष उत्तर अगले मन्त्रमें दिया है वह अब देखिये—

हे आपस्यः पां प्रच्युतां यज्ञाः अनु प्रच्यवन्ते, (पां) उपतिष्ठमानां (यज्ञा) उपतिष्ठन्ते, यस्याः प्रते प्रसवे पक्ष पजति, सा परमे व्योमन् विराट् (अस्ति) । (म० ८)

“हे अपि साक्षा ! जिसकी प्रणाली सब यज्ञ चलते और जिसकी प्रेरणा बन्द होने से सब यज्ञ स्तम्भ होत हैं, जिसके प्रकट होनेके लिये पूजनीय दक्षकी गति कारण होती है वह परम आकाशमें सर्वत्र व्यापक विश्व प्रकाशमान दक्षता है।” यह परमात्माका वर्णन है, यही सबका पिता और माता है। सभी जगत् इसकी प्रणाली पर चल रहा

है, इसीके नियममें रहता है इसने जलाया तो जलता है और नहीं जलाया तो स्थग होता है। ऐसी इसकी अगाध शक्ति है। इसी शक्ति का चिन्तन करना चाहिये। सर्वत्र इसकी शक्ति बि फैल रही है और इस जगत् का सब जलस्कार इसकी शक्तियों ही हो रहा है। जितना परम आकाश सर्वत्र व्याप्त है उतनी इसकी व्याप्ति है, अर्थात् यह सर्वत्र भरकर भी अवशिष्ट है। अतः मन्त्रका वर्णन इससे भी और विचारणीय है—

अप्राणा प्राणालीनां प्राणेन एति । ( म० ९ )

“जो स्वयं प्राणसे जीवित नहीं रहती परंतु अपनी शक्तियोंसे ही जीवित रहती है, ऐसी विराट् प्राणियोंके प्राणको साथ लेकर जाती है।” मुख्य देखके लिये प्राणकी सहायता की आवश्यकता नहीं है, वह तो अपनी ही सहायें स्वयं है। इसलिये उसको स्वयं कहते हैं। अन्य प्राणियोंके लिये जीवनधारणके अर्थ प्राणकी आवश्यकता होती है। वह प्राण उसीके साथ रहकर प्राणियोंके जीवनका हेतु बनता है। यथात् वह—

विराट् स्वराज अम्नेति । ( म० ९ )

“विराट् स्वराजके पास पहुँचती है।” इस वाक्यमें एक राजनैतिक भावभी है। ( वि-राज् ) वहाँ राजा नहीं है ऐसा राजसंस्थाहीन समाज ( स्व-राज ) स्वान्त आसन अर्थात् स्वसमत राजशासनको प्राप्त करता है। वहाँ राजा रूप सत्त्वा उत्पन्न नहीं हुई वहाँकी अनन्त स्वयंशक्तिय होती है, वे अपनी राज्यव्यवस्था स्वयं करते हैं। वह राजनैतिक भाव विचारणीय है।

इस मन्त्रमार्गका दूसरा और एक अर्थ बनता है, वह यह है—( वि-राज् ) राजका अर्थ है प्रकाश, जिसके पास प्रकाश नहीं उसको वि-राज् कहते हैं। जो स्वयंप्रकाशी नहीं है वह ( स्वराज ) अपने तेजसे जो प्रकाशता है उसके पास ( अम्नेति ) जाता है, और उससे तेज प्राप्त करके प्रकाशित होता है।

परंतु यहाँ का अर्थ इस प्रकार दीखता है—विराट् अर्थात् जो आत्मा जगद्गुरुवश में लया है वह शुद्धात्माके पास जाता है। जो त्रिपाद आत्मा अवशिष्ट है। उसको “स्वराट्” कहते हैं क्योंकि वह अपने प्रकाशसे प्रकाशित होता है। उसकी अपेक्षा जो एकपाद आत्मा जगद्गुरुमें वारवार आताजाता है, वह वैसा स्वयंप्रमाणात् नहीं दिखाई देता। यह भाव केवल लक्षणासे ही समझना चाहिये। इस प्रकार यह आत्मा है—  
त्ये दिश्व मृशान्तीं अभिरूपां विराज पश्यन्ति, त्ये पुनान पश्यन्ति । ( म० ९ )

“कई लोग इस सर्व जगत् का सुंदरता के साथ प्रकाशित करनेवाले आत्माको देखते हैं, परंतु कई उसको देख नहीं सकते।” यह सर्वत्र उपस्थित है, परंतु कई तो

उसका साक्षात्कार कर सकते हैं और कई ऐसे अन्धे होते हैं कि वे सब जगत्के प्रकाशक को भी नहीं देख सकते !! प्रायः सब प्राणी ऐसे ही अन्धे होते हैं, बिरलाहि कोई उसको देख सकते हैं ।

विराजः मिथुमस्थ कः प्रवेष्टुः ? कः श्रुतुः वेष्टुः ? कः अस्थाः कल्प वेष्टुः ।

( म १० )

“ इस बिराजसे उत्पन्न होनेवाले श्री पुरुषमेवको कौन जानता है ? कौन श्रुतुओंकी उत्पत्तिको जानता है और कौन कल्पके समयको जानता है । ” तत्त्वज्ञानकी दृष्टिसे इन बातोंका ज्ञान मनुष्यको होना चाहिये । तथा—

अस्थाः कलिषा विबुग्धान् क्रमान् कः वेष्टुः ? अस्थाः चाम कः वेष्टुः ?

अस्थाः कलिषा व्युष्टिः ? ( म० १० )

“ इसके अन्धादि रस देनेवाले श्रुतु आदिके क्रमोंको कौन जानता है, इसका मूल स्थान किसने जाना है और इस सृष्टीके प्रमातृकालको कौन जानता है ? ” तत्त्वविचारक को इन प्रश्नोंका विचार करना योग्य है और इनका ज्ञानभी प्राप्त करना चाहिये । इसमें से कुछ प्रश्नोंका उत्तर आगे आवेगा—

इय एव सा या प्रथमा व्यौष्मत् । ( म० ११ )

“ यही वह है कि जो पहिले प्रकाश करती है । ” पहिली उपा यही करती है, अगत् में प्रकाशका संचार इसीसे होता है । यह—

आसु इतरासु प्रविष्टा चरति । ( म ११ )

“ इसमें और अन्योमें व्यापकर यह चलती है । ” यह सर्वत्र व्यापक है और सर्वत्र संचार करती हुई सब जगत्का कार्य करती है । इसकी शक्तिसेहि सपूर्ण जगत्के कार्य सुव्यवस्थित रीतिसे हो रहे हैं । तथा—

अस्यां अन्तः महान्तः महिमानः । ( म० ११ )

“ इसके अन्दर बड़ी बड़ी महत्त्वपूर्ण शक्तियाँ हैं । ” और इन शक्तियोंसेहि इस जगत् के सपूर्ण कार्य करनेमें यह समर्थ होती है । (जगत् अनिमी बधूः जिगाय) परमें नवीन आसी पुत्रका प्रसव करनेवाली जैसी सुन्दर कुलवधू परमें स्वामिनी होती है, उसी प्रकार यह बिराज इस जगत्में सर्वोपरि विराजमान है, धानते हुए या न जानते हुए सभी इसपर प्रेम करते हैं ।

मिस प्रकार एकहि छन्दमें पूर्व और उत्तर ऐसे दो चरण ( छन्दःपदे ) होते हैं, और वे एकहि छन्दमें समान अधिकारसे रहते हुए परस्परकी अनुकूलताके साथ

छन्दकी घोषा पढ़ाते हैं, उसी प्रकार इस जगत् में स्त्री और पुरुष के इस ससारकी छन्दके दो पक्ष हैं, दोनों परस्परकी सहायता और पूर्तीक लिये हैं, अलग होनेके लिये नहीं हैं । य इस गृहस्थके ससारमें समान अधिकारसे रहते हुए ( समान बोनि ) अपने समान अधिकार के गृहस्थानक अन्दर ( अनुसचरेते ) अनुकूलतासे रहते हुए इस जगत् में सचार करते हैं । इसके लिये सदाहरण धर्मपत्नीका है—

सूर्यपत्नी प्रजामती केतुमती अजरामूरिरेतसा सचरति । ( म० १२ )

“ वही धर्मकी धर्मपत्नी प्रजा ज्ञान प्राप्त करके, विज्ञानयुक्त होकर, क्षीय न होती हुई, विशेष पराक्रमी बनकर इस जगत् में सचार करती है । ” ठीक इस प्रकार गृहस्थ की धर्मपत्नी ज्ञानविज्ञानयुक्त, बलयुक्त, पराक्रमयुक्त होकर अपने ससार के कार्य दक्षताके साथ करे । गृहस्थका गृहस्थाश्रम धर्मपत्नी के होनेसे ही होना है, इसलिये धर्मपत्नीका निर्देश यहाँ किया है । परन्तु यही शब्द धर्मपत्नीका भी कर्तव्य बताता है । पतिमी ज्ञानविज्ञानयुक्त बने हुए हुए होकर विषय पराक्रमके कार्य करता हुआ इस ससारमें विविध कार्य करे और अपने गृहस्थधर्मकी उत्पत्ति करे । पति और पत्नीके धर्म साधारणतया पूर्वोक्त विषयोंमें समानहि हैं, इसलिये एकका निर्देश करनेसे दूसरेके धर्मकामी ज्ञान हो जाता है । पूर्वोक्त स्थानमें इनके सामान्य धर्मका उल्लेख है, न कि विशेष धर्मोंका । अस्तु । अब इस गृहस्थधर्मका प्रसंग प्राप्त होताहै धर्मन अगले मन्त्रमें करते हैं—

तिष्ठः शतस्य पन्थां अनु जातुः ।

अथो धर्माः रेतः अनु जातुः । ( म० १३ )

“ तीनो धर्मिया सत्यकी अनुकूलताके साथ रहती हैं और तीनो धर्म धर्मकी अनुकूलताके साथ होते हैं । ” यह सिद्धान्त गृहस्थीको सदा ध्यानमें धारण करना चाहिये । शरीरकी, अन्तःकरणकी और आत्माकी ये तीनो धर्मिया सत्यके आधारसे प्राप्त होती हैं । जो सत्यका पूरक नहीं है उसके पास कोई धर्म नहीं रह सकती । तथा प्रजापति, गृहस्थ आर धानप्रस्थके तीनो धर्म धर्म-बल-पराक्रमके साथ सिद्ध किये जा सकते हैं । अशक्त मनुष्य इनको सिद्ध नहीं कर सकता । इत्येक मनुष्यके लिये य दोनों उपदेश सदा धिधमें धारण करन योग्य हैं । सन्यास धर्म तो विशेष योग्यतावाला मनुष्यके लिये सिद्ध ज्ञानवाला है, अतः सर्वसाधारणके लिये उसका निर्देश यहाँ नहीं किया है । इसीका आग आर स्पष्टीकरण किया है—

एका प्रजां जिन्वति । एका ऊर्जं जिन्वति ।

एका देवयूनां राष्ट्रं रक्षति । ( म० १३ )

“ एक प्रजाकी रक्षा, दूसरी बलकी बढ़ी और तीसरी देवोपासकोंके राष्ट्री रक्षा करती है ” इस प्रकार सन्तानरक्षा, पत्नरक्षा और राष्ट्ररक्षा करनेका मार गृहस्थियों पर है, यह गृहस्थधर्म है । जो अपना प्रजाका सन्तान, पालन, पोषण और उत्तम शिक्षादि प्रयत्न नहीं करता, वह अपने गृहस्थधर्मस अट होता है जो अपना बल नहीं बढ़ाता और उससे अपने राष्ट्री रक्षा नहीं करता, वह भी वैसाही गृहस्थधर्मस व्युत् होता है । गृहस्थमें जो तीन शक्तियाँ हैं, उन शक्तियोंका उपयोग यह है । हरएक गृहस्थको इनका उपयोग करके अपना कर्तव्य पालन करना चाहिये । सत्य और धीर्यके अनुकूल जो गृहस्थके धर्म हैं, वे ये धर्म हैं ।

अग्नीषोमी यज्ञस्य पक्षौ । ( म० १४ )

“ अग्नि और सोम ये दो यज्ञके पक्ष हैं ” जिस प्रकार पक्षी के दो पख होते हैं उसी प्रकार ये यज्ञके दो पक्ष हैं । इधन रूप यज्ञमें अग्नि मुख्य है क्योंकि अग्नि बिना यज्ञ हो नहीं सकता और सोमरस भी प्रधान द्रव्य है । इस रीतिसे इधनरूप यज्ञमें ये दो पदार्थ मुख्य हैं । परंतु यही केवल यज्ञ नहीं है । मनुष्य का जीवन एक महान् यज्ञ है, इसमें भी अग्नि और सोम मुख्य हैं । यहाँ साम का रूप मनुष्यमें मन है और अग्नि का रूप वाणी है । मनुष्यमें मन और वाणीहि सब कुछ है । इस दृष्टिसे इसका और भी विचार हो सकता है । सोम एक शान्ति और अहिंसा की ध्वजा देता है और अग्नि उग्रता और प्रतापकी ध्वजा देता है । मनुष्यके व्यवहार इनसे हो रहे हैं । यह यज्ञ जहाँतक हो सके, वहाँतक पूर्ण और उत्तम हो ऐसा करना हरएक मनुष्य का कर्तव्य है ।

पूर्व स्थानमें तीन शक्तियोंका वर्णन है । यहाँ एक ( तृतीया आसीत् ) चतुर्थ शक्ति कही है वह पारमार्थिक विद्ययापिनी शक्ति है । जिस शक्तिकी श्रापि ज्ञान प्राप्त करते हैं और जिससे यत्नमानको ( स्वः ) स्वर्गकी प्राप्ति होती है । इस मन्त्रमें तथा इस श्रुतमें अन्यत्र जो छन्दोंके नाम हैं वे वेदमन्त्रोंके उपासनायोग्य छन्द हैं । यह मन्त्राक्षत उपासना मनुष्यको ( स्वः आत्मन्ती ) स्वर्ग स्थानको पहुँचाती है । “ स्वः ” का अर्थ ( स्व-र ) आत्मप्रकाश है । इस उपासनास आत्माका प्रकाश अधिकधिक उत्पन्न होता है ।



आग मंत्र १५ से मंत्र २१ तक पाँच, छः, सात और आठ सस्माके मंत्र होते हैं। ये गण वारवार वैदिक मंत्रोंमें आते हैं। पञ्च हानेन्द्रिय, छः ऋतु, सप्त ऋषि, अष्टवसु आदि इन गणोंकी गणना अनेक स्थानपर है। इनमेंसे कई मंत्र मनुष्य शरीरमें हैं, कई कालविभाग हैं, कई वास्तव्य देवताओंके हैं। ये सब मिलकर तत्त्व जगत् होता है और एक दूसरेके साथ अनुकूलतासे रहकर उत्पत्ति करनेसे सबकी उच्च अवस्था होती है। अलग होनेसे हानि और मिलकर रहनेसे उत्पत्ति वह निश्चय साधारणतया सर्वत्र है।

### सात गीघ ।

अठारहवें मन्त्रमें 'सप्त गीघाः' पद है। ये सात गीघभी मानवी शरीरमें ही हैं। जैसे सप्त ऋषि यहाँ हैं वैसेही सात गीघ हैं। ओ ऋषि हैं वे ही गीघ बनते हैं। दो नाक, दो कान, दो माँख और एकमुख ये अष्टके कर्ममें प्रवृत्त हुए तो ऋषि कहलाते हैं और यही स्वार्थात्त हुए या यही गीघ या राक्षस बनते हैं। पाठक अपने शरीरमें देखें कि ये ऋषि हैं या गीघ हैं। और यदि गीघ हों तो उनकी ऋषि बनानेका बल करें।

जब मनुष्य अनासक्तिभावसे वर्तता है, तब सब ससार या प्रकृति उसकी उपाके लिये उत्तर रहती है, वह कहती है—

भेषा मन्यमाना युष्माक सख्ये आगम, अह घोवा अस्मि । (म०२९)

“तुम्हारा कल्याण करनेकी इच्छासे आपके पास मैं आगयी हूँ, मैं आपकी सेवा करनेवाली दासी हूँ।” सब प्रकृति इस प्रकार अनुकूल होती है, तब समझना चाहिये कि इसका योग सफलताको पहुँचाने उपा है। ओ प्रकृति प्रारम्भमें जीवपर अधिकार चलाती थी, पक्षी उदासीनभावके कारण किसी सेविका बनकर अनुकूल होती है वह बर्षा दाने योग्य है। उसका पक्षीभूत होनेका और एक कारण है—

यः समानजन्मा ऋतुः शिवाः अस्तु स वा सखाः सचरति । (म०२९)

“तुम्हारे साथ जन्मा हुआ यक्ष तुम्हारे लिये कल्याण करनेवाला होवे और वह तुम्हारे अदर संचार करे” मगधर्मीयामे “सह्यस्याः प्रजाः सृष्ट्वा (म०गी०३।१०)” कहा है। प्रजाके साथ यक्ष उत्पन्न होनेका वर्णन यहाँ है। यही वात इस मंत्रक “समानजन्मा मनुः” शब्दोंके द्वारा कही है। मनुष्य के साथ यक्ष उत्पन्न हुआ है, उसका करनेसे मनुष्यकी उत्पत्ति व न करनेसे उसका नाश निःसन्दह जाना है।

## गोमहिमा ।

केवली गृष्टिः प्रथम इन्द्राय पीयूषं ददुहे ।

अथ देवान् ऋषीन् मनुष्यान् असुरान् अतपर्यन्त ॥ ( म० १४ )

“ जेहना गाय सभसे पहिले अपना असुररूपी दूध इन्द्रके ब्रह्मकर्मके लिये देती है । और पश्चात् जो दूध बचता है उससे देव, ऋषि, मनुष्य और असुरोंकी कृति करती है । ” यज्ञके लिये इस प्रकार गौकी उत्पत्ति है । इस दूधनरूपी यज्ञसे वायुशुद्धि, अन्नशुद्धि, नीरोगता आदि होती है और मनुष्यका जीवन सुखपूर्ण होता है । इस कारण यज्ञयाग होमद्वेषन करना मनुष्यका धर्म है और वह उसकी उन्नतिको एक एक उत्तम साधन है । आगेके दो मंत्रोंमें—

को नु गौः का एक ऋषिः किमु धाम का आशिषः ।

यस्त पृथिव्यामेकवृद्धेकर्तुः कतमोऽनु सः ॥ १५ ॥

एको गौरेक ऋषिरेक धामैका आशिषः ।

यस्त पृथिव्यामेकवृद्धेकर्तुर्नाति रिच्यते ॥ १६ ॥

यहाँ एकही प्रकृतिरूप गौ है, जो जीवात्माओंकी पुष्टि करनेके लिये दूध देती है । इस सबका निरीक्षक एकही ऋषि— सबका एक मात्र निरीक्षक—परमात्मा ही परम ऋषि है । इस पृथ्वीपर सर्वव्यापक एकही परमात्मदेव सबका उपास्य है । और उसका सबके लिये उत्तम आशीर्वाद है । इस प्रकार विचार करके इन मंत्रोंका आश्रय जानना चाहिये ।

एक प्रकृतिरूपी गौ, एक दिग्ब्रह्मरूप ऋषि, एक परमात्माका धाम, एक सत्स्वितरूप आशीर्वाद, और इस भूमिपर व्यापक एकही पुन्य देव है ये बातें यहाँ कहीं हैं । पूर्वोक्त वर्णनसे इनका सहज बोध हो सकता है ।

इस सूक्तमें पञ्च, षष्ठ, सप्त और अष्ट छन्दों द्वारा वेदोक्त अनेक कोष्टक बनते हैं, परन्तु वे अमीतक पूर्ण नहीं हुए, इसलिये यहाँ नहीं दिये । अब पूर्णतासे तैयार होंगे तब उनका प्रकाशन किया जायगा ।

## विराट् ।

[ १० ]

( ऋषिः—अथर्वार्यः । दशरा—विराट् )

(१) विराट् वा इदमग्र आसीत् तस्यां जातायाः सर्वमधिमेदियमेवेह मविष्मतीति ॥१॥

सोदक्रामत् सा गार्हपत्ये न्यक्रामत् ॥ २ ॥

गृहमेधी गृहपतिर्मवति य एव वेद ॥ ३ ॥ ( २ )

सोदक्रामत् साहवनीये न्यक्रामत् ॥ ४ ॥

यन्त्यस्य देवा देवहृतिं प्रियो देवानां भवति य एव वेद ॥ ५ ॥ ( ३ )

अर्थ— [ १०।१ ] ( विराट् वै ) विराट् निष्पद्यसे ( अग्रे इह आसीत् ) प्रारम्भमें यह अगत था । ( तस्याः जातायाः ) उसके होनेपर ( इय एव इह मविष्मति इति ) यही ऐसा यही होगा इस कारण ( सर्वं मविमेद ) सब अधभीत होगये ॥ १ ॥ ( १ )

( सा उव् अक्रामत् ) वह उत्क्रान्त होगई और ( सा गार्हपत्ये न्यक्रामत् ) वह गृहपतिसंस्थामें परिणत होगई, ( यः एव वेद ) जो ऐसा जानता है वह ( गृहमेधी ) गृहपक्ष करमेवाला होकर ( गृहपतिः भवति ) गृहपालक होता है ॥ २-३ ॥ ( २ )

( सा उव् अक्रामत् ) वह उत्क्रान्त होगई और ( सा साहवनीये न्यक्रामत् ) वह साहवनीय अभिसंस्थामें परिणत होगई । ( यः एव वेद ) जो इस प्रकार जानता है वह ( देवानां प्रियः भवति ) वह देवोंका प्रिय बनता है और ( देवाः अत्य देवहृतिं यति ) सब देव इसकी दृष्टीकी पुकारक स्थानपर जाते हैं ॥ ४-५ ॥ ( ३ )

सोदक्रामत् सा दक्षिणाग्नौ न्यक्रामत् ॥ ६ ॥

मृश्वरौ दक्षिणीयो वासतेपो भवति य एष वेद ॥ ७ ॥ ( ४ )

सोदक्रामत् सा सुभायां न्यक्रामत् ॥ ८ ॥

यन्त्यस्य सुभां सम्यो भवति य एष वेद ॥ ९ ॥ ( ५ )

सोदक्रामत् सा समितौ न्यक्रामत् ॥ १० ॥

यन्त्यस्य समितिं सामित्यो भवति य एष वेद ॥ ११ ॥ ( ६ )

सोदक्रामत् सामन्त्रणे न्यक्रामत् ॥ १२ ॥

यन्त्यस्यामन्त्रणमामन्त्रणीयो भवति य एष वेद ॥ १३ ॥ ( ७ ) ( २५ )

अर्थ—( सा उद् अक्रामत् ) वह उत्क्रान्त होगई और ( सा दक्षिणाग्नौ न्यक्रामत् ) वह दक्षिणाग्नि सस्यामें परिणत हुई । ( यः एष वेद ) जो इस प्रकार जानता है । वह ( यज्ञतः दक्षिणीयः वासतेयः भवति ) योग्य रीतिसे यज्ञ करनेवाला, समानयोग्य और दूसरोंको रहनेका स्थान देनेवाला होता है ॥ ६-७ ॥ ( ४ )

( सा उद् अक्रामत् ) वह उत्क्रान्त होगई और ( सुभायां न्यक्रामत् ) वह सुभामें परिणत होगई । ( यः एष वेद ) जो यह जानता है वह ( सन्त्यः भवति ) सुभाके योग्य होता है और लोग ( अस्य सुभां यन्ति ) इसकी सुभामें जाते हैं ॥ ८-९ ॥ ( ५ )

( सा उद् अक्रामत् ) वह उत्क्रान्त होगई और ( सा समितौ न्यक्रामत् ) वह समितिमें परिणत होगई । ( यः एष वेद ) जो यह जानता है वह ( सामित्यः भवति ) समितिके योग्य होता है और लोग ( अस्य समितिं यन्ति ) इसकी समितिमें जाते हैं ॥ १०-११ ॥ ( ६ )

( सा उद् अक्रामत् ) वह उत्क्रान्त होगई और ( सा सामन्त्रणे न्यक्रामत् ) वह सामन्त्रिसुभामें परिणत होगई । ( यः एष वेद ) जो यह जानता है वह ( सामन्त्रणीयः भवति ) वह मन्त्रीमण्डलके योग्य होता है और लोग ( अस्य सामन्त्रणं यन्ति ) इसकी मन्त्रणाको जाते हैं ॥ १२-१३ ॥ ( ७ )

( २ ) सोदक्रामत् सान्तरिक्षे चतुर्षा विक्रान्तासिष्ठत् ॥ १ ॥ ( ८ )  
तां देवमनुष्या अभुवन्मियमेव तद् वेदं भुवमय उपजीविमेमाह्वं हवामहा  
इति ॥ २ ॥ ( ९ ) तामुपाह्वयन्त ॥ ३ ॥ ( १० )  
ऊर्जे एहि स्वघ एहि स्रुत एहीराण्येहीति ॥ ४ ॥ ( ११ )  
तस्या इन्द्रो वत्स आसीद् गायत्रीभिधान्यभ्रमूर्धः ॥ ५ ॥ ( १२ )  
गृहं रथन्तरं च द्वौ स्तनावास्तां यज्ञापक्षिं च वामदेव्यं च द्वौ ॥ ६ ॥ ( १३ )  
ओषधीरेव रथन्तरेण देवा अदुहन् व्यचो ब्रुता ॥ ७ ॥ ( १४ )

अर्थ- [ १०।२ ] ( सा उद् अक्रामत् ) वह बिराह उत्क्रान्त होकर और  
( सा अन्तरिक्षे चतुर्षा ) वह अन्तरिक्षमें चार प्रकारसे ( विक्रान्ता अतिव्रत )  
विभक्त होकर ठहरी ॥ १ ॥ ( ८ )

( देवमनुष्याः तां अभुवन् ) देव और मनुष्य उसके विषयमें बोले कि,  
( इय एव तत् वेदं ) यही वह जामती है, ( यत् उभये उपजीविम ) जिस  
से हम दोनों जीवित रहते हैं । अतः ( इमां उप हवामहे इति ) इसको  
हम बुलाते हैं ॥ २ ॥ ( ९ )

( तां उपाह्वयन्त ) उसको उन्हीं बुलाया, प्रकारा ॥ ३ ॥ ( १० )  
( ऊर्जे एहि ) हे पर, आ । ( स्वघे एहि ) हे अपनी धारण शक्ति,  
आ । ( स्रुते एहि ) हे सत्य, आ । ( इरावति एहि ) हे अन्नवाली,  
आ ॥ ४ ॥ ( ११ )

( तस्याः वत्सः इन्द्रः आसीद् ) उसका पछड़ा इन्द्र था, ( गायत्री  
अभिधानी ) गायत्री रस्ती थी और ( अभ्र ऊषः ) मेघ दुग्धस्थान  
था ॥ ५ ॥ ( १२ )

( गृहं च रथन्तरं च ) गृह और रथन्तर ( द्वौ स्तनौ आस्तां ) ये दो  
स्तन थे । और ( यज्ञापक्षिं च वामदेव्यं च द्वौ ) यज्ञापक्षि और वाम  
देव्य ये दो स्तन थे ॥ ६ ॥ ( १३ )

( वयाः रथन्तरण ओषधीः अदुहन् ) देवोंने रथन्तरसे ओषधियाँ  
दोहन करके निकाली और ( ब्रुता व्यचो ) गृहसे विस्तारयुक्त आवा  
जें निकाली ॥ ७ ॥ ( १४ )

अपो वामदेव्येन यज्ञं यज्ञायक्षियेन ॥ ८ ॥ ( १५ )

ओषधीरेषास्मै रथन्तरं दुहे व्यचो बृहत् ॥ ९ ॥ ( १६ )

अपो वामदेव्यं यज्ञं यज्ञायक्षियं य एव वेदं ॥ १० ॥ ( १७ ) ( २६ )

( ३ ) सोदक्रामत् सा वनस्पतीनागच्छत् तां वनस्पतयोध्नत् सा संवत्सरे समभवत् ॥ ११ ॥

तस्माद् वनस्पतीनां संवत्सरे वृक्षमपि रोहति

वृक्षतेस्पारिष्यो आतृष्यो य एव वेदं ॥ २ ॥ ( १८ )

सोदक्रामत् सा पितृनागच्छत् तां पितरोध्नत् सा मासि समभवत् ॥ ३ ॥

तस्माद् पितृभ्यो मास्युपमास्यं ददति

प्र पितृयाणं पन्थां आनाति य एव वेदं ॥ ४ ॥ ( १९ )

अर्थ—(वामदेव्येन अपः) वामदेव्यसे जल निकाला और ( यज्ञायक्षियेन यज्ञः ) यज्ञायक्षियसे यज्ञको निकाला ॥ ८ ॥ ( १५ )

( यः एव वेदः ) जो यह जानता है ( अस्मै रथन्तर एव ओषधीः दुहे ) उसको लिये रथन्तर औषधियां देता है, ( बृहत् व्यचः ) बृहत् अवकाश देता है, ( वामदेव्य अपः ) वामदेव्य जल देता है और ( यज्ञायक्षियं यज्ञः ) यज्ञायक्षिय यज्ञ देता है ॥ ९—१० ॥ ( १६—१७ ) ॥ २६ ॥

[ १०।३ ] ( सा उदक्रामत् ) वह उत्क्रान्त होगई और ( सा वनस्पतीन् आगच्छत् ) वह वनस्पतियोंके पास आगई । ( तां वनस्पतयः अघ्नत् ) उसको वनस्पतियोंसे मारा, परंतु ( सा संवत्सरे समभवत् ) वह वर्षमें पुनः होगयी । ( तस्माद् वनस्पतीनां वृक्षमपि रोहति ) इसलिये वनस्पतियोंके व्रण भरजाते हैं । ( यः एव वेदः ) जो यह जानता है ( अस्मि अमिषः आतृष्यः वृभते ) उसका अमिष प्राप्ति काटा जाता है ॥ १—२ ॥ ( १८ )

( सा उदक्रामत् ) वह उत्क्रान्त होगई, ( सा पितृन् आगच्छत् ) वह पितरोंके पास आगई, ( तां पितरः अघ्नत् ) उसको पितरोंने मारा, परंतु ( सा मासि समभवत् ) वह प्रतिमास उत्पन्न होने लगी । ( यः एव वेदः ) जो यह जानता है वह ( पितृयाणं पन्थां प्रजानाति ) पितृयाण मार्ग जानता है और ( तस्मात् ) इसलिये ( पितृभ्यः मासि उपमास्यं ददति ) पितरोंको प्रतिमास दान दिया जाता है ॥ ३—४ ॥ ( १९ )

- सोदक्रामत् सा देवानागच्छत् तां देवा अघ्नतु सार्वमासे सममवत् ॥ ५ ॥  
 तस्माद् देवेभ्योर्धमासे वषट् कुर्वन्ति प्र देवयानं पन्थां जानाति य एवं वेद ॥ ६ ॥ (२०)  
 सोदक्रामत् सा मनुष्यानागच्छत् तां मनुष्या अघ्नतु सा सद्यः सममवत् ॥ ७ ॥  
 तस्मान्मनुष्येभ्य उभयपुत्रं हरन्त्युपास्य गृहे हरन्ति य एवं वेद ॥ ८ ॥ (२१) (२७)  
 (४) सोदक्रामत् सामसुरागच्छत् सामसुरा उपाह्वयन्त माय एहीति ॥ १ ॥  
 तस्या विरोधनः प्रान्हादिर्वत्स आसीदयस्याश्रं पात्रम् ॥ २ ॥  
 तां द्विर्मुर्षात्स्वोषोक् तां मायामेवाधोक् ॥ ३ ॥  
 तां मायामसुरा उष जीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥ ४ ॥ (२२)

अर्थ—( सा उदक्रामत् ) वह उत्क्रान्त होगई ( सा देवान् आगच्छत् ) वह देवोंके पास आगई । ( तां देवा अघ्नत ) उसको देवोंने मारा, ( सा अर्धमासे सममवत् ) वह आधे मासमें होने लगी । ( यः एव वेद ) जो यह जानता है वह ( देवयाम पन्थां प्रजामाति ) देवयान मार्गको जानता है । और ( तस्मात् ) इसीलिये ( देवेभ्यः अर्धमासे वषट् कुर्वन्ति ) देवोंके लिये अर्ध मासमें वषट् कर्म करते हैं ॥ ५-६ ॥ ( २० )

( सा उदक्रामत् ) वह उत्क्रान्त होगई ( सा मनुष्यान् आगच्छत् ) वह मनुष्योंके पास आगई । ( तां मनुष्याः अघ्नत ) उसको मनुष्योंने मारा, ( सा सद्यः सममवत् ) वह तत्काल उत्पन्न होगई । ( यः एव वेद ) जो यह जानता है ( अस्य गृहे उपहरन्ति ) उसके घरमें लोग उपहार लते हैं । और ( तस्मात् ) इस कारण ( मनुष्येभ्यः उभयपुत्रः उपहरन्ति ) मनुष्योंके लिये दोनों दिन-दिनमें दोबार-अन्न करते हैं ॥ ७-८ ॥ ( २१ ) ( २७ )

[ १०४ ] ( सा उदक्रामत् ) वह उत्क्रान्त होगई ( सा असुरान् आगच्छत् ) वह असुरोंके पास आगई, ( तां असुराः उपाह्वयन्त ) उसे असुरोंने पुकारा कि ( माये एहि इति ) 'हे माये ! आ' इस प्रकार । ( तस्याः प्राहादिः विरोधनः वत्सः आसीत् ) उसका प्रन्हादि पुत्र विरोधन बच्चा था । उनका ( अयस्याश्रं पात्रं ) छोड़ेका पात्र था । ( तां द्विर्मुर्षा अत्यः अधोक् ) उसका ऋतु पुत्र द्विर्मुर्षांने बोझ किया, ( तां मायां एव अधोक् ) उसस माया ही बोझन करके मिली । ( तां मायां असुराः उपजीवन्ति ) उस मायापर असुरोंका जीवन होता है । ( यः एव वेद ) जो यह जानता है ( उपजीवनीयः भवति ) वह जीविकाका मिर्षाई करनेवाला होता है ॥ १४ ॥ ( २२ )

सोदक्रामत् सा पितृनागच्छत् तां पितर उपाह्वयन्त् स्वध एहीति ॥ ५ ॥

तस्यां यमो राजा वत्स आसीद् रजतपात्रं पार्श्वम् ॥ ६ ॥

सामन्तको मार्त्यबोधोक् तां स्वधामेवाधोक् ॥ ७ ॥

तां स्वधां पितर उर्ष जीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥ ८ ॥ ( २३ )

सोदक्रामत् सा मनुष्यानागच्छत् तां मनुष्यान् उपाह्वयन्तेरावसेहीति ॥ ९ ॥

तस्या मनुर्ववस्वतो वत्स आसीत् पृथिवी पार्श्वम् ॥ १० ॥

तां पृथी वैन्योधिक् तां कृपि च सस्य चाधोक् ॥ ११ ॥

ते कृपि च सस्य च मनुष्यान् उर्ष जीवन्ति

कृष्टराधिरुपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥ १२ ॥ ( २४ )

अर्थ—( सा उदक्रामत् ) वह उत्क्रान्त होगई और ( सा पितृन् आगच्छत् ) वह पितरोंके पास आगई । ( तां पितरः उपाह्वयन्त् ) उसे पितरोंने इस प्रकार बुलाया कि ( स्वधे एहि इति ) ' हे अपनी धारकशक्ति ! यहाँ आ ' ( तस्याः यमः राजा वत्सः आसीत् ) उसका यम राजा पछड़ा था और उसका ( रजतपात्र पात्र ) चाँदीका पात्र था । ( तां अन्तकः मार्त्यबः अधोक् ) उसका मृत्युसदृशी अन्तकने बोहन किया । ( तां स्वधां एव अधोक् ) उससे अपनी धारक शक्तिका हि बोहन हुआ इसलिये । ( तां स्वधां पितरः उपजीवन्ति ) उस अपनी धारक शक्तिसे पितरोंका जीवन होता है । ( या एव वेद ) जो यह जानता है वह ( उपजीवनीयः भवति ) जीविका निर्वाह करनेवाला होता है ॥ ५-८ ॥ ( २३ )

( सा उदक्रामत् ) वह उत्क्रान्त होगई और ( सा मनुष्यान् आगच्छत् ) वह मनुष्योंके पास आगई, ( तां मनुष्याः उपाह्वयन्त् ) उसको मनुष्योंने इस प्रकार बुलाया, कि ( इरावति एहि इति ) ' हे अन्नवाली ! यहाँ आ ' । ( तस्याः मनुः वैवस्वतः वत्सः आसीत् ) उसका विवस्वाम्का पुत्र मनु पछड़ा था । उसका ( पृथिवी पात्र ) पृथिवी पात्र था । ( तां पृथी वैन्यः अधोक् ) उसका वेन पुत्र पृथिवी बोहन किया । ( तां कृपि च सस्य च अधोक् ) उस बोहनसे कृपि और भान्प हुआ । इस कारण ( ते मनुष्याः कृपि च सस्य च उपजीवन्ति ) मनुष्य कृपि और भान्पपरहि जीवन करते हैं । ( या एव वेद ) जो यह जानता है वह ( कृष्ट-राधिः ) कृषिमें सिद्धि प्राप्त करनेवाला



सोदक्रामत् सा सप्तश्वीनागच्छत् तां सप्तश्वपय उपाह्वयन्त ब्रह्मण्यत्पेहीति ॥११॥

तस्याः सोमो राजा बत्स आसीच्छन्दः पात्रम् ॥ १४ ॥

तां बृहस्पतिराग्निरसोऽधोक् तां ब्रह्म च तर्पमाधोक् ॥ १५ ॥

तद् ब्रह्म च तर्पय सप्तश्वपय उपजीवन्ति

ब्रह्मवर्चस्य प्रिष्वीषनीयो भवति य एवं वेद ॥१६॥ ( २५ ) ( २८ )

(५) सोदक्रामत् सा देवानागच्छत् तां देवा उपाह्वयन्तोर्ब एहीति ॥ १ ॥

तस्या इन्द्रो बत्स आसीषमसः पात्रम् ॥ २ ॥

तां देवः सविताधोक् तामूर्जामेवाधोक् ॥ ३ ॥

तामूर्जा देवा उप जीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥ ४ ॥ ( २६ )

होकर ( उपजीवनीयः भवति ) दूसरोंकी जीविका निर्वाह करनेवाला होता है ॥ ० — १२ ॥ ( २४ )

( सा उदक्रामत् ) वह उत्क्रान्त होगई ( सा सप्तश्वपीन् आगच्छत् ) वह सप्तश्वपियोंके पास आगई । ( तां सप्त श्वपयः उपाह्वयन्त ) उसका सप्त श्वपियोंने इस प्रकार गुलापा कि ( ब्रह्मण्यति एहि इति ) ' हे ब्रह्मज्ञानवाली ! यहाँ आ । ' ( तस्याः सोमः राजा बत्सः आसीत् ) उसका सोम राजा पछड़ा था और ( छन्दः पात्र ) छन्द पात्र था । ( तां बृहस्पतिः अग्निरसः अधोक् ) उसका अग्निरसकुलोत्पन्न बृहस्पतीने बोहन किया, ( तां ब्रह्म च तपः च अधोक् ) उससे ज्ञान और तप मिला । ( तत् ब्रह्म च तपः च ) इसलिये ज्ञान और तप पर ( सप्त श्वपयः उपजीवन्ति ) सप्त श्वपि अपना जीवन धारण करते हैं, ( या एव वेद ) जो वह जानता है वह ( ब्रह्मवर्चसी ) ज्ञानवान होकर ( उपजीवनीयः भवति ) जीविका निर्वाह करनेवाला होता है ॥ ११-१६ ॥ ( २५ ) ( २८ )

[ १०।५ ] ( सा उदक्रामत् ) वह उत्क्रान्त होगई ( सा देवान् आगच्छत् ) वह देवाएँ पास आगई ( तां देवा उपाह्वयन्त ) उसको देवोंने इस प्रकार गुलापा कि ( ऊर्जे एहि इति ) ' हे परमपति ! यहाँ आ । ' ( तस्याः इन्द्रः परसः आसीत् ) उसका पछड़ा इन्द्र था, और ( यमसः पात्र ) यमस पात्र था । ( तां दयाः सविता अधोक् ) उसका बोहन सविता देवने किया ( तां उजा एव अधोक् ) उससे परल प्राप्त हुआ । अतः ( तां उजा दयाः उपजीवन्ति ) उस परलपर देवाँका जीवन होता है, ( या एव वेद ) जो वह

सोदक्रामत् सा गन्धर्वाप्सरस आगच्छत्

तां गन्धर्वाप्सरस उपाह्वयन्त पुण्यगन्ध एहीति ॥ ५ ॥

तस्याश्चित्ररथः सूर्यवर्चसो वत्स आसीत् पुष्करपर्णं पात्रम् ॥ ६ ॥

तां वसुकाभिः सूर्यवर्चसोऽधोक् तां पुण्यमेव गन्धर्मधोक् ॥ ७ ॥

त पुण्यं गन्ध गन्धर्वाप्सरस उषं जीवन्ति

पुण्यगन्धिरूपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥ ८ ॥ ( २७ )

सोदक्रामत् सेतरजनानागच्छत् तामितरजना उपाह्वयन्त तिरौष एहीति ॥ ९ ॥

तस्याः कुबेरो वैभवाणो वत्स आसीदामपात्र पात्रम् ॥ १० ॥

तां रञ्जतनाभिः काधेरकोऽधोक् तां तिरौषामेवाधोक् ॥ ११ ॥

जानता है वह ( उपजीवनीयः भवति ) जीविका निर्वाह करनेवाला होता है ॥ १-४ ॥ ( २६ )

( सा उदक्रामत् ) वह उत्क्रान्त होगई और ( सा गन्धर्वाप्सरसः आगच्छत् ) वह गन्धर्व और अप्सराओंके पास आगई । ( तां गन्धर्वाप्सरसः उपाह्वयन्त ) उसको गन्धर्व और अप्सराओंन इस प्रकार बुलाया कि ( पुण्यगन्धे एहि इति ) ' हे उसम सुवासवासी ! यहाँ आ । ' ( तस्याः चित्ररथः सूर्यवर्चसः वत्सः आसीत् ) उसका सूर्यवर्चसपुत्र चित्ररथ बछड़ा था, और ( पुष्करपर्णं पात्र ) कमलपत्र पात्र था । ( तां वसुकाभिः सूर्यवर्चसः अधोक् ) उसका सूर्यवर्चसपुत्र वसुकाभिने बोहन किया । ( तां पुण्य गन्ध एव अधोक् ) उससे उत्तम सुवास प्राप्त हुआ । इसलिये ( त पुण्य गन्ध गन्धर्वाप्सरसः उपजीवन्ति ) उस सुवासपर गन्धर्व और अप्सराएँ जीवित रहती हैं । ( यः एव वेद ) जो यह जानता है वह ( पुण्यगन्धिः ) उसम सुगन्धयुक्त होकर ( उपजीवनीयः भवति ) जीविका निर्वाह करनेवाला होता है ॥ ५-८ ॥ ( २७ )

( सा उदक्रामत् ) वह उत्क्रान्त होगई ( सा इतरजनान् आगच्छत् ) वह इतर जनोंके पास आगई ( तां इतर जनाः उपाह्वयन्त ) उसका इतर जनोंने इस प्रकार बुलाया कि ( तिरौषे एहि इति ) ' हे अतर्धान शक्ति ! यहाँ आ । ' ( तस्याः कुबेरः वैभवाणः वत्सः आसीत् ) उसका विभवाका पुत्र कुबेर पुत्र था । और ( आमपात्र पात्र ) आमपात्र पात्र था । ( तां

तां तिरोधामितरमुना उप जीवन्ति तिरो धत्ते सर्वं

पाप्मानमुपजीवनीयो भवति य एव वेद ॥ १२ ॥ (२८)

सोदक्रामत् सा सर्पानागच्छत् तां सर्पा उपाह्वयन्त विषवत्सेहीति ॥ १३ ॥

तस्यास्तक्षको वैशाल्यो वृत्स आसीदलाघुपात्रं पात्रम् ॥ १४ ॥

तां धृतराष्ट्र एरावतोऽधिकं तां विपमेवाभौक् ॥ १५ ॥

तद् विष सर्पा उप जीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एव वेद ॥ १६ ॥ (२९) (२९)

(६) तद् यस्मा एवं विदुषेलाघुनामिषिभ्यो प्रत्याह्न्यात् ॥ १ ॥

न च प्रत्याह्न्यान्मनसा स्वा प्रत्याह्न्यीति प्रत्याह्न्यात् ॥ २ ॥

यत् प्रत्याहन्ति विपमेव तत् प्रत्याहन्ति ॥ ३ ॥

विपमेवास्याप्रियं आतृष्यमनुविषिन्ध्येत य एव वेद ॥ ४ ॥ (३०) (३०)

॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

॥ अष्टम काण्ड समाप्तम् ॥

रजतनाभिः कायेरकः अघोक् ) उसका कायेरक पुत्र रजतनाभिने बाह्य किया । ( तां तिरोधां एव अघोक् ) उससे अन्तर्धान शक्ति प्राप्त की । इसलिये ( इतरजनाः तां तिरोधां उपजीवन्ति ) इतर जन उस तिरोधान शक्तिपर जीवित रहने हैं । ( यः एव वेद ) जो यह जानता है वह ( सर्व पाप्मानं तिरः धत्ते ) सब पापको दूर रखता है और ( उपजीवनीया भवति जीयिका ) निर्वाह करनेवाला होता है ॥ ९-१२ ॥ ( २८ )

( मा उदक्रामत् ) यह उदक्रान्त होगई ( सा सर्पान् आगच्छत् ) वह सर्पोंक पास आगयी । ( ता सर्पा उपाह्वयन्त ) उसको सर्पोंन इस प्रकार पुलाया कि ( विषवति एहि इति ) 'हे विषवालि ! यहाँ आ ।' ( तस्याः तक्षकः वैशाल्यो वृत्सः आसीत् ) उसका विषालापुत्र तक्षक यथा वा, ( अलाघुपात्रं पात्रं ) और अलाघुका पात्र था । ( तां धृतराष्ट्रः एरावतः अघोक् ) उसका इरायानूके पुत्र धृतराष्ट्रने दोहम किया । ( तां विष एव अघोक् ) उसने विषहि मिला । ( तत् विष सर्पाः उपजीवन्ति ) उस विषस सर्प जीवन धारण करते हैं ( यः एव वेद ) जो यह जानता है वह ( उपजीवनीया भवति ) जीयिका नियाह करनेवाला होता है ॥ १३-१६ ॥ ( २९ ) ( २९ )

[ १०६ ] ( तत् एव विदुष यस्मै ) इसलिये ऐसा जाननेवाले जिस

विद्वानके लिये ( अलाधुना अभिषिञ्चत् ) अलाधुसे अभिषेक किया जाय, वह उसका ( प्रत्याह्न्यात् ) प्रतिकार करे । ( न च प्रत्याह्न्यात् ) और यदि न प्रतिकार करे तो ( मनसा त्वा प्रति-आहन्मि ) मनसे 'तेरा प्रतिघात करता हूँ' ( इति प्रत्याह्न्याम् ) ऐसा प्रतिकार करे । ( यत् प्रत्याहन्ति ) जो प्रतिकार होता है ( तत् विष एष प्रत्याहन्ति ) वह विषका हि प्रत्याघात करता है । ( यः एष वेत् ) जो यह जानता है ( विष एष अस्य अप्रिय आतृष्य ) विषहि इसके अप्रिय आतृष्य पर ( अनुविषिच्यते ) जा गिरता है । ॥ १-४ ॥ ( १० ) ( ३० )

### कामधेनुका वृष ।

इस सूक्तमें अगन्याता विराट् देवीरूपी कामधेनुका वृष किन लोगोंने किस प्रकार निकाला इसका उत्तम वर्णन है । कामधेनु तो सबकी माता एक वैसी हि है, उसमें कोई भेद नहीं है, परतु उनके पास जानेवाले विभिन्न हैं, उनका मन भिन्न प्रकारका है, उनकी कामनाएं भिन्न होती हैं, उनके पुरुषार्थ भिन्न होते हैं, इस कारण परिणाम भी भिन्न हुआ करते हैं । किसी गायका वृष सर्पके पेटमें गया तो वहां उसका विष बनता है और उसी वृषको उत्तम आमके मूलमें सींचा तो उसीसे उत्तम स्वादुरस तैयार होता है । इसी प्रकार एकहि सप्तव्रका जठ मेघोंमें जाकर वृष्टिरूपसे नीच आता है और सपूर्ण वृष वनस्पतियोंपर पड़ता है, इसी एक हि उससे छः प्रकारके रस छः प्रकार के वृक्षोंमें उत्पन्न होते हैं, ईशमें मधुर इमलीमें खट्टा, मिरच में कटु इस प्रकार विभिन्न रस हो जाते हैं । मेघोंसे आनेवाला पानी एकसा होता है, परतु वनस्पतियोंके भेदसे रसमें भिन्नता उत्पन्न होती है । भूमिमी एक है परतु उसीमें सपसे गुलाब की सुगंध और प्रकारकी है, खमली की अन्य प्रकारकी और पारिसातक की और प्रकारकी होती है । एकहि भूमिमें रस छेनेवाले भिन्न होनेके कारण विभिन्न रसोंकी उत्पत्ति होती है । इसी प्रकार विराट् रूपी दिव्य कामधेनु एकहि है, परतु उससे देव, ऋषि, पितर, असुर, मनुष्य सर्प, गन्धर्व आदि भिन्नभिन्न गुण प्राप्त करते हैं, इसका वर्णन इस सूक्तमें देखने योग्य है, यही बात इस कोष्टक में देखिये—

## १ विराट्, दिव्य कामधेनु ।

कोक	दोहनकर्ता	वस्तु	दोहन	मुकायेका	दूध	जीवन साधन	क्या करता है अथवा करता होता है
			पात्र	नाम			
असुरः	हिमूषी	विरोचनाः	अयस्पात्रं	माया	माया	माया	
	अर्त्यः	माहादिः					
पितरः	अन्तर्कोमार्त्यः	पमः, गणा	रजतपात्र	स्वधा	स्वधा	स्वधा	
मनुष्यः	पृथ्वी वैष्वाः	मनुः	पृथिवी	हरावती	कृषि, सस्य	कृष्टि सस्य	कृष्टि-राशिः
		वैवस्वतः	(मिष्टी)				
सप्तर्षयः	बृहस्पतिः	सोमोराका	कम्पः	महावती	मद्य, तपा	मद्य तपा	मद्यवर्षती
	धापिरसः						
देव	सचितादेवः	हृद्गः	चमसः	ऊर्जा	ऊर्जा	ऊर्जा	
गन्धर्व	वसुधुधिः	विश्वधः	पुण्ड्रपर्य	पुण्ड्रगन्धर्व	पुण्ड्रगन्धर्व	पुण्ड्रगन्धर्व	पुण्ड्रगन्धर्व होता है
अप्सरः	सौर्यवर्चसः	सौर्यवर्चसः	(कम्पकपत्र)	(सुगन्ध)			
इषरज्व	रजतनामिः	कुबेरः	आमपात्रं	तिरोबा	तिरोबा	तिरोबा	पाप दूरकरता है
	कमरोका	वैश्वधः					
सर्प	छत्राष्ट्रः	तक्षक	महापुपात्र	विपवती	विप	विप	
	पेरावतः	वैशाखेवः					

## २ विराट्, दिव्य कामधेनु ।

राह्यकर्ता	हृन्वास्तव	वस्तु	रसना	गीके	स्तन	दूध
	कचम्		गी बोधनेकी बोरी	नाम		
देव मनुष्य	अन्न	हृद्गः	गावत्री	ऊर्जा	बृहत्	अन्ना (आकाश)
				स्वधा	रजस्व	जीवधिः
				सूनुता	महापत्रिणं	मद्य
				हरावती	आमदेव	अप्यः

## ३ विराट् गौ ।

किसके पासगृह	गुण	वर्णनका समय	क्या होता है	काम
वन्द्यपती	संवात्सर		वर्षमें अथ भरता है ।	
पितर	मास		मासिक दान देते हैं	विदुषावज्ञान
देव	पक्ष		अर्धमासमें अन्न करते हैं ।	वैश्यावज्ञान
मनुष्य	सप्ताह		यतिदिन अन्न ग्रहण करते हैं	
	तत्काल			

इन कोटकोंसे पता लगता है कि इस विराटरूपी कामधेनुसे किसने किस प्रकारका दूध प्राप्त किया । कामधेनुके पास जो माँगा जाता है, वही उसको प्राप्त होता है । आप चाहे अमृत माँगे अथवा चाहे आप विष माँगे । एकहि कामधेनु अमृत माँगनेवालेको अमृत दगी और विष माँगनेवालेको विष देगी । कामधेनु तो घर माँगनेवालेकी इच्छा वृत्त कर सकती है । यहाँ घर माँगनेवालेको योग्य बुद्धि चाहिये । महीं तो विराट् देवता प्रसन्न होनेपर भी बेहंगावर माँगकर अपनाहि नाश कर लेगा ।

पूर्वोक्त कोटक को देखनेसे पता लगेगा कि असुरोंने उस विराट् देवीको ' माया ' नामसे पुकारा, मायाका अर्थ है— " छल, कपट, धोखा, वैसा दीखता है वैसा वास्तविक न होना, भ्रम, कौटन्ध्य । " असुरोंने विराट् देवीमें ये गुण देखे और उनसे येहि गुण माँगे, उनको येहि गुण मिले । जो असुरोंने माँगा वही उनको मिला । प्राचीन और अर्वाचीन कालके असुरोंमें कपट और धोखा हि दिखाई देता है । इनही धोखेबाजीके कुर्याँसे असुर पहचाने जाते हैं । असुरोंका सप इतिहास धोखेबाजीका ही इतिहास है ।

उसी विराट् कामधेनुसे देवोंने बल और अन्नकी प्रार्थनाकी और उनको अन्न और बल प्राप्त हुआ । इस बलसे देवोंने असुरोंका पराभव किया और देवोंका राज्य इस सृष्टीमें होगया ।

मनुष्योंने विराट् देवीसे कृषि और फल आदि मिलनेकी प्रार्थना की और यह कृषि विद्या उन्होंने प्राप्त की, आमतक मनुष्य कृषिसे अपना जीविका निर्वाह कर रहे हैं ।

सर्पोंने देखिये ऐसी उत्तम देवताकी उपासना करके क्या माँगा, जो न उनका कामकारी है और न दूसरों का हित कर सकता है । ऐसी बड़ी दयता आदिमाताकी प्रसन्नता होनेके बाद उससे सर्प ऐसी एक चीज माँगे हैं कि जो जगत् का नाश कर सकती है । जगद्रचना करने वाली देवी प्रसन्न हुई तो उससे जो चाहे सो मिल सकता है, परंतु उससे सर्पोंने ' विष ' माँगा, जो प्राणिमात्र का नाश कर सकता है । इस प्रकारकी आत्मघातक माँग किसीका करना उचित नहीं है । यदि सप उस दयतासे विक्षेप महती शक्ति माँगत, तो यह उनको मिलती, परंतु उसके लिये भी शुद्ध बुद्धि चाहिये । उसके अभावमें ऐसा हि होगा । इसका सात्वत्य यह है कि वहीसे बड़ी शक्ति भी हावमें आगयी, ता भी मनुष्यका कोई लाभ नहीं हो सकता, क्योंकि उस शक्ति का उत्तम उपयोग करनेका ज्ञान उसको चाहिये । उस ज्ञानके अभावमें वह प्राप्त हुई वही शक्ति निःसदह इसकी हानि करेगी । जैसा सर्प और असुर इस देवताकी कृपासे

काम न उठासके । परंतु ऋषि, देव और मानवोंने उस से बड़ा काम प्राप्त किया । विशेष कर ऋषियोंने उस दृष्टांसे ' ब्रह्मा और तप ' प्राप्त किया, जो सब मानवजातीकी सन्नतिका एकमात्र साधन है, ऐसा हम कह सकते हैं । यदि मानवनेका समय आया तो ऐसा सांगना चाहिये ।

इस सूक्तकी अन्त्य वाते इस पूर्वोक्त उपदेशका गौरव करनेके लिये हैं, अतः इनका विशेष विवरण करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है ।

पाठक यहाँ इस बातका स्मरण रखें कि यह विराट् देवता केवल असुर, पित्र, देव, मनुष्य, इतरजन, सर्व आदिकोंकोहि प्रसन्न हुई और हम सब मनुष्योंको वह वर देनेको तैयार नहीं है ऐसी बात नहीं है । वह आदिमाता अणमाता हम सबको जो चाहे सो देनेको तैयार नहीं है, हम सब जो चाहे सो लेतेभी हैं, परंतु जो लेना चाहिये वह लेते । अयोग्य पदार्थ लेकर हम अपनी अवमति कर रहे हैं, इसलिये वेदने हमें इस सूक्तद्वारा यह उपदेश देकर कहा कि उससे अच्छी शक्ति हि मांगना चाहिय और कोई हानिकारक बात नहीं भाङ्गनी चाहिये ।

प्रत्येक मनुष्य मनमें सकल्प करता है, इच्छा करता है, कामना करता है वह सब पूर्वोक्त कामधेनुसे मांगहि होती है । प्रत्येक मनुष्य कामधेनुके समीप है । वह सब ' विराट् ' कामधेनुहि है और उसके सामने बैठकर मनुष्य इच्छा करता है । करणबलके नीचे अथवा कामधेनुके सामने बैठकर मनमें मली या बुरी कामना की जायगी, तो वह तत्काल सिद्ध होगी । मली कामना मनमें उत्पन्न हुई तो कोई दोष नहीं होगा, परंतु बुरी कामना उठी तो हानि होनेमें कोई संदेहहि नहीं । यहाँ पाठक स्मरण रखें कि जो हानि बुरा सकल्प करनेसे होगी, उस हानिकी भिन्नेबारी अपनेद्विपर है । इस प्रकार विचार करनेपर पता लगेगा कि मनुष्य स्वयं अपना नाश कर रहा है । इतने बुरी कामना की और कामधेनुसे बैसा फल मिला, तो उसमें कामधेनुका क्या दोष है ? दोष सब कामना करनेवालेका है । वह बात पाठकोंके मनमें स्थिर करनेके लियेहि इस सूक्तका उपदेश हुआ है ।

पाठक यहाँ अपनी सकल्पशक्ति का बल देखें और सदा क्षमसकल्प करके अपनी सन्नतिका मार्ग सुगम करें ।

### राष्ट्रीय उपदेश ।

इस सूक्तका जो पहिला भाग है वह राष्ट्रीय सन्नतिविषयक है । उसमें जनताकी

उत्पत्ति कैसी हुई, राष्ट्रीय संघटना कैसी हुई और लोगोंकी प्रातिनिधिक समा कैसी बनी इस विषयका उपदेष्टा इस सूक्तमें है । यहाँ 'वि-राट् या वि-राज्' शब्दका अर्थ 'राजहीन स्थिति' है । जिस समय राजा बना नहीं था, राजा बनानेकी कल्पना अथवा राजाकी भी कल्पना जिस समय जनतामें नहीं थी, उस समयकी जनताकी अवस्था 'वि-राज्' शब्द द्वारा यहाँ बताया है । राजसत्त्वा शुरु होनेके पूर्वकी स्थिति इस शब्दने यहाँ प्रकट की है । यह शब्द 'अ-राज-क' शब्दका पर्यायशब्द नहीं है । अराजक लोग राजाकी उत्पत्तिके पश्चात् होते हैं । पहिले राजाकी उत्पत्ति हुई, पश्चात् राजा और राजपुरुष प्रजापर अत्याचार करने लगे, उनके अत्याचारसे प्रसन्न होकर राजाका नाश करनेकी इच्छासे 'अराजक' लोगोंका जन्म हुआ है । अर्थात् राजाके उत्तर कालमें 'अराजक' की उत्पत्ति और पूर्व कालमें 'विराज्' की स्थिति होती है । इस प्रकार विचार करनेसे विराज् का अर्थ पाठकोंके मनमें स्थिर हो सकता है । जनता विराज् स्थिति में थी, इसका अर्थ केवल बिखरे लोक, ये और उनमें कोई संघटना नहीं थी ।

उत्पत्त्यात् सबसे प्रथम जो संघटनाका प्रारंभ हुआ वह 'स्त्रीपुरुषोंके मेल' से ही प्रारंभ हुआ है । स्त्री पुरुष तो पशुजन्तुओं में भी मिलते हैं, परन्तु वे अपना गृहस्थ संचार नहीं करते । उनका मेल तो केवल काष्ठकृपाके समयमें ही होता है । मनुष्यमें बुद्धि है, मन है और प्रेममी है । प्रारंभिक मनुष्योंमें पशुवत् स्त्रीपुरुष संबंध होते होते, जब उनका प्रेम अधिक बढ़ होने लगा, तब वे एकत्र रहने लगे । इस एकत्र निवासको धर्मकी नियंत्रणा होनेसे 'गृहपति' संस्थाकी उत्पत्ति होगई है । धर्मकी नियंत्रणाक साथ प्रतिदिन का अधिहोत्र तथा अन्यान्य गृहस्थधर्म मनुष्यके साथ संबंधित होगये । इस समय यह मनुष्य घर करके रहनेलगा । घरमें रहनेसे घरका स्वामी, स्वामीकी सहचारिणी स्त्री और उसके सहायक भाई और पुत्र हैं, यह कल्पना मनुष्यमें उत्पन्न होगई और यही कल्पना बढ़ते बढ़ते बड़े साम्राज्यमें परिवर्तित हुई । इसी उत्पत्तिका क्रम इस सूक्तमें दर्शाया है ।

गृहपति, आहवनीय और दक्षिणागि ये तीनों संस्थाएँ गृहस्थवस्था में ही अधिकधिक संघटना होनेका आशय बता रही हैं । गृहपति संस्थामें यज्ञ भी छोटा होते हैं, आहवनीय और दक्षिणागिमें यज्ञ बड़ गये और उसके कारण मानवसंघटना भी बढ़गयी । परन्तु अभीतक ग्रामसंस्थाका अस्तित्व नहीं हुआ था । अनेक कुटुंब एक स्थानपर



रहत थे, परंतु ग्रामसंस्थाके पथनसे व संप्रभित नहीं थे । एक स्थानपर अनेक कुटुंब रहनेके पश्चात् सब कुटुंबियोंकी मिलकर एक ग्रामसंस्था होनी चाहिये, इससे श्राव्यी सघटना अथवा सच कहें तो जो उस स्थानपर कुटुंब रहते हैं, उनकी सघटना होगी, यह कल्पना उत्पन्न हुई होगी । गृहपति संस्थाके पश्चात् ग्रामकी और ग्रामसंस्थाकी कल्पना स्वाभाविक है उत्पन्न होगी । क्यों कि गृहपति संस्थामें जो घरके निवासी मावना का और सघटनासे सुखका अनुभव है, उसी अनुभवसे अनेक गृहस्थियोंकी मिलकर एक कुटुंब बनाने और उससे अपना संप्रभु बढानेकी कल्पना मनुष्योंमें उत्पन्न होना स्वाभाविक है ।

इससे हि 'समा' की उत्पत्ति होगी है । यहाँ समा शब्द 'ग्राम-समा' है । 'ग्राम' शब्दका हि अर्थ 'सघटित समाज' है, अनेक कुटुंब एक नियमसे बंधकर एकत्र रहते हैं उसका नाम 'ग्राम' है । इस ग्रामकी जो समा उसका नाम ग्रामसमा है । वह समा उस ग्रामके चुन हुए प्रतिनिधियोंकी हि होती है । कार्य बाहरका मनुष्य इस समा का सदस्य नहीं हो सकता । जो उस ग्रामका रहनेवाला है, उसी नहीं है, जिसका घर उस ग्राममें है और जो उस ग्रामके कुटुंबियोंका चुना हुआ प्रतिनिधि है, वह उस समाका सदस्य हो सकता है । इस प्रकारके जो लोगोंके प्रतिनिधि होंगे उनकी ग्रामसमा होगी । और यह समा ग्रामकी रक्षा, आरोग्य प्रबंध, शिक्षाभ्यवस्था आदि कार्य करेगी । मानो इस ग्रामसमासे उस ग्रामकी नियंत्रणा होगी ।

इस प्रकार अनेक ग्राम बने, उनकी व्यवस्थापिका समाएँ बनीं, तो उनका आपसमें 'सग्राम' होना समझ है । एमें 'स-ग्राम' होनेके पश्चात् हि सग्रामोंसे अहित होनेका अनुभव मान होगा और अनेक ग्रामोंकी एक सघटित समा बनानेकी कल्पना सबका प्रिय होगी ।

इसी कारण 'समिति' की निमित्ति होगी ऐसा आगे इस सूक्तमें कहा है । पूर्वोक्त ग्रामसमाओंके द्वारा चुन हुए प्रतिनिधियोंकी हि यह राष्ट्रसमिति अथवा राष्ट्रीय समा होगी है । और इसका द्वारा राष्ट्रका शासन होता है । इसका बीचमें प्रांत समाएँ छानी अथवा पर्वी हानका अनुमान पाठक कर सकते हैं और इससे बढकर साम्राज्यमहासमा का हाना भी पाठकोंकी कल्पनामें आसकता है ।

महासमा अथवा समिति या राष्ट्रीय होगी है और इसमें सब ग्रामिक प्रतिनिधि आनसे प्रतिनिधियोंकी सम्मत्ता बड़ी होगी है । अब बहुत किंवा सचकों प्रतिनिधि होत

हैं तब उनका उपस्थित होना और एक मतसे काम चलना अत्यन्त कठिन होता है, इस लिये उनमें से कुछ मोहसे जुने हुए अधिक योग्य कार्यकर्ताओंका 'मंत्रिमण्डल' बनाना आवश्यक हुआ करता है। कार्य करनेके समय इसकी अत्यन्त आवश्यकता होती है। अतः इसी सूक्ते अन्तिम भागमें 'आमश्रणा' परिषद् बनानेका उल्लेख है। आमश्रणा अथवा मश्रणा करनेवाला हि मंत्रिमण्डल होता है। यह सब राष्ट्रके शासन व्यवहार का विचार करता है और तदनुसार सब ओरदेदारों द्वारा राष्ट्रका तथा तदन्तर्गत ग्रामोंका शासन व्यवहार करता है। इस ढंगसे वेदने लोकशासन सत्त्वाकी उन्नतिकी क्रम बताया है।

मनुष्यमें जो आत्मशक्ति है वह बड़ी प्रभावशालिनी है। उस आत्मशक्तिमें ज्ञान, वीरता, सग्रह और कर्म ये चार भेद हैं। जहाँ आत्मा है वहाँ ये चार शक्तिविभाग न्यूनाधिक रीतिसे हैं। मनुष्यमें येही मन्त्र, धन, धिद्, धृद् नामसे प्रसिद्ध हैं। ज्ञानसग्रह, राष्ट्रपालन, जनसन्ध और कर्मकौशल ये इनके कार्य अंगत्में सुप्रसिद्ध हैं।

सब अनेक कृद्ग एक स्थानपर आधाते हैं तब उनमें कई लोग ज्ञानका सग्रह करने वाले, विचारसम, केशल ध्यानधारणामें रत होते हैं, ये अंगत्के व्यवहारके जालमें नहीं फसते। दूसरे कई लोग ऐसे होते हैं कि जो अपने बाहुबलसे ग्रामकी रक्षा करनेमें तत्पर होते हैं।

इनके बलसे होनेवाली रक्षासे अन्य लोग अपने आपको सुरक्षित समझते हैं। दूसरों की रक्षाके लिये आरमसमर्पण करनेमें हि इनका यत्न होता है। ये ग्राम या राष्ट्री रक्षाके लिये अपने जीवितका भी समर्पण करते हैं। परोपकारके लिये ये धनिय लोक बड़ी बड़ी आपत्तियाँ सहन करते, अपने जीवित की सकटोंमें और साहसोंके कार्योंमें सौंप देते हैं और सपूर्ण जनताके धन्यवादका योग्य बनते हैं।

वैश्य लोग खेती, और व्यापार व्यवहार करते हैं, धन कमाते हैं, और जनताक हित के कार्य करनेके लिये सब धनका समर्पण भी करते हैं। ये वैश्य लोग सग्रहमें भी चतुर होते हैं और दानमें भी शूर होते हैं। इसीमें इनका यत्न हुआ करता है।

और कर्मवार हैं, इनको धृद् कहते हैं—अनेक हुनर या कारीगरीके कर्म करना इनका कर्तव्य है। विभिन्न प्रकारक कृष्टलताके कर्म करके ये अनेकानेक सुखसाधन निर्माण करते हैं। सब अन्य लोग इनकी कारीगरीसे सुखके साधन प्राप्त करते हैं। जो लोग इन चारों वर्गोंमें नहीं समिलित होते उनको अशर्माकृत पचम वर्गमें समिलित

किया जाता है। य पाँच प्रकारके 'पञ्च-जन' हैं। इन पञ्चजनोंकाही प्रायः नगर बनन और राष्ट्र होता है। इन वर्गोंके प्रतिनिधि अहाँ इकट्ठ होते हैं, उस समाज नाम 'पंचायत' है, यही ग्रामसभा, नगरसमिति, राष्ट्रसभा और जामंत्रणपरिषद है।

यहाँ समा होती है वहाँ उसका अध्यक्ष, मंत्री आदि अधिकारी होते हैं, इस कारण ग्रामसभा में ग्रामसभाध्यक्ष, राष्ट्रसमितिके उसका अध्यक्ष और मन्त्रिकर्मके उसका मुख्य मंत्री, होना स्वाभाविक है। जिस प्रकार घरमें घरका स्वामी होता है, उसी प्रकार समामे समाका नियामक होना आवश्यक है। आये चलकर हुदादि प्रबंध छिड़बावेपर युद्धनायक सेनाका विशेष बल हाथमें आनेसे अभ्यर्थादि स्वयं शासक राजा या महाराजा बनता है। अथवा जिसको प्रजाजन राज्यका अध्यक्ष चुनते हैं वही अपना बल बढ़ाकर स्वयंशासक राजा बनता है। यह राजाका विषय वहाँ नहीं है, वहाँ केवल ग्रामसभा, राष्ट्रसमिती और मन्त्रिमण्डल प्रधानोंद्वारा चुने हुए प्रतिनिधियोंका केसा बनता है, इसी का वर्णन यहाँ है। पाठक इस व्यवस्थाको देखें और अपने अपने ग्रामों और प्रान्तों तथा राष्ट्रमें इस प्रकारके प्रधानियुक्त प्रतिनिधियोंकी छावक उत्साह नियुक्त करें और इसके द्वारा शासन करके अपनी सर्वानुपूर्ण सज्जति सिद्ध करें।

अष्टम अध्यास समाप्त ।

# अथर्ववेदका स्वाध्याय ।

## अष्टमकाण्डकी विषयसूची ।

सप्ततिका सीमा मार्ग	पृष्ठ ९	मृत्युका सर्वाधिकार	४२
सूक्तविवरण	३	जीवनीय विद्याका उपदेश	४३
सूक्तोंके श्रवि-देवता-छन्द	४	ज्ञानका कवच	॥
श्रविक्रमानुसार सूक्तविभाग	७	प्राणधारणा	५०
देवता क्रमानुसार ,,	॥	खाठर अभि	५२
१-२ दीर्घायु प्राप्त करनेका उपाय	९	औषधिप्रयोग	५४
दीर्घायु कैसी प्राप्त होगी ?	१७	उपदेशकका कार्य	६०
धर्मध्वज	॥	समयविभाग	६१
दूसरा मार्ग	॥	३ दुष्टोंका नाश	६२
रथी और रथ	१८	दुष्टोंके लक्षण	७१
ज्योतिषी प्राप्ति	२०	दुष्टोंका नाश करनेवाला	केसा हो ? ७३
घोकसे मायुष्य नाश	॥	दण्डका विधान	७५
हिसकोसे बचना	२१	४ घातुदमन	७८
भवनारिके पाश	२२	दुष्टोंका दमन, लक्षण	८७
ज्ञान और विज्ञान	२४	सत्यका रक्षक ईश्वर	९२
पूर्ति और स्थिरता	२५	वचदण्ड	९३
रक्षा और आश्रय	॥	देखसे निकाल देना	९४
सामाजिक पाप	२६	दुष्टोंको उपाना	९५
सर्वप्रकाशसे दीर्घायु	२७	दुष्टोंका द्वेष	॥
तम और ज्योति	३०	पापीकी अपोगति	९६
दो मार्गरक्षक	॥	आरमदण्ड	९७
उपदेशक	३२		
दीर्घायु बननेका उपाय	४१		

५ प्रतिस्तर माणि	९८	अमर्त्य मौषध	१११
मणिपारण	१०५	८ पराक्रमसे विजय	११७
एक शूका	१०६	९ पृथ्वीपर एक हि	
६ गर्भदोषनिवारण	१०७	उपास्य देव	१५१
प्रसूतिके दोष	११४	एक सपास्य देव	१५०
मन्त्ररोंका गायन	१२१	गौक दो बच्चे	१६२
मन्त्ररोंके शस्त्र	"	वैश्वानरकी प्रतिमा	१६५
" स्थान	१२२	सात गीष	१७२
रोगाक्रियोंके नाम	"	गो महिमा	१७३
पिंग बज्र	१२३	१० चिराद	१७७
पिंगबज्रके गुण	१२४	कामधेनुका दूध	१८१
७ औषधि	१२५	३ कोष्टक दिव्य 'कामधेनु'	१८४
औषधियोंकी शक्तियाँ	१२४	राष्ट्रीय उपदेश	१८९
पापस राग	"	विषमसूची	१९१
तीन प्रकारका मोचन	१३५		

अष्टम काण्ड समाप्त ।

ॐ

# अथर्ववेद

का

सुषोम मास्य ।

---

नवमं काण्डम् ।

---

लेखक

प० श्रीपाद दामोदर सातबळेकर,

साहित्यशास्त्रज्ञ वैद्यार्थी गीणान्नद्वार

अध्यक्ष-स्वाध्याय ग्रण्ठालय मानन्दाश्रम किर्ति पारधी (जि. घुरत)

---

तृतीय बार

संवत् १००७ शक १८७१ सन १९५०

---



# वेदमंत्रमें देवोंका निवास ।



ऋषो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन्देवा अग्निं निधेः ।  
यस्तन्न वेदं किमुवा करिष्यति य इच्छद्भिरुस्त इमे समासते ॥

अथर्व १ । १२७ । ३९; अथर्ववेद ९ । १ । १५

परम आकाशमें रहनेवाले सब देव आचार्यों—वेदमंत्रोंके अक्षरोंमें बैठे हैं । इस बात को जो नहीं जानता वह वेदमंत्र लेकर क्या करेगा । जो इस बातको जानवे हैं वे संतुष्ट होकर उच्च स्थानमें बैठते हैं ।<sup>१</sup>




---

सुमनस्य प्रकाशक— यशस्य श्रीपाद सातपथीकर श्री ए  
रवाध्यायमण्डल भारतसुदमासक किन्ना पारखी ( जि सूरत )

---



# अथर्ववेदका सुबोध भाष्य ।

## नवम काण्ड ।



इस नवम काण्डका प्रारंभ विषयः अष्टसे हुआ है। इसका अर्थ प्रकाशमय स्वर्गलोक है। प्रकाशमय लोक मंगल है अतः इस काण्डका प्रारंभ मंगल वाक्यसे हुआ है। इस सूक्तकी देवता मनु ' अर्थात् मीढाम है। जिस सूत्राग्रासे यह धैर्य विषय कहा गया है उस मनुष्य सूत्रका अर्थ है इस मंत्रसे होमेसे इस काण्डका प्रारंभ मंगलके अर्थसे हुआ है इससे स्पष्ट नहीं है।

इस काण्डमें ५ अनुशाक १ सूक्त और ३ २ मंत्र हैं। इनका विभाग इस प्रकार है—

अनुशाक	सूक्त	दशतिथिभाग	पद्यांश	मन्त्रसंख्या	श्लोकसंख्या
१	१	१०+१४		२४	
	२	१ +१ +५		२५	३५
२	३	१ +१०+११		२१	
	४	१ +१४		२४	५५
३	५	१०+१ +१०+८		३८	
	६	—	१	३३	१
४	७	—	१	२६	
	८	१०+११		२२	४
५	९	१ +११		२२	
	१०	१ +१०+८		२८	५
				<u>३१२</u>	<u>३१२</u>



इस कण्डमें १ सूक्त है उनके ऋषि देवता छन्द देखिये-

### सूक्तोंके ऋषि-देवता-छन्द ।

सूक्त	मंत्रसंख्या	ऋषि	देवता	छन्द
<b>प्रथमोऽनुवाकः ।</b>				
<b>विंशः प्रपाठकः ।</b>				
१	२४	अथर्वी	मरु अश्विनी	त्रिष्टुप् २ त्रिष्टुप्पर्या पङ्क्तिः ३ पराशुष्टुप् १ मरुता अतिशक्वरार्याः ७ अग्नि आपतपर्या मरुताः १ पूरतीगमां सस्तारपङ्क्तिः ९ पराशुष्टुष्टु सस्तारपङ्क्तिः १ पुरात्मिकपङ्क्तिः ११-१३ १५, १६, १८ ११ अनुष्टुभः १४ पुरात्मिकः १७ उत्पत्तिः १८ २ सुरेभिराश्विनीः २१ एकम द्विप वागी ष्टुप् २२ त्रिप वागी पुरात्मिकः २३ द्विप वागी पङ्क्तिः २४ एकम द्विप अग्निः ।
२	२५		कामः	त्रिष्टुप् ५ अतिशक्वरीः ७ अयती ८ द्विप वागी ११ २ २३ सुरेभिराश्विनीः १२ अनुष्टुप् १३ द्विप वागी अनुष्टुप् १४ १५, १७ १८ २१ २२ अयती १३ अनुष्टुप् अथर्वार्या परा अयती ।
<b>द्वितीयोऽनुवाकः ।</b>				
३	११	सुमंगिताः	वाक्ता	अनुष्टुप् १ एकम पङ्क्तिः ७ पुरात्मिकः १५ अयती पञ्च आतसक्वरीः १ प्रस्तारपङ्क्तिः २१ सस्तार पङ्क्तिः २५ ३१ त्रिप आतसक्वरी पूरती ३३ अयती त्रिष्टुप् ३४-३ प्रसिद्धा अयती अयती । ( ३५-३६ एकम द्विपवा )
४	२४	महा	अथर्वः	त्रिष्टुप् ८ सुरेभिराश्विनी २४ अयती ११ १२ १३ २ २३ अनुष्टुभः १८ उत्पत्तिः १९ आतसक्वरीः ।
<b>तृतीयोऽनुवाकः ।</b>				
५	३८	सुश्रु	अग्निः अश्विनी	त्रिष्टुप् ३ अनुष्टुभः पुरात्मिकः अयती ४ १ अयती १७ १७ २४-२ अनुष्टुभः ( ३ अनुष्टुभः ) ११ त्रिप अनुष्टुप् १८ २ त्रिप आतसक्वरी २३ अयती २४ अयती अनुष्टुभः आतसक्वरी आतसक्वरी अयती २५ अयती अनुष्टुभः आतसक्वरी आतसक्वरी ३३ अयती ३४-३५ एकम अयती ३६ एक पञ्च आतसक्वरी ३८ एकम द्विप वागी त्रिष्टुप् ।

एकविंश प्रपाठकः ।

१	२	महा	अधिष्ठा विद्या
(१) १०			१ त्रिप गावत्री; २ त्रिप आर्षी वावत्री ३ ७ छाप्पी त्रिपुप्; ४ ९ आर्षी अमुपुम् ५ आर्षी गावत्री; ६ त्रिप छाप्पी जगती; ७ आर्षी त्रिपुम्; १ आर्षी मुनिवृहती; ११ १४-१६ छाप्पी अमुपुम् १२ विराट् गावत्री; १३ छाप्पी विवृतादि; १७ त्रिप विराट् मुरिवावत्री ।
(२) १३			१८ विराट् पुरस्ताद्वृहती; १९ २९ छाप्पी त्रिपुम्; २ आर्षी अमुपुम्; ३१ छाप्पी जगती; ३२ ३८ आर्षी वृहती ( १८ मुरिप् ); ३३ आर्षी अमुपुम्; ३४ त्रिप स्वर्गाद्वृहती; ३५ आर्षी गावत्री; ३६ छाप्पी अमुपुम्; ३७ त्रिप आर्षी त्रिपुप्; ३ त्रि। आर्षी पत्तिः ।
(३) ९			३१-३६ ३९ त्रिप निमित्तमन्वा गावत्री; ३७ छाप्पी वृहती; ३८ पितृमन्वावृहती; ४ -४३ (१) मावाय त्वापुपुप् ( १ ) ४४ मुरिप् ( २ ) ४ ४३ त्रिप मा वत्री; ( २ ) ४४ अमु प्रस्तावरीयः ।
(४) ५			४५ ( १ ) छाप्पी जगती; ४५ ( २ ) पुर जगती ४५ ( ३ ) ४८ ( ३ ) छाप्पी मुरिवृहती ४६ ( १ ) ४७ ( १ ) ४८ ( २ ) छाप्पी अमुपुम्; ४६ ( २ ) त्रिप निषाद्वारम्भ गावत्री; ४७ ( २ ) त्रिप विराट् विपमा वाव गावत्री; ४८ ( १ ) त्रिप विराट् त्रिपुप् ।
(५) १४			४९ आर्षी गावत्री ५ छाप्पी अमुपुप्; ५१ ५३ त्रिप आर्षी पत्तिः; ५२ एकप माजन्मन्वा गावत्री; ५४-५९ आर्षी वृहती; ६ एकप आर्षी जगती; ६१ आर्षी त्रिपुप्; ६२ एकप आर्षी त्रिपुप् ।

षट्पयोऽनुवाकः ।

१	२	महा	गी:
			१ आर्षी वृहती; २ आर्षी जगती; ३ ५ आर्षी अमुपुम्; ४ १४ १५ १६ छाप्पी वृहती; ६ ८ आर्षी गावत्री; ७ त्रिपरा पितृमन्वा विपगावत्री; ९ १३ आर्षी गावत्री; १ पुरजगती; ११ १२ १७ १८ आर्षी जगती; १८ २२ एकप आर्षी जगती; १९ एकप आर्षी गावत्री; २ आर्षी जगती; २१ आर्षी अमुपुम् २३ एकप आर्षी वृहती; २४ आर्षी मुरिप वृहती; २६ आर्षी त्रिपुप्

८	२२	भूर्मन्त्रिः	सर्वस्त्रीर्वा मवापपा- करत्वं	अनुष्टुप् १२ अनुष्टुप्प्री मूर्धमरी अनुष्टुप उन्मिन् मिरावष्टुप; २१ मिरात् पन्था सुवर्षे २२ पन्था
पथमोऽनुवाकः ।				
९	२३	महा	वासाः अप्यस्त्री आदिभ्य-	मिष्टुम्, १२ १४, १६ १८ अन्त्यः ।
१	२४		घी। मिरात् अप्यस्त्री	मिष्टुम् १ ४ १४ १० १८ अन्त्यः; २१ असिपक्षरी; २४ अनु पुर पुरिपक्षी अन्त्यः २६ २७ मुरिध् ।

## श्रुतिक्रमानुसार सूक्ताविभाग ।

इस प्रकार इस नवम काण्डके अवि देवता और केवोंकी व्यवस्था है। अब इसका अतिक्रमानुसार सूक्ताविभाग देखिये—  
 १ महा अन्तिके ३ १ ४ १ १ के पाँच सूक्त हैं  
 २ अथर्व १ २ के दो सूक्त हैं  
 ३ भूर्मन्त्रि ३, ४  
 ४ अनु अन्तिके ५ का एक सूक्त है ।

इस तरह बार अन्तिके ऐसे मंत्र इस नवम काण्डमें हैं। इन काण्डमें महा अन्तिके मंत्र अधिक हैं। अब इसका क्रमानुसार सूक्ताविभाग देखिये—

## देवताक्रमानुसार सूक्ताविभाग ।

१ गी देवताके	४ और १ के दो सूक्त हैं
२ अप्यस्त्री	१ " १ "
३ अनु देवताका	१ यह एक सूक्त है
४ अन्तिकी	१ " "
५ वासा	२ " "
६ महा	देवता का १ वा यह एक सूक्त है
७ अथर्व	" ३
८ अन्तः पञ्चदेवता	५ " "
९ अन्तिकी विद्या	१ " "
१० सर्वस्त्रीर्वामवापपाकरत्वं	१ " "
११ वासा	" १ "
१२ अन्तिकी	१ " "
१३ मिरात्	१

इस प्रकार तरह देवताओंके सूक्त इस नवम काण्डमें हैं। इस काण्डमें सर्वदेवता १ का अन्तिकी सूक्त है, अन्तिकी का नवमसूक्त है और अनुष्टुप्प्रीके अन्तिकी हैं। इसकी बातोंका विचार सबमें रखकर समझ इस काण्डका नवम करें ।



# अथर्ववेदका सुबोध भाष्य ।

नवम काण्डम् ।

## मधुविद्या और गोमहिमा ।

( १ )

( ऋषिः=अथर्व । देवता=मधु, अग्निनी )

विष्वस्वपिब्या अन्तरिक्षात् समुद्रावृधेर्वातान्मधुकृषा हि अग्ने ।

तां चामिस्वामृतं पक्षानां इक्षिः प्रक्षा प्रति तन्दन्ति सर्वैः

॥ १ ॥

महत् पर्यो विश्वरूपमस्त्वाः समुद्रस्य त्वोत् रेत आहुः ।

यत् पेरि मधुकृषा रराणा तत् प्राणस्तधुमृतं निर्विष्टम्

॥ २ ॥

पश्यन्त्यस्याभरितं पृथिव्यां पुषक् नरो बभूवा मीमांसमानाः ।

अग्नेर्वातान्मधुकृषा हि अग्ने मरुतामुद्रा नसिः

॥ ३ ॥

अर्थ—[ विष्वाः अन्तरिक्षात् पृथिव्याः ] धुकोक अन्तरिक्ष और पृथ्वी [ समुद्रावृ धेः वातावृ ] समुद्रका वह अग्नि और वायुसे [ मधुकृषा अग्ने ] मधुकृषा उत्पन्न होती है । [ अदृष्ट वातानां तां चामिस्वा ] अदृष्टका कारण करने वाली इस मधुकृषा को सुपूजित करने [ सर्वैः प्रक्षाः इक्षिः प्रतिगन्तुम् ] सब प्रक्षालन करनेसे आर्पित होते हैं ॥ १ ॥

( अस्वाः परः ) इसका मूत्र ( महत् विश्वरूपं ) क्या विश्वरूपही है । ( यत् त्वा समुद्रस्य रेतः आहुः ) और ऐसे समुद्रका भीरु कहते हैं । ( यतः मधुकृषा रराणा पृथि ) जहाँसे वह मधुकृषा उत्पन्न करती हुई जाती है, ( तत् प्राणाः ) वह प्राण है ( यत् निर्विष्टं अमृतं ) वह सर्वत्र प्रसिद्ध अमृत है ॥ २ ॥

( बभूवा पुषक् मीमांसमानाः नराः ) बहुत प्रकारसे पुषक् पुषक् विचार करनेवाले लोग ( पृथिव्या ) इस पृथ्वी पर ( अस्वाः भरितं पश्यन्ति ) इसका भरित जगज्जोक्य करते हैं । ( मधुकृषा अग्नेः वातावृ अग्ने ) वह मधुकृषा अग्नि और वायुसे उत्पन्न हुई है । यह ( मरुतां उद्रा नसिः ) मरुतों की उद्रा पुत्री है ॥ ३ ॥

साधार्थ—पृथ्वी आप सेव नामु आकाश और प्रकाशसे महत् रूप देनेवाली थी माता उत्पन्न हुई है इस अमृतस्वी रूप देनेवाली येमाताकी पुत्रा करनेसे सब प्रकार के वृक्षों आर्पित होगी ॥ १ ॥

इस यीमाताका रूप मायो रूपसे विश्वकी वही रक्षि है । जगत्वा मायो वह संपूर्ण अकालकाल धार है । जो वह उत्पन्न करती हुई थी है, वह वृक्षका प्राण है और उसका रूप प्राणक अमृत है ॥ २ ॥

विचार करनेवाले बहुत ही पृथ्वीपर इस यीमा भरित देखते हैं । वह महत् रूप देनेवाली थी अग्नि और वायु से उत्पन्न हुई है, अतः इससे मरुतों—अमृतों की प्रभावशालिनी पुत्री कहते हैं ॥ ३ ॥

मातादित्यानां दुहिता वसनां प्राणः प्रजानाममृतस्य नार्भिः।

हिरण्यवर्णा मधुकृष्ण घृताक्षी महान् भर्गश्चरति मर्त्येषु

|| ೧ ||

मधोः कशामजनयन्त देवास्तस्या गर्भो अमवत् विश्वरूपः ।

त जात रुकुं पिपति माता स जातो विश्वा सुधना वि षष्टे

11 4 11

फस्ते प्र वेदु म तु त विकेत यो अस्या हृदः कलसं सोमधानो अक्षितः ।

प्रज्ञा मुमुक्षाः सो अस्मिन् मदेत

11 6 11

स तौ प्र वेदु स उ तौ विकृत यावस्याः स्तनौ सहस्रवारवर्धितौ ।

ऊर्ध्वं दृष्ट्वात् अनपस्फुरन्ती

11 9 0

हिद्वरिक्ती पृथ्वी नयोबा तुमैषोपाभ्येति या ग्रन्थम् ।

श्रीन् प्रमानमि वाचश्रुता मिमांसि मायुं पर्यते पर्योमि

U C II

अर्थ- (आदि पात्रो माता) वह आदिस्थोकी माता ( वसुधा दुहिता) वसुधोकी दुहिता ( वसुधा माता) वसुधा माता माता ( अमृतवत् माता) वह अमृतका पदार्थ है ( विश्वव्याप्य अमृतका वसुधा) सुवर्ण का समान-वर्णवाली वह अमृतका पदार्थ भिन्न करनेवाली है वह ( अमृत महावर्ण गर्वः आदि) माताओं वह महावर्ण के अति लंबात काता है ।

(देवाः सदाः कदा अन्नमन्त्रः) इस मन्त्रकी कथाको ऐश्वर्य कथाया है (कथाः विष्णुना लम्बा अन्नमन्त्रः) अन्नमन्त्र यह विष्णुना लम्बा हुआ है। (१) अन्नमन्त्र जाति माता विष्णु (२) अन्नमन्त्र अन्न अन्नमन्त्र की माता अन्नमन्त्र है (३) अन्नमन्त्र विष्णु अन्नमन्त्र (४) अन्नमन्त्र सव अन्नमन्त्रा मन्त्रिका कथा है ५ ५ ५

(क: ष प्रत्यय) कौन कस जागदा हे (क: उ ले चिह्न) काल कसका बिचार करता हे ? (जरवा: इध:) इन्हे टुटके नाम (प सोमपादा: ककता: अश्रित:) ओ सोमरसले धारू पूर ककक विद्यमान हे (कसिद:) इन्में (सा गुमेव:) प्रका:) वह कलम मकाकाया जडा (प्रत्ये) जालव कोगा ॥ १ ४

(सः सा श्रेयः) यह उनको ज्ञाता है (सा उषी विनेन) यह उनका विचार करता है (वौ जन्मा जन्म यरी भक्षितो रमना) जो हमसे महत्त्वपूर्णतया अक्षय शत है : वे (अमप्राप्ताजी कर्म बुद्धि) अभिहित होते हुए कदाचित् रमका दोहन कात है ॥ ७ ॥

( मा हिंसाया ) ओ हिंसा कनेवाली ( बको वा उपैवीया ) बज हैनेवाली बज हनेमे पुनारनेवाली ( जं भवेति ) जगद ब्रह्मको प्राप्त होनी है । ( जीवधर्मान् जमि वापरायाम् ) जीवों यशोंको बजमें रचनेवाली ( जगन्निमानि ) मृगश जगद कानी है बार ( बकोभिः कवते ) बूखकी चाराकोमे पून देखी है ॥ ५ ॥

भाषा—वह सा लड़की का नाम लक्ष्मी की पुत्री जगमोना नाम है और वही लक्ष्मी का देव है । वह जगमोना नाम की पुत्री का नाम है और लक्ष्मी का नाम है ।

यह मे इस ओर ध्यान दिया है। इनको सब प्रकार से समझाया गया होता है। यथा होने दे। यदि वह उठता है तो बचपन

[illegible][illegible][illegible]

यामापीनामपुसीयुन्त्यापः क्षाक्षरा वृषमा ये स्वराजः ।

ते वर्षन्ति ते वर्षयन्ति तृष्टिषु काममूर्धमापः

॥ ९ ॥

स्तनयिस्तुस्ते वाक् प्रजापते वृषा धूमं क्षिपसि भूम्यामधि ।

अपेर्वातामधुकक्षा हि ज्ञेये मरुतामुग्रा नसिः

॥ १० ॥ (१)

यथा सोमः प्रातःसवने अधिनोर्मवति प्रियः ।

एवा मे अधिना वर्षे आत्मनि ध्रियताम्

॥ ११ ॥

यथा सोमो द्वितीये सवने इन्द्राग्न्योर्मवति प्रियः ।

एवा मे इन्द्राग्नी वर्षे आत्मनि ध्रियताम्

॥ १२ ॥

यथा सोमस्तृतीये सवने ऋमूणां मवति प्रियः ।

एवा मे ऋमवो वर्षे आत्मनि ध्रियताम्

॥ १३ ॥

मधु अनिपीय मधु वंसिपीय । परस्वानघ आर्यम् तं मा सं सूख वर्षसा

॥ १४ ॥

वर्ष- ( य वृषमाः ) जो वर्षासे मनेवाले वैक ( स्वराजः क्षाक्षराः वापः ) वैकस्वी क्षाक्षिप्रास्वी वैक ( या मापीनां अपसीयन्ति ) जिस प्राण करनेवालोंके पास पहुँचते हैं । ( तृष्टिषु काम कर्म ) तरङ्गालीको बदेवक वक देनेवाले वक्की ( ते वर्षन्ति ) वे वृष्टी करते हैं ( ते वर्षयन्ति ) वे वृषी करते हैं ॥ ९ ॥

हे ( प्रजापते ) प्रजापाकक । ( ते वाक् स्तनयिस्तुः ) ठेरी वाणी गर्जना करनेवाला मेव है तू ( वृषा ) वक्कवान होकर ( भूम्यां क्षिपि धूमं क्षिपसि ) भूमिपर वक्को फैला है । ( अग्ने वाताय मधुकक्षा हि ज्ञेये ) अग्नि और वायुसे मधुकक्षा उत्पन्न हुई है वह ( मरुतां उग्रा नसिः ) मरुतोंकी वग्र वृष्टी है ॥ १० ॥

( यथा सोमः प्रातःसवने ) जैसा सोमरस प्रातःसवन यज्ञमें ( आधिभोः विषः मवति ) आधिनी देवोंको मित्र होता है व अधिदेवो ! ( एवा मे आरमयि ) इस प्रकार मेरे आराममें ( वर्षः ध्रियतां ) तेज प्राप्त करें ॥ ११ ॥

( यथा सोमः द्वितीये सवने ) जैसा सोमरस द्वितीयसवन-मार्गधियसवन-यज्ञमें ( इन्द्राग्न्योः प्रियः मवति ) इन्द्र और अग्निको मित्र होता है हे इन्द्र और अग्नि ! इस प्रकार मेरे आराममें तेज प्राप्त करें ॥ १२ ॥

जैसा सोम ( तृतीये सवने ) तृतीयसवन-साम्यसवन-यज्ञमें ( ऋमूणां विषः मवति ) ऋमूणोंको मित्र होता है हे ऋमवो ! इस प्रकार मेरे आराममें तेज प्राप्त करें ॥ १३ ॥

( मधु अनिपीय ) मीठास उत्पन्न कर्कश ( मधु वंसिपीय ) मीठास प्राप्त कर । हे अग्ने ! ( परस्वानघ आर्यम् ) तुझ केकर मैं आराम हूँ, ( तं मा सं सूख वर्षसा ) उस मधुको तमसे संयुक्त कर ॥ १४ ॥

प्रातः-जो वैक अग्ने तेज और वक्को पुत्र वी ओके समीप होती हैं वे तरङ्ग मीका वक्करक वक देनेवाले वक्की वी वृष्टी करते और वृष्टी हैं ॥ ९ ॥ हे प्रजापाकक वैक ! वैकवर्जना ठेरी वाणी है वक्को तू भूमिके ऊपर अपना वक् फैला है, वही प्रातः और वैकसे ऊपर अग्नि और वायुका सत्वांश केकर उत्पन्न हुआ है ॥ १० ॥

जिस प्रकार सोम प्रातःसवनमें आधिनी देवोंकी मित्र होता है उस प्रकार मेरे अग्नर तेज मित्र होकर बडे ॥ ११ ॥ जैसा सोम मार्गधिय सवनमें इन्द्र और अग्निको मित्र होता है वैसा मेरे अग्नर तेज मित्र होकर बडे ॥ १२ ॥

जिस तरह सोम साम्यसवनमें ऋमूणोंको मित्र होता है उस तरह मेरे ऋमव तेज मित्र होकर बडे ॥ १३ ॥ मधुका उत्पन्न करता है मधुराज वक्कायन करता हुई वैक । मैं वक् समर्पण करनेके लिये आराम हूँ अतः मुझे इतने तेज दे

पुष्ट कर ॥ १४ ॥

स मांने वर्षेसा सृञ्च सं प्रखया समायुपा ।

विद्युर्मै अस्य देवा इन्द्रो विद्यात् सह ऋषिभिः

॥ १५ ॥

यथा मधु मधुकृतः संमरन्ति मघावधि।

एवा मे अग्निना वर्षे आरमनि ध्रियताम्

॥ १६ ॥

यथा मघा इह मधु न्यञ्जन्ति मघावधि ।

एवा मे अग्निना वर्षेस्तेजो बलमोक्षम ध्रियताम्

॥ १७ ॥

यद् गिरिषु वर्षतेषु गोष्पक्षेषु यन्मधु ।

सुरापां सिच्यमानायां यत् तत्र मधु तन्मयि

॥ १८ ॥

अग्निना सारधेयं मा मधुनाक्कं शुभस्पती ।

यथा वर्षेस्वतीं वार्षमावदानि सन्तो अनु ॥

॥ १९ ॥

स्तनयित्वस्ते वाक् प्रजापते इया ह्यर्म्म क्षिपसि मूर्म्यां विधि ।

तां पृथग् उप जीवन्ति सर्वे तेनो सेवमूर्धं पिपति

॥ २० ॥

अर्थ— हे अग्ने ! ( मा वर्षेसा ) मुझे तेजसे ( मघावा वायुपा ) मघाके बीर वायुसे ( स तं सं प्रख ) समुक्त कर । ( अथ मे देवाः विद्युः ) इस मुझे सब देव जानें ( अग्निमीःसह इन्द्रो विद्यात् ) ऋषिबोके साथ इन्द्रजी मुझे जानें ॥ १५ ॥  
( यथा मधुकृतः ) जैसे मधुमक्षिकवां ( मघो भवि ) अपने मधुमें ( मधु संमरन्ति ) मधु संचित करती हैं, हे अग्निदेवो ! ( एवा मे ) इस प्रकार मेरा ( वर्षा ) ऐसा वर्षे जोज ( च ) आप ठेक वक्त बीर बीरों ( ध्रियतां ) संचित हो, मघा जाय ॥ १६ ॥  
( यथा मघाः ) जैसी मधुमक्षिकार्ण ( हर्ष मधु ) इस मधुको ( मघो भवि न्यञ्जन्ति ) अपने पूर्वकीज मधुमें मंजुरीज करके हैं इस प्रकार हे अग्निदेवो ! मेरा आज तेज वक्त बीर बीरों संचित हो वदे ॥ १७ ॥  
( यथा गिरिषु वर्षतेषु ) जैसा पहाड़ों बीर वर्षोंपर बीर ( गोष्पक्षेषु यद् मधु ) पर्वों और अर्धोंमें जो नीलग्रह है ( सिच्यमानायां सुरापां ) विहित होनेवाले वृत्तिमयों ( तत्र तत्र मधु ) उसमें जो मधु है । ( यद् मधि ) वह मुझमें हो ॥ १८ ॥  
हे ( शुभस्पती अग्निदेवो ) शुभके पाकक अग्निदेवो ! ( सारधेयं मधुना मा सं भंजं ) मधुमक्षिकवति मधुके मुझे मुक्त करें । ( यथा ) जिससे ( वर्षेस्वतीं वार्षं ) तेजस्वी माय्य ( वार्षा अनु वावदानि ) कोबोके प्रति मे बोख ॥ १९ ॥  
हे ( प्रजापते ) प्रजापतको ! ( इया ह्यर्म्म क्षिपसि ) ऐसी वाक् स्तनयित्वुः ऐसी वाक्नी भक्षणमेवा है, ( मूर्म्यां विधि ) भविष्यत आर मुझमें ( शुद्धं क्षिपसि ) बककी वर्षा करता है, [ तां सर्वे वधवाः उपजीवन्ति ] हमपर वह मधुमूर्धनी कीदिका होती है । बीर [ तेन उ सा हर्षं कर्म पिपति ] हमसे वह वक्त बीर वक्तव्यके रसकी पूर्णता करती है ॥ २० ॥

भावार्थ— हे देव ! मुझे तत्र मघा और बीरों वायुसे मुक्त कर । देव इन मेरे अतिविधिको जानें और ऋषि जी समझें ॥ १५ ॥  
जिस प्रकार मधुमक्षिकवां अपने मधु रत्नमें रत्न रत्नसे मधु इकट्ठा करक भर देती हैं वक्त वधवा मेरे अन्तर हृदय त्र वक्त और बीरों संचित हो अये ॥ १६ ॥

जैसा मधुमक्षिकवां अपने मधुरत्नमें स्पन्द रत्नमय मधु इकट्ठा करक भर देती हैं वक्त वधवा मेरे अन्तर हृदय त्र वक्त और बीरों संचित हो अये ॥ १७ ॥  
हे देव ! मुझ तम मधुमक्षिकवोंके मधुत मधुत अग्निदेव । जिसमें मैं वह मीठाका का बंधन कर्त्तुन कर्त्तुन वाक् वरुणका ॥ १८ ॥  
तत्र तत्र मधु । तू वक्तव्य है और तेजस्वी है ऐसी वाक् है । गृही पुमान्को भूते, कृतक वक्तव्य वही करता है वक्त ( यथा मधु ) त्र वक्त वक्त है । वह वक्त और वक्त हृदय वक्तव्य वक्त हो ॥ १९ ॥

पुषिषी दुग्धोऽन्तरिक्षं गर्भे यौः कक्षां निधत् प्रकृषो हिरण्ययो विदुः ॥ २१ ॥

यो वै कक्षायाः सप्त मधुनि येषु मधुमान् भवति ।

प्राङ्मणश्च राक्षो च धेनुर्मानहर्षाश्च ग्रीहिश्च येषश्च मधुं सप्तमम् ॥ २२ ॥

मधुमान् भवति मधुमदस्याहर्षे भवति । मधुमतो लोफान् जयति य एव वेद ॥ २३ ॥

मधु वीधे स्तनयति प्रजापतिरेव तत् प्रजाभ्यः प्रादुर्भवति ।

तस्मात् प्राचीनोपवीतस्तिष्ठे प्रजापतेऽनु सा पुष्प्यस्वेति ।

अन्वेन प्रजा अनु प्रजापतिर्पुष्प्यते य एव वेद ॥ २४ ॥ (२)

अर्थ— [ पुषिषी दुग्धः ] पुषिषी दुग्ध है [ अन्तरिक्षं गर्भे ] अन्तरिक्ष मध्यमाग है [ यौ कक्षा ] युक्तो कक्ष है, [ निधत् प्रकषः ] निधत्ती उसके बाधे हैं और [ हिरण्ययो विदुः ] सुवर्णमय विदु है ॥ २१ ॥

[ यो वै कक्षायाः सप्त मधुनि वेद ] जो इस कक्षाके सात मधु पावता है वह [ मधुमान् भवति ] मधुवाला होता है । [ प्राङ्मणः च राक्षो च ] प्राङ्मण और राक्षो, [ धेनुः च मानहर्षा च ] गाय और बैल [ ग्रीहिः च यवः च ] चावल और जौ तथा [ मधु सप्तके ] सातवां मधु है ॥ २२ ॥

[ यो एव वेद ] जो यह जानता है वह [ मधुमान् भवति ] मधुवाला होता है [ मय आहाय मधुमन् भवति ] उसका सब समग्र मधुयुक्त होता है । और [ मधुमतो लोफान् जयति ] मीठे कोकोंको प्राप्त करता है ॥ २३ ॥

[ य एव वेद स्तनयति ] जो आकाशमें गर्जना होती है, [ प्रजापतिः एव तत् ] प्रजापति हि वह [ प्रजाभ्यः प्रादुर्भवति ] प्रजाओंके लिये, मानो प्रकट होता है । [ तस्मात् प्राचीनोपवीतः तिष्ठे ] इसलिये हमें आगमें बस कर रहा होता हूँ हे [ प्रजापते ] प्रजापाक इंकर । [ सा अनु पुष्प्यते ] मेरा स्मरण रहो । [ यो एव वेद ] जो यह जानता है [ एव प्रजा अनु ] इसके अनुकूल प्रजापति होती है तथा इसको [ प्रजापतिः मधुपुष्पति ] प्रजापति अनुकूलतापूर्वक स्तनयने रहता है ॥ २४ ॥

भावार्थ— भूमि दृष्ट अन्तरिक्ष मध्यमाग युक्तो कक्ष के सात और निम्नोक्त मूत्र बाध हैं और इस पर सुवर्णक विदु मूत्रके बरब है । यह मीठा विषय है ॥ २१ ॥

जो इस मीठे सात मीठे रूप जानता है वह मधुर बनता है । प्राङ्मण क्षत्रिय पान बैल चावल और जौ और यव वसिष्ठ है । मीठे के सात मीठे रूप हैं ॥ २२ ॥

जो इस बातको जानता है वह मधुर होता है मधुवाला होता है और मीठे स्वाद प्राप्त करता है ॥ २३ ॥

जो आकाशमें बजना होता है मानो वह परमेश्वर सपूर्ण प्रजाओंके लिये प्रकट होकर उपदेश करता है । इस समय सोप ऐसी गर्जना करे कि हे वेद । हे प्रजापाक । मेरा स्मरण करे सुप्त व मूत्र का । जो इस प्रकार प्रार्थना करता जानता है प्रजाजन उसके अनुकूल होते हैं और प्रजापाक परमेश्वर भी उसका स्मरण पूर्वक भना करता है ॥ २४ ॥

### सात मधु ।

इस कृष्णमें विवेक कर लीधी महिमा वर्णन की है । इस मूत्रका भावार्थ विचारपूर्वक पढ़नेसे वाटक स्वर्ग दृष्ट मूत्रमें वही गोमहिमा जान सकते हैं । वेदनी इतिथि यौधामहर्ष कितना है, वह वात इस मूत्रके प्रत्येक भ्रममें सुवाच रहित । रक्षाही है ।

यह जो ईर्ष्य वसन्तका सार है वह वृद्धी आप तेज वायु आकाश और प्रकाश का सार है । मूत्र मीमे मयूत रग है निवहा पान करनेसे सब प्रजाजन आसीरित और तृप्त होत हैं । इसका दूध मानो ईर्ष्य मयूत के बराबोका बीज ही है



यही तबका प्राण और यही अमृत अमृत है। विशेष मतबद्धीक मनुष्य ही इस गौत्र ग्रहणको जानते हैं और अनुभव कर सकते हैं। वह जो देवोंकी माता है और यही सब प्रजाजन्मोंका प्राण है क्योंकि इसमें अमृतका मयुर रस भरा है। जो इसका रस पीते हैं वे माने अपने अरु अमृत रस करते हैं और उस कारण वे दीर्घायुवी होने हैं। सर्वत्र अमृत रस का केन्द्र सोत इस पीके भरा है।

### अमृतका कलश ।

यह जो चरु देवोंने अपनी दिव्य कृतिसे उत्पन्न की है। उन्होंने इसके दुरधासकमें अमृतका बना रखा है। जो अपनी मैकायुता बनाता चाहते हैं वे इस चरुदर्पा अमृतको अवश्य पीने । ॥३॥ पीके स्तनोसे जो दुग्धकपी रस निकलता है वह मानो अमृत रस देनेवाला रस है ।

यह अन्नरस देनी है सब करता है मत चारण करता है, और अपने दूधसे सबको पूर करती है। येन जो इस सबका अमृत प्रकारक पुन्य होता है। जिस प्रकार सोमरस देवोंकी शिव होता है उस प्रकार गायक्य दूध मनुष्योंका शिव होने और उक्त मनुष्योंका तेज बढे । जिस प्रकार मनुष्याकल्यों पीका पीका मनु इच्छा करता है और अपने मधुरत्वमें सबका लेश करता है इसी प्रकार मनुष्योंका उचित है कि वे इस मनुष्याकल्यों अनुकरण करें और अपने अन्नरस ज्ञान तेज सब पीने और वाचस्प बनावे । शनैः सनैः प्रकल्प करमेवर मनुष्य इन बातोंका अल्प अन्नरस बना सकता है ।

पहाड़ी पर्वतों और लघु अमृतमें सर्वत्र मधु भरा है वह मधुरता भरे अन्नरस आने। इस पीके अल्प वरमेधारी अन्नरस का हि पुन्य पर मनुष्योंकी उन्नतिसे सिद्ध आगती है। यह बात स्मरण में अवश्य रखिये ।

॥४॥ मधुरताके अंत रूप इस पुन्य पर है एक मधुरता लक्षणोंमें ज्ञान रूपसे है यही मधुरता कृतिसे पराक्रमके रूपसे निरमान है इसी प्रकार जो येन वाचस्प जो और सहस्रमें भी मधुरता है। अतः जो मनुष्य वह बात जानता है वह इन बातोंसे अपनी उन्नति करता है ।

यह सब उपदेश सब प्रजाजन्मोंके दिया है अतः पाठक इसका स्मरण रखे और इस बात सहस्रोंसे अपना सब बचावे । इन लूचका वह आसव स्पष्ट है अतः अधिक शिव न करनेकी आवश्यकता नहीं है ।

# काम ।

[ २ ]

( श्रुतिः—अथर्षा । दयता-कामः )

सपत्नहर्नमृपम धृतेन कामं शिक्षामि इतिपाज्येन ।

नीचैः सपत्नान् समं पादय स्वमभिष्टुतो महता धीर्येण

॥ १ ॥

यन्मे मनसो न प्रिय न चक्षुषो यन्मे यमैस्तु नाभिनन्दति ।

तद् दुष्पण्यं प्रति मुञ्चामि सपत्ने कामं स्तुत्वोद्बुद्धं मिदयम्

॥ २ ॥

दुष्पण्यं कामं दुरितं च कामाप्रजस्तामस्वगतमर्वातिम् ।

उग्र ईर्ष्याः प्रति मुञ्च तस्मिन् यो भ्रुस्मर्पमहृणा चिकित्सात्

॥ ३ ॥

नुदस्व कामं प्र शुदस्व कामावर्तिं यन्तु मम ये सपत्नाः ।

तेषां नुचानामधुमा तमास्पन्ने वास्तुनि निर्देह त्वम्

॥ ४ ॥

श्रुति—[ सपत्नहर्नमृपम काम ] सपत्नी काय करनेवाक वचनान काम को मैं [ इतिपा ज्येन धृतम शिक्षामि ] इति की कर्मिसे सिद्धित करता हूँ । [ महता धीर्येण अभिष्टुतो ] वह पराक्रमसे प्रसूतित होकर [ त्वं ] तू [ मम चक्षुषो नीचैः पादय ] मेरे सपत्नीको नीचे का दू ॥ १ ॥

[ तद् मे मनसः न प्रिय ] जो मेरे मनको प्रिय नहीं है, [ तद् मे चक्षुषः प्रियं न ] जो मेरे आँखोंको प्रिय नहीं है [ तद् मे यमस्तु ] जो मेरा तिरस्कार करता है और [ न अभिनन्दति ] न मुझे आनन्द देता है [ तद् दुष्पण्यं ] वह उग्र स्वभ [ सपत्ने प्रतिमुञ्चामि ] सपत्नी के प्रति भेज देता हूँ [ नई कामं स्तुत्वा ] मैं काम की स्तुति करके [ तद् मिदयम् ] तू पर दया हूँ ॥ २ ॥

हे काम ! [ दुष्पण्यं ] तुझ दुष्पण्य [ दुरितं च ] पाप और [ अग्रस्तां ] संतान न होना ( न स्व-गर्वा ) निर्देह बनना ( अवर्ति ) आपर्षी हूँ सबको है ( उग्र काम ) बलवान् काम । तू ( ईर्ष्या तस्मिन् प्रतिमुञ्च ) घनका स्वामी है तू उग्र पर जोड़ कि ( य- अस्ताक अहृणा चिकित्सात् ) जो हम सबको पादपद विपत्तिसे बचनेका विचार कराता है ॥ ३ ॥

हे काम ( नुदस्व ) तनको दूर कर दे काम ! तनको ( प्रनुदस्व ) हवादे ( मे मम सपत्नाः ) जो मेरे सपत्नी हैं वे ( अवर्ति यन्तु ) आपर्षी को प्राप्त हों । हे काम ! ( यममा तमासि नुचानां ) पाद अन्धकारमें सेके हुए उग्र सपत्नीको ( त्वं वास्तुनि निर्देह ) तू सबको बचा दे ॥ ४ ॥

पादार्थ—काम ( संकल्प ) बड़ा बलवान है और सपत्नी काय करनेवाक व चक्का चक्के सिद्धित करना चाहिये । वह नई नीचैय प्रसूतित हुआ तो सपत्नीको नीचे करता है ॥ १ ॥

जो मेरे मन का काम इतिपाकी अधिप है का मुझ आनन्दित नहीं करता जो मेरा तिरस्कार करता है वह दुष्प स्वभ मेरे सपत्नी के प्रति भेज दे । मैं उग्र संकल्प केके द्वारा बलवान होता हूँ ॥ २ ॥

उग्र स्वभ पाप संताप न होना दारिद्र्य आपर्षी अधि मम हमारे वन सपत्नीको प्राप्त हों जो कि हमें पापमूलक विपत्तिमें बलनेका विचार करते हैं ॥ ३ ॥

काम हमारे सपत्नीको दूर हवादे व सपत्नीको विपत्ति के और कम है सपत्नी का अन्धकारमें पड़ें तब भी तनके चलोकी नया दे ॥ ४ ॥

सा ते काम दुहिते धेनुर्लभ्यते यामाहुर्वीर्यं कर्मणो विराजम् ।

तया सपत्नान् परि वृद्धिं ये मम पर्येनान् प्राणः पृथ्वी जीवेन धृमस्तु ॥ ५ ॥

कामस्येन्द्रस्य वरुणस्य राज्ञो विष्णोर्वहेन सवितुः सनेन ।

अग्नेहोत्रिण प्र पुंदि सुपरनीलम्भीष नार्यमुवकेषु धीरः ॥ ६ ॥

अर्घ्यस्यो धाक्षी मम कामं तयः कृणोतु मर्धमसप्तलमेव ।

विद्ये देवा मम नार्यं मयन्तु सर्वे देवा इवमा यन्तु म इमम् ॥ ७ ॥

इदमान्यं धृतवन्तुपाथाः कामन्येष्टा इह मादयध्वम् । कृण्वन्तो मर्धमसप्तलमेव ॥ ८ ॥

इन्द्राग्नी कामं सुरय हि मूत्वा नीचैः सपत्नान् मम पादपाथः ।

तेषां पुमानामग्रमा तमांस्यमे वास्तुन्यनुनिर्विद्ध त्वम् ॥ ९ ॥

अर्थ है काम । ( सा धेनुः ते दुहिता उच्यते ) यह धनु ठेरी दुहिता कही जाती है ( वां कर्मणः विराजं वार्यं कर्तुः ) जिस को कर्म लोग विशेष देखती जाती कहते हैं । ( ये मम ) मेरे धनु हैं वन ( सपत्नान् तथा परि वृद्धिं ) धनुओंको वसते दूर दूर है । ( एवम् ) इस धनुओंको ( प्राण पकवा जीवम परि वृद्धस्तु ) प्राण पकवा जीवम परि वृद्ध होत देवे ॥ ५ ॥

( कामस्य इन्द्रस्य वरुणस्य राज्ञो ) काम इन्द्र वरुण राजा इनके और ( विष्णोः वहेन सवितुः सनेन ) विष्णुके वरुण और सविताकी मर्यादसे तथा ( अग्नेः होत्रिण ) अग्निसे इनके ( सपत्नान् मयन्तु ) धनुओंको दूर करता है । ( इव ) जैसा ( उच्येत्तु अग्नी धीरः ) वार्यं ) वरुणों केवल्य धीर भीताको चकता है ॥ ६ ॥

( तयः कामः ) मठापी वरुणान् काम ( मम कर्मणः ) मेरा कर्मकरता है । ( मर्धं मयन्तुं एव कृणोतु ) मुझे सपत्नारहित कर । ( विद्येदेवाः मम नार्यं मयन्तु ) सब देव मेरे साथ हों ( सर्वे देवाः म इमं इव वावन्तु ) सब देव मेरे इस इवम के स्थानमें आते ॥ ७ ॥

है ( कामन्येष्टाः ) कामकी अष्ट मायवेवाके सब देवों । ( इदं धृतवन्तुपाथाः ) इस धृतवन्तुपाथके सब देवों को दूर ( इह मादयध्वम् ) यहाँ इष्टित हो जाओ और ( कृण्वन्तो मर्धमसप्तलमेव ) मुझे धनुषधन करो ॥ ८ ॥

है ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्नि । हे काम । तुम सब ( मयन्तुं हि मूत्वा ) समाप्त वधपर चढ़ेवाले होकर ( मम सपत्नान् नीचे पादपाथ ) मेरे धनुओंकी नीचे करो । ( तेषां पुमानामग्रमा तमांसि पथाणां ) ये धनु गाढ अग्रकारमें रहनेवाले हैं अर्थात् । ( त्वं वास्तुनि अनुनिर्विद्ध ) तू इनके धनुओंको बना दे ॥ ९ ॥

मायाध- सब कर्म लोग कहते हैं कि वाली काम की पुत्री है । इस वालीके द्वारा हमारे सब धनु दूर हो और सबमे प्राण पकवा जीवम होत देवे ॥ ५ ॥

जिस प्रकार अगाध समुद्रमें लौकाको धीवर प्राण चकते हैं उस प्रकार देवोंकी कृपासे मैं धनुओंको दूर मरुतम में प्रति करता हूँ ॥ ६ ॥

वरुणम मठापी काम मेरा कर्मकरता है । वह मुझे समुद्ररहित वर देव मेरे वरामी वने सब देव मेरे वरमें आर्य ॥ ७ ॥ काम विद्ये देव है ऐसे सब देव इस वरुण के अग्र इव इवम द्वारा आर्यरहित हों और मुझे धनुषरहित करावे ॥ ८ ॥

है इन्द्र अग्नि और वायु । तुम सब मेरे धनुओंकी नीचे बिना हो । ये अग्रकारमें आते और पथाण अग्नि अपने धरोध आते ॥ ९ ॥

अहि त्व काम मम ये सुपत्नां अन्धा तमांस्यर्ष पादयैनान् ।  
 निरिन्द्रिया अरसाः सन्तु सर्वे मा वे जीविषुः कृतमन्त्रनाहः ॥ १० ॥ (३)  
 अवधीत् कामो मम ये सुपत्ना उरु लोकमकरु मक्षमेघतुम् ।  
 मर्षं नमन्तां प्रदिश्वत्सो मर्षं पदुर्धीर्धृतमा वदन्तु ॥ ११ ॥  
 तेऽधराजः प्र ध्रुवन्तां छिन्ना नौरिव पथनात् ।  
 न सायकप्रशुचानां पुनरस्ति निवर्तनम् ॥ १२ ॥  
 अमिष्य इन्द्रो यत्र सोमो यवः । यवयावानो देवा यावयन्त्वेनम् ॥ १३ ॥  
 असर्ववीरधरतु प्रक्षुप्तो देव्यो मित्राणां परिवर्ग्यैः स्वानाम् ।  
 वृत्तं पृथिव्यामर्षं स्पन्ति विद्युत् उग्रो वो देवः प्र मृणत् सुपत्नान् ॥ १४ ॥  
 च्युता येप बृहत्स्यच्युता य विद्युर् विमर्ति स्तनयितृभ्य सर्वांन् ।  
 उद्यमावित्यो द्रविणेन वेमसा नीचैः सुपत्नान् जुदतां मे सईस्वान् ॥ १५ ॥

अर्थ ( ये मम सुपत्नाः ) जो मेरे सन्तु हैं, उनका ( त्वं कहि ) तू वाता कर दे । तथा ( पमान् अवमा तमांसि अव पादय ) हथको हीन अन्धकारमें गिरा दे । वे ( सर्वे निरिन्द्रियाः अरसाः सन्तु ) सब इन्द्रियरहित और रसहीन हों ( वे कृतमन्त्र अहः सा जीविषुः ) वे एक ही दिव न जीवित रहें ॥ १० ॥  
 ( मम ये सुपत्नाः ) मेरे जो सन्तु हैं उनका ( कामः अवधीत् ) काम वे क्या किया है । तथा उसने ( मर्षं पदुर्धु उर्षं कोषं अकरत् ) मुझे बहनेके छिप विस्तृत स्थान दिया है । ( यवयः प्रदिशः मक्ष ममन्तां ) चारों दिशाएँ मिले समस्तुक्त मक्ष हों । ( यद उर्षाः मक्ष पुनं जावहन्तु ) छः मूलिके विभाग मेरे पास धृत अ जावे ॥ ११ ॥  
 ( यवयाव छिन्ना नीः दृषः ) यवमक्षे कटी हुई मीकाके समान ( ये अधराजः य प्ध्रुवन्तां ) ये नीचे बहुत ऊँच ।  
 ( यवयवप्रशुचानां पुन निवर्तनं न अस्ति ) बालोंके मगाने सन्तुओंका फिर वापस आना नहीं हो सकता ॥ १२ ॥  
 ( अमिषः यवः ) अमिष हवनेवाका है ( इन्द्रो यवः ) इन्द्र हवनेवाका है और ( सोमः यवः ) सोम भी हवनेवाका है । ( यवयावानाः देवाः ) हवनेवाकेको हवनेवाके देव ( यम यावयन्तु ) इस सन्तुको दूर करें ॥ १३ ॥  
 ( प्रक्षुप्तो देवः ) भयाका हुआ सन्तु ( असर्ववीरः ) सर्ववीरोंके रहित होकर ( यवानो मित्राणां परिवर्ग्यः ) अपने मित्रोंके द्वारा भी त्यागा हुआ ( जानु ) बिचरे । ( उरु पृथिव्यां विद्युत् अवयन्ति ) और मकाय देनेवाली विद्युत्की पृथ्वीपर जावे । ( यः उग्रः देवः ) जायका वह प्रवर्ती देव ( सवत्सवः यमजन् ) सन्तुओंका नाश करे ॥ १४ ॥  
 ( च्युता य अच्युता य इषं बृहती विद्युत् ) बिचकित अथवा अविचकित हुई वह बड़ी विद्युत् ( सर्वां स्तनयितृभ्यः य विमर्ति ) सब गर्भका करनेवाकों का वापस करती है । ( द्रविणेन वेमसा उद्यम् अहरवान् आदिस ) जब और वेमके नाश करनेको प्राप्त होनेवाका यववाह सूर्य ( ये सुपत्नान् नीचैः जुदतां ) मेरे सन्तुओंको नीचे की ओर भगावे ॥ १५ ॥  
 भाषार्थ— मेरे सन्तुओंका तू वाता कर । वे सब अन्धकारमें जावे । वे सब इन्द्रियहीन और अरसीन बनें और एक दिव भी न जीवित रहें ॥ १० ॥ इस कामके मेरे सन्तु दूर हो गये और मुझे मक्ष कार्यका प्राप्त हुआ है । चारों दिशाओंमें रहनेवाले भीय मेरे कामका मम हो चुके हैं और सब पुष्पों मेरे अधिकारमें आ चुकी हैं ॥ ११ ॥  
 यवयव रहित हुई मीका किसी महाकायमें बिचर पाके अकर अकरनी है वही मेरे सन्तुओंकी प्राप्त अवस्था हो गई है या जब कभी अपनी पूर्व स्थितिमें नहीं आनकत ॥ १२ ॥ जब देव मुझे कहायता करे और मेरे सन्तुओंकी मगा देवे ॥ १३ ॥  
 इका यवयवके मगाने हुए सन्तु अब चारों ओर भटक रहे हैं य वनेके पास गई गई हैं य उनके पास कार्य मिले य वनेके सिधे चर्च करिहार रहा है । जब देव मुझ कहायता करे और सन्तु मक्ष ही ॥ १४ ॥

यत् ते कामं धर्मं त्रिवर्षमुद्रा अहं यमं विरतमनसिभ्यार्ष्यं कृतम् ।

तेन सपत्नान् परि वृहन्धि ये मम पर्येनान् प्राणः पुश्वो जीर्षनं वृषभस्तु ॥ १६ ॥

यने देवा अहुरान् प्राणदन्त येनेन्द्रो दस्यूनधमं तमो निनार्य ।

तेन त्वं कामं मम ये सपत्नास्तानस्माहोकात् प्र पुंस्व दूरम् ॥ १७ ॥

यया देवा अहुरान् प्राणदन्त येनेन्द्रो दस्यूनधमं तमो ववाभे ।

तथा त्वं कामं मम ये सपत्नास्तानस्माहोकात् प्र पुंस्व दूरम् ॥ १८ ॥

कामो वृष प्रथमो नैनं देवा आपुः पितरो न मर्त्याः ।

ततस्त्वमसि न्यायान् विश्वहा मुहांस्त्वस्मै ते कामं नम इत् कृणोमि ॥ १९ ॥

यार्वती यावापृथिवी धर्मिष्ठा यावद्दार्पः सिष्यदुर्याष्ववृषिः ।

ततस्त्वमसि न्यायान् विश्वहा मुहांस्त्वस्मै ते कामं नम इत् कृणोमि ॥ २० ॥ (४)

अथ-हे काम ! ( यत् ते त्रिवर्षमुद्रा अहं ) जो तेरा तीनों मोरसे रत्नक डकड कछिराका [ विरतं यम धर्म ] केना हुआ ज्ञान का कवच [ त्रिवर्षमुद्रा अहं ] सज्जोने देव न होने योग्य बगवान् बार [ यमं ] सुखदायक है [ तेन ] यह से [ ये मम ] जो मेरे सन्तु हैं वन [ सपत्नान् परिवृद्धि ] सन्तुओंको दूर कर । [ यवान् मायः पशवः जीर्षनं परिपुष्यति ] इनको शान पट्ट और आधु छोड़ देवे ॥ १६ ॥

[ येन देवाः अहुरान् प्राणदन्त ] जिससे देव अहुरोंको दूर करते रहे [ यम दस्यून इन्द्राः अथमं तमः निनार्य ] जिससे सन्तुओंको इन्द्रने हीन अन्धकारमें डाल दिया है काम ! [ येन ] वससे [ मम ये सपत्नाः ] मेरे जो सन्तु हैं [ यत् सपत्नात् ] वन सन्तुओंको [ त्वं वसमात् कोकात् ] तू इस ओकसे [ पुंस्व दूरम् ] दूर भगा ॥ १७ ॥

[ यया देवाः अहुरान् प्राणदन्त ] जिसरीतिसे देवोंमें अहुरोंको इदाया [ यया इन्द्राः दस्यून अथमं तमः ववाभे ] जिस प्रकार इन्द्रने सन्तुओंको हीन अन्धकारमें डाला [ तथा त्वं कामं ] इस प्रकार हे काम ! [ मम ये सपत्नाः ] मेरे जो सन्तु हैं [ यात् वसमात् कोकात् पुंस्व दूरम् ] उनको इस ओकसे दूर भगा ॥ १८ ॥

( कामः प्रथमः वृषिः ) काम राखते पहिले कवच हुआ ( देवाः पृथं न जातु ) देवोंमें इनको प्रात नहीं मिला और ( पितरः मर्त्या न ) विरतोंकी और मर्त्योंकी भी यह प्रात नहीं हुआ । [ ततः त्वं ववाभान् मसि ] तब तू देव है और ( विश्वहा मुहान् ) सदा महान् है । हे काम ! ( तस्मै ते इत् नमः कृणोमि ) उस तुझे मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १९ ॥

( यावती धर्मिष्ठा यावापृथिवी ) जिसरी विरवारसे या और पृथिवी नहीं है ( यावद्दार्पः सिष्यदुः ) तबक तक देवा है ( यावद्दार्पः ) अथवाक मसि देवा है, ( ततः त्वं ययावद् मसि ) वससे भी तू भगा है और ( विश्वहा मुहान् ) सदा भगा है । हे काम ! ( तस्मै ते ) उस तुझे मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २० ॥

माथार्थ-—यह विष्णु और वह तुम्हें अर्चान् इनम आ देव है वह मेरे सन्तुओंका दूर भगा देवे ॥ १६ ॥

इस वाक्यका क्या संछाद लाभकर वचन है वह एवं तुम्होका देनेवाला है । इनको मैं वदना हूँ जिसने सन्तुने वन भगा वह मेरी बर्तों और सब सन्तु वन पट्ट और आधुनेपरि हो जायन ॥ १६ ॥

जिस वाक्य १९ न अन्तरीका आर इन्द्रने दस्युओंका पराभव किया वन राखिते में अपने सन्तुओंको इन्द्र वचने भगा हुआ १७-१८ ॥

यम करने प्रथम वृष हुआ । देवों गितों और मर्त्योंका परत देन उनमें गया है । अन पान वचने भग है । इस निवे मे वचन लाभ करता है ॥ १९ ॥

यावतीर्विशः प्रदिशो विपूनीर्षावतीराधा अभिवर्षणा विवः ।

ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वा महांस्तस्मै ते काम नम इत् कुणोमि ॥ २१ ॥

यावतीर्मृगा अत्विः क्रूररवो यावतीर्विषा वृक्षसर्प्यो वसुधुः ।

ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वा महांस्तस्मै ते काम नम इत् कुणोमि ॥ २२ ॥

ज्यायान् निमिपुतोऽसि तिष्ठतो ज्यायान्त्समम्रादसि काम मन्यो ।

ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वा महांस्तस्मै ते काम नम इत् कुणोमि ॥ २३ ॥

न वै वारश्चन काममाप्नोति नाधिः क्ष्यो नोत् चन्द्रमाः ।

ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वा महांस्तस्मै ते काम नम इत् कुणोमि ॥ २४ ॥

पास्तं श्वास्तुन्वः काम मद्रा यामिः सत्यं सर्वति यद् वृणीषे ।

तामिधमस्मौ अमित्रविश्वस्त्रान्त्र पापीरपं वेक्ष्या विषः ॥ २५ ॥ (५)

॥ इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

जय- ( वावतीः विशः प्रदिशः विपूनीः ) अर्हातक विषाणुं और उपविषाणुं कैसी हैं और ( वावतीः विशः कामि यक्ष्यमा आधाः ) अर्हा तक मुकोकका प्रकाश कैकानेवाही विषाणुं हैं ( ततः त्वं ) जबसे तू वडा और सदा सदा है हे काम मैं तू तूको नमस्कार करता हूँ ॥ २१ ॥

( वावतीः मृगाः अत्विः ) अर्हातक लोहे, मणिवां, ( वावतीः क्रूररवः वधाः ) अर्हातक बीजों और काटनेवाले डेम् और ( वृक्षसर्प्यः वसुधुः ) वृक्षपर चढ़नेवाले सर्प होते हैं ( ततः त्वं ) जबसे तू वडा और सदा भेड है हे काम ! तू तूसे मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २२ ॥

हे काम ! हे ( मन्यो ) कस्ताह ! तू ( निमिपुतः ज्यायान् ) एकक मारने वालोंसे बडा ( तिष्ठता ज्यायान् ) अरवेवालोंसे भी बडा ( सप्तम्रादसि ) समुद्रसे भी बडा है । ( ततः त्वं ) जबसे तू वडा और सदा भेड है, हे काम ! तू तूसे मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २३ ॥

( वारः चम काम न वाप्नोति ) वातु कामको नहीं प्राप्त करता ( न अधिः क्ष्यो नोत् चन्द्रमाः ) अति पूर्ण और चन्द्र इतनेसे कोई भी इसको प्राप्त नहीं कर सकता । ( ततः त्वं ) जबसे तू वडा और सदा भेड है हे काम ! तू तूसे मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २४ ॥

हे काम ( पातं श्वाः कामः मद्राः यामिः ) जो तेरी कक्षवाणकारी और हितका करीब है ( यामिः ) तिमसे तू ( यद् वृणीषे सर्वति ) जो सचा होना है उसका ( वृणीषे ) स्वीकार करता है । ( तामिः त्वं जस्यान् कामि स विषाणुः ) जबसे तू हम सबमें प्रभेड हो और ( पापीः विषः ) पात हुदियोंको ( अन्यत्र अपवसाय ) दूर करो ॥ २५ ॥

आचार्य- त्रितया पूजनीय विस्तार है अर्हातक अत कैसे हैं अर्हातक प्रकाशकी व्याप्ति है विषाणुं अर्हातक कैसी है यक्ष्यमा अर्हातक बीजते हैं इन सबकी व्याप्तिमें कामकी व्यापकता बतकर है ॥ २ - २५ ॥

अधि मरवेवाले प्राणिनोंमें कामकी शक्ति बढकर है स्थिर वशाओंमें भी बढकर है पूजनी आप तेज वातु और आराध के भी बढी है । पूर्ण चन्द्रमा भी बढकर है अर्थात् वह काम सबसे बढकर है ॥ २३-२४ ॥

आतः हे काम ! तूय मद्र और काम जो हृदय मेरे पास प्राप्त हो और वापतुधि मुझसे तुज जन्मी आप ॥ २५ ॥

३ ( न छ मा. का ५ )

### संकल्पशक्ति ।

इस सूक्तमें ' काम ' शब्द है वह ही सर्वशक्ति विभवका नायक नहीं है परंतु संकल्पशक्तिका नायक है । वह काम अपने प्रथम स्वरूप हुआ है ऐसा इस सूक्तके निम्नलिखित मंत्रमें कहा है—

कामो ज्यो प्रथमः । ( मं १९ )

काम सबसे पहिल प्रकट हुआ । ' वहीं बात धर्ममें अन्वयन करी है—

कामस्तद्धम समवतथापि समतो रैताः प्रथमं वदासीत् ।      अ. १ । १९९ । ४

आरंभमें मतका बीजे बनावेबाला काम सबसे प्रथम स्वरूप हुआ । इस प्रकार कामकी उत्पत्ति सबसे प्रथम करी है । वह निचरोंमें भी फैलै—

कामः संकल्पो विचित्रिण्या अज्ञाऽअज्ञा पतिरहसि हीर्षीर्भातिस्तेतरसर्षं मय दृष ॥      इ. अ. १ । ५ । १

काम एक चरकाचलनं हृत्पथं मोको मको उजोतिः । य दृष्टार्थं काममयाः पुण्याः ॥      इ. अ. २ । ९ । ११

कामोऽधर्माकाह करोमि कामा करोमि, कामाः कर्ता, कामाः कारयिता ॥      महाभारत अ. १८ । २

याम संकल्प विचित्रिण्या अज्ञा अज्ञा पति अयुति नहीं ( कज्जा ) थी ( दुर्बि ), भी ( मय ) वह लय गनमें रहता है । इस लयमें जो पहली महीरे है वह धामकी महती है । काम सबसे आचरण्याय है वहका ठेक लगी और हरवका है । वह मनुष्य काममय है अर्थात् जिस प्रकार वह इसके काम होते हैं वैसा वह बनता है । याम ही लय बना है मैं बनो नहीं हूँ । कामके द्वारा वह सब बनाया जाता है । " इस रीतिसे कथनिकारोंमें कामके विषयमें कहा है । कामका मय संकल्प है वह बात स्पष्ट हो गई है । वह संकल्प अज्ञा हुआ ही मनुष्यका मका होता है और पुरा हुआ । पुरा जाता है । वह पुरा का या मका हो इसमें कही मारी शक्ति रहती है । कामो कर्तृ मनुष्य हीर्षीर्भातिस्तेतरसर्षं मय दृष पुरा मका कर्म कर रह है । वह मयका व्यवहार देखनेसे कहना पड़ता है कि इस धाम-संकल्प-की कति बहुत ही बड़ी है । यही धामका मयम इस सूक्तमें किया है ।

अन्यदे प्रारंभमें धार्याक अन्तर काम दिया मरणा उत्तरक हुआ इसका दर्शक कथनिकारम यह है— अज्ञानम ( म. अ. १ । ९ । ४ से अ. २ । ९ । १ ) जब अज्ञान कामका की ओर कचपी कामका चिह्न हुई जिससे लय लय मिलन हुआ है । प्रथम मन्त्रे संकल्प ह्यहं य अना ने किया हा मने । जिसके संकल्प ह्यहं होने हैं वहके लय संकल्प मिलने हैं अ. १ कहा है—

यं य कामं कामकरो मो एव सत्कृताश्च समुत्पिपति ।      अं. अ. ८ । ९ । १

य कामका कर । है वह सत्कृतादान ही चिह्न हा कामी है । वह सत्कृतादान बन है । इस कर्तृ लयकी लयकी ही कर्तृ हा मई है । मनुष्यकी कामकायें भी वह लय अन्तर आये है । इसीका प्रथम इस सूक्तमें दिया है । वही लय कामकी ही प्रकट शक्ति है । अन्तर ही प्रकट श्रुतिछाये मुख का या कहिये अना कहा है—

आत्मार्त्तं कर्त्तव्यं कामं हविषा पिधामि । ( अं. १ )

अज्ञा का मय प्रमेयना समवतथापि है समका वचन पिधामि करता हूँ । इस कामकायें— इस लयमें जो लय है वह मय का लय ही है हा लय ही अना । समका पिधामि केकर काम निवम अन्तराये मयकायें लय है । य पिधामि अना बना है । पिधामि वचन है वने अर्थात् आत्मनमर्त्तमे— जानी है । हविषा मयकी लयकी लय है । य लय का मयार्त्त है लय है लय मनुष्यकी आत्मनमर्त्तम करता या है । आत्मनमर्त्तम की लयकी लय है लय का लय है । य है । इस रीति में लय ही हुआ यह लय [ महती हीर्षी ] वने हीर्षी-मयकायें लय है । लय का लय है लय का लय है लय का लय है लय का लय है ।

य न मयका मयिष्य य कामाः कामे कामिनमर्त्तम । ( अं. ९ )

“ जो मनको और बाह्यको मित नहीं होता है और जो अन्य इशियोंको भी आग्रिण होता है, जो अपने आत्माको स्तोत्र नहीं देता । ” उसको दूर करना इसी अक्षिप्त आत्मसे होता है । इसीसे [ आई अर् धिरेर् ] अपने ऊपरका दबाव हटाकर स्वयं मेहनत करके अपनी स्वयं अवस्था की जा सकती है । वह सब मनुष्य के प्रकृत्यसे प्राप्त होनेवाली बात है । परन्तु वह सब होगा जब कि मनुष्यको कामना अक्षिप्तामुक्त होगी अन्त्यवा यही प्रवचन साक्षि इसका मांस करेगी ।

[ कर्मः सप्तः ईशान ] काम तथा सप्त अर्थात् प्रतापी है और वह ईश्वर है अर्थात् मनुष्यकी सविस्मृतताका वह स्वामी है । क्योंकि मनुष्यका मूल सक्ति वर्तमान नहीं रहता है । ऐसा यह बताया है वैसी मनुष्यकी स्थिति बनती है । अतः इसका महान् नाना मारी है । इसका ऐसा निष्कर्ष प्रमाण है इसी विषये इसकी उदाहरणसे मनुष्य निःस्वार्थ अर्थात् प्रमाण कर सकता है—

इति चमत्कृतं अ-स्व-मार्तं अर्थात् मुक्त । [ सं ३ ]

‘ पाप संतान न होना, विपत्ति और विपत्ति इनको दूर कर सकता है । ’ मनुष्यकी भी यही इच्छा हुआ करती है । कोई मनुष्य नहीं चाहता कि मुझे पाप कहे संतान न हो, बारिज मेरे पाप आत्मा और मैं विपत्तिमें रहता रहूँ, ऐसा कोई भी नहीं चाहता । परन्तु ये सर्व विपत्ति मनुष्यको मोहनी पड़ती है इसका कारण यह है कि मनुष्यको कामना अक्षिप्त होती है वह विपत्ति संकल्प करती है और उसका उक्त विपत्ति रूप कहे मोहना ही पड़ता है । इस कामकी पुत्री वाणीस्वी मेनु है इसका वर्णन इस प्रकार है—

ते दुरिता मेनुः नो कवयो वाक् आहुः । [ सं ५ ]

‘ कामकी पुत्री एक मेनु है जिसको कवि लोग वाणी कहते हैं । वह वाणी भी कामके सन्तान ही नहीं प्रभावशालिनी है । वह यह वाणी लतम रीतिसे मनुष्य की गई तो वाजु मित्र बनने हैं और यदि दुरी तरहसे इसका प्रयोग किया गया तो मित्र वाजु होते हैं । इसलिये काम को अक्षिप्त करके काम वाणीको भी शिक्षित करना अत्यन्त आवश्यक है, वह बात मनु मन्त्रिण ही है ।

कर्मः वाजी कामः मम अन्त्यः मही जसपत्नी कुमोतु । [ सं ७ ]

‘ प्रतापी, अन्त्य काम मेरा अन्त्य है वह मुझे अनुग्रहित करे । ’ अर्थात् वह काम किना संकल्प हर एक मनुष्यको अक्षिप्त है । अक्षिप्तता यह होता है कि जो संतान प्राप्त हुआ मित्र बनकर जाता है । यही कामका कार्य है । वह मनु-मन्त्रिण वाक्पत्नी का अक्षिप्तता होकर मित्र बनकर जाता है । यदि अक्षिप्तता अक्षिप्त हुआ तो अच्छी उदाहरण होती है और यदि दुरा दुरा तो हीन प्रवृत्ति करता है । अतः मार्त के जाया है जिसका परिणाम कारण होता है । इसलिये मार्त का है कि—

विश्वे देवा मम मार्तं अन्त्यः । सर्वे देवा मम इवमात्मन् । [ सं ७ ]

‘ सब देव मेरे अन्त्य कर्म सब देव मेरे अन्त्य स्वीकार करें । ’ इस प्रकार देवी के द्वारा मेरी उदाहरण होती रही तो विश्वदेव मेरी कामना अक्षिप्त होती और मेरी उचित हो जायगी । अतः वह मेरी मार्त का सब देव सुम और दुरा करके मेरा दुरा करे । ये देव ‘काम-अन्त्यः’ अर्थात् हममें काम ही भिन्न है सब देवोंमें वह काम देव सबसे भेद है । क्योंकि जगत् रचना करने में सब देव उदाहरण करते हैं । परन्तु परमात्मा काम-संकल्प-अन्त्य काय नहीं कहता तबतक कोई अन्य देव रचना के कार्य में अपने अन्त्य नहीं बना सकते । यह कामका महत्त्व है । मनुष्यके अन्त्यकार्य में भी देवोंके सबसे अधिक उदाहरण होता है तबतक काम ईश्वरकार होता है । इसीलिये सर्वत्र कामका-संकल्प-अन्त्य नवीन किया है । जीवात्मा परमात्मा तथा अन्त्य काम देवीके पाप संकल्प होता है । वह देवसे अधिक सब देवीमें काम भिन्न ऐसा है वह जान सकते हैं—

परमात्मा	जीवात्मा
काय संकल्प [ अक्षिप्तता ]	काय, संकल्प
महत्त्व	दुरि
अन्त्यः	अन्त्य
देव	विपत्ति
सर्व	मित्र



आयु  
जमि  
काम

प्रथम  
बाणी  
दीर्घ

इस रीतिसे सब देशोंका अधिष्ठाता काम है। शरीरमें जो देह है वे विषयके देशोंके सुख मंजहरी हैं अतः दोनों जायें दोनों सर्वत्र एक देहा ही है। देहा संकल्प होता है ऐसे अन्तर्गत देह शरीरमें तथा अणुमें अणुवृत्ततासे कार्य करते हैं। अपने अनुभव पावे और मेरा विषय अणुमें होने लगी सबकी भावना सर्वसाधारण होती है अतः कहा है—

अवधीकामो मम ये सपरमाः । उर्ध्वं कोकमकारमग्रमेवमुत्तमम् ।

मर्धा वामर्धा मधिराजतको मर्धा बहुवर्धुतमा बहुन्तु ॥ ( मं ११ )

सकल्पके अनुबोधका भाव करता है संकल्प हि कदा करके किए विस्तृत कार्यक्षेत्र देता है। सकल्पके हि बायो विचार अनुभवके सामने बन होती हैं और संकल्पके हि सब भूयसेछोटे वृत्तानि अन्तर्गीत प्राप्त होते हैं । यदि किसी संकल्प हि इस प्रकार मर्धा किया तो उपरका कवा होगा । पाठक निवार की दृष्टिसे अणुमें देखें तो समझे स्पष्ट दिखाई देता कि इस अणुमें अणुवृत्ततामें सर्वत्र काम की ही प्रेरणा हो रही है हरएक कार्यके पीछे काम होता है, यदि किसी स्वाभिवर काम म रहा तो कोई कार्य बनता नहीं। अतः इस मंत्रमें कहा है कि जो भी कुछ इस अणुमें बन रहा है कामकी प्रेरणासे हि बन रहा है।

पूर्वोक्त कोकामें दर्शाया है कि अग्नि इन्द्र सोय अथवा अन्य सब ये सब कामकी प्रेरणासे कार्य कर रहे हैं उनके प्रतिनिधि बायो मम और मित मे भी संकल्पसेहि अपने अपने कार्यमें प्रेरित हो रहे हैं। इसी रीतिसे ( अग्निः कवा ) अग्नि अनुभूत करता है अन्य देवभी अनुबोधों पर करते हैं वह सब पूर्वोक्त रीतिसे हि समझना चाहिये।

कामका कथन ।

वह काम एक ऐसा कथन प्रकटता है कि जिसके अनुबोधका भावना अपने अन्तर अन्तरमें लगी देखिये—

करो काम समं विषयकचक्षुः प्रक्षाल्य विषयमवशिष्याध्वं कृतम् । ( मं १२ )

वह कामका एक निष्कर्षण कथन है जो तीनों क्षेत्रोंमें उत्तम रहा करता है इससे ( अर्थ—अतिशक्ति ) अनुबोध के अन्तर्गत अपने अन्तर नहीं कथना वह ( प्रकाश ) कामका कथन है। इस प्रकाशमेंका वर्णन इससे पूर्व इसी कथनमें किया है अतः के प्रथम मंत्रमें आया है। वहाँ की व्याख्यायें इसका वर्णन पाठक अवश्य देखें।

वह काम [ प्रथमः कथे ] सबसे पूर्व उत्पन्न हुआ इसके बाद अन्य देह आग कहे हैं अतः अन्य देह इससे प्राप्त कर नहीं सकते। जो इससे पूर्व हो अथवा वर्ण हुए होने अन्तर्गत हम अथवा प्राप्त नहीं कर सकते। इसी प्रकार काम की अन्तर्गत पहिले और अन्य देहोंकी बाद होनेसे अन्य देह कामको प्राप्त नहीं कर सकते वह निष्कर्षण ठीक है। अतः कहा है—

कामो अग्र मयमो नैव देवा आधुः पितरो न मर्त्या ।

उपस्थमस्मि स्वाभाव्य विवहा महात्मा । [ मं १३ ]

“ काम सबसे पहिले उत्पन्न हुआ अतः इसकी देह प्राप्त नहीं कर सकते और पितर अथवा मर्त्य भी नहीं प्राप्त कर सकते, क्योंकि पितर और मर्त्य ही देहोंके पञ्चाङ्ग अणु है। इस कारण वह काम सबसे अग्र और अग्र है इसकी अणु अणु सर्वत्र स्थिर रहनवाली है। अतः इसका सामर्थ्य सर्वत्रोपरि है।

आगे मंत्र २१ के २४ तक के बार मंत्रोंमें काम सबसे अग्र है वही बात कही है। उपर्युक्त वराणोंके विवरणोंके अन्तर्गत सबसे अग्र अणु है। पंचमहाभूतोंके उपस्थानोंके पूर्व और अन्तर्गत तथा सब अणुओं, काम अग्र और अग्र है। अतः अन्तर्गत मंत्रमें प्रतीता वह है कि—

वास्तं शिवास्तम्य काम मर्धा पामिः शर्वं भवति वत्तुनीये ।

वाभिर्हमस्मो आभि उदिसद्वान्मय पावीरप देवता विवा । [ मं २४ ]

“ कामके अन्तर अणुम और अन्तर्गतवाणी जाग है जिससे सब सब की सिद्धि होती है वह अणु माय के अन्तर अणु आग और आकाशका माग है वह वृत्त है। सकल्प एक वही भावी वाचि है अथवा पावनी होना और अनुबोध । इस अणु मनुष्य का भावना है कि वह तथा विषयकथन करे और पाप उपस्थित हो रहे। इस रीतिसे अनुभव अपनी भावना बन करके तथा अन्तर्गत के वत्त अन्तर का अणु है ॥

# गृहनिर्माण ।

( ३ )

( ऋषिः—मुग्धगिरिः । देवता—शाला )

उपमितां प्रतिमितामथो परिमितामृत । शालाया विष्ण्वाराया नृद्वानि वि श्रुतामसि ॥ १ ॥

यत् ते नृद्व विष्ण्वारे पाशो ग्रयिष्य यः कृत ।

बृहस्पतिरिष्टाहं बलं वाचा वि स्रंसयामि तत् ॥ २ ॥

आ यमाम स यमई ग्रन्थीष्यकार ते वृद्वान् । परैपि विद्वांस्तुषेन्नेत्रेण वि श्रुतामसि ॥ ३ ॥

वृद्वानां ते नईनानां प्राणाहस्य तृणस्य च । पृथ्वी विष्ण्वारे ते नृद्वानि वि श्रुतामसि ॥ ४ ॥

सुवृद्वानां पलवृद्वानां परिस्वस्त्वयस्य च । इदं मानस्य पत्न्या नृद्वानि वि श्रुतामसि ॥ ५ ॥

अर्थ—( विष्ण्वाराया शालायाः उपमिता ) सब सबके मित्रारक वरके स्वर्गों ( प्रतिमिता ) स्वर्गोंके ओठों ( यथो वत् परिमिता ) और उत्तम वंशोंके ( नृद्वानि वि श्रुतामसि ) ग्रंथियोंके हृदय बांधते हैं ॥ १ ॥

हे ( विष्ण्वारे ) सब ब्रह्मोंका मित्रारण करनेवाके वर ! ( यत् ते यत् ) ओ देवा बन्धन है [ यः पाशः प्रमियः च कृतः ] ओ पाश और ग्रंथि पहिने किए हैं ( बृहस्पतिः वाचा बलं ह्य ) बृहस्पति अपनी वाणीके द्वारा जित्ता ब्रह्मसैन्यका नाश करता है उस प्रकार ( तत् विस्मययामि ) सबको मैं ओढ़ता हूँ ॥ २ ॥

( वाचयाम ) इच्छा किया ( स यमई ) ओढ़ दिया और [ ते वृद्वान् वीचीय चकार ] तेरे बाँटोंको सुख कर दिया है । ( परैपि विद्वांस्तुषेन्नेत्रेण ) ओठोंको जाब कर कारनेवाके समान ( इन्द्राय विष्ण्वामसि ) इन्द्रकी सहाय गये हम बाँध देते हैं ॥ ३ ॥

हे ( विष्ण्वारे ) सब ब्रह्मोंका मित्रारण करनेवाके वर ! ( ते वृद्वानां नृद्वानां ) तेरे वंशों जात वंशों तथा ( प्राणाहस्य तृणस्य च ) ओठों और घासका तथा ( ते पलवृद्वानां नृद्वानि ) तेरे दोहों ओरके वंशोंको ( वि श्रुतामसि ) मैं बाँधता हूँ ॥ ४ ॥

( मानस्य पत्न्या ) प्रमत्त करनेवाकेके द्वारा पाकित हुए वरके ( सुवृद्वानां पलवृद्वानां ) कैचियोंके और बड़ाह्वयके ( च परिस्वस्त्वयस्य ) तथा विजालरवानके ( इदं नृद्वानि विष्ण्वामसि ) हृदय प्रकारके वंशोंको मैं बाँधता हूँ ॥ ५ ॥

आचार्य बहुत बड़ीको बुर करमेके लिए वर बनावा जाता है । उस वरके लीनों सहारोंकी कछियों की कंचियोंकी तथा कपड़ोंकी कछियोंकी हम उत्तम रीतिसे लगत जोड़ देते हैं ॥ १ ॥

ओ वंश और ग्रंथियाँ तथा ओ और पाश पहिने बांधि ये सबको मैं धन डँका करता हूँ । जिस प्रकार दावी अपनी बाध्यते ब्रह्मसैन्यको हीन बना देता है ॥ २ ॥

पहिले हम कामना इच्छा किया सबको बनावाना ओढ़ दिया । सबके ओढ़ बडे मजबूत किये । ओढ़नेके स्वामीको तथा वीरव रीतिसे बाटनेका ज्ञान विद्यको है सबके समामधि बाटा और सबको प्रमुखके साथ बाँधा है ॥ ३ ॥

वरके बाँटों वंशों बाँटके समान नाश और दोहों ओरके वंशोंकी बाँध रीतिसे मैं मजबूत बाँध देता हूँ ॥ ४ ॥

प्रमाणके बंधे हुए इध वरके कैचियों चटाईयों और आन्तरिक स्वामीके सब वंशोंकी मैं अच्छी प्रकार बाँधना हूँ ॥ ५ ॥



या द्विपक्षा चतुष्पक्षा पदपक्षा या निर्णीयते ।

अष्टपक्षा दशपक्षा द्वादश मानस्य पत्नीभिर्गर्भे भुवा क्षये ॥ २१ ॥

प्रतीचीं स्वा प्रतीचीनः द्वादशे प्रैम्पहिंसरीष । अग्निर्षीन्तरापमर्तस्य प्रथमा द्वाः ॥ २२ ॥

इमा मापः प्र मराम्ययस्मा यस्मन्नाक्षनीः । गुहानुप प्र सीदाम्यमृतेन सुहाप्रिना ॥ २३ ॥

मा नः पाक्षं प्रति भुवो गुरुम्रोरो सुधुर्मैष । कर्षूमिष स्वा द्वादशे यत्रकर्म मरामसि ॥ २४ ॥

प्राच्यां द्विषः द्वादशाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाश्वेभ्यः ॥ २५ ॥

दक्षिणाया द्विषः द्वादशाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाश्वेभ्यः ॥ २६ ॥

प्रतीच्यां द्विषः द्वादशाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाश्वेभ्यः ॥ २७ ॥

उदीच्यां द्विषः द्वादशाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाश्वेभ्यः ॥ २८ ॥

पुष्यायां द्विषः द्वादशाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाश्वेभ्यः ॥ २९ ॥

ऊर्ष्यायां द्विषः द्वादशाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाश्वेभ्यः ॥ ३० ॥

द्विषोर्विषः द्वादशाया नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाश्वेभ्यः ॥ ३१ ॥ (८)

अर्थ—[ या द्विपक्षा ] जो दो पक्षवाली । या चतुष्पक्षा पदपक्षा विनीयते ] और जो चार तथा छ पक्षोंवाली बनायी गयी है [ अष्टपक्षा दशपक्षा ] आठ पक्षों तथा दसपक्षोंवाली [ मानस्य पत्नीं द्वाकां ] प्रभावसे मानसैवकेद्वारा प्रमित पक्षका [ गर्भः अग्निः इव ] गृहस्थानमें स्थित अग्निके समान नि [ आश्वे ] आश्व केरा हैं ॥ २१ ॥

दे द्वादशे । [ प्रतीचीनः ] पश्चिमकी ओर मुक करकेवाका में [ प्रतीचीं अहिंसरीं स्वा नमि ] पश्चिमामिमुक करी और न हिंसा करनेवाली द्वादश पक्षाके पास में जाता है । [ अग्निः आश्वः च जस्यः ] अग्नि और अश्व जस्य हैं जो [ अजस्य प्रथमा द्वाः ] पक्षके पहिले द्वार हैं ॥ २२ ॥

[ इमाः अथइमाः पदममाक्षनीः मापः ] ये रोगरहित रोगनाशक एक [ प्रमरामसि ] आकामें मरता हैं । [ सुहाप्रिना प्रमिषा सह ] एक और अग्निके साथ [ गुहानुप यत्र य सीदामि ] चरके में नि में जाता है ॥ २३ ॥

दे द्वादशे । [ माः पार्श्वे मा प्रविमुखाः ] हमपर बाध न होकर [ मुका माराः कर्षुः मयः ] बड़े भार को हलका करने वाली हो । [ कर्षु इव ] कर्षूके समान [ स्वा नमः कर्म मरामसि ] तुझे इच्छाके अनुसार भर देते हैं ॥ २४ ॥

[ द्वादशायाः प्राच्या दक्षिणायाः ] चरकी पूर्व और दक्षिण [ प्रतीच्या उदीच्याः ] पश्चिम और उत्तर [ पुष्यायाः ऊर्ष्यायाः ] शुभ और कर्ष [ द्विषोर्विषाः ] द्विषा और कर्षादिनामके [ महिम्ने नमः ] महिमामें किये मरामकार हो तथा [ स्वाश्वेभ्यः देवेभ्यः स्वाहा ] अश्वय नमन करने योग्य देवोंके किये [ स्वाहा ॥ सुहाप्रिना ] अश्वय प्रथमा करते हैं ॥ २५-३१ ॥

आचार्य—बहु घर दो चार कमरा, आठ वा दस कमरावाला होता है जैसा वेदमें यम सुरक्षित रहता है उसी प्रकार में रुपये आधने रहता हुआ सुरक्षित रहता है ॥ २१ ॥

चरकी पश्चिमकी ओर मुक करके चरमें मनुष्य अश्व करे । चर में अग्नि और जल नष्ट रहता आये । वे ही जो पदान ग्राह्यपदके पक्षोंके सिद्ध करनेवाले हैं । एक प्रकारका चर पक्ष मुक देखेवाला होगा ॥ २२ ॥

मरा ऐसा चर करनेवाला चरकी हीगा वहसि वह चरमें जरना चाहिये । चरमें जल और अग्नि लदा रहन चाहिये । ऐसे चरमें मनुष्य निवास करे ॥ २३ ॥

४ ( अ. छ. भा. पं. ९ )

यानि तेऽन्तः शिष्यान्व्यायेषु रूपायि कम् ।

प्र ते तानि चृतामसि शिवा मानस्य पत्नीं न उद्धिता सुने भव ॥ १५ ॥

इविर्धानमभिज्ञातं पत्नीनां सर्वतः सर्वः । मदीं देवानामसि देवि शाले ॥ ७ ॥

अधुमोपुषं वितत सहस्राष्ट विपुवति । अर्धनक्षमभिहितं ब्रह्ममा वि चृतामसि ॥ ८ ॥

यस्या शाले प्रतिगृह्णाति येन चासि मिता स्वम् ।

उभौ मानस्य पत्नि सौ जीर्षतां श्रद्धां ॥ ९ ॥

अधुर्वैनुमा गच्छताश्च ददा नृदा परिष्कृता ।

यस्यास्ते विचृतामस्यर्कमर्कं परुष्पराः ॥ १० ॥ (१)

अर्थ—( यानि ते अन्तः शिष्याणि ) जो तेरे अन्तर छोले ( रूपाय-क आवेषु ) समीपवर्तके किए हुएके अने  
हैं ( ते तानि प्रचृतामसि ) तेसे उनको हम बाँधते हैं । ए ( मानस्य पत्नी ) प्रमाथ केनेवालेके द्वारा पक्षित होनेवाली  
( उद्धिता ) ऊपर उठायी हुई ( नः त्वमे शिवा मय ) हमारे करीबके किए कल्याणकारीनी हो ॥ १५ ॥

हे ( आले देवि ) गृहकरी देवते ! ( इविर्धान ) इविष्य अथवा स्वाय ( अविशारक ) अविशारका अथवा अ  
शाला ( पत्नीनां सर्व ) जिसके रहनेवा स्थान ( सहः ) रहनेका स्थान और ( देवानां सर्व ) देवताओंका स्थान  
( पत्नि ) ए हे ॥ ७ ॥

( विपुवति ओपुषं ) आकाश रेपापर आसुपुष कय हुआ ( वितत सहस्राष्टं बर्हु ) कैसा हुआ हजारों किन्तु  
आक ( अर्धनक्ष अभिहित ) बंधा और तथा हुआ ( ब्रह्ममा वि चृतामसि ) शायसे बाँधते हैं ॥ ८ ॥

हे ( मानस्य पत्नि शाले ) प्रमाथ केनेवालेके द्वारा पक्षित कर ! ( या त्वा प्रतिगृह्णाति ) जो तुझे लेता है  
( येन च त्वं मिता जसि ) जिसने ऐसा प्रमाथ किया है, ( उभौ सौ ) दोनों ने ( श्रद्धां वीरतां ) बुद्धावरणाक कीजिए  
॥ ९ ॥

( अर्धनक्ष ) जिस ठेरे ( अर्धं अंग पक्ष वदा ) प्रारवक अंग और प्रत्येक ओर ( अविचृतामसि ) इनके अन्त  
वनाया है वह ए ( अष्टम ददा नृदा परिष्कृता ) वहाँ सुरक्ष की हुई और सुसिद्ध होकर ( यम अनात्मकार )  
हमसे वाम था ॥ १० ॥

भाषा— परके अन्तर की छोटी रथी है जिसपर एक देवताके पदार्थ मरकर रहे हैं उनको हम उत्तम रीतिसे बाँधते  
हैं । इस प्रकार वहाँ वह कथ शाला हमारे करीबको पुन्य देवताकी हो ॥ १५ ॥

परके अन्तर आगवक स्थान हवयवा कमरा कीबोका बैठनेका स्थान, अथ मनुष्यकी लिए बैठने कठमेध स्थान और  
१० के लिए स्थान होने ॥ ७ ॥

कारके मानमें मृष्यके कथन दिशा देवताका हजार ध्वर किन्तुमात्र जेना हुआ आल हम उत्तम रीतिसे प्रेक्षक और  
तानवर बाँधते हैं ॥ ८ ॥

वह अन्तर्बले तथा हुआ पर है जिसने इतथ माय किया और जिसने वह वनाया ने दीर्घकाक तक कीजिए  
॥ ९ ॥

हम पररा प्रत्येक माग और हरदक पुत्रा आर्य अथर सुरक्ष वनाया है एक अथर सुरक्ष वना हुआ वह पर अपने  
आधीन होने का ॥

यस्त्वां शाले निमिमार्थं सज्जमार वनस्पतीन् ।

प्रजायै चक्रे स्वां शाले परमेष्ठी प्रजापतिः ।

॥ ११ ॥

नमस्तस्मै नमो द्वात्रे शालापतये च कुम्भः ।

नमोऽग्नये प्रचरते पुरुषाय च ते नमः ।

॥ १२ ॥

गोम्यो अर्धेभ्यो नमो यच्छालायां विजायते ।

विजायति प्रजायति वि ते पाश्चात्तुतामसि

॥ १३ ॥

अभिमुत्तच्छादयति पुरुषान् पुष्पमिः सङ्ग । विजायति प्रजायति वि ते पाश्चात्तुतामसि ॥ १४ ॥

अन्तरा यां च पृथिवीं च यद् व्यस्यस्तेन शालां प्रति गृह्णामि त इमाम् ।

यदन्तरिक्षं रजसो विमानं तत्कुम्भेऽहमुदरं क्षेत्रविश्वम् ।

तेन शालां प्रति गृह्णामि तस्मै

॥ १५ ॥

वर्ष- दे शाले । ( वः स्वा निमिमार्थं ) शिकने हुंसे बनाया और बिसरे ( वनस्पतीन् सज्जमार ) पौधोंको समझ कर बनाया, दे शाले । ( वरमेष्ठी प्रजापतिः ) वरमेष्ठी प्रजापतिने ( स्वा प्रजाय चक्रे ) तुम्हें प्रजाके किए निर्माण किया ॥ ११ ॥

( तस्मै द्वात्रे नमः ) उस कम्बेबाईको नमस्कार । ( शालापतये नमः कुम्भः ) शालाके स्वामीको नमस्कार करते हैं । ( नमो अग्नये प्रचरते ) बकनेबाईके अग्निके किए नमस्कार और ( ते पुरुषाय च नमः ) तेरे पुरुषके किए नमस्कार है ॥ १२ ॥

( नमः गोम्यो अर्धेभ्यो ) ओ शालाके दोहा है उस ( गोम्यः अर्धेभ्यो नमः ) गौनों और मोहरोंके किए नमस्कार । ( दे विजायति प्रजायति ) उत्पादक और उत्पन्नपुत्र वर । ( ते पाश्चात्तुतामसि ) तेरे पाश्चात्तुतामसि ( तेरे पाश्चात्तुतामसि ) तेरे पाश्चात्तुतामसि के हम बाँचे हैं ॥ १३ ॥

( पुष्पमिः सङ्ग पुष्पमिः ) पुष्पमिः सङ्ग पुष्पमिः और ( अग्निः ) अग्निके ( अग्न्यः छादयति ) अग्नि पुत्र रजसी है । ( दे विजायति प्रजायति ) उत्पादक और उत्पन्नपुत्र वर । तेरे पाश्चात्तुतामसि के हम बाँचे हैं ॥ १४ ॥

( यां च पृथिवीं च अन्तरा ) तु और पृथिवीके मध्यमें ( यद् व्यस्यः ) ओ बिसरत अवकाश है ( तेन ते इमां शालां प्रति गृह्णामि ) उससे तेरे इस वरके मैं स्वीकारा हूँ । ( यद् अन्तरिक्षं रजसो विमानं ) या अन्तरिक्षकोकका बीचमें परीमाल है ( तद् अहं क्षेत्रविश्वम् उदरं कुम्भे ) वह मैं सबलोकके किए उदर जैसा व्याप करवा हूँ । ( तेन तस्मै शालां प्रति गृह्णामि ) उससे उसके किए मैं इस वरका स्वीकार करता हूँ ॥ १५ ॥

वार्ता- प्रजापति पावन करनेकी इच्छा करनेवाले, उत्पन्न स्थानमें स्थिर रहनेवाले वरें करीयरने इस प्रमाणसे बनाया और वर करनेके लिये अनेक पौधोंकी काटा है ॥ ११ ॥

पृथ्वीको काटनेवाले परका उत्पन्न करनेवाले अग्निकी उत्पन्न रहनेवाले तथा अग्नि पुत्रपुत्रके लिये मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १२ ॥

यदि उत्पन्न होनेवाले वर पावे और पृथ्वीके लिये मैं नमस्कार करता हूँ । इस परका उत्पन्न बनाया हूँ ॥ १३ ॥ इस वरके अग्नि पुत्र तथा और अग्नि रहते हैं अतः इस उत्पन्नपुत्र और उत्पन्न वरके बीचोंमें मैं उत्पन्न करता हूँ ॥ १४ ॥

पृथ्वी और पृथ्वीके बीच अन्तरा है उसमें वह वर निर्माण हुआ है । इससे अन्तराजगमन मैं अन्तराजगमन करनेवाला बनाया हूँ । इस अन्तराजगमन करनेवाले अग्नि और परा होया वही मैं लेता हूँ ॥ १५ ॥

ऊर्ध्वस्वही पर्वस्वही पृथिव्यां निर्मिता मिता ।

विश्वाम विश्रुती छाळे मा हँसीः प्रतिगुह्यतः

॥ १६ ॥

वृणैरावृता पल्लदान्धसाना रात्रीं चाला जगतो निवेशनी ।

मिता पृथिव्यां विद्वसि इतिनीध पृथ्वी

॥ १७ ॥

इदस्य ते वि चैताम्यपिनदमपोर्ध्वम् । वरुणेन समुज्जितं मित्रः प्रातर्भुजितः ॥ १८ ॥

ब्रह्मणा चाला निर्मिता कविमिनिर्मिता मिताम् ।

इन्द्रादी रक्षतां चालाममूर्तौ सौम्यं सदाः

॥ १९ ॥

कुलायेऽपि कुलाय कोशे कोशः समुज्जितः ।

तत् मतो वि जायते यस्माद् विश्वं प्रजायते

॥ २० ॥ (७)

अर्थ— हे माते ! ( ऊर्ध्वस्वही पर्वस्वही ) व अथ वृणैरावृता ( पृथिव्या निर्मिता मिता ) पृथ्वीपर तत् कचर निर्माण की है । व ( विश्वाम विश्रुती ) तत् प्रकारके अथका कारण करनेवाली ( प्रतिगुह्यतः मा विनीः ) केवल-केका मात्र व कर ॥ १६ ॥

( वृणैः आवृता ) मातेके आच्छादित, ( पल्लदान्धसाना ) चन्द्रार्धसे लकी ( मिता माता ) मात की हुई मात ( रात्री इव ) रात्रीके समान ( जगतः निवेशनी ) जगत्को आत्म देवताकी ( पृथ्वी इतिनी इव ) अथम संभवती हाथिनीके समान ( पृथ्वी पृथिव्यां विद्वसि ) अथम सर्वमो-रात्री दोकर पृथ्वीपर व रहती है ॥ १७ ॥

( ते इदस्य अपिचर ) वेरी चन्द्रार्धसे अपि वृणको ( अपमूर्तम् ) आच्छादित करता हुआ ( विचितामि ) मैं लक्ष्य हूँ । ( वरुणेन समुज्जितं ) वरुणने अकसे लीपी की हुईको ( मित्रः प्रातः भुजितः ) पूर्व सवेरे लीपी व ॥ १८ ॥

( ब्रह्मणा निर्मिता माता ) हाथीने निर्माण किई हुई माताकी ओर ( कविमि मिता निर्मिता ) कविने ब्रह्मने लकी हुई ( माता ) माताकी ( अमूर्तौ इन्द्रादी रक्षतां ) अथम इन्द्र और अथि रक्षा करें । व ( सौम्यं सदाः ) सोम-वत्सलियों का वर है ॥ १९ ॥

( कुलाये अपि कुलाय ) कोलकेपर कोलका और ( कोशे कोशः समुज्जितः ) कोलपर कोल लीपा रक्ष है । ( तत् मतो वि जायते ) वही मतो वरुण होया है । ( यस्माद् विश्वं प्रजायते ) जिससे सब वरुण होया है ॥ २० ॥

माताके वरमें वर प्रकारका अथ रक्षणका कारण अथ अपि सदा वरुणित हो । वर प्रत्यक्ष वरुण के । व प्रकारका अथ वरमें सिक हो । व वर लगी किसीका मात नहीं कर सकता ॥ १६ ॥

इ वरपर मातका ऊपर रक्षा है लीपी और चन्द्रार्धको वरुण है व वरुण प्रमाणित रक्षे है इ प्रकारका व व वरुण सर्वपर वैसा वरुणित रहता है जिस प्रकार हाथि अपने पार पावोंपर वरुणित रहती है ॥ १७ ॥

व वरुण पहिले चन्द्रार्धसे आच्छादित वा लकीको मैं वरुण बनाता हूँ । रात्रीके समय इ वरुण वरुण और वरुण समय पूर्व वरुण का मर्य विधाते है ॥ १८ ॥

हाथी की कविनेमि इ वरुण रक्षा प्रमाणित की है । इसकी रक्षा इन्द्र और अथि करें । व वरुण अपि देवताम ॥ १९ ॥

कोलकेपर कोलका अथका कोलपर कोल रक्षनेके समान वही पहिले वरुणकेपर वरुण मातका रक्षा है । इसमें वरुणका वरुण होया है इसीसे वरुण वरुणित होती है ॥ २० ॥

या द्विपक्षा चतुष्पक्षा पदपक्षा या निर्मीयते ।

अष्टापक्षा दशपक्षा द्वादशा मानस्य पत्नीमधिगम्ये इवा धीये ॥ २१ ॥

प्रतीचीं त्वा प्रतीचीनः द्वादशे प्रैम्यर्हिसतीम् । अधिर्ह्यन्तरापक्षस्तस्य प्रथमा द्वाः ॥ २२ ॥

इमा आपः प्र मराम्ययस्मा यस्मनाधनीः । गृहायुष प्र सीदाम्यमृतेन सुहामिना ॥ २३ ॥

मा नः पाशु प्रति सुचो गुरुमारी लघुमीवा बधूमिव स्वा द्वादशे पञ्चकामे मरामसि ॥ २४ ॥

प्राच्या द्विषः द्वादशा नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाष्टेभ्यः ॥ २५ ॥

दक्षिणाया द्विषः द्वादशा नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाष्टेभ्यः ॥ २६ ॥

प्रतीच्या द्विषः द्वादशा नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाष्टेभ्यः ॥ २७ ॥

उदीच्या द्विषः द्वादशा नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाष्टेभ्यः ॥ २८ ॥

ध्रुवाया द्विषः द्वादशा नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाष्टेभ्यः ॥ २९ ॥

कुर्न्वाया द्विषः द्वादशा नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाष्टेभ्यः ॥ ३० ॥

द्विषोर्द्विषः द्वादशा नमो महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाष्टेभ्यः ॥ ३१ ॥ (८)

वर्ण—[ वा द्विपक्षा ] जो दो पक्षवाली । वा चतुष्पक्षा पदपक्षा विनीयते । और जो चार तथा छः पक्षोंवाली बन्नी जाती है, [ अष्टापक्षा दशपक्षा ] आठ पक्षों तथा दशपक्षोंवाली [ मानस्य पत्नीं द्वादशानां ] प्रमात्यसे मापनेवालेद्वारा वाक्ये साक्षात्का [ वर्णः अग्निः इव ] गृहस्वागते स्थित अग्निके समान है [ आसये ] आशय होता है ॥ २१ ॥

हे द्वादशे ! [ प्रतीचीनः ] पश्चिमकी ओर मुक्त करनेवाला है [ प्रतीचीं अर्हिसतीं त्वा प्रैमि ] पश्चिमामिमुख चारी और न हिंसा करनेवाली दश साक्षात्के पास में आता है । [ अग्निः आपः च अमृतः ] अग्नि और अन्न अमृत हैं जो [ अमृतं ब्रह्मा ह्यः ] उनके पहिले आते हैं ॥ २२ ॥

[ इमाः अश्वस्माः बधूमिवान्नीः आपः ] ये लोगद्विष लोगनाटक अन्न [ मरामसि ] साक्षात्में मरता हैं । [ अमृतेन अग्निवा इव ] अन्न और अग्निके साथ [ गृहायुष प्र सीदामि ] घरके अग्नि में पाया है ॥ २३ ॥

हे द्वादशे ! [ माः पाशुं या प्रतिमुखाः ] हमपर पाश न छोड़ [ गुरुमारीः लघुमीवा ] बड़े भार को हलका करने वाली हो । [ बधूं इव ] बन्धुके समान [ त्वा वन्न कामं मरामसि ] तुझे हथ्थाके अनुसार मर देते हैं ॥ २४ ॥

[ प्राच्याः दक्षिणायाः ] दक्षिणी पूर्वी और दक्षिण [ प्रतीच्याः उदीच्याः ] पश्चिम और उत्तर [ ध्रुवायाः कुर्न्वायाः ] ध्रुव और कर्ण्य [ द्विषोर्द्विषः ] पश्चिम और अष्टदिशाओंके [ महिम्ने वमः ] महिम्नके छिमे नमस्कार हो तथा [ स्वाष्टेभ्यः स्वाहा ] अष्टदिश वर्णन करने योग्य देवोंके छिमे [ स्वाहा = सु + आह ] अष्टदिश प्रशंसा करते हैं ॥ २५-३१ ॥

भावार्थ—वह चार दो चार छः आठ वा दश कक्षावाली होता है । केवल देवमें यम सुरक्षित रहता है कही प्रथम में दशके आश्रयमें रहता हुआ सुरक्षित रहता है ॥ २१ ॥

चरकी पश्चिमकी ओर मुक्त करने चरमें अनुष्ठान प्रवेश करे । चर में अग्नि और अन्न तथा अमृत आये । ये दो दो पक्षार्थ गृहस्थाश्रमके बड़को स्थित करनेवाले हैं । इस प्रकारका चर कहा मुक्त देवेवाला होता है ॥ २२ ॥

बड़ा पैग दूर करनेवाला पत्नी होगा वहछि वह चरमें मरना चाहिये । चरमें अन्न और अग्नि तथा अमृत पाइये । ऐसे चरमें अनुष्ठान निपात करे ॥ २३ ॥





वर्षातक आकर रक्षाया के लिए कि वर्षा स्वामी अपने चोरी चोरी केत आदि पशुपौछ भी वृत्तम प्रकार आकर प्रकर करे । इस प्रकार वहाँ सबका उत्पन्न होता है ऐसे घरमें रहनेवाले अनुपम उत्तम आनन्दक अनुभव करेंगे इसमें संदेह ही क्या हो सकता है ।

घर ऐसा बनाना चाहे कि जो पीछेके आकाशपर सुपर दिखाने देवे । घरके आसपास की सोमा वृक्षादिजो सुपर दिखाने देवे । और प्रत्यक्ष अधिक लोहने बनाया जावे । घरके मध्यमें उत्तम सुगन्धित स्थानमें वन लवण आदि रखनेका स्थान—  
कामेका कमरा—बनाया जावे । ( शोभितः उत्तर ) कैला मनुष्यके लोहमें पेठ बीचमें होता है अतिवृद्धित स्थानपर होता है वही प्रकार वहाँ घरके मध्यमें कामेका कमरा बनाया जावे । घरमें धान्यके स्थानमें सब प्रकार ( स्वर्ग ) धान्य ( विधान ) लक्ष्मी सामग्री संवर्धित की जावे ( पना ) काज पेच पक्षी, रक्षणाके साधन घरमें भरपूर हों । ऐसा घर सब रहनेवाले पारिवारिक जनोंको सुख देता है ।

घरके स्तंभ ऐसे बलवान हो जेने हजिनाके पाँच होते हैं क्योंकि इन्हींपर घरका ऊपर आदि रहता है । दूसरा मजला करना हो तो एकके ऊपर दूसरा बनाया जावे जैसे ( कुलावे आदि कुलार्थ ) मोलका एकपर दूसरा बनते हैं और ( कोष कोश ) एक कोष पर दूसरा कोष रखा जाता है । नीचेका स्थान मजबूत हो वही तो ऊपरके भारके निचका स्थान बन जायगा । ऐसे घरमें घरमें मनुष्यका कर्म होवे । सभी प्रयोजनों के लिए ऐसे स्थान बनाये जायें । वही मी प्रयुक्त पूर्ण उत्तम योगसे निर्माण करते हैं पक्ष मी सुगन्धित स्थान देवता हैं वह देवता मनुष्योंको अपने घरमें प्रसूतिके लिए उत्तम स्थान बनाने चाहिये ।

घरमें जो बार, छा आठ वस कमरे अपना चौक बनावे या सकते हैं । ऊपर रहनेवाले मनुष्योंको संवर्धनके अनुसार तथा वस घरमें होनेवाले कर्मोंके अनुसार घर छोटा या बड़ा होना चाहिए ।

आर्द्धोत्तरायणवृत्तक प्रथमा ह्य । [ म २२ ]

“ घरमें जमी और वन लवण रहे क्योंकि इन्हींसे सब प्रकारके वन होते हैं । कोई व्यक्ति जायगा तो वनके धर्मपर इसके लिए स्वयं कम बलवान दिना जावे और उत्तिनिकारके लिए आपके स्थान के पास वनको विवकावा जावे । वे जो पक्ष पक्षोंके परीय और वनीय वनी मनुष्यके घरमें लवण रहे और इनके आहारवृत्ति होता जावे । मनुस्मृतिमें भी कहा है कि—

पुत्राणि भूमिपदकं वानकपुत्री य लूयुता ।

एवावपि सतां मेहे मोन्निष्ठान्ते कृपायाम । [ मनु ३। ११ ]

“ जेहनेके लिए घरमें भूमि लवण और मीठा माषय वे बार बाते अतिथिके आदरके लिए उत्तमजनों के में कमी न्यून बनी होना । वहाँ उत्तर है । वेहके ऊपरके मजमें वन पीनेके लिए और आम सेहनेके लिए प्रत्येक घरमें लवण रहे ऐसा कहा है । अतिथिके वसावरके वे प्रकार क्षमके देखने लगन है । घरमें वन रखना हो तो उत्तम निर्देश रखना चाहिये इस नियममें सूचना यह है—

अवस्ता बहमनाकनीः आयः प्रमराणि । गृहात् उपप्रसीदामि । [ मं २३ ]

मैं घरमें ऐसा वन भरता हूँ कि जो स्वयं रोग उत्पन्न करेनवाला न हो और या रोगोका दूर करनवाला हो । इस विषये मैं चरबी प्रयत्न करता हूँ । ” हाटक गृहस्थी ऐसा हूँ कहे और अपने घरकी अधिकसे अधिक प्रयत्न करनेका प्रयत्न करे । [ वृक्ष इव ] जैसे लोह रखा करना चाहिए वनी प्रकार गृहस्थी भी रखा करना योग्य है । वहाँ वृक्षों प्रमरणा रखना। वनको उत्तम रखना निर्देश रखना सुगन्धित रखना आदि बातें जानने योग्य हैं और इस दृष्टिकोण परकी सुगन्धितताकी बात भी जानी जाती है । काज [ पत्र ] भी एक कुलवृक्ष है ऐसा मानकर वनकी सुगन्धितता और सोमाके बलानेक लिए प्रयत्न करना चाहिए । ऐसा चरनेसे ही [ पुत्र भारः लघु ] संसार का वना मारी वीस बहुत हलका हो जाता है ।

वहाँ एवं दण्ड कुलवृक्षे समान चरबी सुगन्धरवा की जाती है वहाँ घरके पाटी ओरकी बिछा और चरबिछाई प्रयत्न होती है और वहाँ देवताओंका निवास होनेयोग्य स्थान बनता है । और चरबी महिमा बढ जाती है ।

हाटक गृहस्थी अपने चरबी महिमा हल प्रकार बढाने और अदना घर देवताओंके निवास करने योग्य करे और अन्न विवरण ठीकाय कोष हलका करे ।

# वैल ।

[ ४ ]

( श्रुतिः—प्रज्ञा । देवता-अथमः )

साहस्रस्त्येष अथमः पर्यस्तान् विद्यां रूपाणि वृष्णासु विभ्रत ।

॥ १ ॥

मद्र द्रात्रे यजमानाय शिष्यन् भार्गवस्य द्राक्षियस्तन्नुमातान्

॥ २ ॥

अप्रां यो अग्रे प्रतिमा वसुष प्रभूः सर्वेस्मै पृथिवीष देवी ।

पिता वत्सानां पतिरुघ्न्यानां साहस्रे पोषे अर्पि नः कृणोत

॥ ३ ॥

पुमानन्तर्बान्त्स्यर्षिरुः पर्यस्तान् वसोः कर्षचमृषमो विमति ।

तमिन्द्राय पृथिर्दिद्वयानैर्द्वुतप्रधिर्द्वितु सातवैदाः

॥ ४ ॥

पिता वत्सानां पतिरुघ्न्यानामथो पिता मंहतां गर्गैरायाय ।

वत्सो अरापुं प्रतिधुक् पीयूषं आमिषां पूतं तद् वस्य रेवः

अर्थ— [ साहस्र स्तेषः ] हमारी सधियोंके पुत्रक लक्ष्मी [ पर्यस्तान् अथमः ] वृषणासु वैल [ वृष्णासु विभ्रत ] विद्या कर्पाणि विभ्रत । अर्थात् पीरीपर बहुत कर्पोंको कारण करता हुआ [ भार्गवस्य द्राक्षियस्तन्नुमातान् ] द्राक्षियस्ते संरचना का वैल [ द्रात्रे यजमानाय मद्र शिष्यन् ] वायु देवताके यजमानके किए मद्राईकी शिक्षा देता हुआ [ वृष्णासु विभ्रत ] वृष्णासु विभ्रत के ४ : ४

[ व अथमः ] जो पहिले [ अप्रां प्रतिमा वसुष ] अर्थात् मेवकी वपसा हुआ करती है [ देवी पृथ्वी इव ] पृथिवी देवीके समान [ सर्वेस्मै प्रभूः ] सब पर प्रभाव पलायैवाका [ वत्सानां पिता ] वत्सोंका स्वामी [ उघ्न्यानां पति ] गीर्षोंका पति [ नः ] हमें [ स-वसे पोषे अर्पि कृणोत ] हमारी प्रकारकी पुष्टिमें करे रखे ॥ २ ॥

[ पुमान् अन्तर्बान् ] पुमान् अथमः अन्तर साके कारण करनेवाला [ वसोः कर्षचमृषमो ] वसा वृषणासु [ वसोः कर्षचमृषमो ] वैल अथमः अन्तर साके कारण करता है । [ तं देवताः पृथिभिः द्वितु ] वल देवतासु लक्ष्मी समर्पितता [ आग्रेणां अग्नि दृग्वाय वदतु ] आग्रेणां अग्नि दृग्वायके किए के जाये ॥ ३ ॥

[ वत्सानां पिता ] वत्सोंका पिता [ उघ्न्यानां पति ] गीर्षोंका पति [ अथमः ] अथमः [ मंहतां गर्गैरायाय ] अथमः प्रभातोंका व वल [ वत्सा अरापुं ] वत्सा और स आग्रे [ प्रतिधुक् पीयूषः ] प्रतिधुक् अथमः का दोहन करता हुआ [ आमिषां पूतं ] दही का पी रैता है [ तद् वस्य रेवः ] वद मि मन्देह वत्सका वीर्य है ॥ ४ ॥

साधार्थ— वैल हमारे सधियोंके पुत्रक है । वैल ही वृषणासु है । गीर्षोंके लक्ष्मी वलके विविध रूप लक्ष्मी है । वलका वल करनेके दिन होता है और वलका प्रभाव होता है ॥ १ ॥

वत्सा वलवादी मेवकी वत्सा ही जाती है । वृष्णा वत्सावर वल अधिक प्रभाववाला है । वल वत्साका पिता और गीर्षोंका पिता है । इनके वल वल तो प्रकारकी पुष्टि होता है ॥ २ ॥

वद वृषणा व वलके अन्तर छाक है । वद सामर्थ्यवाला और वृषणा है । वद प्रभाव कारण करता है । वल वत्सा वत्सा वत्सावर अग्नि दृग्वायके अग्नि मेववाला है ॥ ३ ॥

देवानां माग र्देवनाह एपोदेवा रस ओषधीनां धृतस्य ।  
सोमस्य मध्वमध्वणीत शुक्रो बृहत्प्राग्निर्मन्त्र यच्छरीरम् ॥ ५ ॥  
सोमेन पूर्णं कृतं विमर्षि स्वर्णं रूपाणां अनिता पञ्चानाम् ।  
क्षिवास्ते सन्त प्रमन्त्र्य बृह या इमा न्यस्मस्यै स्वधिते यच्छ या अमूः ॥ ६ ॥  
आन्यै विमर्षे धृतमेस्य रते साहस्रः पोपुस्तमु यज्ञमाहुः ।  
इन्द्रस्य रूपमुपमो वसानः सो अस्मान् देवाः क्षिप येतुं कुषः ॥ ७ ॥  
इन्द्रस्यौजो बरुणस्य बाहू अभिनोरसौ मरुतामिषं ककुत् ।  
बृहस्पतिं संमृतमेवमाहुर्देवैर्भीरांसः कृष्यो ये मनीषिणः ॥ ८ ॥

अथ [ देवा देवानां वपवाहः आगः ] यह देवोंका समीप रिधत माग है [ अर्था ओषधीनां धृतस्य रसः ] अथ का ओषधियोंका और भीका यह रस है [ सोमस्य मध्वं शुक्रः आणीत ] वही सोमका रस इन्द्रने प्राह किया इसका [ यच्छरीरं बृहत् अग्निः अमन्त्र्य ] जो शरीर का वही बड़ा मेघ बना है ॥ ५ ॥

[ सोमेन पूर्णं कृतं विमर्षि ] सोमरसके परिपूर्ण ककचका ए चारण करता है । और सु [ कृपाणां अनिता ] अर्था देवोंका वनायेका और ( वसूणां अमिता ) पञ्चोंका वनाएक है ( वाः इमाः ते प्रमन्त्र्याः ) जो वे तेरे सम्मान हैं वे ( क्षिवा यन्तु ) हमारे किन्तु हों । हे ( स्वधिते ) राजा ! ( वाः अमूः अस्मस्यै वि यच्छ ) जो वहाँ हैं वे हमारे किन्तु हैं ॥ ६ ॥

( अथ धृतं आन्यै ) इसका भी और आउत ( रतेः विमर्षि ) बीरोंको चारण करता है । ( साहस्रः पोषः ) जो हमोंका पोषक है ( तं ह वरुणं आहुः ) उसको राज कहते हैं । ( कुषः इन्द्रस्य कर्णं वसानः ) वैद्य इन्द्रका कर्ण चारण करता हुआ है ( देवाः ) देवों । ( कः इत्यः अस्मान् क्षिपः आ यन्तु ) वह हाथ दिया हुआ हमारे पास हुआ होकर आने लगे ॥ ७ ॥

( य भीरांसः ) जो देवोंके और ( ये मनीषिणः कवचाः ) जो मन्त्रकी वधि हैं वे ( एत संमृतं बृहस्पतिं आहुः ) इस संमृतपुत्रके बृहस्पति कहत हैं तथा वह ( इन्द्रस्य औजः ) इन्द्रकी सक्ति, ( वरुणस्य बाहू ) वरुणके बाहू ( अभिवो वीर्यौ ) जातिदेवोंके कर्ण ( मरुता इषं ककुत् ) मरुतोंकी यह ओहनि है ऐसा कहते हैं ॥ ८ ॥

समाप्त- बह्वीका पेट। और वीर्योका पति वही ककचाओंका रसही सम्पत् ही अनुपरा बाह्य करके देता है तब वही और भी देता है मानो वह हठीका बल ॥ ५ ॥

यह पूरा देवोंका माग है यह आविधियोंका रस है यह सोमरसके साथ पिना जाता है । इसका शरीरको मेघको ही बना है ॥ ५ ॥

सोमरसके जरा हुआ ककच यह चारण करता है वह यो आविध का ककच कर्ता विविध देवोंका वनायेवाला है इन्के सम्मान होने कावालावारी हो राज हमकी रक्षा करके हमें देवें ॥ ६ ॥

यह भी और बीर चारण करता है हमारी मरुतकी पुष्टि देता है अतः इसकी मरुत कहते हैं । वह इन्द्रका कर्ण चारण करके हमारे लिए लाभ होये ॥ ७ ॥

जो वेदेवुष वधि और शक्ति हैं वे इसको देवनाओंकी राखणके पुष्ट नामते हैं इन्हें बृहस्पति इन्द्र वरुण आविधो मरुतवरी अमिता हैं ॥ ८ ॥

देवीर्विश्वः पर्यस्वाना तनोपि त्वामिन्द्र त्वां सरस्वन्तमाहुः ।  
सहस्रं स पर्यमुक्ता वदति यो ब्राह्मण ऋषममांशुहोति ॥ १ ॥  
बृहस्पतिः सविता ते ययो ब्रह्मै त्वर्षुर्षयोः पर्यात्मा स आर्मुतः ।  
अन्तरिक्षे मनसा त्वा ब्रह्मोमि बर्हिष्ठे धावापृथिवी उमे स्ताम् ॥ १० ॥ (९)  
य इन्द्र इव वृषेषु गोधेति विषावदत् । तस्य अश्वमस्याङ्गानि ब्रह्मा सं स्तौतु भुवः ११  
पार्श्वे आस्तामनुमस्या भगस्यास्तामनपृथ्वी ।  
अप्तीवन्तावन्नवीन्मिश्रो ममैतौ केवल्लुविति ॥ १२ ॥  
मसदासीदादित्याना भोर्णी आस्ता बृहस्पतेः ।  
पुच्छं वातस्य देवस्य तेन घूनोत्सोपधीः ॥ १३ ॥  
गुदा आसन्तिस्सनीशारयाः सूर्यायास्त्वर्चमनुवन् ।  
उत्पातुरनुवन् पद श्रेष्ठं यदकस्त्वयन् ॥ १४ ॥

अर्थ—इ (पयस्ता देवी) विश्वः वा तनोपि) ब्रह्मणा देवतागुची प्रभाको उत्पन्न करता है । ( त्वो इन्द्र ) उमे रूप और ( त्वां सरस्वन्तं माहुः ) सारवाका कहेते हैं ( या ब्राह्मणः ) को ब्राह्मण ( अर्चय वा सुहोति ) वेदका रूप करता है ( या एकमुक्ताः सहस्रं वदति ) यह एक स्वात्म्य सुक्त करता हुआ हजारोंका रूप करता है ॥ १ ॥  
( बृहस्पतिः सविता ) बृहस्पति और सविता ( ये ययः ब्रह्मै ) तेरी आयुक्त धारण करते हैं । ( ते आत्म ) मेरा आत्मा ( त्वम्पुः वायो ) परि आहुता ) उक्ता और वायुधे परिपूर्ण है । ( मयसा त्वा अन्तरिक्षे ब्रह्मोमि ) मयसे तुझे अन्तरिक्षमें अर्पण करता हूँ ( उमे धावापृथिवी ते बर्हिः स्ताम् ) दोनों पुच्छों और भूच्छों के आत्म हों ॥ १० ॥  
( देवेषु इन्द्रः इव ) देवोंमें ऐसा इन्द्र ऐसा ( न गोषु विषावदत् पति ) पीछोंमें लटप करता हुआ कन्ध है । ( तस्य अश्वमया अंगानि ) उस वैद्यके अंगोंको ( अश्वना ब्रह्मा सरस्वोतु ) प्रतीता अश्वनापीछे ब्रह्मा कर ॥ ११ ॥  
( पार्श्वे अनुमया आस्ता ) दोनों पक्षे अनुमतिके हैं ( अनुवन्तो अश्वस्य आस्ता ) पक्षियोंके पीछे आते भवते हैं ( सिन्धोः अश्वनीन् ) सिन्धुके कहा कि ( अश्वनीयो कंचनौ पूता मम इति ) दो तुझसे वेदक मेरे हैं ॥ १२ ॥  
( यदकं वादित्यानां आसीत् ) पुच्छवक्त्रका अन्तिम भाग आदित्योंका है ( श्रोत्री बृहस्पतेः आस्ता ) बृह्मे बृहस्पतिके हैं ( पुच्छं वातस्य देवस्य ) पुच्छ वातु वेदका है ( तेन ओषधीः घूनोति ) उससे औषधियोंको हिकता दे ॥ १३ ॥  
( गुदा सिनीवास्त्राः आसन् ) गुदाभागा सिनीवास्त्रोंके हैं ( त्वच सूर्याया अनुवन् ) त्वचा सूर्यवक्त्राधी है देवा कहते हैं । ( यदः उत्पातः अनुवन् ) वैद उत्पातोंके हैं ऐसा कहा है ( यत् अश्वं यदकस्त्वयन् ) इस प्रकार वैद्यकी करता विज्ञानों की है ॥ १४ ॥

ध्यातव्य—यह पुन देवताका वैद कतम प्रभा उत्पन्न करता है उसको धारणा इन्द्र कहते हैं । जो वैदका अर्पण करता है करता हुआ शोकोय भेज होता है ॥ १ ॥  
बृहस्पति और सविताने लक्षों आयुक्त धारण किया है । त्वचा और वायुका सरव इसमें है । इसका मयके अन्तरिक्षमें समर्पण करके सविता और आत्माके भी यह रहता है ॥ १० ॥  
ऐसा देवोंमें इन्द्र ऐसा यह वैद धारणों है । श्रुती हैं इसके अश्वनाके सहस्र का कथन कर लता है ॥ ११ ॥  
इसके अश्वनामें अनुवन्ति भव भिन्न आदित्य बृहस्पति वातु आदि देवताओंका आभिजात है ॥ १२-१३ ॥

कोट आसीन्नामिशंसस्य सोमस्य फलशो धृतः ।

देवाः सगत्स्य यत् सर्वं श्रपम व्यकल्पयन् ॥ १५ ॥

ते कृष्टिकाः सरमायै कूर्मस्यो अदधुः क्षुप्तान् ।

ऊर्ध्वमस्य क्रीटेभ्यः श्वर्तेभ्यो अपारयन् ॥ १६ ॥

वृक्षाभ्यां रक्षं श्रपस्यर्वति हन्ति चक्षुषा ।

क्षुणोति मर्त्रं क्षणीभ्यां गवां यः पार्तिरुभ्यः ॥ १७ ॥

क्षुतयाञ्च स पञ्चते नैनं दुन्वन्त्यमर्यः ।

क्षिन्वन्ति विश्वे तं देवा यो आक्षुण श्रपममाक्षुहोति ॥ १८ ॥

आक्षुणेभ्यः श्रपम दुश्वा वरीयः कृणुते मरुः ।

पुष्टिं सो अह्न्यानां स्वे गोष्ठेऽर्धं पश्यते ॥ १९ ॥

अर्थ—[कोटः आमिशंसस्य आसीत्] गोष्ट आमिशंसकी बी [ककसः सोमस्य फलः] ककस सोम का फल किवा है इस प्रकार [ सर्वं देवाः सगत्स्य ] सब देव मिश्रकर [यत् अपमं व्यकल्पयन्] वैकली करवा करते रहे ॥ १५ ॥

[ कृष्टिकाः सरमायै ते अदधुः ] कृष्टिकोंको सरमाते किए वे पारय करते रहे । और [ क्षुप्तान् कूर्मस्यो ] क्षुप्तोंको किए अपार करते रहे । [ अरुण कक्ष्ये ] इसका अपार अरुण [ श्वर्तेभ्यः कोटेभ्यः अपारयन् ] कुटेके साथ रहनेवाले कीटोंके किए रक्ष दिया ॥ १६ ॥

[ यः अपमः पार्ति रक्षः ] जो गौर्धोंका हवनके अयोग्य पति अर्धोत् वैत है वह [ कर्वाभ्यां मर्त्रं क्षुणोति ] कर्वाओं के क्षणालकी बलि क्षुप्तवा है [ क्षणीभ्यां रक्षः अपमः ] क्षीणोति राक्षसोंको डरा दृष्टा है और [ चक्षुषा अपमं हन्ति ] अक्षोंके अकारको वह करता है ॥ १७ ॥

[ यः आक्षुणे अपमं आक्षुहोति ] जो आक्षुणोंको वैक समनय करता है ( एवं विश्वे देवाः क्षिन्वन्ति ) उसको सब देव लुप्त करते हैं । ( स क्षुतयाञ्च वरियः ) वह तेककों यात्रकों द्वारा वध करता है और ( कृणुते मरुः यः दुन्वन्ति ) इसको भस्मि कह नहीं होते ॥ १८ ॥

( आक्षुणेभ्यः अपमं दुश्वा ) आक्षुणोंको वैक देकर जो अपम ( मरुः वरीयः कृणुते ) मर भेद्य बनता है । ( यः पुष्टिं गोष्ठे ) वह अपनी गोष्ठ्यानां ( आह्न्यानां पुष्टिं अर्धं पश्यते ) गौर्धोंकी पुष्टि देखता है ॥ १९ ॥

पारार्थ—क्षितीवाकी सूर्यप्रभा आगता आमिशंस सोम इस देवताओंके किए ककस पुष्टा त्वचा वेर पाद ककस वे इतके अपमय माने गये हैं । इस तरह सब देवोंने इस वैतके विषयमें कल्पना की है ॥ १५-१९ ॥

वराया कूर्म श्वर्ति क्षिमी आर्द्रके लिए इसके कृष्टिका लुप्त और अपमिन् अपमय रक्षे हैं ॥ १६ ॥  
रक्षे वीका पति है । वह कर्वाञ्च लताय अर्ध क्षुप्तवा है क्षीणोति क्षुप्तोंका हवाता है और अपमिन् अपमयके लुप्त करता है ॥ १७ ॥

जो आक्षुणको वैक क्षम देता है अक्षकी लय देव लुप्त करते हैं । वह क्षिणों अपारक यात्रकी द्वारा वध करता हुआ अपमिन् मरते हुए रहता है ॥ १८ ॥

जो आक्षुणोंकी वैक क्षम करके अपम मर भेद्य बनता है वह अपनी गोष्ठ्यानां बहुत गाने पुष्ट हुई हैं इसका अनुभव करता है ॥ १९ ॥

गावः सन्तु प्रवाः सन्त्यथो अस्तु तनुषत्सु ।

॥ २० ॥

तत् सर्वमनु मन्यन्तां वेवा ऋषमवापिने

अथ पिपाति इन्द्र इष रयि दधातु चेतनीम् ।

॥ २१ ॥

अथ वेनु सुदुर्वा नित्यवस्तां वष्टु दुर्वा विपुमिर्त पुरो विवः

विश्वरूपो नमसो वयोधा ऐन्द्रः छुष्मो विश्वरूपो न आगन् ।

॥ २२ ॥

आयुरस्मभ्यं दधत् प्रजां च रायम् पोषैरभि नः सचवास

उपेहोषर्षनास्मिन् गाष्ट उषं पूर्य नः । उषं ऋषमस्य वष्टु रेत् उपेन्द्र तव वीर्वि २३

प्यं वो युवान् प्रति दध्मो अत्र तेन क्रीडन्तीवरत् वष्टां अनु ।

मा नो हासिष्ट अनुषा सुभागा रायम् पोषैरभि नः सचव्यम्

॥ २४ ॥ (२४)

॥ इति ठिगीयोनुवाकः ॥

अर्थ- ( मावः सन्तु ) गौर्गो हो ( प्रवाः सन्तु ) प्रजायं हो ( अथो तनुषत्सु अस्तु ) और चारीति क्त हो । ( तत् सर्वं ) वह सब ( ऋषमवापिने ) वैक हेनेवाके के किये ( वेवा अनुमन्यन्तां ) देव अपनी अनुमति के साथ देवे ॥ २० ॥

( अथ पिपाति इन्द्रः इष ) वह इष्ट इन्द्र ( चेतनी रयि दधातु ) चेतना देनेवाले वयका चारण करे । ( अथ ) वह इन्द्र ( सुदुर्वा ) उषम होकर योग्य ( विश्वस्तां ) वष्टुके के साथ उपविष्ट ( वष्टु दुर्वा ) वष्टु रेत् वष्टु होकर योग्य ( विपुमिर्त पुरो ) व्यापक वेष्टुको ( वः विवः ) वेष्टु वेष्टुके परीक्षे चारण करे ॥ २१ ॥

( विश्वरूपः ) काक रोगाका ( नमसः ) आकाशसे ( ऐन्द्रः छुष्मः ) इन्द्रके सर्ववी क्त चारण करनेवाला ( विश्वरूपः वयोधाः नः आयम् ) समस्त क्योति युक्त वयका चारण करनेवाका हमारे पास लाजवा है । वः ( वस्तु प्रजां च रायः च ) आयु प्रजा और वय ( वरमभ्यं दधत् ) हमारे किये चारण कराया हुआ ( पोषैः नः वामिष्टव्यं ) पुष्टिबोले हमें प्राप्त होवे ॥ २२ ॥

( इष वरिमम् गोष्ठे ) वष्टा इस गोष्ठाकायें ( उप वप पर्यम् ) समीप रह । और ( वः उपवृष्ट ) हमें प्राप्त हो । ( वचमवत्स वष्टु रेत् ) वचमका ओ वीर्वि है दे इन्द्र । ( तव वीर्वि वप ) वह वेश वीर्वि हमारे पास लाजवे ॥ २३ ॥

( प्यं युवान् वः प्रतिदध्मः ) इस युवाको हम आपके किये समर्पित करते हैं ( वष्टु रेव क्रीडन्ती ) वष्टु क्रीडे के साथ खेलती हुई विष्टरी और ( वष्टां अनु ) इष्टव्य स्थानोंके प्रति जाओ । है ( सुभागा ) प्रत्ययवृष्ट जीने । ( अनुषा मा हासिष्ट ) वष्टुके के साथ हमारा व्याग न करो ( च पोषैः रायः ) पुष्टिबोले के साथ रहनेवाके वय ( नः वामिष्टव्यं ) हमें दो ॥ २४ ॥

आचार्य-नैमरा राज वरवेष्टिरी देवीकी अनुमतिके गौर्गो विष्टरी प्रजा होती और चारीति वय भी प्राप्त होता है ॥ २० ॥ वह वस्तु अनुमन्यन्तां मावर्गो वय हमें देवे । वह वेष्टुके के परीक्षे देवी भी जाने कि जो वयन दृष्ट देनेवाली वय वष्टुके का वयनवादी विष्टवष्टु दृष्ट देनेवाली और वयोधी वष्टुवयनवाली हो ॥ २१ ॥

आकाशके वष्टुके वैक देवा आवा है कि जो मात देवताया वयवयन अनेक बोले युक्त, वयको देनेवाला है । वह हमें आयु प्रजा और वय हमारे किये देवे और हमें पुष्टि देवे ॥ २२ ॥

वह वय इस गोष्ठाकायें रहे हमारे पास रहे । इस वेष्टुका जो वय है वह इष्टव्य वय है वह हमें प्राप्त हो ॥ २३ ॥ इस वय वय वय इष्ट वेष्टरी वय देवे है । इष्टके वय वे वीर्वि वय, वष्टु और विष्टरी । वष्टा वीर्वि वष्टा वष्टु । और हमारे वय न करे हमारे वय रहे । वष्टु ही और वय वयकी वय करे ॥ २४ ॥

## बैद्यकी महिमा ।

इस सूत्रमें बैद्यकी महिमा वर्णन की है । उसमें उक्तम बैद्यका चरम पावन करनेसे कितने लाभ होते हैं इसका वर्णन इस सूत्रमें पाठक देखें—

साहस्रस्त्रेभ्यः श्रेयसां पञ्चस्रात् । ( म १ )

हजारों ऐश्वर्य और बर्तोंसे श्रेय यह वैद्य है, और यह ( पञ्चस्रात् ) द्रव्य वैद्यकात्मा है । पाठक यहां आश्चर्य करेंगे कि वैद्य द्रव्य वैद्यकात्मा किम प्रकार हो सकता है ? प्रथम और सुतीव मंत्रमें इस वैद्यको ( पञ्चस्रात् ) द्रव्यका कहा है । अतः इस मंत्रमें कुछ हेतु है । वैद्य वैद्य होता है वैद्य। उसकी योग्य संततिसे द्रव्य म्यूनाधिक होता है । अर्थात् यौग्य द्रव्य उत्पन्न करनेकी शक्ति वैद्यपर निर्भर है । कई जातिके वैद्य कम द्रव्य वैद्यकात्मा संतान पैदा करते हैं और कई जातिके वैद्य विपुल द्रव्य वैद्यकात्मा संतान उत्पन्न करते हैं । अतः यदि अधिक द्रव्य वैद्यकात्मा यौग्य उत्पन्न करनेकी इच्छा हो तो अधिक द्रव्य वैद्यकात्मा यौग्यके साथ इस जातिका वैद्य रक्षता चाहिये कि जो अधिक द्रव्य वैद्यकात्मा जातिका हो। ऐसी यौग्य और ऐसे वैद्य एक स्थानपर रखने चाहिये । अर्थात् कम द्रव्य वैद्यकात्मा जातिसे वैद्य अधिक द्रव्य वैद्यकात्मा यौग्य साथ वसति नहीं रहना चाहिये क्योंकि इससे उत्पन्न होनेवाली यौग्य द्रव्य बरबाद होना । अतः यंत्र में मंत्रमें कहा है—

पर्वं यो युवायं प्रविद्धम्। तेन ज्ञानं बीजमपीक्षरव दधौ जघुः । ( म २२ )

इस युवा वैद्यको यौग्यके साथ रखते हैं इसके साथ वैद्य हो नाहीं लेते और इस प्रवेष्टमें बिचरें । अर्थात् वह ज्ञान-बीजातिका वैद्य है और ये ज्ञानबीजातिका यौग्य हैं, इन बीजातिका संवत्स्र हम करना चाहते हैं । इस संवत्स्र विशेष प्रकारकी रक्षण पैदा होनी । इस प्रकार यौग्यमें जो किसी बीजातिका वैद्यके साथ संवत्स्र होना इस नहीं है । विशेष जातिकी यौग्यके साथ विशेष जातिके वैद्यका ही संवत्स्र होना जमीन है । यौग्यमें जातिका संकर बनाने चाहिये ऐसा कुछ नहीं है। यदि मिश्र जातिमें संवत्स्र होना है तो उस जातिके मरके साथ संवत्स्र हो । और बीज जातिके मर के साथ संवत्स्र न हो । यदि द्रव्य बडालकी इच्छा हो तो अधिक द्रव्य वैद्यकात्मा जातिके वैद्यके साथ यौग्य संवत्स्र हो । यदि बाह्य जातिके वैद्य उत्पन्न करनेकी इच्छा हो तो कम बाह्य जातिके वैद्यके साथ संवत्स्र हो । यौग्यके अन्तर्गत जातिका यौग्य रख करना योग्य है और उक्तम विशेष जातिकी ही उत्पन्न करनेका मत होना चाहिये । जातिभेद होनेसे गुणोंकी म्यूयता होनी है और जातिकी दृढ़ता रहनेसे गुणों का संवत्स्र होना है । इस सूत्रमें इस तरह यौग्यकी जातिकी रक्षा करके अथवा अनुलोम संवत्स्र उच्च मरके साथ संवत्स्र रखके बडालोंका संवत्स्र करनेका उपदेश है और यह उपदेश देनेके लिए वैद्यके रेतमें द्रव्य रखनेका गुण है। यह बात कही है । इसका विचार पाठक करें । अस्तु यह वैद्य—

ब्रह्मन्मनु विना कृपाणि विभज् । ( म १ )

ब्रह्मन् किन्तुपर यह वैद्य अपने विविध कर्माको पारण करता है । अर्थात् वह सबके किन्तुपर रहकर पाप अर्थात् पाप बनेष्ट पुण्य हाकर विचारता है और यौग्यमें विविध प्रकारके अपने कर्माको आधान करता है । यदि वह या यौग्य पुण्य न बने तो उक्तम उक्तम विद्या करनेमें असमर्थ होगा । इसलिए ब्रह्मन् विना पुण्य बनाना चाहिये । इस प्रकार—

कथितः तन्मू आशात् । ( म १ )

‘ अपने प्रयत्नसे या कैलाश है । अर्थात् यौग्यमें यौग्यका करके उक्तम उक्तम जगत् करता है । यही रीति है कि विद्यके यौग्य और वैद्य उक्तम निर्माण हो सकते हैं । ऐसे उक्तम जातिके वैद्य—

राजं मयं विभज् । ( म २ )

राजा के लिए कर्मात्मा देने हैं । जो मनुष्य ऐसे उक्तम वैद्य जातिकीका राज होता है उक्तम कर्मात्मा होता है । अर्थात् अर्थात् ब्रह्मन् जातिके पाप बहुत शिव्य होते हैं अतः उक्तम जातिकी अधिक द्रव्य वैद्यकात्मा यौग्य रही तो जातिके प्रयत्नकी द्रव्य बीज पुण्य रह सकते हैं । अतः ऐसे उक्तम वैद्य और उक्तम यौग्य ऐसे न चाहें को वैद्य जातिकी रहें । इस सूत्रमें इस प्रकार राज के लिए प्रेरणा इस तरह की है—

५ ( अ. ११. अ. १ )



सदसं स एकमुखा इति यो ब्राह्मण ऋषयमाहुहोति ।। ( मं ९ )

अिन्द्रमिन्द्रिये तं देवा यो ब्राह्मण ऋषयमाहुहोति ।। ( मं १८ )

ब्राह्मणस्य ऋषये इत्या बरीयाः कुरुते मनः ।। ( मं १९ )

तत्सर्वमनुमन्वन्ता देवाः ऋषयमाविविधे ।। ( मं २ )

यो ( ब्राह्मणे ) ब्राह्मण को ब्रह्म समर्पण करता है वह एक रूपमें हजारों बान करता है । उसको सब देव संतुष्ट करते हैं जो ( ब्राह्मणे ) ब्राह्मणके बरमे वैद्यका समर्पण करता है । ब्राह्मणोंको ब्रह्म बान देकर मन भिन्न बनता है । जो वैद्यका दान करता है उसको किए उस देव अनुमन्त्र होते हैं ।

विद्वान् ज्ञानी सदाचारी व्याचार्यकीये कृतम वैद्य दान करनेकी प्रेरणा इस प्रकार इस सूक्तमें की है । इसका तात्पर्य पूरे ज्ञानमें प्रेरा बढाया है देवा ही सदाकला पवित्र । यही विषय महाभारतमें विष्णुकिञ्चित् रीतिसे स्पष्ट किया है—

दत्ता यनु सुवर्ता कीर्यवेदोऽहो कस्मान्नवरतामपकाविनीं च ।

वांमन्ति रोमन्ति भवन्ति तस्मात्तावद्वाणीयवदनुते अर्थकोकम् ॥ ३१ ॥

तथाऽवकवाह ब्राह्मणेभ्यः सदाच दानं कुर्वं वकवन्तं सुवाचम् ।

कुम्भानुधीनं वीर्यवन्तं सुहृन्तं मुकुन्ते कोकान्मन्मितामनेनुदत्तम् ॥ ३२ ॥

गोषु शान्ते गोक्षरन्ते कुतश्च दृष्टिमान् तान्ते वाचमाहुः ।

हृदे रक्तने सज्जमे वा महाहो कृष्णर्ष वा होम्यवेदोऽहोऽस्वाम् ॥ ३३ ॥

गुर्वर्ष वा वक्त्रपुङ्गवाभिषङ्गो वा वै दानु देवकान्कोऽविसिद्धः ।

म या अनुवाच न ॥

दान करनेके लिए यी ऐसी हो कि जो कृतम स्वभाववादी बने अर्थात् के बर्तव्यमें विद्वान् होकर होता हो विद्वत् कर्म उत्पन्न होते हैं । जो न जानती हो । इसी प्रकार ब्राह्मणोंको दान करनेके लिए योग्य वैद्य बोला होवेवाका कृतम वक्त्रम्, दत्ता वीर्यवान् बने करीरवाक्य हो । ऐसे वैद्यका दान करनेवालेको स्वर्णकाय होता है । यी ऐसे विद्वान्को देवी पवित्रे कि जो गौरा मय हो गोपालक हो गौके विषयमें कृतज्ञ हो क्षीरहीन हो, । शुक्लीकी किन्तु कृतम यी दान देने । इस रीतिसे महाभारतमें यी दान और दत्तम दानका विषय कहा है । हरएक ब्राह्मण वाका दान लेनेका अधिकारी नहीं है । इस विषयमें महाभारत आर अथर्ववेदके सूक्तमें बहुत विषय हैं जिनका विचार गठक अवश्य करें—

असदनुत्तम पापाय कुम्भवाणुत्तमादिभिः ।

हृदयकम्प्यववेताम न देवा योः कवचम् ॥ १५ ॥

भिक्षुमे बहुपुत्राय अत्रिकावाहितप्रभे ।

इत्या दत्तायता दत्ता कोकान्मन्मितामनुपमान् ॥ १६ ॥

म या अनुवाच न ॥

दुताचारी पापी श्रेणी अस्तवभावानी हृदयकम्प्य न करनेवालेको कमी यी दान देनी नहीं पड़िये । भिक्षावर जीविका नहीं करनेवाका बहुत पुत्रवाक्य देवज्ञानी अतिशीशी यो गोदान करनेसे स्वर्णपात होता है । इस प्रकार महाभारतमें कर्म । यह देखनेमें पता लगता है कि विद्वान् सदाचारी व्याचार्यको ही यी दान करना योग्य है । केवक ब्राह्मणकुमें कृतम होवे या दान लेनेका अधिकारी नहीं हो सकता । तथा अथर्ववेदमें अन्त्यत्र जो कहा है वह यी महा वैदिके—

यो दत्तति असीद्वान् । अथर्व १ १५५ ६, १

ब्राह्मणस्यो वक्ता दत्ता सप्तसीकास्तमस्तुते ॥ अ १ ११ १३

आपो दधीमनुमदीर्गुणवन्तो ब्राह्मणा हस्तनु म प्रयत्नतादृशामि ॥



“ भिका बारक बीरका स्थान और हजारी प्रकारकी पुष्टियाँ देवेवाला कहते हैं । विचार करनेपर पाठकोंका इस बातका अनुभव अवश्य मिलेगा । यदि वह बैक गौमें दूध अधिक उत्पन्न करेगा तब तो वही बी और बीरका सर्वक जो विवक्षित है, वही कि जो दूधका बहालवाला है वही बीरका बहालवाला होता है । गौके दूधको बैराक मनोंमें ( अन्न दूधकरं तदु ) अन्न बीरं बहामेवाका कहा है । हजारी अन्न उपलब्धि को करीरका पोषण होता है वह इस अनेके पाके दूधसे हो सकता है । वह सामर्थ्य गायके दूधमें है । गौका और बैरका इतना महत्त्व होमसे इसका अभ्यस्य वर्णन इस सूत्रमें आगे किया है । इसके बाद एक अवसरमें देवताका भोग है वह बात मं ४ से मं १६ तक कही है । प्रत्येक अवसरमें किस देवताका भोग है वह वर्णन बैकनेष्टे गौका और बैरका शरीर देवतामय है वह बात स्पष्ट हो जाती है । गायो गौका दूध देवतामोका उत्पन्न है । वही पाठक विचार करें कि वेदने गौके दूधका जो इतना माहात्म्य वर्णन किया है वह इसीके कि वैदिकधर्मी लोग गायका ही इस विधि और याचना । बी आदि उद्योग करें । मूर्ति का दूध कभी न मिले ।

१० वें मंत्रमें कहा है कि वह बैक सर्वोत्तम पशुसौख्य प्राप्त करता है और आँखसे अक्षयका प्राप्त करता है । वही वह आ-  
कषाधिक वर्णन है तथापि वह धर्म है । बैकके प्राक्तन काष्ठपर इतने अनेक उपकार हैं कि उनका वर्णन करना असम्भव है । ब्राह्मण पाठक बैरका वर्णन अतपस ब्राह्मणमें इस प्रकार जाता है—

मनोर्षे वा अक्षय आस । तस्मिन्नासुराऽपि उपलब्धाऽपि वाप्यसिद्धाः ।

उत्पन्न इ अक्षयः अक्षयः अक्षयः अक्षयः अक्षयः अक्षयः अक्षयः अक्षयः अक्षयः अक्षयः

असुरिरे पाप यत् नोऽवमुच्यते । अक्षयः कथं निर्वर्तयन्मुच्यतेति उ वा मा १

मनुका एक बैक का उद्योग अक्षयों और उपलब्धि का प्राप्त करने प्रविष्ट हुई थी अतः अक्षय प्राप्त करने के लिए और रक्षण मर्तित होते हुए वह हो पाते थे । वे अक्षय मिलकर विचार करने लगे कि, वह बैक कहा पानी है इतना कहा बात करें ” इत्यादि । वह उक्त वर्णन आकाशिक है । इसके बाद इत्यदि । केन है कि बैकमें अक्षयवाचक शक्ति है ।

१८ वें मंत्रमें ब्राह्मणको बैक दान करनेका महत्त्व पुनः कहा है । वह एक दान सेवकों द्वाराके समान है वह दान ही विशेष महत्त्व है । आयेके दान मंत्रोंमें बैकके दानका महत्त्व वर्णन किया है इस विषयमें इसके पूर्व बहुत लिखा गया है । इसी प्रकार अग्निमान्तीन मंत्रोंमें बैककी ऐसी कथा वर्णन है ऐसे बैक गौप्येतिहास रक्षनेका उपदेश अग्निमान्तीन मंत्रमें किया है । वे दान विचार गौ और बैक का महत्त्व वर्णन कर रहे हैं । पाठक इन उक्त उपदेशोंका महत्त्व जानकर और बैरका अपने घरमें लाकर बर्तें लाकर बर्तें और उनसे विशेष आनन्द लेंगे ।

# पञ्चोदम अञ्ज ।

[ ५ ]

( ऋषिः भृगुः । देवता पञ्चोदमोऽञ्जः )

( १ )

आ नयेतमा रमस्व सुकृतां लोकमपि गच्छतु प्रज्ञानम् ।

शीर्त्वा तर्मांसि बहुधा महान्त्युजो नाकमा क्रमतां तृतीयम् ॥ १ ॥

इन्द्राय माग परिं त्वा नयाम्यस्मिन् युञ्जे यजमानाय सूरिम् ।

य नो द्विपन्त्यनु तान् रमस्वानागतो यजमानस्य वीराः ॥ २ ॥

प्र पदोऽयं नेनिग्धि बुधरितं यज्चाचारं शुद्धैः शुक्लैः क्रमतां प्रज्ञानम् ।

शीर्त्वा तर्मांसि बहुधा विपश्यन्मनो नाकमा क्रमतां तृतीयम् ॥ ३ ॥

अर्थ— ( एव आत्मन ) इसको वहाँ का नीर ऐसे ( आत्मन ) कर्मोंका प्रारम्भ कर कि जिससे वह ( प्रज्ञानम् ) आत्मको वाता हुआ ( सुकृतां लोकं अपि गच्छतु ) सत्कर्म करनेवालोंके स्वायको प्राप्त होवे । मार्गमें ( महान्ति तर्मांसि बहुधा शीर्त्वा ) बड़े अचकारोंको बहुत प्रकारसे चरके वह ( अञ्जः तृतीयं नाकं आक्रमतां ) अजन्मा तीसरे स्वर्गधामको प्राप्त होवे ॥ १ ॥

( अरिभयं बधे ) इस पदमें विषय ( इन्द्राय यजमानाय भागं सूरिं त्वा ) इन्द्र और यजमानके द्विप भागमूल परे हुए ज्ञानीको ( परि नयामि ) सब नीर लेजाता हूँ । ( ये नः द्विपन्ति ) जो हमारा द्वेष करते हैं ( तान् अनुमरन् ) हमको नाश करना आरंभ कर । और ( यजमानस्य वीराः अनागतः ) यजमानके पुत्र अथवा वीर पावरहित हों ॥ २ ॥

( यद् बुधरितं यज्चा ) जो बुधचार होनेसे किया होगा वह सब ( यद् अ नय नैनिग्धि ) इसके बाँधे हो बाध । इन्द्रक पक्षाद् बध ( शुद्धैः शुक्लैः क्रमतां नाक्रमतां ) शुद्ध पक्षोंसे मार्गको जानता हुआ चके । ( विपश्यन् तर्मांसि बहुधा शीर्त्वा ) देखता हुआ अचकारोंको बहुत प्रकार से चरके ( अञ्जः ) वह अजन्मा ( तृतीयं नाकं आक्रमतां ) तृतीय स्वर्ग धामको प्राप्त करे ॥ ३ ॥

आवाप-इसको वहाँ के आत्मो हुए कर्मोंका प्रारम्भ करी, अपनी सज्जितके मार्गमें आत्म सत् और सत्कर्म करनेवाले जहाँ चले है वह स्वायको प्राप्त करी । मार्गमें बड़े अग्रचारके स्वाय मर्गेसे उनका लांचना चाहिये इस प्रकार वह अजन्मा आत्मा परम उच्च अवस्थाको प्राप्त होता है ॥ १ ॥

इस पदमें पुनः सब नीर के काटा है । तू ज्ञानी बचकर प्रमुक्त किए आत्मधर्मपर्यन्त पर और बलशाली प.प. यजमानों पर । जो द्वेष करते उनको दूर कर । इस तरह बलशाली कार्यमात्र मिथ्याय नमें और कार्य करे ॥ २ ॥

पुनः अजन्म के आत्माका हुआ होगा उसको जो बाध आये हुए बाँधोंसे अद्वय मार्ग अचक्रण कर । पारो और मार्गको देख सब अचकारोंको नाश कर अजन्मत्वकी दूर करके परम उच्च अवस्थाको प्राप्त करे ॥ ३ ॥

अनुं पृष्ठय द्यामेनु स्वर्चमेतां विंशस्तर्यथापर्वमिना मामि मस्थाः ।

मामि हुहः पृष्ठयः कल्पयैव तृतीये नाके अधि वि भयैवम् ॥ ४ ॥

श्रुषा कुन्मीमप्यगनी भयाम्या सिञ्चोवुकमव धेसेनम् ।

पर्यापत्तामिनां श्रुतितारः श्रुतो गच्छतु मुकृता यत्र लोकाः ॥ ५ ॥

उत्क्रामातः परि चदत्तपृष्ठप्राधरोरिषि नाकं तृतीयम् ।

अप्रेरधिरव स प्रभूविष्य ज्योतिर्मपन्तमभि लोक धर्मैतम् ॥ ६ ॥

अजो अभिरजम् ज्योतिराहुवज्जीवता अक्षणे देयमाहुः ।

अवस्तमास्पर्प इन्ति दूरमुस्मिहोके अश्वाशन वृषः ॥ ७ ॥

अथ- इ ( तिस्रस्तः ) विशेष सामकां ए ( पूर्णं स्वर्चं यथा पद ) इस स्वर्चा को जोड़ोंके अनुसार (इयमेव जमिना अनुपठय) काफ सपत्तं काठ बाक । ( मा अभि मस्थाः ) मत् अभिमाय कर, ( मा अभि हुहः ) मत् होह कर । ( पृष्ठयः एवं कथय ) जोड़ोंके अनुसार इसको समर्थ बना । और ( तृतीये नाके एवं अधि विभय ) तीसरे स्वर्गवाक्यमें इसको स्थापित कर ॥ ४ ॥

( जमना कुन्मीं जमो जमिभवाभि ) मंत्रसे इस वाक्यको मैं जमिपर रचवा हूँ । उसमें ए ( उदक वा सिञ्च ) एक बाक और ( एवं जय येहि ) इसको वहीं स्थापित कर । हे ( धामितारा ) साष्ट करवेवाक्ये । तुम ( जमिना पर्यापत्त ) जमि द्वारा चारों ओरसे इसकी घारणा करो । वह ( जमना गच्छतु ) परिपक होकर वहाँ जाने कि ( यत्र मुकृता लोकाः ) वही सरकम करनवाक्योंका स्थान है ॥ ५ ॥

( जमना उत्क्राम् चरोः ) हम उपे हुए वतमध ( मत्तः ) न सपत्त होवा हुआ ए ( परि उदक काम ) करव एक जीव ( तृतीय नाकं अधि ) तीसरे स्वर्गनामको प्राप्त हो । ( जमना जमि ) जमिसे करव ( जमिना सं वभूविष्य ) जमि पदक होवा इ अजः ( एव ज्योतिर्मपन्तं लोकं अभिरजम् ) हम पञ्चस्वी लोक का जय कर ॥ ६ ॥

( जमना जमिः ) अजमना जमि है ( अजं उ ज्योतिः जाहुः ) न जमनेवाक्य लेख है ऐसा कहते हैं । [ जीवना जम मरने देवं जाहुः ] जीव हुए मनुष्यके द्वारा अपना अजमना नामका वरदानके बिना समर्पण करने योग्य है ऐसा कहते हैं । [ जमिमना काठे सपत्तमेव दत्तः ] हम काठमें प्रकाश करवेवाक्यमें समर्पित किया हुआ [ अजः जममि मूर्त्तं जय इन्ति ] अजमना नामका अजमकारोंको पूर मगावा है ॥ ७ ॥

आपत्तय वाक्क साकक विंश छद्क जोड़ोंके अनुसार तत्पत्र छद्कत छद्कतबोम करे और तैम रि बेलोंको पूर करे । अभिम न म धरे और विंशता होट भी म करे । प्रत्येक अथर्ववेदमें सामान्य वराय करे और परम उत्पन्न स्थानका प्राप्त करे । पञ्चानना वर्तन अमरर रणा माय उसमें वनी दाना जाय चरो ओरसे अग्यो प्रचार अक रिवा जाने, वरन्ध यम ए वही गुह्य व नवान कडे हो वही मेत्रावर उनको दिया जाने ॥ ४ ॥

तत्प वर्तनय एवा नदर निज । कि अक व ताता हुआ हीन दे । और परम उच अवस्थाका प्राप्त हो । अतिर जमि अथीन आगम वरम ए विरजकन ह । उच । मय भाकन आने हम वरने प्राप्त व । ॥ ५ ॥

अज ना आगम भी अज कहते है । अजमना परमामा भी मेनाम दे ऐसा ज्ञानी कहते हैं । जो वन देवकी संतोके आरात्र अ जम ना न पत्ता दे वह परमामा प्रवचन वरमना मिले मममि होने वाच्य है ऐसा ज्ञानी कहते हैं । इस भीरव ध । न व द १९७ १९७७ विवा जय । १८ अजमना अरमा उच अजमना वी ए व उचता है ॥ ७ ॥

पञ्चोदयः पञ्चधा वि क्रमतामार्कस्यमानुषीणि ज्योतीषि ।

इवानानां सुकृतां प्रेहि मर्ध्यं तृतीये नाके अग्निं वि श्रयस्व

॥ ८ ॥

अथा रोहं सुकृतां यत्र लोकः श्वरमो न चषोऽस्ति दुर्गाण्येष ।

पञ्चोदनो ब्रह्मणे दीयमानः स वातारं सृष्ट्वा तर्पयति

॥ ९ ॥

अजक्षिनाके त्रिदिवे त्रिपुष्टे नाकस्य पुष्टे ददिवारं दधाति ।

पञ्चोदनो ब्रह्मणे दीयमाना विश्वरूपा येनः कामदुष्टास्येकां

॥ १० ॥ (११)

एतद् वो ज्योतिः पितरस्तृतीयं पञ्चोदनं ब्रह्मणेऽञ्च ददाति ।

अबस्तमांस्यर्पं इन्ति दूरमस्मिन्लोके भूदधानेन दत्तः

॥ ११ ॥

इवानानां सुकृतां लोकमीप्सुन् पञ्चोदनं ब्रह्मणेऽञ्च ददाति ।

स व्यगृह्णामि लोकं ज्यैष्ठं क्षिप्रोऽस्मभ्यं प्रतिगृहीतो अस्तु

॥ १२ ॥

अर्थ- [ जोति ज्योतीषि आश्विमात्रा ] तीनों देवोंपर आक्रमण करनेवाका [ पञ्चोदय ] पाँच सोखनोंवाका अन्नमा ( पञ्चवा विक्रमतां ) पाँच प्रकारसे पराक्रम करे । ( इवानानां सुकृतां मर्ध्यं प्रेहि ) पञ्चकर्ता सत्कर्म करनेवाकोत्रि मर्ध्यमें प्राप्त हो । ( तृतीये नाक अग्निविश्रयस्व ) तृतीय स्वर्गवासीमें प्राप्त हो ॥ ८ ॥

( पञ्च - पञ्चोद ) है अन्नमा । ऊपर वह ( पञ्च सुकृतां लोकः ) जहाँ छत्र कर्म करनेवाकोका स्थान है । ( पञ्चः श्वरमः न ) किये हुए ज्वाला के समान ( दुर्गाणि अति दृष्टः ) संकरोति परे जा । पञ्चोदयः ब्रह्मणे दीयमानः ) पाँचोंका भोजन करनेवाका अन्नमा परब्रह्म के किये समर्पित होता हुआ ( सः ) वह [ वातारं सृष्ट्वा तर्पयति ] वाताको तृप्तिसे प्रसन्न करता है ॥ ९ ॥

( जवाः ) अन्नमा अन्नमा ( ददिवारं ) आत्मसमर्पण करनेवाको ( त्रिवाके त्रिदिवे त्रिपुष्टे ) तीनों सुखोंको देनेवाक तीनों प्रक्रमकोंसे युक्त, तीन पीढ़ों आचारोंसे युक्त ( नाकस्य पुष्टे ) स्वर्गवासीके स्थानपर ( दधाति ) धारण करता है । ( पञ्चोदयः ब्रह्मणे दीयमानः ) पाँच भोजनोंवाका जो परब्रह्मको समर्पित होता है ऐसा दू स्वर्ग ( एका विश्वरूपा यैः अति ) एक विश्वरूप कामदेवके समान होता है ॥ १० ॥

है ( विवर ) विचरो ! ( आ एतद् तृतीयं ज्योति ) आपके किये यह तीसरा तैम है जो ( पञ्चोदनं अन्नं ब्रह्मणे ददाति ) पञ्च भोजन करनेवाके अन्नमा अन्नमा का परब्रह्मके किये समर्पण करता है । ( अर्धधानेन दत्तः जवाः ) महाह्म इत्या समर्पित हुआ अन्नमा आत्मा ( अस्मिन् लोके तस्मिन् दूर अवस्थित ) इस लोकमें सब अन्नकारोंको दूर करता है ॥ ११ ॥

( इवानानां सुकृतां लोके ईप्सुन् ) पञ्चकर्ता छत्रकर्म करनेवाकोके कोकडी मासिकी इप्सा करनेवाका जो ( पञ्चोदनं पञ्च ब्रह्मणे ददाति ) पञ्च भोजन करनेवाके अन्नमा अन्नमाको परब्रह्मके किये समर्पित करता है । ( सः ज्योति एतं लोकं पञ्च ) वह दू ज्योतिवाके इस लोकको भीत के ( वह प्रतिगृहीतः अस्मभ्यं शिवाः अस्तु ) स्वीकृत हुआ हमारा किये कल्याणकारी होने प १२ ॥

भावार्थ-तीन देवोंको प्राप्त करनेवाका वह आत्मा पाँच भोग प्राप्त करनेवाका है। वह पाँच कार्यक्षेत्रमें पराक्रम करे। वह करनेके छत्रकर्म करनेवाकोके मर्ध्यमें प्रसुप्त स्थान प्राप्त करें और परम सत्य अन्वयानें विराजमान होने प ८ ॥

है अन्नमा ( पञ्च दीयमानः ) अन्नमा समर्पित पञ्च और सत्कर्म करनेवाके ज्योति जहाँ पहुँचते हैं वहाँ प्राप्त ॥११॥ अन्न प्रकार पिया हुआ पद होता है ऐसा दू सुरक्षित होकर सब कर्माँ परे जा । पाँच भोजनोंका भोग देनेवाका ज्ञाता परमात्मा ॥ त्रिभुवन विष्वक् समस्त करनेवाकेकी कल्प करता है ॥ ९ ॥

अमोः संश्लेषेरन्निष्ट लोकाश्च विप्रो विप्रस्य सप्तसो विपुषित् ।

इष्टं पूर्तमभिपूर्तं वषट्कृतं तद् देवाः श्रुतुषः कल्पयन्तु

॥ १३ ॥

अमोः वासो दद्याद्विरण्यमपि दक्षिणाम् ।

तथा लोकान्त्समामोति ये विष्वा ये च पार्ष्णिवाः

॥ १४ ॥

एतास्त्राजोप यन्तु भाराः सोम्या देवीर्धृतपृष्ठा मधुसुताः ।

स्वमानं पृथिवीमुत यां नाकस्य पुच्छेऽपि सप्तर्षमी

॥ १५ ॥

अमोः सुखं स्वर्गोऽसि स्वयां लोकमङ्गिरसः प्राञ्जानन् । तं लोकं पुण्यं प्र ज्ञेयम् ॥ १६ ॥

अर्थ— ( अमोः अमोः लोकाश्च विप्रो विप्रस्य सप्तसो विपुषित् ) अमोः नामा अमिष्य ऐक्यत्वात् परमात्मके ऐक्ये प्रकट हुआ है । विप्रस्य महसः । विप्रस्य शशी परमात्मकी लक्षिते [ विपुषित् विप्रः ] वह शशी वैतथ्य प्रकट हुआ है । ( इष्टं पूर्तं ) इष्ट और पूर्त ( अभिपूर्तं वषट्कृतं तद् ) संपूर्ण वज्रके द्वारा समर्पित इसको ( देवाः श्रुतुषा उत्त कल्पयन्तु ) देव यज्ञके अनुकूल समर्थ बनाते हैं ॥ १३ ॥

( अमोः दित्यपयं वासः ) साथ वैदिकर हुआ हुआ सुखमेव वष और ( दक्षिणं अपि दद्यात् ) दक्षिणा भी दी जाने । ( तथा लोकाश्च समामोति ) इससे ये लोक वह प्राप्त करता है, ( ये विष्वा ये च पार्ष्णिवाः ) जो पुष्कोने और जो इस पृथ्वीपर हैं ॥ १४ ॥

हे ( अमोः ) अमोः नाम्नाम् । ( एताः सोम्याः देवी ) ये सोम सेवकी हिम ( मधुसुताः मधुसुता ) की और सहस्रते पुत्र ( भाराः त्वा वपयन्तु ) रसवत्सर्प सेरे पास पहुँचें । और ए ( सप्तर्षी अपि ) मात त्रिमूर्तिके दर्पके कर ( नाकस्य पुच्छे यां ) स्वर्गके पुच्छभागपर पुष्कोको ( तद् पृथिवीं तत्स्वमानं ) और पृथ्वीको स्मि कर ॥ १५ ॥

हे ( अमोः ) अमोः नाम्नाम् । ए ( अमोः वसि ) अमोःवसि है ए ( स्वर्गोऽपि ) सुखमेव है [ तथा मंत्रिका लोकं प्राञ्जानम् ] ए वैदिक लोकको जाननेवाला है । [ तं पुण्यं लोकं प्र ज्ञेयं ] उस पुण्यकारक लोकको मैं जानना चाहता हूँ ॥ १६ ॥

पार्ष्णिवा—अमोः नाम्ना आत्मा आत्मसमर्पण करनेवालेको यह प्रकारके सुख सुखपूर्व स्वामके लिए वैतथ्य प्रकट है । अमोः मोक्षको मोक्षता बीजत्वा परमात्मके लिए समर्पित होनेपर वह एक अमोःके लिए वैतथ्य प्रकट है ॥ १ ॥

या पांच अमोः मोक्षता बीजत्वा परमात्मका समर्पित करना है वह मानो यह पितरोंके सिने सुखी ज्योति देनेके समान है । वह समर्पण बलि भ्रष्टाके किता तो वह सब अज्ञानान्धकारको दूर करता है ॥ ११ ॥

विप्र लोकाश्च वषट्कृतं वषट्कृतं प्राप्त करते हैं वहाँ पञ्चमीवशी बीजत्वा परमात्मके सिने समर्पण करनेवाला जाता है । अमोः तु इस अमोः लोकको प्राप्त हो । वह लोक प्राप्त होनेपर वषट्कृत के सिने अमोःकापी होने ॥ १२ ॥

परमात्मके ऐक्ये अमोः बीजत्वा प्रकट होता है । महान् शशी परमात्मकी यहिवासे वह वैतथ्य बीजत्वा प्रकट होता है । इसके वषट्कृतके अनुकूल यह वषट्कृत वैदिकर पूर्ण करते हैं ॥ १३ ॥

इष्टं वैदिकर हुआ हुआ वषट्कृत दक्षिणके साथ साथ करना अवहित है । इस वषट्के मादिक और अमोःके बीजत्वा प्रकट होती है ॥ १४ ॥

ये विप्र बीजत्वाके आधारों को और मनुके साथ विप्रकृत प्राप्त हो इनके ऐक्य करके ए इस भूमिके दक्षिणी पर स्वर्गवासमें स्थापित कर ॥ १५ ॥

ए अमोः और पुष्को है । ए वषट्कृतके बीजत्वा प्रकट है । यह पुष्कोके बीजत्वा प्रकट है । यह जानना चाहता हूँ ॥ १६ ॥

येनां सृष्ट्वा ब्रह्मसि येनाभि सर्ववेदसम् । तेनेम यज्ञ नो बह स्वर्दिषेणु गन्तवे ॥ १७ ॥

अथः पृथः स्वर्गे लोके दधाति पञ्चीदना निर्धितिं बाधमानः ।

तेनं लोकान्स्वर्गवतो जयेम ॥ १८ ॥

यं ब्राह्मणे निवृत्ते यं च विष्णु या विष्णु ओबुनानामुत्तमम् ।

सर्वं तदमे सुकृतस्म लोके आनीतामः संगमने पञ्चीनाम् ॥ १९ ॥

अथो वा इदमग्ने व्यक्रिमत तस्योर् इयममवत् सौः पृष्ठम् ।

अन्तरिक्षं मय्यं दिशः पार्थे संमुद्रौ कुशी ॥ २० ॥ ( १२ )

सत्यं चर्तं च चक्षुषी विश्वं सत्यं भद्रा प्राणो विराट् सिरः ।

एष वा अर्परिमितो यज्ञो यवुजः पञ्चीदनः ॥ २१ ॥

अर्थ- हे अग्ने ! ( तेनं सृष्ट्वा ब्रह्मसि ) जिससे तू सृष्टियों के कारण है और ( येन सर्ववेदसम् ) जिससे सब ज्ञान तू पहुंचाता है ( तेन ) उससे ( यः इयं वत् ) हमारे इस यज्ञ की ( हेतुः सः पृष्ठमे ) देवों के अन्दर विद्यमान तब को प्राप्त करने के लिये ( यः ) के यज्ञ ॥ १७ ॥

( पञ्चीदनः पृथः अथः ) पञ्च भोजनवाका परिपक्व हुआ अन्नमा आत्मा ( निर्धितिं बाधमानः ) दुरवस्थाका नाश करता हुआ (स्वर्गे लोक) स्वर्ग लोकमें ( दधाति ) जागृत करता है । ( तेन ) इससे ( एषवतोः कोकान् जयेम ) सर्वकाक कोकों को जीतकर प्राप्त करेंगे ॥ १८ ॥

( यं ब्राह्मणे निवृत्ते ) जिसकी ब्राह्मणों रक्षता है ( यं च विष्णु ) जिसकी प्रजाजनों में रक्षता है और ( अन्नस्य कोदण्डा वाः विष्णुः ) जो अन्नमा आत्माके ओलों की पूर्तिवा है वह अग्ने ! ( यः सर्वं यत् ) हमारा वह सब ( सुकृतस्य लोके ) पुण्य लोकमें ( पञ्चीनां संगमने ) मार्गों के संगममें है ऐसा ( आनीताम् ) आने ॥ १९ ॥

( अथो वा इदमग्ने व्यक्रिमत ) अन्नमा आत्मा ही सर्वकार्यों इस संसारमें विक्रम करता रहा । ( तस्य वा इयं वमवत् ) उसकी छाती वह भूमि वसी और ( याः पृष्ठं ) सुलोक पीठ होगया । ( अन्तरिक्षं मय्यं ) अन्तरिक्ष मरवमाग और ( दिशः पार्थे ) दिशाएं पाथमाग तथा [ समुद्रौ कुशी ] समुद्र कोलों वसी ॥ २० ॥

[ सत्यं च चर्तं च चक्षुषी ] सत्य और चर्त के उसकी अक्षि [ विश्वं सत्यं ] सब विश्व अस्तित्व [ भद्रा प्राणः ] भद्रा प्राण और [ विराट् सिरः ] विराट् सिर वसी । [ यत् पञ्चीदनः अथः ] जो पञ्च भोजन अन्नमा आत्मा है वह [ यः ] है अर्परिमितः वज्रः ] वह सबसुख अर्परिमित वज्र है ॥ २१ ॥

भाषार्थ- हे तेजस्वी देव ! जिस कालसे तू सृष्टियों आरंभ का काल अवस्थात केमाला है सब ज्ञान सबको पहुंचाता है वह अक्षिणीय छविसे हमारे यज्ञ की तू सब देवों के पास पहुंचा जिससे मुझे दिव्य तेजस्वी प्राप्ति होने ॥ १७ ॥

पञ्चभोजन करनेवाला अन्नमा आत्मा परिपक्व होता हुआ अवगति पुर करता है और स्वर्गलोक प्राप्त करता है । हम सब कुछ परिपक्व आत्माके द्वारा प्रकाशवाले लोक प्राप्त कर लेंगे ॥ १८ ॥

आ ब्राह्मणों के लिए हम समर्पण करते हैं जो प्रजाजनों के लिए वर्णन करते हैं जो अन्नमा आत्मा के ओलों की पूर्तिवा है वह सब पुण्यकार्यमें पहुंचानेवाले मार्गों के संगममें है ऐसा आने ॥ १९ ॥

इस यज्ञ में जो निम्न है वह अन्नमा आत्माका ही है । इस आत्माकी छती भूमि है, पीठ यज्ञ है अन्तरिक्ष मरवमाग है दिशाएं वसी हैं और दोनों समुद्र हैं ॥ २० ॥

उसकी आने सब और जगत् है उसका अस्तित्व सब विश्व है उसका प्राण भद्रा और सिर चक्षुष मरवमाग माक है । यह पञ्चभोजनवा अन्नमा आत्मा अन्नमा वक्रप है ॥ २१ ॥  
५ ( अ. सु. भा. का. १ )



अपरिमितमेव यज्ञमाग्नोऽपरिमितं लोकमयं कन्दे ।

योऽक्षं पञ्चोदन् दक्षिणान्योतिषं ददाति ॥ २२ ॥

नास्यास्तीनि मिन्द्राण मज्जो निर्धयेत् । सर्वमेनं समादायेदमिदं प्र वैश्वेत् ॥ २३ ॥

इदमिदमेवास्य रूपं भवति तेनैव स गमयति ।

इह मष्ट उर्ध्वमस्मै दृष्टे योऽक्षं पञ्चोदन् दक्षिणान्योतिषं ददाति ॥ २४ ॥

पञ्चं रुक्मा पञ्च नवानि वस्त्रा पञ्चास्मै तेनयः कामदुर्वा भवन्ति ।

योऽक्षं पञ्चोदन् दक्षिणान्योतिषं ददाति ॥ २५ ॥

पञ्चं रुक्मा ज्योतिरस्मै भवन्ति वर्मं वासांसि तन्नेमिभन्ति ।

स्वर्गं लोकमभुते योऽक्षं पञ्चोदन् दक्षिणान्योतिषं ददाति ॥ २६ ॥

अर्थ—[ यः पञ्चोदन् ] जो पाँच भोजनोपायों [ दक्षिणान्योतिषं अर्धं ददाति ] दक्षिणके तेजसे दक्षिण जगत्मा वा माता समर्पण करता है वह [ अपरिमितं यज्ञं समादाति ] अपरिमित यज्ञको प्राप्त करता है, तथा [ अपरिमितं लोकं वाशयेत् ] अपरिमित लोकको अपने आधीन करता है ॥ २२ ॥

[ अस्व अस्वीभि न मिषाद् ] इसकी इष्टियोंको न लोके [ मज्जो न पिः वषेत् ] मज्जाओंको न पीये, [ एव एवं समादाय ] इस सबको लेकर [ एवं इह भवेद्येत् ] इसको इधर भेज करे ॥ २३ ॥

[ इह इदं दृष्ट अस्व कर्ष भवति ] यह वह ही इसका रूप होता है [ तेन एवं संगमयति ] इससे एवं इसको मिश्रता है [ अस्मै एवं मष्टः कर्षं दृष्टे ] इसके किए अब तेरा और यज्ञ मिश्रता है [ यः दक्षिणान्योतिषं पञ्चोदन् ददाति ] जो दक्षिणके तेजसे साय पञ्चभोजनवाक्य जगत्मा आत्माको समर्पण करता है ॥ २४ ॥

[ यः दक्षिण ] जो दक्षिणके तेजसे साय पञ्चभोजनवाक्य जगत्मा आत्माका समर्पण करता है [ अस्मै ] इसको किए [ पञ्च वस्त्रा ] पाँच ओढ़ने [ पञ्च वसानि वस्त्रा ] पाँच वर्ण वस्त्र और [ पञ्च कामदुर्वा वयवः ] पाँच इह लय दृष्ट देनेवाली गीतें [ भवन्ति ] होती हैं ॥ २५ ॥

[ यः दक्षिण ] जो दक्षिणके तेजसे साय पञ्चभोजनवाक्य जगत्मा आत्माका समर्पण करता है [ अस्मै ] इसको किए [ पञ्च वस्त्रा ] पाँच सुवर्ण सुवर्ण [ ज्योतिः भवन्ति ] प्रकाशमान होती हैं । ( तन्ने ) करीर के किए [ वर्मं वासांसि भवन्ति ] अथवास्त्री वस्त्र होते हैं । और वह [ एवं लोकं वाशयेत् ] इसी लोक प्राप्त करता है ॥ २६ ॥

भाषा—वह पञ्चभोजनी जगत्मा आत्मा को समर्पण करता है उसको लय गायन अथवा यज्ञ करनेका यज्ञ प्राप्त होवे है और वह अस्व ओषधी को प्राप्त करता है ॥ २२ ॥

इह वरुण के लिए किसी की इष्टियोंकी तीसरेकी आवश्यकता नहीं और मज्जाओंकी मिश्रणकी भी आवश्यकता नहीं है । इसका सबको लेकर इह मिश्रणको प्रसिद्ध करता चाहिये ॥ २३ ॥

यही इस वरुण रूप है । लय मिश्रणके साथ इसका संकेत होता है । इससे इसकी अब नम और तेज प्राप्त होता है या पञ्चभोजनी जगत्मा आत्माका समर्पण करता है ॥ २४ ॥

इह समर्पण करनेवालेकी पाँच सुवर्ण पाँच लकीर वस्त्र और पाँच कामधेनु प्राप्त होती हैं ॥ २५ ॥

इह समर्पण करनेवाला पाँच सुवर्ण और पाँच प्रकाश प्राप्त हीकर करीरके लिए वयव जैसे वस्त्र प्राप्त होते हैं और वर्म लोक प्राप्त होता है ॥ २६ ॥

या पूर्वं पतिं विस्वाधान्य विन्ततेऽपरम् ।

॥ २७ ॥

पञ्चौदन च तावत् ददासो न वि योपतः

सुमानलोको भवति पुनर्मुवापरः पतिः ।

योऽक्षं पञ्चौदन दक्षिणान्योतिषं ददाति

॥ २८ ॥

अनुपूर्ववत्सां धेनुर्मनद्वाहसुपर्वीणम् । वासा हिरण्य वृत्वा ते यन्ति दिवसुष्टमाम् ॥ २९ ॥

आत्मानं पितरं पुत्रं पौत्रं पितामहम् ।

स्त्रियां जनित्री मातरं ये प्रियास्तानुषं ह्वये

॥ ३० ॥ ( १३ )

यो वै नैदां नामर्तुं वेद । एष वै नैदां नामर्तुपद्वयः पञ्चौदनः ॥

निरेवाग्निषस्य आतृष्यस्य भिर्यं ददति सवंत्प्रात्मना ।

योऽक्षं पञ्चौदन दक्षिणान्योतिषं ददाति

॥ ३१ ॥

अर्थ—[ या पूर्व पति विरवा ] जो पहिले पतिको प्राप्त करके, [ अथ अपरं विन्तते ] पश्चात् दूसरे अश्वको प्राप्त करती है, [ तो पञ्चौदन अक्षं ददाति ] वे दोनों अश्व जोखनवाले अश्वमा आत्माका समर्पण करके [ न विभोपतः ] विपुल नहीं होती ॥ २७ ॥

( या पञ्चौदन दक्षिणान्योतिषं अथ ददाति ) जो पञ्च जोखनवाले दक्षिणके सेवसे पुष्ट अश्वमा आत्माका समर्पण करता है वह ( अपरः पतिः ) दूसरा पति ( पुनर्मुवा समाचकोऽथ भवति ) पुनर्विवाहित स्त्रीके साथ समागमनवाला होता है ॥ २८ ॥

( अनुपूर्ववत्सां धेनुं ) कमसे प्रतिवर्ष बछड़ा देनेवाली गौको और ( अथर्वाहं ) वैद्यको तथा ( उपवर्हणं नामः हिरण्यं ) औरनी वस्त्र और सोना ( वरवा ) देकर ( ते अश्वौ द्वि यन्ति ) वे अश्वम अश्वकोषको प्राप्त होते हैं ॥ २९ ॥

( आत्मानं पितरं पुत्रं ) अपने मापको पिताको पुत्रको ( पौत्रं पितामहं ) पौत्रको और पितामहको ( ज्ञानं वायवीं मातरं ) स्त्री और ज्ञानी माताको और ( ये प्रियाः तान् ) जो हृदय में ( उपह्वये ) पाय छुटाता है ॥ ३० ॥

( एष वै नैदाः नाम कर्तुः ) यह निश्चयसे निश्चय अर्वाह ग्रीष्म ऋतु है ( य पञ्चौदनः अथः ) जो पञ्चमोजनी अथ है । ( या वै नैदां नाम कर्तुं वेद ) जो हृदय ग्रीष्म ऋतुको जानता है और ( या दक्षिणा योतिषं पञ्चौदन अथ ददाति ) जो दक्षिणके सेवसे पुष्ट पञ्चमोजनी अश्वका समर्पण करता है वह ( जदिष्य आतृष्यस्य भिर्यं निः ददति ) अग्नि सन्तुके स्त्रीको सर्वथा ब्रह्मा देता है और वह ( आत्माका भवति ) अपनी आत्मप्राप्तिसे प्रभावित होता है ॥ ३१ ॥

भावार्थ— जो पहिले पतिको प्राप्त करके पश्चात् पुनर्विवाहने दूसरे पतिको प्राप्त करती है वह इन पञ्चमोजनी अश्वम समर्पण करके विपुल नहीं होती ॥ २७ ॥

जो पञ्चमोजनी अश्वमा आत्माका समर्पण करता है वह दूसरा पति पुनर्विवाहित पतिके गणना में होता है ॥ २८ ॥ प्रतिवर्ष वरवा देनेवाली गौ अश्वम वैद्य जोखनेवा बछ और पुनर्वाह इत्यादि नाम करनेसे अश्वम अश्व प्राप्त होत है ॥ २९ ॥

अश्वमा आत्मा पिता पितामह पुत्र पौत्र जनित्री अथमदेवकी माता और जो हमारे विर है अथ एवमा में माता और वह माता सुभाता है ॥ ३० ॥



एष वा अभिपूनामर्तुर्यदुजः पञ्चोदयनः ।

निरेवाग्रिमस्य आसृज्यस्य भियं ददति मर्षत्यात्मना ॥

योऽस्य पञ्चोदयं दक्षिणाज्योतिषं ददाति

॥ ३६ ॥

अस्य च पञ्चत पञ्चै चोदयान् ।

सर्वो दिशः समनसः सग्रीचीः सान्तर्देहाः प्रति गृह्णन्तु त एतम्

॥ ३७ ॥

तास्ते रक्षन्तु तद् तुभ्यमेत साम् आज्यं दुधिरिदं क्षुशोमि

॥ ३८ ॥ ( १४ )

नमिसकर्मो एष भियं वादत ) वरास करमेवाही योमाको इर केता है । इसके ( नमिसकर्म ) नमिप सन्तुकी श्रीको क्का देता है और ( नमसवा मयति ) नमयी कश्चिसे रहता है ॥ ३६ ॥

( नमं पञ्च मोदयान् च पञ्च ) इस नमस्याको और पाँच मोदयोंको परिपक्व करो । ( ते एत ) तेरे इस नमको प्रार्थना दिशः ) सब दिशाएँ ( सान्तर्देहाः ) नैऋतिक प्रदेशोंके प्रायः ( सग्रीचीः समनसः ) सहस्रत और एक विचारसं युक्त होकर ( नमिगृह्णन्तु ) स्वीकार करें ॥ ३७ ॥

( ताः ते तुभ्यं तव एतं रक्षन्तु ) वे तू ही तेरे किन्तु तेरे इस नमस्याकी रक्षा करें । ( साम् ) इदं वाज्यं हाव क्षुशोमि ) इनके किन्तु इस भी और इनके सामग्रीका इत्थन करता हूँ ॥ ३८ ॥

ध्यातव्य— वरता कर्म देवम सुवि कथम और नियम ये छः शब्द हैं । ये छः शब्द इस पञ्चमोदयनी अजस्र रूप है । जो इसका स्वरूप जानता है और इसका समर्पण करता है वह सन्तुको परास्त करता है और अपने आत्माकी कृति बढाता अपना आशिक बढते युक्त होता है ॥ ३६-३७ ॥

इस नमको और इसके पाँचों मोदयोंकी परिपक्व नमामो सब दिशा और उपविष्टार्थ इसकी अन्वार्थ, नमार्थ वह सब रिशामोका बने ॥ ३७ ॥

ये सब नमस्याकी रक्षा करें और आत्मरक्षाके तैरी उत्पत्ति हो । इसी उद्देश्य इस भी की आहुती में देना है वह एक पञ्चोदयन बहाहरण है ॥ ३८ ॥

पञ्चोदयन अज ।

इस वृत्तमें पञ्चोदयन अज को स्वरूपान केसा प्राप्त होता है इसका वर्णन है । सबसे पहिले वह पञ्चोदयन अज कीन है इस बातका परिचय करना चाहिये । पञ्चोदयन अज ( पञ्चोदयन अज ) का अर्थ पाँच प्रकारके मोदयोंवाले अज है । नमार्थ पाँच प्रकार के अजका योग करनेका वह अज है ।

अज सन्दक अर्थ— अजस्या सहाते रहनेवाका सर्व शक्तिमान् परमात्मा जीव आत्मा वाक्च, वक्त्रा, मान्त्र ये होते हैं । इनमेंसे वहा क्तिश प्रथम करमा चाहिये वह एक विचारणीय बात है । अज सन्दके वहा परमात्माका प्रथम करना अवश्य है क्योंकि वह स्वभावसे वरम तथा मोक्षमें सदा निराजमान ही है इनको अजक सन्दके जानेकी आवश्यकता ही नहीं है । वहा इन मूक्तमें अज अजका वर्णन है उसका विषयमें निम्न लिखित मंत्र बहिये—

- १. सुहृता कोऽ गच्छन्तु प्रजापतम् ॥ ( म १ )
- पीता तमामि नमस्तुमीयं वाक् वाक्मताम् ( म १ ३ )
- तदीये नाक नमि विप्रयेवम् ॥ ( म ४ )
- मनो गच्छन्तु सुहृता वक्त्र कोका ॥ ( म ५ )
- तदीये नाके नमि विप्रयेवम् ॥ ( म ८ )

वह मार्ग जानता हुआ पुनः कर्म करनेवालोंके जोखणों प्राप्त करे । अन्तरात् दूर करके सुदीन स्वर्गवासको प्राप्त होने । परिष्कृत होकर पुनःवालोंके जोखण जावे । सुदीन स्वर्गवासमें आश्रय करे । '

ये मंत्रभाग ऐसे आत्माकी स्वर्गवास प्राप्त करनेके लक्ष्य है कि जिसका पहिले स्वर्ग नहीं प्राप्त हुआ है जो उद्यम जोध में नहीं पहुँचा है जो अथम जोधमें है । अर्थात् वहाँका अथम स्वर्ग परमात्माका वाचक नहीं अपि तु ऐसे व्यक्ताका वाचक है, जो उद्यम जोध को असीतक प्राप्त नहीं हुआ है । अन्तः सम्बन्धे दूसरे अर्थ प्राप्त और बकरा' के हैं । इसमें वाचक स्वर्गवासको प्राप्त होना अद्यतन है आर बकरा कर्मवासको का उद्यम है वा नहीं इस विषयमें संशय है । क्योंकि स्वर्ग तो ( हस्त ) जोधः ) उत्तम करनेवालोंका जोध है । जो स्वयं उत्तम कर सकते हैं वे ही अपने जिन सत्त्वोंके बन्धे स्वर्गवासको का सकते हैं । अतः प्राप्त और बकरा स्वयं स्वर्ग करनेमें समर्थ न होनेके कारण हस्त-जोध को प्राप्त करने में अक्षम हैं ।

वहाँ कई कईये कि जो बकरा यज्ञमें समर्पित किया जाता है वह समर्पित होनेके कारण स्वर्गका भागी हो सकता है । जो विचारणीय बात यह है कि जो स्वर्ग स्वेच्छासे पहुँचोई सम्प्राप्तिके जिन समर्पित होते हैं जो परोपकारके निम्न आत्मसमर्पण कर सकते हैं वे स्वर्गवास प्राप्त करनेके अधिकारी माने जा सकते हैं । जो जोय बकरेको पकड़ते हैं और उसके जंघन हथ करके हैं वे बकरेकी इच्छाका विचार ही नहीं करते । यदि इस प्रकारकी अन्तरात्की वे स्वर्गवासकी प्राप्ति-प्राप्ति सम्भव होना तो जेधमें और बकरेका आश्रयके बीचके जिन समर्पित हो जाता है वे उसकी सब स्वर्गका पहुँचोई, इसका ही नहीं परंतु अथ वंशक अथ वह जिन आहुतिद्वारा समर्पित होनेपर जीवा स्वर्गको जानका समिपार्थ और भी भी वहाँ पहुँचिया । वह तो अन्तरात् है । अब जिन मीठी मारा और खाका तो इसमें जानका आत्मसमर्पण नहीं है । पूर वाका प्रजाकी अन्तरात् प्रजाकी वन संति इष्टी करके केजाल है वहा भी उस पक्षजित प्रजाको परोपकार प्राप्त वा स्वर्गका मेव करनेका पुन्य नहीं सिद्ध सकता । एक ल मिथ्या कि अथ आत्मसमर्पण समर्पण स्वेच्छासे किया गया हो । एतत् अन्तः के अर्थमें वाच्य बकरा' वे आत्मसमर्पण को प्राप्त जान ही नहीं सकते । इसजिन आत्मसमर्पण कर नहीं सकते । और वे स्वर्गवासको प्राप्त नहीं हो सकते । परमात्मा वन जोधमें सत्ता उपस्थित होनेसे बहको कर्म विषयसे आत्मसमर्पण द्वारा वह जोध प्राप्त होता है ऐसी बात नहीं है । अतः केव ल जोय आत्मा नहीं अर्थ वहाँ अपेक्षित है । वह हस्त करदा हुआ स्वर्गवास को प्राप्त करता है और इसी कर्म के लिए उत्तम करनेका एक मने है ।

इस लक्ष्यसे अन्तः सम्बन्ध प्रसिद्ध नहीं बकरा केकर कईजिन बकरेको अन्तरात् पकड़ा उसके जंघन वपको देवा केर बहको स्वर्गको मेवना ऐसे अर्थ जिन हैं । वे वन कारण पुष्टिपुष्ट नहीं है । अस्तु, इस तरह वहाँ हस्त लक्ष्यमें अथ सम्बन्ध जेध जीव आत्मा किंवा जीवात्मा है ।

अथ हेतुना है कि इसको पन्थोवक क्यों कहा है । यह पाँच प्रकारका अथ जाता है इसी लिए इसके पन्थोवकी अथ कहा है । इसके पाँच मोक्षन नीचे हैं । अन्तः स्वर्ग रूप इस और पाँच वे पाँच विषय इसके पाँच मोक्षन हैं वे-अन्तरात् निम्न हैं और वे इसके उपयोग के निम्न हैं । इस विषयमें कहा है—

इा सुबर्मा सुबुजा सञ्जाला समार्थं ब्रह्म परिवक्ष्यमाते ।

उचोरेत्वा पिपक्षे स्वाहृत्यवज्जन्मोऽभिषत्कसीति ॥

अ० १ : १६४ : १ ; अन्तः १ : १ : (१४) : १

एकही ( शरीरकी ) ब्रह्मपर को पक्षी ( जो आत्मा—जीवता और परमात्मा ) बैठे हैं । उबर्मे से एक ( जीवता ) इस ब्रह्मक मंडल तक जाता है और दूसरा न जाता हुआ वैयक प्रकाशता है ।

इस ब्रह्मकी अन्तः स्वर्ग रूप इस और पाँच वे पाँच मोक्षकी तक समर्थ हैं । इनका जीव वह आत्मा आत्मा करता है इसके पक्ष कर्मोत्तिरोत्ति वे पाँच तक इसके पास पहुँचोई । यद्यप्य काली ही अथवा अज्ञानी ही वह हो ना सुख ही । अतः वह आत्मा शरीरमें रहेगा तबतक इसके पास वे पाँच प्रकारके जीव प्राप्त होती रहेंगे । वन विषयोंमें रहनेवाला आत्मा आत्मिके विषय धन करेगा आर जीवमुक्त विषयोंमें रहा आत्मा आत्मिक आत्मिक उपाधीनतासे रहने करेगा । दोनोंकी कायों अथ

तुमारे स्वर्ण भैरवे कर विहारे राख और माकसे गन्ध प्राप्त होगा । ये पाँच भोजन इसक पास जलेंगे कोई भोजन करेगा और यदि नहीं तब बात दूसरी है । पंचोदन अथवा चार अन्न है और यह हरेण्ड जीवाणु के विषयमें अनुभवमें आवश्यक है । इस अन्न के स्वरूपमें विषय स्वर्ण इस सूत्रमें किया है तब अन्न देखिये—

नमो नमिः । नमः नमो नमः । नमः ।

नमः तस्मै नमः ॥ [ य ७ ]

जन्तेः जन्ति सं जन्तुष्वपि ॥ ( मी ६ )

नमः हि जगतेः स्रोताश्च भवन्निह । ( म ११ )

विमलस्य महिषः विमलस्य विमलः अमलविह । (म १३)

पृष्ठ ५१ अपरिमितो ब्रह्म ब्रह्मः पञ्चोदयः । ( मं ५३ )

[illegible]

वहाँ बस बचपन में कहा है कि इस लक्ष्मी जिस अन्धकार बर्षन है वह अग्नि के समान तेजस्वी जब ठिके समान प्रकाशमान होवे तब मात्र अन्धकारों का दूर करनेवाला है परमात्मा का महान् अग्नि के दृष्टि में जिस प्रकार अग्नि प्रज्ज्वलित होवे वैसे ही लक्ष्मी के स्फूर्ति का जहाँ और कबूते हैं वही प्रकाश परमात्मा की दीप्ति के भी स्फूर्ति का जहाँ और कबूते हैं वेही अन्तर्महिमा है। परमात्मा चतुर्वर्ण्य है कबूते वह चेतनस्वरूप हीन आत्मा प्रपन्न हुआ है। वही वह इन्द्र है। इस प्रकार बर्षन का मंत्रमार्ग है। वह ईश्वर के लक्ष हो जाता है कि वहाँ अन्ध लक्ष्मी हीन कर्मा का प्रपन्न बरवा होतव्य है।

बकः। ऐसा लगे बह! के अन्त सम्पन्न होते क्या बनता है ? और हम यंत्रों को संयति भी कैसे कम सज्जी है ? क्या बकरा भस्मि है और पशुपति है क्या कमी बकरे द्वारा आनन्दर दूर हुआ है ? क्या कमी अभिष्ट प्रकाशित बकरा प्रकट हुआ है ? जगत् अन्त सम्पन्न अर्थ बकरा करियर पूर्णतः यंत्रों की छाया लगे बही सब सचता । अन्तः अन्त सम्पन्न बह! जीव जात्या अर्थ सेवा कादि ए वद वास स्थित होई । अन्त इसकी हवा गति होनेके विषये इस सूत्रमें क्या कहा है देखिये—

जलो वा इहमग्ने अकम्बत् । ( मं २ )

अथः पञ्चः स्वर्ग्ये लोके वृत्ताति निर्वाति वाचमायः । ( मं १९ )

अथ च पञ्चत पञ्च सौदामि । ( सं ३० )

“ वह (अमः) अन्नमा आत्मा अणुस्ये प्रारब्धस्य परिणाम कर रहा है। वह अन्नमा आत्मा परिणाम होनेपर अणुमति-  
को हटा करके स्वर्गमें अपने आपका वासन करता है। आत्माको और पाप अणुको परिणाम करा। इस अणुमें जो कुछ मा-  
नस्य हूए हैं वे इस अन्नमाके कारणहीं हैं इस अणुमें जो नश्वर रहा है वह अन्नमाकी वृत्ति ही है। शरीरमें जीवात्मा आर-  
मिमें परमात्मा कार्य कर रहा है। जीवात्मा प्रारब्धमें अणुरिपक अवस्थामें होता है वह कुछ सत्कारों द्वारा परिणम बनना है  
और इसकी वित्तनी परिणकता होता है अतः वह अणुवैशी पण्डिते अणुमतिको दूर करता रहता है। इससे थिड होता है  
कि जीवात्माको जो अवस्थाएं हैं कई तो परिणम स्थितिमें आग होता है शेष वित्तमें हैं तबसे वन अणुरिपक अवस्थामें हैं  
अणु परिणम होनेके मार्गमें होते हैं। इसीको सुक्य और वड अवस्था कहते हैं

यहाँ के आम पक्ष: ये छात्र देखते हैं वहाँ का हुआ बदला। ऐसा जहाँ कई साथ करते हैं वरन्तु जहाँ हुआ बदला स्वर्ग में जानेवाला नहीं तो यहाँ है वह जीवा मांस ललकें के बैठने जाता है। परन्तु यहाँ का परिवर्त हुआ आम जाया स्वर्गवासी



मत्तः गच्छतु सुकृतां वच कोकः । ( मं ५ )

अतः परि तृतीयं नाकं बन्धनम् । ( मं ६ )

सुकृतां मध्य मेहि, तृतीये नाके अत्रि विप्रवत्सवः । ( मं ८ )

धूम कर्म करनेवालोंके सम्पत्तियों का और वे पुण्यश्रीक यज्ञशाला कोय वहाँ जाते हैं, सब तृतीय स्वर्गनाम में जाकर निराश्रय हो । इस प्रकार इसकी उन्नति हो जाती है । तीसरे स्वर्गनाममें प्राप्त करनेकी योग्यता प्राप्त करनेके पूर्व पहिले और दूसरे स्वर्गकी योग्यता मनुष्य प्राप्त कर सकता है और जन्तुमें उसको तृतीय स्वर्गनामकी प्रप्ति होना सम्यक् है । वे तीन स्वर्ग योग्य हैं, इसका भी वहाँ विचार करना चाहिये ।

सब जानते हैं कि वह मनुष्यको है, जो स्वर्ग जगत् है इतने मनुष्यको कहते हैं क्योंकि इसमें सदा नष्ट नष्ट हुआ करती है । इससे दूसरा परम्य इसमें धूम रूपसे रहा सुप्त जोक है इस जगत्के प्रत्येक पदार्थकी प्रतिकृति इस सुप्त स्थितिमें रहती है । अतएव तीसरे स्वर्ग करनेवाला सब सुप्त होनेपर अनेक और विविध—रूप—इससे भी अतिदेवकी रस-विद्याई होते हैं । वह सुप्त स्थिति है । इसको वासुधि भी कहते हैं । स्वर्ग जगत्की ही वह प्रतिकृति होनेके कारण जो सुकृता व स्वर्ग स्थितिमें हैं वे ही इसमें होते हैं । वासुधि स्वर्गके बन्धन और प्रतिबंध इसमें न जाने इसका महत्त्व स्वर्गके आधिक है । वे लोगो अनुभव जब समझ हो जाते हैं और कारण अवस्थामें जब मनुष्य पशुचर स्वर्गनामके विराजता है तो स्वर्गमें स्वर्गनाम प्राप्त होता है ऐसा करते हैं । इसमें तीन वर्ग हैं ऐसा मानते हैं । प्रथम मध्यम और उत्तम वे तीन अक्षरवाच्य स्वर्गमें हैं जिसके चेत्य सुकृत होते हैं । स्वर्गोत्तरी अवस्था वहाँ प्राप्त होती है । सुकृतके अनुसार प्राप्त होमवाकी वह अवस्था तीसरे कारण इसमें प्रत्येकका अनुभव सुकृतमय होनेके कारण मिश्र मिश्र होता है । जिस प्रकार सुप्त स्थिति में अतिमं प्रकल्पता होती है परंतु सुप्तिकी विषयके स्थानकी और सुप्तिकी वचन स्थायी होती है इसी प्रकार वहाँ समस्तता तावित है ।

तृतीय स्वर्गनाममें पशुचरका आश्रय वह है । अतः पाठ्य इस अज्ञान रूप अवस्थाकी प्राप्ति करके सब करें । वही उत्तम स्वर्ग परमनाम स्वर्ग का जो कुछ स्वर्गोत्तरीके वर्णित हुआ है वह वही है । अतएव इसी इसकी प्राप्ति होती है । परिपक्व ज्ञाना होनेपर इसको प्राप्त कर सकता है इस विषयमें निम्नलिखित मन्त्रमात्र देखके बीज है—

अस्य चतुः अक्षरः । ( मं ६ )

“तपे ह्ये पात्रम् रक्षता हुआ भी जो तप्य वही होता, वह ब्रह्मन्त होनेका अविचार्य है । ये ही विचार मित्र धर्मोंमें इस प्रकार किसे का लक्ष्य है— “वृद्धी चतुः रक्षता हुआ भी ब्रह्मके अक्षिप्त रहनेवाला रोचिकके स्वर्गमें रक्षता हुआ भी वीरिय रहनेवाला, ब्रह्मन्त कोयों विचारता हुआ भी जो परमन्त वही रक्षता वही संतप्य प्रदेयमें धर्मित है । रक्षता नाम तपसा है ।

एक वर्तनमें विचार्य पक्ष रही ही तो उसमें रहनेवाले सभी पापक और मूलके जाने सबको कहते हैं यदि एकाग्र भाव न बनकरा रहेगी रहा तो वह किशोके भी वेदमें हजम नहीं होता । इसी प्रकार इस विषयके वर्तनमें वह सब जगत्की विषयों वच रही है । इस तपे और स्वर्गमें ह्ये वर्तनमें जो न गयता हुआ और न वक्तता वा न वक्तता हुआ रहेगा तो उसके रहने बादर केन्द्र जाता है । वही उत्तरी कल्पित है । आगे अक्षरवेद का ११ ( ३ ) में ही ब्रह्मोद्दम पक्ष रहा है इस सब कृषिके विचार्य पात्रमें वह सब विचार्य वच रही है ऐसा वक्त मयाविक वर्तन अक्षरकर कथने आयेगा । वहाँ स्वर्ग पात्र ही रहा है ऐसा वक्त है । इस तपे पात्रमें वहाँ स्वर्ग ही ज्ञान्य हुआ और चप्य हो रहे हैं वहाँ जो ज्ञान्य रहेगा वहीके ज्ञान्य प्राप्त हो सकती है । ज्ञान्यवत्त वैसा पात्रोंमें रक्षता हुआ भी पात्रोंमें वही ज्ञान्यता वही प्रकार परिपक्वताकी प्राप्त हुआ मनुष्य ह्ये इतने जगत्में रक्षता हुआ भी इस जगत्के सुकृती और ब्रह्मके अक्षिप्त रहता है । वह स्वर्गनाम वैदिक अक्षिप्तता अक्षिप्तता अवस्था अवस्था विचार्य केन्द्र पात्रम् है ।

जाना जो ज्ञान ब्रह्मके मर्त्यका पदार्थका ज्ञान इस वर्तनमें विचार्यते हैं वे तपे ह्ये पात्रमें न तपे ह्ये वर्तन में पात्रों किन मन्त्रा ब्रह्मविषय वच विचार्य लक्ष्य हैं और तपे ह्ये पात्रमें बीजका ब्रह्मका ज्ञान ज्ञान्य विचार्यते रह सकता है । वस्तुतः वह वर्तन ही ज्ञान विचार्य वर्तन है । परंतु स्वर्गोत्तरी ज्ञान न समझनेके कारण वही ज्ञानोंके इच्छा विपरीत ज्ञान कर सिद्धा है ।



धीमझमझीठमें जो जलसमाल और जलाशयिका उपवेश है वही वहाँ इस संज्ञमें ' लगे पात्रों में ल गपते हुए रहने पर घन्टीसे किता है । पादक इसकी इस संज्ञ में देखेंगे तो जलकी कोई संज्ञा वही हो सफ्या । इस विषयमें ज्ञाने जलजल-विषय जल अपन उपाय भी बताता है—

यत् सुखरितं जगत् पदं प्र जगदेभिनिमित्तं

पञ्चावन् सुदीः चाफैः जाकमवाम् ॥ ( मी ३ )

या दुराचार हुआ है और जिससे पाँच मसिन हुए हैं। तौ अपने पाँच ना बाल और इस बातकी बात को कि इस प्रकार बलसे पाँच मसिन हो जाते हैं। अतः छत्र पोंकेसे आगे बह।" दुराचारसे पाँच मसिन होते हैं बलसे मोटा पामिने। बलसे पाँच मसिन रक्तकर स्रष्ट भूमिपर पाँच रक्तसे पाँच मुह आचार होयेकी समझना नहीं है। बहा कपलमसे (द्विपुत्र मने पाँच) इस स्मृतिसे बचनछाहीं। आचन कहा है। इस प्रकार आत्मछाष्टिका मार्ग बताया है। अर्धविरमें पूर्वराज्यपर इच्छा लब्ध अथर्व रितिसे किया है—

मुपदारिद मुमुक्षावाः शिवाः स्वात्मा मकारिणः ।

पूर्वं परिब्रजेन्नायं विजे ह्यममन्तु मैनसा ॥ अथर्व १११५॥३०

असि प्रकार बंधनबन्धनसे मुक्त मुक्त होता है। ऐसा यद्यपि साधने द्वारा पहले मुक्त होता है। अपना ऐसा बन्धनसे ही पवित्र होता है। इस प्रकार मुक्त पावसे पवित्र करी।" इसी मंत्रके उपदेशके अनुसार इस सूक्तके मन्त्रमें (ह्रस्वः कर्त्तुः आकाशं) अपने पाँच विभक्त करके आगे बढ़नेकी श्रद्धा है। अपना ह्रस्व आकाशबन्धन (कर्त्तुः कर्त्तुः) ह्रस्व ह्रस्व आकाशमें है। वेदमें 'असि' बन्धने पाँच और आकाशबन्धन ऐसे दो अर्थ हैं। अर्थात् पाँच (पाद) आकाश बन्धनोंके अर्थ आकाशबन्धन ऐसा ही प्रकृत है। इस प्रकार आकाश-ह्रस्वके आरम्भमें करके उपदेश मन्त्र किया है। इस उक्त आकाशमें दोहोके अंतर इसका परमार्थसे सिद्ध वर्तमान है। यह सिद्ध नहीं हुआ। आरम्भमें है। दोहोके इस विषयमें वह मन्त्र विचारणीय है—

बीषण खन्न मङ्गले ऐयं आहुः । ( मं० ७ )

अहंकारेण ह्यहं अहं अहं अहं अहं । ( नं ७ )

जीवित मनुष्यको लक्षित है कि वह अपने (अ-ज) आत्माका समर्पण (मर्त्य) परमपते सिधे करे। परमपते सिधे समर्पित होवे। इस प्रकार भद्रापूर्वक समर्पित हुआ वह अन्तर्गता अन्तर्गता धर्म प्रकारके महात्मन्यभर हो जाता है। समर्पित होनेसे इसकी शक्ति बढ़ती है, समर्पित होनेसे इसका तेज संवर्धित होता है। अब इसके पराम्परा केन्द्र होने-

बन्धुभ्यः पञ्चषा दिक्कमताम् । ( अं ८ )

इस पञ्चमीयती आश्रमा आश्रमा पांच प्रकारके कार्यक्रमों पराक्रम करे ।<sup>१०</sup> कर्त्तव्य लावेनिय, वन विप और पुत्रि के मने पांच कालक्रम है इस क्षेत्रों यह जीव आश्रमा कार्य करता है । इन क्षेत्रों यह रूप विवम करे । यर्कि इसके निम्न परमेश्वर है । इसकी कर्त्तव्य हा सक्ती है । विरमके विना किसीकी भी कर्त्तव्यी सम्पादना नहीं हो सकती । यह निम्न परमेश्वर है । इसकी कर्त्तव्यी विना विरमका : ॥ सं ८ ) तीव्र तेमोकी कर्त्तव्य करता है । इसमें एक तेम रणुका है, दूसरा मन्त्र । इ आर तीव्र तेम आत्यिक है । इस तीमों तेमोंमें कर्त्तव्य हाणी है आश्रम इसके ने तेम बढते हैं । परत इसके तेमोंमें १५ तब होती है कि अब इसका परमात्मके निम्न समान होता है । तात्पर्य यह है कि, आश्रमाध्य कर्मरूप सुख है जी उन्नति । सुख तात्पर्य है । इसके विना कर्त्तव्य अर्धमव है । यह कर्त्तव्यके निम्न-

एषा इन्द्राय भार्गवः परियचामि । ( मं २ )

વચ્ચીદમ) જાણીને શીવજ્ઞાનઃ । ( ૧ । ૩ )

वशीकृतं जलं ब्रह्ममेव धत्तेति । ( सं. ११, १२ )

ଏ ଛାତ୍ରମାନଙ୍କ ବିବୃତ୍ତି । ( ପ ୧୯ )

इसमें मंत्रोंमें प्रत्येक किंचि अत्रन्त्या अष्टमाका समर्पण करनेका बारंबार उपदेश किया है । भी बात विशेष महत्त्वपूर्ण होती है वह वेदमें इस प्रकार बारंबार पुहराई जाती है । अर्थात् वेदमें जो उपदेश बारंबार आया है वह अधिक महत्त्वपूर्ण है ऐसा समझना चाहिये ।

अब चतुर्थ और पञ्चम मंत्रमें समितिके कर्मका उल्लेख है । इसमें लम्बाके फलने और जोड़नेके अनुष्ठान व्यवस्था करनेका तथा पात्रमें घर देविका उल्लेख है । इस किशोके करनेसे वह सुकृती लोगोंके मध्यमें जाता है ऐसा कहा है । यदि इन मंत्रोंमें पहले के फलनेका ही उल्लेख है तो आये ऐसा क्यों करिगे कि—

वास्तास्वीभि सिन्ध्याय मन्त्रो विर्विष्टः ।

सर्वमेव समाह्वयेदमिदं प्रवेक्षयेत् ॥ ( मं २३ )

इसकी इतिहास व दूरे, न इसकी पञ्चमी की भावे या चूरे इस सबको लेकर इसमें प्रवेश करने । वह इसके अवयव न फलनेकी और इष्टाए है मन्त्रा भी नहीं । की भावे अर्थात् इसको चढना नहीं चाहिये । इसकी इतिहास अत्रन्त्या मन्त्रों करनी चाहिये । इसकी पञ्चमी निकालनी नहीं चाहिये । वह इष्टाए स्पष्ट है । इसमें कहा है कि इसके लम्बे सब भागको लेकर इसमें अर्थात् मन्त्र या वरमन्त्राओं समर्पण करो । यही अल्लेख इसके सब भागको उसमें प्रविष्ट करनेका है । अपने आपकी परमार्थमाकी मोहमें जीव वेना, यही मन्त्रिमाकी अन्तिम बीमा है ।

यदि ऐसा है तो समिताल् लम्बाका चढना और जोड़नेके अनुष्ठान उसके अवयवोंको समर्थ बनायेका भाव क्या है वह संका नहीं आसकती है । इस संकाके उत्तरमें विवेचन यह है कि पूर्वोक्त मंत्रोंमें जो फलना कृत्वा किया है वह वही मनीषातक है कि किंचि मन्त्राओंमें उसकी इतिहास अत्रन्त्या न ही मन्त्रा बाहर न चूरे और अवयव अत्रन्त्या न ही परितु सब अवयव समर्थ हों । ( मा अमिहृदा पञ्चमः एव कल्पय । मं ५ ) इसका प्रोह न करना और प्रत्येक बीजमें इसका समर्थ बनना । वच करना यदि चतुर्थ और पञ्चम मंत्रको अमिहृदा होता तो उसका प्रोह न करनेकी आका उसमें क्यों जाती । पहले और इष्टाए हाह हो क्या हो चरता है । और प्रत्येक अवयवकी समर्थ बनाया भी पहले किया होता । वच न किया तो कदाचित किंचि कथावसे उसके अवयव समर्थ बनये जा सकते हैं ; परंतु वच करनेके पश्चात् तो समर्थ बनाया ही अर्थमय है । अता नहीं वच अत्रन्त्या नहीं है वह निश्चय है ।

इसमें ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ मन्त्रोंके स्वरूपने और जोड़नेमें अमिहृदाके धर्मोक्तारा उल्लेखित करनेकी निधि इन मंत्रोंमें लिखी है । जैसे एक प्रकारका संविधात जोड़नेमें पूर्वोक्त अत्रन्त्या इष्टा वचनपरिचय काकनेसे ठीक होता है । वे पूर्वोक्त लक्षिकी जादीकी और लोकेकी हाती हैं और इसी प्रकारके कुछ उल्लेखित मन्त्र भी होते हैं । इनसे पूर्वोक्त कुछ अत्रन्त्या इष्टाकर वचमें विशेष लोचनित्वीय करनेसे छातीके अवयव समर्थ होते होंगे । वह निधि अमिहृदा अत्रन्त्या है परंतु इसका स्वरूप इस प्रकारका कुछ है इसमें संदेह नहीं है । अस्तु वह विषय जोरने योग्य है ।

यदि कोई मनुष्य नहीं इस मंत्रोंमें [ अत्र ] वचनेके वचका उल्लेख है ऐसा ही आग्रह करे तो वह संकर और २१ देके दृश्यमें " अत्रके विवरणका वर्णन है । समुद्र विस्तारी कोरमें है जर पृथ्वी के पुनोक्त वचकी पीठ है इत्यादि वर्णन कभी वच रीति नहीं हो सकता । और यदि ही सकता है तो अत्र " अर्थात् अत्रन्त्या परमार्थमाका हो सकता है । इस परमार्थमाके पुत्र लोचनमाका भी वह वर्णन हो सकता है । क्योंकि परमपिताके पुत्रवर्न आद्यवचसे पुत्रमें लगे हैं और पुत्रका विशाव होनेपर पुत्रक भी पुत्रवर्न पिताके समान होना समर्थ है अर्थात् अब लोचनमा कथत होता हुआ परमार्थमाका वचन है सब समर्थ है ही वर्णन वचमें भर सकते हैं । इसका विचार करने पर इस लक्षके अत्र अत्रन्त्या अत्रन्त्या अत्रन्त्या है इस विषयमें सम्येह नहीं हो सकता और लोचनमाका पूर्वोक्त वचन परमार्थमाके लिए करनेसे ही अब लोचनमाओं परमार्थमा भाव आयाव कभी धन्य इसका भी पुत्र भाव पुनोक्त और अमिहृदा मन्त्रमाय और पृथ्वी तकका भाव हो चरता है । अता कि रं २ और २१ में कहा है । भर इतिहृद इष्टो भावे—

पृथ वा अपरिमितो यजो यद्वयः पञ्चोदयः ॥ [ सं २१ ]

यह अपरिमित यज्ञ है जिसका नाम अन्न अर्थात् अन्नमा आश्रय है। "अन्नमा-परमाश्रयमे हो यह अपरिमित हो सकता है क्योंकि इस प्रकारकी अपरिमितताकी कल्पना करना अशुभव प्रतीत होता है। अशुभता की कल्पना और कल्पति कल्पि मित है इत्यदि—

अपरिमितं यज्ञं आप्नोति । अपरिमितं कोकं अवददे । [ सं २२ ]

आश्रयका समर्पण करनेसे अपरिमित यज्ञ होता है और आश्रयसमर्पण करनेसे अपरिमित कोक प्राप्त होते हैं। "अपरिमितके दानसे ही अपरिमित यज्ञ प्राप्त हो सकता है। अन्न सब दान परिमित है आश्रयका दान ही अपरिमित दान है। इसी लिए अन्न पदार्थके दानसे परिमित कोक प्राप्त होते हैं और इस आश्रयका समर्पण करनेसे अपरिमित कोककी प्राप्ति हो जाती है।

अ समर्पणके साथ यज्ञ और सुकर्ष दान भी होना चाहिये, कुछ विषयका विचार सं २५, २६ और २७ में है। अन्तिम दान दक्षिणके साथ ही हुका करता है। दक्षिणके बिना दान फलहीन हुका करता है। अत्र २७ और २८ में "पुनर्विदितं दानं पतिपत्नी पञ्चादयः अथवा दान करनेसे तो विपुल वहाँ होती" ऐसा कहा है। पठक वहाँ देखें कि इस संज्ञा में 'सन्ने' पद आता है। अर्थात् वहाँका आश्रयसमर्पण प्रकट है नहीं है। पतिका पञ्चमोदनी आश्रय पतिको समर्पित होने और सन्नेका आश्रय पतक लिए समर्पित होने। पुनर्विदित पति ही अथवा पत्नी ही है पूर्व पत्नी या पतिको विपुल न करे वे इस पत्नी पति का ही अश्रय धर्महय समझें। पूर्वका स्मरण करते रहनेसे पतिपत्नये अवका हो सकता है और संस्कारा सुक हो जाते हैं। इससे कहा है कि पति पत्नीके लिए आश्रयसमर्पण करे और पत्नी पतके लिए आश्रयसमर्पण करे। वहाँ कई पृष्ठोंमें कि अन्न वादके पतिपत्नीके विध्वने ऐसा आश्रय क्यों नहीं दिया है ? इसका कारण इसका ही है कि, प्रथम बार की पतिपत्नी के कर्मों रक्षनेके लिए दूसरी पत्नी का दूसरा पति नहीं होता। इसके लक्ष्य परस्पर प्रेम करना अत्यन्त ही है। परंतु पुनर्विदित की-पत्नी को पूर्वपत्नीका स्मरण होना संभव है इससे कुछ दोषका विचार करनेके लिए वहाँ सूचना दी है। और यह विचार योग्य है।

इत्युक्तमे मन्त्रमें कहा है कि जो यज्ञ और सुकर्षका दान करनेसे स्वयं प्राप्ति होती है। कस्यानमें दान करनेसे वना न हो सकता है। इसके दानका महत्त्व अत्यन्त ही अधिक है। तीसरे मन्त्रमें आने से पति पत्नी और इसमें ही पुनरा पुनरा कर कहा है कि पूर्वोक्त कर्षका के दान प्रसार स्मरण रखें और इस रीतिसे अपनी वहाँसे ही प्राप्ति करा लें। इस प्रकार इन सूत्रमें आप्नोतिविषय विवक्षित कहा है। निःकर्मह इत्येकं पुत्रं अन्नमाय दक्षिण और अन्तिम है अन्तिम वहाँ वयन का दुर्दैव गतिके अनुकार विचार करना ही चाहती है। इसका अत्यन्त समझमें आसकता है। आका है इस केवल विचार करने काठक इन सूत्रके कुछ संस्कृत-भाषाका अन्तिम सुबोध कर लेंगे।

## अतिथि सत्कार ।

( ६ )

( ऋषिः ब्रह्मा । देवता-अतिथिः, विद्या । )

[ १ ]

पो विद्याद् ब्रह्मं प्रत्यक्षं परैरपि यस्य सभारा ऋषो यस्यानूक्त्यम्	॥ १ ॥
सामानि यस्य लोमानि यजुर्हृदयमुच्यते परिस्तरणमिदृशिः	॥ २ ॥
यद् वा अतिथिपतिरतिथीन् प्रतिपश्यति देवयजनं प्रेषते	॥ ३ ॥
यदमिबदति व्रीक्षामुरिति यदुदुक्कं याच्यत्यपः प्र जयति	॥ ४ ॥
या एव यज्ञ आर्पः प्रणीयन्ते ता एव ताः	॥ ५ ॥
यत् वर्षाभाहरन्ति य एवाधीपोमीयः पुश्वर्च्यते स एव सः	॥ ६ ॥
यदावसृषान् कल्पयन्ति सदाहविर्धानान्येष तत् कल्पयन्ति	॥ ७ ॥
यदुपसृषुणानि बहिरेव तत्	॥ ८ ॥
यदुपरिषृषुणामाहरन्ति स्वर्गमेव तेन लोकमर्चन्ते	॥ ९ ॥

वर्ष- ( यः प्रत्यक्षं ब्रह्म विद्याद् ) जो प्रत्यक्ष ब्रह्मको जानता है ( यस्य सकृपि समाराः ) उसके अवयव ब्रह्मसामग्री है, ( यस्य अमूर्तं ब्रह्मः ) उसकी रीढ़ ब्रह्माण्ड है ॥ ( यस्य लोमानि सामानि ) उसके बाह्य साम है और उसका ( हृदयं यजुः उच्यते ) हृदय यजु है ऐसा कहा जाता है । तथा उसका ( परिस्तरणं इत्, इति ) ओढनेका वस्त्र इति है ॥ १-९ ॥

( यद् वे अतिथिपतिः ) जो तो गृहस्थ ( अतिथीन् प्रतिपश्यति ) अतिथिबर्षोंकी ओर देखता है मानो वह ( देव यजनं प्रेषते ) देवयज्ञ को ही देखता है ॥ ( यद् अतिथिपतिः व्रीक्षां उदतिः ) जो अतिथिसे बात करता है वह यद्व्रीक्षा केनेके समान है । ( यद् उदुक्कं याचति ) जो तो वह जल माँगता है और ( यद् एव जयति ) जल उसके भागे वा देता है ॥ वह मानो ( या एव यज्ञ आर्पः प्रणीयन्ते ) जो यज्ञमें जल के जाते हैं ( ताः एव ताः ) वही जल है ॥ १-५ ॥

( यत् वर्षाभाहरन्ति ) जो वर्षाधि अतिथि की पृथि करके किए के जाते हैं ( य एव अधीपोमीयः यजुः उच्यते स एव सः ) वह मानो अधी और सोमके किन् पशु बोना जानता है वही वह है ॥ ( यद् आधमयान् कल्पयन्ति ) जो अतिथिसे किए स्वायका प्रथम करते हैं ( सदाहविर्धानानि एव तत् कल्पयन्ति ) वह मानो यज्ञमें सदा और इतिर्धानकी रचना करना ही है ॥ ( यद् उपसृषुणानि ) जो धिक्का जाता है ( बहिः एव तत् ) वह मानो यज्ञका कुत्ता बास ही है ॥ ( यद् उपरिषृषुणामाहरन्ति ) जो उसपर बिक्रीका जाते हैं ( तेन स्वर्ग लोकं अर्चन्ते ) उससे स्वर्ग लोक ही मानो प्रति जाते हैं ॥ ६-९ ॥

यत् कश्चिपूषमर्हमाहरन्ति परिधयं एव ते	॥ १० ॥
यदाञ्जनाम्यञ्जनमाहरन्त्पान्यमेव सत्	॥ ११ ॥
यत् पुरा परिधेपात् स्वादमाहरन्ति पुरोवासावेव सौ	॥ १२ ॥
यदञ्जनकृतं हवन्ति हविष्कृतमेव सत्सूयन्ति	॥ १३ ॥
ये ग्रीहयो सर्वा निरूप्यन्तेऽश्वेष एव ते	॥ १४ ॥
यान्युषस्त्रलघुसलानि धावाण एव ते	॥ १५ ॥
धूर्विं परिध्रं तुषां ऋग्रीपामिपर्वणीरायः	॥ १६ ॥
सुग् दर्विर्नेषणमायधेन द्रोणकृष्णाः कम्प्योषिायुष्यानि	
पात्राणीयमेव कृष्णाञ्जिनम्	॥ १७ ॥ (१५)

[ २ ]

युक्तमानब्राह्मण वा एतद्वर्तिविधिः कुरुते यदाह्वार्याधि

श्रेष्ठ इदं सूत्रा ३ इवा ३ मिति

॥ १ ॥ १८ ॥

अर्थ—( यत् कश्चिपूषमर्हमाहरन्ति ) को चत्वर और चिराहवा—अतिथि के किए के आते हैं, वह बालो वस्त्र ( वे परिधयः एव ) परिधि हैं ॥ ( यत् आञ्जन—अम्यञ्जनमाहरन्ति ) को ब्राह्मणों के किए अलग और सरीर के लकड़ने के लिए एक करते हैं वह बालो ( एव आञ्ज्य एव ) वह हट ही है ॥ १ - ११ ॥

( यत् परिधेपात् पुरा ) को मोक्ष परोमने के पूर्व अतिथि के किये ( कादं आहरन्ति ) बाले के हेतु के आते हैं वह माधो ( ठी पुरोवासा एव ) पुरोवासा हैं ॥ ( यत् अञ्जनकृतं हवन्ति ) को मोक्ष बालेवालेको हुकते हैं वह बालो ( हविष्कृतं एव सत् हवन्ति ) हविषी सिद्धता करनेवालेको हुकता है ॥ १२—१३ ॥

( ये ग्रीहयो सर्वा निरूप्यन्ते ) को चत्वर और जो वेले आते हैं ( वे अश्वयो एव ) वे सोमकृता के कण्ट ही हैं ॥ ( यानि उषस्त्रलघुसलानि ) को ओषधी और मुक्त अतिथि के किए चत्वर कुरुते के काम आते हैं माधो ( वे पात्राणि एव ) वे सोमरस निकालने के चत्वर ही हैं ॥ १४—१५ ॥

( धूर्विं परिध्रं ) अतिथि के किए को काज वर्ण आता है वह चक्षुर्ग वर्ण आनेवाले वस्त्र के समान है, इसी प्रकार ( तुषां ऋग्रीपा ) चत्वर के रूप होते हैं वे सोमरस काजने के बाद अथर्विह रहनेवाले सोमरसपुष्प के समान हैं । ( यानि पर्वणीरायः ) अतिथिपरोमने के लिए प्रयुक्त होनेवाला एक चक्षुर्ग के लकड़ने के समान है ॥ ( यदा सुग् ) यक्षी सुग् के समान है ( आयधेन द्रोणकृष्णाः ) एकल घन लकड़ने के समान है ( कम्प्योषिायुष्यानि ) अतिथि के लिए को चत्वर पात्र के आते हैं वे चक्षुर्ग के चत्वर पात्र ही हैं और ( यदा कृष्णाञ्जिनम् ) यही कृष्णाञ्जिन है ॥ ( १६—१७ )

[ २ ] ( इदं सूत्रा इव इति ) वह अधिक वा वह कीक है ऐसा को ( आह्वार्याधि श्रेष्ठ ) अतिथि के देवे सोम ब्राह्मणों की निरीक्षण करता है वह ( अतिथिपतिः ) अतिथि का पात्र करनेवाला चत्वर ( एतत् ) इससे माधो ( यदाह्वार्याधि श्रेष्ठ ) यदाह्वार्याधि श्रेष्ठ के समान कार्य करता है ॥ १ ॥ १८ ॥

आह्वार्य—अतिथि चरने आनेपर लकड़ने के लिए जो जो पदार्थ दिये आते हैं वे बालो वस्त्र के अन्तर प्रयुक्त होनेवाले चत्वरों के समान ही हैं । अर्थात् अतिथि का शरीर करना एक चक्षुर्ग के समान ही है ॥ १—१७ ॥

यदाह भूय उद्धरेति प्राणमेव तेन वर्षीयांस कुरुते	॥ २ ॥ १९ ॥
सप हरति हवींष्या सादयति	॥ ३ ॥ २० ॥
तेषामासमानामतिथिरात्मन् जुहोति	॥ ४ ॥ २१ ॥
सुखा हर्तेन प्राणे यूपे सुहृत्कारेण वपद्रुकारेण	॥ ५ ॥ २२ ॥
पृथे वै प्रियाभ्याप्रियाभ्यतिथिः स्वयं लोकं गमयन्ति यदतिथयः	॥ ६ ॥ २३ ॥
स य एव विद्वान् न द्विषन्मीमांस द्विषतोऽर्चमभीयान्न	
मीमांसितस्य न मीमांसमानस्य	॥ ७ ॥ २४ ॥
सर्वो वा एव अग्न्यपोष्मा यस्यान्नमुभ्रन्ति	॥ ८ ॥ २५ ॥
सर्वो वा एवोऽग्न्यपोष्मा यस्यान्न नाभन्ति	॥ ९ ॥ २६ ॥
सर्वदा वा एव युक्तप्रावाद्रपवित्रो वितसाप्वर आहृत्यहक्रतुर्य उपहरति	॥ १० ॥ २७ ॥
प्राज्ञापत्यो वा एतस्य युद्धो विततो य उपहरति	॥ ११ ॥ २८ ॥

वर्ष- ( वट जाट ) को कहता है कि ( यून उद्धर इति ) जबकि परोप कर नमिषिको हो तो ( तेन ) इससे वह ( शान वर्षीयांस इव कुरुते ) अपने प्राणको विरक्तानी करता है ॥ जो उसके पास अन्नादि ( वपहरति ) के जाता है वह माघो ( हवींषि असादयति ) हविके पक्षार्थ करता है ॥ २-३ ॥ १९-२० ॥

( तेषां आसमानां ) उन कावे पक्षार्थोंमें कुछ पक्षार्थोंका ( अतिथिः अन्नमन् जुहोति ) अतिथि अपने अन्नर हवन करता है वह भोजन स्वीकारता है ॥ ( हर्तेन सुखा ) हानकरी सुखाटे, ( प्राणे यूपे ) प्राणकरी यूपमें ( सुहृत्कारेण वपद्रुकारेण ) भोजन करनेके सुहृ सुहृ ऐसे सम्बन्धी वपद्रुकारसे वह अरथोंमें एक एक आहुति डालता है ॥ ( वट अतिथयः ) जो वे अतिथि हैं वे ( प्रियाः अभिवाः यः ) मित्र हों अथवा अतिथि हों वे ( अतिथयः ) अतिथि बन्धने अतिथि वसमानको ( स्वयं लोकं गमयन्ति ) स्वयंलोकको पहुँचाते हैं ॥ ४-६ ॥ २१-२३ ॥

( स य एव विद्वान् ) इस तरहको जानता हुआ ( या द्विषन् ) न अभीक्ष्ण वह विधीका हेष करना हुआ व भोजन को । ( द्विषतः अन्नं न अभीवात् ) हेष करनेवाले भोजन व कावे ( न मीमांसितस्य ) संस्रित आचरणबन्धे अनुष्ठानक भोजन व कावे और ( न मीमांसमानस्य ) न छोड़ करलेवालेका अन्न अतिथि कावे ॥ ७ ॥ २४ ॥

( यस्यान्नं अन्नमिति ) मित्रका अन्न अतिथि कोव खाते हैं ( सर्वः वै एव अग्न्यपोष्मा ) उसके सब पाप अन्न खाते हैं । एवा ( यस्यान्नं न अन्नमिति ) विरक्तका अन्न अतिथि नहीं खाते ( सर्वः वै एव अग्न्यपोष्मा ) उसके सब पाप यैसे के यैसे रहते हैं ॥ ८-९ ॥ २५-२६ ॥

( सः उपहरति ) जो उपहरण अतिथिकी सेवाके लिए आवश्यक सामग्री उसके पास के जाता है वह माघो ( सर्वदा वै यथा युक्तप्राया ) वह सदासर्वदा सोमरस विकारकके पक्षार्थोंसे रस विकारका ही रहता है वह सर्वदा ( आर्ज्यं पवित्रः ) रस कामका रहता है विरक्तकी कामकी सदा नीची रहती है वह ( विरक्त-अन्नवरः ) सदा बर करता है, वह सदा ( आहृत्य यज्ञं कर्तुः ) यज्ञ घमाह करनेके समान रहता है ॥ १० ॥ २७ ॥

( यः उपहरति ) जो अतिथिकी समर्पण करता है वह माघो ( यस्यान्नं प्राज्ञापत्यः वै यज्ञः विरक्तः ) उसके प्राज्ञापत्य पक्षका वैयक्त हुआ है ॥ ( सः उपहरति ) जो अतिथिकी दान देता है वह माघो ( यस्यान्नः विरक्तान्न अनुविधमते ) यस्यान्नके विकारोंका अनुकरण करता है ॥ ११-१२ ॥ २८-२९ ॥

माघार्थ-अतिथिभ्यो भोजन आहर-सत्कार करना माघो यैसे यै वज्ञ करनेके समान है ॥ १-१३ ॥ १८-२१ ॥

प्रज्ञापतेर्वा एष विंक्रमाननुविक्रमते य उपहरति

॥ १२ ॥ ३९ ॥

योऽतिथीनां स आहवनीयो यो वेदमन्त्रि स गार्हपत्यो

यस्मिन् पर्वन्ति स दक्षिणाम्निः

॥ १३ ॥ ३० ॥ (१६)

( ३ )

इष्ट च वा एष पूर्वे च गृहाणामभनाति यः पूर्वोऽतिथेरभनाति

॥ १ ॥ ३१ ॥

पर्यञ्च वा एष रसं च गृहाणामभनाति यः पूर्वोऽतिथेरभनाति

॥ २ ॥ ३२ ॥

उक्षां च वा एष स्फूर्तिं च गृहाणामभनाति यः पूर्वोऽतिथेरभनाति

॥ ३ ॥ ३३ ॥

प्रज्ञां च वा एष पक्षेच गृहाणामभनाति यः पूर्वोऽतिथेरभनाति

॥ ४ ॥ ३४ ॥

कीर्तिं च वा एष यक्षेच गृहाणामभनाति यः पूर्वोऽतिथेरभनाति

॥ ५ ॥ ३५ ॥

भिर्यं च वा एष सुविद्ं च गृहाणामभनाति यः पूर्वोऽतिथेरभनाति

॥ ६ ॥ ३६ ॥

एष वा अतिथिर्बभ्रुर्विपुस्तस्मात् पूर्वो नाभीवात्

॥ ७ ॥ ३७ ॥

दक्षिणात्पत्यतिवावभीयात् यज्ञस्य सारमस्वार्थं यज्ञस्याभिच्छेदाय तद् अतुष्ट ॥ ८ ॥ ३८ ॥

एतत् वा तु स्वादीयो बद्धिग्व क्षीरं वा मांसं वा तदेव नाभीवात् ॥ ९ ॥ ३९ ॥ (१७)

अर्थ—( वा अतिथीनां ) को अतिथिबेन्नि घसीरमें पाचक अग्नि है ( सः आहवनीयः ) वह आहवनीय अग्नि है ( वा वेदमन्त्रि सः गार्हपत्यः ) को अर्थ अग्नि होता है वह गार्हपत्य अग्नि है ( यस्मिन् पचन्ति स दक्षिणाम्निः ) जिस पर लज पकते हैं वह दक्षिणाम्नि है ॥ १३ ॥ ३० ॥

[ ३ ] [ यः अतिथेः पूर्वं भक्षति ] को अतिथिके पूर्व एवं भोजन करता है ( यः ) वह [ अक्षयं इष्टं च पूर्वं च भक्षति ] अपने करके इष्ट और पूर्वको ही खाता है ॥ को अतिथिके भोजन करनेके पूर्व भोजन करता है वह मांसो बरोके ( यवा च रसं च ) दूध और रसको ( उक्षां स्फूर्तिं च ) लज और स्फूर्तिको [ प्रज्ञां च पक्षेच ] प्रज्ञा और पक्षको [ कीर्तिं च यज्ञः च ] कीर्ति और यज्ञको [ भिर्यं च सुविद्ं च ] ली बार संज्ञा को ( अक्षयि ) क्षायता है ॥ १—९ ॥ ३१—३९ ॥

[ यः च अतिथिः यत् भोजित ] वह अतिथि भिद्यबसे भोजित है [ तस्मात् पूर्वः च नाभीवात् ] इसलिये उसके पूर्व एवं भोजन करता उचित नहीं है ॥ ७ ॥ ३७ ॥

[ अतिथौ अतिथिपति नाभीवात् ] अतिथिके भोजन करनेके पश्चात् एहस्य एवं भोजन करे । [ यज्ञस्य सारमस्वार्थं यज्ञस्य भक्षणं के किम् ( यज्ञस्य अतिच्छेदाय ) यज्ञका योग न होनेके किम् [ तद् अतुष्ट ] वह अतुष्ट पाकन कराना एतत्को योग है ॥ ८ ॥ ३८ ॥

[ यत् यत् स्वादीयः ] वह जो स्वादियुक्त है [ यत् अतिथये क्षीरं वा मांसं वा ] जो पीसे मांस दोषको दूध वा अन्य मांसादि यदार्थ हैं [ तत् यत् न नाभीवात् ] इसमें से कोई यदार्थ अतिथिके पूर्व भी न खाये ॥ ९ ॥ ३९ ॥

आचार्य अतिथिभ भाजन पहिले होने पश्चात् ही अतिथि भक्षण ही वह करके मनुष्य करने । कभी किसी अतिथिके भोजन करनेके पूर्व पश्चात् कोई मनुष्य भोजन न करे । ऐसा करनेसे एहस्य यज्ञ को पूर्णता होती है । अतः एहस्य एव भोजन का पालन करे ॥ १—९ ॥ ३१—३९ ॥





निघ्नन् भूत्याः प्रजायाः पशूनां भवति य एवं वेद	॥ ३ ॥ ४५ ॥
तस्मां जुघन्त्यस्यो हिङ्कृणोति भगवः प्र स्वीति	॥ ४ ॥
मुष्यादिन् उद्गायिष्यपराहः प्रति हरत्यस्त यन्निघ्नन्म् ।	
निघ्नन् भूत्याः प्रजायाः पशूनां भवति य एवं वेद	॥ ५ ॥ ४६ ॥
तस्मां अजो भवन् हिङ्कृणोति स्तनयन् प्र स्वीति	॥ ६ ॥
विघोर्तमानः प्रति हरति वर्षमुद्गायिष्यपराहन् निघ्नन्म् ।	
निघ्नन् भूत्याः प्रजायाः पशूनां भवति य एवं वेद	॥ ७ ॥ ४७ ॥
अतिथीन् प्रति पश्यति हिङ्कृणोत्यमि वेदति प्र स्वीत्युद्गं वाचस्पृशोवति	॥ ८ ॥
उप हरति प्रति हरत्युच्छिष्ट निघ्नन्म्	॥ ९ ॥
निघ्नन् भूत्याः प्रजायाः पशूनां भवति य एवं वेद	॥ १० ॥ ४८ ॥ (१९)

अर्थ—[ ५ ] ( वा एवं वेद ) को इस अतिविस्तारके अर्थको जानना है ( तस्मै ) उस अनुष्णके शिरे ( वा हिङ्कृणोति ) क्या जानम्—सगद्देश देना है ( सविता य सोति ) एवं विज्ञेय प्रस्था करना है, ( हरत्यमिः उद्गायिष्यः ) उद्गायति यः के साथ उसके शुभोक्त गाव करवा है ( उद्गायिष्यः पश्यति ) क्या उद्गायति उद्दिष्ट जान करवा है ( विघोर्तमानः निघ्नन् ) सब अन्य देव उसको जानना प्रदान करते हैं । अतः वह ( भूत्याः प्रजायाः पशूनां भवति ) सपत्ति प्रजा और पशुभोंका जानवरमान बनवा है ॥ १-३ ॥ ४५ ॥

को इस अतिविस्तारके अर्थको जानना है ( तस्मै वक्ष्यः पूर्वं हिङ्कृणोति ) उसके शिरे वक्ष्य होना हुआ एवं भावम्का सम्येय देवा है ( संगवा य सोति ) प्रमाण समग्र प्रस्था करना है ( मध्यदिनः उद्गायति ) मध्यदिन समग्र गुण गाव करवा है ( अपराहः प्रति हरति ) अपराहः समग्र उद्दिष्ट देवा है ( अस्तं वर निघ्नन् ) अस्त जान हुआ एवं जानव देवा है । इस प्रकार वह सपत्ति, प्रजा और पशुभोंका जानवरमान होता है ॥ ४-५ ॥ ४६ ॥

को इस अतिविस्तारके अर्थ को जानना है ( तस्मै वक्ष्यः मध्यः हिङ्कृणोति ) उसके शिरे उत्पन्न होनेवाला मेघ जानम् सगद्देश देवा है, ( स्तनयन् प्ररति ) गर्भना करनेवाला मेघ जानना करवा है ( विघोर्तमानः प्ररति ) प्रकाशनेवाला उद्दिष्ट देवा है ( वर्षन् उद्गायति ) उद्दिष्ट करवा हुआ मेघ इसका गुणमान करवा है ( वरपुच्छं निघ्नन् ) उत्तर क्षेत्रवाला जानव देवा है । इस प्रकार वह सपत्ति प्रजा और पशुभोंका जानवरमान होता है ॥ ६-७ ॥ ४७ ॥

को इस अतिविस्तारके अर्थको जानना है वह वर ( अतिथीन् पश्यति ) अतिथिर्वा एवं करवा है को अन्य मय ( हिङ्कृणोति ) जानम्का शत्रु करवा है अतः वह अतिथिर्वा ( अतिथिः ) वरकर करवा है को अन्य वर ( उद्गायति ) उद्गायति करनेके समान होता है । अतः वह ( उद्गं वाचति ) अतः जानना है को मानो वह ( उद्गायति ) मय उद्गायति कार्य करवा है । ( वरहरति वावहरति ) अतः वह पदार्थ अतिथिके वस्तु काटा है, तो वह वरके प्रति उद्गायति कार्य करवा है । ( उच्छिष्टं निघ्नन् ) को अतिविस्तारके अर्थको जाननेके पश्चात् अवशिष्ट रहवा है उसको वक्ष्य अतिविस्तार समग्र । इस प्रकार अतिविस्तार करनेवाला सपत्ति प्रजा और पशुभोंका जानवरमान बनवा है ॥ ८-९ ॥ ४८ ॥

आथर्व हिङ्कर प्रमाण उद्गायति और निघ्नन् के बीच अर्थ कावते है । अतिविस्तार करनेवाले को ये सभी १९ ॥ ४८ ॥ १ ॥ । अर्थात् अतिविस्तार एवं अतः वक्ष्य पूरा काम है । अतिविस्तार ही पदार्थका वर वर और १९ ॥ ४८ ॥ १ ॥ ॥ ४८ ॥



( सः वयस्यः ) यह आरंभ में किया हुआ अतिथि बहुत काम देता है । अतिथिको आरंभ के बाद दूसरी ( इमं लोकं आसीति ) इस लोकको प्राप्त करता है और ( अमुं आसीति ) उस लोकको भी प्राप्त करता है ( यः पूर्व वेद ) को इस अतिथिस्कारके अवको जानता है वह ( ज्योतिष्मत्तः कोणात् अवति ) तेजस्वी कोनोंमें लक्ष करता है ॥ ११-१४ ॥ ६ — १२ ॥

## अतिथिका आदर ।

अतिथि का आदर आदर के लिये पाठ करके उपवास करने के लिये ६२ मंत्र इस सूक्त के आ पर्वों में दिये हैं । वेद का श्रवण होने से इसकी आत्मा बाधित करने की कोई आवश्यकता नहीं है । अतिथिस्कार से निमित्त प्रकार के यज्ञ नवाह्नन करने का प्रसंग होता है अर्थात् जो अतिथिस्कार सप्तम अष्टादश करेगा उससे अन्त्यज्य वृद्धभाग करने की कोई आवश्यकता नहीं है । दूसरा—चमक यह प्रमाण लय अतिथिस्कार है । पाठक इस सूक्त का पाठ करे और इसके इस आह्निकी आर्च और अतिथि स्कार करके उसके पेट पर चमकें आती हैं ॥

इस मंत्रों में ' मांश ' शब्द आता है । इस मांश शब्द के अन्वर्थ भी होते होते परन्तु नहीं मांस अर्थ अनेकित है ऐसा हमारा मत है और यह केवल भी कोई आपत्ति नहीं है । क्योंकि मांसमोची मनुष्य के परम कोई अतिथि आने तो अतिथि पूर्व यह मांस भी न खाये इत्यादि आज नहीं केना में ॥ वेद में जैसा कि मांश मोची मनुष्यों का वर्णन है वैसा मांश वेदों में भी वर्णन है ।

# गौका विश्वरूप ।

( ७ )

( श्रपिः—मन्त्रा । देवता—गौः )

( १२ ) ( ७ )

मन्त्रार्पविष परमेष्ठी च शुक्ले इन्द्रः शिरों अभिर्लुकाटं यमः कृकाटम्	॥ १ ॥
सोमो रात्रा मस्तिष्को घौरुचरहनुः पृथिव्यधिचरहनुः	॥ २ ॥
विद्यजिष्ठा मरुतो हन्ता रेवतीर्ग्रीवाः कृषिका स्कृषा घर्मो बर्हः	॥ ३ ॥
विषं वायुः स्वर्गो लोकः कृष्णद्र विधरणी निवेप्यः	॥ ४ ॥
इमेनः क्रोडोऽरिषं पात्रस्वैः बृहस्पतिः ककुद् पृष्ठतीः कीकमाः	॥ ५ ॥
देवानां पत्नीः पूष्यं उपसवः पश्वैवः	॥ ६ ॥
मित्रश्च वरुणश्चासी त्वष्टा चार्धमा च होषणी महादेवो वाह	॥ ७ ॥
इन्द्राणी मसव वायु पुच्छ पवमानो बालाः	॥ ८ ॥
मसं च स्रव च भोणी बलमू	॥ ९ ॥
पाता च सविता चाप्तीवन्तो लक्षा गार्ध्वं अप्सरसः कृषिका अदिति मन्त्राः	॥ १० ॥

अर्थ— ( मन्त्रार्पविः च परमेष्ठी च श्रगे ) मन्त्रार्पवि जीत परमेष्ठी के लीके हो लीम है ( इन्द्रः शिर ) इन्द्र शिर है ( मस्तिष्कः कृकाटं ) मस्तिष्क कृकाट है ( यमः कृकाट ) यम गलेकी चोटी है ॥ ( सोमः रात्रा मस्तिष्कः ) रात्रा सोम मस्तिष्क है ( घौरुः चरताः हनुः ) घुकोक चरताः चरता और ( पृथ्वी चररहनुः ) पृथ्वी नीचेका चरता है ॥ १-२ ॥

( विद्यजिष्ठा ) विजकी जीम है ( मरुतः हन्ताः ) मरुद् हात है ( रेवतीः ग्रीवा कृषिका वरुणाः ) रेवती गर्दब और कृषिका कर्ने है । ( घर्मः बर्हः ) इप्पता बनेवाका लुई बनेका ककुद् के पातका भाग है ॥ ( वायुः विषं स्वर्गः लोकः कृष्णद्र ) वायु सब अवयव और स्वर्गलोक कृष्णद्र है और ( विधरणी निवेप्यः ) धारक धाकि पृष्ठपथ की धीमा है ॥ ३-४ ॥

( इमेनः क्रोडः ) इमेन कलकी मोर है ( पात्रस्वैः बलमू ) ललरिष पट है ( बृहस्पतिः ककुद् ) बृहस्पति ककुद् है ( रेवतीः कीकमाः ) रेवत्यपि कीकमा भाग है ॥ ( देवानां पत्नीः पूष्यः ) देवोंकी पत्नियों कीकमे भाग है ( उपसवः पश्वैवः ) उपसव इतिवा वसुधिका है ॥ ५-६ ॥

( मित्रः च वरुणश्च भली ) मित्र और वरुण कथे है ( मित्रा च अर्धमा च होषणी ) मित्रा और अर्धमा वाहभाग है और ( महादेवः वाह ) महादेव वाहु है ॥ ( इन्द्राणी अप्सरः ) इन्द्रवाणी गुच्छभाग है ( वायुः पुच्छं ) वायु पुच्छ है और ( पवमानः बालाः ) पवमान वायु बाल है ॥ ७-८ ॥

( मसं च स्रवं च भोणी ) मस्य और स्रविष वृत्त है ( वरुणः ककुद् ) वरुण भाग है ॥ ( पाता च सविता च चाप्तीवन्तो ) पाता और सविता के चकमे है ( गम्बवीः लक्षा ) गम्बव भाग है ( अप्सरसः कृषिकाः ) अप्सरार्प

चेतो हृदय यकृन्मेधा त्वं पुरीतत्	॥ ११ ॥
ध्रुव कुधिरिरी वनिधुः पर्वताः प्लाक्षयः	॥ १२ ॥
क्रोचो वृक्षौ मनुयुराश्वौ प्रसा श्रेयः	॥ १३ ॥
नदी सूत्री वर्षस्व पर्वय स्तनां स्तनयित्सुरूषः	॥ १४ ॥
विश्वस्यन्वाभर्मौपयसो लोमानि नक्षत्राणि रूपम्	॥ १५ ॥
वेवञ्जना गुदां मनुष्याऽन्वाप्यन्वा दुदरम्	॥ १६ ॥
रक्षांसि लोहितमितरखना ऊर्ध्वम्	॥ १७ ॥
अश्वं पीबो मज्जा निघनम्	॥ १८ ॥
अपिरासनिं उत्तिष्ठतोऽग्निना	॥ १९ ॥
इन्द्रः प्राक् तिष्ठन् दक्षिणा तिष्ठन् यमः	॥ २० ॥
प्रत्यह् तिष्ठन् घातोदुक् तिष्ठन्सविता	॥ २१ ॥
वृणानि प्राप्तुः सोमो राज्ञा	॥ २२ ॥
मित्र ईर्षमाण आहूच आनन्दः	॥ २३ ॥
युज्यमानो वैश्वदेवो मुक्तः प्रजापतिर्षिमुक्तुःसर्वम्	॥ २४ ॥

सुरमाय है ( अविधिः अथ ) अविधि हार है ॥ ( चेताः हृदय ) चेता वसुका हृदय है ( मेधा मज्जा ) मेधावृद्धि मज्जा है ( त्वं पुरीतत् ) त्व वसुकी भाते है ॥ १-११

[ ध्रुव कुधिरिरी ] ध्रुवा कौच है, [ वनिधुः ] वन वही भाते है [ पर्वताः प्लाक्षयः ] पर्वत छोटी भर्त है ॥ [ क्रोचो वृक्षौ ] क्रोच वसुके गुर्वे है [ मनुयुः आश्वौ ] मनुह वसुके है, [ प्रसा श्रेयः ] प्रसा ज्येष्ठिय है ॥ १२-१३ ॥

[ नदी सूत्री ] नदी सूत्रमात्री है [ वर्षस्व पर्वयः स्तनाः ] वर्षावति मेघ वसुके स्तन है [ स्तनयित्सुरूषः ] पर्वमेधाका मेघ वसुके स्तन वसु है ॥ [ विश्वस्यन्वाभर्मौ ] सर्वत्र मेधा आकाश भर्त है [ लोमानि नक्षत्राणि ] लोमवर्त [ लोमानि नक्षत्राणि ] लोमवर्त है ॥ १४-१५ ॥

[ वेवञ्जना गुदां ] वेवञ्जना गुदा है [ मनुष्याऽन्वाप्यन्वा ] मनुष्य भाते है [ दुदरम् ] मज्जा वसुकी वदर है । [ रक्षांसि लोहितं ] रक्षा वसु है, [ इतरजना ऊर्ध्वम् ] इतर वसु वसुवित वसु है । [ सोमो राज्ञा ] मेघ मेघा है [ मित्र ईर्षमाणः ] मित्र मज्जा है ॥ [ आहूच आनन्दः ] अति आनन्द है और [ अविनी वसुता ] अविनी वसुता है ॥ १६-१९ ॥

[ इन्द्रः प्राक् तिष्ठन् ] इन्द्र मात्री दिशामें वहरमा है [ यमः दक्षिणा तिष्ठन् ] यम दक्षिणदिशामें वहरमा है [ घातोदुक् ] घातोदुक् भाता ] यम दिशामें वहरमा भाता है और [ सविता वदर तिष्ठन् ] सविता वदर दिशामें वहरमा है ॥ २०-२१ ॥ [ सोमः राजा मृणालि माता ] मृणालि माता होता है तब वह सोम राजा होता है [ ईर्षमाणः मित्रा ] वरज्येष्ठ करमेधाका स्तन और [ आहूच आनन्दः ] पराहूच होमेवर वही आनन्द है ॥ [ युज्यमानः वैश्वदेवः ] वसु को भाता है तब वह वसु वैश्वदेव लोहितका होता है [ मुक्तः प्रजापतिः ] वसुमेवर प्रजापति और [ षिमुक्तः सर्वम् ] वसुमेवर वसु वसु वसुता है ॥ २२-२४ ॥



यस्य हृत्ताः प्रच्यवन्ते यस्माः कृणुत आस्यतः ।

सर्वे क्षीर्षण्ये ते रोगे बहिर्निर्मन्त्रयामहे

॥ ३ ॥

यः कुक्षोर्ति प्रसोत्सृज्यं कुक्षोर्ति पृष्ठम् । सर्वे क्षीर्षण्ये ते रोगे बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥ ४ ॥

अङ्गामेदमङ्गज्वर विश्वाङ्ग्यं विसर्पकम् । सर्वे क्षीर्षण्ये ते रोगे बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥ ५ ॥

यस्य भीमः प्रतीका छ उद्देपयति पृष्ठम् । तस्मान् विश्वधारं बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥ ६ ॥

य कुरु अनुसर्पत्यथो एति गभीर्निके । यस्मै ते अन्तरङ्ग्यो बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥ ७ ॥

यदि कामादिप्रकामादुद्वेगान्जायते परि । हृदो बलासमङ्ग्यो बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥ ८ ॥

हरिमाणं ते अङ्ग्योऽन्ध्यान्तरोदरात् । यस्माधामन्तरात्मनो बहिर्निर्मन्त्रयामहे ॥ ९ ॥

आसौ बलासो भवतु मूर्ध्नि भवत्वामयत् ।

यस्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत्

॥ १० ॥ (२२)

बहिर्बलं निर्विषं काहाबाहं तत्रोदरात् । यस्माणां सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत् ॥ ११ ॥

अर्थ— [ यस्य हृत्ताः ] जिस कारण [ यस्माः कृणुत ] आत्स्यते [ यस्य रोग कान्ते और मुखसे रहने ] वस [ सर्वे क्षीर्षण्ये ते रोगे ] ऐसे सब छिरेके रोगको हम बाहर हटाते हैं ॥ ३ ॥

[ यः कुक्षोर्ति प्रसोत्सृज्यं कुक्षोर्ति पृष्ठम् ] जो बहिर्ना बलास है, तथा [ यद्वयं अङ्गं कुक्षोर्ति ] मनुष्यको जन्मा बलास है, [ सर्वे ] सब सब निरवोचकी रोगको हम दूर करते हैं ॥ ४ ॥

[ अङ्ग-मेदं ] अंगोंको टोडनेवाले [ अङ्ग-ज्वरं ] अंगोंमें ज्वर उत्पन्न करनेवाले ( विश्वाङ्ग्यं विसर्पकं ) अङ्गोंमें विष फैलानेवाले ( सर्वे ) सब छिरेके रोगको हम दूर हटा देते हैं ॥ ५ ॥

( यस्य भीमः प्रतीका ) जिसका भयंकर रूप [ उद्देपयति ] मनुष्यको कंपाता है वस [ विश्वधारं ] जन्मा सब आत्मर होनेवाले अङ्गरोगको [ बहिः ] निर्मन्त्रयामहे ] हम बाहर हटाते हैं ॥ ६ ॥

[ यः कुरु अनुसर्पति ] जो अन्ध्यान्तक बलास है [ अथो गभीर्निके एति ] और का बहिर्बलक बहुला है, जब ( यस्मै ते अन्तरङ्ग्यं ) रोगको छेरे आन्तरिक अंगोंसे हम [ बहिः ] बाहर हटा देते हैं ॥ ७ ॥

[ यदि कामात् ] यदि कामुकतासे अथवा यदि [ य कामात् ] कामको छोड़कर किसी अङ्ग आत्मसे [ हरिमाणं ] हृदयसे आगत [ उद्देपयति ] हृदयके ऊपर उत्पन्न होता है तो वस [ बलासं हृत् ] आत्मना : कर्णको हृदयसे और वसो के [ बहिः ] बाहर हम हटा देते हैं ॥ ८ ॥

( य हरिमाणं ) ऐसा कामिका रोग-रक्षणीनका रोग ( अङ्गमः ) छेरे अथवा छेरे [ उद्देपयति ] हृदय आत्मा आत्मा ] वस के अन्तरसे बलास रोगको तथा [ अङ्गमः अङ्गः अङ्गमः-वर्ग ] अपने अन्तरसे अङ्गमरोगको धारण करनेवाली अवस्थाको ( बहिः ) बाहर हम निकालते हैं ॥ ९ ॥

( बलासं ] जन्मा भवतु ) कर्ण पृष्ठके कर्णों होने और बाहर जाने । [ आमयत् पृष्ठं भवतु ] आमरोग मुख होना बाहर जाने । ( मूर्ध्नि भवत्वामि ) कर्ण ] सब आमरोगोंका विष [ अहं त्वत् निरवोचं ] मैं छेरे हटा निकालता हूँ ॥ १० ॥

[ तत्र उद्देपयति ] छेरे हटाते [ काहाबाहं विके ] बाह्य करते हुए विष मुखनिकाले [ निर्विषं ] निरवोचने । [ मूर्ध्नि भवत्वामि ] सब रोगोंका विष मैं छेरे हटा निकालता हूँ ॥ ११ ॥

उदराद ते क्लेशो नाम्ना हृदयादधि । यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निर्वोचमहं स्वत् ॥ १२ ॥

याः सीमानं विवृण्वन्ति मूर्धानं प्रत्यर्पणीः । अहिंसन्तीरनामया निर्द्वेषन्तु ग्रहिर्षिलम् ॥ १३ ॥

या हृदयमुपत्यर्पन्त्युत्पन्नन्ति कीकसाः । अहिंसन्तीरनामया निर्द्वेषन्तु ग्रहिर्षिलम् ॥ १४ ॥

याः प्राग्धे तप्यन्त्यनुनिध्वान्ति पुष्टीः । अहिंसन्तीरनामया निर्द्वेषन्तु ग्रहिर्षिलम् ॥ १५ ॥

यास्तुरधीरुपत्यर्पन्त्युत्पन्निषण्णास्तु ते । अहिंसन्तीरनामया निर्द्वेषन्तु ग्रहिर्षिलम् ॥ १६ ॥

या गुदा अनुसर्पन्त्यान्त्राणि मोहयन्ति च । अहिंसन्तीरनामया निर्द्वेषन्तु ग्रहिर्षिलम् ॥ १७ ॥

या मन्त्रो निर्ध्वान्ति पक्ष्मि विवृण्वन्ति च । अहिंसन्तीरनामया निर्द्वेषन्तु ग्रहिर्षिलम् ॥ १८ ॥

य अङ्गीनि मदयन्ति यक्ष्मांसो रोपणास्तव ।

यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निर्वोचमहं स्वत् ॥ १९ ॥

विमुदपस्य विदुषस्य वातीकारस्य बालवेः ॥

यक्ष्माणां सर्वेषां विषं निर्वोचमहं स्वत् ॥ २० ॥

अर्थ— ( ४ उदरात् ) ठेरे पेटसे [ क्लेशः नाम्नाः हृदयात् अधि ] केशकोसे नामीसे भीर हृदयसे [ सर्वेषां ] सब रोगोंका विष मैं ठेरेसे हटाया हूँ ॥ १२ ॥

( याः सीमानं विवृण्वन्ति ) जो सीमा मागको पीडा दते हैं और जो ( मूर्धानं प्रति अर्पणीः ) शिरऊक बढते जाते हैं वे रोग ( अनामयाः अहिंसन्तीः ) दोषरहित होकर न मारते हुए ( अधिः विषं निवृण्वन्तु ) प्रत्यक्षसे रोगोंके पीछे बाहर बढे जायें ॥ १३ ॥

( याः हृदयं उपत्यर्पन्ति ) जो हृदयपर आक्रमण करती हैं और ( कीकसाः अनुत्पन्नन्ति ) हंसकी इच्छासे पैकटी हैं वे सब रोग ( अनामयाः ) दोषरहित होकर मारक न बनती हुई सब रोगोंसे प्रत्यक्षसे दूर हो जायें ॥ १४ ॥

[ याः प्राग्धे तप्यन्त्यनुनिध्वान्ति ] जो दृढभागपर आक्रमण करती हैं और [ पुष्टीः अनुविकसन्ति ] पीठपर जो फैकटी हैं वे सब रोग ( अनामयाः ) दोषरहित होकर और मारक न बनती हुई सब रोगोंसे प्रत्यक्ष होकर दूर हो जायें ॥ १५ ॥

( याः गुदाः अनुसर्पन्ति ) जो गुदाक फैकटी हैं और ( अनामयाः मोहयन्ति च ) लोगोंको रोकती हैं वे सब पीडाएँ ( अनामयाः ) दोषरहित बार अमारक होकर प्रत्यक्षसे शरीरके रोमरंगसे बाहर चली जायें ॥ १६ ॥

( याः मन्त्रो निर्ध्वान्ति ) जो मन्त्राजोंको रणहीन करती हैं और [ पक्ष्मि विवृण्वन्ति च ] कोठोंसे पक्ष्म निकाल करती हैं, वे सब रोग [ अनामयाः ] दोषरहित और अमारक होकर रोगोंसे बाहर प्रत्यक्ष होकर निकल जायें ॥ १७ ॥

[ ये यक्ष्माः ] जो यक्ष्मरोग [ रोपणाः ] धातुक करते हुए [ सब अनामि मर्यन्ति ] ठेरे अंगोंको मरबुद्ध करते हैं सब [ सर्वेषां यक्ष्मणां विषं ] सब यक्ष्मरोगोंका विष [ अहिं त्वयः मारकोऽहं ] मैं ठेरेसे हटाया हूँ ॥ १८ ॥

( विमुदपस्य ) पीडा ( विदुषस्य ) सूजन ( वातीकारस्य ) वातरोग और ( या अङ्गीनि ) रोग इन सबके तथा ( सर्वेषां यक्ष्मणां विषं ) सर्व रोगोंके विषको मैं ठेरेसे हटाया हूँ ॥ १९ ॥

१ ( म. सु. भा. अं १ )



पादाभ्यां ते ज्ञानुभ्यां भोगिभ्यां परि भसंतः ।

अमृतादपुष्णीरुष्णिहाभ्यः क्षीर्णो रोगमनीनक्षम्

॥ ११ ॥

स ते क्षीर्णः क्षयालानि हृदयस्य तु यो विभुः ।

उघमादित्य रश्मिभिः क्षीर्णो रोगमनीनक्षोऽङ्गमेवमेक्षीक्षमः

॥ १२ ॥ (२३)

॥ इति चतुर्थोऽनुपाकः ॥

अर्थ— ( पादाभ्यां ते ज्ञानुभ्यां ) तेरे पाँचोंके और जानुओंके ( भोगिभ्यां भसंतः परि ) कुम्होंके और मुखानके ( अमृताद् अपुष्णीरुष्णिहाभ्यः ) रोखके और गुदेकी आँखोंके ( अर्चनीः ) कैकनेवाली पीडाओंके और ( क्षीणो रोग ) सिरकी पीडाको मैं ( क्षीयक्षम् ) नाश करता हूँ ॥ ११ ॥

( ते क्षीर्णः क्षयालानि ) तेरे सिरके क्षयाकभाग ( हृदयस्य तु यो विभुः ) और हृदय की जो व्याधि है ( उघमादित्य रश्मिभिः ) डगटा हुआ सूर्य अपनी किरणोंके ( क्षीणः रोग सं क्षीयक्षः ) सिरके रोगको नाश करता है और ( अंगमेवमेक्षीक्षमः ) अंगोंकी पीडाको नाश करता है ॥ १२ ॥

### सिरदर्द ।

इस सूक्तमें सिरदर्द को हटानेके लिये सूर्यकिरण यह एक उपाय है यह बात कही है । सूर्यकिरण कटीरपर जेबे सिरकी कर्चके रोम पालुपेय तथा अन्वक्ष्य कई रोग दूर होते हैं । संभव है कि ये सूर्यकिरण विशेष अर्चकके सब रोगको स्थानपरनी करने योग्य होंगे । इस सूक्तमें यह विश्वासकी निधि तो बतायी गयी है परंतु इतना कहा है कि सूर्यकिरणोंके इस सूक्तमें कहे अनेक रोग दूर होते हैं ।

कई सिरके रोम हटाना मन्त्र करते हैं अंगाय बमाले हैं बाहिरा बमाले हैं रक्त कम होनेके कई सिरके रोम होते हैं बायेंके रोमोंके और बायाँके रोखके जो सिरकी पीडा होती है, कर्चके और मुखके पीप आदि बाहर निकलता रहता है बिचके सिरदर्द होता है । इस प्रकार अनेक कष्टन और हेतु सिरदर्दके इस सूक्तमें मिले हैं । इन कष्टन विचार वैद्य कायकर करें और सूर्यकिरणोंके उपाय सबपर किंच प्रचार करना चाहिए इसका भी निश्चय करें ।

अथवा कई अन्य कष्टन यहाँ लक्षणसे बताया है इसका भी निश्चय होना कथित है । यह सूक्त बलवत् अति कुशल है तथापि सिरदर्दका निचय अति काजीन होनेके इस सूक्तके कई शब्द वैद्य आर कायकर ही जान सकते हैं । इन्होंने सिरदर्दका अन्वेषण करना समझा ही कार्य है ऐसी सूचना हम यहाँ करते हैं ।



# एक वृक्षपर दो सुपर्ण ।

( ९ )

( अग्निः प्रजा । देवता-वामः, अप्यात्मं, आदित्यः, )

[ १४ ] ( ९ )

अस्य वामस्य पलितस्य होतुस्तरु आता मध्यमो अस्त्वमः ।

वृषीयो आता वृषपृष्ठो अस्वाप्रापश्य विश्वसि सप्तपुत्रम् ॥ १ ॥

सप्त पुंस्त्रान्ति रथमेकैवक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा ।

त्रिनाभिं चक्रमुखरमनुर्वं यत्रेमा विश्वा ध्रुवनाभिं तस्थुः ॥ २ ॥

हुमं रथमधि ये सप्त तस्थुः सप्तर्षक सप्त र्वहन्त्यश्वः ।

सप्त स्पर्शारो अभि स नवन्त यत्र गवां निर्हिता सप्त नामा ॥ ३ ॥

अर्थ— ( सप्त अस्म वामस्य पलितस्य ) इस इस वृक्षर अति बृद्ध ( होतुः ) दाग कर्वाका ( मध्यमः आता ) बीचका भाई ( वामः अस्ति ) वक्ता कायेवाका है । ( अथ वृषीयः आता ) इसका तीसरा भाई अपने ( वृषपृष्ठः ) वृषमागपर इतिकरक पी रक्ता है । ( अथ ) वही भैंस ( सप्तपुत्र विश्वसि अथर्वं ) सात पुत्रोंवाक मज्जाकाकको देका है ॥ १ ॥ ( अ १ । १९४ । १ )

( एकचक्रं एवं सप्त पुंस्त्रान्ति ) एक चक्रवाक रथको सात जोड़े जोड़े जाते हैं ( सप्तनामा एकः अथः वहति ) सात नाम वाका एक घोडा इसको चींचता है । इसका ( त्रिनाभि अथः अमर्षं चक्रं ) तीन केन्द्रोंवाका जरातदिल और बाधरहित यह चक्र है [ यत्र ] जिसमें [ इमा विश्वा ध्रुवनाभिः ] वे सप्त पुत्रन [ अति तरुणः ] बड़े हैं ॥ २ ॥ ( अ १ । १९४ । २ ) अर्थ १ । १ । १९४ )

( इमं सप्तचक्रं एवं ) इस सात चक्रोंवाके रथके अथः ( वे सप्त अति तरुणः ) जो सात रहते हैं इसको ( सप्त अथः वहति ) सात जोड़े चींचत हैं । ( सप्त स्पर्शारः ) सात बहिनें ( अभि र्वं यत्रेमा ) जिसके साथ रहनी हैं । ( यत्र ) और वही ( गवां सप्त नामा निर्हिता ) गौओंके साथ बसा रहते हैं ॥ ३ ॥ ( अ १ । १९४ । ३ )

आकर्ष— इस अतीतिक सुंदर वाता पुराण बुद्धका बीचका अर्ध मोला बीचमा है और इसको एक तीसरा भाई भी है जो अपनी रथपर चलादि केवक वरार्थ चारक करता है वही अथः है । इसी स्थानपर सब प्रमाणोंका पात्र द्वारा एक रेखा प्रिथक् कात पुत्र है ॥ १ ॥

॥ एकचक्रवाके रथों कात जोड़े जोड़े वे वंशु वरुणः सप्त नामोंका एवही घोडा इस रथको चींचता है । इसी म केन्द्रोंवाके अरातदिल अतिनाशी चक्रमें वे अथः सुभन रहे हैं ॥ २ ॥

इमं सप्तचक्रोंके पुत्र रथके अथः कात थार कट है । इस रथका सात काये गीच रहे हैं । इस रथपर सप्त बहिनें भी रहने वच रही हैं वही गौओंके साथ बसे सप्त यश भी विगमयन हैं ॥ ३ ॥

को ददर्श प्रथम आर्षमानमस्थन्वन्तं यदेनस्था विमर्षि ।

भूम्या असुरसृगात्मा क्वस्मिन् को विद्वांसमुप गात् प्रभुमेतत् ॥ ४ ॥

इह ब्रवीतु य ईमञ्च वेदास्य वामस्य निर्हितं पद वेः ।

श्रीर्षः धीर दृष्टे गावो अस्य वृद्धिं वर्साना उदकं पदापुः ॥ ५ ॥

पाकः पृच्छामि मनसाविज्ञानं देवानामिना निर्हिता पदानि ।

वृसे वृक्षयेऽधि सप्त सन्तु न वि रत्तिरे क्वय ओतथा उ ॥ ६ ॥

अधिक्त्वाश्चिक्षुर्पाञ्चदश कवीन् पृच्छामि विद्वानो न विद्वान् ।

वि यस्तुस्तम्भ पट्टिमा रज्जोऽस्यस्य रूप किमपि स्मिदेकम् ॥ ७ ॥

अर्थ—[प्रथम आयाम] पहिले प्रथम होनेवालेको [का वृत्त] किसने देखा है । [यह अवस्था वसन्तकाल रितर्षि] जो इन्द्रादित इन्द्रात्मको पारण करता है । (यथा अमुः कस्य अगमाक जित्) इस मिट्टीके अन्तर गमन रत्न गमन आत्मा कहा अग्रा रहते हैं । [का विद्वांस] कामसा मनुष्य किस आधीके वस्त्र [एतत् पदं उपमात्] यह पूछनेसे निम्न गवा १४४ [क १।१६४।४]

हे [भग] मित्र मनुष्य ! [का वृत्त नामवय वेः] जो इस मित्र सुपर्वके [निधित पदं वेद] रहे हुए पदको ज्ञान है वा आकर [इह ब्रवीतु] यहाँ कहे । [मम अस्य धीर्षः] गावें क्षिरसे, इसके क्षिरोमलसे [वीरं दृष्टे] इस अमृत दृष्टी है वे [वृद्धिं वर्साना] कपका पारण करती हुए [पदा उदकं पदापुः] अपने पक्षसे लकड़ा पान करती हैं । [क १।१६४।५]

(पाक) परिवर्त होनेवाला कार (मनसा विज्ञानम्) मन्थन व आवेदेवाला में (देवाना पदा निहित पदानि) देवताओंके वे रहे हुए परोंके विषयमें (पृच्छामि) पूछता हूँ । (क्वयः) कवि कोमोने (क्वये कले कवि) वसे वृक्षक ऊपर (आतये उ) तुमनेके निम्न (सप्त सन्तु न वि रत्तिरे) छाप सन्तुलोंके फैलाया है । (१४।५)

(अधिक्त्वाश्च) व विद्वान् पितृ) अज्ञानी और विद्या व आवेदेवाला में (विधितुवा विद्वान् कवीन् पितृ) ज्ञानी विद्वान् कविओंसे ही (पृच्छामि) पूछता हूँ । (य इमाः वद रज्जोऽसि वस्त्रेभ्य) जो इन का कोकोंके आकार देन है उस (अज्ञान कवे) अज्ञानका कप (कि अपि एक विषय) एक कामसा काव है । (क १।१६४।६)

मावाये—सबसे प्रथम प्रथम होनेके समय हुए अगमाका विधने देखा है । यहाँ तार इन्द्रात्मको शरीरको इन्द्रादित अग्रा पारण करता है । इन पारण शरीरमें गमन रत्न और आत्मा—मम—रहा रहता है । मनुष्य किस विद्वान को इसके विषयमें पूछने के लिए जाता है । (५४)

हे मित्र मित्र ! जो इस परम रत्नोपय सुपर्व—आत्माका परम वद वचावत् ज्ञानता है वही इस विषयमें कपरेक करे । इसी अगमसे मनुष्य न मने कर्तुं गीर्षोम अमृत जैसा रूप आता है तब य बोमें आत्मान करके लीनोंको मुँह पर ओर १४४ रमेरा सामर्थ्य है । (५५)

हे मनुष्य ! मैं परिवर्त नहीं हूँ आर वमते भी कुछ जानता नहीं हूँ । इसलिए अपने देवोंके रत्न हुए परोंके विषयमें पूछता हूँ अगर इस विषयमें पहिले कवि मम जो सात भागें वद तुमनेके निम्न वृक्षके ऊपर फैलते हैं वरतया वना आवन है । (६) म आशानी कार निर्बुद्धता हूँ अतः अब मैंसे ज्ञानी आर तुमको प्रथम कर रहा हूँ । विषय वे का लोक पारण निरहै, वस अगमा आत्माका वद पार वरतय बीमका है । (७४)

माता पितरमुत्त मा ब्रमाज धीत्यग्रे मनस्ता स हि अग्रे ।

सा विभक्त्युर्गर्भरसा निर्विद्धा नमस्वन्त इदंपवाकभीषुः

॥ ८ ॥

मुक्ता मातासीदुरि दक्षिणाया अतिष्ठत्तु गर्भो वृज्जनीष्यन्तः ।

अममिषु पत्सो अनु गामपश्यत् विश्वरूप्यत्रिषु योजनेषु

॥ ९ ॥

विभो मातृस्त्रीन् पितृन् विभ्रदेकं ऊर्ध्वस्तस्थौ नेमव ग्लापयन्त ।

मुन्त्रयन्ते द्विषो अमुष्यं पुष्टे विंशविदो वाचमविंशविभाम्

॥ १० ॥ (२४)

पृष्ठपरि चक्रे परिवर्तमाने यस्मिन्मातृस्युर्ध्वनानि विधा ।

तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिभारः सनादेव न ञ्छिद्यते सनाभिः

॥ ११ ॥

वर्ण— ( माता पितर कते जन्ममात्र ) माता बाळकके पिताको जर्वात् अपने बचिको सखबर्ममें माता देती है । ( गर्भे बीटी ) प्रारंभमें बुझिसे और ( मनसा ) मनसे वह ( हि स जन्मे ) निजवर्णक सेपति करती है । ( सा बीमस्तुः ) मातरसा निविद्धा ) वह भरन करनेवाली अपने बीच इस धारण करनेवाली बिह हुई है । जो ( नमस्वन्तः ) इद उपवाकं ईदुः ) नमस्कार करनेवाले धक निजवसे उलकी प्रसंता करते हैं ॥ ८ ॥ ( क १ । १६४ । ८ )

( दक्षिणायाः ) पुत्रि माता मुक्ता जाती । दक्षिणाकी बुराये माता कोठी पई थी तथा उसका ( गर्भः ) वृज्जनीषु वन्त बलिष्ठ ) बहवा अपनी बलिष्ठमें था । ( कस्तः गां जनु जमीमेव ) बहवा गौको देखकर बावा है और (त्रिषु योजनेषु ) तीनों योजनानामें ( विश्वरूप्यं अपश्यत् ) ऊर्ध्व कर्णको देखता है ॥ ९ ॥ [ क १ । १६४ । ९ ]

( एका रिक्ता मातुः ) लकेका टीब माताओंके और ( बीन् विपुत् ) टीब पिताओंको ( विभ्रत् ) बारण करता हुआ ( कर्मः ) उरबी ) सीधा करता है । है इसको ( न ईं जन्म रक्षापयन्त ) रक्षाबीको प्रस नहीं होने दते । ( जगुष विषा पुष्टे ) इस मुत्रोके पीडन विराजमान होकर ( विभ्रत् ) सर्वत्र ओग ( ज-रिक्ता-विधा वाच मन्त्रव मे ) सबको व समझनेवाले गुण बचनका मन्त्र करते हैं ॥ १० ॥ ( क १ । १६४ । १० )

( वस्मिन् परिवर्तमाने वजारे चक्र ) जिस घूमते हुए पाँच भारोंवाले चक्रमें ( विधा मुनवानि वाचस्तुः ) सन सुन करे हैं । ( तस्य भूरिभारः बाळ न तप्यते ) बल चक्रका बहुत भारवाक्य बलवत् नहीं लगता और ( सनाद पर सनाभिः न छिद्यते ) चिरकालके केन्द्रस्थान होनेपर भी नहीं छिन्नभिन्न होता है ॥ ११ ॥ ( क १ । १६४ । ११ )

भावार्थ— माता प्रकृति परमात्मिकी पिताका सर्ववर्मका आन समर्पण करती है जर्वात् सर्ववर्म उलकी है ऐसा वर्ण-बीटी है । सबसे पहिले बुझि कर्म और विचारकाधिका सगलीका जो पना भिष्ठे हृषवी रचना होगी है । वह प्रकृति सबका पोषण करनेमें समर्थ है । वहाँ सब प्रकारके ज्ञान पोषक रह है । जो मन्त्र नमस्कारपूजक हृषवी मन्त्र करत हैं वे निश्चय पूर्वक इनकी प्रशंसा करन करते हैं ॥ ८ ॥

माता इस बहुरूप रचमें प्रसुक्त स्थानमें कोठी पई है । उसने गर्भका धारण जनेक बलिष्ठोंसे हाता है । जब वह जन्मते है तो बाँक पाँक पीक चकटा है । बार बहुर पूर्वोक्त तीन वेष्टाओं सन निरपका रूप ठहरा है । हृष वाचका देखता है ॥ ९ ॥

जनेक एक अपनी टीलों माताओं और तीनों पिताओंका धारण करता हुआ सीधा करता रहता है । इसको कोई रक्षा नहीं लगना पर सकता । जन्ममें हृषवी हृष वाचका ज्ञान होता है कि मुत्राकके ऊपर सर्वत्र ओग गुप्त मंत्रोंका विचार करते हैं ॥ १० ॥

जिस घूमते हुए पाँच भारोंवाले चक्रमें ऊर्ध्व मुनव ठहरे हैं वक्रका बहुत भारवाक्य बलवत् बलत घूमता हुआ भी नहीं लगता और चिरकालके चक्रकी भाविमें घूमता हुआ भी नहीं छूटता है ॥ ११ ॥

पञ्चषाद पितर द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्थे पुरीषिणम् ।

अधोमे अन्य उपरे विषस्रणे सप्तर्चक्रे पञ्चर आहुरपितम्

॥ १२ ॥

द्वादशारं नहि तज्जराय वर्षति चक्रं परि घामृतस्य ।

आ पुत्रा अर्थे मिथुनासो अत्र सप्त क्षतानि विंशतिर्ष तस्युः

॥ १३ ॥

सर्नेमि चक्रमर्चं वि बाधृत उचानापां दक्षं युक्ता बहन्ति ।

सूर्यस्य चक्षु रक्षतेत्याहुत यस्मिन्नातस्युर्मुर्वनानि विष्वा

॥ १४ ॥

क्षिप्यं सुतीस्तां उ मे पुस आहुः पश्यदक्षन्वाच वि चैतद्वचः ।

क्षविर्यः पुत्रः स ईमा विंकेत यस्ता विजानात् स पितृभिरासंव

॥ १५ ॥

अर्थ— ( पञ्चषादं द्वादशाकृतिं पितर ) पाँच पाँचवाका बारह आकारवाका पिता ( विषा परे अर्थे पुरीषिणं मनुः ) सुक्रोक्ते परके आये भागमें है ऐसा कहते हैं । ( अथ इमे अन्ये आहुः ) सुक्रोक्ते परके आये भागमें है ऐसा कहते हैं । ( अथ इमे अन्ये आहुः ) और य दूसर कहते हैं कि वह ( इतरे विषस्रणे ) जति विकस्रण ( सप्तर्चके पञ्चो वर्ति ) सातचक्रोंवाले बारह का आरोंवाले चक्रमें रहा है ॥ १२ ॥ ( अ १ १२४ १२ )

( द्वादशारं तद्वचः ) बारह आरोंवाका चक्र ( यदि बराय ) कीर्ष नहीं होगा, वह ( कल्पन वां की वर्षति ) सप्तके सुक्रोक्ते ऊपर घूमता है । है ( अधो ) अधो । ( अथ सप्त क्षतानि विंशतिः च ) बहो क्षत जो क्षत ( मिथुनासः पुत्राः वा तस्युः ) छूटे हुए पुत्र बने हैं ॥ १३ ॥ ( अ १ १२४ १३ )

( सर्नेमि अत्र चक्रं ) परिवर्तना अविनाशी चक्र ( वि—बाधते ) विषेय रीतिसे घूम रहा है । ( दक्षन्वाचं दक्षं युक्ताः बहन्ति ) तनी हुई पुरा में दक्ष जोड़ हुए कीर्षी हैं । ( सूर्यस्य रक्षका आहुतं चक्षुः ) सूर्यका रक्षक आहुत जोड़ ( पति ) चक्रता है [ पतिवत् विष्वा सुक्रता नातरुता ] जिसमें दक्ष सुक्रम रहे हैं ॥ १४ ॥ [ अ १ १२४ १४ ]

( क्षिप्यं सुतीः ) ये क्षिप्य होवेपर भी [ तस्य उ मे पुसः आहुः ] उनको छूटे पुत्र हैं ऐसा कहा । वह वात [ अक्षन्वाचं बहन्ति ] अक्षन्वाच है वरतु ( अन्वाः च विषेय ) अन्वा उसको नहीं लगता । [ वा क्षिप्यं पुत्रः ] जो पुत्र बने है ( स ई मा विंकेत ) वह अभी अकार इसको लगता है ( वा ताः विजानात् ) जो उनको जानता है ( मा विताः पिता अन्वः ) वह पिताका भी पिता होता है ॥ १५ ॥ ( अ० १ १२४ १५ )

मावाय— पिताधी पाँच पाँच हैं उसके बारह रूप हैं और वह सुक्रोक्ते परके आये भागमें रहता है, ऐसा वह पञ्चरके में व बहता वर्तन करते हैं, परंतु कई दूसरे कभी कभीका ऐसा वर्तन करते हैं कि वह अतिविश्राम का आरोंवाले अथ वर्तने रहता है ॥ १२ ॥

बारह आरोंवाला वह चक्र कभी क्षीय नहीं होगा है वह सक्षमन सुक्रोक्ते बारबार घूमता है । इसमें क्षतान की क्षत आई बलके पुत्र विराजमान है ॥ १३ ॥

वह परिवर्तना नागरहित चक्र नागरार घूमता है । इस रचने तनी हुई मढ़ली पुरा में दक्ष जोड़े इन रचने का बने हैं । जिसमें बुरी सुक्रम ठहरे हैं, वह सूर्यका चक्षु रक्षते अन्वा है ॥ १४ ॥

बधुतः त्रिषो होवेपर भी समर्थ पुत्र बने हैं । क्याकि जिसके आँख अच्छे होने वही दक्ष कहता है अन्वेधो वह वही रीतना । इनमें जो बने होगा वही तब वातकी आँख छोड़ना और भी जानता है वही पिताधी भी पिता बन जाता है ॥ १५ ॥

साकंशानां समर्थमाहुरेकं पण्डितानां श्रपयो देवजा इति ।

तेषामिष्टानि विहितानि धामघ स्यान्ने रैजन्ते विकृतानि रूपान्नाः

॥ १६ ॥

अथः परेण पर एनावरेण पदा वत्सं निर्भती गौरुदस्यात् ।

सा कत्रीची कं सिद्धर्ष परागात् फस्वित् घटे नहि मूथे अस्मिन्

॥ १७ ॥

अथः परेण पितरं यो अस्त्य वेदावः परेण पर एनावरेण ।

कवीयमानः क इह म वीचत् देव मनुः कुतो अधि प्रजातम्

॥ १८ ॥

ये अर्वाचस्तौ तु पराव आहुर्य परावस्तौ उ अर्वाच आहुः ।

इन्द्राय वा चक्रयुः सोम तानि पुरा न युक्ता रक्षसो बहन्ति

॥ १९ ॥

अर्थ—(साकंशानां समर्थं एकं आहुः) साथ अन्ये हुओंमें साकनां एक ही बना है ऐसा कहते हैं। (वत् इत् वसाः) जो का निम्नवले छूटे हैं, वे (देवजा अवयव) इति) वेचोसे उत्पन्न भवि हैं। (तेषां धामघः) उनके किए स्थानसे (इष्टानि विहितानि) इष्ट बातें बर्णन हैं। [क्याये कपद्या विकृतानि रैजन्ते] उद्गरेवाके एकके किए आकारसे विकृत होकर कांयते हैं ॥ १६ ॥ [अ. १। १६४। १५]

[पदा मी] यह साथ [अथः परेण] निम्न क्रावके दूरके पक्षे और [परः अवरेण] परकेको पासवाके [पदा] पक्षे [वत्सं निर्भती] बचोका कारण करती हुई [वत्सं अस्यात्] ऊपर उठती है। [सा कत्रीची] यह कहाँसे जाती है और [कं सिद्धर्षं परा अगात्] जिस कार्य मानके पास जाती है। यह [क सिद्धर्षं] कहाँ प्रसूत होती है। [वत्सिन् मूथे न] इस समयें तो नहीं होती ॥ १७ ॥ [अ. १। १६४। १७]

[परेण अथः अस्त्य पिता] ऊपरसे नीचे तक इसके पिताको [या वेद] को जाबता है तथा [परेण अथः एना अव रेण वा] दूरसे नीचेतक इसके नीचेसे ऊपरतक को जाबता है, [कवीयमानः क इह प्रयोच्य] कविके समान जाचार करनेवाला कौन वहाँ करेगा? [देव मनुः कुतो अधिप्रजातं] देवी साकिते कुछ मनु कहाँसे प्रकट हुआ है? ॥ १८ ॥ [अ. १। १६४। १८]

[ये अर्वाचः] जो वहाँके हैं [वत्सं व परावः आहुः] उनको दूरके कहा जाता है तथा [ये परावः वत्सं व] जो दूरके हैं उनको [अर्वाचः आहुः] समीपके करके कहा जाता है। हे [सोम] सोम! तू और [इन्द्रः व] इन्द्र [वा चक्रयुः] त्रिवकी रचना करते हैं [तानि] उनको [पुरा पुत्र्य व] पुराको बोधे हुओंके समान [रक्षसः वरन्ति] जोकोंमें जीवते हैं ॥ १९ ॥ [अ. १। १६४। १९]

भावार्थ—एक साथ सात उत्पन्न हुए हैं उनमें एक ऐसा है कि जो लक्ष्मीका जन्म है। इनमें का छूटे हैं उनको देवताओंके उत्पन्न भवि कहा जाता है। उनका उत्पन्नस्थानसे इष्ट करना योग्य है। एक को यदा उद्गरेवाका है उनके किए आकारसे वगैरे निम्न पक्ष्य कं उत्पन्न करते हैं ॥ १६ ॥

यह मी अन्ये दूरके पक्षे पासवाके और पासके पक्षे दूरवाके वचोको कारण वीचन करती है। यह अष्टके आर्ग्य किन को मानके पास पहुँचती है कहाँ प्रसूत होती है इसमें आभास चाहिए। यह इस समयें तो नहीं रहती ॥ १७ ॥

पक्षे पास तक इसके पिताको को जाबता है यह सबको नीचेसे ऊपर तक ऊपर से नीचे तक जाबता है। नीच कवि इसको जाचकर वहाँ जाकर करेगा? इसका देवी अधिके कुछ मनु कहाँसे प्रकट हुआ है ॥ १८ ॥

जो वहाँके होते हैं इनको दूरके है ऐसा कहते हैं और जो दूरके होते हैं उनको समीपके है ऐसा मानते हैं। सोम और इन्द्र वहाँसे मनु रचना करते हैं वे साथ इस त्रिवकी पुरासे कुछ जाकर कपल जोकोंकी रचना है ॥ १९ ॥

इह सुपर्णा सुयुक्ता सखीया समान वृषं परि पस्वजाते ।  
तपोरयः पिप्लत स्वाद्वयनंश्नान्यो अग्नि चाक्रीति ॥ २० ॥  
यास्मिन् वृक्षे मध्वदः सुपर्णा निविशन्ते सुवते चाधि विभे ।  
तस्म यदाहुः पिप्लत स्वाद्वये तर्कोर्भक्षयः पितर न वेद ॥ २१ ॥  
यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भक्षमनिमिष विदधामिस्वरन्ति ।  
एना विश्वस्य भवेनस्य गोपाः स मा धीरः पाकमत्रा विविध ॥ २२ ॥ ( २५ )

अर्थ— ( इह सुपर्णा ) सो उत्तम पक्षिवाके पक्षी है व ( सुयुक्ता सखीया ) साथ रहनेवाले मित्र हैं वे ( समान वृषं परि पस्वजाते ) एक ही वृक्षपर मिळकर रहते हैं । ( तपोः अग्नाः ) अग्निमेंसे एक ( स्वाद्वयनंश्नान्यो अग्नि चाक्रीति ) बीस एक मात्रा है ( अत्र अमृतम् ) कुसरा व काठा हुआ ( अग्नि चाक्रीति ) चमकता है ॥ २० ॥ अ. १ । १९१ । १ )  
( यास्मिन् वृक्षे ) जिस वृक्षपर ( मध्वदः सुपर्णाः ) भक्षर इस कावेवाले पक्षी ( निविशन्ते ) निवास करते हैं और ( पिप्ले अग्नि सुवते ) सब संताप उत्पन्न करते हैं ( तस्म यदाहुः स्वाद्वये तर्कोर्भक्षयः ) वसक को जलवाली बीस एक है ऐसा कहते हैं ( पितर न वेद नत्त ) वह उसको नहीं मिळता ( वा पितर न वेद ) जो पिताको नहीं जानता ॥ २१ ॥ ( अ. १ । १९१ । २ )  
( सुपर्णा ) वे पक्षी ( अत्र अमृतस्य भक्ष ) जहाँ अमृतका भक्षण ( विदधामिः अग्निमिष अग्निस्वरन्ति ) ज्ञानपूर्वक विभाग न केहे हुए एकस्वार्थके प्राप्त करते हैं ( एना विश्वस्य भवेनस्य गोपाः ) वह सब भुवनोका एक ( मा धीरः ) जो परंपरावादी ( अत्र मा पाक आतिथेय ) वहाँ भुक्त परितो होवेवाके में प्रविष्ट होता है ॥ २२ ॥ ( अ. १९१ । ३ )

भाषा— सो अत्रमा व व साथ रहनेवाले परस्परके परम मित्र हैं । वे दोनों संवत्सरी वृक्षपर मिल जुलकर रहते हैं । वृक्षमेंसे एक इस वृक्षपर एक ही बीड़ा फल काटा है और कुसरा व जीय करता हुआ केवल चमकता रहता है ॥ २० ॥  
इस वृक्षपर वृक्षपर बीस एक कावेवाले अर्धत आत्मावाकी पक्षी निवास करते हैं । वे सब वहाँ संताप उत्पन्न करते हैं । अग्निमेंसे आ अग्नि पितृवा नहीं जानता वृक्षके आत्मावाकी बीस एक भी उसको नहीं मिलता ॥ २१ ॥  
व सब आत्मावाकी अर्धत पक्षी अमृतका फल खायेगी वृक्षवाके विभाग न केहे हुए ज्ञानपूर्वक पुच्छाते हैं । वरुण भुवनोका एक वर धर्मवादी परमात्मा इस अमृतमें भुक्त जैसे अतिपुत्रमें अर्धाष्ट प्रत्येक जातीय प्रविष्ट हुआ है ॥ २२ ॥

### जीवारमा, परमात्मा और सत्सार ।

इस मूलमें अत्रमा मविष्ठाका वृत्तम विचार हुआ है । अत्रवेदमें ( १ । १९५ स्वावर्त ) वही मूल है । वहाँ इस मूलके १ मंत्र है इस मंत्रमेंसे एक ही मूल के दो भाग करते इस अत्रवेदका २ के मंत्र और एकम वे दो मूल मंत्र हैं । मूल मूलके ३ मंत्र हैं और वृत्तम मूलके २८ मंत्र हैं । वे दोनों मूलोंके मिश्रण ५ मंत्र होते हैं । पूर्णत आत्रेय १ । ११५ के ५२ मंत्र हैं । इस पाठमेंसे अत्रम मंत्र और मंत्रोंकी व्याख्याका भी है । तथापि कईकाचाल गीतिने ऐसा वह करने हैं कि इस आत्रेय मूलमंत्र के अत्रवेदके दो मूल मंत्र हैं । अत्रवेदमें आत्रेयके ५२ मूल हैं जिनमें वह भी ५२ मूल हैं ।

आत्रेयके इस मूलमंत्रके अत्रिम २५ मंत्र मूल पाठे मंत्रभरके नहीं हैं । और ज में मंत्रोंका अत्रम मूलत मंत्रा है । इस मूलमंत्र में जीवारमा परमात्मा और मंत्रावृत्तका वृत्तम मंत्र है । वेदका आ वृत्तम विचार है वह वही है । जीवारमा अत्रम मंत्रा वही नहीं है वह वही है आत्रेयमें वही है । यह मूलमंत्र है इतिविषय अत्रम मंत्रोंकी योजना द्वारा वह अत्रम मंत्रा वही वही है इस मंत्रमें व वही वही है । इसी कारण मंत्रोंके अत्रम मंत्र अत्रम मंत्र वही वही मंत्र मूलमंत्र विचार करने

पर ही प्रप होये जाता है। इस वृक्षका विचार करके केवल अन्तिम मन्त्रोंका विचार सबसे प्रथम करना चाहिये, इसका कारण यह है कि इन तीन मन्त्रोंमें वृक्षतन्त्र बात अधिक स्पष्ट समझानेवाला व्यवस्था की गई है। इसलिये इन तीन मन्त्रोंका विचार हम नहीं पर प्रथम करते हैं—

हा सुपर्य सप्तका सप्तका सप्तार्थं वृक्षे परिपश्यन्ताते । ( मं० १ )

इस प्रथमार्थका अन्वय यह है कि दो सप्तम पंचकाके पक्षी प्राय प्राय वृक्षेशाने परस्परके मित्र हैं और वे दोनों एक ही वृक्षपर एक दूसरेके आश्रित रहते हैं। वहां मिल पक्षिणीका वर्णन है वे केवल दो ही नहीं हैं परंतु अन्यके ही मन्त्रमें कहा है कि ( मन्त्रः सुपर्यः ) वृक्ष फलका प्राय करनेवाले पक्षी बहुत हैं, अर्थात् वे अनंत हैं। वहां ( मन्त्रः—अन्तः ) यति फलका मेष करनेवाले पक्षी अनंत हैं ऐसा कहा है परंतु वृक्ष पक्षी मीठा फल देनेका इच्छुक नहीं है और जो केवल इसका हमकाया खाया है वह ( अमिवाचर्यति ) अन्नकृता तो है, परंतु ( अन्तः—अन्तः ) मेष नहीं करता। वह पक्षी एक ही है। इससे पूर्व वृक्षपर भग करनेवाले पक्षी अनंत हैं परंतु मेष न करनेवाले पक्षी एक ही है तथापि वह एक होता हुआ भी सब अन्न भली पक्षिणीकी ऐसा प्रवृत्ति होता है कि वह हमारा ( मनुज सत्त्व ) खाया मित्र है। वह पक्षी एक होते हुए भी सबके साथ रहता और सबका द्वारा मित्र बना रहता है वह बात कैसी बलवी है वह विचार करके ही समझ लेना चाहिये।

पर एक संसार वृक्ष ही है। इस संसार वृक्षपर बहुत फल गगते हैं कई फल पकते हैं और कई बने भी रहते हैं। इसी संसारवृक्षपर एक परमात्मा सर्वत्र व्यापक होकर रहता है इस संसारवृक्षकी हर एक शाखापर वह विराजमान है। वह संसारवृक्षका एक भी फल नहीं खाता परंतु अपने मित्र केवले भक्षण करता रहता है क्योंकि इसके समान किसीका भी ऐसा नहीं है।

इसी संसारवृक्षपर क्या मीठे फल करनेकी इच्छा करनेवाले अनंत जीवात्मा रहते हैं इसके निश्चयमें ऐसा वर्णन है—

यस्मिन् वृक्षे मन्त्रः सुपर्य निविशन्ते

सुपते चापि निवे ॥ ( मं० १ )

‘ ॥’ संसारवृक्षपर मीठा फल करनेवाले अनंत पक्षी विराज करते हैं वहां अपनी संतापमुक्ति करत हैं और सब इस वृक्षपर ही रहते हैं। वे पक्षी निविशन्ते आश्रितार्थ ही हैं। क्योंकि नहीं आश्रितार्थ वारंवार जन्म लेता है सुखमोक्षकी लालसा प्रत्यक्ष करता है संसारमें रहता है और संताप कल्पन करता है। वही जीवात्मा—

तपोरम्या विप्लव स्थावृति अवस्यन्त्यो अमिवाचर्यति । ( मं० २ )

‘ ॥’ तपोमें एक मीठा फल खाता है परंतु वृक्ष फलमेष न करता हुआ केवल प्रभक्तता है। मीठा फल करनेवाला जो जीवात्मा है और फलमेष न करनेवाला परमात्मा है। वृक्षका वर्णन वेदमें अनेक इस तरह आया है—

अक्षयो धीरो अमृतः स्वर्गं रतेन गच्छेत् न कुतश्चनः ।

तमेव सिद्ध्यन् न विनाश मुञ्जोरत्नस्य धीरमर्च्य पुत्रावपु ॥ अथर्व १ । ४ । ३३

मेषकी क्षम्यारहित विनयान् अन्तर स्वर्गस्थ रहते हुए नहीं भी मृत्यु नहीं आश्रित तब इस परम आत्माकी भावना ही मनुष्यका मन पूर होता है। वह परमात्मा अक्षय होनेके कारण फल माग नहीं करता और इसका मित्र भीतरका फल होनेके कारण सदा मीठे फल खायेकी इच्छा करता है। तथापि इससे सदा मीठे फल मिलते ही हैं ऐसा कोई नियम नहीं। वह सदा भर्त्ता करता है, वृक्षके अनुसार तबसे मीठे वा कटुके फल मिलते रहते हैं और जो मिलते हैं उनका मेष वह करता रहता है।

जीवात्मा और परमात्मा य—पुत्र अर्थात् एक दूसरेके साथ बने हैं, इसके मन्त्रमें कोई स्थावक अन्तर नहीं है। जिस स्वात्ममें एक है वही स्वात्ममें सबके साथ वृद्धा है। जीवात्मा ( मन्त्रः सुपर्यः ) मीठा मेष करनेवाले वे भी अनंत हैं अनंत होनेके कारण हमका आश्रय लाने हैं अर्थात् वे छोटे छोटे परिनिष्ठ हैं। परंतु परमात्मा अक्षयके साथ समानता होनेके कारण नियु ( न कृत्वा न कर्त्तुः ) सर्वत्र व्यापक और कहींभी मृत्यु नहीं ऐसा है। वह परमात्मा हर एकमें व्यापक है देखिये इसका वर्णन—



एवा विवस्वतः सुवर्णस्य गोपा स मा नीरः पानमन्त्रा विवेकः । ( मं २२ )

वह संपूर्ण सुवर्णोका रज्जवत् पैदाशाली परमात्मा वही सुप्त जैस जपरिपक्व जीवनमें भी प्रसिद्ध हुआ है । जैस सुप्ते है वैसा ही स्वप्ने में । सर्वव्यापक होनेसे ही वह सबके साथ मिळा हुआ रह सकता है । इस तरह वह परमात्मा एक सर्वव्यापक और सर्वत्र परिपूर्ण है और जीवात्मा अनेक परिचितक अनूर्ध्व नीर भोयी हैं । अतः इनकी सदा इच्छा रहती है कि—

सुवर्णां जम्बूद्वयं महाभविर्मेघं विद्वत्पापिस्वरन्ति । [ सं २२ ]

‘ हे जीवात्मा अमृतका जल सदा प्रसा करनेसे जिनके पुकारते रहते हैं । ’ यदि इस जीवात्माओंकी कोई पुकार है तो जलत जाहिये वही एक पुकार है सुप्ते ऐसा जलयोग जाहिये कि जिससे मैं नीरोन होकर जलपर वजूं तथा वही पुकार प्रत्यक्षकी है । पठक इस जलमें सेलेंगे तो प्रत्येक जीवकी वही पुकार है वह बात प्रकट हो जायगी । प्रत्येक जम्बूद्वय जलवा प्रत्येक प्राणीकी वह पुकार है और उसका प्रवाह भी इसीजिने हो रहा है । सुप्ते सदा विद्वत्पापम सुप्त किं ज्ञान, इमंजिन प्रवाह होता है । सुप्तकी इससे इच्छा है और इच्छाकी अभिप्रेक्षा है, परंतु कुछ शिथिल है और कुछ रुक होता है इससे भी स्पष्ट होता है कि इसकी विनामक शक्ति कैसी दुष्टी है ।

वह जीव जसा परमात्माके साथ रहता है उसके पास है अकाल समीप है जीवात्मा परमात्म्य ( परिवर्तनप्रते ) कालिन वैनेके समान रहते हैं अथवा इसके भी ओर ( आसिनेस ) जीवात्माओं परमात्म्या है इसकी इससे समीपता होनेपर भी वह जीव जसा परमात्माकी आकाश है ऐसी बात नहीं है । और परमात्माको अपने परम पिताको न जानेके कारण इच्छा कुछ रुक हो जाता है इसी वेटवसे वह बात नहीं है—

तस्य बहद्गुः सित्तर्ल स्वाहमे सकोकभुजाः पितर न वैद । ( सं २३ )

जो अपने पिताका नहीं जानता उसके पास भी मीठा कुछ हुआ तो भी वह इसके जिनै वह हो जाता है । हाइने पास माता कुछ होता है परंतु वह कुछ भ्रात होता है कि वह अपने पिताकी जलता है । वह वही जानता उसके कुछ जल हैनेपर भी न मनेको नहीं प्राप्त होता । जीवात्मा और परमात्मा इतने धीमे होनेपर भी और परमात्मा इतना शिथिलता सर्व मित्र मिलतुस साथ रहनेपर भी वह जीव कुछ परम पिताकी नहीं जानता और कुछ सोचता रहता है इसके और ओरकी लल कलकी हो सकती है ? जीवात्मा परमात्माको जल सकता है और जानकर परम सुख भी निश्चयपूर्वक प्राप्त कर सकता है, परंतु दाब । किन्ते जीवात्मा ऐसे हैं कि जो इस जलके भ्रात करनेका बल तक नहीं करते और कुछ सोचते हुए संतप्त होते हैं । वह मनुष्य इतने धर्माप रिक्तकी नहीं जानता परंतु इस वृद्धिमें दूररिक्त पदार्थोंको जानेके बल करता है ऐसी निररीत इसकी पुष्टि है देखिये—

ये अर्वास्तवा व पराव जाहुर्मे परास्तवा व अर्वाव जाहुः । ( सं २४ )

जो दूरके हैं वे इसकी दूरके प्रतीत होते हैं और जो दूरके हैं वे ही इसकी समीप हैं ऐसा प्रतीत होता है । वही निश्चय ज्ञान इसके कुछ लक्ष कारण है । परमात्मा इतना समीपके समीप होनेपर भी वह इसकी अतिदूर प्रतीत होता है और अत्यंत भाव अतिदूर होनेपर भी इसकी समीप प्रतीत होते हैं । इसजिने वह परमात्माको जानेके बल नहीं करता और अत्यंतक जेव प्रण करनेमें दक्षिण होता है । परंतु इसके वह होता है कि अपने पिताको न जानेके कारण इच्छा किसी प्रकारका कुछ प्राप्त नहीं होता और वरंकार कुछके अवरमें पड़ता है । इसजिने—

अथः नील विवरं जो अथ वैद्याः परोन पर एनामेव । ( सं २५ )

जाना पिता कारणसे नाथे तक है ऐसा वह जानता है” वही निश्चयैह सुखका भागी हो सकता है । परमपिता परमात्मन की साथ विद्यात ह वह अपना लार्की और वह न मित्र है वह मेरा लार्की है तथा शिथिलता है वह मेरे अन्तर है वह निश्चय भावना और वह तम होता हुआ भी मेरे अन्तर है वह बात जो जानता है वही सब सुखका भागी है । इन परमात्माका ज्ञान प्राप्त होनेसे निव अथवा मल दिव्य शक्तिने कुछ अथवा शक्ति होता जाहिये । वह मल—

ऐवं मम कुतो अविमत्रावन्तः । ( सं २६ )

वह मम किस तरह निव्रत बनता है । लार्की मम था हरदृष्टा बन सकता है । शिथिल शर्माथे तो मनें उनकी

पूजि आनन्दही है परतु विन्दमान मनमें किछ रीतिसे आनन्दते हैं, इसका विचार हरएक मनुष्यकी करना चाहिये । क्योंकि मनुष्यका हैन ब्रह्मना अथवा उच्छिन्न बनना वह केवल मनकी इस अवस्थापर सर्वथा निर्भर है इस मनकी हैन बनना किछ तरह होना इसका विचार—

कबीरमाना : का इह प्रबोधन । ( मं १८ )

“मैलका येड विद्वान् नहाँ आकर हयें बहणा ? ” ऐसी किम्ता हरएकको करनी चाहिये । जार जो विद्वान् इह प्रकार का उपदेश करनेमें समर्थ होगा उसके पास आकर उसके इस विद्याका ग्रहण करना चाहिये तथा उसका अनुष्ठान करके अपना मन सुखस्वप्नरोधे हैवीगुप्तोये पुच्छ बनाना चाहिये । विद्वान् मन विन्म प्रयोधि पुच्छ होता है और जिसके मनमें राखी मास कणमुच नष्ट हैं जाते हैं वही अपने पिताको अपने अन्तर प्रविष्ट देख सकते हैं । और परमपुच्छके मागी बना सकते हैं । इस प्रकार वहाँ प्रसङ्गी लकाय करनेके लिये सूचना की है ।

इसमें विशेषधे पाठकोंको पता चलना होना कि एक विदु परमात्मा दूसरा परिच्छिन्न बीजप्रमा और तीसरा वह घसारा ये तीन परार्थ वहाँ ब्ये हैं । हयें बीजप्रमा और परमात्मा आत्मा होनेसे एक जैसे हैं परतु तीसरा घसाराबुद्ध बीजप्रमाको माग देनेके लयें उपपुच्छ है । इन तीनोंका वर्णन इह सूच्छे प्रारंभिक मंत्रमें एक मने ही बयसे दिया है । देखिए—

बस्य बामस्य पक्षिस्तस्य होतुस्तस्य आत्मा मय्यो बस्तवका ( म १ )

‘ एक पला घस्यर पुराणपुच्छ है और बस्य बीजप्रमा माह मोच्छ है । वहाँ दो पशायोका वर्णन है । पहिला [ पक्षि ] अतिरु पुराण पुच्छ है इसकी इह स्वविर पक्षि पुराण कवि नाम स्वानवर प्रमुच होते हैं तथा ये माह पुवा [ अ १ । ८ । १४४ ] में हैं जहाँसे सूच्छे पूर्वकलते वर्तमान होनेके कारण वह पुराण है न कि पुराणा जौने होनेके कारण इसको कोरे इह कथि है । वह परमात्मा लते पुराण होता हुआ भी तबन है अतएव इसकी वहाँ ‘बाम’ अर्थात् घस्यर रमबीन कहा है । वह ‘हीमा’ अर्थात् लको बालते अनुग्रह करनेवाका है । सब कलमें के पसर इसका बना अनुग्रह है लकीके अनुग्रहसे सब संसार बल रहा है । ऐसा और एक पुच्छ है जिसको परमात्मा कहते हैं । वह सबसे बृह अर्थात् बना माई है । इसका बीजका मयम माई [ मयमः प्राज ] एव है । वह [ अदमः ] बना कालेवाका है मोप मोपकेवाका है । मोपके बिना वह नहीं सकता । बना माई तो मोप नहीं मोपका वह विरच है, विरचिके कारण कविह है और वह मोप मोपकेवे रीपोंसे प्रस्त होकर निरैक रहता है । इस प्रकार वहाँ इन दो मायोंका वर्णन किया है । ये ‘ हो घुपनी ’ द्वारा वर्णित जनि और विच ही हैं । इनका एक तीसरा भी माई है लक्य वर्णन देका होता है—

पुनीको आत्मा वृत्तुको अवन । ( मं १ )

“ इसका एक तीसरा माई है जो पीठपर भी लेकर रहता है । ” इन तीनों माईयोंमें वका माई तो कुछ भी जाना नहीं है । संनय है अतिरुप होनेके कारण लक्ये घुच्छा येर हुई होनी बीजप्रमा माई तबन होनेसे बहुत कात्त रहता है और वा वह पीठका माई है वह अपने पीठपर भी लैके पौष्टिक पशार्थ अथवा सब कारण करता है और बीजके माईकी कलमता रहता है । अमरुत तेवार करनेका कर्ष इह तीसरे माईके आधीन है । ज्ञान सुख मना घाति प्रदान करना बृह माईके आधीन है और बीजका माई इव दोनों माईकी ही सहायता किता हुन्वा अपनी उन्नति करता रहता है । इस प्रकार वहाँ तीन माईयोंका वर्णन है वह १८ वें मंत्रके वर्णनके साथ मिलता जुलता है ।

इसी वर्णन पर तीन तेमोकी कल्पना करके वहाँकी रचना की है । सूर्य सुरवातमें विपुल अन्तारिक्षमें और अग्नि भूभागमें ये तीन तेम है । सूर्य वरके वका माई है [ बाम ] सुंदर भी है और [ पक्षि ] घात किरणोंसे कृष्ण है । उदय मयम माई विपुल तेम है वह वका कालेवाका है । वहाँ विजली किरती है वहाँ सब बीजको वह जागो है । इसका एक उदय छेदा माई इव सूर्यीर कवि वरके है वह अपने पीठपर आनुतिरोधे कात्ता हुआ भी तथा हवन घामप्रतीका मार लकर लका रहता है और अन्त्याय देवताओध वह माग देकर अन्धका पोषण करता है । इसके माग लेकर अन्धायय देवतास पुछ होते हैं । अग्नि वहाँ भूभागका प्रतिविमि है । सब ब्रह्मकी उत्पत्ति इस विधानको वर्णनके लिये हुई है । सर्व प्रकथ्य बनेशका अग्नि पौषक पौः

द्वैवात्म्य और इन दोनोंसे एकता प्राप्त क की पुत्र होमेवाला तीसरा मध्यम माई है । यह कर्म भी पूर्णतः बोधवत्ता प्रकट और बोधक सकारक ही लूक है । विपुलमे मम और जीवन्माका भी कर्मन किया जाता है, जन्ममात्र यन्मन्मन्मन् कर्म कर्म समान है । जिस तरह विपुल एकलक्ष्यमें यमकता है एकलक्ष्यमें मही होती आर उत्तर क्षममें भी मही होती, इसी प्रकार दोनों क्षममें घुसुतक यमकता है और पुन तथा उत्तर क्षममें क्षिता रहता है । अस्तु । इस दृष्टिसे इस प्रथम मंत्रमें पूर्णतः एक ठोके कर्मनेके सिधसे बोधवत्ता परमात्मा और सकारक कर्मन किया है जो पाठक देखें । इसी मंत्रमें और कहा है कि—

अत्रापिदं निवृत्ति सप्तपुत्रम् । ( म १ )

यहाँ सात पुत्रोंवाले प्रकापतिक्ष मंत्र दर्शन किया । पूर्णतः कर्मनेके निवृत्ति अर्थात् प्रकापतिक्ष कर्मन के सब सात मन्त्र स्पष्ट होती है । यहाँ निवृत्ति प्रकापतिक्ष के साथ सब अर्थात् के पाठ्येवालेके सूचक है । इससे सात पुत्र हैं । इनके साथ पुत्र के ही सात लोक हैं क्योंकि इसीमे इसकी वृत्ति की है । यह सब सात लोकोंका विधा है और ये सबके पुत्र हैं । जो सब पक्षित ” आदि नामोंसे प्रथम मंत्रमें वर्णित हुआ है यही अथर्वान्तक सप्तका विधा और केडा माई परमेश्वर है । इनके सब सप्तका पुत्र सब जीव हैं और इन जीवोंको माता देवेवाका यह सब सकार है । यह सात इस प्रथम मंत्र के मन्त्रसे सब के पद हैं । आगे कहा है कि—

सप्त पुत्रान्ति रश्मिकण्डम् । एकमे कसो वदति सप्त नामा । ( म २ )

“ एक रश्मिके सात कोते हैं । अर्थात् इस करीर कपी रश्मिके सात कोते कोते हैं परन्तु ये सात कोते छोटे हुए हैं परन्तु सप्तवत्सव एक ही बीजा इसको जन्मता है । अर्थात् इस रश्मिके जन्मवेदासी प्रति एक ही है परन्तु यह सात प्रकारके कर्मों कीकती है । कैदा काँच काँच नाम रहता लम्बा । मम के साथ कर्मिष्ठ है, ये कर्मिष्ठकपी सात कोते इस करीरको कोते हैं परन्तु देखा काय तो एक तरह प्रतीत होता कि आत्माको एक चित् एक ही इस सातों द्वितीय विमल हो गई है तथा सब सक्त हैं कि यहाँ कोते सात भी हैं और सप्त नामोंका एक ही नाम है । एक कर्मनेके स्मृति की और दूसरे कर्मनेके स्मृति की और से देखा गया है ।

इसी प्रकार दो हाथ को पाँच सुक्त गुहा और क्षिप्र ने सात कर्मोंका जन्म सात हैं तथापि आत्मा की कर्मिष्ठ के ही ये सात विमान हुए हैं । द्वितीय स्मृति दृष्टिसे ये सात कोते इस करीर कपी रश्मिके कोते हैं ; ऐसा हम यह समझें हैं तथापि जन्म की दृष्टिसे हम ऐसा भी यह समझें हैं कि एक ही आत्माकी कर्मिष्ठक यहाँ सात रीतसे विमल होकर कार्य कर रही है ।

तर्मेष्टि क्षमिष्ठि नाम मम चित् अक्षर पुष्टि ने भी सात कोते इस करीरक साथ कोते मने हैं परन्तु अथर्वान्त केरे देकनेसे ऐसा भी यह समझें हैं कि एक ही इन्द्रक यह सब द्वितीय कार्य कर रही है ।

इसी प्रकार अन्त्यान्त निषकोके सर्वमने समझना नीमन है । केदा एक ही मन्त्र करीरसे मारह स्वाध्याय रहनेसे मन्त्र मन्त्र आदि नामोंका प्राप्त करता है । यह मन्त्र करीरक निषकोके सर्वमने हुआ परन्तु केदा यह करीर केदा मन्त्र है यही प्रकार यह केरे अथर्व मन्त्र भी एक बड़ा करीर ही है । अतः दोनों स्वाध्याय विमल एक केदा है तथा एक रश्मिके सात कोते कोते हैं परन्तु सात नामोंका एक ही बीजा इस रश्मिके बीजता है । इस बातका हुआ अथर्वान्त मी देखना चाहिये ।

यह अतः पूर्णतः आप तेज मानु आकाश तन्मात्र और महत्तरण इस सातोंके द्वारा जन्मता जाता है यह जन्म है, तथापि एक ही महत्तरण इस सत्तेमें परिणत होकर इस अथर्वान्त जन्मता है यह भी जन्मता ही क्षम है । सर्वसे किरणोंमें सात रश्मिके सात किरण हैं यह सात किरण के सभी प्रकार सर्वसे एक ही किरण जन्म सात प्रकाशकेरामोंमें विमल हुआ है यह भी जन्मता ही क्षम है । इसी कारण सर्वसे जन्म सातविमल इन्द्रादि नाम दिने मने हैं ।

एक संवत्सर कर्मने सात मन्त्र हैं सर्वतः प्रीत्यम यहाँ सातु हेयत सिद्धि के । आ और अविह मायका एक किम ज सात मन्त्र हैं । तथापि इस सातों मन्त्रोंमें एक ही काज जन्मता है और सात मन्त्रोंमें परिणत होता है ।

काश कीमार्ग तात्पर्य और परेक्षण मार्गकन जन्मने सात मानुके केत सात मान हैं और इनमें एक ही जन्म की अन्त्यान्त कर्मन्त मानु जन्मता होती है । इसी प्रकार इस जन्मकी मानुके की सात मान हैं और इनमें जन्मकी मानु निष्कल होती है । इस दृष्टिसे सर्वत्र जन्मता म मने है । तात्पर्य यह है कि स्मृति दृष्टिसे विमलता अथर्वान्त सात होती है और इस दृष्टि

एकसा विना ध्यानाद्वारा प्रतीत होती है । इसके लिये और भी एक उदाहरण दते हैं । मिट्टी एक है वात उसके नाम अर्थात् होते हैं, सोया एक है परंतु उसके अलग आभूषण होते हैं । वहाँ मिट्टी और सोनेकी दृष्टि से सब पात्र और आभूषण एक ही हैं, तथापि व्यवहारके आकार से सब नामों से भेद भी हैं । इसी प्रकार एक रत्नके आभूषणोंके साथ जोड़े हैं तथापि इन अतोद्य नाम वारण करनेवाली एकेही आभूषणोंकी शक्ति है । इस मंत्रके अन्तर्गत " एक ही शक्ति साथ रत्नोंमें विभक्त होकर इस जगत्में कार्य कर रही है " इत्यादि की विषय मुख्य है कि पाठक उसको शरीरमें देखें अथवा अन्तर्में देखें ।

विषय रत्नों के साथ जोड़े जोड़े हैं उस रत्नके एक ही रूप है । और वह रूप—

त्रिधाभि चक्रमन्त्रमवर्णम् । ( म २ )

" तीन अभिधाका वह एक चक्र उद्धारहित और अविनाशके चक्रमन्त्राका है । इसका विचार प्रथम हम जगत्में देखेंगे प्रत्यक्ष एक है और उसके मूल अभिधाय वर्तमान ये तीन केन्द्र हैं । वह चक्र कदापि क्षीन नहीं होता और न इसके कोई परिवर्तन करता है । संस्कारचक्र एक है और उसके तीन चक्र और दृष्टिके तीन केन्द्र हैं । इनमें वह चक्र रहा है । प्रकृतचक्र एक ही है और उसके छत्र रत्न और तम ये तीन केन्द्र हैं इनमें वह चक्र रहा है । अथ चक्र एक है और उसके उत्पत्ति, स्थिति और लय ये तीन केन्द्र हैं इनमें वह चक्र रहा है, इस तरह दृष्टिके अन्तर इस एकचक्रकी वातको पाठक देखें और अनुभव करें । इसी रूप से मन्त्र के अन्तर भी इस चक्रका देखना उचित है । एक ही शरीरचक्र चक्र विद्युत् वात इन तीन केन्द्रों पर चक्र रहा है । यही प्रकृतचक्र चक्र रत्न तमके ऊपर चक्र रहा है । इसी तरह और कई नाभिकां वहाँ भी हैं ।

चक्रेण विना मुक्त्यापि सर्वत्र । ( म २ )

" इसके अन्तर सब मुक्त उद्धार हैं । वह जो चक्र पूर्वस्थानमें कहा है उसमें सब भुवन रहे हैं । जगत् के पक्षमें सर्वत्र भुवन रहे हैं वह वात एव ही है । शरीरके पक्षमें शरीरस्थित सब अन्त और अवयव ही वहाँ भुवन केनेके मंत्रमें कहा । एव शरीरमें भुवनम् ही उच्छा है । शरीरमें कल्पितवात नामक तमो नाभिकोमें समान करनेवाले चक्रमें से सब अन्त और अवयव कार्य करते हैं । इसी रत्नके अन्तर्गत चक्रमें के चित्रमें कामना योग्य है ।

अथ सृष्टि मंत्रमें ( म १ ) के छत्र अभिधायक ) इस रत्नके आभूषण का छत्र एव अभिधायक हुए हैं । ऐसा कहकर आगे प्रकृत रूप सब अन्त साथ ( स्वरूप ) कहिये तथा ( सर्वां सत् ) साथ यौग्य है ऐसा कहा है वह सब साथ चक्रमें आभूषण है इसके साथ बते—छात्र है वेही साथ पाठिका इसके अन्त है यौग्य नाम वातोंका है इस शरीरमें इस वातोंके साथ भव है । इन्हीं साथ साथ विभक्तिका साथ चक्रमें आभूषण अथवा जगत् मन्त्र वक्ष्ये दिन रात्री सृष्टि के छत्र चक्रमें आभूषण है । साथ यौग्य है वहाँ शरीरमें साथ मन्त्र केनेके चक्रमें प्रकाश है । साथ इन्हींमें चक्रमें प्रकाश है । वात अन्त में सब लोक सब जगत्ता छत्र चित्रों साथ बहिका अर्थात् चक्रमें कामना योग्य है ।

यह मन्त्र है और इसका अर्थ इस प्रकारके मन से कार्य जा करता है । आगे अन्त में यह देखिये—

अथवा अन्तर्गत विभक्ति ( म ३ )

( मन्- अन्ता ) जिसमें इही वहाँ है ऐसा अन्ता ( अन्तर्- वर्त ) इन्हींमें शरीरका चारण करता है । " वह अन्तर्गत चक्र इस मंत्रमें कहा है । आत्माके लिए अथवा शरीर के और शरीरके लिए अन्तर्गत चक्र है । इसी प्रकारका नाम विभक्तिगत मन्त्रोंके मंत्रमें है—

अथवा अन्तर्गत विभक्ति ( म ३ )

" वह आत्मा शरीरस्थित अन्तर्गत आत्मा मन्त्र स्थित है अन्तर्गत चक्र आत्मा परचरित है । " वह मन्- अन्ता ( अन्तर्गत ) अन्तर्गत चक्रमें अन्तर्गत विभक्ति है अन्तर्गत अन्तर्गत विभक्ति है । वह अन्ता इन्हींमें शरीरस्थित अन्तर्गत चक्रमें अन्तर्गत चक्रमें अन्तर्गत विभक्ति है । इसी प्रकार मन् भी वर्तन हो सकता है । शरीर इन्हीं मन्त्र, मन् रत्न चक्रमें अन्तर्गत चक्रमें है । इस शरीरका चारण चक्र चक्र का आत्मा कर रहा है । जब शरीरका चारण चक्रमें आत्मा करता है । इसी रत्न देखा है । —

कः आत्मानं प्रथमं दृश्यते ? ( मं ३ )

इस प्रश्न होनेवाले आत्माका सबसे प्रथम किससे दर्शन किया । " इसके अस्तित्वके निबन्धमें किसी स्थाय्य वस्तु अनुभव किया । जिससे निश्चित करनेके इसकी आवश्यकता । जिससे इसकी आत्मनिर्मयी सत्त्विकता सबसे पहिले अनुभव किया । अर्थात् आत्मा इसके पूर्वस्थले जानता है । और—

मृत्वाः मरुत् मनुः आत्मा कस्मिन् ? ( ४ )

इस मृत्तिका के अन्तर अर्थात् रज्जु के छरीरके अन्तर एक मांस प्राक् और आत्मा कहाँ नक्का निवास करते हैं । " यह रज्जु के छरीर पृथ्वीतत्त्वका बना है, सबसे मज्जिम अन्ततत्त्व है वायुतत्त्व भी मज्जिम है तथापि इस छरीरके अन्तर में एतत्तत्त्व एतत्तत्त्वपर विराजमान हुए हैं और एक छरे-रुखे कार्य कर रहे हैं । इस निमित्त तत्त्वोंको एक छरे-रुखे चकलेपान्न वहां जेल है । वहां इन्हीं तत्त्वसे इहो अन्तरिक्षीय पदार्थ चकलेपान्नसे एक रेत आदि प्रवाही पदार्थ जमि तत्त्वसे वायव्य वाते, अन्तःस्थानिकी स्थिति वायुतत्त्वसे प्राक् आदिकी स्थिति और परमात्मनो आत्मा का प्रकटीकरण इस छरीरमें हुआ है । पशु ने जहां जेल रहते हैं । जेल इसका संघातक है । इसी निबन्धका एक मंत्र अथर्ववेदमें है वह वहां देखिये—

को अस्मिन्नालो अथर्वशास्त्रिपुत्रः पुत्रमुत् सिधुत्तन्वात् ज्ञाताः ।

टीका अथर्व शास्त्रिपुत्रमुत्तुका अथर्व अर्थात् पुत्रके चिरंजीवः अथर्व १ । १ । ११

जिस देवतासे इस छरीरमें शरीर गठितवाले काम रचनाके और तबिके धूमके समान रचनाके, ऊपर नीचे और स्थित चकलेपान्न चकलेपान्न शुरू किए हैं । वह एकके अस्मिन्नालोके संशयमें बर्णन है इसी ( १ । १ ) केन सूत्रमें छरीरके अन्तःस्थ अन्तर्बोधके निबन्धमें भी पृथक् की है । इस प्रकार जिस देवताके द्वारा वह सब छरीर बन्य हुआ है । वह तत्त्वज्ञानके स्थितये एक महत्त्वका प्रथ है ।

कः निहोस मरुत् कस्मात् ? ( मं ४ )

कौन किन्हीं इसके निबन्धमें पुत्रकेके किसे निहोसके पाठ आया है । और कौन इसके निबन्धमें ज्ञान प्राप्त करने पर्यन्त है और कौन इसके निबन्धमें निश्चित ज्ञान देता है ।

यः वेद इह जयीतु । ( मं ५ )

को इस आत्माके निबन्धमें ठीक ठीक ज्ञान जानता है वह वहां जाये, और इस सब विज्ञानोंसे कन्देव करें " और इसके पठने कि वह आत्मा इस छरीरका धारण किस प्रकार करता है । वह आत्मा अस्तित्वस्थित होता हुआ अस्तित्वके छरीरके चकलेपान्न है, सूक्ष्म तरीकेसे वही वास्तव्य करता है और पशु छरीरकी वही चकलेपान्न है । वांकोसे चकला होता है पशु ने कौन छरीरके पाठ है और आ मांसे वही है तथापि करीब आत्माको प्रेमाके विना चक वही चकला । इसी प्रकार कन्देवकार करने वाला मुख है तो छरीरके पाठ पशु आत्माको प्रेमाके विना केवल छरीरके अन्तर्बोधकार ही नहीं सकते । इसीकिने—

अस्मन्नामस्य वेद निहितं वदे वेदः । ( मं ५ )

इस परमात्मिक वांस्त्वान्ना आ मांस् इह छरीरमें रखा हुआ जो वदे है उसको जानना चाहिये । वही पर ज्ञान करने चाहिये वह पशु है इषीकिने इसकी कौन करनी होती है । सब लोगी सुनि श्रुति धर्मत महन्त इसीकी कौन करते हैं जमी करते हैं और अन्तर्बोधके मार्गी जमति हैं ।

वायः अरुण क्षीर्माः क्षीरं द्रुहते । ( मं ५ )

" इतिवक्ष्यी वीर्ये इसके छिरके स्वागते द्रुह निधीयती है । " जाँच गाँव, कल मिष्टा स्वभा आदि इतिवर्तनी केन रूप मप कन्द रथ और रज्जु कनी द्रुह चकलेपान्न है और इन निबन्धकी द्रुहको वह प्राप्त करने सुखका मानी होता है । इसके निबन्धमें मिष्टा पशुके मलमें गङ्गातवार अनेक प्रथ पृथक्के किने अस्मिन्नालो हीते हैं और वह पृथक्ता भी है—

वाकः मयसा अविमृशन् पृथक्तामि ।

देवता एवा निहित पदमि ॥ ( मं ६ )



अधिकारान् न विद्वान्, अधिकारः विद्वान् कपीय इच्छामि । ( म ७ )

महावीर अविद्वान् हैं इन्हीं विद्वान् अधिकारों पृच्छा हैं । वे ज्ञानी बोध सेरी अपार्थका की पूर करे । अज्ञान ज्ञानियों को अविद्वान् विद्वान् के पाठ जान साधारण समुच्च अधिकारों साथ रहे और अपनी अपार्थकाई पृच्छे और इस तरह ज्ञान प्राप्त करें । विद्वान् के पृच्छने योग्य प्रश्न यह है—

या इमाः चत्वारोऽपि वस्तव्ये ( म ७ )

' किस पृच्छने इतना : कोनोंको आधार दिया है ? ' किस प्रकार आधार इस संपूर्ण जगत् को प्राप्त होता है । किसने ज्ञान पर यह विश्वास है और यत्न रहा है । यह प्रश्न विद्वान् को प्राप्त कर उसे पृच्छना योग्य है और जो एक प्रश्न पृच्छना योग्य है—

अवस्तु कथं किं एक स्थितः ? ( म ७ )

" अवस्तु अवस्तु के रूपों एक रूप कीकता है । अनेक अवस्तुमात्राधारा हैं इसकी संख्या अनन्त है । इस अवस्तु कीकताओं एक स्थान को है वह कीकता स्थान है । एक ही परमात्मा सर्वत्र व्याप्त है । वह एकत्र और सर्वत्र अनुस्यूत है । कोनों को अनेक और अनुस्यूत है । इसमें अनेकत्व नहीं और अनुस्यूत भी नहीं है । प्रत्युत इसमें एकत्व और कीकतापक्ष है । यही एक स्थान सर्वत्र भरपूर है । कोई पदार्थ इसके आसी नहीं है । वह परमात्मा अपनी प्रकृति के साथ रहता है वह एक पृच्छने योग्य है । प्रकृति उसकी अवस्था है और वह उस प्रकृति का अवस्था है । ये किस प्रकार वर्तान करते हैं देखिये—

माता पिता अनेक अवस्थाः । ( म ८ )

माता पिता की अवस्थाओं में—बच्चे को पोषा करती है उदाहरण करती है । गर्भवती अपने पति की सेवा करे और बच्चे को पोषा करेगी उदाहरण बच्चे । वह पृष्ठरूप गर्भवती अवस्था बच्चे मिश्रता है उसकी माता प्रकृति परमपिता परमात्मा की उदाहरण करती है और पृष्ठरूप बच्चे पितृ करके उदाहरण होती है । वह अपार्थक पृष्ठरूपजगत् है । हर एक पृष्ठरूपी इस प्रकार अपना व्यवहार करे ।

बीटी गर्भ ममता से जगमे । ( म ८ )

वह पृष्ठरूपममता कारण करनेवाली गर्भवती पहिले ही गर्भ के बच्चे को पोषा मिश्रता है । वह केवल पृष्ठरूपे दिष्टाने के लिये ही पति के साथ मिश्रकर रहती है । ऐसी बात नहीं परंतु वह गर्भ के आन्तरिक भावों से पति के साथ मिश्रता रहती है । पृष्ठरूपममता की प्रकृति इसी प्रकार गर्भ के एकत्र होकर अपना पृष्ठरूपममता का सर्वोत्कृष्ट रूप है । प्रकृतिमात्रा को अपने गर्भ में परमात्मा के साथ ऐसी मिश्रता कर रहती है कि कभी बच्चे के विरोध नहीं करती । जो परमात्मा को हर एक है वेदा विचारणा का कार्य करती है । वहां जो पृष्ठरूपममताओं को बच्चे अनुकरणीय उदाहरण मिश्रता है ।

सा बीमारता गर्भरक्षा विधिः । ( म ८ )

वह माता गर्भरक्षा कारण योग्य करनेवाली गर्भ के बच्चे की गर्भ के योग्यता को करती है । पृष्ठरूपी गर्भ को गर्भ को पोषा नहीं है । हर एक को जो पृष्ठरूपममता है इसी प्रकार पृष्ठरूपे गर्भरक्षा पुत्राधिकारी की ममता करने में दक्षिण है, ममतामय होने पर गर्भ को गर्भ में योग्य पति के दक्षिण है और ऐसे कि जो गर्भ में ममता से हो कि जो गर्भ के गर्भ के प्रकृति हैं । प्रकृतिमात्रा अपने ममता कारण योग्य और करती आदि के विचारों के ही दक्षिण होती है और कि जो प्रकृति प्रमाद न करती हुई अपना कार्य उत्पन्न करती है ।

ममतामयः कथं वा ईषु ( म ८ )

( ममतामय ) ममतामय करती हुए अपना अपने गुण गुण अपनी ममता करती हुए अपने साथ जाते हैं । " एक प्रकार पृष्ठरूपी बच्चे होते हैं वहां कथं ममता योग्यता ममतामय करती है और अपने कथं ममता रहना चाहते हैं । ममतामय की ममतामय कथं के पाठ उपरिष्ठ होते हैं और कथं कथं ममतामय करती हैं । अपार्थक पृष्ठरूपी इस प्रकार कथं ममतामय और अपार्थक पृष्ठरूपी पर केता होता है इस विचारों प्रकृति गुण के उदाहरणों को कर दिखाती है । पृष्ठरूप ममतामय को और देखिये—

ममता पुत्र गुण्य आसीत् । ( म ८ )

" माता पृष्ठरूप के गर्भ की पुत्रों को गर्भ है । " माता पृष्ठरूप रहनेवाली नहीं है । वह पुत्रों के पृष्ठरूपी गर्भ करती है ।

भरवाभममें नर्मपत्नीका नहीं कार्य है । गृहस्थके सब कार्यों में वह भूमि रहकर वाचिता होकर कार्यका भार ठठती है । इसीसे कहते हैं नर्मपत्नी होनेपर भी वह इसी प्रकार भूमिमें रहकर कार्य करती है ।

गर्भो ब्रह्मणीयन्ताः अतिष्ठत् ( मं ९.)

“ नर्म अपने अन्तर अन्ताःकर्मिके आधारपर रहता है । ” गर्भको अन्तर कारण करती हुई गृहिणी भूमिमें रहकर सब कार्यका भार ठठती है । इसी प्रकार गृहिणी अपने नर्ममें कार्य करे । पतिके अनुकूल भर्मपत्नी रही तो जनके बच्चे भी पिया पातके ( अनु ) अनुकूल होते हैं जिस प्रकार ( गर्भ अनु वत्सः ) पीके अनुकूल बच्चा होता है ठीक उस प्रकार पतिकी पृष्टिके वाचनके समकाले समके अनुकूल रहते हैं और इस प्रकार अपने पुत्रोंमें वे माता पिता ( विश्वरूपे अपरकृत् ) सब कला रूप देवते हैं । मातापिताका सब प्रकारका रूप पुत्रोंमें आता है । जैसे मातापिताके शरीर, मन और बुद्धिके भाग होते हैं वैसे ही पुत्र और पुत्रियोंमें होते हैं । अतः कहा है ( त्रिषु बोद्धेयुः ) तीनों शरीर मन बुद्धिमें सब प्रकार की सादृश्यता विद्यमान होती है । पूर्ण गृहस्थाश्रम का वह उक्त है । इसमें माता पिता पुत्र और पुत्रियाँ एक विचारसे परिपूर्ण होती हैं और किसी प्रकार इनमें आपसी विरोध नहीं होता है ।

वृक्षः शिखः मातुः श्रीम् पितृम् विश्वम् ऊर्ध्वः पत्नी ॥ ( मं १ )

अनेका वह द्रुपुष तीव्र मातापिता और तीव्र पितापिताओं अपने अन्तर कारण करता हुआ शीखा ऊँचा रहता है । नर्मत् उन्नी काय नहीं रहता । तीव्र मातापे वे हैं— “ प्रकृतिमाता विश्वमाता और अपनी माता । तीन पिता वे हैं— “ परमात्मा पुत्र और अपना प्रपंक ।” इस तीनोंको वह अपने अन्तर कारण करता है और शीखे अग्रहार करता है । और कमी ( न अग्रहणान्ता ) कमी उन्नतिको प्राप्त नहीं होता । इस प्रकार उपाधमा और आधारनसे इसकी सब योग्यता होती है । और वे स्वर्गमें जाते हैं और नहीं—

अनुपम विच- पूछे विश्वविदः अविचरिणां नार्थ मन्त्रयन्ते । ( मं १ )

“ वह सुकोणके दृष्टमात्र पर विचारते हुए वे ज्ञानी लोग अपने अपने धाममें न आनेवासी बातोंका मनन करते हैं । नहीं स्वर्गमें रहकर ऐसे वस्तुओं विचार करते हैं कि विश्वका काय आधारम अनुपमके धाममें भी नहीं आसकता ।

परिवर्तमाने पञ्चारे नष्टं विद्या शुद्धमणि वाचस्पतुः ( मं ११ )

‘ धर्मते हुए पाँच आरोपणके चक्रमें उत्पन्न भवते हैं । अर्थात् इस चक्रके आधारसे सब भुवन रहते हैं । सब प्राणों का जो पाँच आरोपणका प्रत्यक्ष है उसके आधारसे उत्पन्न भुवन उठते हैं । नहीं शरीरमें प्रत्यक्षके आधारपर सब शरीरोंके जनन रहते हैं । प्राण चक्र बना ही कोई रह नहीं सकता । इसी प्रकार वह उत्पन्न विच भी गृहस्थाश्रमपर रहा है विश्वमात्रका महाशक्त पातके सब सुकर्मोंका कारण करता है । वह एक प्रथम शीखा है तथापि इसका सम्बन्ध ( अन्तः न उत्पत्ते ) नहीं उत्पन्न है । अर्थात् किसी वह विश्व भूमिमें रहनेपर भी इसका कोई भाग उत्पन्न नहीं । कोई एक सब भूमा है सब इसका सम्बन्ध न सब इसीसे एक कायमा पड़ता है परंतु यहाँ तक न जाकते हुए ही स्वर्ग वह सम्बन्ध नहीं उत्पन्न है यह परमत्माका अन्तः सामर्थ्य देखने योग्य है । वे अन्तर्के सब कोकिलोंकागुल एक गतिसे चल रहे हैं वे कमी उठरते नहीं न कमी इसकी जड़से निन्न होता है । इस चक्रके सम्बन्धपर ( गृहिभारः ) बहुत ही भार है जो ये कायकोशाल हैं उनका भार बहुत ही है इस भारकी कल्पना भी नहीं हो सकती । इतना भार होनेपर भी वह विश्वचक्र विश्वका कान्तिसे और गतिसे चल रहा है । और अन्तर्केकाले भूमिपर ही ( पलाय प्ल घनभिः न क्षियते ) नहीं क्षिप्रमिध जाता है । इस प्रकार वह अन्तराक्ष निष्कल सामर्थ्यसे कारण किया है ।

अथे वारहदे संज्ञे कावचक “ का नर्मन है इसकी नहीं ( इन्द्रा आहति ) वारह माधोकी वारह अवस्थाओंवाला वह पञ्चवक्त्र अथवा अन्तराक्षक है । वह अन्तराक्षक ( वक्त्र—अंते ) का अरीमें विभक्त हुआ है छः ऋतु मेही इसके छः भारे हैं । अधिक मातृका और एक मातृ माया जाता है इसके छान छान ऋतु होते हैं नहीं वर्णानिके स्निग्ध ( अक्षयके ) छान्द ज्ञाता है । अथवा अन्तराक्ष अन्तः मातृ मातृ पक्ष अन्तराक्ष सुहृत् वे भी कावचकके अन्तर्गत छान छेदे चक्र हैं वह भी अधिक योग्य प्रतीत होता है । वह अन्तराक्ष ( पञ्चवक्त्र ) पाँच पाँच भागा है शीतकाय उष्णकाय और वर्णकाय और वे ११ ( न सु मा र्थ ९ )



तान् नृक वर्णने हैं इयमे नाम्नमास और औरमास मे दो यन्त्रमास विमान मासवेले मे कनकरके जेन जेन होते हैं, नमिह इन्ही वर्णसे नह सप्तम पिता नकता मे और सप्तम (पिता-माता) संरक्षण करता है । इस प्रकारका नह अन्वयक एक वर्ण प्रमा है और उन संघार का अन्वयन करता है । इस नम्ये—

मिथुनासः पुत्राः अथ सप्तमपि विंशतिः ५ आतच्छुः ॥ ( म १३ )

मिथुन अर्थात् वो सो जुके हुए पुत्र अतर्धोवीध है । १३ वे दिन और रात ही है । दिवसे ज्ञान रात्री और रात्रिसे ज्ञान दिन जुके हैं । नाम्नरवैक और और वर्णका मन्त्र अर्थात् १३ दिनोंका मन्त्रम वर्ण है । इसके दिन और रात्री ऐसे मन्त्र दिवसे दो जुके पुत्र मानवेले ७१ होते हैं । अर्थात् नह न नाम्नवर्ण है और न और परंतु दोनों वर्णोंके मन्त्रम परिपालन का वर्ण है । नह इत्येक मरिचोष ( इत्याचार्य चर्क न हि जराय ) नारह आरोपण का कथित मी वर्ण नहीं होता है । नह नह पहिले का कैसा ही ज्ञान मी नह रहा है कमी जीर्ण ( अनेमि जवर चर्क ) अथवा जीन कही होता है । ऐसा नह अन्वयनका कथनक है और इसमें ( विद्या भुवनामि आतस्तुः ) सप्त भुवन रहे हैं । सभी की वातु इस कथनकसे निर्णी कती है । सो कमी है ( अक्षयनाम परतत्, न अन्वः ) दिवसे अन्वक उपास हैं नह इस वातकी वेदक पकता है, परंतु जो अन्वा होय, नह कैसे दक्ष संवेद्य ।

नः कविः स अक्षिणेत नः ता विनाम्यत्,

सः सिद्धा पिता नकत् । ( मं १५ )

“ जो कवि है कही नह सप्त ज्ञान प्रसन्न करता है और जो इस ज्ञानसे वचाकत् जागता है नह सिद्धा मी पित जेन है । अर्थात् कथने नाम्नका बहुत ही कही होती है । नह मायो सुध है । नही एक जाकवे है कि—

शिवाः सतीः तौ न पुंसः जातुः । ( म १५ )

“ कोई शिवा होती हुई कथने पुन्र नका जाता है । ऐसा ही अन्तमें व्यवहार हो रहा है । मनुष्यों मी कई नैके पुन्र और कईनैके शिवा नका जाता है परंतु ज्ञानमायी पहिले सप्त एक कैसे हैं और सरीरकी पहिले मी उन एक नैके ही है । अतः न कोई ही है और न कोई सुध है । वस्तुतः आत्मा सुध है और उन शक्ति की है । अंततया तो जीवपीरमें नो जाता है और पुन्रकपीरमें मी जाता है । नह सप्त शिवात् होता हुआ मी अन्तमें अनेके अंतुन व्यवहार नह ही रहा है । इस वर्णके वधात् कौनसे संज्ञा पुनः कथनकका और एक प्रकारके वर्णन करते हैं—

नह वमप एकः एकः वैकवाः अथवाः । ( मं १६ )

ऐसताके अन्वय हुए कथि है कथमें कः जुके हैं और एक अनेक है । १६ काः वातु मन्त्रिक वो दो माधोकाज होय है और तेरहमें मातका अन्त होता है नह अनेक ही एक होता है । ये सप्त वातु पूर्व वेलेके अन्वक होते हैं और ( अन्वः = अन्वः ) पूर्वकिरनेके संज्ञासे इयमे अन्वरात्री म्पुन्रविधता होती है । अतः इन वातुओंके ( अन्वः ) वात प्रकारके हैं ऐसा कथन कहा है । आये छतरहमें अनेके अक्षिककी नीध वर्णन है नह अन्तुत मी अनेके पूर्वकिरने कथनेके ज्ञान केकर नही रहती, नका कती, और अन्वके पक्षे कथनेके किध प्रकार धारण करती है इसादि कहा है नह कथि अक्षिराधा है तथापि पूर्वस्थाप के वर्णनका विचार और मन्त्र कथनेके कुछ जेन हो सकता है ।

इसके आगेके मन्त्रीका विवरण सबसे प्रथम हो सुध है । अतः सप्तका अधिक विचार फिर करनेकी कोई आवश्यकत नहीं है ।

इस प्रकार इस सूत्र की संमति है । आत्मा परमात्मा काक भीर विधके सप्त सूत इसका पुन्र वर्णन नहीं है । अन्त इन मन्त्रीका मन्त्र करे और आध्यात्मिक आत्मन आये । इस सूत्रका संक्षेप अनेके सूत्रोंसे है, अतः सप्तका मन्त्र नह करे—

# एक आत्माके अनेक नाम ।

( १० )

( प्रापिः प्रज्ञा । देवता—गौः, विराट् अघ्यात्मम् )

१५ ( १० )

यद् गोयत्रे अर्चि गायत्रमाहितं त्रैष्टुभं वा त्रैष्टुभान्निरतं हव ।

यद्वा वगच्छवगत्याहितं एव य इत् तव विदुस्ते अमृतत्वमार्नभुः

॥ १ ॥

गायत्रेण प्रति मिमीते अर्कमर्केण साम त्रैष्टुभेन वाक् ।

वाक्ने वाक् द्विपदा चतुष्पदाध्वरेण मिमते सुप्त वाणीः

॥ २ ॥

वर्गता सिर्षु विष्पुस्किमायद् रश्मन्तरे ध्रुवं पर्येषयत् ।

गायत्रस्य सुमिवास्तिस्र आहुस्ततो मुह्यन् प्र रिरिचे महित्वा

॥ ३ ॥

वर्च—( वद् ) को ( गायत्रे ) गायत्रा ( गायत्रे अर्चि आहिते ) गायत्र रखा है । और ( त्रैष्टुभम् वा त्रैष्टुभम् ) त्रैष्टुभसे त्रैष्टुभ की ( विराट्पदा ) रचना की है ( वद् वा ) अथवा को ( वगच्छ वगति आहित ) वगच्छ वगतिमें रखा है ( ये इत् ) को ( यद् वद् विद् ) इस वद्को जानते हैं ( ये अमृतार्णं आनभुः ) अमरत्वको प्राप्त करते हैं ॥ १ ॥

( गायत्रेण अर्कं प्रतिमिमीते ) गायत्री छन्दसे अर्चनीय देवता प्रतिमात्मक अर्चात् गुणवत्त्व करता है ( अर्केन साम ) अर्चनीय देवताके द्वारा साम अर्चात् साम्प्रतिकी प्राप्त करता है । ( त्रैष्टुभेन वाक् ) त्रैष्टुप् छन्दसे वाणीका मातृत्व करता है और ( वाक्ने वाक् ) वाणीसे वर्णन करता है । इस प्रकार ( द्विपदा चतुष्पदा सप्त वाणीः अक्षरेण मिमते ) दो चरनों और चार चरनोंवाले छन्द छन्दोंको आहुतियोंकी गिनतीसे गिनते हैं ॥ २ ॥

( वगता सिर्षु दिशि अस्तमायत् ) जबकि छन्द द्वारा समुद्रको पुनःकी वाम रखा है पुनःकी वाम समुद्रके समान वर्णन किया है । [ रश्मन्तरे ध्रुवं पर्येषयत् ] रश्मन्तरेमें ध्रुवका वर्णन किया है ध्रुवका वर्णन है । [ गायत्रस्य विष्पुः अमिता वाहुः ] गायत्री छन्द की तीन सज्जियाँ—तीन वाह—हैं ऐसा कहते हैं । ( तवः मुह्यन् महित्वा मरिरिचे ) इस के वही महिमामें अचुम्ब होता है ॥ ३ ॥

अर्चार्थ—गायत्री त्रैष्टुप् और जबकि अर्चि छंदों में ओ महत्त्वपूर्ण ज्ञान रखा है वस छन्दको ओ जानते हैं वे अमृतत्व—मोक्ष—को प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

गायत्री छन्दसे पूजन ईश्वरका वर्णन होता है इसकी वगच्छवासे साम्प्रतिकी प्राप्त होती है । त्रैष्टुप् छन्दसे भी वही वर्णनीय देवता वर्णन होता है और वही छन्द दो चरन और चार चरनोंवाले छन्दोंसे वही वर्णन होता है । वे वाणी छन्द अमृतको मिमतीके मन्त्रे जाते हैं ॥ २ ॥

जबकि छन्दसे वगच्छ वर्णन है कि जिसके द्वारा पुनःकी ओ आचार दिया है । रश्मन्तरे का वर्णन से वगच्छ वर्णन होता है । गायत्री छन्दसे तीन वाह होते हैं और वस छन्दसे महत्त्वपूर्ण ज्ञान प्राप्त रखा है ॥ ३ ॥

उपे ह्ये सुदुर्वां धेनुमेतां सुहस्तो गोघृगुव दोहदेनाम् ।

भेष्टं सव संविता सावित्रन्नोऽमीक्षो धर्मस्त्वद् पु प्र वोचत् ॥ ४ ॥

हिक्कुष्वती वसुपत्नी धर्मा वरसामिच्छन्ती मनसाभ्यागात् ।

दुहामश्मिन्मां पयो अन्धेय सा वर्धतां महते सौमगाय ॥ ५ ॥

गौरमीमेदामि वस्स मिपन्तं मूर्धानं हिक्कुणोन्मातृवा उ ।

सुस्वाण धर्मममि वावक्षाना मिमांसि मायुं पर्यते पयोमिः ॥ ६ ॥

अय स हिक्कुते येन गौरमीहता मिमांसि मायुं चसनाविभि भिता ।

सा विचिमिनि हि चकार मर्त्यान् विष्टुम्वन्ती प्रति धमिमौहत् ॥ ७ ॥

( सुहस्तः इतो सुदुर्वां धेनुं उपहृते ) उत्तम हाथवाला मैं इस सुहस्ते दोहने योग्य धेनुको चुकता हूँ । ( उह गो-  
घृगु पयो दोहत् ) और गावका दोहन करनेवाला इसका दोहन करे । [ संविता भेष्टं सर्व वा सावित्रम् ] वक्ता कर्ता  
करनेवाला संविता वह भेष्ट वह हमें देवे । ( अमीक्षः धर्मो यत् स पु यवोचत् ) प्रदीक्ष देखनी दूध देती क्या  
देवे ॥ ४ ॥

( हिक्कुष्वती वसुपत्नी ) हीँ हीँ करनेवाली देखनेवाली पालन करनेवाली [ अन्धसा अन्ध दृष्टन्ती ] अन्धे  
बछड़ेकी हथका करनेवाली ( मि मागृत् ) समीप आगई है । ( इयं अन्धसा अश्विन्मा पयः दुहा ) वह अश्व जो लेने  
अभिवेष्टेके किए दूध देवे । ( सा महते सोमगाय वर्धतां ) और वह बड़े सोमगाय के किए बड़े ॥ ५ ॥

( यौः मिपन्तं वसं अयि अमीमेत् ) गाव उत्तुक्त बछड़ेको चारों ओर से घेन करती है । और ( मातृवा उ ह्वामं  
हिक्कुणोत् ) मातृवत्ये किए अपने गिरको बिकारके चुक करती है । ( मूर्धानं धर्म वावक्षाना ) उत्तमत्वं उत्तमत्वे  
वाहती हुई [ पयोमिः मायुं विचिमिनीते पयते ] दूधके साथ प्रकाशको चारों ओर फैकती और साथ साथ दूध भी देती  
है ॥ ६ ॥

[ वर्धं सः विष्टुते ] वही वह कष्ट करता है । [ येन अमीहता यौः ] जिसके अनुचुत हुई जो वसीमि [ अन्धकी अयि  
भिता ] प्रथममें आगित होती हुई ( मायुं मिमांसि ) प्रकाशका मापन करती है । [ सा विचिमिनि मर्त्यान् वि चकार ]  
वह विन्दनअभिवेष्टि धाव मनुष्योंको चुक करती है और [ विष्टुत् अन्धकी वामि प्रति औहत् ] विष्टुतेके समान अन्धको  
होकर उत्तम कष्टको प्राप्त होती है ॥ ७ ॥

मावर्ध-मैं उत्तम कष्ट हामीके चुक होकर इस अश्व-गोक्ष-वही दूधके देनेवाली कावमदी वालकिय धेनुकी मावर्ध करत  
हूँ । जो इस पावका वाहन करना कामता है वही इसका पोहन करे । समस्त उत्तमत्वं देव हमें वह ज्ञानकी आज देवे और इन्हे  
प्रकाशमय बछड़ी वसं हमारे द्वारा बिछ होने ॥ ४ ॥

दिकारके चुक और मगते शिष्टरूपी वसुपत्नी धर्ममा करती हुई वह शिष्टरूपी देववाली रुती भी हमारे सब  
आगई है । वह अश्व भी हमें अश्व वैवा कावकई दूध देवे और हमारा महाम् यौःअयन वसति ॥ ५ ॥

वह भी वही अश्वकी दूध देती है जो वस उत्तुक्त है । वहीकी वह अश्वकृत् रहती है । वह वसकृत् धर्मकी फैकता पावती  
है और जो वसकृत् अश्वन वसता है वहीको अपने अधुतरप्रकारावधि चुक करती है ॥ ६ ॥

वही वह एक राज्य है जिसके चुक हुई वह वावीवर्षी धेनु प्रकथनात्ममें भी अर्थात् मायुके अर्थात् भी प्रकाश देती है ।  
वह मननराज्यमें महाम्नाको चुक करती है और विष्टुतेके समान विष्टुत् प्रकाश होकर मावर्ध जाता है ॥ ७ ॥

अनृच्छये तुरगात्तु स्त्रीषमेर्लङ् ध्रुवं मध्य आ पस्यानाम् ।

स्त्रीषो मुतस्य चरति स्वभाभिरमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ॥ ८ ॥

विधुः दह्नागं सालिलस्य पुष्टे यवान् सन्तैः पङ्क्तितो बंगारः ।

देवस्य पश्य कार्त्तव्यं मरिस्त्राद्या ममारु स षः समान ॥ ९ ॥

य ई चकार न सो अस्य चेतु य ई बुद्धि हिरुगिभू तस्मात् ।

स मातुर्योना परिधीतो अन्तर्ध्वजप्रज्ञा निर्मलतिरा विविश ॥ १० ॥ (२६)

अपश्य गोपार्मनिपद्यमानमा च परां च पथिमिभरन्तस् ।

स सध्रीषीः स विपुचरिषिमान आ बरीवति मुषनेष्वन्तः ॥ ११ ॥

अर्थ—[पत्थरानां मध्ये] कोमल किरीट [द्वय पृथक् कीर्ति] विर वाक्य जीव [द्विरागुत अन्तर्द्वय] तीव्र गतिमान -  
 प्रत्यक्षितवान् होकर रहता है । यह [सुखल कीर्ति] मेरे मनुष्य का जीव [अमरार्थः] स्वयं अमर होगा हुआ मी  
 [मर्त्येण सन्तोषिः] मर्त्ये धरीरके प्राय समान पोषिते प्रसिद्ध होकर [स्व-वाग्भिः परस्मि] अपनी वाक्य साक्षिर्बद्धि  
 करता है ॥ ८ ॥

[ प्रसिद्धि के ] भद्रतिलककी पीठपर [ शत्रुपं विजुं ] पतिमात्र विचार-कर्म करी [ बुद्धिमान् सन्त ]  
 हुए सत् पदार्थको [ प्रसिद्धि, ज्ञान ] एक बृहत् निकला है । [ देवत्व पद का ] ईश्वरका यह काम है । (महिला)  
 मन्त्रों को [ हाँ के बान् ] एक मात्र बात करवा था । [ सः भद्रतिलक ] यह बातें मरवा ॥ १ ॥

[यः ईं वकार] ओ करता है [स अस्व वहे] वह हृष्यो जागता वहीं। [यः ईं वर्या] ओ वक्ता है [वदमा] विस्म ह्य जु] वक्ते वीधे ही वह है। (सः मातुः योनी अन्ताः परिबीजः) वह माताकी योनिमें अन्दर परिबिद्ध होकर [बहुमन्त्रा विभक्तिः जाविषे] बहुत्र सत्तात्र करपत्र करेबाकी इस प्रकृतिमें प्रविष्ट होता है ॥ १ ॥

(जे—वा अनिपद्यमानं) इन्द्रियोक्तं रक्षकं पतनको ग प्राश होवैवाके (पविमिः) ना न परा न चान्तं) अपदे नमोति वाम और दूर जानेवालेको (अपहर्षं) मैंने देखा । (सः क्षत्रीयीः) वह साध विराजमान है (सः विपूषीः) वह धरं है, वह (मुपनेतु अन्यः वसायः) उनको अन्य वसता हुआ (वा वरीवर्ति) बारबार आवर्तन कराता है ॥ ३॥

साधारण-मनुष्यको शरीरमें एक जीव है जो स्थिर है तथापि बजाये जाता है वह जीव यति है, और आत्मने जी अपने हाथ शरीर में रहता है। वही जीव एक शरीरमें रहता है। मरे हुए मनुष्यका वह जीव स्वर्ग जगत् में इसलिए वह अपनी दिव्य शक्ति से रहता है और दूसरे वर्गों देहों में भारत भरमें के किये किसी भी वर्गों में देह ग्रहण करता है ॥ ५ ॥

इस प्राकृतिक सधारणतामें वह जीव प्रपत्ति करता है और विविध कर्म भी करता है। वह जीवनयात्रा युवा होता हुआ भी वह पुरी बड़े इस परमात्मके अङ्गपर प्रविष्ट होता है। वह सब वैश्वी साम्यमय क्षितिरेकाने योग्य है। जो जीव एक अभिहित होता है वही आज मरता है [ और पश्चात् पुनः शरीर भी प्राप्त करता है ] वह अब सब वैश्वी यदिया है ॥ १ ॥

भी कर्ममार्गी कर्म करता है वह इस देवके महत्त्वकी नहीं जानता। परंतु जो ज्ञानमार्गी इस देवका साक्षात्कार करता है उसके  
 भविष्य के लिये चिन्ता ही नहीं है वह देव तक ही सीमित है। वह जीव बुद्धि धारी मारल करनेके लिये नष्ट माताके गर्भमें प्रविष्ट  
 होकर ही एक बहुत धैर्यवान् कर्त्तव्य करनेवाली प्रकृति उसकी मेरती है और इस प्रकार जबकी मना धीरे दिखता है ॥ १ ॥

ये सब प्रमाण इतिवृत्त रसक के और सर्व प्रमाणों के नहीं हैं । यह करीबों जाता है और शरीरों पर भी जाता है यह परमात्मा इसके साथ है सर्वत्र जाता है और सब पदार्थों में विराजमान है ॥ ११ ॥

धौमः पिता धनिता नामिरश्च वधुर्नो माता पूषिषी महीयम् ।

उत्तानयोश्चम्योऽयोनिरन्तरत्रा पिता दुहितुर्गमिमाषात्

॥ १२ ॥

पूष्छामि त्वा परमन्तं पूषिष्याः पूष्छामि वृष्णो अश्वस्य रेतः ।

पूष्छामि विश्वस्य सुर्वनस्य नामि पूष्छामि वाचः परम व्योमि

॥ १३ ॥

इय वेदिः परो अन्तः पूषिष्या अय सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतः ।

अयं यज्ञो विश्वस्य सुर्वनस्य नामिर्गन्धर्व वाचः परम व्योमि

॥ १४ ॥

न वि ज्ञानामि यदिदेदयस्मि निष्पः सनद्धो मर्नछा शरामि ।

यदा मार्गन् प्रथमन्वा कृतस्यादिह वाचो अश्वेव मागमस्याः

॥ १५ ॥

अर्थ- ( धौः नाः पिता धनिता ) प्रथमस्तत्र देव इमांस्त एतत्क नीत कत्यादिह है वही ( नामिः ) इमांस्त अश्व है और ( वाः वधुः ) इमांस्त वधु है । तथा ( इय मही पूषिषी माता ) यह वही दुहित्री माता है । ( उत्तानयोः अन्तोः केचित् अत्र ) ऊपर ओर सुबोधको हम को वर्तव्योका मूक कल्पितवान् वहाँ ही है । वहाँ ( पिता दुहितुः परमं वाचम् ) परम दूर स्थित प्रकृतिमें अर्मेकी स्थापना करता है ॥ १२ ॥

( पूषिष्याः परं अन्तः त्वा वृष्छामि ) पूषिषी परम अन्त कीवला है वह मैं इसे पूछता हूँ । ( वृष्णो अश्वस्य रेतः पूष्छामि ) वृक्षान् अश्वके नीचके विषयमें मैं पूछता हूँ । ( विश्वस्य सुर्वनस्य नामि पूष्छामि ) सब सुर्वनके केन्द्रके विषयमें पूछता हूँ । ( वाचः परम व्योम पूष्छामि ) वाची परम अन्तक अर्थात् कल्पितवान् पूछता हूँ ॥ १३ ॥

( इय वेदिः पूषिष्याः परः अन्तः ) यह वेदी भूमिका परका अन्त प्राप्त है । ( अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतः ) यह सोम वृक्षान् अश्वका नीच है । ( अयं यज्ञो विश्वस्य सुर्वनस्य नामिः ) यह यज्ञ सब सुर्वनको अन्त है । और ( न वि ज्ञानामि ) यह हम ज्ञान कि मैं किसीके सारक हूँ । ( निष्पः संवत्स मर्नछा शरामि ) अर्थात् वृक्षा हुआ मैं मर्नछे वकता हूँ । ( यदा कृतस्यादिह वाचो अश्वेव ) जब सत्यका पहिला प्रवर्तक ज्ञे अर्थात् वातावा ( वायु इय अन्तः वाचः मार्ग अश्वत्थ ) उसी समय इससे वाचीके मार्गको मैंने प्राप्त किया ॥ १५ ॥

अन्तः यह परममार्ग वृक्षा अर्थात् धौके समान प्रकाशमान है वही हम सबका पिता अन्तक अन्त और केन्द्र है। यह इसी अर्थात् मरुति इमारी वही माता है । यह पिता इस दुहितु कपी प्रकृतिमें अर्मेक आवास करता है जिससे सब छत्रि उत्पन्न होती है । इस शीर्षी मरुति उत्पन्ने समस्त कल्पित स्थान है ॥ १२ ॥

इय वृष्णि परम अन्तम आग कीमछा है । वचनात् अश्वका नीच कीवला है । सर्व्व अश्वस्य केन्द्र कीमछा है । और वाची परम उत्पत्तिस्थान कीमछा है । ॥ १३ ॥

यदा वृक्षो वेदि इय भूमिका परका अन्तमय है । अमन्त अश्वका नीच यह सोम है । यह ही सब वधु का केन्द्र है और यह अश्व-अन्त ही वाची परम उत्पत्तिस्थान है ॥ १४ ॥

यह अन्त किसे समान है यह विदित नहीं है । यह आत्मा इस शरीरमें यह होकर रहा है रहें मर्नछे वही अश्वक करता है । जिस समय अश्वमर्नछा पहिला प्रवर्तक परममार्गको प्राप्त होता है उसी समय इस दिग्ग मंत्रकी वाची परम अन्त प्राप्त होता है ॥ १५ ॥

अपाद् प्राकृति स्वधया गृहीतोऽर्धस्यो मर्त्येना सयोनिः ।

ता स्रष्टवन्ता विपुशीनां विपन्ता न्यूनं चिकुर्युर्न नि चिकुर्युन्यम्

॥ १६ ॥

सप्तार्धगर्भा मुचनस्य रेतो विष्णोस्तिष्ठन्ति प्रदिक्षा विधर्मणि ।

ते भीतिभिर्मनसा ते विपश्चितः परिमुखाः परिं भवन्ति विधतः

॥ १७ ॥

श्रुधो अक्षरं परमे व्योमिन् यस्मिन् देवा अधि विधे निपेदुः ।

यस्तन्न वेदु किमुवा करिष्यति य इत् सद् विदुस्ते अमी समासते

॥ १८ ॥

श्रुधः पद मार्गया कल्पयन्तोऽर्धर्षेन चाकुरुर्विश्वमेजम् ।

त्रिपाद् मयं पुरुषं वि तेषु सन् जीवन्ति प्रदिक्ष्यतस्तः

॥ १९ ॥

अर्थ— ( अमर्त्यः मर्त्येन सयोनिः ) अमर अत्रमा मरकर्मवाके शरीरके साथ एक उत्पत्तिसामर्थ्य प्राप्त होकर ( स्वधया पुनरितः अपाद् प्राक् पति ) अपवा चारणा कछिसे पुन होकर बीजे तथा ऊपर जाता है । [ ता स्रष्टवन्ता विपु— नीत्य ] वे दोनों उत्पन्न रहनेवाले विविध गतिवाके परंतु ( विपन्ता ) निरु गतिवाके हैं इनमेंसे ( अन्य विचिकुर्युः ) पुरुषो आते हैं और ( अन्य न निचिकुर्युः ) दूसरोंके नहीं आते ॥ १६ ॥

( मुचनस्य रेतो सप्त अर्धगर्भाः ) सप्त शुक्रगोत्रा बीजें सात अर्ध गर्भमें परिणत होकर ( विष्णोः प्रतिष्ठा विधर्मणि तिष्ठन्ति ) व्यापक देवकी आज्ञामें रहकर विविध गुणधर्मोंमें रहते हैं । ( ते भीतिभिः मनसा ) वे भुक्ति और ममसे भुक्त होकर तथा ( ते विपश्चितः परिमुखाः ) वे ज्ञानी और सर्वज्ञ अपास्वित होकर ( विधतः परिमयन्ति ) सब ओरसे घेरते हैं ॥ १७ ॥

( परमे व्योमिन् ) परम जाडाकमें उत्पन्न होवेवाके ( अक्षरं अपाद् अक्षरे ) जिस संज्ञके अक्षरमें ( विधे देवता अवि विदुः ) सब देव विराज करते हैं ( वा एत न वेद ) जो वह बात नहीं जानता वह ( अपादि करिष्यति ) वह मंत्र केकर क्या करेगा । ( य इत् सद् विदुः ते इमे समासते ) जो विधव से इसको जानते हैं वे ये उत्तम स्वाममें बैठते हैं ॥ १८ ॥

( अपाद् पदं मार्गया कल्पयन्ताः ) संज्ञके पदको मार्गसे समर्थ बताते हैं । ( अर्धर्षेन पुरुषं विश्वं आकुरुः ) आने में आनेके समर्थवाक अवयवों समर्थ करते हैं । इस प्रकार ( त्रिपाद् अत्र पुरुषं वि तेषु ) तीन बाहोंवाका शक्त बहुवचनसे ब्रह्मा है । ( तेन ब्रह्मणः प्रदिक्ष्य जीवन्ति ) उसीसे चारों दिसार्ध जीवित रहती हैं ॥ १९ ॥

भावना— वह अत्रमा अमर है । तथापि मरण कर्मवाके शरीरक साथ रहनेके कारण विविध योगियोंमें अमरता है । वह अपनी शरीरक कछिसे तथा ही शरीरमें जाता अथवा शरीरसे पुनरु जाता है । वे दोनों अमर हैं और अविनाश भी हैं तथापि इसी पक्षियोंमें अमर है । नममेंसे एक को जानते हैं परंतु दूसरे का ज्ञान नहीं होता है ॥ १६ ॥

एक को हुए पदार्थोंका मूल शीघ्र ज्ञात करनेमें है । वे छाती मूल तरण व्यापक परमात्माकी आज्ञामें कार्य करते हैं । ज्ञानी सब मनेसे इस ज्ञानको प्राप्त करके सर्वत्र उपस्थित होनेके समान ज्ञानवान् होते हैं ॥ १७ ॥

इस को आश्रयमें प्राप्त करण होता है सब शब्दोंके मननेवाका अपादे अक्षरमें अनेक देवताओंका निवास होता है । जो बहुत ही बातोंकी नहीं जानता, वह देवता मंत्रकी केकर क्या करेगा । परंतु जो इस शब्दको जानते हैं वे परम परम आचरिपुत्रत्व प्राप्त हैं ॥ १८ ॥

सुयवसाद् भर्गवती हि भूया अर्घा वच भर्गवन्तः स्वाम ।

अदि वर्णमज्ये विश्वदानीं पिबं ब्रह्महृदकमाचरन्ती ॥ २० ॥ ( १७ )

गौरिर्निमाय सलिलानि सञ्जत्येकपदी द्विपदी सा त्रिपदी ।

अष्टपदी नवपदी दशपदी सहस्राक्षरा भुवनस्य पञ्चकिस्तस्याः समुद्रा

अधि वि क्षरन्ति ॥ २१ ॥

कूप्यं निपानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना विश्वस्यन्ति ।

त आर्षवृन्तसदनादवस्थादिह धृतेन पृथिवी व्युद्भिः ॥ २२ ॥

अपार्दति प्रथमा पृथ्वीनां कस्तद् वा मित्रावक्ष्या चिकित ।

गमो मारं मरत्या चिदस्या कृतं विपुर्त्यन्तं नि पाति ॥ २३ ॥

अर्घ-दे (अज्ये) व अमने बोध गी । ए [ सु-अच-अ-अचवती हि भूयाः ] वचम वास आलेखी भवन्ती-  
किमी हो । [ अवा वच भगवन्तः स्वाम ] और हम भगवन्त होय । [ विश्वदानीं तुल्य अदि ] सर्वदा तुल्य अज्य वर और  
[ आचरन्ती ब्रह्म हृदकं पिबं ] अमम करती हुई ब्रह्म अच गी ॥ २० ॥

( गी : इदं सलिलानि पक्षी ) गी विश्ववसे अज्येके सिंहाती हुई ( मिमाय ) अज्य करती है । ( आष्ट-  
पदी द्विपदी त्रिपदी ) यह एक पादवाली, दो पादवाली चार पादवाली ( अष्टपदी दशपदी ) अष्ट पादवाली, दश  
पादवाली ( दशपदी ) बहुत होयेकी इच्छा करनेवाली [ अष्टक अक्षरा ] इकारों अक्षरोंनामकीं सुवक्ष्य पक्षि ] छ-  
मकी पक्षि है । ( वस्याः समुद्राः अधि विश्वरन्ति ) अक्षरी अथ समुद्रके रस बहते हैं ॥ २१ ॥

[ अपो वसानाः ] अज्ये अपने छाव डेति हुए [ सुपर्णाः हरयः ] वचम पक्षिणीक धुर्धरिय ( कूप्यं निपानं  
विप ) सचका आकर्षण करनेवाले अज्ये बाग हम धुर्धरको ( अचरन्ति ) बचते हैं । ( वे कस्त्य सहस्रा ) वे अज्ये सप्त-  
क्य अचरन्ति ( आचरन्ति ) नीचे आते हैं ( अथ इदं धृतेन पृथिवी व्युद्भिः ) और अज्ये धूमिके निपते  
हैं ॥ २२ ॥

( पृथ्वीनां प्रथमा अपाठ पति ) पृथ्वीवाली माछत धुर्धरिमें अज्ये प्रथम स्वाधर्म तद्वेवाकी अकि वारमिच  
है । वे मित्र और वक्षो [ वा क्य एव चिकित ] तुम होयेकी नीच सचके आकाश है ? ( गमो वस्याः पारं आचरन्ति  
चिद ) गर्वने रहनेवाला इह अक्षरी का पार बहता है । वही [ अर्घं विपाति ] अक्षरी पूर्णता करा है और [ अर्घं नि  
पाति ] अक्षर्यमा आच करता है ॥ २३ ॥

माधर्म- भर्गवे पाव आचरन्ती संवसासे गियते हैं । इह भर्गवे जाये माधर्म गी सर्व्व भोग और मित्र आचरन्तम् अज्य  
है । यह मित्र अथ अनेक स्त्रीमें ठहरा है और इच्छा करी विश्ववसिआलीका जीवन होता है ॥ १९ ॥

वे अज्य आचरन्ती गी । ए अर्घात् अक्षरा प्रमुच्यन्ती अथ अज्य अक्षरीक अक्षरी अज्य आचरन्तम् अज्य और ठी अज्य  
है हम मी आचरन्तम् अज्य । अर्घात् अथ और अक्षर्यमा अज्य ॥ २० ॥

यह आचरन्ती गी अर्घात् अक्षर्यमा अक्षर्यमा दो बार आठ अक्षर्यमा दो पक्षीके अक्षरीमें विपद्य हुई व यह अनेक अक्षर्यमा  
है और इनका अक्षरीक इच्छा करनेवाली है । यह गमो अथ अक्षरीके पूर्ण करनेवाली है और अज्ये निमित्त रस बहते हैं ॥ २१ ॥  
धुर्धरिय अज्ये छाव अक्षरी अक्षरी है यह अक्षर्यमा अक्षर्यमा अक्षर्यमा अक्षर्यमा अक्षर्यमा अक्षर्यमा अक्षर्यमा अक्षर्यमा  
अक्षरी आता है और धूमिके मिमाया है ॥ २२ ॥

विराड् वाग् विराड् पूषिवी विराड् अन्तरिक्ष विराट् अन्तरिक्षः ।

विराट् मृत्युः साध्यानामविराजो बभूव तस्य मृतं मण्य वधे

स मे मृत मण्य वधे कणोत्

॥ २४ ॥

शक्रमयं धूममारादपश्य विपुवता पर एनावरेण ।

उद्यम्य पूर्वमपचन्त वीरास्तानि घर्माणि प्रथमान्यासन्

॥ २५ ॥

त्रयः केशिनं श्रुतुय वि वधते सवस्त्रे जपत एकपयाम् ।

विश्वमन्यो अभिचष्टे क्षत्रीभिर्धामिरेकस्य ददष्टे न रूपम्

॥ २६ ॥

शुत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विदुर्माज्ञा ये मनीषिणः ।

गुहा त्रीणि निहिता नेक्ष्यन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या विदन्ति

॥ २७ ॥

अर्थ विराट् वागी पूषिवी, अन्तरिक्ष प्रजापति और शक्र हैं । वही विराट् [ साध्यानां अविराज बभूव ] साध्याका अविराज है । ( तस्य वधे मृत मण्यं ) उसके आधीन मृत और अवश्य है । ( सः मे वधे मृतं मण्य कणोत् ) वह मेरे आधीन मृत और अवश्य करे ॥ २४ ॥

( विपुवता पराः आराद अवश्य ) अनेक रूपोंसे बहुत दूर और पास भी ( एवा शक्रमयं धूम अपश्यं ) इस शक्ति-वाले धूमको मैंने देखा । वही ( वीराः क्षत्रि कक्षालं अपचन्त ) वीर छोटे कक्षाको परिवर्तन बना रहे थे । [ तानि घर्माणि प्रथमान्यासन् ] वे घर्म प्रथम थे ॥ २५ ॥

( वधः वेष्टिवाः मृत्युवा निचष्टे ) तीन किरणवाले पदार्थ मृत्युके अनुसार दिखाई देते हैं । [ एवा एकः संवत्सरे वधते ] इनमें से एक वर्षमें एकवार वधजता है । [ वध्याः क्षत्रीभिः विव अभिचष्टे ] दूसरा साक्षियोंसे विवको प्रकाशित करता है ( एकस्य प्रथमो वधते ) एककी गति दीक्षती है परन्तु वधका [ कर्तृ ] कर नहीं दीक्षता ॥ २६ ॥

[ वाक् परिमिता पदानि परिमिता ] वाणीके चार स्थान परिमित हुए हैं । ( ये मनीषिणः माज्ञाः ) जो शास्त्री प्रकाश हैं वे [ तानि विदुः ] इनको जानते हैं । इनमेंसे ( त्रीणि गुहा निहिता ) तीन गुप्त स्थानमें रख दिये [ न ह्यन्विन्ति ] नहीं प्रकट होते । [ मनुष्याः वाचः तुरीयं वदन्ति ] मनुष्य वाणीके चतुर्थ रूपको बोलते हैं ॥ २७ ॥

आचार्य-वाचकाके लक्षित वाक्क जीवहित आत्मा है । और इस वाक्क आत्मामें जायता है ? वह वाक्क आत्मा इस-रूप का सब जगत् रहन करता है और लक्ष्यी रक्षा करके अक्षयका नाक करता है ॥ २४ ॥

इस विराट् अवस्थाका रूप वाणी भूमि अन्तरिक्ष प्रजापालक, और प्रजासंहारक मृत्यु ही है । वह स्वयं राजाधिराज है और इसीके आधीन सब मृत अवश्य वर्तमान है । वह मेरे आधीन सब मृत अवश्य वर्तमानको करे ॥ २५ ॥

वाक् और बहुत दूर भी मेरे धूमको देखा और लक्ष्य आत्मा अनुमावधिवा । लक्ष्य आत्मापर वीर रूप लीट वधवा पर वध बनाते हैं । वे वधवर्ष वधे आत्ममें डूबते हैं ॥ २६ ॥

तीन देव किरणोंके अर्थात् प्रकाशनाम हैं । इनमेंसे एक वर्षमें एक समय प्रकाशता है दूसरा अपनी निज धर्मियोंके सब वधो प्रकाशित करता है और तीसरी वधक गति प्रतीत होती है परन्तु लक्ष्य रूप नहीं दिखाई देता ॥ २७ ॥

वाक्के चार स्थान हैं इनका मन्वन्तीक प्रकाशनी जानते हैं इनमेंसे तीन स्थान वधवर्षमें गुप्त हैं और चार मनुष्य बोलते हैं वह मनुष्य स्थानमें वधक वधक वाणी है ॥ २८ ॥



इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमादुर्यो विष्णुः स सुपुर्णो गुरुतमोम् ।  
एकं सव् विप्रो बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वातमाहुः  
॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥  
॥ नयमं काष्ठं समाप्तम् ॥

॥ १८ ॥ ( १८ )

अर्थ- [ एकं सव् ] एक सव् वस्तु है वहीका [ विप्राः बहुधा वदन्ति ] ज्ञानी कोय अनेक प्रकार कथन करते हैं । वही एकका इन्द्र, मित्र वरुण अग्नि विष्णु सुवर्ण गुरुतम वय और मातरिका [ अयो बाहु ] कहते हैं ॥ १८ ॥

धार्मिक- इस तरह केवक एक ही है परंतु ज्ञानी कोय तथा एक सव् तथाका कथन सुननेवाक अनेक कथनो करते हैं । उही एक एक चरणको के इन्द्र मित्र वरुण अग्नि मित्र यम देते हैं ॥ १८ ॥

### छन्दोका महत्त्व । वाणी और गोरक्षण ।

गायत्री त्रिष्टुप् जगदी आदि छान्द छन्द सुकन हैं । इसके मेर और बहुत ही हैं । इस छान्द छन्दोंमें केवक छान्द मरा एक है इतिथिप कहा है कि लक्षणका आत्मकावय करके ज्ञानका प्रकाशन करनेवाके के छन्द हैं । इस छन्दोंमें किंच प्रकरका छान्द है इस विषयमें बोधका आवश्यक प्रयत्न यजम है । छन्दमें कहा है-

( वाचमे वाच न ) गायत्री छन्दमें ( वाच ) प्रत्योक्षी ( ज्ञं ) रखा करनेका ज्ञान है । जो कोय गायत्री छन्दके वाचका छन्दम अन्वयन करेके के प्रकरका करनेकी विद्या छान्दम उचिते ज्ञान कहते हैं । ( त्रैष्टुप् ) त्रिष्टुप् छन्दमें ( त्रैष्टुप् ) छन्दम अर्थात् प्रकृति ज्ञानका और परमप्रकाश छान्दम है इस कारण जो कोय त्रिष्टुप् छन्दका छन्दोंका छान्दम अन्वयन करेके छन्दम प्रकृतिविद्या आत्मविद्या और प्रत्यविद्याका ज्ञान हो कहता है और के प्रकृतिविद्याके ऐहिक सुख और आत्मविद्याके अमृतलक्षी प्रप्ति कर कहते हैं । इस प्रकार ज्ञान वैदमर्थाकी विद्या इहपरलोकके सुखका साधन होती है ।

( अमति अमत् ) अमति छन्दमें अमत् छन्दकी अमृत ज्ञान मरा है । जो ज्ञान प्राप्त करनेके मनुष्य इस अमत्में निरर्ण हो कहता है । इतिथिप इसी मंत्रमें ज्ञाने कहा है कि-

न ह्यस्य त्रिष्टुः वै अमृतम आनयन् ॥ ( म १ )

“ जो ज्ञानी इस ज्ञानके इस वैदिक ज्ञानको-अमत्मात् आनते हैं के अमृतकी अर्थात् मोक्षकी प्राप्त करते हैं ।” इस प्रकार छन्दोविद्याको आत्मविद्याके मोक्षके अधिकारी होते हैं । इसका अर्थ यह नहीं है कि वे केवल मोक्षके ही अधिकारी हैं और इस अमत् की छन्दोविद्या के नहीं प्राप्त कर कहते प्रत्युत वे आपतित लक्षितिके केने प्राप्त करते हैं वही प्रकर आत्मिक छन्दोविद्या की वे प्राप्त होते हैं । जो मोक्षके अथवा अमृतलक्षके अधिकारी होते हैं वे सामान्य मोक्षिक लक्षितिकी प्राप्त कर कहते हैं यह अन्वयेकी की छान्द आत्मव्यवस्था नहीं । क्योंकि औद्योग्य मर्यादा तथा ज्ञान और आत्मव्यवस्था आदि सुष्ठु सुष्ठु इस कोषका व्यवहार करनेमें जो छान्द एक न और छान्दोके ऐहिक व्यवहार छान्दम तरह ज्ञाने के । और वे तो अमृतलक्षके अधिकारी के इस विषयमें निश्चित की वरिष्ठ नहीं है । इस प्रकार इस वैदमंत्रोंके ज्ञानकी प्राप्त करनेवाके मनुष्य ज्ञान परलोकमें परमोच्च लक्षितिकी प्राप्त कर कहते हैं । अनेक मनुष्य जो इस भूलोकमें देहकारण करने काया है वह अमरत्व प्राप्त करनेके ज्ञाने ही है । इतिथिप कहा जाता है कि केवल ज्ञान प्रलोक मनुष्यके ज्ञाने लक्षितिका मार्ग ज्ञानमें समर्थ है ।

( गावत्रेय अथ प्रतिप्रतिपत्ति ) गायत्री छन्दमें अर्थात् वैदिकी सम्बन्धी प्रतियोग विमर्श को है । प्रलोक मनुष्यके ज्ञान एक अक्षितानी वैदिकी अर्थात् काया अमृत आत्मलक्ष है वय वैदिकी वस्तुतः प्रतियोग ही नहीं है, परंतु छन्दकी लक्ष्यपरी प्रतियोग प्रकरकी छन्द है । इस कारण पाठक यदि किसी स्थानपर परमत्व वैदिकी प्रतियोग देख कहते हैं तो वे ज्ञान छन्दमें ही देख कहते हैं ।

( अनेक छम ) इस अर्थात् अर्थात् पूजनीय देवकी सहायतासे 'छम' अर्थात् छान्ति प्राप्त होती है । इस छान्तिका ही उद्गम मम अमृत है । अमृत और छम एक ही अवस्थाके वाचक शब्द हैं अस्तु । इसी तरह त्रिभुप् छम्पते भी वर्त्मन देवता का वर्त्मन किया जाता है । त्रिभुप् छम्पती वाणी उसीका वर्त्मन करती है । पूर्व मन्त्रमें कहा है कि त्रिभुप् छम्पते प्रकृति जीव और वायव्याद्य वर्त्म होता है । वही बात वहाँ इस मन्त्रमें अनुसंधेय है । इस प्रकार—

### सात छन्द ।

विष्वा अनुपदा सप्तवाणीः अक्षरेण मिते । ( मं २ )

' हो वरम और वार वरकोशके जो सात छन्द हैं उनके प्रत्येक वरयमें अक्षर संख्याका परिणाम अक्षरोंकी संख्याकी मिली करके ही होता है ।' वैसा अनुपदुर्गमें वरयमें आठ अक्षर, इसी प्रकार अन्त्यान्व छम्पते पादोंमें अन्न सप्तमा अक्षरोंकी पायी है । इस प्रकार अक्षर संख्याकी गूणाधिकतासे वे छन्द होते हैं ।

( वाचवत्त सिद्धाः छमिकाः ) यावन्ती छन्दके पाद तीन हैं । प्रत्येकमें अक्षर आठ होते हैं । अगती छन्दके अक्षरोंका वर्त्मन है वह वात वरम मन्त्रमें कही है वही फिर इस छन्दी मन्त्रमें पुनरुपेते हैं और कहते हैं कि ( अयता विवि रितु अस्माकम् ) अयति छन्दके मानो पुनोक्तमें महापापको केका रखा है । अर्थात् वैसा महापापका वर्त्मन होता है वैसा ही पुनोक्तका वर्त्मन किया है । इस महापाप में वे मन्त्र छन्दे छन्दे हीमिके छमाग हैं इसादि आत्मकारिक वर्त्मन वहाँ समझना उचित है ।

इसी प्रकार ( रत्नतरेण सूर्यं वर्णयन्तम् ) रत्नतर से सूर्यका ज्ञान प्रसक्त होता है । क्योंकि उसमें वह वर्त्मन अविस्मर्य है । इस ज्ञानकी ( महा महिमा ) महाका कथा कथन करती है वह ज्ञान तो मनुष्यको अविष्टम मन्त्रलोक पहुँचा देता है । वह ज्ञान तो मनुष्यको इस जन्ममें और उस जन्ममें और अनन्तमें मोक्षलोक ज्ञान मार्गदर्शक होता है । अतः वही वर्त्मनका ज्ञान सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है ।

### सुहस्त गोरक्षक ।

विश्व प्रभार ( सुहस्तः सुभुजां वेत्ति वरुणे ) ज्ञान हावनाका उत्तम दीहान करने काय वसुकी पुकारता है वही प्रभार मनुष्य इस वैदिकदीहकी क्षमतेवसुकी अपने पास बुझने । यावन्ता वृक्ष विष्वाद्येवाका सुहस्त' अर्थात् ज्ञान प्रेमपूर्व हावनाका होना चाहिये । 'सुहस्त' वही होता चाहिये । सुहस्त मनुष्य वह है कि जो वीर की वृक्ष वसुपाता है वैसा सुहस्त मनुष्य कभी मायकी अपने पास व बुझने । परन्तु वही हावना वरम यावन्ती वेगके विनि तापर रहता है । यावन्ता विश्व करनेमें जो वरु है वही मनुष्य मन्त्रकी बुझने । वी अवश्य होकर यावन्ती के ज्ञान किसी प्रकार की सुहस्त का छमन नहीं जाना चाहिये । 'सुहस्त' होकर ही मनुष्य वरुके पास जाने वह वैदिक उपदेश स्पष्टतासे कहता है कि 'गोरक्षक' करना मनुष्यका वेदोक्त वर्त्मन है । वा प्रेमसे गोराजन करता है वही वरुके वैदिकवर्त्मन है । क्योंकि वी नाम वरु यावन्ता यावन्ता है वैसा ही वह वैदिकवर्त्मन का वी यावन्ता है । अतः 'गोरक्षक' का वर्त्मन यावन्ती रक्षा' और वैदिकवर्त्मन रक्षा है इसलिये कहा जाता है कि गोरक्षक ही वैदिक वर्त्मन हो सकता है ।

( वसुं वर्णयन्ती रोहता ) यावन्ता वाहन करनेवाका इस वीका और इस वैदिकवर्त्मन रोहान करे । गोका रोहान करनेसे अमृत कभी वृक्ष प्रत्य होता है और वैदिकवर्त्मनकी वागोका रोहान करनेसे अमृत वैसा ज्ञान प्राप्त होता है । यावन्ती वृक्षों वैसा वृक्ष होता है वैसा ही वैदिकवर्त्मन भी होता है । वहाँ वृक्ष करनेके रीतों छापन हैं । इसीलिये कहा है कि ( तत् वर्त्मनः पुत्रं योऽन् ) वृक्षका ही वे मन्त्र वर्त्मन करते हैं । वैदिकवर्त्मनकी वी अपने ज्ञानसे वृक्ष का वर्त्मन बता रही है और वह भी अमृत वृक्ष का वृक्ष करती है । इस तरह रीतों रीतोंकी छमागता है ।

( वरुणां वसुन्मयी ) वह वी-वैदिकवर्त्मन और गोमाता-वसुन्मयी पात्रमेहारी है । वसु नाम एकवैका व वृक्ष है । उस प्रकार वैदिकवर्त्मन और वरुके ही प्रत्य होते हैं । वैदिकवर्त्मनकी गोते ज्ञान मिश्रता और गोमाताये वरुका अन्न मिलता है । इस प्रकार वे ही गो वी वैदिकवर्त्मन प्रदान करती हैं । विश्व प्रभार ज्ञान गोमाता अपने ( वरुं इच्छन्ती ) वरुके ही वृक्ष करती हुई मायमे जाती है वही प्रभार वह वैदिकवर्त्मन वी वृक्ष सुवैदिकवर्त्मन इसलिये अमर्त्य होगई है कि वे अनन्त यावन्ता व इस ज्ञानमयका वरु

करें और अमर बने । इस प्रकार दोनों गोत्रोंमें अपने बछड़ोंके पालन पोषणकी इच्छा है । ये गोत्रें (महते सौमनाथ वर्णता) इसका सोमारव बढावें । ये तो बढाही ही हैं । परंतु मनुष्योंमें कथित है कि ये उन गोत्रोंके पास जायें और उनका समूह एवं मार घुड़ होयें । ये यौमें तो हमारा सम्मान करनेके लिए तैयार हैं परंतु मनुष्य ही ऐसे मरमती हैं कि वे माका दूध नहीं पीते और सैधके पीठ लपटते हैं । इसी तरह बढवाणीकी शरण नहीं लेते । मनुष्य किसी अन्य मतवाले प्रजाको शरणमें लते हैं और प्रममें चढते हैं । अतः वहाँ उपरस सच मनुष्योंको ऐसा आदिने कि आ मनुष्य उन्नति चाहता है वह नीचा दूध पीने और मर का उपरस ग्रहण करे ।

बाब भी ( गाः मिपयं वसं अमीमेव ) अपने सारुष बछड़ेपर ही प्रेम कर सकती है । यदि प्रेमके बचा माताके लव न पना अथवा कुछ पेटकी असुखतासे वह दूध न पीता रहा तो माता क्या करेगी ? इच्छामें बचमें सारुषका कथिरे । जिस बचमें पेट ठीक है मूत्र काली कगती है और जिसकी पाचनशक्ति ठीक है उसी बचमें माताके दूधके काम होता है । इस प्रकार वेदवाणीकरी माता सत्युष विषयका है । काम पट्टका सचती है । जो मनुष्य वेद न पढ़े पढ़नेपर उसके समझमें कल व सत्ये समझपर अनुमान न करे अनुमान करनेके समय उत्तर न हाने उसको वेदवाणीकरी पीले क्या काम होता । इस प्रकार समुझ होता भी आवश्यक है । वह भी ( पवैभिः मायु कामिमयति ) अपने दूधके साथ प्रकाशय फैलाती है वह सच सत्य है क्योंकि छंदे गोरोहक होते ही सुरोहक होता है और जिसमें सर्वत्र प्रकाश ही प्रकाश होता है । वेदवाणीकरी पीली अथवा सत्युष देती है और कामका ही प्रकाश सपाकके सममें फैलाती है । इस प्रकार दोनों स्वयमें दूधकी रैमा और प्रकाशको अन्तः समान है ।

### गोत्री सहायता ।

बह गी ( प्यसनी अविभिषा ) निवाकके समय आचम करने योग्य है । रोम कीवता अचम आदिके समय काम दूध ही अनुपले समान है । रोपी होवेके समय अथवा कामक होवेके समय भी पायका दूध ही कामका है । इसी तरह हमने होवेके समुद्रका नाम होवेके बचाव को मोक्षमार्गः मार्ग आश्रयण करना है । सच समय वेदवाणी की ही आचम की जाती है । इस वेदके मंत्र ही ( मातु मिमाति ) मार्गमें योग कैले सहायक होते हैं । ( वा विपेभिः मरान् मिपकर ) वह भी मनुष्योंमें फिज्ज अथ कथिनेके सहायक होती है । अर्थात् पायके दूधके मनुष्योंकी बुद्धि ताज और सुख होती है और मनुष्य बुद्धिमान होता है । मर कपी पीले भी मनुष्य अमन कर सता है । अमन कथि वकालके कारण ही कल्पको मंत्र क्या जाता है । इस प्रकार दोनों स्वयमें भी समान अथिनेके मनुष्यकी साथ करता है । ( विपुल मरयो ) वह विषयी केही होती है । जिस प्रकार जिसकी रैम सचती है वही प्रकार पीले दूधके भी मनुष्यमें पुटी आती है और वेदकामके बुद्धिही पीमता जाती है । विपुलके समान प्रकाश मिम रैम बकालका कार्य दोनों नीचे होता है ।

बहाटक सच मंत्रमें पी और वेदवाणीका एक बहा वर्णन किया है और आगे २ और २१ इस दो मंत्रोंमें ऐसा ही वर्णन है । अतः निषम सत्यके कारण व दो मंत्र वहाँ देखते हैं—

बह गी ( पु—बवध—अट ) काम का कथिमाती होवेके ( मरपती मूवाः ) मरपवाती होती है । यदि वह अथवा पयार्थ कामे कपी तो सचका दूध कैसा हितकर नहीं होता । वेदवाणीकरी पीके पक्षमें पी भी मकल करवेले भी वर्णवार सच छुट होता है । वहा भी कैसा पना है कि पी और पायक कामेको वर्णकराय ठीक कर सकते हैं और सचम दूधक काम बुद्धिमाके भी बात है । इसी पीछे हम—

अथा बर्ष मगमन्तः स्याम । ( मं १ )

इससे हम भी मायकाय बने । " अर्थात् हम भी पीका अथ पाकर बुद्धिमान बनें और पी भी पीका मकल करके काम दूध वेदवाणी हो । पी का पाय भी काम और मनुष्य पीका आन्य अर्थात् वरू कार्य । आपनी सत्यके सच वरू मकल पावरक कहा है और सूचित किया है कि वह छुट और सत्यिक अथ है । वेदमें पी ( सत्यमिष सितकथ पुमः ३ १ । ७१ । १ ) इसविदे मंत्रोंमें समुद्रक अथ ही निर्दिष्ट है । इससे इस अथका महत्व स्पष्ट हो जाता है । पी पीका अथ

( पुनं नदि ) जाने और ( हृदं चर्चं विव ) श्रुत निषेध नक पीने । मनुष्यको भी श्रुत सप्त ज्ञाना और ज्ञाना हुआ पक्षपूत नक पीना नोयन है । इस प्रकार गो और बाणीका एक हो पक्ष है । मनुष्यका ज्ञानज्ञान सात्त्विक होनेसे उसकी बाणी पवित्र होती है, वह वहां उत्पन्न है । मनुष्य जिस मोक्ष पूज पीते हैं वह गो भी उक्त पक्षार्थ ही जाने और अन्य अनेक पक्षार्थोंका मक्षण न करे । इस विचारसे पता लग सकता है कि बाजारोंमें जो पूज प्राप्त होता है वह पूज समुत्त नहीं है प्रत्युत परमें गो पक्षी ज्ञान वृद्धिसे येन पक्षार्थ ज्ञानार्थे ज्ञान और श्रुत उक्त विचारका ज्ञान तब वृद्धि नृप नृप्यत ' परबीने प्राप्त हो सकता है । वेद जिस प्रकार पोषण करना चाहता है वह विधि वह है । पाठक विचारें और समझें कि वरमें पोषणका विधि कैसा है ।

आयेके मंत्रमें ( गो सत्त्विकमि तक्षति ) गो चर्चोंसे शिखरी है ऐसा कहा है गो श्रुत ज्ञानमें प्रविष्ट होनेसे ज्ञान शिखरे लगता है वह श्रुत ज्ञान गो पीती है और पुन होती है । वह सामान्य वर्णन करके वह गो ( एकपक्षी, द्विपक्षी त्रुपक्षी अद्यापक्षी ज्ञानपी सहस्रपक्षी ) एक वा बार आठ नौ पक्षवर्गी है और सप्तक अक्षरसि पुष्ट है ऐसा भी कहा है वह वृद्धतया वेदवाची वा ही केवच वर्णन है । वेदक रूप एक पक्षवर्गी है । पक्षवर्गीके आठ पक्षवर्गीके नौ पक्षवर्गीके और सप्तक अक्षरसि हैं । क्योंकि ज्ञान सदा त्रुपक्षार्थ अर्थात् बार-बारवर्गी ही होती है और ' ज्ञान आठ नौ पक्षवर्गी नहीं है । बार और पात्र वे ज्ञान मंत्रोंके मार्गिक हैं । इसलिये वह मंत्रमाग वेदवाची सभी पक्षों ही वर्णन कर रहा है । वह वेदवाची सभी गो ( सप्त-पक्ष ) हजारों अक्षर समुत्त वाताओंका प्रदाय करती है और ( मुनयस्व पक्ष ) सब मुन्योंको पूर्णतया पालन करती है, और ( उत्साः समुद्राः जपि विकरन्ति ) इसस समुद्रके समान रघुप्रवाह पक्षार्थ प्रमाणमें ज्ञानोंको प्राप्त होते हैं । इसलिये मनुष्यों को वक्षित है कि वे इस वेदवाची सभी पक्षों ज्ञानसमुत्त प्राप्त करें और साक्षरमार्ग परककर ज्ञानसत्त्व प्राप्त करें ।

वक्षित त्रिं वर्णनके विषये— अर्थात् पोषणके विषये वेदज्ञानका मरण वर्णन किया है । ज्ञाने वह ज्ञान मनुष्यको वक्षति वरमें ज्ञानार्थे निष उरह सहायक होता है वह देखिए—

### जीवात्मा ।

प्रान्तिमें शरीरमें जीवात्मा है और वही वहांका जीवनका कार्य करता है इस विषयमें अष्टमसत्रका निधान देखिए—

परत्वाभी मध्ये शुभ पृष्ठत् जीव तुरगस्य जसत् सपि । ( मं ८ )

“ प्रान्तिमें शरीरमें जीवात्मा है ज्ञान तुरिषा काक केवभाव प्राक्को पक्षार्थका है और वह इस शरीरमें रहता है । वह शरीरमें केवच करवेवाके जीवनका वचन है । ' पुष्प ' सत्रके अर्थका ' पुरि सेमे इति पुस्त्य ' शरीरकरी लगटीमें वचन करता है इसलिये इस आत्माको पुस्त्य ( पुरिषा ) कहते हैं ऐसा कहा है वही अर्थ वहां है । इस जीवात्माके विवेचन पुर एवम्, ज्ञान तुरगस्य, जसत् ” से विचार करने योग्य है । वे विवेचन अन्यत्र भी पाये हैं । ज्ञानक शरीरमें यह जीवात्मा रहता है उक्त उक्त कार्य शरीरमें दिखाई देते हैं । यह शरीरके निज है अतः शरीर जीव और विदग्धा होनेपर शरीरको वह जीव होता है इस विषयमें इसी मंत्रमें कहा है—

मुत्स्य जीवः जसत्वाभिः पुरति मर्त्येन सपि । ( मं ८ )

जसत्वाभिः मर्त्येन सपि । अथात् प्राक् पुरि । ( मं १५ )

“ मृत मनुष्यका जीव वस्तुविक रीतिसे ज्ञान है वह अपनी विषय सत्त्विक कार्य करता है और इस वेदके ज्ञान केवके वाच पुर मर्त्य वेदके साथ संयुक्त होता है । मनुष्यवेद मर्त्येवाक्य है परतु ज्ञानका आत्मा ज्ञान है अर्थात् वेद निज है और ज्ञाना निज है । इन दो परस्पर निज पक्षार्थोंका संयोग किसी कारण नक हीयवा है । इसी संयोगके कारणका विचार करना ज्ञान उत्पन्नका का मुख्य प्रयोजन है । ( पुस्त्य कावः जसत्वाभिः ) मरे हुए प्राणीका जीवात्मा ज्ञान है वह मरिचिज्ञान सदा स्मरण रखना चाहिये । यदि जीवात्मा ज्ञान है तो वह वेदप्राप्तिक पूर्ण और वेदपातके पक्षार्थ भी रहेगा । वेदके मरणसे म मरेगा और वेदके मरणसे न जन्मेगा । यह जीव ज्ञानपी निजवक्षितो रहता है । इसकी वह ( एक-वा ) विषय वक्षि है अतः वह सदा इसके साथ रहती है और सभी वृत्त वहां हसती । परंतु शरीरकी पक्षि ज्ञानादि पक्षार्थ पर अनर्थात्त है । इसलिये शरीरकी पक्षियोंको ' पक्षी नहीं कहते । आत्माकी पक्षिक का नाम रक्षका है क्योंकि किसी नाम कारणपर वह अनर्थात्त नहीं है । शरीर निज वा न

मिष्टा ता भी वह इसके साथ एक बैठी रहती है । पूर्ण शरीर ऊपरपर और दूसरा शरीर प्राप्त होने तक केवल जलवा मन्त्रे निम्न शक्तिवोके साथ विचरता है । उसी प्रकार शरीरमें आनेपर भी उन्हीं शक्तिवोको करारमें नियुक्त करने कार्य होता है । यह काम होता हुआ भी ( मर्त्येन भवेति ) मर्त्य शरीरके साथ समाप्त बोधमें आता है । अर्थात् जिस बोधमें जिस जलने प्राणीमें आत्मा जाता है उस शक्तिको नेनीमें आकर उस शरीरको प्राप्त होता है । इस धनुकोकष बोधन जलन्युत होता है क्योंकि शरीर शक्तिनी भी रक्षा करनेपर कितो न किसी समय मर ही जानना अतः कहा है—

सा सं ज्ञान सा ज्ञान ममार । ( मं ९ )

जो एक तत्त्व प्रकार बोधित था वह आज मर जाता है । ' ज्ञान छोड़े जो बोधित होता है वह ज्ञानके रूप मर जाता है । इस प्रकार सिद्धा माता, पुत्र माई मायि मर रहे हैं वह देखकर अपनेको भी किसी न किसी समय मरना लगता है ऐसा प्रतीत होता है । क्योंकि वह अपना शरीर मरेगा तथापि इस शरीरका व्यवस्थापना कदापि मरेत्यक्त नहीं है वह अमर है, वह न कभी नाक होता है और न हड्ड । वह सदा एक अवस्थामें रहता है इक्षिकिने इसको ( पुनर्वा कर्त ) पुनः दे देता करते हैं । इस जीवनस्याको पुनः कहा जाय ता परमात्माको इस विधा पुनः पुनः कहना योग्य है । इसीका नाम हम मंत्रमें पवित " अर्थात् देवत्यक्त हुआ हड्ड कहा है । वह पवित पूर्णतः सुखाकी विषय जाता है । परमात्मा सर्वव्यापक है इक्षिकिने इस एकवैधीन जीवनस्याको शरीर छोड़े करता है इक्षिकिने कहा जाता है कि वह परमात्मा इस जीवनस्याको निष्क जाता है अपने केदमें रहता है । ( सुखान् संतं पवितः अमार ) तत्त्व का हड्ड विषय जाता है इस विषयके देखके आकरतः प्रमाण स्पष्ट होता है । तत्त्व जीवनस्याको हड्ड परमात्मा निष्क जाता है अतः वह हड्ड तत्त्वके कर्म पुनः कहा है वह वात स्पष्ट है ।

वह जीवनस्या विदु है अर्थात् कर्मवीक है । कर्म करनेवाला है और निश्चित कर्म करनेके दिन ही शरीर नष्ट करता है और सब शरीर जीर्ण होनेके कारण कर्म करनेमें लक्ष्मर्ण होजाता है उस समय वह शरीरको छोड़ता है और दूसरे कर्म शरीर नष्ट करता है । शरीर नष्ट करनेका हेतु वह है—

साः मनुः मोनो अन्तः परिवीक्ष्य बहुवक्त्रा विर्भेतिः आविर्भेज । ( मं १ )

वह जीवनस्या जब मनुष्यकी भाँतिमें—मर्माक्षरमें—होता है उस समय प्राकृतिके शरीरके परिवर्धित होता है और जबतक अनुकूल समयमें बहुत प्रकाश करनेवाली इस मूर्तिपर अथवा इस प्रकृतिमें अवधि होकर पुष्पीपर अवतरने होता है । " वत् विवाहादि द्वारा वह अपने संतानपति बहुत बढ़ाता है वंशका विस्तार करता है और समय आनेपर मर जाता है । फिर इसीके देहा ही नवीन शरीर निकलता है । वह कम बारबार होता है । वह इसका जाना और जाना निश्चयके अनुसार करनेवाला को कोई है उसके निश्चयको वह नहीं जानता—

वा ई चकार अन्त सा न वेद । ( मं १ )

जो वह सब करता है उसके सब कर्तव्य को वह नहीं जानता । अनेक मनुष्य इसका विचार करने लगते हैं । अपने आपकी वही किन्हे अपना मरितव्य जीवन विवत करता है इत्यादि विषय हरएक मनुष्य जान नहीं सकता । परंतु—

वा ई ददर्श तस्मात् हिक्नु ह्य जु । ( मं १ )

जो इसकी देखता है अर्थात् इसका वास्तव्य करता है उसके भीति ही—उसके अतिशयोगी ही—वह निश्चयन रहता है । उसके जिने वह समीपसे समीप है । परंतु अन्य मनुष्योंके लिये वह बहुत दूर होता है । अर्थात् इसकी दूरता और समीपता मनुष्यके प्रवृत्तपर निर्भर है ।

वह जीवनस्या ( जी-यां ) इक्षिकीका प्राण्य करनेवाला है अपने शरीरमें जीवनशक्तिका संचार करने सब शरीरको जीवित रखनेवाला है अतः वह ( जनिपयमान ) विरामेवाक्य है शरीर जीवित रखनेके कारण वह शरीरको न विरामेवाक्य है । शरीर करनेवाला अनेक जन्मनेवाला वही जीवनस्या है । तत्त्व—पाद, वह नाम भी इसी अर्थका सूचक है । ( तत्त्व ) शरीरकी ( न ) नहीं ( पाद ) विरामेवाक्य अतः है वही नाम " जनि-

पदमान ।" सधर्म है । इतना हीनेर भी—

पायमिः आ च परा च चरम्य । ( मं ११ )

“विशेष मार्गोंसे पाप और बुर मानेवाला ।” अर्थात् इस चरित्रके पाप और चरित्रके बुर मानेवाला वह आत्मा है । अन्त मेंके पदम चरित्रके पाप आता है और चरित्रकी सधर्म होते ही वह चरित्रके बुर जाता है इस प्रकार इसका पाप आता और बुर माना विश मार्गोंसे होता है उस मार्गोंका रूप हमें नहीं हो सकता । ये अर्थ मार्ग हैं, और परमात्मा ही इसको इन मार्गोंसे बचाता है । वह परमधर्म—

त समीचीः विपुचीः सुवर्णैषु जन्तः बसावः । ( मं ११ )

“वह परमात्मा इस जोरमाके साथ रहता है सर्वत्र विराजमान है और सर्वत्र परमात्मा में भी बसनेवाला वह है ।” वह किसी स्वामपर नहीं एका कोई स्थान नहीं है । प्रदिश परार्थके अन्तर, बाहर और आरों और वह विराजमान है इसमें वह इस जोरमाके अपने अन्तर कहर नहीं जानेसे इसका कर्म्य होया नहीं इसमें पडुका देता है ।

वही देव (य विष्णु शक्तिता जनिः बन्धुः) इस सबका निता जन्मक, सर्वधी और माई है । (पुष्पी माता) वह भूमि हमारी मातृभूमि है । इस निता और मातृभूमि कसकना हमसे करनी चाहिये । उस देवके ओ इस प्रकृतिमानमें पभक्त आगत होती है कर्मसे सब सृष्टिकी रचना होती है ।

### प्रभोत्तर ।

आने ठेरहमें और ओरहमें मन्त्रमें कमसः कुछ प्रश्न आर उनके उत्तर आपसे हैं, वह मनोरेजक प्रभोत्तरका विषय अब देखते हैं—

प्रश्न - पुष्टिमाः परं जन्त पुष्टामि ( मं १२ )

उत्तर — एवं वैदिः पुष्टिमाः परः जन्तः । ( मं १२ )

“इसीका परका अन्तिम भाग बीजका है । यह वैदी ही पुष्टिका परका अन्तिम भाग है ।” वह वैदीके पाप काका इतर एक प्रम पूछ रहा है कि पुष्टिका परका अन्त वह है कि जिसपर इस कहे हैं, परंतु इसका परका अन्त बीजका है । वह भूमि कहा जन्मता होमाई है । इस प्रश्नका उत्तर वह अपने पापका वैदीका भाग ही भूमिकी अन्तिम बीमा वह है । वह उत्तरके देखनेसे पता लगता है कि वैदिके अनुसार भूमि गोक—यैदिके स्थान ही है । यदि वह भूमि पञ्चकके समान होती तो वह उत्तर आया बीजक ही नहीं है । यदि भूमि गैदिके समान गोक होनी उसी तो जिस बिन्दुमें प्रारंभ होया उधौ बिन्दुमें अन्त होनेकी संभावना होती । पुष्पी गैदिके समान गोक होनेसे यदि किसी स्थानसे धीधी कछोर खीची जायगी तो उस रेशाका अन्तिम बिन्दु प्रारंभिक बिन्दुमें ही मिल जायगा । इसी विषयको व्याजसे रत्नकर उक्त मंत्रमें कहा है इस पुष्पीका प्रारंभ इस वैदिके ही और अन्तिम भागभी नहीं वेदा है । पुष्पीको गैदिके समान गोक माननेपर ही वह बात सिद्ध हो सकती है ।

सृष्टिका प्रारंभ बहमें और अन्तभी बहमें हो सकता है । परमेश्वरके बहसे इस सृष्टिका प्रारंभ हुआ है बहपर ही वह सृष्टि निर्या है और अन्तमें भी इसकी समाप्ति बहमें ही होती । इस प्रकार कर्मभूमिका प्रारंभ वैदीमें और अन्त भी बहमें हावा है । इस दृष्टिके भी वह प्रभोत्तर निवार करने योग्य है । अब दूसरा प्रश्न देखिये—

### अव्यसक्तिः ।

प्रश्न - वृष्णः अवस्य रेतः पुष्टामि । ( मं १३ )

उत्तर — एवं प्रीमः पुष्णः अवस्य रेतः । ( मं १३ )

“वस्य अवस्य बीज बीजका है । यह बीज ही वस्यका अवस्य बीज है । अवस्यका उच्छ बीज पराक्रम और वस्ये रूपक है । पायोकरव कच्छका अवस्य बीजबीजक उपाय है । अवस्यका अवस्यक, अवस्य अवस्यबीज कच्छ



वाहिये। और इद्विधि धर्मके सम्बोधनार्थ करके आत्माको छानि लीज नहीं करनी चाहिये। अस्तु। इस प्रकार प्रसोत्तरसे ज्ञान हम सो मंजिले दिया है। इसके अगले मंत्रमें कहा है कि—

न विज्ञानामि नत् इह इह अस्मि। ( मं १५ )

“ मैं नहीं जानता कि किसके समान यह मैं हूँ। ” प्रत्येक मनुष्य जानता है कि मैं हूँ। परंतु मैं कैसा हूँ, किसके समान हूँ, मेरा गुण क्या है मेरा स्वरूप क्या है इसादि बात कोई नहीं जानता। उसे मिले और बाह्य तेजनेवाले यह कहते हैं कि यहि मित्र है और आत्मा मित्र है परंतु यह आत्मा कैसा और कससे कम किसके सदृश है यह कहेन कोई जानते हैं प्रायः कोई नहीं जानते। इसीलिये इस आत्माको अज्ञेय अतर्क्य ऐसे शब्द प्रयुक्त किये जाते हैं। यह आत्मा जब यो में जाता है उस समय यह—

विद्यया संमद्धः। ( मं १५ )

“ अन्तर गुप्त है और धरा है। ” नहीं इसका संबंध है और इस वस्तुसे मुक्ति प्राप्त करनेके लिये प्रयत्न करना चाहिये। यह आत्मा ( विद्यः ) गुप्त है किंवा है ईका है अव्यक्त है और ब्रह्म है। यह इस आत्माकी स्थिति है। हर एक पण्डितको इसका विचार करना चाहिये।

इस आत्माको संबन्ध कैसा होता है इसकी मुक्ति कैसी होती है और क्यों इसकी मुक्ति कर सकता है यह विषय उत्तम-कल्प है। यह विषय इसी मंत्रके उत्तरार्थमें इस प्रकार कहा है—

ब्रह्मा ब्रह्मत्वं प्रथमज्ञा ज्ञायम्। ज्ञातु इह अस्मि।

वाक्यार्थ अस्तुमे ॥ ( मं १५ )

“ जिस समय सत्यका पहिला प्रवर्तक परमात्मा भेरे सम्मुख हुआ जब मुझे उसका साक्षात्कार हुआ तब समय उसकी इस वाणीका—देववाणीका—भाग्य मुझे प्राप्त हुआ। यह एक विषय नहीं ब्रह्म है। जिस समय परमेश्वर साक्षात्कार होता है अवस्था परम अविद्या उपदेश होता है उस समय उसके अन्तःकरणमें सत्य ज्ञानका प्रकाश होता है। नहीं विद्याका भाग्य है। यह अन्तःकरणकारके विना नहीं हो सकता।

यहां आत्मा शरीर धारण करता है वह सत्य और असत्य का संबंध है। अर्थात् व सो पदार्थ नहीं है। सत्य असत्य नहीं हो सकता और अवश्य सत्य नहीं हो सकता।

सा ब्रह्मवत्ता विपृचीना विद्यन्ता। अन्त नि विद्यन्तु।

अर्थ न विनिश्चयः ॥ ( मं १६ )

ये दोनों सत्य और असत्य अवर्णन जब और वेतन ये दोनों समझन साधत हैं ये धर्म हैं परस्पर विरुद्ध गुणधर्म स्वरूपके हैं। इनमेंसे एकको जानते हैं परंतु दूसरे का ज्ञान नहीं होता। “ सत्य परमेश्वर ज्ञान गुण अंतमें होता है इस ज्ञानकी धैर्यिक ज्ञान, पदार्थज्ञान किंवा विज्ञान कहते हैं। मनुष्य इसकी प्राप्त कर सकते हैं। परंतु दूसरा जो वेतन आत्मा है विज्ञाने आत्मा और परमात्मा लीमिथित हैं वह अतर्क्य अज्ञेय और गुप्त हैं।

अज्ञातकी रचना।

पूर्वोक्त प्रकार यह और वेतन मिश्रकर इस अज्ञातकी रचना सागरी है। इस विषयमें अजाने हैं। मंत्रमें इस तरह कहा है—

सुखमदय रेतः सप्त कर्मागर्भाः विष्णोः तद्विद्या विधर्मनि

सिद्धिम्। ( मं १ )

“ जब सारे कीर्तसे सात मूलगुण विविधगुण धर्मोंके युक्त होकर व्यापक ब्रह्मात्माकी आत्मामें रहते हैं। ” यदि उत्पन्न करनेवाले ने सात मूलगुण हैं उनके गुणधर्म परस्पर मिश्र हैं और वे व्यापक ईश्वरकी आत्मामें कार्य करने हैं। इन सात गुणों को जानना तथा आत्माको जानना इतनाही ज्ञान है और यह ज्ञान अमुकके द्वारा प्राप्त होता है। इस ज्ञानके विना मनुष्यका ब्रह्म हो नहीं सकता। ऐसे—

११ ( अ. छ. भा. कां १ )



ते विप्रविष्टाः नीतिमिमांसायः परिमुखाः निश्चयाः परिधरमणिः ॥ ( सं १७ )

“ ये विप्रवेदाधीन अपनी बुद्धिबोले कमोसि और मनके विचार से विवेक भेद होकर सब प्रकारके कर्तव्य होते हैं। सबके छपर अपना प्रमाण बताते हैं। अपने उपस्थित होकर सबको प्रमाणित करते हैं। यह कार्य हम क्षामिन्सि इसलिये होता है कि हमने पाठ पूर्वोक्त प्राकृतिक और आत्मिक काम पूर्ववत् रखा है। इस कामका महत्त्व यह है—

‘‘अथाः अथरे विद्वे वेदाः अविधिबेदाः ॥ ( सं १८ )

‘‘आपके अन्तरमें सब वेद विचार करते हैं।’’ यह योग्यता वेदवर्गके कामकी है। एक वेदवर्गका काम होवेक सब इतनी वेदताओंका ज्ञान होना है। वेदका ज्ञान अथवा वेदताओंका ही ज्ञान है। अतिमनसे अविधि, वायुके मंत्रोंसे वायु-विधा इसी प्रकार अन्त्यात्म मंत्रोंसे अन्त्यात्म वेदताओंकी विधा जानी जाती है। वह विधा वैसी आधुनिक व्यापकता का होती है उसी प्रकार आत्मिका भी ज्ञान होती है। अग्नि, वायु, रवि, इन्द्र आदि सबकी एक सब आत्मिका बोध होता है। सब बात इसी सूत्रके अन्तिम मंत्रमें कही है। यह आरंभ महत्त्वका मंत्र यह है—

इन्द्रां मित्रं वसुमन्त्रिमातृव्यो विष्वाः स ध्रुवर्षो गच्छाम् ॥

एवं सविता बहुधा बहुवर्षां वाम मातरिषावमकुः ॥ ( सं १९ )

एक ही सब आत्मिका अपने ज्ञानी अपने अपने प्रकारसे करते हैं। उसीकी इन्द्र मित्र वसु आदि सब दिव्य इन्द्रां वसुमन्त्र, वाम मातरिषा इत्यादि नाम से होते हैं। ‘‘अथर्व इन्द्र मित्र, वसु आदि नाम एक आत्मिकों हैं अनेक सबके अनेक होवेका गुण उसमें है। वह अनुवाकिक होवेके इन्द्र, अथवा शिष्टमन्त्रिक होवेके मित्र सबसे बरिष्ठ होवेके वसु वसि नाम इन्हींसे आदि पुत्रत्वामें होवेके विष्वा ज्ञान पूर्व होमिक ध्रुवर्षो वेद होमिके गच्छाम्। एक अक्षितीय होवेके एक, तीनों क्षामिन्सि सब होवेके सत्य, सबका विधायक होवेके वाम मातरिकायें रहनेके मातरिषा कहा जाता है। उसी एकके ये अनेक सब हैं। और वेदवर्गमें सब सब आत्मिकों विधा इस तरह है।

इसके सब काम से नाम अग्नि वायु आदि हैं वे मीथिक वराचोंके भी वाचक हैं। इसलिये हम वेदताओंके नामोंके और मंत्रोंके हम वराचोंकी भी विधा होती है। इस तरह इन्द्रां मंत्रोंके हम वेदोंकी विधा भूत विधा और प्राकृतिक विष्वा प्रज्ञा होना सम्यक् है। अतः कहा है वेदवर्गके अन्तरमें वेद उपस्थित है, जहाँ वेदोंकी ज्ञान करने उपस्थिति अन्त्यात्म वेदम है।

यः सत्यं वेदं किं अथाः करिष्यति ? ( सं १९ )

‘‘ जो इस विधाकी नहीं जानता वह वेदवर्गके कर क्या करेगा ?’’ अथर्व वेदक केट करवा अपना केवज अन्त्यात्म अर्थ जानना लगे है। मंत्रका ठीक ठीक अर्थ सब विहित हुआ ऐसा कहा था सचता है कि सब पठकको मंत्रवर्णित वेदवर्ग वाक्यकार नबाव हो जानना। यदि भौतिक वेदताका वाक्यकार हुआ तो भूतविधा वाक्यमें आचर्य और यदि अन्त्यात्म वाक्यकार हुआ तो आत्मविधा कमजोर आचर्यी। ज्ञानी की योग्यता भेद है वह ऐसे वाक्यकार हुए ज्ञानी की है व कि वेदत वाक्यकार की। अतः कहा है—

ये इत्यस्य विद्वत्, ये इमे अथाः ( सं १९ )

जो ज्ञानी पूर्वोक्त विधाको बचावत जानते हैं वेही वेद एवाममें निरासमान हो सकते हैं। अन्त्यात्म ज्ञान या सब काम की ज्ञान हो सकते हैं। इस कामका इतना महत्त्व है। इसी विषयमें यह मंत्र लभ देखिये—

अथर्वेण एवम् विद्वं आचरन्तुः ( सं १९ )

आपे मंत्रवर्गके वेदत आत्मा और सब अथर्व समर्थ सब कहता है। आपे मंत्रका ठीक ठीक ज्ञान होवेके अन्त्यात्म भी बचवत् होता है और अथर्वके बचाव भी अपने अपने वाक्यमें वाक्यवत् होती है। आपे मंत्रमें यदि इतना निष्काम काम है तो इसमें और अनुवाक्यमें विद्वता काम होगा और वह अनुवाक्य विधा बचाव कर कहता है इस विषयकी अन्त्यात्म वाक्य कर करते हैं। इसी लिये वेदके बचाव और अथर्व आर्थ वाक्यमें विधा है। वायु वह काम पठनेके ज्ञान वरग आदि,





योग करते हैं क्योंकि ( सायमाय्या बलहीयिष सप्रः । ऋ छ १।२।२२ ) बलहीन मनुष्यसे इससे परिपक्व बमानेका अनुमान नहीं हो सकता है । इस हेतुसे कहा है कि नीर लोग ही हम कोदेमाई सत्ताको परिपक्व बमानेका कार्य करते हैं। अर्थात् वह (पूधि सत्ता) कोदेमाई सत्ता, जीताया है । दो सुपनी दो सत्ता ये वैदिक वर्णन जीवशरमा परमाशक्त ही वाचक हैं । अस्तु । वहां छाने क्या—जीवशरमा—के परिपक्व बमानेका साधन ब्रह्म कहा है ।

विप्लववा आराध सक्तमथ धूम अपश्यं ( सं २५ )

“ सर्वत्र द्रु और समीप अधिकतम ब्रह्माधिक्य पूर्ण मैं देखता हूं । ’ और द्रु ब्रह्माभिधारा ही नीर लोग इस छेदे सत्ता—को परिपक्व बवते हैं । बड़से ही इसकी परिपक्वता होती है । अभिमें हवन करना वह ब्रह्मका उपलक्षण है । ब्रह्मका मुखवाप देव पूजा उपलक्षण और दान’ है। इस मुखवाप को केदार और उपलक्षण को सूचक सालकर ही इसका कार्य करना उचित है, कई लोग वहां ब्रह्म धूम और पश्चिमि ब्रह्म देखकर प्राचीन लोग वैकुण्ठे अभिपर पकते थे ऐसा नाव निश्चयते हैं। परंतु वहां किसी को ऐसा छेदेह न हो इसलिये द्रु मन्त्रका इतना स्पष्टीकरण करना पड़ा है । काका है कि हम स्पष्टीकरणसे किसी वाचकके मनमें इस विषयमें कोई सत्ता नहीं रहेगी ।

### किरणवाले तीन देव ।

( त्रयः केचिनः ) किरणवाले अर्थात् प्रकाशमान तीन देव हैं । ये तीनों देव ( अद्रुवा विचक्षत ) अद्रुके अद्रुवार प्रकाश से हैं । वहां द्रु प्रकाशके कई देवोंके मण हैं पहिजा सूर्यगण है, इसमें सूर्य विप्लव और जमि ने तीन देव कमरा मु अन्तरिक्ष और मू स्थानमें हैं । तीनों प्रकाशमान होनेसे केही अर्थात् किरणोंसे युक्त किया जाचोचाले हैं।

( द्रुस एकः सत्त्वरे वपते ) इनमेंसे एक वषमें एकवार अर्थात् का जीवारेपण करता है सूर्यके कारण वषमें एकवार मूमिमें दीपक्षेप करके बान्ध उत्पन्न होता है । ( अम्भः वाचोमिः विधि जमि पते ) द्रुवरा टिकस्ती देव अपने किरणोंसे सबको प्रकाशित करता है । वह जमि अपने ठेकसे राष्ट्रीके समकर्म नी जपसमें प्रकाश करता है । तीवरा देव विप्लव है ( एकस्म प्रजिः एरसे ) वषकी पति दिक्काई देती है परंतु ( न कम ) ब्रह्मका कम नहीं बीखता क्योंकि वह जपमात्र प्रकाशता है और पश्चाद म्मि जालपर जाता है इसका पता नी गही कमता । ब्रह्महारा दीप जमि बलानेका कार्य करनेवाली विजली नी दिक्काई नहीं देती परंतु ब्रह्म देव अद्रुमवमें जाता है ।

इसी प्रकार जमि वायु और सूर्य ने तीव देव ब्रह्म तीन स्थानोंमें हैं जिनमें दीपक्ष नहीं बीखता है और अम्भ देव दीपक्षते हैं । ऊपरमें नी वाची प्रान और केर है जिनमेंसे श्रवण मन्त्रस्वाचीव देव नहीं बीखता, परंतु वेगले अद्रुमव होता है। द्रु प्रकाश छेदे तीन देवोंके अनेक मण हैं । वाठक द्रु प्रकाश विचार करने से ती उपका इन लक्षोंका ज्ञान होता है । वहां स्वरच रज्जवा चाहिये कि ये तीन वषपि द्रुम छेदेसे निमित्त प्रतीत होते हैं तथापि एक के ही ने तीन कम हैं ।

### अतुष्याद् गौ ।

गौ’ का कार्य वाचा’ है । वह वाक् अतुष्यद् अर्थात् चार वाचवाली है । ( वाक् बलवी पवानि परिमिदा ) जमि कर और कर्मसे तीन पार पुन है और मुकमें जो अतुर्ब वाच है वह ध्वज है । द्रु प्रकाश के चार्मके चार पार हैं । इन चार पावों अर्थात् स्वाजोंमें वह वाची उत्पन्न होती है परंतु ये जालीके स्वाज साधारण मनुष्य ज्ञान नहीं सकते क्योंकि ये तीवरे ज्ञान ही स्वाजवाचसे ज्ञान सकते हैं । व ( गभीरिणः साक्षयः विदुः ) ज्ञानी ब्रह्मको ज्ञाननेवाले ही इस बातकी ज्ञान सकते हैं । अर्थात् गभीरकी वस्तुतिहा द्रु प्रकाश विचार करनेसे मनुष्य आरमातक पूर्ण सत्ता है ।

वाठक द्रु सार मदन करके आत्मज्ञान प्राप्त कर सकते हैं ।

# अथर्ववेदके नवम काण्डका मनन ।

सात मधु ।

इस काण्डमें १२ मंत्र हैं और इनमें कई मंत्र विशेष ही महत्व करने योग्य हैं । इनमें सबसे प्रथम सूक्त "अत मधु अर्वात् अत मीठे पदार्थोंका वर्णन करमाका मंत्र पाठक विशेष स्मरण रखें—

आमन्त्र्य रात्रा च येनुवागद्वाँश्च मीहिह वक्तव्य मधु छन्दसम् ॥ कां १५११९९

आमन्त्र्य, रात्रा रात, वेक जागक को और मधु (सहृद्) ने अत मधु इस वक्त में है । 'प्रत्येक मधुम विद्युत् चाहता है मधुरता चाहता है मीठे पदार्थ चाहती इच्छा करता है । वेक कहता है कि मैं अत मधुर पदार्थ हूँ' जो मधुम मिठाई सेवन करना चाहे वह इच्छा सेवन करें । वहाँ प्रत्येकका सेवन करनेका विधि मिथ मिथ है । प्रथम हम इस बात वक्तु कोका स्वल्प देखेंगे—

आमन्त्र्य "पश्चिमा मधु है । इसका फल काम का मीठा रस रहता है । वही साक्षात् अमृत है, काम और मित्रत्व अपने प्रतिष्ठित है । अमृतत्व और मित्रत्व ही विधि इस कामपर अवलंबित है । आमन्त्र्यके आधीन रात्रूक अमृतत्व आमन्त्र्य है । अर्वात् वही रात्रूकी मांसी कलाव कबोत्सुक करता है । वह "काममधु है । हरएक मधुम और प्रत्येक पुत्रा इसका सेवन करे ।

रात्रा दुष्टा मधु है । (रम्यवति इति रात्रा) प्रजापति रक्षण करकेवाला रात्रा होता है । जो प्रजापति कलावसे कृपकता है कलाव नाम रात्रा वही । रात्रा कलावसे सब कर्मियोंका महान हो जाता है । दुष्टसे प्रजापति रक्षा करना और कलाव रम्यत्व करना, वही रात्राकाचन का कर्म है । वहाँ प्रचारजनक मधु देवेवाका रात्रा होता है । रात्रूक प्रत्येक मधुम स्व रात्राका कर्म करनेमें समर्थ रहते हैं । वही वह मधु प्रजापति प्राप्त होता है । वहाँ आमन्त्र्य और क्षत्रिय मित्रमित्रकर रात्रूकी क्षत्री करनेमें उत्तर होते हैं वही रात्रू कलाव होता है ।

इसके अन्तर्ग टीकरा मधु "गी" है । काम और रात्रा होनेके अन्तर्ग पयका दूध कपी अमृत प्रत्येक मधुमको सब टीका चाहिये । वह अमृत है और वही अमृत हो अमृत मधु वेक है । कलाव कोकी क्षत्रिय कलाव वेकके बीज पर अवलंबित है स्व क्षत्रिय वेककी पत्नी मधुमें की है । इसके अतिरिक्त हमारी क्षत्रि भी वेककर ही निर्भर हो आनेके टीम मधु जागक को और क्षत्रिय वे कलाव अन्तर्ग वे के जागक और को सुनिश्चयक है और क्षत्री की स्वस्वताके क्षत्रिय वह काम उद्यम है । मधु अर्वात् क्षत्रि को क्षत्रीय स्वकृ पदार्थ है । अन्तर्गक्षत्रियोंमें कलाव पूज्य और क्षत्रियोंमें मधु कलाव । क्षत्रियों का वही पत्न्य को और क्षत्रिय क्षत्रिय, इसीक्षत्रिय उन्नी क्षत्रिय अमृत कलाव होती की । इस प्रकार वह अत मधुकोका विषय है । इसका विचार पाठक करें ।

सूर्यकिरण ।

अमृत सूक्तमें सूर्यकिरणोंका महत्व वर्णन किया है । सूर्यकिरणसे क्षत्रीयके टीम वर होते हैं जो देवा क्या है वह प्रत्येक मधुमको विषय रीतिसे स्मरण रखना चाहिये—

यं ते क्षीर्यः कपाजाहि हृद्यका च को विदुः ।

कपाजाहि रश्मिभिः क्षीर्यो योगमलीकोऽभूत्समेदमलीकमा ॥ अथर्व १५११२९

हृद्यको प्राप्त हुआ सूर्य अपने क्षीर्यो क्षीर्यो द्वारा विरक्त सूर्य अर्वात् टीम इससे रोग, तथा अन्य रोग दूर करता है" यह मंत्रका कथन सब कोको टीम रक्षण करना आवश्यक है । आमन्त्र्य रोग वह रहे हैं जो रोग पूर्व समयमें वही ने वे इस काम पारी और पैक रहे हैं । देखी अन्तर्गक्षत्रियोंके इस रोगनाशक कर्मका हमें विशेष कपयोग हो सचता है । आमन्त्र्य प्रत्येक मधुम क्षीर्योके पीठित है देखे रोग अमृत आदि बहुरीको सता रहे हैं । क्षत्रीय क्षीर्योका टीम प्रमाणसे भी अधिक वह रशी है । देखी अन्तर्गक्षत्रियों के कपयोग मधुम करे तो मित्रत्व अधिक काम होता सूर्यके अत कलावकी क्षात्रकर देखे देखे देखे रोग और

छिन्ने सोच दूर होते हैं यह अनुभवसिद्ध बात है । जो लोग भूपर्ये अपने शारीरिक कमजोरी तथा वैधे उनके उन्मत्तता की भाषा नहीं होती, इसी प्रकार सर्वाङ्गियों द्वारा अनन्त काम होता समझ है । इसका विचार पाठक करें ।

## एक देख ।

एक वनम और वनम के महत्त्व के हैं। आर्यभट्टों इस शोभा सुखीय मिलकर एक ही एक है। इस शोभा सुखीय विषय मानः एक ही है। अतः और अपरका काय देना नहीं सुकनतना इसका विषय है। यह विषय इस सुखीयमें जनेक प्रकारसे समझना है। वेद पठते पठते एक बात पाठकोंके मनमें जागृती है वह यह है कि वे शिख शिख देवताएँ विभिन्न हैं। हैं कि इनकी एक देवतामें परिमति होती है । अर्थात् वेदमें 'देवदेवतात्मा' है वा 'बहुदेवतात्मा' है । इसका उत्तर वनमपूज के लक्ष्य छितरे दिया है—

इष्टं विभं ब्रह्ममस्मिन्मातृपुरो विष्णुः स सुपर्णो महात्मन् ।

एक सत् विष्णु ब्रह्मा बहुवचसि बर्मे मातरिकामातृः ॥ अथ १.११ । १८

यह मन्त्र आर्यभट्टोंके प्रथम मंत्रके भी है । इस मंत्रका अर्थ है कि ( एक सत् ) एक ही वनम वन है एक ही आत्मा वनमत्ता प्रभु, परमेश्वर देव, ईश्वर किंवा परमेश्वर है । जिसका कोई नाम नहीं है परंतु जिसके सब नाम भी हैं । उसके सब देवता ही नहीं कहा है । सब का अर्थ है जो दे । अर्थात् ऐसी कोई विस्मय शक्ति है कि जो इस अर्थके शक्ति रहकर सब अर्थके कार्य करती है । जिसकी शक्तिके अस्ति ब्रह्म, सर्व प्रकाशता विष्णुत्व ब्रह्मकी, वायु ब्रह्मा, और सब प्रसिद्ध होता है । अतः उस आत्मा वनम तत्त्वकी अस्ति सर्व आदि नाम दिने गये हैं ।

वेदका पाठ करनेके समय इस सत्ता सिद्धान्तकी समर्थ स्मरणता करना चाहिये । वेदका प्रथम काव्य होनेकेलिने इस सिद्धान्तके अर्थमें और समझनेकी अस्मत्ता आवश्यकता है । का। लोग इस मंत्रके उपदेशोंकी नहीं मानते वेदका अर्थ समझने के अनिवार्य ही नहीं हो सकते । अतः वेदने सब इन्हीं सुखीयें कहा है कि जो इस तत्त्वकी नहीं जानते वे

किं ज्ञाना करिष्यति ।

वेदके मंत्र छेकर क्या करेंगे । ' अर्थात् उनके इच्छते कोई काम नहीं होता । काम तो बनकी होता कि जो वेदकी अर्थमें स्मरण करके वेदकी पठते हैं । इन्हीं के आवश्यक ऐसे भी कई काय हैं, कि जो इस मंत्रकी ही—अथमात्र मानते हैं । वास्तवः वेदमें नहीं अथान मंत्र है । क्योंकि इसी के आधारसे वेदमंत्रोंका अर्थ स्पष्ट होता है । अतः पाठकोंमें आर्चना है कि वे इस मंत्रका अपनी प्रकार समझ करें और सब वैदिक वेदताओंके नाम एक ही ब्रह्मन् के हैं ऐसा मानकर वेदका अर्थ करने समर्थ । इस प्रकार कुछ महत्त्वकी बातें इस वनम काव्यमें हैं जो विशेष महत्त्वकी होनेसे वहाँ पाठकोंके सम्मुख उभार रही हैं ।



# अथर्ववेदका स्वाध्याय ।

## नवम काण्डकी विषयसूची ।

	पृष्ठ		पृष्ठ
वेदमन्त्रोंमें वेदोंका विभाग	१	घौका माहात्म्य	११
मन्त्रमकाण्ड	२	८ वरुणमन्त्र	"
सूक्तोंमें अग्नि-देवता ऊर्ध्व	७	सिरध्वं	११
अधिकमात्रुसार सूक्तविभाग	६	१ एक वृद्धपर दो सुवर्ण	१०
देववल्गुमात्रुसार		जीवन्मा परमात्मा और	
१ मनुष्यिया और गौमहिमा	७	संसार	७२
सात मनु	११	१ एक आत्माके लगेक	
मनुष्यका कण्ठ	१२	मांस	४१
२ अन्न	१३	ऊर्ध्वोंका महत्त्व	९
संस्तरकृति	१४	वायु और पोरकण	
परमात्मा जीवन्मा ( कोष्ठक )	१५	सात ऊर्ध्व	९८
कामका कण्ठ	१७	सुवस्त्र पोरकण	
३ पुरनिर्माण	१८	घौकी सहायता	९९
आधी प्रसन्नता	१९	जीवन्मा	९९
४ वैद्य	२०	प्रधोचर	९५
वैद्यकी महिमा	२३	अथकृति	"
५ पञ्चोद्भूत अन्न	२७	अथकी श्रवण	९७
पञ्चोद्भूत अन्न	४५	अथका चक्षु	९९
६ अग्निवि आकार	५१	कोश और वक्ता वक्ता	१
अतिथिकर आहार	६	किन्तुवाके तीन देव	११
७ गौका विश्वरूप	६१	अनुष्णाद् गौ	"
		नवम काण्डका मन्त्र	११







## ब्रह्मज्ञानका फल ।

यो वै तां प्रक्षणो वेदामृतेनाहृतां पुरम् ।

तस्मै ब्रह्म च ब्राह्मण्य चक्षुः प्रान्नं प्रजा ददुः ॥

(अथर्व १।२।२९)

‘ (यः वै) जो निबलपूर्वक (अमृतेन आहृतां) अमृतसे देखित (तां पुरं) उस बचरीको (वेद) जान करता है (तस्मै) उस ब्रह्माको (ब्रह्म च ब्राह्मण्य च) परमात्मा और उसके आभरणों (इत्येकमेव) एक अस्त्वपि वै च (चक्षुः) निज आदि इन्द्रियों (प्राणं) अथवा दीर्घ आयु और (प्रजा) उत्पन्न करता है (ददुः) देता है ।

अर्थात् जो ब्रह्मज्ञान प्राप्त करता है उसको उत्तम शरीर प्राप्त होवे आयु और उत्पन्न करता प्राप्त होती है ।





# अथर्ववेदका सुबोधभाष्य ।

प्रस्तावना

## दशम-काण्ड ।

अथर्ववेदके दूसरे महाविद्यालय में यह दशम काण्ड तीसरा है । इसमें दस सूक्त हैं । पर्यायवाचिके सूक्त इसमें नहीं हैं । इस दस सूक्तों में ५ अनुवाक हैं और सूक्तमें मंत्र-संख्या इस प्रकार है—

अनुवाक	सूक्त	मंत्रसंख्या	व्यक्तिविभाव
१	१	३२	३ ( १ + १ + १२ )
	२	३३	३ ( १ + १ + ११ )
२	३	३५	३ ( १ + १ + ५ )
	४	२६	३ ( १ + १ + ६ )
३	५	५	५ ( १ + १ + १ + १ + १ )
	६	३५	४ ( १ + १ + १ + ५ )
४	७	४८	४ ( १ + १ + १ + १४ )
	८	४४	४ ( १ + १ + १ + १४ )
५	९	२७	३ ( १ + १ + ५ )
	१०	३४	३ ( १ + १ + १४ )
५	१	३५	३५

अथ इन सूक्तोके ऋषि-देवता-छन्द देखिये—

ऋषि-देवता-छन्द ।

प्रथमोऽनुवाकः ।

सूक्त	मंत्रसंख्या	ऋषिः	देवता	छन्दः
१	३९	मरुतविररस	कृत्वाभूपर्व	अनुष्टुप् । १ महाभूहती; २ विरज्जान्नी यावती; १ पयस्योपेयः १२ पयसि; १३ उदोभूहती; १५ अनुष्टुप् विराडनुष्टुप्; १ १ १५ मरुतविररसि; १ (विराट्); १६ १८ विष्णुमी; १९ अनुष्टुप् अथरी; २२ एकावसाना विपराधी अन्विष्टः; २३ विष्वा मी विषमा यावती; २८ विपरा यावती; २९ यन्मे पयोऽपिभ्यः अगती ३२ इत्यनुष्टुप् यमो एकस्वप्रतिवपती ।
२	३३	मारायण	पुन्याः पाप्मिस्तुक्त महायकालवत् ३३-३९ साध्यात्परमसा	अनुष्टुप् । १-४ ५-८ विष्णुमः ९ ११ अन्विष्टः १८ मुरिभूहती ।

द्वितीयोऽनुवाकः ।

३	२५	अथर्वी	वराणमभिः वमस्वपिः वम्रमः	अनुष्टुप् । १ २ ६ मुरिक् विष्टुमः; ८ ११ १४ वमस्वपिः ११ १६ मुरिबौ; १५ १७-२५ वद्वरा वमस्व ।
४	१६	अथर्वी	यक्षकः	अनुष्टुप् । १ पयस्योपेयः; २ विपरावसाना यावती; ३, ४ पयस्योपेयः ८ अन्विष्टयमो पयः विष्टुप्; १२ मुरिभूहती; १६ विपरा मतिद्रायावती; २१ ककुमत्; २२ विष्टुप्; २३ म्वराना कद्वरा बूहती यमो-वकुम्भती मुरिक् विष्टुप् ।

तृतीयोऽनुवाकः ।

५	१२४	मिथुहविः	आवाः वम्रमः	अनुष्टुप् । १-५ विपरा पुरेभिर्नृत्तव ककुमदीयमो वमस्व ६ अनुष्टुप् विपरा अमरीयमो अथरी; ७-९ १२ १३ म्वराना पयस्यः विपरावसाना वमस्व बूहती; ११ १४ वमस्व अन्विष्टः; १८ २१ अनुष्टुप् अमरीयमो वमस्व विष्टुम्भती अन्विष्टः; १९ २४ विपरा विराड्यावती ।
२५	३५	कीर्तिताः	विशुक्ताः मंत्रोपाः	१ — ३६ वमस्व विष्टुप् वमस्व विष्टुप् अन्विष्टः अन्विष्टः अन्विष्टः अन्विष्टः ।
३६-४६	३६	महा	मंत्रोपाः	३७ विराट् पुरेभिर्नृत्तव; ३८ पुरेभिः; ३९ ४१ अन्विष्टः यावती; ४ विष्टु विषमा यावती ।

४२ ५	विह्वलः	प्रभापतिः	४४ त्रिपदा यावन्नीयमनुष्टुप् । ५ त्रिष्टुप् ।
१ २५	बृहस्पतिः	फाकमणिः	अनुष्टुप् । १ ४ २१ पञ्चपदा; ५ पदपदा अगती;
		बृहस्पतिः	६ सप्तपदा विराट् षड्वरी; ७ ९ अक्षरानां अष्टपदा अष्टवः;
		३ आप	१ अक्षरपदा छति; ११ १ २३ २७ पञ्चा पक्षवः;
			१२ १७ अक्षरानां सप्तपदा षड्वरी; ११ अक्षरानां पदपदा
			अगती ३५ पञ्चपदानुष्टुप्ममा अगती ।

### चतुर्थोऽनुवाकः ।

५ ४४	अपर्वा (छत्रः)	स्कन्धः	त्रिष्टुभः । १ विराट् अगती; २ ८ मुरिजो; ७ १३ परोन्निहो;
		अपरास्त्र	१, १४ १६, १८ १९ उपरिष्टाद्बृहत्; ११-१२, ३५
		संशोकाः	२ २२ ३९ उपरिष्टात्त्रिष्टुभः; २७ अक्षरानां
			बृहत्पदा अगती; २१ बृहतीगमनानुष्टुप्; २३ ३ ३७ ४
			अनुष्टुभः ३१ मध्ये पञ्चाक्षरिण्यती ३२ ३४ ३६ उपरिष्टाद्विराट्
			बृहत्; ३५ अनुष्टुपा अगती; ४३ आपर्वा विराट् यावन्नी;
			४४ आपर्वा अनुष्टुप् ।

८ ४४	पुराः	अपरास्त्र	त्रिष्टुभः । १ उपरिष्टाद्विराट् बृहती; २ बृहती गमनानुष्टुप
			५ उपरिष्टाद्बृहत् । ६, १४ १९ २१ २३ २५, २९ ३१ ३४
			३७ ३८ ४३ ४३ अनुष्टुभः ७ परावृत्तिः १ अनुष्टुभगमनं
			बृहती; ११ अगती; १२ पुरोबृहती; त्रिष्टुभगमनं पंक्तिः;
			२५ २७ मुरिम्बहरी; २९ पुराद्विष्टु; ३६ उपरिष्टाद्विष्टु
			१ अनुष्टुप ३ अक्षिः ३९ बृहती गमनं त्रिष्टुप्; ४२ विराट्
			यावन्नी ।

### पंचमोऽनुवाकः ।

९ १७	अपर्वा	शालीरमा	अनुष्टुभः । १ त्रिष्टुप्; १२ पञ्चाक्षरिण्यती; २५ अनुष्टुभगमनं
			अनुष्टुप २६ पञ्चपदा बृहत्पञ्चाक्षरिण्यती अगती; २७ पञ्च
			पदाक्षरिण्यती अनुष्टुभगमनं यावन्नी ।
१ १७	बृहस्पतिः	अपरा	अनुष्टुभः । १ अनुष्टुभगमनं अनुष्टुप्; ५ त्रिष्टुभो द्विती बृहती; ६
			८ १ विराट्; २३ बृहती; २४ उपरिष्टाद्बृहती; २६ अक्षरानां
			पंक्तिः; २७ अनुष्टुभगमनं; २९ त्रिपदा अगती यावन्नी; ३१ त्रिष्टुभ
			गमनं; ३२ विराट् पञ्चाक्षरिण्यती ।

इह वचनं चाम्बरे आधिरस्य कविः १ भारवचनं कविः २ बृहस्पतिः ३ पुरा कविः ४ वृहस्पतिः ५ अपर्वा  
 चाम्बरे ७ मुरिम्बहरी-पौष्टिक-मन्त्रा-विह्वल इत्येव चार कविर्वा मिलन्ति १ एते वचनं सूक्तं २ । इह पुरा कविर्वा ३ ४  
 तथा वृहस्पतिः देवता ४ पुरा-मन्त्रादेवता ५ मन्त्रादेवता ६ पुरा देवता ७ मुरिम्बहरी वचनं गीते २ मिलन्ति  
 इत्येव सूक्तं २ ।

अथ इव संशोका अर्थं भावार्थं और अपरवचनं देखिये—

अनयाऽहमोपेक्ष्या सर्वीः कृत्या अद्वयम् ।  
 यां धर्मे चक्रुर्या गोपू यां वा ते पुरुषेषु ॥ ४ ॥  
 अथमस्त्वय्यकृते क्षपयः क्षपयीयते ।  
 प्रत्यक् प्रतिप्रविण्णो यथा कृत्याकृत हनत् ॥ ५ ॥  
 प्रतीचीनं आक्षिप्तोऽप्यथो न पुरोहितः ।  
 प्रतीचीः कृत्या आकृत्याऽमून कृत्याकृतो अहि ॥ ६ ॥  
 यस्त्वोवाच परेहीति प्रतिकूलमुदाग्यम् ।  
 य कृत्येऽग्निनिर्वर्तस्व माऽस्मानिच्छो अनुगम्यः ॥ ७ ॥  
 यस्ते परैपि सद्यो रयस्तेवर्द्धयिषा ।  
 य रच्छ सत्र तेऽर्धन्नमज्ञातस्तेऽयं जनः ॥ ८ ॥  
 ये त्वा कृत्याऽलैभिरे विद्वला अभिचारिणः ।  
 क्षुम्भीभूतं कृत्याद्वयं प्रतिवृत्तं पुनः सूर सेनं स्वा स्नपयामसि ॥ ९ ॥

अर्थ—( वां क्षुम्भी ) जिस कृत्या वातक प्रयोग-को क्षेत्रमें (वां गोपू) जिसकी गौक्षमें करते हैं, (वां वा ते उन्नेषु यदु) अथवा जिसका ठेरे उन्नाम-पुरुषोंपर करते हैं (सर्वीः वाः कृत्याः) ये सब वातक प्रयोग (यद्विद्वला अभिचारिणः) इस गोपक्षिसे अक्षय्य बनाता हुआ ॥ ४ ॥ (अथमं ॥ १२४१५५५ अथमार्थं क्षपयिषि)

(अथकृत्यं अर्थ अस्तु) पापाचार्य करनेवालेकी वाप जन जाने (क्षपयीयते क्षपयः) क्षप, विवेकात्मेनीही वाप जन जाने (प्रत्यक् प्रतिप्रविण्ण) इस सब पुर्ण वापक मेक तेते हैं (यथा कृत्याकृत हनत्) जिससे वातक प्रयोग करनेवाले वात करे ॥ ५ ॥

(प्रतीचीना आगिरस) वातक प्रयोगकी व जिस भेकमें तमर्ष आगिरसी विद्यामें प्रवीण (अथवा वा कुटोमिय) अथवा ही हमारा सुविधा मेवा है । सत्र (कृत्याः प्रतीचीः आकृत्या) वातक प्रयोगोंकी योजना देता है और वह इस वापकी (अथवा कृत्याकृतः अहि) सब वातपात करनेवालोंका नाश करे ॥ ६ ॥

है (कृत्ये) वातक प्रयोग । (वाः रवा परा हृदि इति उवाच) जिस प्रवापकतानि पुष्टे आपि बह देवा यदा (वै प्रतिकूल उवाच अभिचारिणः) सब विरोधकता कृत्ये पाप पशुपत का और (अथमं वा अस्मान् मा इच्छः) निरपराधी इन क्षेत्रीही इच्छा मत कर अर्थात् इस पर आक्रमण न कर ॥ ७ ॥

है हमने (अथुः जिना एवम् एकीभिः) कैसा शिखी अपनी सुविधि रखके अथवाहीको बनाता है देवाही (वां के वर्ये चक्रुर्या) वां ठेरे—वातक प्रयोगमें—अथवाहीकी बनाता है कधी निर्माताके पास (य रच्छ) वासिष वा (य रच्छ) वांही पुष्टे वापिष पशुपता है (अथ कथा वै अज्ञात) वह मनुष्य पुष्टे अज्ञात ही रहे अर्थात् इसपर : अज्ञान व रोज वातक प्रयोगकर्ताके पास नापिष बना जाने ॥ ८ ॥

(ये विद्वलाः अभिचारिणः) वा भूत वातक प्रयोग करनेवाले (त्वा कृत्या) है हमने तुम्हको अथवा (आक्षिप्ते) आक्रमण करते हैं उस वातक प्रयोगका (इत्यादौपयमे हर्ष) प्रतिभार करनेवाला वह (अथुः) अथवा वाप है (इह यद्विद्वला अभिचारिणः) वह पुनः वातक प्रयोगमें लौटनेवाला है अथवा (तव स्वा स्नपयामः) इससे पुष्टे स्वाप करते हैं जिससे सब वाप पूरा हो जायें ॥ ९ ॥

यत् दुर्मगां प्रस्नपितां मृतमस्मानुपेयिम ।  
 अयंतु सर्वं मत् पाप द्रविणं मोषं तिष्ठतु ॥ १० ॥ (१)  
 यत् तं पितृभ्यो ददतो पक्षे वा नाम जगद्गुः ।  
 संवेदयादत् सर्वस्मात् पापादिमा मुञ्चन्तु त्वीपधीः ॥ ११ ॥  
 देवेनसात् पित्र्याभामग्राहात् संवेदयादिभिर्निष्कृतात् ।  
 मुञ्चन्तु त्वा वीरुषो वीर्यिण ब्रह्मण आग्निः पर्यस्त श्रवणाम् ॥ १२ ॥  
 यथा वारंभ्यावयति भूम्नां रेशुमन्तारिषाष्टाभम् ।  
 एषा मत् सर्वं दुर्मत् ब्रह्मजुष्टमपायति ॥ १३ ॥  
 अपं काम नानवृत्ती बिन्द्या गर्वमीषं ।  
 कर्तृन् नैषस्वेतो नृत्ता ब्रह्मणा वीर्यायिता ॥ १४ ॥  
 अय पथाः कृत्येति त्वा नयामोऽभिप्रार्थितां प्रति स्वा प्र हिंसाः ।  
 तेनामि याहि मञ्जुत्यनस्ववीव बाहिनी विअरूपा कुरुतिनी ॥ १५ ॥

अर्थ—( यत् दुर्मगां प्रस्नपितां मृतमस्मानुपेयिम ) की दुर्मगवृत्तु गार्ह हर्ष मे हुए पुत्रवर्जकी ( कप हर्षिम ) प्राप्त करना  
 अर्थिक प्राप्त होना है वह ( मत् सर्वं पाप अप पन्तु ) मुझसे सब पाप दूर हो जाये और ( द्रविण मा कप तिष्ठतु ) द्रव्य  
 मेरेसब जायये ॥ १० ॥

दे मनुष्य ( यत् पितृभ्यः ददतो ) को पितरोंको देनेके समान तथा ( पक्षे वा ) ब्रह्मणे ( ये नाम जगद्गुः ) देता नाम  
 देने की ( इमाः ओपधीः ) ये ओपधिका सब ( संवेदयात् सर्वस्मात् पापात् ) इतिहासे सब पापसे ( एषा मुञ्चन्तु  
 देवी मुक्तया करे ॥ ११ ॥

हे मनुष्य ! ( वीरुषः ) औषधिका ( त्वा ) तुझे ( देवेन्यवसात् पित्र्यात् ) देवता सर्वकी पापसे पितरोंके अर्पणके पापसे ( नाम—  
 माहातु संवृत्ता ) निहित नाम लभ और पुत्र कष्टसे पापसे ( अभिप्रार्थिताम् ) अप्रवास करनेके पापसे ( ब्रह्मणा वीर्येण )  
 ब्रह्मके ब्रह्मणे ( कर्मात् ) संश्राद्धी पक्षिते और ( कर्मीणां पक्षता ) कर्मियोंके अवलोकने से ( मुञ्चन्तु ) मुक्तया करे ॥ १२ ॥

( यथा वातः ) यथा वात ( मृदावाः हेतुं अग्निशक्त्यान् अग्ने ) मृदिमें पानी और अग्निसे अग्नेयके ( वारंभवति ) उदा देता  
 है ( एषा सर्वं दुर्मत् ) देता सब दुर्मग ( मञ्जुत्यं अपायति ) कान्ताता निवारित होकर मृद् ही जाये ॥ १३ ॥

हे हस्ते ! ( बिन्द्या गर्वमीषं ) ब्रह्मणे सुटी पदमीके समान ( नामवृत्ती अप काम ) छान्न करती हुई दूर  
 पड़ी भा । ( वीर्यायिता मञ्जुता ) वीर्यपुष्ट कर्मसे ( मुञ्चता ) ब्रह्मण केरी हुई ( दत्त कर्तृन् अष्टात्स ) ब्रह्मण कर्माधिक पाप  
 मान भा ॥ १४ ॥

हे हस्ते ! ( अयं पथा एवाभि नयामा ) यह मार्ग है इससे दूर तुझे मे जाये है ( अभि प्रार्थितां एषा प्रति प्रहिंसा )  
 एषा एषा देता हुई तुझको हम वास्तव दत्त देने हैं । ( तेन अञ्जनी अभि बाहि ) उक्त्य तोहको हुई अये वह ( अमन्त्रणी  
 विचरणा ) पुनर्देवी बाहिनी हृत् ) हृत्पुष्ट अनेक रूप से मुक्त सर्वकर छान्न करनी हुई देता मेरी जाती है ॥ १५ ॥





# अथर्ववेदका सुबोधभाष्य ।

## दशमं काण्डम् ।

( १ ) कृत्यादूपण ।

घातक प्रयोगको असफल बनाना ।

यां कृत्ययन्ति बहवो घृष्टमित्रं विश्वरूपां इस्तकृतां चिकित्सयः ।

सारादेत्सर्पं नुदाम एनाम् ॥ १ ॥

घोरिपुण्ठीं नृस्वर्गीं कृणिनीं कृत्याकृतां समृता विश्वरूपा ।

सारादेत्सर्पं नुदाम एनाम् ॥ २ ॥

घृष्टकृतां राजकृतां श्रीकृतां ब्रह्मभिः कृता ।

आवा पर्यां नुचेर्षं कृतारं बध्न्वच्छतु ॥ ३ ॥

बर्ष- ( निश्चिन्ता ) निर्याना कोश ( वां हस्तकृतां निश्चरूपां कृत्ययन्ति ) जिस कृत्या- घातक प्रयोग— या अपने  
 को घोर घोरिपुण्ठी तथा देते हैं । अतः ( बहवो घृष्टकृतां ) बरातेके समय बध्न्वो सम्राट हैं, ( सः ) वह कृत्या-बह घातक  
 भेन ( कृत्या १३ ) १३ वर्षी कार्ये । इस ( पूर्वां अप नुदामः ) इस घातक प्रयोगको दूर कर देते हैं ॥ १ ॥  
 ( निश्चरूपां घोरिपुण्ठीं कृणिनीं ) अनेक कृतिवर्ती निरवधि वाक्यान्ती तथा कानवाची ( कृत्याकृतां समृता )  
 अनेक कृता यो अतः दूर ही ( वा नारात् १३ ) वह दूर वर्षी कार्ये ( पूर्वां अप नुदामः ) इसको इस दूर कर देते हैं ॥ २ ॥  
 ( कृत्याकृतां बध्न्वः ) अतिथी कोही भी कैसी ( कृत्याकृतां ) निष्ठाके पास अपना धनुष बाण रीधी जाती है, वह  
 राजा ( कृत्याकृतां बध्न्वः ) राजा ( कृत्याकृतां ) दूर की राजा अपना राजाजी द्वारा भी दूर कृत्या ( कृत्याकृतां )  
 अपने राजा राजाजी कार्ये ॥ ३ ॥



अनयाहमोपस्था सवीः कृत्या अद्वयम् ।  
 यां ध्वने चक्र्या गोपु यां यां ते पुरुषेषु ॥ ४ ॥  
 अधमस्त्वपकृते अपयः क्षपयीते ।  
 प्रत्यक् प्रतिप्रहिणो मया कृत्याकृत इनत् ॥ ५ ॥  
 प्रतीचीन आक्षितोऽध्वयो न पुरोहितः ।  
 प्रतीचीः कृत्या आकृत्याऽमून कृत्याकर्वा वहि ॥ ६ ॥  
 बस्त्वोवाच परेहीति प्रतिफलमुवाच्यम् ।  
 व कृत्येऽमिनिर्वर्तस्य माऽस्मानिच्छो अनागतः ॥ ७ ॥  
 यस्ते परैषि सवुषी रयस्तेवर्धयिषा ।  
 तं गच्छ सत्र तेऽध्वनमज्ञातस्तेऽव अनः ॥ ८ ॥  
 ये त्वा कृत्याऽऽलेभिरे विद्वला अभिधारिणः ।  
 ध्वंश्वादे कृत्याद्वयम प्रतिवर्त्य पुनःसरं तेन त्वा स्तपयामसि ॥ ९ ॥

ध्वं—(यां ध्वने) जिस कृत्या पातक प्रयोग-बीजकर्म (यां गोपु) जिसके बीजकर्म करते हैं (यां यां ते पुरुषेषु) अनु-  
 भवता जिसके तेरे पुत्रकर्म-पुरुषोंपर करते हैं (सवीः याः कृत्याः) हे सव पातक प्रवीन (जहाँ जवना बीजका-  
 अद्वयम्) इस भावधिये अवज्ञा कलाता हूँ ॥ ४ ॥ (अथवा ३१४१५ न अपामानी बीजवि)

(अथवा ध्वं अस्तु) पापाचार करवालेको पाप जग जाने (क्षपयीते क्षपया) क्षाप, हँसना-रोपी कान कम  
 जाने (मावक् प्रतिप्रहिणम्) हम सब तु ई वापस भेज देते हैं (यथा कृत्याकृत इनत्) जिससे पातक प्रवीन करनेवाले  
 गलत करे ॥ ५ ॥

(प्रतीचीना अभिधारिणः) पातक प्रयोगको व पित भजनमें समर्थ आधिरात्री विद्यामें प्रवीन (अथवा वा इति)   
 भावक ही हमारा सुधिया होता है। वह (कृत्याः प्रतीचीः अकृत्यः) पातक प्रयोगकोही बीज देता है और वह इस क्षमता  
 (अथवा कृत्याकृत वहि) हम वापस करनेवालोंका वाप करे ॥ ६ ॥

हे (कृत्यः) पातक प्रयोग ! (याः एवा परा इति इति अवाच्य) जिस प्रयोगकर्ता हिंदुसे जाये वह' ऐसा वरा,  
 (तं प्रतिफल उवाचरं अभिविर्वर्तस्य) सब विधिपक्षों का मुझे पाप पहुँच जा और (अनागतः अनागतः आ इति)  
 निरपराधी हम जैतीरी इच्छा मत कर अर्थात् हम पर आक्रमण न कर ॥ ७ ॥

हे कृष्ण ! (अथ विद्या रयस्ते परैषि) कैसा क्लिष्टी अपनी बुद्धिसे रयस् अवधनोंकी मलाता है वेदाही (यां ते परैषि  
 संदयी) ओं ठरे—पातक प्रयोगके-अवधनोंकी मलाता है जली निपाताके पाप (त गच्छ) भासित जा (तव ते वयम्)  
 वराही तुमसे वापस पहुँचना है (अयं वनाः ते अयातः) वह अनुग्रह तुमसे अज्ञात ही रहे अर्थात् इसपर हमका व दोष  
 पातक प्रयोगकर्ताके पाप वापस मला जाये ॥ ८ ॥

(हे विद्वताम् विद्वताः अभिधारिणः) का पूर्ण पातक प्रवीन करनेवाले (त्वा कृत्या) हे कृष्ण तुमको वयम्  
 (जानेमिरे) करन करते हैं जग बहल प्रवीणता (इवाच्यम् इव) प्रतिधार करनेवाला वह (यं तु) हम ठावत है  
 (इव परै प्रतिवर्त्य) वह पुनः पातक प्रयोगको बीजनेवाला है अतः (तव त्वा क्षपयामः) हमने तुमसे रवाव करते हैं  
 जिससे तव बीज दूर हो जाय ॥ ९ ॥

यद् दुर्भगां प्रस्नं पिता मृतपत्न्यामुपेयिम ।

अपैतु सर्वं मत् प्रापं ब्रविणु मोर्ष सिष्ठतु ॥ १० ॥ (१)

यत्तु ते पितृभ्यो ददतो यज्ञे वा नाम जगद्गुः ।

संवेष्ट्यात् सर्वसात् पापादिमा मुञ्चन्तु त्वोपधीः ॥ ११ ॥

वेनेनसात् पिण्याभामग्राहात् संवेदयादिमिनिष्कृतात् ।

मुञ्चन्तु त्वा वीरुषो वीर्यिण मन्त्राण आग्निः पयंसु श्रुषीणाम् ॥१२॥

यथा वातश्च्युत्तयेति धूम्यां रेणुमन्तरिक्षाणांमम ।

एवा मत् सर्वं दुर्मतं ब्रह्मनुत्तमपायति ॥ १३ ॥

अपे काम नानंदसी विनंदा गर्वभीष ।

कर्तुन् नक्षस्वेतो नृत्ता प्रज्जणा धीर्यिषिता ॥ १४ ॥

अथ पन्था कृत्येति त्वा नयामोऽभिप्राहितां प्रति त्वा प्र हिण्यः ।

तेनाभि याहि मञ्जुत्यनस्वपीव बाहिनीं विश्वरूपा कुरुटिनीं ॥ १५ ॥

**कर्म-** ( यत् कर्मणां मलविनाशायुक्तकर्मणां ) यो दुर्मांसकृत् आहं हर्षं मे रूपं पुत्रप्राप्तीको ( यय हर्षितं ) प्राप्तवान्मा  
 कर्मिणे प्राप्त होता है वह ( यत् कर्मं पापं अप यत् ) सुष्ठु एव पापं दूर हो कर्म और ( हर्षितं मा यय सिद्धु ) क्षम  
 मेरेकत आजाये ॥ १ ॥

५५ दे मनुष्य ( बप् पिमुम्बः ब्रह्मः ) को पितृप्रेक्षे देवेके समक तथा ( बजे वा ) ब्रह्मै ( ते वा म ज्युहुः ) छैप नाम  
 सो ( इमाः ऋषीः ) के ज्योतिषी छव ( छद्देव्यान् सर्वमात्माणाप् ) होवेनामे सब पानवे ( रवा मुञ्चन्तु  
 वै ) छुस्तता करै ॥ ३३ ॥

हे मनुज ! (शोधः) औद्युधिका (या) तुम (वेद-वेदशास्त्र पित्रात्) वैवश संवर्षी पापसे विवरोके धर्षणके पापसे (नाम-  
माया संवेष्टात्) विविध नाम जमे और बुद्ध कहनेके पापसे (अभिनिःकृतात्) अपमान करनेके पापसे (अज्ञानः बीज) ज्ञानके बलसे (कर्तुम्) मन्त्राकी शक्तिके और (कर्षणीयवसाः) कर्षणके अपातसे तैत्ति (सुखम्) सुखम् करे ॥११४

(यथा वातः) वैद्य वायु (धूम्राः) रेतुः कम्पनिष्ठाः (अग्नेः) मूर्ध्नि धूमी और कम्पनिष्ठैः मेघको (यथावर्षति) उड्डा वैद्य  
 है (यथा सर्गं दुर्मर्त्यं) वैद्य सप्त बुधभाष (जगन्मूर्धं नवावर्षति) जगन्मूर्धना विचारित होकर बुध ही जाने ॥ ११ ॥

हे कुत्से! ( विमला गर्वभी हृत् ) बभ्रवो सुखी गर्वभीके समान ( मानहरी अप काम ) राप्त् करती हुई रा  
गवी बा। ( श्रीरामदा प्रकृषा ) श्रीरामुक् कामके ( सुखा ) व पक्ष केरी हुई ( इस कर्तुन् मकसत् ) बहते बहाओके पास  
नाय बा ॥ १४ ॥

है अन्ते। (अर्थ पन्था रवाजति नवागम) यह आर्य है इससे पुत्र पुत्रों से जाते हैं (अभि धर्मिता रवा यन्धि प्रीतिमः) इसी कारण वे ही हैं तुमको हम धातु से कहते हैं। (तेन मज्झी अभि जाति) बसों तोहरी हुई जाते बड़ (अनन्तरा विषय्या उपस्थिति धर्मिणी इव) एतद्वत् अनेक वर्गों युक्त अनन्तर धारक करती हुई सेवा भिती जाती है ॥ १५ ॥

पराङ् ते ज्योतिरपथ ते अर्धाग्न्यत्रासद्वचना कुक्षुष्य ।  
 परमेहि नवति नाभ्याः अति दुर्गाः श्रोत्रा मा ध्वमिष्टाः परेहि ॥ १६ ॥  
 पातं इव बुधान् नि मृणीहि पादय मा गामश्च पुरुषमुचिष्य एषाम् ।  
 कर्तृन् निषृत्येवः कृत्येऽप्रभास्त्वार्य बोधय ॥ १७ ॥  
 यां ते वृहिं वि यां इमं स्थाने क्षेत्रे कृत्या वल्लग यां निचस्नुः ।  
 अयौ वा स्वा गार्हपत्येऽभिचेरुः पाकं सन्तु पीरतरा अनागसम् ॥ १८ ॥  
 उपाहृतमर्तुषु निस्राव वेरं त्सार्यन्मविदाम कर्षम् ।  
 वदेतु यत आमृतं तत्राच इव वि वर्धता इन्तु कृत्याकृतः प्रजाम् ॥ १९ ॥  
 स्वायसा असर्षः सन्ति नो गृहे विद्या ते कृत्ये यतिषा पर्येवि ।  
 उचिष्यैव परेहीतोऽङ्गति किमिहच्छसि ॥ २० ॥ (२)  
 ग्रीवास्तै कृत्ये पादौ पापि कस्स्यामि निर्द्वेव ।  
 इन्द्राग्नी असाञ् रक्षतां यौ प्रजानां प्रजावती ॥ २१ ॥

अर्थ- हे इत्ये ! ( ते पयोऽति पाम् ) दुष्ट वापय होके किने जाये प्रकाश दीये ( ते अर्धाग्न्यत्रासद्वचना ) तेरे किने एत  
 आनेके किने कोइ मांस न दीये ( अक्षत् अन्वत् अवना कुक्षुष्य ) इपरी ओचकर पृथ्वी ओर गमन कर । ( नाभ्या  
 दुर्गाः ) पथति कोत्राः अति पौन इहि ) बोधकात्ता दुर्गम बन्ने बरिबोके पार पुर गयी वा । ( मा ध्वमिष्टा ) अरु मा,  
 ( परा इहि ) दूर गयी वा ॥ १६ ॥

हे इत्ये ! ( पातः बुधान् इव ) वातु इहोको तोरता है देते ही ए ( कर्तृन् वि मृणीहि ) हिंसा कर्माधीन वाक कर  
 और ( नि पादय ) बकाय वाक । ( यामां गं अक्षं प्रकं मा उचिष्यः ) इवके गो बोडे और दुस्के अक्षिष्य वर  
 ( इवः निचस्नुः ) बहावे निचस्नु हाकर ( अनागसत्वाय बोधय ) सति अक्षधो वेत, वनी कृत्याके बगवैवासीये दे ॥ १७ ॥

( यां कृत्यां ते वृहिं वि ) को पातक प्रवीन तेरे वाग्धने ( यां इमं स्थाने ) को स्थानमे और ( क्षेत्रे निचस्नुः )  
 रेतमे पात दिया हो को ( गार्हपत्येऽभिचेरुः ) वा गार्हपत्य अग्निमें अग्निधार कर्म किया हो ( पाकं सन्तु )  
 सन्तु तथा ) ए वरिष और मिषाग हविषर मी ( पीरतराः ) मृत जावोने को अग्निधार किया हो उचधे निर्बल करते हैं ॥ १८ ॥  
 ( उपाहृतमर्तुषु ) बाबा हुआ और बाबा नवा ( विदामं किं त्सारि कर्म अनुविदाम ) यथा हुआ वैरकी मिषक  
 अग्निधार प्रभावध हवे जात हुआ है ( कर्षाः कर्षाये यत एत ) बहावे वह बाबा हो वहां वह वरिष वृषि ( वर व  
 य वर्धता ) वहां बोडेके कर्षाग प्रवन करे और ( इन्द्राग्नी असाञ् रक्षतां ) अग्निधारधीन करवैवाके सेतावैवा  
 वाक करे ॥ १९ ॥

( स्वायसाः अक्षयः वा गृहे स्मृति ) सत्यम कोही तबकोर हमारे पार्ये है । हे इत्ये ! ( ते यतिषा विद्या ) तेरे कोही  
 इन आनेके है किने ( यतिषा ) किन प्रकार आर दितने हैं ( उचिष्येव इव परा इहि ) कठ और बहावे दूर गम  
 वा । हे ( अक्षयः ) अज्ञात गारण प्रयोग ( इह किं इच्छसि ) वहां ए कथा आहता है ॥ २० ॥

हे इत्ये ! ( ते ग्रीवाः पादौ च अपि कस्स्यामि ) तेरी गर्दन और पांय में कस देता हूं वहांते ए ( निर्द्वेव ) अग्न वा ।  
 ( इन्द्राग्नी असाञ् रक्षतां ) इन्द्र आर अग्नि हमारी रक्षा करें । ऐसी ( को प्रजानां प्रजावती ) सेतावैवी रक्षा वाक है  
 परात है ॥ २१ ॥



अनागोदस्या वै मीमा कृत्ये मा नो गामश्च पुरुष बधीः ।  
मथ्र्यप्राप्ति निहिता ततस्त्वोस्थापयामसि पूर्णाध्वीयसी मथ ॥ २९ ॥  
यद्वि स्व तमसाऽऽहृता आलेनामिहिता हव ।  
सर्वी सलुभ्येतः कृत्याः पुनः कर्त्रे प्र हिंसमसि ॥ ३० ॥  
कृत्याकृतौ बलगिनोऽभिनिष्कारिणः प्रजाय ।  
मृषीहि कृत्ये मोन्धिषोऽमून् कृत्याकृतौ वहि ॥ ३१ ॥  
यथा धर्षो मुच्यते तमसस्पति रात्रिं अहोत्स्यपसम केतुन् ।  
एवाहं सर्वे दुर्मृत कर्त्रे कृत्याकृता कुर्व इस्तीव रवो दुरितं ब्रह्मामि ॥ ३२ ॥ (३)

अर्थ- हे इन्ने । ( अनागः इत्या मीमा ) निरवशोका यम करनेवाली मरकर है ( ना गां अथ प्रुष मा बधीः ) इन्ने वा बोले और मनुष्योका यम न कर । ( यम यम निहिता बधि ) कहा कहा तू रही गयी है ( तता स्वा उत्थापयामसि ) कृते तुसे उठाव देते है । ( तू पूर्णाध्वीयसी मथ ) तू पतते भी छोटी हीं वा ॥ २९ ॥

( यद्वि तमसा आहृताः स्व ) यवि तुम अनेसे आच्छिन्न हुए है वेध ( आलेन अभिहिता हव ) काष्ठे पर बाधे है ले तमसे ( सर्वो कृत्याः हवः संलुभ्य ) जब वातक प्रयोग वहां से उठा करके लकड़ी में ( प्रजा कर्त्रे हवः प्र हिंसमसि ) फिर कृति प्रति कहा में वर्धित भवता है ॥ ३० ॥

ह इन्ने ! ( कृत्याकृता बलगिनः ) वातक प्रयोग करनेवाले बलवाली हुए ( यदा बधि निः कारिणः प्रजाय ) जो प्रजाय नाश करते है उभयथा तू नाश कर । ( मृषी कृत्याकृताः कर्त्रे ) जब वातकोवेध एक ही न रहे । तब सबको ( बधि ) मार ॥ ३१ ॥

( यथा धर्षः तमसः पति मुच्यते ) यथा धर्ष अन्धकारके कृत्या है ( रात्रिं उचसा केतुन् ब्रह्मामि ) रात्रा तब लकड़े लकीले त्याग देता है ( यम यम कृत्याकृता कुर्व ) इस तरह मैं वातकोके द्वारा किया हुआ ( दुर्मृत कर्त्रे ब्रह्मामि ) हुए इन्ने ( माय देता हूं । वैद्य ( इस्ती रवाः हवः ) हाटी धुकीका फेंकता है, लकड़े सहज आधे में लकड़े हुए पलक प्रयोगसे दूर करता है ॥ ३२ ॥

कृत्या-प्रयोग ।

कृता नाम तव प्रभावका है कि जिसके द्वारा किसीका मारण किया जाता है । किसीके घरमें केतमें कालान्तरे वस्तुमें वपनमें अथवा किसी अन्य स्वाम्यमें कुछ मारक वस्तु रखा जाती है जिसके परिणामसे वह मर जाता है । इस प्रयोग को कृता प्रयोग अथवा मारण प्रयोग कहते हैं ।

यह कुछ आदि वाक कानवाली मूर्ति करते हैं यही योगवाली मूर्ति बनाते हैं जो हत्यमें पकड़े वह मर जाता है । मूर्तिके अतिरिक्त कुछ अन्य वस्तु भी निर्माण की जाती है जिसके मारण हा जाता है ।

इस प्रयोगमें क्या होता है इसका विधि क्या है इसका किसीको भी आन पता नहीं है आन इसके मंत्र से वपनवा नहीं है । अतः इस प्रयोगके विषयमें निश्चित कथने हम कुछ कह नहीं सकते ।

इस प्रकारके प्रयोगोंका परिणाम अपने कोभीतर न हूं और वह वातक प्रयोग अपने कोभीतर बाधित क्या बाध इत करनेके सिद्धे वह एक है । इस लकड़े इच्छावच्छिन्नक पठनके ओ एक मानसिक बल पैदा होता है जब वलत उच कृता-प्रयोग पीछे इतता है और जिससे वह इच्छाका निर्माण किया जा तत्पर बादर परिणाम करता है ।

जब मंत्रोंका अध्ययन नहीं है और वह आचार्य रण्ड है । जब इसको वपना केसा और वधने केसा केसा वह ले वह वहा योग्य विषय है । मंत्रकाजत कार्य लक्ष्य कावकार ही नहीं इस विषयमें कह सकता है । अतः इस विषयमें हम कुछ भी नहीं निश्च कहते देवा कहते हुए हम इस लकड़ा विवरण नहींहा समाप्त करते है ।

## ( २ ) केन-सूक्तम् ।

स्थूलशरीरमें अवयवोंके सङ्घर्षमें प्रभ ।

केन पाप्मी आर्भूते पूर्यस्य केन मांस समृतं केन गुल्फौ ।

केनानुसीः पेशनीः केन खानि केनोष्णलक्ष्मी मध्यतः कः प्रतिष्ठाम् ॥ १ ॥

कस्मात् गुल्फावर्धरावकृण्वन्नाष्टीवन्तायुचरौ पूर्यस्य ।

अहर्षं निर्व्यस्य न्यदिष्टुः कस्विन्जातुनोः सुधी क उ तर्धिकेत ॥ २ ॥

चतुष्टयं युज्यते संहितान्तु जातुम्यामूर्ध्वं शिथिर कर्षधम् ।

भोर्मा यदूरु क उ तन्जमान् याम्यां कुर्षिषु सुरद बभूव ॥ ३ ॥

कर्ति दुवाः कतमे व आसुन् य उरौ ग्रीवाभिस्युः पूर्यस्य ।

कति स्तनौ व्यदिष्टुः कः कफाडौ कति स्कन्धान् कति पुटीरन्निवन् ॥ ४ ॥

को अस्य बाहु समभरद् धीर्यैः करवादिति ।

असौ को अस्य सहेवः कुर्षिषे अभ्या दधी ॥ ५ ॥

वर्ष-( पूर्यस्य पाप्मी केन आर्भूते ) मनुष्यकी एहिवां कितने बनाव ? ( केन मांस संभृत ? ) कितने मांस भर दिया ? ( केन गुल्फ ? ) कितने टकने बनावे ? ( केन पेशनीः अंगुलीः ? ) किसके हृदय अंगुलीयें बनाई ? ( केन खानि ? ) कितने हिचोके सुलभ बनावे ? ( केन कृण्वन्नाष्टी ? ) कितने पाँवके लकने जोड़ दिये ? ( मध्यतः कः प्रतिष्ठाम् ? ) बीचमें क्या स्थापन होता है ? ॥ १ ॥

( उ कस्मात् अचरौ युवकौ अकृण्वन् ? ) अथ कितने मांसके टकने बनावे ? और ( चतुष्टय उचरौ अङ्गीकृतौ मनुष्यके ऊपरके सुरदे ? ) ( कति निर्यात् नव विभक्त्यवयवः ? ) कौन अलग अलग बनाकर वहाँ भस्म बना दी हैं ( जातुमा सुधी क उ तनुं कितने ? ) जातुओंके लक्षोंक कितने मत्त दाँवा बनावे ? ॥ २ ॥

( चतुर्वर्षं संहितामन्ति चिमिर्षं कर्षधं आनुमन्तौ ऊर्ध्वं पुनर्यते । ) बार प्रचारके अगमें बोला हुआ शिविभ ( पीडा ) वह पैर सुरदोंके ऊपर जाता गया है । ( भोर्मा, यत् कक, क उ तत ज्ञानम् । याम्यां कुर्षिषु सुरदं बभूव । ) ऊर्ध्व और कति किन्न मत्त वह सब बनावे हैं जिसके वह मत्त पडा हुआ है ॥ ३ ॥

( ते कति कतमे दुवाः आसुन् ये पूर्यस्य वराः सीवाः शिथिलः ? ) ये कितन और दोबड़े दैव के शिथिल मनुष्यकी छाति और मनेको पूर्य दिया ? ( कति स्तनौ व्यदिष्टुः ? ) कितने स्तनोंको बनावे ? ( कः कफाडौ ? ) जिसके कोह बना बनाई ? ( कति स्कन्धान् ? ) कितने कर्कोको बनावे ? ( कति पुटीः अचिन्त्यम् ? ) कितने पचनेवाँको जोड़ दिया ? ॥ ४ ॥

( धीरैः करवाहू इति भरव बाहु क समभरद् । ) वह पटाकम कर इतने इकडे बाहु कितने भर दिये ? ( क देवः भाव तद् अंती बुक्तिरे अभ्यादधी । ) किस देवने इकक सब कर्कोको पकमें भर दिया है ? ॥ ५ ॥



को अस्मिन् रूपमदधात् को मृशानं च नाम च ।

गातु को अस्मिन् कः केतु कश्चरिर्वाणि पूरुषे ॥ १२ ॥

को अस्मिन् प्राणमवधत् को अपान व्यानम् ।

समानमस्मिन् को देवोऽधि सिधाय पूरुषे ॥ १३ ॥

को अस्मिन् यममदधादेको देवोऽधि पूरुषे ।

को अस्मिन्सत्यं कोऽनृतं कृतो मृत्युः कृतोऽमृतम् ॥ १४ ॥

को अस्मै वासुः पर्येदधात् को अस्यायुरकल्पयत् ।

षष्ठं को अस्मै प्रायच्छत् को अस्याकल्पयन्ज्वम् ॥ १५ ॥

केनापो अन्वतनुत केनाहरकरोष् रुचे ।

तृषसं केनान्वेद केन सायमव ददे ॥ १६ ॥

को अस्मिन् रेतो न्मदधात् वन्तुरातायतामिति ।

मेघा को अस्मिन्सर्षौहत् को बाणं को नृतो दधौ ॥ १७ ॥

केनेमां भूमिमीणोत् केन पर्येमवदिवम् ।

केनाभि मृहा पर्येतान् केन कर्मणि पूरुषः ॥ १८ ॥

अर्थ- ( अस्मिन् क्व कः अदधात् ) इत्ये क्व कित्ते रखा है । ( मृशानं च नाम च कः अदधात् ) मृशानं और नाम च कः कित्ते रखा है । ( अस्मिन् यात् कः ) इत्ये क्व कित्ते रखा है । ( का केतुः ) कित्ते कान रखा है । और ( कृत्य करिमाणि कः अदधात् ) मनुष्ये करिमा कित्ते रखा है । ॥ १२ ॥

( अस्मिन् कः प्राणं अवधत् ) इत्ये कित्ते प्राण यत्नाया है । ( कः अपानं व्यानं च ) कित्ते अपान और व्यानको यत्नाया है । ( अस्मिन् पूरुषे कः देवः समानं अधि सिधाय ) इत्ये पूरुषे कित्ते देवने समानकी ठहराया है । ॥ १३ ॥

( कः एक देवः अस्मिन् पूरुषे कः अदधात् ) कित्ते एक देवने इस पूरुषे कः कः रखा रखा है । ( कः अस्मिन् सत्यं ) कीन इत्ये सत्य रखा है । ( कः अन्व-मृतम् ) कीन अन्व रखा है । ( कृत यातुः ) कृतो मृत्यु हाता है और ( कृतः अमृतम् ) कृतो अमृतम मिळता है । ॥ १४ ॥

( अस्मै वासुः कः परि-अदधात् ) इत्ये कित्ते कः कित्ते देवने पहचाने है । कः=परी । ( अस्या वासुः कः अस्यायुरम् ) इत्ये वासु कित्ते सस्यायु की है । ( अस्मै वः कः प्रायच्छत् ) इत्ये वः कित्ते रखा है । और ( अस्या कः अस्यायुरम् ) इत्ये वः कित्ते मिळता रखा है । ॥ १५ ॥

( केन वासुः अन्वतनुत ) कित्ते कः पैताया । ( केन अहः रुचे अकरोत् ) कित्ते रित अग्रछदे कित्ते बनाया । ( केन रुचं अतु देहः ) कित्ते अवाधी यत्नाया । ( केन सार्वमने ददे ) कित्ते सार्वकाल रखा है । ॥ १६ ॥

( वन्तुः वा तावता इति अस्मिन् रित कः मि-अदधात् ) अवातनु यत्नाया रखा है इत्ये कित्ते देवने रखा रखा है । ( अस्मिन् मेघाः कः अति औहत् ) इत्ये कित्ते मेघा की है । ( का बाणः ) कित्ते म नी रखा है । ( का मृताः दधौ ) कित्ते मृता का भाव रखा है । ॥ १७ ॥

( केन इमां भूमिं और्णोत् ) कित्ते इत्ये भूमि को आच्छादित रखा है । ( केन पर्येमवदिवम् ) कित्ते पु-करोत् देह है । ( केन मृहा पर्येतान् अभि ) कित्ते मृहायते पहाडी की रखा है । ( पूरुषः केन कर्मणि ) पूरुष कित्ते यमो को रखा है । ॥ १८ ॥



केन पुन्यमन्वेति केन सोमं विचक्षणम् ।  
 केन यज्ञं च अद्वा च केनास्मिभिर्विदं मनः ॥ १९ ॥  
 केन ओत्रियमाप्नोति केनेम परमेष्ठिनम् ।  
 केनेममग्निं पूरुषः केन सवत्सरं ममे ॥ २० ॥  
 अद्वा ओत्रियमाप्नोति अद्वायं परमेष्ठिनम् ।  
 अद्वायमग्निं पूरुषो अद्वा सवत्सरं ममे ॥ २१ ॥  
 केन देवां अनु क्षियति केन दैवजनीर्विष्टः ।  
 केनेदमन्यमर्धं केन सत् स्रष्टृष्यते ॥ २२ ॥  
 अद्वा देवां अनु क्षियति अद्वा दैवजनीर्विष्टः ।  
 अद्वायमन्यमर्धं अद्वा सत्स्रष्टृष्यते ॥ २३ ॥  
 केनेय भूमिर्विहितं केन द्यौरुचरा हिता ।  
 केनेदमूर्ध्वं त्रियंक्षान्तरिक्षं व्यचो हितम् ॥ २४ ॥

अर्थ—(पुन्यं केन मन्वेति) पुन्यमन्व किसे प्राप्त करता है। (विचक्षण सोमं केन) विचक्षण सोमको किसे प्राप्त है। (केन यज्ञं च अद्वा च) किसे वह और अद्वाय प्राप्त करता है। (अस्मिन् यज्ञे केन विहितं) इसमें वह किसे रखा है। ॥ १९ ॥

(केन ओत्रियमाप्नोति) किसे ऋषीको प्राप्त करता है। (केन इमं परमेष्ठिनम्) किसे इस परमेश्वरको प्राप्त करता है। (यज्ञः केन इमं अग्निं) मनुष्य किसे इस अग्निको प्राप्त करता है। (केन सवत्सरं ममे) किसे संवत्सर—यज्ञ को प्राप्त है। ॥ २० ॥

(अद्वा ओत्रियमाप्नोति) ज्ञान ऋषीको प्राप्त करता है। (अद्वा इमं परमेष्ठिनम्) ज्ञान इस परमेश्वरको प्राप्त करता है। (यज्ञः अद्वा इमं अग्निम्) मनुष्य ज्ञानसे इस अग्निको प्राप्त करता है। (अद्वा सवत्सरं ममे) ज्ञान ही संवत्सर को प्राप्त है। ॥ २१ ॥

(केन देवां अनु क्षियति) किसे देवोंको अनुश्रुत बनाकर बताया जाता है। (केन दैव—जनीः विष्टः) किसे दिव्यजन का प्रवाको अनुश्रुत बनाकर बताया जाता है। (केन सत् स्रष्टृष्यते) किसे सत्तम ज्ञान कहा जाता है। (केन इदं अन्त्यमर्धं—अर्धम्) किसे वह स्रष्टा व—अर्ध है ऐसा कहते हैं। ॥ २२ ॥

(अद्वा देवां अनु क्षियति) ज्ञान ही देवोंको अनुश्रुत बनाकर बताया जाता है। (अद्वा दैव—जनीः विष्टः) ज्ञान ही दिव्यजन का प्रवाको अनुश्रुत बनाकर बताया जाता है। (अद्वा सत् स्रष्टृष्यते) ज्ञान ही सत्तम ज्ञान है ऐसा कहा जाता है। (अद्वा इदं अन्त्यमर्धं—अर्धम्) ज्ञान वह स्रष्टा व—अर्ध क्योंकि स्रष्टासे भिन्न अन्य वस्तु है। ॥ २३ ॥

(केन इमं भूमिः विहितः) किसे वह भूमि विहित रीतिसे रखा है। (केन द्यौः कचरा हिता) इसमें पुष्पों का रखा है। (केन इदं त्रियंक्षं व्यचो हितम्) किसे वह अंतरिक्ष ऊपर अंतरिक्ष और दैवा इत्यादि रखा है। ॥ २४ ॥

अक्षणा भूमिर्विहिता मक्ष घोरुषरा हिता । अक्षेदमूर्ध्वं तिर्यक् चान्तरिक्षं व्यचो हितम् ॥२५॥  
 मूर्धानमस्य संसीप्यार्धर्षा हृदयं च यत् । मस्तिष्कादूर्ध्वः प्रैरस्य पर्वमानोऽर्धं क्षीर्षः ॥२६॥  
 तदा अर्धवर्णः क्षिरो देवक्रोशः समृज्जितः । तत्प्राणो अग्नि रक्षति क्षिरो अक्षमयो मनः ॥२७॥  
 ऊर्ध्वो नु सृष्टा ३ स्तिर्यक् नु सृष्टाः सर्वा दिक्षुः पुरुष आ बमूर्ध्वः ।  
 पुरं यो अक्षणो वेदु यस्याः पुरुष उच्यते ॥ २८ ॥  
 यो वै तां अक्षणो वेदामृतेनाहतां पुरम् । तस्मै अक्षं च आक्षाश्च चक्षुः प्राणं प्रजां हृदुः ॥२९॥  
 न वै तं चक्षुर्ब्रह्माणि न प्राणो सुरसः पूरा । पुरं यो अक्षणो वेदु यस्याः पुरुष उच्यते ॥३०॥  
 अष्टाचक्रा नवद्वारा ब्रह्मणां पुरसोप्या । तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषाऽऽवृत्तः ॥३१॥  
 तस्मिन् हिरण्यये कोशे ज्यैः त्रिप्रतिष्ठिते । तस्मिन् यद्यधर्मात्मन्वत् तदैः अक्षविदो विदुः ॥३२॥  
 प्रआजमानां हरिणीं यक्षसा संपरीवृताम् । पुरं हिरण्ययीं अक्षा विवेक्षापराव्रिताम् ॥ ३३ ॥

अर्ध- (अक्षणा भूमिः विहिता) अक्षणे भूमि विक्षेप प्रकार रची है (अक्ष घोरः अक्षरा हिता) अक्षणे प्रकोप ऊपर रक्षा है । (अक्ष हृदं मस्तिष्क ऊर्ध्वं, तिर्यक् व्यचः च हितम्) अक्षणे ही वह अंतरिक्ष ऊपर तिरछा और फैला हुआ रखा है ॥२५॥  
 (अक्षणी अक्ष मूर्ध्वं च हृदयं संसीप्य) अ-अर्धा अर्धाव विषय योगी अपना धिर और जो हृदय है उसको आपसमें सीप्यः (पकमान क्षीरता अग्नि मस्तिष्कात् ऊर्ध्वः वैरयत्) । प्राण धिरके बीचमें पाहु मस्तिष्कके ऊपर प्रेरित करता है ॥ २६ ॥

(तदा वा अर्धवर्णः क्षिरोः समृज्जितः देव-क्रोशः) वह निम्नवर्षे गोपीका धिर देवीका सुरक्षित अक्षमत्ता है । (तत् पुरा प्राणः अक्षं लभो मयः अग्नि रक्षति) । तत् धिरका रक्षण प्राण, अक्ष और मय करते हैं ॥ २७ ॥

(उच्यते ऊर्ध्वः नु सृष्टा) । उच्यते ऊपर निम्नवर्षे हैका है । (तिर्यक् नु सृष्टाः) निम्नवर्षे तिरछा फैला है । व्याप्यं (उच्यते अर्धः विष्टः आधमूय) । उच्यते सब दिशाओंमें है । (चः अक्षणाः पुरं वेदु) । जो अक्षणी मयरी जानता है । (यस्याः देव उच्यते) । जिस नमरिके कारण ही उसको उच्यत कहा जाता है ॥ २८ ॥

(यः वै अक्षणेन आनृतां तां अक्षणाः पुरं वेदु) । जो निम्नवर्षे अनुवर्षे धिर्युक् तत् अक्षणी नमरको जानता है । (तस्यै अक्ष अक्षणाः च चक्षुः प्राणं प्रजां च हृदु) । उसको अक्ष और हृदु देव चक्षुः प्राण और प्रजा देते जाते हैं ॥ २९ ॥

(यस्याः पुरुष उच्यते अक्षणाः पुरं च वेदु) । जिसके कारण (आत्मन्ये) उच्यत कहते हैं तत् अक्षणी मयरीको जो जानता है । (तं अक्षः पुरा चक्षुः च अक्षणि च वै मयः) । अक्षको हृदयस्थानके पूर्व चक्षु ओजता नहीं और न प्राण ओजता है ॥ ३० ॥

(अक्षा-अक्षा नव-द्वारा अक्षोप्या ब्रह्मणां पुरः) । जिसमें आठ चक्र हैं और जो द्वार हैं ऐसी वह अक्षोप्या देवीकी मयरी है (तस्यां हिरण्ययः कोशः ज्योतिषा आनृत् स्वर्गः) । उसमें तैवत्नी कोश है जो तैवसे परिपूर्ण स्वर्ग है ॥ ३१ ॥

(त्रि-अो त्रि-प्रतिष्ठिते तस्मिन् तस्मिन् हिरण्यये कोशः यद्यधर्मात्मन्वत् तदा तद् वि अक्ष विदः विदुः) तीन पण्डिते पुत्र तीन देशमें स्थित ऐसे बड़ी ठेकरी नीलमें आ आस्थान् वह है उसको निम्नवर्षे अक्षणी जानता है ॥ ३२ ॥

(प्रआजमानां हरिणीं, यक्षसा च परिवृतां अक्षराणि हिरण्ययीं पुरं अक्ष आधमिये) । तैवत्नी, दुःख हरण करने वाली, वक्षसे परिपूर्ण कमी पराधित न हुई ऐसी अक्षसमय पुरीमें अक्ष आविष्ट होता है ॥ ३३ ॥

## केन-सूक्तका विचार ।

### (१) किसने अवयव बनाये ?

बहुष मंत्रमें कति बेला : देव कितने हैं वो मनुष्यके अवयव बनानेवाले हैं । वह प्रश्न आता है । इससे पूर्व तथा उत्तर मंत्रोंमें भी देव " सृष्टका अनुसथाय करके कर्म करना चाहिये । " मनुष्य को एहिवाँ किस देवने बनाया है ? इसप्रति प्रश्न सर्वत्र कर्म समझना उचित है । मनुष्यका शरीर बनानेवाले देव एक हैं वा अनेक हैं और किस देवने कीमती भाग अवयव तथा इष्टि बनाया है ? वह प्रश्नोंका उत्तर है । इसी प्रकार आगे भी समझना चाहिये ।

### (२) शान्तैत्रियोँ और मानसिक भावना

#### ऑक्ससधर्ममें प्रश्न ।

मंत्र ७ : मैं सात इतिथि नाम बने हैं । दो कम दो नाक दो ब्रह्म और एक मुख । ये सात कामके इतिथि हैं । नेत्रों अन्तर्गत्त इसको ही १ छत अग्नि २ छत अन्न ३ कम किरण ४ छत अग्नि, ५ छत चिह्न ६ छत प्राण आदि कामोंके वर्णन किया है । सब सब स्वप्नमें वही कर्म कामकर मंत्रका कर्म करना चाहिये । गुहा और मूत्रद्वारके और दो छतक हैं । सब मित्रकर लो घ्राणको छोटे हैं । ये ही इस शरीरकी मनोरंजि दो महाद्वार हैं । मुख पूर्वद्वार है गुहा पश्चिमद्वार है अन्त्रद्वार इनमें छोटे हैं । ( इति एतका मंत्र ३१ देखी )

पयसि - पूरक स्रग्ध ( पुर्-पय ) सक्रमं बहिर्ये वसने बाह्यका बोध कराया है इसप्रति सर्व साधारण प्रतिमात्रका वाक्य होता है, तथापि नवीन वर्णन विशेषतः मनुष्यके शरीरका ही समझना उचित है । बहुषाख और द्विषाख सम्प्रति छत्रं प्रतिमात्रका बोध मंत्र ६ में किया जाकरका ही है इस प्रकार अन्य मंत्रोंमें कितने कोई हानि नहीं है तथापि मंत्र ७ में जो वाक्यका वर्णन है वह मनुष्यकी वाक्यका ही है क्योंकि सब प्राणियोंमें वह वाक्यस्थि वैसी नहीं है केही मनुष्यप्रत्यक्षमें पूर्व निश्चित हो गई है । मंत्र ९, १ में मति अमति आदि अन्तर मनुष्यका ही वर्णन कर रहे हैं । इस प्रकार पयसि सुकनयः सब वर्णन मनुष्यका है तथापि

प्रसवविशेषमें जो मंत्र सामान्य कर्मके बोधक है, वे सामान्य प्राणिमात्रिके विषयमें समझनेमें कोई हानि नहीं है ।

मंत्र आठमें ' स्वर्गपर चक्रेवाका देव कीमती है । वह प्रत्यक्ष कार्यत महावर्ण्य है । वह मंत्र जोकलका मंत्र बतारा है । इस प्रसन्न दृष्टि एक अनुच याव है वह है कि, ' वरकमें जोय बिर जाता है ? ' उत्तर जो स्वर्गमें क्यों जाता है ? और वरकमें क्यों बिराता है ?

मंत्र ९ और १ में अन्तरे और हुरे दोनों पक्षकोंके प्रश्न हैं । १ अग्नि स्वप्न, ब्रह्म लंघि आदि अग्नि, निष्क, अमति ये स्रग्ध हीन अस्त्वा बतारा रहे हैं २ और अग्नि वर्णन देव रक्षि, स्रग्धि, अन्त्रादि मति छत्रि ने कर्म अन्त अस्त्वा बतारा रहे हैं । दोनों स्वर्गमें आठ आठ कर्म हैं और सबका परस्पर संबंध भी है । आठ विचार अन्तरे सब संबंधको जान सकते हैं । तथा—

### (३) अग्नि, प्राण, आरिष्य अमत्य आदिके विषयमें प्रश्न ।

मंत्र ११ में शरीरमें रक्तका प्रवाह कितने संघटित किया है । वह प्रश्न है । प्राण जोय समस्तो है कि शरीरमें कितना मिश्रणका रूप ब्रूयके वाक्वरमि हुंदा है । परंतु इस वर्णन केरहे मंत्रमें वह स्पष्ट ही है । अग्नि का नाम इस वर्णन ' ओहिनी आगः है इत्यका कर्म " ( ओह-नी ) ओहिनी अपने आग के आयेवाका ( आग ) कर्म" देखा होता है । अर्थात् अग्निमें आग है और सबके आग ओह नी है । ओह होमके कारण बतलाया वह आग रंग है । ओह चिकनं है की ओहिनी " ( ओह-नय ) होता है । दो प्रकारका एक होता है एक अस्त्वा याव " अर्थात् आग रंगवाका और दूसरा यज्ज ब्रूताः याव " ताकि केकके समान अग्नि रंगवाका । पहिला छत्र एक है की हृदयके बाहिर अग्नि है और सब शरीरमें अग्नि कीकी और बाह्य और अग्नि रंगका एक है जो शरीरमें प्रसन्न करने और कर्मकी छत्रका करके पयात् इत्यकी और पयसि आता है । इ

प्रकारकी वह आकर्षणकारक चित्राभिरुचि की योजना किसने की है, वह हम यहाँ किया है । किंतु देवताका वह कार्य है ? पाठको सोचिये ।

मंत्र १२ में प्रथम पुरुष है कि 'सुनुष्यमे सोमनं, महत्त, यत् प्रवत्त, रात्रि ह्यन्त और चरित्रम् किञ्च देवताके प्रभावसे दिखाई देता है । इस मंत्रके चरित्र शब्दका अर्थ कई अर्थ 'पांव' ऐसा समझते हैं परन्तु इस मंत्रके पूर्वपर सर्वत्र नह अर्थ नहीं दिखाई देता । क्योंकि रज्जु पांवका समान पहिने मंत्रमें हो चुक्य है । वहाँ सुहृन् गुणधर्मोंका वर्णन जाता है । तथा महिदा, पद्म, ह्यन्त अर्थात् नाभ चरित्रम् ही अर्थ ठीक दिखाई देता है ।

मंत्र १५ में "शम्भु" शब्द "अस्यो" का वाचक है । वह जीवत्वाके ऊपर जो शरीरकृती कथने हैं उनका सर्वत्र दे बोली चरित्रम् नहीं । भिमजगत्प्रतीत्यमें कहा है कि— 'किञ्च प्रकार मनुष्य पुराणे वनोंको छोड़कर नये प्रान्त करता है उसी प्रकार शरीरका सामी आत्मा पुराणे शरीर ज्ञान कर नये शरीर चारण करता है । ( मीला १।१२ )' इसमें शरीरकी तुलना कर्मोंके बाध की है । इस नीत्यके अन्तमें 'वाग्धि' अर्थात् वाघा' नहीं शब्द है, इसलिये पाठाकी वह कल्पना इस अन्वयेवके मंत्रके की हुई है । कई विद्वान् वहाँ इस मंत्रमें 'वाता' का अर्थ 'मित्रता' करते हैं परन्तु परि-अव्यय- (वहनावा) वह किन्ना बता रही है कि वहाँ कर्मोंका पहनावा अर्थ है । इस आत्मापर शरीरकृती कथने किन्ने पहनावे । वह इस प्रत्यक्ष सीमा प्रदर्शक है ।

(४) मन, वाणी, कर्म, मेधा, अद्वा

तथा बाह्य जगत् के  
विषयमें प्रश्न ।

( समष्टि-व्यष्टिका संबंध )

मंत्र १५ एक व्यक्ति के शरीरके सर्वत्रमें विविध प्रश्न को रहे य परन्तु अब मंत्र १६ के अगले विषयमें प्रश्न पूछे जा रहे हैं इसलिये अर्थ मंत्र २१ और २२ में समाज और राष्ट्रके विषयमें भी प्रश्न आ जायगे । उत्तरमें इसलिये वैदिकी शैलीका पता लगता है (१) अत्रात्मके व्यक्ति संबंध (२) अविभूतमें प्राणिकमहिका अर्थात् समाजका संबंध और (३) अविश्ववत्में सर्वत्र अत्युत्थ संबंध है । वे व्यक्ति प्रश्न करता है और चलेते चलेते

सर्वत्र अत्युत्थ ज्ञान बचाकम देता है । वही वैदिकी शैली है । जो इसको नहीं समझते उनके चेतनमें कुछ प्रश्नोंकी सघटि नहीं आती । इसलिये इस शैलीको समझना चाहिये ।

वेच समझत है कि जैसा एक अवयव ह्यन्त पांव आदि शरीरके साथ जुड़ा है, उसी प्रकार एक शरीर समाजके साथ संयुक्त हुआ है और समाज सर्वत्र अत्युत्थे साथ मिश्र है । व्यक्ति समाज और अत्युत्थ के अलग नहीं हो सकते । ह्यन्त पांव आदि अवयव जैसे शरीरमें हैं उसी प्रकार व्यक्ति और अत्युत्थ समाजके साथ जैसे हैं और सब प्राणियोंकी समष्टि सर्वत्र अत्युत्थे संलग्न हो गई है । इसलिये टीवी स्वाभावमें विभक्त एक बंटी ही है । ( चित्र नामके २ में दृष्टपर देखो )

लेखक मंत्रमें आप् वहः अपा शम्भुम्' के चार शब्द कमरा बाधा अत्युत्थे एक दिग्ग अपाका और सावकाक के वाचक हैं तथा व्यक्ति के शरीरमें 'शम्भु' आपाति इच्छा और विच्छा के सूचक हैं । इसलिये इस लेखकमें मंत्रका मान दोनों प्रकार समझना उचित है । वे चार भाग समाज और राष्ट्रके विषयमें भी होत हैं सामाजिक जीवन राष्ट्रीय आपाति अमलाकी इच्छा और कोशिका आपाति वे भाग सामाजिक जीवन में हैं । पाठक इस प्रकार इस मंत्रका भाग समझें ।

मंत्र १७ में चित्र वैयक्तिक वाचका अर्थ है । प्रजातनु अर्थात् संतति का ताता (बागा) दूध न लाय इसलिये शरीरमें बीर्य है वह वात वहाँ स्पष्ट करी है । संतति का अर्थ अत्युत्थ मंत्रांतर्गत आध्यत्मिकता (ले १।११।१) संतति का ताता न होत । वह अत्युत्थ है । वही भाव यहाँ सूचित किया है । वहाँ दूसरी बात सूचित होती है कि बीर्य बीर्य कोनेके सिने नहीं है परन्तु उत्तम संतति करके सिनेही है । इसलिये अत्युत्थताके आदिकमें बीर्यका वाध नहीं करना चाहिये अत्युत्थ अर्थको सुरक्षित करके अत्युत्थ संतति अत्युत्थ करके ही अर्थ करना चाहिये । इसी सूच में अत्युत्थ आकर मंत्र २१ में कहेंगे कि जो मन्त्रकी मन्त्राकी आगता है उसको अर्थ और दूसर लेख अत्युत्थ द्विच शीघ्र जीवन और अत्युत्थ संतति देते हैं । इस मंत्रके अनुसंधानमें इस मंत्रके प्रश्नोंके ज्ञाना चाहिये । अर्थ अर्थात् तुलना सब नहीं होना चाहिये और संतति का कम चलना रहना चाहिये इसका नहीं वरन् अत्युत्थ संतति अत्युत्थ अत्युत्थकी दृष्टि देखी चाहिये इसलिये कुछ सूचना की है । अज्ञानी लोग दीवरा बाध दुर्बलतामें कर देते हैं और उसने अत्युत्थ और











कायदेही भूमि बच, ठेक बाबु, सूख आदि देवताओंमें अनु-  
कूलता स्थापन की जाती है और ज्ञानदेही अपने सुखमय  
विवासक बिने बचकर सहायता की जाती है, अथवा जो ज्ञान  
स्वरूप परब्रह्म है वही सब करता है। ब्रह्म प्रसन्नता सीमें  
स्वास्थ्यमें अन्य इस प्रकार होता है। वहाँ भी ब्रह्म "अपार्थवे  
ज्ञान अपनी परमप्रसादादि अन्य बिने सा सकता है क्योंकि  
केवल ज्ञान आत्मासे निज नहीं रहता है।

दूसरे प्रश्नमें "दैव ज्ञानी विद्याः अर्थात् विद्वत्प्रजा  
परस्पर कमुकूल बचकर किस रीतिसे सुखपूर्व विवास करती है,  
वह माव है। इस विषयमें पूर्व स्थलोंमें लिखाही है। इस प्रसंग  
पर भी ज्ञानसे वह सब होता है वही है।

तीसरे प्रश्नमें पूछा है कि सत् स-स उत्तम ज्ञान  
किससे होता है। जहाँ अर्थात् दुःखोंसे जो ज्ञान अर्थात् सत्त्व  
किना जाता है वहाँ ज्ञान कहते हैं। दुःख सब व्यपत्ति  
हानि अवगति आदिसे बचाव करनेकी क्षमि विद्यते प्राप्त होती।  
है वह प्रश्न है। इसका उत्तर "ज्ञानसे वह क्षमि जाती है"  
वही है। ज्ञानसे सब सब दूर होते हैं, वह बात किसी क्षमिमें  
देवीही जगत्तमें और तत्पुत्रों विवक्षित सब है।

दूसरा स-सत्त किससे होता है। वह जोका प्रश्न है।  
वहाँ "स सत्त" अपर विवेक अर्थसे प्रयुक्त हुआ है।  
आद्यज्ञमें जो साधन है वही सत्त "कहते हैं इसक्षिमे  
क्षि मे ( न करमित) अपने स्वास्थ्यकेवर्ति नहीं होते। अर्थात्  
अपने स्वास्थ्यके वर्ति न होनेका माव जो "स-सत्त" शब्दमें

है वह वहाँ जगत्त है। वह जगत्त केसे सब प्रसन्न रहने  
निम्नाभिहित प्रकार हो जाता है जिससे वह सुख व नि-  
नेका सत्पुत्र प्राप्त होता है। "इसका उत्तर" ज्ञानसे नि-  
नेका सत्पुत्र प्राप्त होता है" वह है। जिससे सब सब  
है, वह अपने स्वास्थ्यके क्षमि गिरता नहीं। वह केसा दृष्ट जगत्त  
सब है वहीही समाजमें और तत्पुत्रों में भी है। अर्थात् ज्ञानके कारण  
एक क्षमिमें ऐसा निवृत्त सत्पुत्र प्राप्त होता है कि सब क्षमि  
क्षमि स्वकीय सत्त्व अवस्थाके विर नहीं सकती। ज्ञान निवृ  
समाज और तत्पुत्रों ज्ञान बरपूर रहेगा वह ज्ञान की क्षमि  
अवगत नहीं हो सकती।

इस प्रश्नमें क्षमि और समाजकी क्षमिसे सब सब  
प्रकारके क्षे हैं। ज्ञानके कारण क्षमिसे क्षमि तत्पुत्रों सब  
ही सब सत्तम अवस्थामें रहते हैं, जगत्तोंका अनुभव होता है  
सबमें दुःख दूर करके सब सत्तम जाता है और ज्ञानके कारण  
क्षमि अपनी क्षमि अवस्थाके गिरते नहीं। वहाँ ज्ञानके कारण  
सब है वह पूर्वोक्त प्रकारही "ज्ञान अपनी परमप्रसादादि"  
का कारण है क्योंकि सब ज्ञान इसमें ही रहता है।

### (७) अधिवैदत ।

इस प्रश्नपरि शिलोपीका विषय आया है इसका समाज  
विचार सत्तम रहित करना चाहिये। मुख्य अन्तरिक्ष ज्ञान  
और मुख्य निवृत्त निवृत्तों होती है। वह क्षमिमें भी है  
और जगत्त भी है। देखिये—

लोक	क्षमिमें सब	तत्पुत्रों इस (विद्य)	जगत्तमें सब
भूः	नामिने प्रसा- सत्त सत्त प्राप्त	जगत्त प्रसा जगत्त और करिगर सत्त (सत्त)	दृष्टी (क्षमि)
भुवः	ज्ञानि और हरण	ज्ञान सत्त सत्तसत्त समिति (सत्त)	अन्तरिक्ष (बाबु) इस
स्वः	सत्त	ज्ञान सत्त	सुनोक्त
अन्य	अन्तरिक्ष	सत्तसत्त	सत्त सत्त (सत्त)



हाम्पेही मुमि नम, तेन वायु, पूर्वं आदि देवताजनें अनु  
कृपा उपारन को जाती है और ज्ञानसेही अपने प्रकृतम  
विनाशके लिये समस्त पदान्ता की जाती है; अथवा जो ज्ञान  
स्वरूप परब्रह्म है वही सब करता है । सब प्रकृत्य तीनों  
स्वानोंमें अपने इस प्रकार होता है । वहां की प्रकृति "कर्मरूपे  
ज्ञान स्वस्या परमस्या आदि अन्य भिन्न जा सकते हैं, क्योंकि  
केवल ज्ञान ज्ञानसे विभक्त नहीं रहता है ।

द्विती प्रश्नमें "तैव ज्ञानी भिन्नः अर्थात् विभक्तवा  
परस्पर अनुकूल स्वस्वरूप विविध रीतिसे प्रकृत्यमें विभक्त करती है,  
वह मात्र है । इस विवरणमें स्व स्वकमें विभक्ती है । इस प्रश्नके  
उत्तर जो ज्ञानसे वह सब होता है वही है ।

तीसरे प्रश्नमें पूछा है कि "सत् स-स" उत्तम का  
मिसे होता है । जहाँ जहाँ इन्होंने जो ज्ञान जहाँ-रूप  
विना जाता है उसकी सत् कहते हैं । इसका सब आपत्ति  
हानि अवस्थिति आदिसे बचान करकेही कथि किसे प्राप्त होती  
है वह प्रश्न है । इसका उत्तर ज्ञानसे वह सत्ति जाती है ।  
वही है । ज्ञानसे सब सत् दूर होते हैं, वह बात किसी व्यक्तिमें  
कैसीही समाजमें और राष्ट्रमें निश्चय सब है ।

चौथरा प्रश्न किसे होता है । वह जोका प्रश्न है ।  
वहां स-सत्त कर्म विवेक ज्ञानसे प्रकृत हुआ है ।  
आकाशमें जो वातावरण है इनको सत्त कहते हैं इसलिये  
कि ये ( स-सत्त ) अपने स्वभावसे पवित्र नहीं होते । अर्थात्  
अपने स्वभावसे पवित्र न होनेका भाव जो "स-सत्त" कर्ममें

है वह वहां जमीन है । वह जन्म केनेसे सब प्रकृत जन्म  
विनाशिकित प्रकार हो जाता है । किन्तु वह पृथक् स-स-  
मेव धर्मरूप प्राप्त होता है । "इसका उत्तर " ज्ञानसे विर-  
मेव धर्मरूप प्राप्त होता है " वह है । किन्तु सब ज्ञान होता  
है, वह अपने स्वभावसे कभी विरता नहीं । वह कैसा एक व्यक्तिमें  
रहता है वैसाही समाजमें और राष्ट्रमें भी है । अर्थात् ज्ञानसे कार्य  
एक व्यक्तिमें ऐसा निश्चय सब प्राप्त होता है कि वह व्यक्ति  
कभी स्वकीय उत्तम अवस्थासे विर नहीं लकती । उस विर  
समाज और राष्ट्रमें ज्ञान भरपूर रहेगा वह समाज भी कभी  
स्वयत्त नहीं हो सकता ।

इस प्रश्नमें व्यक्ति और समाजकी अवस्थिसे सब सत्त  
प्रकारसे कहे हैं । ज्ञानके कारण व्यक्तिमें इतने राष्ट्रमें सब  
ही सब सत्त अवस्थाने रहते हैं, प्रकृतियों का अनुपपन्न होता है  
जबमें इसका दूर करकेही स्वयत्त जाया है और स्वयत्त सत्तमें  
कभी अपनी जेठ अवस्थासे विरते नहीं । वहां ज्ञानस्वरूप सब  
सब है, वह पूर्ण प्रकाश है "ज्ञान ज्ञान परब्रह्म, परब्रह्म"  
का वाक्य है क्योंकि सब ज्ञान इसमें ही रहता है ।

### (७) अथर्ववेद ।

इस प्रश्नमें विवेकीय विवरण का पना है । इसका वेदका  
विचार सूत्र रचित करना चाहिये । मुख्य भेदविषय  
और मुख्य विषय विवेकीय होती है । वह व्यक्तिमें भी है  
और जात में भी है । देखिये—

वेद	व्यक्तिमें रूप	राष्ट्रमें रूप	परममें रूप
		( विद्वत् )	
युः	मानिसे युद्ध- राष्ट्रका प्रवेश योग	जगता प्रजा कभी और करीबर योग	दृष्टी ( जनि )
मुः	जाति और इष्टम	( कर्म ) युद्ध जीवन जागृतमा धर्मिति	अंतरिक्ष ( वायु ) ईश
		( मन्त्र )	
सः	विर	ज्ञानी जीवन	बुद्धि
सर्ग	संस्तुति	योगीन्द्र	कभी मन्त्र ( सर्व )

रोग कम आते हैं। चारित्रिक अभाव से छुट पारमपुत्रोंका सचन होता है और मनकी क्षमतिसे समता रहती है। अर्थात् प्राण-नाम व करनेसे मस्तकमें रोग बीज जैसे के बसे ही रहत हैं। हुए अथ सचन करनेसे रोग-बीज मरते हैं और मनकी अक्षमि से प्राणमयन बढ जाता है। इस कारण रवोंका प्रक्रम मर प्रथ हो जाता है।

हृत्त मन्त्रमें योपीने धिरकी योग्यता बताई है और आर २५की मूत्रा प्रकट की है। (१) विधिपूर्वक प्राणायाम (२) छुट चारित्रिक अभाव सचन और (३) मनकी परिष्कृत छानि से आरोग्यके मूल कारण हैं। योगसाधनकी विद्यताके क्रिये तथा बहुत अघमें पूर्ण सारम्यक क्रिये तथा सर्वथा हमकी आनन्दलक्ष्मी है।

अथवा धिर रवोंका कोट बलानेके क्रिये हृत्कका प्रकथ करना चाहिये। अथवा वह राखलोकका विकास स्थान बनोगा और धिर रवोंकी कोई सीमाही नहीं रहेगी। राखल तथा हमका करनेके क्रिये सत्तर रहते हैं सनका बल भी बढा होता है। इसलिये तथा सत्तरताके काय बलका कारण करके का सीलन करना चाहिये। तथा देवी भावनाका विकास करके छलसी अथवाको समुक्त हलका चाहिये। ऐसी देवी भावनाकी स्थिति होनेके पश्चात् जो अनुभव होगा है वह अथके मंत्रमें लिखा है।

### (१०) सर्वत्र पुरुष ।

अथ मंत्र २६ के अनुसार अनुष्ठान किया जाता है और मंत्र २७ के अनुसार देवी स्तुति । श्री भूकका की जाना है, अथ मंत्र २८ का कम अनुभवमें आना है। "ऊपर जाने विरठा लगी हलानमें वह पुरुष व्यापक है। एका अनुभव आना है। इसके निम्न कोई स्वयं रिक्त नहीं है। परमेश्वरकी शक्तिव्यवस्था इस प्रकार स्थापित होती है। पुरुषमें वसनेके कारण (उत्तिष्ठतः उरुध्वजः पुरुषः) आत्मकी पुरुष कहते हैं। वह पुरुष कैसा बर्बर है देता इस छोरमें भी है। इस कथे धिर हृत्तकी अवेला इसकी छोरमें देलगा तथा प्रथम है। भेष-आत्ममें अथवा छपरकी स्मृत्तात इसी छवि निव बरार की है—

अथ अर्थात् पुनं वृत्तात् अथु अतिष्ठतः हृत्तिका ३१७)  
(अथ हृत्तिका इत्तका हृत्तका अथमें हृत्तः) एतर्था बर्बर  
४ (अथु आ की १)

हृत्त से यह आत्मा प्राप्त नहीं होगा अर्बर हृत्तकेसे ह। प्राप्त होगा। यहाँ अथर्ववेदका कार्य बताया है—

अथ+(अ)र्था (क) = अथर्था ।

अपने अथर्व आत्माका हृत्तकेकी विद्या अमल बता दी है वही अथर्ववेद है। सच अथर्ववेद की यही विद्या है। अथर्ववेद अन्य वेदोंसे प्रथम् और वह केन्द्रकीसे बाहिर क्यों है इसका पता यहाँ कम सज्जा है। मन्त्रों अमला अथर्व अथर्व आत्माका अनुभव नहीं कर सक्ती इसलिये जो विद्या सज्जन व समर्थमें प्रगति करना चाहते हैं उनका क्रिये तथा जो निव पुरुष होते हैं उनकेलिये यह वेद है।

जो यहाँ रहता है उसको यहाँ देखना चाहिये। मूत्रा वह आत्मा पुरिमें रहता है इसलिये इसकी पुरिमें ही हृत्तका चाहिये। इस छोरिका पुरि कहते हैं क्योंकि वह सत्त प्राप्तीसे तथा अमलाका उरवासी छविबीसे परिपूर्ण है। इस पुरिमें जो वमता है उसकी पुरुष कहते हैं। पुरुष किंवा पुरुष में होनों छान्द हैं और रामोंका अर्थ एक ही है।

अथ मंत्र ३१ में इस पुरिका वर्णन आताहै। पठक वर्ण ही पुरिका वर्णन देल सज्जे हैं। इस प्रपुत्री, प्रपुनगी अम रावती, देवनपरी अथर्वव्यवस्था अतिरिक्त अथर्व प्रामनेसे का पठ प्राप्त होता है अथका इस मंत्र २८ में बताया है। प्रपुनम रीको जो अमल प्रपुनसे आता है सनको अर्थात् अमल अनुभव आता है। जो पुरुष अपने आत्मामें करने हृत्तकात्ममें है वह ऊपर नीचे विरठा सच विद्याओंमें पूर्णता व्यपक है। वह किसी स्थानपर नहीं ऐसा एक भी स्थान नहीं है। वह अनुभव सत्तावका बर्बर होता है। अथर्व आत्मको आत्मामें और आत्मामें अथर्वमें वह पुरुष आता है। (हृत्त २६) का हृत्तप्रकार देलगा है वरको लोक मल्ल नहीं रहते और उसने कोई अतिरिक्त कार्य भी नहीं रहता।

इस मन्त्रमें सच छान्द विरठा अथर्व प्रपुन हुआ है। (poured out, connected abundant ornamented) कैय हुआ संवधिग रहा हुआ विरुल सुप्रीमन के सच छपरके बर्बर अर्थ है। (१) अथर्वप्रकार अमल अथर्व बढा हुआ वर्ण और केवला है उरप्रकार आत्मा सज्ज केना है आत्मका कथन मूल "छान्द" वह ही है। छान्दमें वमता विरलगा और कैयना होता है। इ लिये यह अर्थ नहीं है।







शेष जल जाते हैं शारिरिक अणुओं द्वारा परमाणुओंका संचय होता है और मनुषी क्रांतिसे समता रहती है । ज्वरान् प्राण-धाम न करनेसे मरुतकों दोष भी न जेबे के बने ही रहत हैं मृदा अणु सेवन करनेसे रोग-नाशिक बनेते हैं और मनुषी अर्थात्ति से पाषणधम बढ जाता है । इस कारण दशोका पत्रका नष्ट भ्रष्ट हो जाता है ।

इस यंत्रमें बोनीके शिरकी भावना बताई है और आरोग्यकी कृषी प्रकट की है । ( १ ) विधिपूर्वक प्राणधाम ( २ ) सुख शारिरिक अणुका सेवन और ( ३ ) मनुषी परिश्रम प्राप्ति से आरोग्यके मूल कारण हैं । योगसाधनकी विद्यारामे सिद्ध तथा बहुत अंशमें पूर्ण स्वास्थ्यक सिद्धे तथा सर्वदा इनकी आत्म-वृद्धि है ।

अपना शिर दशोका श्रेष्ठ बनानेके सिद्धे हरएकका प्रयत्न करना चाहिये । अन्धधाम नष्ट दाखोका निवारण स्थान बनये और फिर वहीकी कोई आभाही नहीं रहेगी । दाखस तथा हमना करनेके सिद्धे तत्पर रहते हैं उनका बल भी बढा होता है । इसलिये तथा तत्परताके साथ रहना कारण करके लक्ष्मण करना चाहिये । तथा दशोका भावनाका विकास करके एकही भावनाको समुक्त इतना चाहिये । ऐसी दशोका भावनाको स्थिति होके पलायन को अनुभव होता है वह आगम मंत्रमें विद्य है ।

## (१०) सर्वत्र पुरुष ।

अथ मंत्र २६ के अनुसार अनुष्ठान किया जाता है और मंत्र २७ के अनुसार दशोका की स्मृति " की मृदा की माता है, तब मंत्र २८ का पद अनुभवमें आता है । 'ऊपर जाने शिरका तथा स्थानमें वह पुरुष व्यापक है । एता अनुभव आता है । इसके सिवा कोई स्थान रिक्त नहीं है । परमात्माकी सर्वव्यापकता इस प्रकार ज्ञात होती है । पुरीमें बचनेके कारण ( ३३+३४; ३३+३५ = ६७ ) आत्माकी पुरुष कहते हैं । यह पुरुष केला बाहिर दे वेला इस शरीरमें भी है । इस लिये गरिह ईश्वरी अवेला इसकी शरीरमें देखना बडा सुख है । शेष-मन्त्रधर्म अथवा शब्दकी स्मृति इनी स्थिति सिद्ध प्रचार की है—

अथ अर्वाक कृत् एतासु जस्यु अविष्टय इति ( ११४ )  
( अथ इसको इसका ईश्वर जसमें ईश्वर ) शार्वर्य बाह्य

४ ( अथ भा. का १ )

ईश्वर से यह आत्मा प्राप्त नहीं होमा अंतर दृष्टनेस ही प्राप्त होगा तथा अवर्तनेयका कार्य बताया है—

## अथ+(अ)र्धा (क)=अथर्वा ।

अपने अन्तर आत्माको दृष्टनेकी विद्या भिन्नमें बता दी है वही अथर्वादेव है । लक्ष अथर्वादेव की वही विद्या है । अथर्वादेव अन्त वेदोसे प्रत्यक्ष और यह अथर्वादेव बाहिर क्यों है इसका पता वहां लक्ष सफटा है । ईश्वर्य कमता अपने अन्तर आत्माका अनुभव नहीं कर सकती इसलिये की शिष्या सज्जन योगमार्थमें प्रगति करना चाहते हैं उनका सिद्धे तथा जो सिद्ध पुरुष होते हैं उनके सिद्धे वह वेद है ।

जो वहां रहता है उसका वहां देखना चाहिये । वही यह आत्मा पुरीमें रहता है इसलिये इसकी पुरीमें ही ईश्वरता चाहिये । इस शरीरका पुरि कहते हैं क्योंकि वह सत प्रातुओंसे तथा अन्धधाम अथवाकी शक्तिसे परिपूर्ण है । इस पुरीमें आ बसता है उसकी पुरुष कहते हैं । पुरुष किंवा पुरुष वे दोनों शब्द हैं और शैलीका अर्थ एक ही है ।

आगे मंत्र ३१ में इस पुरिका वर्णन आजायगा । पाठक वहां ही पुरिका वर्णन देख सकते हैं । इस मन्त्रपुरी, मन्त्रमयी अथ शार्वरी देवताकी अथवाभक्तमयी आदिश ब्रह्मन् आत्मनेसे जो एक प्राप्त होता है, उसको इस मंत्र २८ में बताया है । मन्त्रमयी की ओर जलन प्रचारसे जानता है उसको सर्वोत्तमत्वका अनुभव आता है । जो पुरुष अपने आत्मामें अपने हृदयागत है वह ऊपर नीचे शिरका सब विद्याओंमें पूर्णता व्यवक है । वह किछी शब्दावर नहीं एता एक ही स्थान नहीं है । वह अनुभव जगत्तककी वही होता है । अपने आपको आत्मामें और आत्मामें अपनेमें वह दृष्टने करता है । ( ईश्वर ६ ) आ इस प्रकार देखता है उसको सोच मग्न नहीं होने और अपने कोई अथर्विष्य कार्य भी नहीं होता ।

इस मंत्रमें एक शब्द विशेष अर्थमें प्रयुक्त हुआ है । ( poured out, connected abundant ornamented ) किंचत हुआ, संवर्धित रहा हुआ किन्तु सुगोचर ने "एक शब्दके वहां अर्थ है ( १ ) शिष्टप्रचार जल शार्वर्यमें बढ़ता हुआ बाह्य और देवता के रूपप्रचार आत्मा-सत्त्व देवता है आत्माका लक्षणा मूल "वाच्य बहन् ही है । एतन्में जलका विद्यमान आर केचना होता है । इत्यतिव दत्त अर्थ नहीं है ।









विषय" ने पाँच गुण एक सूत्रके साथ मिले हुए रहते हैं ( १ ) आश ( २ ) हरण ( ३ ) पुष्टी ( ४ ) वध ( ५ ) अपराधित ये मंत्रके पाँच अर्थ एक पाँच गुणोंके सूक्त हैं। पाठक इस सूक्तको स्मरण रखें और उक्त पाँच गुणोंको अपनेमें स्थिर करने और बढ़ायेका मत करें। जहाँ ने पाँच गुण होये, वहाँ ( विरचय ) बन रहेगा इसमें कोई संशय नहीं है। मन्त्रता जिससे मिलती है वही बन होता है और उक्त पाँच गुणोंके साथ मन्त्रता अभावही रहनेकी।

उक्त पाँच गुणोंसे युक्त, मन्त्र-मन्त्रोंमें मन्त्र प्रविष्ट होता है। पाठक प्रत्यक्ष अनुभव कर सकते हैं कि अपने अन्दर आपक वह मन्त्र हृदयाकाशमें है। जब अपना मन बाहिरके कामकाये छोड़कर एकत्र हो जाता है तब आत्मका ज्ञान होनेकी संभावना होती है और तभी मन्त्रका पता लगना संभव है। क्योंकि वेदमें अन्तर्गत कहा है कि जो पुरुषमें मन्त्रको देखता है वेही परमेष्ठीको जान सकते हैं। (नारद १ : ३०-३५) अर्थात् जो अपने हृदयमें मन्त्रका आवेष्टक अनुभव करते हैं वेही परमेष्ठी आकाशको जान सकते हैं।

### ( १४ ) अयोध्याके मार्गका पता ।

जब पाठकी वहाँतक आपका मार्ग है। आप कदाचित् कभी जाने हैं और आपके स्वागते वह अयोध्या जगती कितनी खुश है इसका विचार कीजिये। इस अयोध्या नगरमें पहुँचतेह। राम राजाके रहने नहीं होगा क्योंकि राजधानीमें जाते ही मन्त्र। राजाकी सुलाकाय नहीं हो सकती। वहाँ रहकर तब वहाँ के सामाजिक अधिकारी सब धर्म आदिकी प्रशंसा प्रशस्त करके महाराजके दरबारमें पहुँचना होता है। इससे वे जानते हैं कि आप बड़ा ही प्रसन्न हैं और वहाँ जलवायु पुरुषोंमें आप के साथी ने ईर्ष्या है और आप हैं। वे आपको जानती जानते नहीं देखते; प्रतिष्ठान इसके कारण आपकी कति कीमती हो रही है इसका विचार कीजिये। और तब संसारियोंको पूर कर एकही धर्मसे अयोध्यानामिक मार्गका आनन्दन कीजिये। फिर आपकी वही 'वध' का दृष्टि होगा कि जिसका वधमें एकबार ईश्वर केना या आपकी मार्गमें है मन्त्रों उगादेनी' दिखाई देनी। वधको मिलकर आप आगे बढ़ जाइये वह देखी आपकी ठीक मार्ग पता देनी। इस प्रकार आप भवितुकी छाँट शीतलमें सुविचारों के साथ मार्ग आनन्दन कीजिये तो वहाँ दूरका मार्ग भी आपके सिने छोटा हो सकता है। जाना है कि आप ऐसाही करें और फिर मूलकर मन्त्रों नहीं।

## ( १५ ) केनसूक्त और केनोपनिषद् ।

केना यह केनसूक्त अथर्ववेदमें है वैशाही उपनिषदोंमें केनोपनिषद् है। दोनोंका प्रारम्भ 'केन' इस पदसे ही हुआ है। वही 'केन' पद वहाँ महत्त्वपूर्ण है इसका अर्थ 'किससे' ऐसा होता है। जब ठरन्यामोंका समग्र इसी पदसे होता है। यह जो संसार हीकाता है वह ( केन ) किसने बनाया और ( केन ) किससे बनाया तथा ( केन ) किसने इसका विचार किया ( केन ) किसकी सहायतासे विचार किया ( केन ) किस साधनसे विचार किया किस कारण विचार किया इसकी जो सोच हा रहा है वह कैसा होता है, इसदि अनेक विचार इस 'केन' सम्बन्धमें हैं।

मनुष्य या देवता है वसुधा देवता जानना चाहता है अनेकसे छोटा बातक भी जब आभवेसे किसीकी ओर देखता है तो वसुधा कारण जानना चाहता है यह भी है बना करता है कहाते जाना वहाँ जानना ऐसे अनेकविध प्रश्न बाधक करता है और हर एक प्रश्नका उत्तर जानना चाहता है। उत्तरदे लयाकाय हुआ तो ही वह सुप्त रहता है। वही तो फिर प्रश्न पूछता ही रहता है। इसी दिग्गुण विज्ञाता मानवके अन्तमें स्वभावतया होता है।

परंतु जब मनुष्य बड़ा होता है तब धनारकी चिन्तामें फँसकर इस विज्ञाताको जो बैठता है और फिर वह ( केन ) किससे वह हुआ ऐसा प्रश्न करना मूल बात है। जब वह प्रश्न करना मूल जाता है तबसे इसको ज्ञान प्राप्त होना भी स्व होता है। क्योंकि ज्ञान तो जिसका रही सीही हा सकता है।

इस विचारों करोकी मनुष्य है परंतु वनमेंसे दिग्गुण कीमती है वसुधा जाना वहाँ वहाँ जाना है विचार सुने जाना है इत्यादि स्वाभाविक उत्पन्न होवेवाले प्रश्नोंको अपने मनमें उत्पन्न होने देते हैं वेही प्रश्न इस केन पदसे वहाँ किसे अने हैं। आचार्यताः मनुष्य जागता है जाना है, बोधा है फिर जानता है और अन्तमें सर जाना है।

वह जीवनमार्गका स्मारक इतना आश्चर्यकारक है कि कोई समनशील मनुष्यके मनमें इस चरमके प्रश्न आयेजाना नहीं रह सकते। परंतु चित्त मनुष्य इसका विचार क ते है। मनन करनेका ही मनुष्य बहकारेगा। जो मनुष्य मनन नहीं करता उसकी मनुष्य कहना असंभव है। अतः इस



विषय" के पाँच गुण एक दूसरेके साथ मिले शुभे रहते हैं ( १ ) प्राज्ञ, ( २ ) हरण ( ३ ) पुष्टी ( ४ ) वश, ( ५ ) अपराधित व संयुक्त पाँच शब्द उक्त पाँच गुणोंके सूचक हैं । पाठक इस शब्दोंका व्याख्यान करें और उक्त पाँच गुणोंको अपनेमें स्थिर करने और बहुरीति प्राप्त करें । जहाँ वे पाँच गुण होते हैं ( हरिण्य ) वन रहेगा इसमें कोई श्रेयही नहीं है । धन्यता जिससे मिलती है वही वन होता है और उक्त पाँच गुणोंके साथ धन्यता अवरुद्ध रहती ।

उक्त पाँच गुणोंसे पुष्ट, प्रज्ञा वशमें प्रज्ञा प्रसिद्ध होता है । पाठक प्रत्यक्ष अनुभव कर सकते हैं कि अपने अन्तर बनावट वह प्रज्ञा हृदयाकाशमें है । जब अपना मन बाहिरके काममें ले छोड़कर एकाग्र हो जाता है तब आत्माका ज्ञान होमेकी उभा बना होती है और तभी प्रज्ञाका प्रकाश प्रकाश प्रकाश है । क्योंकि वेदमें अत्यन्त कहा है कि जो पुरुषमें प्रज्ञाको देखते हैं वेही परमेष्ठीको जान सकते हैं । ( अथर्व १ १०।१० ) अर्थात् जो अपने हृदयमें प्रज्ञाका अन्तर अनुभव करते हैं वेही परमेष्ठी प्रज्ञा पतिसे जान सकते हैं ।

### ( १४ ) अयोध्याके मार्गका प्रस्ता ।

गिरि वासी । बर्हातक आपका मार्ग है । आज बर्हातक जन्मे जाये हैं और आपके स्वागत वह अयोध्या जगती मिलती वृत्त है इसका विचार कीजिये । इस अयोध्या जगतीमें पुरुषोत्तम । राज एवाश्व दृष्टं नहीं जाता, क्योंकि राजवासीमें जाते हैं । वहाँ एवाश्वी सुभाष्य नहीं है । उच्छती । वहाँ रहकर तथा वहाँ के स्वामीक आधिपति सत्य प्रज्ञा आदि की प्रवृत्ति । उच्छादन करके महाराज्यके दरबारमें प्रवृत्ति होता है । इससे आशा है कि आज बर्हातक गिरि मतिसे अपने अन्तर वहाँ जगती वृत्तिसे आप के लक्ष्य के ईर्ष्या है व आपकी जगती चलने वही देते; अविज्ञान इनके काल आपकी शान्ति हो रही है इसका विचार कीजिये और जब आत्माकी वृत्त वर एक ही प्रवृत्तिसे आत्मा । उक्त मार्गका आगमन कीजिये । फिर आपकी वश ' वश ' का दृष्टि होगा कि जिसका दृष्टि एकाग्र है इसे दिया था । अथवा मार्गमें है अथवा जगती । दिव्य है देवी । वशसे विमलकर आर आर वश आर वश है वही आपका ठीक मार्ग प्रकाश देती । इस प्रकार आप अविज्ञानी शान्ति शान्तिमें प्रवृत्ति के वश मार्ग आगमन कीजिये तो वहाँ वृत्त आपका आर प्रवृत्ति होता हो सकता है । आशा है कि आज देवकी वरों और फिर अन्तर मरने नहीं ।

### ( १५ ) केनसूक्त और केनोपनिषद् ।

केन यह केनसूक्त अथर्ववेदमें है वैशाखी उपनिषदोंमें केनोपनिषद् है । दोनोंका प्रारम्भ ' केन ' इस पदसे ही हुआ है । वही ' केन ' पद वहाँ महत्त्वपूर्ण है इसका अर्थ ' किससे ' ऐसा होता है । जब उपनिषदोंमें अथर्व वेदों परसे होता है । वह जो उत्तर होता है वह ( केन ) किससे बनाया और ( केन ) किससे बनाया गया ( केन ) किससे इसका विचार किया ( केन ) किसकी सहायतासे विचार किया ( केन ) किस साधनसे विचार किया किस कारण विचार किया इसका जो वाद हो रहा है वह केन होता है, इत्यादि अनेक विचार इस ' केन ' शब्दमें हैं ।

मनुष्य या देवता है वहाँसे देवता आत्मा चाहता है प्रत्येक केन नामक जी वश आकर्षित किसीकी ओर देवता है तो उसका कारण जानना चाहता है वह कौन है बना करता है कहासे आया वहाँ आत्मा ऐसे अनेकविध प्रश्न नामक करता है और हर एक प्रश्नका उत्तर जानना चाहता है । उत्तरसे समाधान हुआ तो ही वह प्रवृत्त रहता है । वही तो फिर प्रश्न पूछता ही रहता है । इसी विचक्षण जिज्ञासु आत्मके समर्थ स्वभावप्रकाश होता है ।

परंतु जब मनुष्य वश होता है, तब उत्तरकी विन्तामें फँसकर इस जिज्ञासुकी जो बैठता है और फिर वह ( केन ) किससे वह हुआ ऐसा प्रश्न करना भूल जाता है । जब वह प्रश्न करना भूल जाता है तबसे इसकी शान्ति प्राप्त होना भी वश होता है । क्योंकि ज्ञान तो जिज्ञासा रही वहीं ही प्रवृत्त है ।

इस विषयमें वरीही मनुष्य है परंतु इनमेंसे किसीने सोच में कहासे आया वहाँ वहाँ आया है । फिर प्रश्न आया है इत्यादि अब तक उक्त शब्द प्रवृत्तिसे अपने जगती उत्तर होन रहते हैं वेही प्रवृत्ति ' केन ' वरसे वही विवेक मने है । उत्तरप्रश्न मनुष्य आगमन है आगमन है, मोटा है फिर आगमन है और अन्तमें मर जाना है ।

यह अविज्ञानप्रवृत्ति उत्तर जगती आगमनप्रवृत्ति है कि जहाँ अविज्ञानी मनुष्यके समर्थ इस प्रवृत्ति प्रश्न आकर्षित वहाँ रह सकते हैं । परंतु विज्ञान मनुष्य इसका विचार करे । जगती प्रवृत्ति ही मनुष्य प्रवृत्ति है । जो मनुष्य जगती वरता वही मनुष्य वरता प्रवृत्ति है । अतः इस

मनुष्यसमाजमें ये ही मनुष्य हैं जिन्हीं नेम यह प्रश्न करते हैं यह है नेम शास्त्रका महारथ । यह प्रश्न मनुष्यवर्गी मध्य वर्गी किये करीबामा है पाठक इस शास्त्रका महारथ जानें और अपने जीवनपर विचार करना इससे सीखें ।

मैं जिस व्यक्तिसे बोझा हूँ, जिस व्यक्तिसे सौजन्य हूँ  
जिस व्यक्तिसे अनिष्ट रहता हूँ, जिस व्यक्तिसे सम्मरम  
रहा प्रजनन है। रहे हैं, इस संघर्ष सत्ताके आधारमें जीव  
है, यह इसका निमित्त क्यों करता है। यह प्रश्न है जो हर एक  
मनुष्यके समक्ष खड़ा होने चाहिये। परन्तु जिस मनुष्यके अन्त  
काश्चमे ये प्रश्न उठते हैं। पढ़ाई निवार तो चाहिये।

अर्थात् मनुष्य-जाति अर्पित कर्मों से इस मूलककार उत्पन्न हुई है, परंतु अतीतक से मनुष्य उत्पत्ति मात्र ही नहीं बल्कि ये इस प्रत्यक्ष से उत्पत्ति है और कथन दुर्भाग्य प्रत्यक्ष प्रत्यक्ष से उत्पत्ति नहीं रह सकती ।

॥ अस्मान्महमिषीदक वै अग्नये नौर मरते वेनेह ॥

मनुष्य प्राणी की जगहों और मरती और मैं क्यों बचने प्रत्यक्ष  
हूँ और क्यों मर गया हूँ यह विचार करती थी।  
जैसे जीवन के विषयों के प्रत्यक्ष करने के बिना वह इस दुनिया  
में स्पष्ट कर दिया है। मानवजीवन के विषयों के प्रत्यक्ष करने  
हैं यदि इतने ही प्रत्यक्ष मनुष्य करना एक बात है तो  
उनके आत्मज्ञान का आवरण और उनका अविष्ट कर्म की  
ही जायगा।

अतः पाठक इस शिक्षाका—मुद्रिकी जायति करनेवाले हैं।  
केवलतुल्य मन्त्र करें और विघ्ने अंदर भी अस्तुतुल्य जाके  
हैं वह अस्तुतुल्य कथिते विषयमें ज्ञान प्राप्त करने जायें और  
या सार्वक करें। मायवी जीवनकी लक्ष्यता करनेवाले वह  
ज्ञान है। आशा है कि इस केवलतुल्यमें जो वह शिक्षा  
आधुनिक—साधन बगवादे वह आधुनिकमें अन्तर लक्ष्य  
सिद्ध बनें।

(३) सपत्ननाशक धरणांमणि ।

( ऋषिः- अथर्वा । देवता वरुणमणिः, वनस्पतिः, चन्द्रमाः । )

अथ मे वारुणो मुनिः संपन्नधर्मणो वृषा । तेना रमस्तु स्व शत्रून् प्र मुंणीहि दुरस्ततः ॥ १ ॥

प्रेषान्दृणीहि प्र मृणा रंमस्व मणिस्ते अस्तु पुरपुता पुरस्तावि ।

अपारयन्त वरणनं दुषा अम्वाचारमहाराणां श्यःश्वः ॥ २ ॥

अयं मुनिर्बेरणो विश्वमन्त्रः सहस्राद्यो हरिता हिरण्यः ।

स ते घञ्जनपशान् पादयाति पृथुस्थान् दम्भुहि य स्वा द्विपन्ति ॥ ३ ॥

[illegible]

(क्यापू व लुनीदि) इनको बार (अमृत) बाघ वर (आराम) मङ्गल । यह (आम) मणि (वेद) अमृत उपलब्ध  
अमृत मेरे अमृतमणि अमृतमणि अमृतमणि । (देवा अमृत) देव अमृत वर वर मणिमे ही (अमृतमणि व वर अमृतमणि)  
अमृतमणि व देव अमृतमणि व वर अमृतमणि (अमृतमणि) विवाह विवाह व व व

(અર્થ પાત્રો અર્થિ: શિક્ષેત્વક) પણ વાચકશ્રી મન ભોળપદ્ધતિ વાર છે. (વશણક દર્શિત) ત્રણ અર્થકર્તા  
વળુ પોતે દાન વાચેત્વક છે ત્રણ વશણકશ્રી દર્શિતે મુગ છે (ત્રણ મેં પ્રાપ્ત અર્થકર્તા વાચુર્વાર્તિ) ત્રણ મેં મન જીવન  
શીવ ત્રિશુલ છે. (ત્રણ શિક્ષિત) ત્રણ મેં દેવ પાત્રો છે (ગાન પૂર્વ: વશુર્વાર્તિ) વળુ પોતે વળુ પોતે વળુ પોતે વળુ પોતે વળુ પોતે

अप ते कृत्वा विवर्ता पौरुषेयावुप मयात् । अयं त्वा सर्वस्मात् प्रापाद् ब्रह्मो वारयिष्यते ॥४॥

धुरणो भारयाता अय देवो षणस्पति । यस्मो यो अग्निर्वाग्निष्टस्तु देवा अग्नीवरन् ॥ ५ ॥

स्वप्नं सुप्त्वा यदि पश्यसि पापं मृगः सृतिं गतिं बाधादनुशमम् ।

परिहृयाम्भकुनेः पापवादाद्ययं मणिधरजो वारयिष्यते ॥ ६ ॥

अरास्यास्तत्त्वा निर्णीत्या आमिचारादयो मयात् । मृत्योराजीपसो वृषाव् षड्णो वारयिष्यते॥७॥

यन्मे माता यन्मे पिता आतरो यच्च मे स्वा यदेनयक्रमा वृषम् ।

ततो नो वारपिष्यतेऽय देवो वनस्पतिः ॥८॥

धुरगेन प्रव्ययिता आदृष्य मे सर्वं वदः । असुरं रजो अप्यङ्गुस्ते यन्त्रधम तमः ॥ ९ ॥

अरिष्टोऽहमरिष्टगुराणामन्तर्बभूवुः । तस्मात् संरणो मणिः परि पातु दिव्योदितः॥१०॥ (७)

अथ मे वरण उरसि राज्ञो वृषो वनस्पतिः ।

स मे स्रग्वन् वि बाधतामिन्द्रो दस्युनिषासुरान् ॥ ११ ॥

अर्थ—(अर्थ वरजः) वह वरज मणि (ते शिखां कुम्भा) ठेरे चारों ओर फैल हुए हस्तचक्रोंमें (चौदसैवात् सप्तम्) समुत्पन्न अवधे, (अर्थः सा सर्वस्वात् वाचात्) वह तुझे सब प्रकारके वाचोंमें (वाचिभिर्यते) विचार करनेवा ४ ४ ४

(मयं वारमा हेनो भवद्वयः) यह वारमा मणि ववववति है (वारमावति) दुःखनिवारक है। (वा वववः आसिन् आ-  
विः) वा वववो वववः प्रविष्टः दुःख है, (व ववः वववः) वववो वव वववः करते हैं ॥ ५ ॥

(सर्पमुखा) सन्धर्वे मिश्रके समक (वदि पार्श्व वामनि) वदि तु पादके दशन देवता है (वदि अनुहा) सदि वावत्  
वदि मयारन मदिने चर्द वीरे (समुने परिक्रमात्) समुनेके कर्षण पुन समदले श्री (पावकाप्रात्) निम्नाके सम्बन्धे (वर्ग  
वाग्ने मनि वादिम्वते) वद वरक मनि निवारन करता है ॥ १ ॥

(अरहाः शिष्टाः) कृत्स्नवत्, विहाय, (अभिचारान् लभो भवान्) विहाय प्रत्येकं लोके नान्यत्र भवति, (सुखोः) मोक्षोऽर्थो भवति । सुखे भवति नान्यत्र । (रा) राजः । वारविष्णवे । तुते वह वरान् नमि निवारणं करोति ॥ ७ ॥

( वत् मे माता ) को मेरी माता ( वत् मे पिता ) को मेरा पिता ( वत् न मे भ्रातरः ) को मेरे भाई को मेरे ( स्त्रीः ) भगिन तथा ( वत् वत् न भ्रातृ ) इन सब को वचन करते रहे हैं ( वत् ) अब वराहो ( अब वराहसिः देवः ) वह वराहसि देव ( नः ) धारविष्णवे ) हमारा निवारण करेगा ॥ ८ ॥

(देवप्रवचनः समाप्तः) । मेरे कार्यके अथ सत्यय (वचन प्रवर्णितः) वरन यमिके वारन पीठित १५४  
(समर्थनः अथ अगुः) अथकायन प्रवर्णित वचनके प्राप्त हो। (देवप्रवचन सत्य यन्त्र) मे विरुद्ध अथकायनके प्राप्त  
हो १५५

( अहं अरिहः ) मे अवेनाही ( अरिहणु ) अविनाशी वस्तुओं का ज्ञात करनेवाला ( आयुष्माय सर्वेश्वराः ) सर्वोच्च भूत परमात्मा प्रत्यक्ष प्रतीति के पुत्र हैं । ( अयं वरुणः जमि ) वह वरुण जमि ( दिवादिताः मा ररि वानु ) वनस्पति दिवादि मे वेलाका करे ॥ १ ॥

[illegible]





अय ते कृत्यां शित्तुं पौरुषेयावुषं मयात् । अयं त्वा सर्वस्मात् प्रापाद् ब्रह्मो वारयिष्यते ॥४॥

धरुणो धारुमाता अयं देवो वनस्पति । यक्ष्मो यो अग्निभाषिष्टस्तु देवा अग्नीवरन् ॥ ५ ॥

स्वप्नं सुप्त्वा यदि पश्यासि पापं मृत्युः सति यति पापादनुष्ठानम् ।

परिह्वान्मुकुनेः पापवादाद्ययं मुनिर्भिरुणो वारविभ्यते ॥ ६ ॥

अरात्यास्त्वा निर्ऋत्या अभिचारादयो मयात् । मृत्योरोर्जीयसो वधात् धरणो धारयिष्यते॥७॥

यन्मे माता यमे पिता आतरो यन्व मे स्वा यदेनमक्रमा वयम् ।

ततो नो धारयिष्यतेऽय देवो वनस्पतिः ॥८॥

धृष्टेन प्रव्यपिता आर्तुष्या मे सप्तमः । असुते रजो अभ्यगुप्ते बन्धवमं तमः ॥ ९ ॥

अरिष्टोऽहमरिष्टगुरापुंम्मान्तर्बेधकः । तं भायं वरुणो मणिः परि पातु दिशोर्दिशः ॥१०॥ (७)

अयं मे वरुण उरसि राजा देवो वनस्पतिः ।

स मे शत्रून् वि बाधतामिन्द्रो दस्युनिवासुरान् ॥ ११ ॥

नमस्- (नमस् वरना) यह वरना प्रथि (ते विरतां कृष्णां) तेरे चारों ओर फैल हुए कृष्णाम्बोपदे (वैश्वेनाय् मन्त्रात्) मनुष्यवत् मन्त्रे, (नमः एता सर्वकाल् पापात्) यह तुझे सब प्रकार के पापों (नारिष्यते) विनाश करेगा ॥ ४ ॥

(अर्थ बाल्य देवो बचस्पति) यह बाल्य मणि कवचसि देव (चारपाई) दुःखविनाशक है। (वा यमः आत्मिन् आ-  
विः) जो क्षरपद इत्येव शक्ति युक्त है (० में देवा अजीवन्) वसुदेव देव विचारण करते हैं ॥ ५ ॥

(अर्थ) सुखदा) सत्यमें निराके समान (अदि पाप पापसि) यदि तु पापके दान देखा है (अदि अनुदा। सुखि पापदा) यदि ज्ञेयम सत्यमें अर्थ शीते, (पापको परिहृयान्) पापको अर्थम दुःख सत्यमें और (पापपापान्) मित्रोंके शत्रुओंके (अर्थ पापको मणि। पापिष्णवे) वह पाप मणि निवारण करता है ॥ १ ॥

(भारतवा: भिक्षुणा: ) कञ्जमण्डले विनाशते, (अभिचारान् कञ्जो भयान्) विनाशक प्रकोपते और कञ्ज भयते, (पुत्रवा: भोवीकञ्जो भयान्) पुत्रुते भयानक कञ्जते (ता) कञ्ज: कञ्जविपश्यते) तुमे वह वरान मणि निवारण करेना ॥ ५ ॥

(वत् मे माता) को मेरी माता (वत् मे पिता) को मेरा पिता (वत् मे ज्ञाता) को मेरे भाई की मेरे (स्वा:) ज्ञातन तथा (वत् मे दुःखः) दुःख को वाप करते रहे हैं (स्वा:) उक्त वाक्यसे (जब) व्यवस्थित देवः) वह व्यवस्थित देव (नः) वाचस्पत्ये) इत्यादि विचारण करेगा ॥ ८ ॥

( भै सङ्गच्छते प्राणुष्याः ) अने वायुमंडले वायु प्राणुसम ( बरमेन प्रवृत्तिवाः ) वरान यन्त्रिक कारण वीक्षित होकर ( प्राणु रमः अपि वायु ) अण्वकारधम भूकिसम रचानरी प्राप्त हो। ( ये जलधर्म समः वस्तु ) ये विट् अण्वधर्मको प्राप्त हो। ५५

( अहं ब्रह्मः ) मे अविनाशी, ( अविद्युः ) अविनाशी वस्तुओं की मात्र ब्रह्मैवात्म्य ( आत्माप्याम्, सर्वत्रपः ) हीनम् और समस्त पुरुषाणी सर्वत्रे भुज्यते हूँ । ( अथ ब्रह्मः सत्त्वः ) ब्रह्म ब्रह्म सत्ति ( विद्योदिष्टा आ ब्रह्म वस्तु ) समस्त विद्यात्मै वै । ( आ को ॥ १ ॥

[illegible]

इम बिममि वरणमायुष्मान्छतश्रारदः । स मे राष्ट्र च अत्र च पञ्चलोचन मे वपत् ॥ १२ ॥  
यथा वातो वनस्पतीन् वृक्षान् मनस्त्योभसा ।  
एवा सपत्नान् मे मङ्गलि पूर्वीन् आतो उतापरां वरणस्त्वामि रक्षतु ॥ १३ ॥  
यथा वातेन प्रक्षीणा वृक्षाः श्वरे न्यर्पिताः ।  
एवा सपत्नान् मे प्ताहि पूर्वीन् आतो उतापरां वरणस्त्वामि रक्षतु ॥ १४ ॥  
यथा वातेन प्रक्षीणा वृक्षाः श्वरे न्यर्पिताः ।  
एवा सपत्नान् स्व मम प्र क्षिणीहि न्यर्पय पूर्वीन् जातो उतापरां वरणस्त्वामि रक्षतु ॥ १५ ॥  
तांस्त्वं प्र च्छिन्धि वरण पुरा विद्यात् पुरायुषम् । यत्नं पञ्चपु दिप्सन्ति ये चास्व राष्ट्रदिप्सवः ॥ १६ ॥  
यथा श्वो अतिमात्रि यथाऽस्मिन् ऐश्व आहितम् ।  
एवा मे वरणो मभिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु तेजसा मा सद्यश्चतु वक्षसा समनक्तु मा ॥ १७ ॥  
यथा वक्षश्चन्द्रमस्यावित्ये च नृचक्षसि । एवा मे ॥ १८ ॥

अर्थ- ( इमे वरण बिममि ) इस वरण मणिको मैं वारण करता हूँ । बिममि मैं ( वायुप्मात् सतकतया ) दीर्घात् और वक्तु होऊँगा । ( वः मे राष्ट्र च कत्र च ) वह मेरे लिये राष्ट्र और क्षत्रियवक्ता तथा ( वक्ष् आत्मा च मे वपत् ) पञ्चलोचन तथा ओजको मेरे लिये वारण करे ॥ १२ ॥

( यथा वायुः ) कैसा वायु ( ओजसा ) वेपथे ( वृक्षान् वनस्पतीन् ) वृक्षों और वनस्पतियोंके ( मनसि ) लेव देता है ( एवा ) उसी तरह ( मे पूर्वीन् आताम् ) मेरे पक्षिके वने हुए ( वत आपरां वपत्वात् ) और दूसरे अनुजोका ( वरिच ) टोक है । ( वरण्यत्वा अतिमात्रम् ) वरण मणि परो रखा करे ॥ १३ ॥

( यथा वातः अग्निः च ) कैसा वायु और अग्नि मिश्रकर ( वनस्पतीन् वृक्षान् ) वनस्पतियोंको ( प्ताता ) वह छेद देते हैं ( एवा सपत्नान् मे प्ताहि ) इस तरह मेरे अनुजोका नाश करे ॥ १४ ॥

( यथा वातेन प्रक्षीणा वृक्षाः ) मिश्र तरह वायुके क्षीय वृक्ष ( न्यर्पिताः श्वरे ) शिराज हुए छेद जाते हैं ( एवा मे मम सपत्नान् ) उसी तरह मेरे अनुजोंके व वरण मणि ( न्यर्पय ) बिगा दे ॥ १५ ॥

है ( वरण ) वरण मणि । ( मे एन पञ्चपु दिप्सन्ति ) जो इसको पञ्चभीम वातक होते हैं तथा ( ये वपत् राष्ट्र दिप्सवः ) जो इसके राष्ट्रभीमवत् कतु हैं हे वरण मणि । व ( पुरा आयुषः ) आयुके क्षय होनेके पूर्व और ( विद्यात् पुरा ) विदित कनकवे भी पूर्व ( एवं तान् मङ्गलिम् ) व कनको टिङ्ग मिला करे ॥ १६ ॥

( यथा श्वो अतिमात्रि ) कैसा श्व प्रकाशित होता है ( यथा अस्मिन् ऐश्व आहितम् ) कैसा इसमें ऐश्व रखा है, ( एवा वरणो मभिः ) इसी तरह वह वरण मणि ( मे कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु ) मुझे कीर्ति और ऐश्व देवे । ( मा तेजसा वक्षसा ) मुझे तेजके व व क्षुब्ध करे ( मा वक्षसा समनक्तु ) मुझे वक्षसे वक्षसी वनाये ॥ १७ ॥

( यथा वक्षः चन्द्रमाश्च नृचक्षसि आहिते ) कैसा वक्ष चन्द्रमा और हरीवीच आदिसव है ( यथा वक्षः वृजिन्वा अतिव्रजालवेदति ) कैसा वक्ष वृजिन्वा और वातेव अतिवे है ( वक्ष्यान् वक्ष्यते रणे ) कैसा वक्ष वक्ष्याओंके और मुझके लिये फिर हुए रणमें है ( सोमयीच मधुरार्धे ) कैसा वक्ष सोमयीच और मधुरार्धमें है ( अग्निदाह वक्ष्यते ) कैसा वक्ष अग्निदाह और वक्ष्यते है ( वक्ष्यते वक्ष्यते ) कैसा वक्ष वक्ष्यमानों है और वक्ष्यते है ( प्रजापतौ वरयेदिति ) कैसा वक्ष प्रजापत और वरयेदिति है इसी तरहका वक्ष वह वरण मणि मुझ देवे और ऐश्व और वक्षके मुझ करे ॥ १८-१९ ॥

यथा यशः पृथिव्यां यथाऽस्मिन् ज्ञातव्येदसि । एवा मे० ॥ १९ ॥

यथा यशः कुन्त्राग्नौ यथाऽस्मिन्समृते रथे । एवा मे० ॥ २० ॥

यथा यशः सोमपाये मेघपक्वे यथा यशः । एवा मे० ॥ २१ ॥

यथा यशोऽग्निहोत्रे वषट्कारे यथा यशः । एवा मे० ॥ २२ ॥

यथा यशो यस्मान्ने यथाऽस्मिन् यज्ञ आहितम् । एवा मे० ॥ २३ ॥

यथा यशः प्रजापतौ यथाऽस्मिन् परमेष्ठिनि । एवा मे० ॥ २४ ॥

यथा देवेभ्यमृतं यथैष मत्स्यमाहितम् । एवा मे वरुणो मुनिः कीर्तिं भूतिं नि यच्छतु

तेजसा मा ससृज्यु यशसा समनक्तु मा ॥ २५ ॥

(यथा देवेभ्यममृतं) यथा देवोंने अमृत है (यथा एष मत्स्य आहित) यथा देवोंने मत्स्य खाया है (एवा मे वरुणो मुनि) इसी तरह मेरे शिष्ये यह वरुण मुझे कीर्ति और ऐश्वर्य (नि यच्छतु) देने और मुझे (तेजसा ससृज्यु) तन्त्रसे पुनर्त करे और (यशसा मा ससृज्यु) यशसे संतुष्ट करे ॥ २५ ॥

इस सूक्तमें वसुधाप और अपने यशसे अमिषुष्टिके शिष्ये प्रार्थना है । यह सूक्त सुनीय होनेसे अधिक स्वच्छाकरण भी कोई आवश्यकता नहीं है ।

## (४) सर्पविष दूर करना ।

(श्रुतिः— गरुडमान् । देवता तक्षक ।)

(१) अत्रन्त्यस्य प्रथमो रथो देवानामपरो रथो वरुणस्य तृतीय इव । अर्हीनामपमा रथं रुद्राशुमारदयार्पित् ॥ १ ॥

दुर्मः शोचिस्तुरुष्णकर्मस्य चारः पुरुषस्य चारः । रथस्य चारुम् ॥ २ ॥

अथ श्वेत पुदा क्षिति पूर्वेषु चारपण च । उद्वुगमिव दार्हीनामरसं त्रिषु वाकप्रम् ॥ ३ ॥

अरुपयो निमज्जन्मज्ज्य पुनरमयीत् । उद्वुगमिव दार्हीनामरसं विष वाकप्रम् ॥ ४ ॥

[१] अर्थ— (दुर्मस्य प्रथमः रथः) दुर्मस्य पहिला रथ है (देवानो अपरो रथः) देवोंका दूसरा रथ है (वरुणस्य तृतीयः) वरुणस्य तीसरा है । (अर्हीना अपमा रथः) अर्हीना रथ भीम मतिवाका है जो (देवानो अपरो रथः) देवोंका दूसरा रथ है और वाक्यो प्राप्त होता है ॥ १ ॥

(दुर्मः शोचिः तुरुष्णः) दुर्मा आग तुरुष्णसे और (अथ श्वेत वाकप्रपण वाकः) अथवा और वरुणस्य रथ के रथों वरुणों तथा (वरुणस्य वाकप्रम्) रथ—वरुण का वाक्य है स्वतन्त्र रूप से कल्पित है ॥ २ ॥

है (श्वेत) श्वेत वाक्य । (पूर्वेषु अपरो रथः) पूर्व और अंतर (पदा अथ अर्हि) परसे विषका माघ पर । इत्ये [निरे वयं अर्हि] मत्स्यम विष भी वारुण हो काय । (उद्वुगमं वाकप्रम्) मेरे हुए अमले लटकी गिरनेके समान विष यह वाक्य ॥ ३ ॥

(अरुपयो निमज्जन्मज्ज्य) अमरप अथ विषमज्जन्म आर उद्वुगम करके (पुनः अमयीत्) फिर बढ़ने लगी कि इस वरुणस्य विष भी काहीन हो कायया मैला अमले लटकी होती है ॥ ४ ॥

पैदो हान्ति कसुपीलं पैदः शिप्रमुतासितम् । पैदो रंघर्ण्याः शिरः सं विभेद पृदाका ॥ ५ ॥  
 पैदु प्रेहि प्रथमोऽनु स्वा वयमेमसि । अहीन् व्यस्यतात् पृथो येन स्मा वयमेमसि ॥ ६ ॥  
 इद पैदो अजामतेदमेस्य पुरार्यणम् । हुमान्यवैतः पृदाहिभ्यो वाजिनीवतः ॥ ७ ॥  
 सयंत न वि ध्वरव् व्याच न स यमत । अस्मिन् क्षेत्रे द्रावही क्षी च पुमीश्च ताहुमावस्तात्  
 अमास इहाहयो ये अन्ति ये च दूरके । घुनेन हान्ति वृषिक्रमहि वृषेनागतम् ॥ ९ ॥  
 अप्राश्म्येद मेपुजपुमयोः स्वस्य च । इन्द्रो मेऽहिमघायन्तमहि पैदो अरन्धमत ॥ १० ॥ (१०)  
 पैदस्य ममहे वय स्थिरस्य स्थिरचाक्षः । हुमे पृथा पृदाकवः प्रदीप्यत आसते ॥ ११ ॥  
 नृष्टासंधो नृष्टविषा इता इन्द्रैश्च वृषिणा । अधानेन्द्रो क्षमिमा वयम् ॥ १२ ॥  
 इतास्तिरभिराज्यो निषिष्टासः पृदाकवः । दर्वि करिक्त शिप्र दुर्मेष्वसितं बहि ॥ १३ ॥  
 कैरातिका कुमारिका सुका स्तनति मेपुजम् । हिरण्ययीमिरभिर्भिर्गिरिजामुप सानुतु ॥ १४ ॥

अर्थ (पैदः कसुपीलं शिप्रं इत आसितं) पैद कसुपीलं शिप्र और आसित सर्वोको मारता है (पैदः रंघर्ण्याः पृदाकाः शिरः सं विभेद) पैद रंघर्ण्या और पृदाका शिर छीन देता है ॥ ५ ॥

हे (पैद) पैदा (मममः मेहि) तु प्रथम आगे जा (स्वा वयम् वयमेमसि) तेरे पीछे हम बनेंगे । और (वयं वयमेमसि) जिस मार्गमें हम जावगे तब (पृथाः अहीन् वयस्वतात्) मार्गमें सर्वोको दूर कर दें ॥ ६ ॥

(इदं पैदो अजामत) यह पैद हुका है (इदं मस्य परार्यणं) यह इतका परम स्वाव है । (वाजिनीवताः पृदाहिभ्यः अर्धतः) वृषभान् सर्पमाकृष्ट अर्धतः (हमनि पृथा) वे वयमिदं हैं ॥ ७ ॥

(मयम न वि ध्वरव्) सर्वथा बंध मुक्त न रहने और (व्याच न स यमत) क्षमा हुमा बंध न होने । (अस्मिन् क्षेत्रे द्रावही मही) इस पतने की छत है (क्षी च पुमीश्च) एक क्षी और पुमी प्रकृत है । (ताहुमावस्तात्) वे दोनों करीब हो जाय ॥ ८ ॥

(इह मे अन्ति ये वृषके) वही को पाव और वी दूर (अहवः भरतस्य) छाप हैं वे करीब हो जाय । (वृषे इमि वृषिक) इतीहे विपुलेको मारता है और (नायत बहि वृषेण) आगे हुए सर्वोको दृष्टते मारता है ॥ ९ ॥

(अप्राश्म्य स्वस्य च) अप्राश्म्य और स्वस्य इव (वयमोऽहं मेपुजं) दोबोझ वही मयम है । (इन्द्रो मे वयमः अहि) इन्द्र मेरे ऊपर आक्रमण करनेवाले सर्वोको तथा (पैदः अहि वयस्वतात्) पैद सर्वका दूर करता है ॥ १० ॥

(शिप्रश्च स्थिरचाक्षः पैदश्च) शिप्र और अक्ष भयवाले पैदही महिमा (वय मयमे) हम मयम करते हैं जिसके (पृथा) पीछे (हुमे पृदाकवः प्रदीप्यतः आसते) वे पृदाक नायक वय देखते हुये दूर खड़े रहते हैं ॥ ११ ॥

(नृष्टासनाः नृष्टविषाः) जिसके प्राण और विष नष्ट हो चुके हैं (इन्द्रो वयमिमा वृषाः) वा वृषवाही इन्द्रो को है । वयमो (इन्द्रः वयमः) इन्द्रो मारा है और (वयं वयमिमा) हम भी सर्वोको मारते हैं ॥ १२ ॥

(गिराभिराज्य इताः) गिराभी लक्ष्मीवाले सर्व मारे वने (पृदाकवः निषिष्टासः) इराक नाय पीछे बने (दर्वि वरिक्त निद्रं) दर्वि वरिक्त कर श्रेत नायिके चावना तथा (असितं दुर्मेषु बहि) क्षमि चावकी क्षमि मार ॥ १३ ॥

(सुका करानिका कुमारिका) यह भीलोंकी लक्ष्मी (हिरण्ययीमिः अस्मिमा) लोहेकी पुरारोहि (गिरिजामुप) पदाभोहि वि पतर (वयमो वय वयमि) भीषणको कोदती है ॥ १४ ॥

आयमगन्धुवा मिषकृष्णिहापरान्वितः । स वै स्वस्वस्य जन्मन उमयोर्ध्विकस्य च ॥ १५ ॥  
 इन्द्रो मेहिमरघयन्मिश्र परुणम् । वातापक्ष्म्योऽस्मा ॥ १६ ॥  
 इन्द्रो मेहिमरघयस्पृदाकृ च पृदाकम् । स्त्रज तिरभिरार्जि कसणील दधोनिसम् ॥ १७ ॥  
 इन्द्रो जघान प्रथमे अनितारमहे तथे । तेषां ह्य वृक्षमाणानां कः स्विचेयामसुद्रमं ॥ १८ ॥  
 सं हि क्षीर्पाण्यग्रमे पौलिष्ठ इव कर्षरम् । सिन्धोर्मर्ष्य परेत्य ष्यं निजमहोर्विषम् ॥ १९ ॥  
 अहीनां सर्वेषां विष परा वहन्तु सिन्धवः । इतास्तिरभिराज्यो निषिष्टासुः पृदाकवः २० (११)  
 ओपचीनामुह वृष उर्वरीरिब साधुया । नयाम्यर्षीरीयाहं निरैतुं वे विषम् ॥ २१ ॥  
 यदुग्रो धर्मं विष पुंषिण्यामोषधीपु यत् । कान्दाविष कनकक निरैत्वैतुं वे विषम् ॥ २२ ॥  
 ये अमिजा ओपधिजा अहीनां ये अप्सुजा विद्युत आधमूय ।  
 येषां जातानि बहुधा महान्ति तम्यः सुपेम्पो नमसा विधेम ॥ २३ ॥

अर्थ—(अर्थ सुवा प्रधिहा) यह तदन सर्वनासक (अपराधितः मिषकृ) अपराधित केष आता है । (स वै स्वस्वस्य भुविक्क) वह निःस्नेह स्वयं नामक सर्वत्र और विष्णुका हन (जन्मनः जन्मनः) दोनोंका नाश करनेवाला है ॥ १५ ॥  
 (इन्द्रः मित्रा वरुणश्च) इन्द्र सर्व और वरुण [ ये अहि पृदाकुं च कनकवचम् ] ये मेरे पाद आने धर्मोके मारते हैं तथा [ वातापक्ष्म्यो अस्मा ] वायु और परैज्य ये दोनों भी सर्वोके मारते हैं ॥ १६ ॥

पृदाक इषाकन स्वयं तिष्ठितकी कसणील दधोवधि हन सर्वोकी आतिथोके [ इन्द्र कनकवचम् ] इन्द्र मार देता है ॥ १७ ॥

हे (अहे) सर्व ! [ तव प्रथम कमिष्ठारं ] ठीरे पहिले कत्याक को [ इन्द्रा जघान ] इन्द्र नाश करता है । [ तेषां वृक्षमाणानां ] उनके मासको प्राप्त हुआमि [ तेषां कः सिन्धु रसा असत् ] क्या उनका कुछ रस रहता है ? अर्थात् ये सब पूरा मर जाते हैं ॥ १८ ॥

ये सांके [ सीर्पाणि जघाम ] शिरोको पकड़ खं [ इव ] ऐसा [ वीक्षितः सिन्धोः कर्षरं मय्य परेय ] कैवट नदीके पड़े मय्य नामक जलर उहजही कवित आता है उस प्रकार मैं भी [ अहे विष मयिज ] सांपका विष विशेष प्रकारसे मृद करता हूं ॥ १९ ॥

[ येषां अहीनां विषं ] सब शत्रोके विषको [ विष्णव परा वहन्तु ] यदिकां दूर कदा के कार्य । इस तरह लायितभी और इषाकु काटिके सब सर्व मारे गये हैं ॥ २० ॥

[ अहं ओपचीनां उर्वरीः ह्य साधुया वृषे ] मैं औपधोकोके अपमान्य भूमिपर नाश करनेके समान सहजशत्रु प्रथम धर्म और [ अर्षीः ह्य कथामि ] उनको भी नाश करता हूं [ अहे ] सर्व ! [ ये विषे निः देतु ] ठीरा विष दूर हो गये ॥ २१ ॥

(यत् तव अग्नी पुषिण्यां ओपधिपु) ओ विष अहि भूमि और औपधोकोके हैं तथा जी (कान्दाविष कनकक) कर्मोंसे तथा कनकशक्ति विष्णुको समझने होता है, यह ठीरा विष (नि देतु देतु) विष्णुसे बना नाश ॥ २२ ॥

(ये अमिजा ओपधिजा) को अग्निसे कल्पन औपधोकोके परतन (ये अहीनां अप्सुजा) ओ स धर्म जलोके उदर (विषुः आधमूय) को विजलीसे प्रथम हंतो हैं (येषां जातानि बहुधा महान्ति) जिनकी अनेक प्रकारकी आतिथो है (येषां सर्वेषां नमसा विधेम) उन सर्वोको हम नमन करते हैं ॥ २३ ॥

पैद्रो हन्ति कसुणीलं पैद्रः शिञ्जमुतासितम् । पैद्रो रंथर्ण्याः शिरः स विभेद पृदाका ॥ ५ ॥  
 पैद्र प्रेहि प्रथमोऽनु त्वा वृषमेमसि । अहीन् व्युस्पितात् पृषो येन स्मा वृषमेमसि ॥ ६ ॥  
 इद पैद्रो अंजामतुदमस्य परार्यणम् । इमान्येषतः पृदाहिष्णो वाजिनीवतः ॥ ७ ॥  
 सयेत न वि प्यरद् व्यास न स र्यमत् । अस्मिन् क्षेत्रे द्रावही स्त्री च पुमीञ्च तानुभावरसा ॥ ८ ॥  
 अमासं इहाहयो ये अन्ति ये च दुरके । घनेन हन्मि वृषिकमहिं दुष्पेनागतम् ॥ ९ ॥  
 अपास्येहं मेपजमुमयोः स्वजस्य च । इन्द्रो मेऽहिमघायन्तमहिं पैद्रो अरचयत् ॥ १० ॥ (१०)  
 पैद्रस्य ममहे व्यु स्थिरस्य स्थिरवाज्ञः । इमे पृषा पृदाकवः प्रदीप्यत जासते ॥ ११ ॥  
 नृदास्यो नृधर्विषा इता इन्द्रेण वज्रिणा । वृषानेन्द्रो जमिमा वृषम् ॥ १२ ॥  
 इतास्तिरभिराजयो निषिष्टासः पृदाकवः । र्षिं करिक्व शिञ्ज द्रुमेष्वसित अहि ॥ १३ ॥  
 कैरातिका कुमारिका सूका खनति मेपजम् । हिरण्ययीमिरभिभिर्मिरीणामुष साजुः ॥ १४ ॥

अर्थ (पैद्रः कसुणीलं शिञ्जं कत अस्मिन्) पैद्र कसुणीलं शिञ्ज और अस्मिन् सर्वोको मारता है, (पैद्रो रंथर्ण्याः पृदाका शिरः) पैद्र रंथर्ण्या और पृदाका शिर तोड़ देता है ॥ ५ ॥

दे (पैद्र) पैद्रा (प्रथमः अहि) ए वृषम आने का (त्वा वृषु वष एमसि) तेरे पीछे हल चलेगा । आर (वेन वष एमसि) जिस माध्यम इस आयोग का (पच अहीन् प्यस्पितात्) माध्यम सर्वोको दूर कर दे ॥ ६ ॥

(इदं पैद्रो अंजामत) यह पैद्र हुका है (इहं अस्व परार्यणं) यह हलका परम स्वाम है । (वाजिनीवतः पृदाकवः) वलनाम् सर्ववाद्यक अर्थात् (इमामि पृषा) मे पवन्ति ॥ ७ ॥

(ममहे व्यु स्थिरस्य) सर्वोको वंश सुख न छूटे और (पृषा व वमत्) राज्य हुका वद न छोड़े । (अस्मिन् क्षेत्रे द्रावही स्त्री) इन वतने की छत है (स्त्री च पुमान् च) एक स्त्री और दूसरा पुमान है । (वी जमी अरथी) वे दोनों धरतीव ॥ ८ ॥

(इह ये अन्ति ये दुरके) वहां जो पात और जो दूर (अहयः अरसासः) छाप है वे सारहीन हो जावे । (वनेन वृषिक) इतीडे विस्तृतो मारता है और (वाज्य अहि दुरके) आने हुए सर्वोको बन्धने मारता है ॥ ९ ॥

(अपास्येहं वृषमस्य च) अपास्य और वृषम इन (वमयोः इह मेवजं) दोनोंका वही बलव है, (इन्द्रो मे अरचयत् अहिं) इन्द्र मेरे ऊपर आक्रमण करनेवाले सर्वोको तथा (पैद्रो अहिं अरचयत्) पैद्र सर्वोको दूर करता है ॥ १० ॥

(इतास्तिरभिराजयो पैद्रस्य) शिर और अस्मत् पृषाको पैद्रही मारिमा (वमं ममहे) हम ममम करते हैं किन्तु (पृषा) पीछे (इमे पृषाकवः प्रदीप्यतः जासते) ये पृषाक नामक वष दबते हुये दूर खड़े रहते हैं ॥ ११ ॥

(नृदास्यो नृधर्विषा) जिसके ज्ञान और विनम्र हैं जुड़े हैं (इन्द्रेण वज्रिणा दत्ताः) जो वज्रधारी इन्द्रो मार दे । वषा (इन्द्र अवाप्त) इन्द्रने मारा है और (वष जमिम) हम भी सर्वोको मारते हैं ॥ १२ ॥

(इतास्तिरभिराजयो इता) तीर्थों लक्षोकोनने मार मारे वष (पृदाकवः निषिष्टासः) पृदाक लीन पीने वने (वृषि वरिण पित्रं) वृष वरिण और येन आभिदे कोनरा तथा (अस्मिन् क्षेत्रे द्रावही स्त्री) वने जमीन की वृषी मार ॥ १३ ॥

(कैरातिका कुमारिका) वद औलोकी लक्षकी (हिरण्ययीमिः अस्मिन्) लोहेकी नृरागिने (मिरीणामुष) हाथी पिल पर (शिञ्जं कत अस्मिन्) औषधको कोदती है ॥ १४ ॥

आयमगन्धुवा मिषम्पृश्निहापरामितः । स वै स्वजस्य जर्मन उमपोर्नृषिकस्य च ॥१५॥  
 इन्द्रो मेहिमरन्धयन्मिषम्पृश्निहापरामितः । वानापर्वज्योऽमा ॥ १६ ॥  
 इन्द्रो मेहिमरन्धयत्पुदाकुं च पृदाकम् । स्वज तिरभिराजि कसर्णील्ल दक्षोनसिम् ॥ १७ ॥  
 इन्द्रो जघान प्रथम अनितारमहे सर्वं । तेषाम्पृश्निहापरामितः कः स्वितेषामसद्रसः ॥ १८ ॥  
 सं हि क्षीर्पाण्यग्रम पौलिष्ठ इष कर्षरम् । सिन्धोर्मर्ष्य परेत्य र्ष्य निजमर्हैर्विषम् ॥ १९ ॥  
 अहीनां सर्वेषां विष परा वहन्तु सिन्धवः । इवास्तिरभिराजयो निर्विष्टासः पृदाकवः २० (११)  
 ओपधीनामुह वृष उर्ध्वरीरिव साधुया । नयाम्यर्षीतिरिवाहं निरैतुं ते विषम् ॥ २१ ॥  
 यद्वसौ सूर्ये विष पृथिव्यामोपधीयु यत् । कान्दाविष कनकक निरैत्वैतुं ते विषम् ॥ २२ ॥  
 ये अक्षिता औपक्षिता अहीनां ये अप्सुजा चिपुत आवमूषु ।  
 तेषां ज्ञातानि बहुधा महान्ति तेभ्यः सुपेभ्यो नमसा विधेम ॥ २३ ॥

अर्थ—(अर्थ बुझा प्रसिद्ध) यह एक सर्पासक (अपराजित मिषम्) अपराजित वैष जाता है । (सः वै स्वजस्य पृथिव्या) यह मिः संदेह स्वज नामक सर्प का और मिषम्पृश्निहा इव (जर्मनोः जर्मनः) दोषों का नाश करनेवाला है ॥ १५ ॥  
 (इन्द्रः मित्रा वरुणश्च) इन्द्र, सूर्य और वरुण [ये कर्हि पृदाकुं च पृदाकम्] ये मेरे पाव आने सर्पों को मारते हैं तथा [वानापर्वज्योऽमा] वायु और परमेष्ठ्य वे लोगों की सर्वो को मारते हैं ॥ १६ ॥  
 पृदाकुं इवाक्य स्वज तिरभिराजि कसर्णील्ल दक्षोनसि इव सर्पों की अपविषों से [इन्द्रः वरुणश्च] इन्द्र मार देता है ॥ १७ ॥

हे (अहे) सर्प ! [तव प्रथमं जघितार] तैरे पहिले जघातक को [इन्द्रः जघान] इन्द्र जघा करता है । [तेनां पृथमात्मानां] उनके नाशको प्राप्त हुआमि [तेषां कः स्वित् रसाः असत्] क्या उनका कुछ रस रहता है? अर्थात् वे सब पून मर जाते हैं ॥ १८ ॥

ये सर्पों के क्षीर्पाणि कायम ] शिरोको पकड़ लें [इष] मेला [पौलिष्ठः सिन्धवोः कर्षरं मण्य परेत] कैबट बधीने परे मण्य मावतक जाकर सहजही कापित जाता है सब प्रकार के भी [अहे विषं मयि मित्र] तापका विष विषेय प्रकारसे द्रव्य है ॥ १९ ॥

[मर्ष्यो अहीनां विषं] सब सर्पों के विषको [मिषम्पृश्निहा परा वहन्तु] मर्षीय दूर बहा ले जाव । इस तरह प्राविष्टाभी और इवाकु अक्षिते सब सर्प मारे गये हैं ॥ २० ॥

[अहे ओपधीनां उवरीः इष साधुया वृषे] ये औपधीनों के उवरीय मूर्ध पर धाम्य उवनके समान सहजही प्रथम कर्ष और [अक्षिताः इष मयि मित्र] सबको के नाश अतः हे [अहे] सर्प ! [ते विषं मि पेषु] तेरा विष दूर हो गये ॥ २१ ॥

(यत् तव जना पृथिव्या औपक्षियु) जो विष अग्नि भूमि और औपक्षियमि है तथा जो (कान्दाविषं कनकं) कर्मोसे तथा वनराति विषोंमें संगठित होगा है, यह तेरा विष (मि पेषु पेषु) मिष्टेय जला जाव ॥ २२ ॥

(ये अक्षिताः औपक्षिताः) जो अक्षिते जलन औपक्षिणीयं जलन (ये अहीनां अप्सुजाः) जो म पौम जलोमें उपजा (चिपुतः आवमूषु) जो मित्रकी प्रवृत्त होते हैं (तेषां ज्ञातानि बहुधा महान्ति) मित्रकी अजक प्रकारकी जाति २ (तेभ्यः सर्वेभ्यः नमसा विधेम) इन सर्पों को इस नमन करते हैं ॥ २३ ॥



तौदी नामासि कृन्वापृताची नाम वा असि । अघस्पदेन ते वदमा इति विप्रदर्शनम् ॥२९॥  
 अज्ञादज्ञास्य प्याधय इदं परं वर्ज्यम् । अघा विपस्य यत्तेजोऽज्ञाचीन् तदेतु वे ॥ २५ ॥  
 आरे अभूद्विपमरौद्विपे विपमप्रागवि । अग्निर्विपमहेनिर्गृत्सोमो निर्मवीत् ॥  
 दुंघारमन्वगाद्विपमहिरमृत ॥२६॥ (१२)

॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

अर्थ—( तौदी नाम घृताची नाम ) तौदी और घृताची इन नामों की ( कन्वा कसि ) कन्वा कन्वा एक औषधि है ।  
 ( अघः पदेन ते विप्रदर्शनं पद आघदे ) औषधको विष्णुनाक भागके साथ सेरी करके प्राप्त करता हूँ ॥ २५ ॥  
 हे औषधि! तू (अघात् अंगात्) प्रत्येक अवयवको (म प्याधय) विपको बुर कर ( इदं परं वर्ज्यम् ) हरकसे भी हान्य है ।  
 ( विपस्य यत् तेजः ) विपको जो तेज है ( यत् ते अज्ञाचीन् यत् ) वह तेरी सरीरसे नीचे की ओर गिर हो चले ॥२५॥  
 ( विपं आरे अभूत् ) विप बुर हुआ ( विपं अरौत् ) विप चला गया, ( विपे विपे अग्रम् असि ) निम्न विप निम्न  
 कर पहिले बैठा विपरहित हो चुका । ( अरेः विप अग्निः विरपात् ) सर्वका निम्न अग्नि बुर करता है ( अज्ञाः विपमरौ )  
 सोम औषधि विप बुर करती है । ( दुंघार विपं अन्वगात् ) ईश करनेवाले सर्वको विप कृत्वा और वस्त्रे ( अग्निः अन्वत् )  
 बही सर्व मर गया ॥ २६ ॥

वह सर्व स्रुत सर्वविपको बुर करनेके लिये है । इसमें कई नाम औषधियोंके हैं, जो अच्छे वेशोंकी ही बात हो चके हैं ।  
 वह नीचे मरने का विषय है इच्छिते वैद्यविद्या व जालनेवाले कसक कोसों को वेधक व किन्हीं ती ही अन्व है । वेध से  
 वह स्रुत सरल है परंतु कई मंत्र मंत्रावा की दृष्टिसे वेधनेवाले के और कई संकेत वेधकालकी दृष्टिसे कल्पनेवाले हैं । एवं  
 किन्हीं वन विपको विवेचन इस स्रुतकी अधिक कोश करें इसका ही नहीं किया जा सकता है ।

## (५) विजयप्राप्ति ।

(अपि — १-२४ सि-पुडीपाः, २५ ३५ कौशिक, ३६-४१ ब्रह्मा, ४२-५० विहन्वा ।  
 देवता-१ २४ आपः अत्रमाश्र, २५ ३५ विष्णुकर्म, मन्त्रोक्ताः, ३६-५० मन्त्रोक्ताः )  
 (१) इन्द्रस्योन्न स्थात्रस्म सह स्थेद्रस्म वत् स्थात्रस्म धृषिः स्थेन्द्रस्म नृम्भं स्पर् ।  
 जिष्मन् योगाय ब्रह्मयागेर्भो युनन्मि ॥ १ ॥  
 इन्द्रस्वीद्व० । जिष्मन् योगाय अत्रयागेर्भो युनन्मि ॥ २ ॥

अर्थ—( इन्द्रस्य कोशः एक ) आप इन्द्रका वल है ( इन्द्रस्य सहः एक ) आप इन्द्रका अनुपपन्नवत्ता कावर्त्त ही ( इन्द्र-  
 स्य वर्त्त इन्द्र ) आप इन्द्रका वल हा ( इन्द्रस्य वीर्यं एक ) आप इन्द्रका पराक्रम है ( इन्द्रस्य नृम्भं एक ) आप इन्द्रका देवर्त्त ही  
 आपकी ( जिष्मन् योगाय ) विजयप्राप्तिके कार्यमें ( ब्रह्मयागेर्भो व युनन्मि ) ब्रह्मयागमेंके साथ अनुपत्त करता हूँ ॥ १ ॥ ( अत्र-  
 यागेर्भो ) आत्रयमेंके साथ — ( इन्द्रयागाः ) इन्द्रमन्त्रितमेंके साथ ( योगयागेर्भो ) योगाधि औषधियोंके कापिकी वन...  
 ( अन्वयागेर्भो ) अन्वयादि योद्धाओंके साथ अनुपत्त करता हूँ ॥ २-५ ॥



यो व आपोऽपानं वृषमोऽप्यन्तः०।०।०।०॥१८॥

यो व आपोऽपानं हिरेण्यमोऽप्यन्तः०।०।०।०॥१९॥

यो व आपोऽपानमद्रमा पुश्रिर्विम्योऽप्यन्तः०।०।०।०॥२०॥ (१४)

ये व आपोऽपानमयोऽप्यन्तर्धेमुष्पा देवयजनाः ।

इद तानाते सृजामि तान्मास्यवनिधि ।

तैस्तुमृषार्तिसृजामो योऽस्मान्देष्टि य वय द्विष्मः ।

त वधेय त स्तुपीयानेन ब्रह्मणातेन कर्मणानया मेन्या ॥ २१ ॥

(४) यद्वर्णाधीनं ब्रह्मणादत्तं किं योषिमि । आपो मा तस्मात्सर्वस्मादुरितास्यान्तर्धसः ॥ २२ ॥

समुद्र वः प्र हिषोमि यानां योनिमर्षितन । अरिष्टाः सर्वहावतो मा व नः किं चनाममत् ॥ २३ ॥

अरिष्टा आपो अप रिप्रमस्मत् ।

मास्तेनो दुरितं सुप्रतीकाः प्र दुष्पश्य प्र मँळ बहन्तु ॥ २४ ॥

(५) विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा पृथिवीसंश्रितोऽमर्तेजाः ।

पृथिवीमनु वि क्रमेऽह पृथिव्यास्त निर्मेजामो योऽस्मान्देष्टि य वय द्विष्मः ॥

स मा र्जिषीत् प्राणो ब्रह्मातु ॥ २५ ॥

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहान्तरिक्षसंश्रितोऽमर्तेजाः ।

अन्तरिक्षमनु वि क्रमेऽहमन्तरिक्षात् त निर्मेजामो ०।० ॥ २६ ॥

[२] अर्थ ( विद्वान्मात् अर्वाधीन एव किं च ) तीन वर्गों के अन्तरजम्बर जो कुछ ( अमृत अथवा ) अन्न अथवा विद्या है ( तस्मात् सर्वस्मात् दुरितात् ब्रह्मणः ) एक एक पापके ( आपा मा पाप्मन् ) एक मुक्ति वचन ॥ २२ ॥

हे आत्मा ! ( व समुद्रं प्र हिषोमि ) आत्मा है समुद्रके प्रति भक्तता है, आप ( यानां योनिं अपीतव ) अपने स्वमयमन्त्रके प्र से जोओ । ( सपत्नहावतः अरिष्टाः ) सर्वत्र आशुतव आदिदिगि हेतु हुए [ यः किंचन मा वाप्यमत् ] हम सबको किसी तरह रोग न हो ॥ २३ ॥

[ अयः अरिष्टाः ] अन्न विर्षो है इष्ट धेये वह [ अयमात् रिषे अय ] हम सबके शेष पूर करें । [ मुच्यतीह बहन्तु दुरितं यजः प्र ] उत्तम वपुषा अन्न हव सबके पाप आर मक पूर करें । [ दुष्पश्य मँळ प्र प्र बहन्तु ] कुछ स्वयं और सब बड़ाकर पूर लें जायें ॥ २४ ॥

[५] २ [ विष्णो क्रमः असि ] तं विष्णुका आक्रमण जेवा आक्रमण के तका [ सपत्नहा पृथिवीसंश्रितः अमर्तेजाः ] समुद्रा मात्र करमेवात्मा इन्द्रियर तस्मिन् और आदिके समान प्राणी के हैं [ अह पृथिवीं मनु द्विष्म ] इन्द्रियर वाक्म करता है [ त वृषम्याः निर्मेजाम ] हम उरको पृथ्वीके दृष्टा देते हैं [ यः अयमात् देष्टि य वय द्विष्म ] जो हमारा देव करके है और विष्णुका हम हव करते हैं [ यः मा र्जिषीत् ] वह जो वेत न रहे [ तं प्राणो ब्रह्मातु ] उसे प्राण जोह देवे ॥ २५ ॥

२ [ अन्तरिक्षमनु वि क्रमेऽहमन्तरिक्षात् ] अन्तरिक्षमें तस्मिन् और वायुके तस्मिन् कुछ ( अह अन्तरिक्षं मनु द्विष्म ) है अन्तरिक्षमें वाक्म करता है आर ( अन्तरिक्षात् तं विजयाम ) अन्तरिक्षके वसको दृष्टा देते हैं ॥ २६ ॥

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा द्यौर्सेशितः स्वर्गतेजाः । दिवमनु वि क्रमेऽह दिवस्त ०।०॥ २७॥

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा दिक्मोक्षितो मनस्वेजाः । दिशोऽनु वि क्रमेऽह दिग्म्यस्त ०।०॥ २८॥

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा वातसेशितो वाततेजाः । आशा अनु वि क्रमेऽहमाशाम्यस्त ०।०॥ २९॥

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा अग्न्यसेशितः सामतेजाः । अग्नोऽनु वि क्रमेऽहमग्न्यस्त ०।०॥ ३०॥ (१५)

विष्णाः क्रमोऽसि सपत्नहा यज्ञसेशितो धर्मतेजाः । यज्ञमनु वि क्रमेऽह यज्ञात् ०।०॥ ३१॥

विष्णाः क्रमोऽसि सपरन्तर्होपधीशितः सोमतेजाः ।

ओषधीरनु वि क्रमेऽहमापधीम्यस्त ०।०॥ ३२॥

विष्णाः क्रमोऽसि सपत्नहाऽप्सुसेशितो वरुणतेजाः । अपोऽनु वि क्रमेऽहमप्यस्त ०।०॥ ३३॥

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा कृपिसेशितोऽर्धतेजाः । कृपिमनु वि क्रमेऽह कृपास्त ०।०॥ ३४॥

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा प्राणसेशितः पुरुषतेजाः ।

प्राणमनु वि क्रमेऽह प्राणात् त निर्मेजामो योऽहस्मान् द्वेष्टि य वर्य द्विष्म ॥

स मा जीवति त प्राणो जहातु ॥ ३५॥

क्षितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमभ्यर्ष्टा विश्वाः पृतना अरावीः ।

इहमहमाभ्युपायस्यामुपाः पुत्रस्य चर्चस्तेजः प्राणमापुर्नि वैटपापीदमेनमधराध्वं पादयामि ३६

अथ [योः सासता स्वर्गतेजाः] नृ सुकोशमे तेजस्वी और स्वर्ग तेजस्व युक्त दे मे [दिवं अनु वि क्रम] पुनारमे पराक्रम  
करातुं और उक्त पुनारमे उक्त ददा देता हू ॥ २७ ॥ [दिक्मोक्षितः मनस्वेजाः] नृ दिक्मोक्षित तेजस्वी और मनस्वेतेजस्व  
युक्त युक्त दे, मे [दिशः] दिशामे पराक्रम करता हूँ और दिशामे उक्त ददा देता हू ॥ २८ ॥ [वातसेशितः  
सामतेजाः] नृ अग्नियामे तेजस्वी और वातके तेजस्व युक्त हूँ सव उक्त दिक्मोक्षित मे पराक्रम करता हूँ और उक्त वदति  
ददा देता हूँ २९ ॥ [अग्न्यसेशितः सामतेजाः] अग्नये उक्त सामते तेजस्वी और सामके तेजस्व युक्त दे, मे [अपः अनु वि क्रमे]  
अपोऽनु वि क्रमे पराक्रम करता हूँ और अपामे उक्त ददा देता हू ॥ ३० ॥

[ओषधीरनु वि क्रमेऽहमापधीम्यस्त] नृ ओषधीर तेजस्वी नृ ओषधीर तेजस्व युक्त दे मे ओषधीरमे पराक्रम करता हूँ और उक्त  
वदति ददा देता हूँ ३१ ॥ [यज्ञसेशितः धर्मतेजाः] नृ यज्ञसेशित तेजस्वी और यज्ञके तेजस्व युक्त दे मे [यज्ञोऽनु वि क्रम]  
यज्ञमनु वि क्रमे पराक्रम करता हूँ और यज्ञमे उक्त ददा देता हू ॥ ३२ ॥ [अपसेशितः वरुणतेजाः] नृ अपसेशित  
तेजस्वी और अपके तेजस्व युक्त दे मे [अपोऽनु वि क्रम] अपोऽनु वि क्रमे पराक्रम करता हूँ और अपमे उक्त ददा देता हूँ ३३ ॥  
[कृपिसेशितः अर्धतेजाः] नृ कृपिसेशित तेजस्वी और कृपिके तेजस्व युक्त दे मे [कृपि अनु वि क्रमे] कृपिमे पराक्रम कर । हूँ  
कृपिसेशित ददा देता हू ॥ ३४ ॥ [प्राणसेशितः पुरुषतेजाः] नृ प्राणसेशित तेजस्वी और प्राणके तेजस्व युक्त दे मे [प्राणमनु  
वि क्रमे] प्राणमनु वि क्रमे पराक्रम करता हूँ और [प्राणान् वि विभजामः] प्राणन उक्त ददा देता हूँ वि वि विभज ददा देता  
हूँ वि वि विभज ददा देता हूँ वदति वदति ददा देता हू ॥ ३५ ॥

[३] [अस्माकं मित्र] हमारा मित्र हूँ [अस्माकं वातज] हमारा वात ज दे । [विश्वः पुत्रमा अरावीः अरावतः]  
वदति वदति ददा देता हूँ ददा देता हूँ [अह हरे] मे वद [आमुपायमस्य अमुपायः पुत्रस्य] अमुपायः पुत्रस्य ददा देता हूँ  
उक्त ददा देता हूँ [चर्चः तेजः प्राणमापुः मिहवर्चसि] वचन तेजः प्राण और अमुपायः पुत्रस्य ददा देता हूँ और [दद दद  
वदवर्चसि] दद दद ददा देता हूँ और मिहवर्चसि ददा देता हू ॥ ३६ ॥

सर्वस्यावृतमन्त्रावर्ते दक्षिणामन्त्रावृतम् । सा मे द्रविणं यच्छन्तु सा मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥ १३ ॥

दिष्टो ज्योतिष्मतीरम्भार्वते । सा मे द्रविणं यच्छन्तु सा मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥ १८ ॥

सप्तश्रीनीरम्भार्वते । ते मे द्रविणं यच्छन्तु ते मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥ २९ ॥

ब्रह्माम्भार्वते । तन्मे द्रविणं यच्छन्तु तन्मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥ ४० ॥

ब्राह्मणो अम्भार्वते । ते मे द्रविणं यच्छन्तु ते मे ब्राह्मणवर्चसम् ॥ ४१ ॥

(७) य इयं मृगयामहे त वचै स्तृणवामहे । ध्यात्वे परमेष्ठिनो ब्रह्मचार्योपदाम् तम् ॥ ४२ ॥

वैशान्वरस्य देष्टाभ्यां देतिस्त समघाबुभि । इयं स प्लास्वाहुविः समिदेही सहीवसी ॥ ४३ ॥

रात्रो वरुणस्य वृषाग्निः । सोऽमुर्मांमुष्यायुषममुष्याः पुत्रमर्च्ये प्राप्ते वधान ॥ ४४ ॥

य अर्च्यं सुवस्पत आक्षिपति पूषिषीमहे । तस्य नस्त्व सुवस्पते संप्रवच्छ प्रजापत ॥ ४५ ॥

अपो दिव्या अवापिषु रसेन समपुष्महि । परम्भानमु आगमं त मा स संज वर्यसा ॥ ४६ ॥

जर्च- [सर्वस्य वामवर्ते] सर्वस्य वामवर्तन अर्चोत् [दक्षिणी अम्भार्वत्] दक्षिण विष्टामे गम्य है तस्ये ताम [अनु वामवर्ते] अनुवृत्त होकर जाता है । [सा मे द्रविणं यच्छन्तु] वह मुझे वन देवे । [सा मे ब्राह्मणवर्चसं] वह मुझे ब्राह्मणवर्च देवे ॥ १३ ॥

[द्विजोत्पिष्टो] द्विजः अम्भार्वते । तेजोमुक्त विष्टाभ्यां मे गमन करता है । [ते] [सा] मुझे वन और ब्राह्मणवर्च देवे ॥ १८ ॥

[सप्तश्रीनीर अम्भार्वते] सप्त श्रिणीके अनुवृत्त गमन करता है । [ते] [मे] मुझे वन और ब्राह्मणवर्च देवे ॥ २९ ॥

[ब्रह्म अम्भार्वते] ब्रह्मके अनुवृत्त मे गमन करता है । [ते] [मे] मुझे वन और ब्राह्मणवर्च देवे ॥ ४० ॥

[ब्राह्मणो अम्भार्वते] ब्राह्मणके अनुवृत्त मे गमन करता है । [ते] [मे] मुझे वन और ब्राह्मणवर्च देवे ॥ ४१ ॥

[य इयं मृगयामहे] मिते इयं मृगयामहे । [त वचै स्तृणवामहे] वचै वचोहे-वचिवर्चो वचै वचत है और [परमेष्ठिनो] परमेश्वर की विष्टाके ईष्टाभ्यां । [देष्टाभ्यां] वचै वचोहे-वचिवर्चो वचै वचत है । [सा प्लास्वाहुविः] प्लास्वाहुविः वचोहे-वचिवर्चो वचै वचत है । [समिदेही] समिदेही वचोहे-वचिवर्चो वचै वचत है । [सहीवसी] सहीवसी वचोहे-वचिवर्चो वचै वचत है ॥ ४२ ॥

[रात्रो वरुणस्य वृषाग्निः] रात्रो वरुणस्य वृषाग्निः । [सोऽमुर्मांमुष्यायुषममुष्याः] सोऽमुर्मांमुष्यायुषममुष्याः । [पुत्रमर्च्ये प्राप्ते वधान] पुत्रमर्च्ये प्राप्ते वधान । [य अर्च्यं सुवस्पत आक्षिपति] य अर्च्यं सुवस्पत आक्षिपति । [पूषिषीमहे] पूषिषीमहे । [तस्य नस्त्व सुवस्पते] तस्य नस्त्व सुवस्पते । [संप्रवच्छ प्रजापत] संप्रवच्छ प्रजापत । [य अपो दिव्या अवापिषु रसेन] य अपो दिव्या अवापिषु रसेन । [समपुष्महि] समपुष्महि । [परम्भानमु आगमं] परम्भानमु आगमं । [त मा स संज वर्यसा] त मा स संज वर्यसा ॥ ४३ ॥

[य इयं मृगयामहे] मिते इयं मृगयामहे । [त वचै स्तृणवामहे] वचै वचोहे-वचिवर्चो वचै वचत है और [परमेष्ठिनो] परमेश्वर की विष्टाके ईष्टाभ्यां । [देष्टाभ्यां] वचै वचोहे-वचिवर्चो वचै वचत है । [सा प्लास्वाहुविः] प्लास्वाहुविः वचोहे-वचिवर्चो वचै वचत है । [समिदेही] समिदेही वचोहे-वचिवर्चो वचै वचत है । [सहीवसी] सहीवसी वचोहे-वचिवर्चो वचै वचत है ॥ ४२ ॥

[रात्रो वरुणस्य वृषाग्निः] रात्रो वरुणस्य वृषाग्निः । [सोऽमुर्मांमुष्यायुषममुष्याः] सोऽमुर्मांमुष्यायुषममुष्याः । [पुत्रमर्च्ये प्राप्ते वधान] पुत्रमर्च्ये प्राप्ते वधान । [य अर्च्यं सुवस्पत आक्षिपति] य अर्च्यं सुवस्पत आक्षिपति । [पूषिषीमहे] पूषिषीमहे । [तस्य नस्त्व सुवस्पते] तस्य नस्त्व सुवस्पते । [संप्रवच्छ प्रजापत] संप्रवच्छ प्रजापत । [य अपो दिव्या अवापिषु रसेन] य अपो दिव्या अवापिषु रसेन । [समपुष्महि] समपुष्महि । [परम्भानमु आगमं] परम्भानमु आगमं । [त मा स संज वर्यसा] त मा स संज वर्यसा ॥ ४३ ॥

[य इयं मृगयामहे] मिते इयं मृगयामहे । [त वचै स्तृणवामहे] वचै वचोहे-वचिवर्चो वचै वचत है और [परमेष्ठिनो] परमेश्वर की विष्टाके ईष्टाभ्यां । [देष्टाभ्यां] वचै वचोहे-वचिवर्चो वचै वचत है । [सा प्लास्वाहुविः] प्लास्वाहुविः वचोहे-वचिवर्चो वचै वचत है । [समिदेही] समिदेही वचोहे-वचिवर्चो वचै वचत है । [सहीवसी] सहीवसी वचोहे-वचिवर्चो वचै वचत है ॥ ४२ ॥

[रात्रो वरुणस्य वृषाग्निः] रात्रो वरुणस्य वृषाग्निः । [सोऽमुर्मांमुष्यायुषममुष्याः] सोऽमुर्मांमुष्यायुषममुष्याः । [पुत्रमर्च्ये प्राप्ते वधान] पुत्रमर्च्ये प्राप्ते वधान । [य अर्च्यं सुवस्पत आक्षिपति] य अर्च्यं सुवस्पत आक्षिपति । [पूषिषीमहे] पूषिषीमहे । [तस्य नस्त्व सुवस्पते] तस्य नस्त्व सुवस्पते । [संप्रवच्छ प्रजापत] संप्रवच्छ प्रजापत । [य अपो दिव्या अवापिषु रसेन] य अपो दिव्या अवापिषु रसेन । [समपुष्महि] समपुष्महि । [परम्भानमु आगमं] परम्भानमु आगमं । [त मा स संज वर्यसा] त मा स संज वर्यसा ॥ ४३ ॥

स मग्निं वर्षसा सृज्य सं प्रजया समायुषा ।

विष्णुर्मे अस्म देवा इन्द्रो विधातु सह अग्निभिः ॥ ४७ ॥

वदसि अथ मिथुना क्षपातो यद्वाचस्तप अनयन्त रेमाः ।

मन्योर्मनसाः क्षरव्याङ्गं स्थापते या सर्वा विष्णु इदमे यातुधानान् ॥ ४८ ॥

परां शृणीहि सर्वसा यातुधानान् परांश्चे रक्षो हरसा शृणीहि ।

परांश्चिषा मूर्देवां क्षृणीहि परांस्तपः शोभुषतः शृणीहि ॥ ४९ ॥

क्षपामस्मै वज्रं प्र हरामि चतुर्मूर्तिं क्षीरमिषां विद्वान् ।

सो अस्याज्ञानिं प्र शृणातु सर्वा तन्मै देवा अनु जानन्तु विद्वे ॥ ५० ॥ (१७)

अर्थ—हे अग्ने ! [ मा वर्षसा सृज्य ] तुझे तेजसे युक्त कर [ प्रजया समायुषा स ] प्रजा और आयुसे युक्त कर । [ विष्णु मग्ने मिथुः ] देवता मेरे इस आयुको जाने । [ इन्द्रः अग्निभिः सह विधातु ] इन्द्र ऋषियों के साथ इस विषयको जाने ॥ ४७ ॥

हे अग्ने ! [ वज्रं अथ विष्णुना क्षपाता ] आज जो सिद्धकर याकी देते हैं [ वज्रं रेमाः वाचा सह अनयन्त ] जो वक्ता वर्षाका रीति करते हैं [ या मन्योः मनसाः क्षरव्याङ्गं स्थापते ] जो कोबध मनकी दिवा होनी है [ या यातुधानान् इदमे विद्वे ] वक्ता इन्होंने इदमेतका नेत्र कर ॥ ४८ ॥

[ यातुधानान् परां शृणीहि ] तुझीको अपने लपके हुए अगा, हे अग्ने ! [ रक्षो हरसा परां शृणीहि ] एतकी अपने वक्ता हुए कर । [ क्षीरमिषां मूर्देवां परां शृणीहि ] अपनी उन जाने मुझीके हुए वज्र और [ वज्रं प्र हरामि ] चतुर्भुषतः परां शृणीहि ] दूसरीके आनीतर तुम होनीवालीकी शोक करते हुए हुए अनाको ॥ ४९ ॥

[ विद्वान् ] मैं वह सब जानता हुआ [ अस्मै क्षीरमिषां ] इसका परां तोबनेके लिये [ अपनी चतुर्भुषतः वज्रं प्र हरामि ] वक्ता मैं और बात करनवाके वज्रकी केकता हूँ । [ सो अस्याज्ञानिं अगावि प्रशृणोतु ] वह इतके सब अग्नेकी भद्रे [ तपः शृणीहि ] हे अग्ने ! वज्र मेरा कर्म सब इन अनुकूलताके साथ जाने ॥ ५० ॥

### शत्रुके पराजयके लिये यत्न ।

शत्रुका पराजय करके लिये ( जोय ) वारिदिक वन ( वहा ) शत्रुके हमके वरन करकेवा सामय्य ( वन ) केव  
 तथा सामय्य प्रकारके वन, ( कीर्त ) वराकम, कीर्तकी कविता ( मुन्ने ) मानकी अनुकूलता सामय्य । इनके सामय्य अवरव है ।  
 शत्रु [ विष्णुना ] विजय प्राप्त करकेवा यातुर्मनमी कोमपा बैठी करनी है इसका उपाय शत्रुवादिसे धन अन्न वन इत्यादि  
 भी अन्नपर विष्णुनाम में मन्त्रका हुई तो शत्रु भी सिद्ध नहीं हो सकती । इसीके साथ 'अन्ननाम' अर्थात् शत्रुसे छिन्न  
 होनेकी शोका अन्नपर आदिहै । इसी तरह कान्तनाम कान्त बुद्धिमें उपायतासे करनेसे शत्रुके वज्र आदि रचना  
 शिथिल करनेकी प्राप्तिवा आकरवक है । इसमें व शत्रु अरविर्ध्व इतके साथ कोय होता आदिहै, इससे अभावमें शेष  
 शत्रुके कोई वशीकरण सिद्ध नहीं हो सकती । सोमनाम का वज्रनाम है अथविशेष शत्रुके साथ युद्ध पित्रेनाम अग्ने  
 नाम बलकी हो अग्ने तो शत्रुको शत्रु आरोग्यवशत करके लिये इस विधा के आरविशोयका तथा अन्ननाम हो वक्ता ६ । इसी  
 तरह वज्रनाम अर्थात् वारिदिक वन बलनामके लिये भी इस अथविशेषकी अर्थात् अवरवकता है ।

अथनाम का नाम है जलनाम । जलना तो मानवा जीवनेके साथ तथा अन्ननाम है । इनकेव विजयवशिक लिये  
 वक्ता में शोय अर्थात् प्रकार होता आदिहै । जल व मिता तो पराजय होकेमें कोई देवी न लगेगी ।

संक्षेपसे प्रथमके १ मंत्रोंमें विद्यवापसिके लिये कर्त्तव्य आग्रहक निदर्शनी सूचना इस तरह दी है ।

मंत्र ७८९१ तक कहा है कि यो जलसिद्धि प्राप्त करने के लिए १०८ बार मंत्र का उच्चारण करना चाहिए।

संज्ञ १५ से २४ तक कहा है कि जलसे सब लीर सब आदिपी निर्मिता सिद्ध होती है। लहसुने करीके और मने मक बुर होते हैं। मनेके मर्कसे कागदाय होता है और लीरके मर्कसे रोम होते हैं। जलप्रयोगसे ये सब सोम बुर होते हैं और समुद्र निर्देश होता है और विषय प्राप्त करनेमें समर्थ होता है। जबतक लीर और मनेमें सोम होने तकलक विषय सा नहीं हो सकता और प्राप्त होनेपर स्थिर भी नहीं रह सकता।

कठुने इतना आदिने और इन स्थानों के कठुनेहीत करना आदिने यह आसत २५ से ३५ तक मंत्रीक है।  
इतना करभर सिद्ध होना और ऐसा पतिन औरही कठुने में बांधकर कसमें पाँचके तक दया सज्जन है यह मत्त ३५ के मंत्रमें बड़ी है।

सूर्य से उत्पन्न शक्ति विद्युत् का रश्मि है जो कि हमें गर्मी तथा प्रकाश देती है।

[illegible]

मन्त्री मन्त्रालय अपने राज्यमें कोई रिश्वतको न ले। यह वाणीय सम्पन्नद्वारा सुकुके राज्यमें पाइ होइ रहे। जिनके विच्छेद इस तरह करना और सुखको ही रक्षा करनी चाहिये। यह इस सुखद्वारा संश्लेषके आशय है।

(६) मणिश्चन्धन ।

(ऋषिः-बृहस्पतिः । देवता-फाल्गुनिः, वनस्पतिः, ३ आपः)

अरात्रीयोर्ग्रीवस्य बुधदो द्विपुतः शिरः । अपि बुधपाम्योर्गसा ॥ १ ॥

वर्त्म मन्त्रं मयं मणिः फलं ज्ञातः करिष्यति । पूर्णो मयेन मार्गमद्रसेन सह वपि सा ॥ २ ॥

अर्थ ( जटातीयोः आमुष्मन् ) सन्तु नेरी ( बुद्धिः विषयः शिरः ) तुल्य हृदयी नीर हेतु करवेनालोका धिर [ मोक्ष  
सिद्धिः ] वक्ष्ये मै तावता । ॥ १ ॥

[ यम्यन्त्रात् प्राणः जलममि । ] जलममि यथा ह्रस्वा यद्ममि [ यद्मो यद्मं करिष्यति ] मेरे जिने कवच केटी रक्षा ज्ञेय ।  
[ मध्येन रमेन चर्मसा सद्म पूर्णः ] मय्यन्त्र-साधनं एव और कवचें कुछ होमके कारण पूर्ण कर्मों यद्ममि [ या जालमय ] मेरे  
यत्न श्रमों से ॥ ३ ॥

यत् त्वां शिक्षाः पराऽवधीत् तथा हस्तैर्न वास्वा ।

आपस्त्वा तस्माज्जीवलाः पुनन्तु श्वर्षयः श्वर्षिम् ॥ ३ ॥

शिरण्यज्ञगणं मणिः भ्रष्टां यज्ञं मद्यो दधत् । गृहे वसन्तोऽतिथिः ॥ ४ ॥

तस्मै पुत्रं सुरां मज्जर्णमभं क्षदामहे ।

स नः पितृव्यं पुत्रेभ्यः श्रेयः श्रेयमभिक्षित्तु भूयोभूयः श्वःश्वो दुयेभ्यो मज्जिरेत्यं ॥ ५ ॥

यमर्षभाद् बृहस्पतिर्मीणि फालं घृतञ्चुत्तमुग्रं खदिरमोक्षसे ।

तमुग्रि प्रत्यंगुञ्जतु सो अस्मै दृढं आन्य भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विपुतो व्हि ॥ ६ ॥

यमर्षभाद् बृहस्पतिर्मीणि फालं घृतञ्चुत्तमुग्रं खदिरमोक्षसे । तमिद्दः प्रत्यंगुञ्जतौक्षसं वीर्यायि कम् ।

सो अस्मै वलामिद् दृढं भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विपुता व्हि ॥ ७ ॥

यमर्षभाद् बृहस्पतिर्मीणि फालं घृतञ्चुत्तमुग्रं खदिरमोक्षसे ।

त सोमः प्रत्यंगुञ्जतु मुहे भोत्राय चक्षसे ।

सो अस्मै वर्षं इद् दृढं भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विपुतो व्हि ॥ ८ ॥

यमर्षभाद् बृहस्पतिर्मीणि फालं घृतञ्चुत्तमुग्रं खदिरमोक्षसे ।

तं धर्मः प्रत्यंगुञ्जतु तनुमा अंजयद् दिक्षः ।

सो अस्मै भूतिमिद् दृढं भूयोभूयः श्वःश्वस्तेन त्वं द्विपुतो व्हि ॥ ९ ॥

वर्षं [ यह त्वा शिक्षा तथा ] जो तुझे पुत्रक तथा [ वास्वा हस्तैः परा अवधीत् ] कक्षपुत्रक हाथके मारता है [ आपस्त्वा ] जीवलाः [ जीवलाः ] जीवने देवेगळे छुट्ठा जल [ घृणि त्वा पुनन्तु ] तुझ पातक बीरको यमित्र वधने ॥ ३ ॥

[ वर्षं मणिः ] यह मणि [ शिरण्यज्ञगणं ] सुवर्णमाला [ भ्रष्टां यज्ञं मद्यो दधत् ] भ्रष्टा मणि, यज्ञ भार महत्पद्म बारन भे और यह [ सः पुत्रेभ्यः वसतु ] हमारे वरमें पुत्रवीन कैसा होकर रहे ॥ ४ ॥

[ तस्मै पुत्रं सुरां मज्जर्णमभं क्षदामहे ] हमके भित्ति की पक्षि जल चक्ष और जल हार देते हैं [ सः वाः पुत्रेभ्यः पितरा इ ] वह हमें कैसा पितृ पुत्रोको देता है कैस [ श्रेयः श्रेयमभिक्षित्तु ] व म कथनाय देवे । यह [ मज्जः दुयेभ्यः पुरव ] मणि देवोंके कपडे यहाँ वाकर [ भूयोभूयः श्वः-श्वः ] बारबार और प्रतिपिब हमें छुका देवे ॥ ५ ॥

[ यमर्षं घृतञ्चुत्तं खदिरं यमर्षि ] यामर्षे यत्पक्ष यमि भारप्रा कादिरप्य वनाया और बीरता बहायेका मणि है [ तं भोत्रे वृहस्पतिः वलामि ] जिसकी वलामिदि मणि बृहस्पतिन यह मणि वना है [ सः मणिः वसति अमुञ्जतु ] वडे मणि मुने से, यमर कपडे [ सः अस्मै भूयो-भूयः श्वः-श्वः आन्य भूयः ] यह हस्तके भित्ति प्रतिपिब बारबार पी देवे । ( त्वं त्वं द्विपुतो व्हि ) वडे तू कनुपेकी बार अवधी विधाय कर ॥ ६ ॥

[ तं ] जिसपर बृहस्पतिने यमि वना है [ त इन्द्रः प्रति अमुञ्जतु ] उमे इन्द्र मुने देवे और [ भोत्रे वृहस्पतिः वलामि ] यम वीर और छुका प्राप्त कनाये । [ सः अस्मै वर्षं इद् दृढं ] यह वलका वन देवे ॥ ७ ॥

[ तं ] जिसपर .. [ तं भोत्रा वसति अमुञ्जतु ] उस सोम मुने से [ यमे भोत्राय चक्षसे ] महत्पद्म भन और पक्षि से । वडे [ वर्षः दृढं ] यह वर्ष देवे ॥ ८ ॥ [ तं ] जिसपर [ तं सूत्रं प्रति अमुञ्जतु ] उमे सूत्र देवे [ तनु इमा दिक्षः वलामि ] और कपडे यह वर दिक्षाओंको जीते [ सः अस्मै भूति इद् दृढं ] यह हस्तके भित्ति देवर्ष देवे ॥ ९ ॥



यमर्षन्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाञ्चवे ।

त विभ्रत्तन्त्रमा मणिमसुराणां पुरोऽज्यद् दानवानां हिरण्ययीः ॥

सो अंसै धियमिद् दुहे भूयोभूयः शःशस्तेन त्वं द्विपतो जहि ॥ १० ॥ ( १८ )

यमर्षन्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाञ्चवे ।

सो अंसै बाजिनं दुहे भूयोभूयः शःशस्तेन त्वं द्विपतो जहि ॥ ११ ॥

यमर्षन्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाञ्चवे । सेनेमा मणिना कृपिमणिनामि रक्षतः ।

त धियम्यो महो दुहे भूयोभूयः शःशस्तेन त्वं द्विपतो जहि ॥ १२ ॥

यमर्षन्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाञ्चवे । त विभ्रत् सविता मणिं सेनेदमज्यद् सः ।

सो अंसै सूनता दुहे भूयोभूयः शःशस्तेन त्वं द्विपता जहि ॥ १३ ॥

यमर्षन्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाञ्चवे । तमापो विभ्रतीर्मणिं सर्वा बाहुन्स्वर्षिताः ।

स आभ्योऽमृतमिद् दुहे भूयोभूयःशः शस्तेन त्वं द्विपता जहि ॥ १४ ॥

यमर्षन्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाञ्चवे । तं राजा वरुणो मणिं प्रस्यमुञ्चत सुमर्षद् ।

सो अंसै सत्यमिद् दुहे भूयोभूयः शःशस्तेन त्वं द्विपतो जहि ॥ १५ ॥

यमर्षन्नाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिमाञ्चवे । त देवा विभ्रतो मणिं सर्वाहोकाद् बुवाज्ज्ववद् ।

स एभ्यो जितिमिद् दुहे भूयोभूयः शःशस्तेन त्वं द्विपतो जहि ॥ १६ ॥

अर्थ [ य ] [ तं मणिं विभ्रत् चन्द्रमा ] उक्त मणिको धारण करिवाला चन्द्रमा [ अमृतम्यं दानवानां हिरण्ययी उरः ] अमृत और दानवोंकी सुवर्ण-पुष्प वर्णवर्षा पराजित करता है । [ सो अंसै मियं दुहे ] यह इतने मिये की होता है ॥ १० ॥

[ य ] जिसको बृहस्पति मणि बांधता है और [ आभ्यो वाताय ] अतिमह वायुकी सन्धिसे जुक्त करता है [ सो अंसै वाजिनं दुहे ] यह इतने मिये अणु होता है ॥ ११ ॥

[ य ] जिसको बृहस्पति मणि बांधता है [ तेन मणिना ] उस मणिके [ अविनी हनो कृपिं अमिरक्षतः ] अविने देन इनकी कृपकी रक्षा करता है । [ तं राजा वरुणो मणिं प्रस्यमुञ्चत ] यह राज वैश्वदेव द्वारा इसे बका देन वा अणु होता है ॥ १२ ॥

[ य ] [ तं मणिं सविता विभ्रत् ] उस मणिकी कवितले धारण किया [ तेन सः अज्यद् ] उतने स्वयं अज्यद् [ सः पञ्चन निवा ] सो अंसै सुमर्षा दुहे ] यह इतने मिये अणु होता है ॥ १३ ॥

[ य ] [ त मणिं तमापो विभ्रतीः ] उस मणिकी अणु धारण करती है [ तमापो अमिता वायव्य ] अणु होकर उग्न वायवी है [ स आभ्योऽमृतम्यं दुहे ] यह इतने मिये अणु होता है ॥ १४ ॥

[ य ] [ तं केषुच मणिं राजा वरुण प्रस्यमुञ्चत ] उक्त सुवर्णकी मणिकी राजा वरुण छोड़ देता है [ सो अंसै सत्यं दुहे ] यह इतने मिये अणु होता है ॥ १५ ॥

[ य ] [ तं मणिं देवा विभ्रताः ] उक्त मणिकी देवोंने धारण किया और [ बुवा सर्वाहोकाद् अज्यद् ] उक्त वरुण सर्व ओषधी अणु किया । [ स एभ्यो जितिं इत् दुहे ] यह इतने मिये अणु होता है ॥ १६ ॥

यमर्षभाद् बृहस्पतिर्वाताय मणिभाष्ये । तमिमं देवतां मणिं प्रत्यमुञ्चन्त स्रमुक्म् ।  
स आम्नो विश्वमिदं बृहते सूर्योमयः स्वःस्तेन त्वं द्विपतो जहि ॥ १७ ॥  
अतवस्तमं बध्नतां वास्तमं बध्नत । सवत्सरस्त बद्ध्वा सर्वं भूतं वि रंक्षति ॥ १८ ॥  
भन्तुर्देवा अयं बध्नत प्रदिशस्तमं बध्नत । प्रजापतिस्तुष्टो मणिर्द्विपतो मेऽर्धरां अकः ॥ १९ ॥  
अर्षर्षाणो अयं बध्नतायर्षणा अयं बध्नत ।  
तैर्वेदिनो अन्निरसो इत्यर्षां विभिदुः पुरस्तेन त्वं द्विपतो जहि ॥ २० ॥ ( १९ )  
तं वाता प्रत्यमुञ्चत स भूत व्यकल्पयत् । तेन त्वं द्विपतो जहि ॥ २१ ॥  
यमर्षभाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुराक्षितिम् । स माय मणिरागं मद् रसेन सह वर्षसा ॥ २२ ॥  
यमर्षभाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुराक्षितिम् ।  
स माय मभिरागं मत् सह गोमिरज्जाविमिरर्षेन प्रक्षया सह ॥ २३ ॥  
यमर्षभाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुराक्षितिम् ।  
स माय मभिरागं मत् सह ब्रीहियवाम्भ्रां महसा भूत्या सह ॥ २४ ॥  
यमर्षभाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुराक्षितिम् ।  
स माय मभिरागं मन्मर्षैर्धृतस्म चारया क्रीडालेन मणिः सह ॥ २५ ॥  
यमर्षभाद् बृहस्पतिर्देवेभ्यो असुराक्षितिम् ।  
स माय मभिरागं मद्भूत्या पर्यसा सह द्रविणेन भिया सह ॥ २६ ॥

वर्ष-वर्ष ]-[यं ब्रह्मण इमं मणिं देवता प्रत्यमुञ्चन्त]उक्तं ब्रह्मवादी मणिको देवताभिले कोट दिवा [सः आम्नो] चिकं हृद् बृहते  
यं स्तेनं चिके सव प्रुक्तं देवा दे ॥ १७ ॥  
[यमर्षा यं बध्नत] ब्रह्म उक्तो वांभते रहे [ वातं वाता यं बध्नत ] यन्तुये कल्पय पवार्यं बध्नको वांभते है ।  
[अन्तरा यं बध्ना] अन्तरा यं बध्नत [ सर्वं भूत विरक्षति ] सव भूतमाजनी रक्षा करता है ॥ १८ ॥  
( यमर्षभा यं बध्नत ) अन्तर्दिक्षाभ्यो बध्न वांभा ( प्रदिशः यं बध्नत ) विराज्यो बध्न वांभा, यह ( प्रजापति  
स्तुष्टो मणिः ) प्रजापतिने भिर्षय किया मणि ( ये द्विपत बध्नतम् अकः ) मेरे कन्तुमोको नीधे करता है ॥ १९ ॥  
( यमर्षाणो अयं बध्नत ) अयं वांभा ( वास्तमं बध्नत ) जापयर्षिर्भने इये वांभा वा ( तैः मेदिनः अर्षिरसा )  
उक्ते बध्नतम् इये अर्षिरस ( बरधूतां पुरः विभिदुः ) कन्तुमोके यमर्षाणो तोवते रहे, ( तैव त्वं द्विपत जहि ) इत्येव यं अन्ते  
कन्तुमोको पराता कर ॥ २० ॥  
( यं वाता प्रत्यमुञ्चत ) उक्ते वाताये नारय किया वा । ( सः भूतं व्यकल्पयत् ) यह भूतोंको बनायेयें सवर्षे ब्रह्मा  
देव त्वं द्विपत जहि ) बध्नते बध्नते नू अयने कन्तुमोको पराता कर ॥ २१ ॥  
( यं ) [ असुराक्षिति ] मिस अन्तर-मिनाक्षको ( देवेभ्यः बृहस्पतिः बध्नतम् ) देवोंके चिके बृहस्पतिने वांभा वा ( स  
वर्ष मणिः सा ) यह मणि मेरे पात ( इत्येव वर्षसा सह आगमत् ) रस और तेजके साथ आगवा दे ॥ २२ ॥  
( यं ) यह ( भूमिः अज्जाभिः अर्षेन प्रक्षया सह ) नीधे बरुर्ना अज और प्रक्षाके साथ । ॥ २३ ॥  
( यं ) ( श्रीविषवाम्भ्रां महसा भूत्या सह ) वायव्य की स । ऐश्वर्यके साथ ॥ २४ ॥ ( मयोः पुरस्व पारया क्रीडालेन  
यं ) भी यह और देवकी पारामोके साथ ॥ २५ ॥ ( पयसा द्रविणेन भिया सह ) दूध पन और नीधे साथ ॥ २६ ॥

यमर्चन्नाद् बृहस्पतिर्द्वेष्यो अक्षरसिद्धिम् ।

स मायं मुषिरार्गमत् सेवसा स्थिष्या सह यक्षसा क्षीर्त्या सह ॥ २७ ॥

यमर्चन्नाद् बृहस्पतिर्द्वेष्यो अक्षरसिद्धिम् । स मायं मुषिरार्गमत् सर्वाभिर्प्रातिभिः सह ॥ २८ ॥

तस्मिन् वेष्टतां मणिं मये ददतु पुष्टये । अभिष्टुर्धन्यार्थेन सपत्न्यदम्भेन मणिम् ॥ २९ ॥

ब्रह्मणा सेवसा सह प्रति मुष्मामि मे क्षिपम् ।

असपत्नः सपत्न्या सह सपत्न्या मेऽर्धरो अक्षः ॥ ३० ॥ (२०)

उत्तरं द्विषतो मामय मणिः कृणोतु देवसाः । यक्षं लोका इमे त्रयः ययो दुग्धमुपासेते ॥

स मायमर्चि रोहतु मणिः भैष्ठ्याय सूर्यतः ॥ ३१ ॥

यं वेष्टाः पितरो मनुष्या उपजीवन्ति सर्वदा । स मायमर्चि रोहतु मणिः भैष्ठ्याय सूर्यतः ॥ ३२ ॥

यथा पीबन्मूर्धरायां कृष्टे फालेन रोहति । एषा मयि प्रसा पृथ्वोऽन्नमसु नि रोहति ॥ ३३ ॥

यस्यै स्वा यक्षचर्चनं मये प्रत्यर्चय क्षिपम् । तं स्वं वृत्तदक्षिण मजे भैष्ठ्याय जिवतात् ॥ ३४ ॥

एवमिष्म सुमार्जितं क्षयाणो अग्ने प्रति हर्षे होमैः ।

तस्मिन् विदेम सुमतिं स्वास्ति प्रसां यक्षुः पृथ्वस्तस्मिन्ने जावर्षदमि ब्रह्मणा ॥ ३५ ॥ (२१)

॥ इति पृथ्वीयोज्ज्वालाकाः ॥ ३॥

अर्थ— ( संख्या लिखना बसता ) बीजार्थ सह ) एक यमक, एक बीज कीर्ति के साथ ॥ २७ ॥

( सर्वाभिः प्रीतिभिः सह ) सब देवर्षि के साथ सह मणि ( या जानमत् ) मेरे पास जाना है ॥ २८ ॥

( तं इमं मणिं ) इस मणि को ( वेष्टतां पुष्टये अक्ष ददतु ) देवताएँ पुष्टि के लिये मुझे दे दें । यह ( यमिष्टुर्धन्यार्थेन सपत्न्यदम्भेन मणिम् ) अनुग्राहक स्त्रात्रोक्त ब्रह्मण्यत्मा वैरीका मिथ्यत्व सह मणि है ॥ २९ ॥

( ब्रह्मण्य सेवसा सह ) ब्रह्म और एक के साथ ( मे स्मिन् प्रति क्षीयमिमे ह्य कल्याणकारी मन्त्रिको यमन करता है ) वह मणि ( यमनयः यमन्या ) अनुग्रहित और अनुग्राहक है तथा ( मे सपत्न्यदम्भेन मणिम् ) इससे मेरे अनुभूतों के लिये किता है ॥ ३० ॥

[ यमं वेष्टतां मणिः ] यह देहोक्त यमन हीनेश्वर मणि [ या पृथिव्या उत्तरं सूर्यतः ] मुझे अनुग्राहके लिये दत्तम अदत्तमे दे रहे । [ यक्ष दुर्यं ] मिलते हुए या वा वा [ इमे त्रय कोकः यथावते ] वे तीनों लोक प्राप्त करते हैं ।

[ सः मायं मणिः ] यह वह मणि [ या पृथिव्याय सूर्याः यमिष्टोत्तु ] मुझे देव स्वर्ग के ऊपर पहनाये ॥ ३१ ॥

( देवा पितरः मनुष्याः यं ज्यैषा यमर्चयन्ति ) देव पितर और मनुष्य मिलकर तथा मित्र रहते हैं यह ( वेष्टतां यमि ) देव स्वर्ग के लिये पहनाये ॥ ३२ ॥

( यामेयं कृष्टे यमर्चयन्ति ) यमके एक कृष्टे हुए मणिमें ( यथा पीबन् रोहति ) जैसे पीब करता है ( एव मणि अक्षः यमनः यमं नि रोहतु ) वैरागी मेरे पास अक्षम पक्ष और अक्ष बहुत ही पाये ॥ ३३ ॥

है ( यक्षचर्चनं मने ) यक्ष यक्षमिच्छासे मने । ( त्वं यमं यमिष्टमिति यमिष्टं ) तुझ ह्यम मणि को मिलने लिये मैं बार बार, ह ( यमचर्चनं मने ) ही यमकी पीछा है देवर्षि मणि । ( त्वं यमं यमिष्टमिति यमिष्टं ) हने ए मेष्टाना के लिये यथावती ॥ ३४ ॥

है मणि । ( समर्पित इष्म सुबोधः ) प्रति ईश्वरका सेवन करता हुआ ( होमैः प्रति हर्षे ) होमकर्मों के सह हो । ( तस्मिन् प्रसिद्धे जावर्षदमि ) उस प्रसीत भाविते ( ब्रह्मणा ) ब्रह्मके ( सुमतिं स्वास्ति मणिः ) यमन पुष्टि, कल्याण

वर्णन ( यक्ष पश्य ) दृष्टि और पश्योक्तों ( विदेम ) प्राप्त करें ॥ ३५ ॥

एव ह्यमै निष्ठेय प्रकारके मणि के साथ करके अक्षर पहना है ।

(७) सर्वाधारका धर्गन ।

( अग्निः-अथर्षा । देवता-स्कम्भः आत्मा वा )

कस्मिन्नङ्गे तपो अस्याधि तिष्ठति कस्मिन्नङ्गे आसमस्याध्याहितम् ।

क<sup>१</sup> म<sup>२</sup> तं क<sup>३</sup> भ<sup>४</sup> द<sup>५</sup> ऽ स्य तिष्ठति क<sup>६</sup> स्मि<sup>७</sup> भ<sup>८</sup> ज्ञे स<sup>९</sup> स्य म<sup>१०</sup> स्य प्र<sup>११</sup> तिष्ठितम् ॥ १ ॥

कस्मादङ्गाद् दीप्यते अप्रिरस्य कस्मादङ्गात् पवते मातरिर्भा ।

कस्मादङ्गाद वि विप्रीतेऽपि चन्द्रमा मह स्कम्भस्य भिमानो अङ्गम् ॥ २ ॥

कस्मिन्नङ्गे विद्यते भूमिरस्य कस्मिन्नङ्गे विद्यतेऽन्तरिक्षम् ।

कस्मिन्नने तिष्ठत्याहिता यौः कस्मिन्नहगे तिष्ठत्पुनर विभः ॥ ३ ॥

क१ प्रेष्यन् दीप्यत ऊर्ध्वो अपि । क२ प्रेष्यन् पठते मातरिषा ।

यत् प्रेक्षन्तीरमिषन्त्यावृतः स्कन्धं तम्रं हि कनुमः स्विदेव सः ॥ ४ ॥

वर्षिमासाः क्व यन्ति मासाः संवत्सरेण सह संविद्वानाः ।

यत्र यन्त्युतयो यत्रार्तिबाः स्कन्धं तं ब्रूहि कृतमः सिद्धेव सः ॥ ५ ॥

४ प्रेष्यन्ती युवती विरूपे अहोरात्रे द्रवतः संविदुने ।

यत्र प्रेक्षन्तीरमियन्त्यार्थः सूक्ष्मं च बृहत्कृतमः स्त्रिवेष सः ॥ ६ ॥

जय—(अस्य कस्मिन् अंगे तपः आधिष्ठितः) ॥ मनुष्यके किस अवस्थामें तप करनीकी शक्ति रहती है ? (अस्य कस्मिन् अंगे तपः आधिष्ठितः) इस मनुष्यके किस भागमें क्षण—सरलताका मास रहता है ? (अस्य अन्तःप्रान्तं क विप्रतिष्ठितः) इस अन्तःप्रान्त का प्रत्यक्ष रूप क्या रहते हैं ? (अस्य कस्मिन् अंगे प्रत्यक्षप्रतिष्ठितः) इसके किस अवस्थामें सत्य रहता है ? ॥ १ ॥

[illegible][illegible]

(कर्म) जमि। क. म-ईप्सन् दीप्ते) कपरका जमि मर्नाई सूई किस ओर देखता हुआ प्रकाशित है ? (मातरिका कर्म-ईप्सन् पक्ष) बाबु कहां छिटे रक्कर बहता है ? (बल म-ईप्सन्दी। मातृका जमिजमि) कहां छिटे रक्को हुए ये कर्मप्रपाद बाबु हैं ? (तं र्कर्म) कूड़े) कस लम्बाकारके निचरमें सूई बह दे कि (घा कसम। सिक्त पक्ष) वह दीपता है ॥ ४ ॥

( बर्माया: माया: ) पक्ष और यहीने ( संवत्सरेण सह धर्मदाया: ) वर्षके शास मिच्छै हुए ( अ न वन्ति ) यहाँ पक्ष क्या पक्ष रहे हैं ? ( यत्तु माया: यत्तु बर्माया: वन्ति ) यहाँ है यत्तु और यत्तुमें उत्पन्न पक्षार्थ पक्ष रहे हैं ( त स्वेन भूति ) वह बर्माय के विषयमें यह कि वह कीवसा पक्षार्थ है । ५ ।

और राजी (अभिप्राय प्रकट) : यिककर सौह रहीं हैं । (पत्र प्रार्थनगी : आपः अभिप्रायः) जहाँ जह्न रजकर जह्न जा रहें हैं । (रहें) ) जहाँ वर्ष बारके विषयों कह है कि वह भीमला सधर्मा हैं ।। ६७

यस्मिन्स्तुष्ट्या प्रजापतिर्लोकान्तरां अघारयत् । स्कम्भ त ब्रूहि कतमः स्विदेव स ॥ ७ ॥  
 यत्परममेषमं यत् मध्यमं प्रजापतिः ससुखे विश्वरूपम् ।  
 कियता स्कम्भः प्र विवेक्षु तत्र यत् प्राविशत्किञ्चिदर्थम् ॥ ८ ॥  
 कियता स्कम्भः प्र विवेक्षु मृत कियद्भविष्यदुन्वाशयेऽस्य ।  
 एक यद्वत्तुष्ट्यास्तद्वत्तुष्ट्या कियता स्कम्भः प्र विवेक्षु तत्र ॥ ९ ॥  
 यत्र लोकाश्च कोशाश्चापो ब्रह्म जना विदुः ।  
 अतश्च यत्र सन्तान्त स्कम्भ तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ १० ॥ ( २२ )  
 यत्र तपः पराक्रम्य मृत धारयत्युत्तरम् ।  
 श्रुत च यत्र ब्रह्मा चापो ब्रह्म समाहिताः स्कम्भं त ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ ११ ॥  
 यस्मिन्मूर्तिरन्तरिक्षे सूर्यस्मिन्महाहिता ।  
 यत्रापि ब्रह्माः सूर्यो वातस्विष्टुन्वापिताः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ १२ ॥  
 यस्य त्रयस्त्रिंशदेवा ब्रह्मे सर्वे समाहिताः । स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ १३ ॥

अर्थ—( यस्मिन् स्तुष्ट्या ) जिस आचारपर रहकर ( यत्रापि ) सर्वोद् लोकान् अघारयत् ) प्रजापतिने सब लोकों में घात किया है ( तं स्कम्भ ) उस सर्वोद् लोकों के विषयमें यह कि वह कौन है । ॥ ७ ॥

( यत् परममेषमं यत् मध्यमं ) जो कि बहुत और जो मध्यम ( विश्वरूपं यत्रापि ) विश्वरूप प्रजापतिने स्तुष्ट किया है ( यत्र स्कम्भः किञ्चा मन्त्रेण ) वहाँ सर्वोद् लोकों के विषयमें किता है और ( यत् न प्राविशत् किञ्चिदर्थम् ) वहाँ वह प्रविष्ट नहीं हुआ वह किता हुआ है । ॥ ८ ॥

( स्कम्भः मृत कियता प्रविष्टः ) वह सर्वोद् लोकों के विषयमें किये अंतर्गत प्रविष्ट हुआ था । ( यत्र किञ्चिदर्थम् अतु-आद्यम् ) इसका किता अंतर्गत मन्त्रों के द्वारा होनेवाले विषयमें प्रविष्ट होता है ( यत् एकं अंतर्गतं सहस्रं ब्रह्म-मोक्ष ) किन्तु अंतर्गत एक ब्रह्म ही हजारों प्रजापतिमें कर्तव्यकारणों प्रकट किया है ( यत्र स्कम्भः किञ्चा मन्त्रेण ) वहाँ सर्वोद् लोकों के विषयमें किता हुआ है । ॥ ९ ॥

( यत्र लोकाश्च कोशाश्च ) जिसमें सब लोक और कोश रहते हैं और ( जनाः ब्रह्म ) वहाँ जन और ब्रह्म रहता है ऐश ( जनाः विदुः ) जिन जानते हैं ( अतश्च यत्र यत् ब्रह्म ) यत् और अतश्च वहाँ मिश्र है ( तं स्कम्भं ब्रूहि ) इस सर्वोद् लोकों के विषयमें यह कि वह कौन है । ॥ १० ॥

( यत्र ) जिसके आचारसे ( पराक्रम्य तपः ) यत्र प्रत्यक्ष करने से तप ( धारयत्युत्तरम् ) उत्तर प्रकट करने से तप वहाँ ( यत्र ब्रह्म आचार यत् यत् ब्रह्म ) ब्रह्म ब्रह्म आप और ब्रह्म ( समाहिताः ) ब्रह्म के साथ हैं ( तं स्कम्भं ब्रूहि ) इस सर्वोद् लोकों के विषयमें यह कि वह कौन है । ॥ ११ ॥

( यस्मिन् ) जिसमें ( मुनिः अन्तरिक्षे योः ) इन्द्रो अन्तरिक्ष और युजोः ( अन्वाहिताः ) मिश्र हैं और ( यत्र अपि ब्रह्मना ) सूर्यः वातः ) जिसमें अपि यत्र सूर्य और वायु [ वायिका विहित ] आधर केकर रहते हैं वत्र [ तं स्कम्भं ] सर्वोद् लोकों के विषयमें यह कि वह कौन है । ॥ १२ ॥

[ सर्वे प्रजापतिरा देवाः ] सब तीनों देव [ यत्र अपि समाहिताः ] जिसके करीबों रहते हैं [ तं स्कम्भं ] इस सर्वोद् लोकों के विषयमें यह कि वह कौन है । ॥ १३ ॥

यत्र श्रपयः प्रथममा श्रवः साम यजुर्मही ।

एक्ष्वर्यसिमापितः स्कन्म तं गृहि कतमः स्विदेव सः ॥ १४ ॥

पत्रामूर्तं च मृसपुष्टं पृष्ठेऽधि समाहिते ।

सुप्रो यस्य नाभ्यः पृष्ठेऽधि समाहिताः स्कन्म तं गृहि कतमः स्विदेव सः ॥ १५ ॥

वस्य चतस्रः प्रदिशो नाभ्यः स्थिष्ठन्ति प्रथमाः ।

बुधो यत्र पराक्रान्तः स्कन्मे तं गृहि कतमः स्विदेव सः ॥ १६ ॥

ये पृष्ठे मर्षं विदुस्ते विदुः परमेष्ठिनम् । यो वेदं परमेष्ठिनं यक्ष्ये वेदं प्रजापतिम् ।

न्येष्ठं ये आर्षेण विदुस्ते स्कन्ममनुसविदुः ॥ १७ ॥

वस्य शिरो वैशानुरभधुरक्षिरसोऽयं वन् ।

बह्वानि यस्य चातवः स्कन्मे तं गृहि कतमः स्विदेव सः ॥ १८ ॥

वस्य प्रस्य मुखमाहुर्जिह्वां मधुकशामुत ।

विपजस्रो यस्माद्दुः स्कन्म तं गृहि कतमः स्विदेव सः ॥ १९ ॥

वस्मादधो अपार्तश्च यजुर्यस्मादुपाकपन् ।

सामानि यस्य सोमान्यर्वाक्षिरसो मुखं स्कन्मे तं गृहि कतमः स्विदेव सः ॥ २० ॥

अर्थ—[यत्र प्रथममा, अथवा] जिसमें पहिले बने श्रपि तथा [अथ साम यजुर्मही] अथवा सामय यजुर्मही कर्माः अर्थात् अर्वादेर रथे हैं [यस्मिन् एक अपि] अपिः [जिसमें एक मुख्य अपि आधार जिने हैं [तं स्कन्म] उस सर्वाधारके विषयमें कह कि वह कीम है । ॥ १४ ॥

[यत्र बुधे] जिस पुरुषमें [अपुष्टं च धातुः च समाहिते] अमरत्व और मरण रहता है, [यस्य नाभ्यः] जिसकी नाभियां अनुस है जो [पृष्ठे अधि समाहिताः] जो पुरुषके शरीरमें हैं [तं स्कन्म] उस सर्वाधारके विषयमें कह कि वह कीम है । ॥ १५ ॥

[वस्य चतस्रः प्रदिशः] आठों पहिली दिशाएँ [यत्र नाभ्यः स्थिष्ठन्ति] जहाँ नाभियां होकर रहीं हैं [यत्र बह्वः पराक्रान्तः] जहाँ वह पराक्रम कर रहा है [तं स्कन्म] उस स्कन्मके विषयमें कह कि वह कीम है । ॥ १६ ॥

[ये पृष्ठे मर्षं विदुः] जो इस मनुष्यके नाभ्यः छायाधार करते हैं [ते विदुः परमेष्ठिनः] वे परमेष्ठिकी जातते हैं [यो वेदं परमेष्ठिनम्] जो परमेष्ठिनी जागता है और [यः च प्रजापतिं यक्ष्ये] जो प्रजापतिकी जागता है और [ये कर्माः] जो जैव कामनकी जातते हैं [तं स्कन्म अनुसविदुः] वे सर्वाधारके अन्धकी तरह जातते हैं । ॥ १७ ॥

[वस्य शिरो वैशानुर] जिसका शिर वैशानुर अग्नि है [यजुः क्षिरसो अमरत्व और अमरत्व हो गये हैं] [यस्य बह्वानि चातवः] जिसके जलवत् वायु—राक्षस—हैं [तं स्कन्म] उस स्कन्मके विषयमें कह कि वह कीम है । ॥ १८ ॥

[वस्य प्रस्य मुखं] जिसका मुख प्रस्य है ऐसा कहते हैं [यत्र मधुकशामुत] और [यत्र मधुकशामुत] दुर्ग है [यस्य विपजस्रो] जिसके सप्त—दुर्गाक्षय वह विराट् स्कन्म है [तं स्कन्म] उस स्कन्मके विषयमें कह कि वह कीम है । ॥ १९ ॥

[वस्मादधो अपार्तश्च] जिसकी अपार्तश्च यजुः अपाकपन्, जिसकी यजुः यने [यस्य सोमानि सामानि] जिसके सोम साम हैं जिसका [मुखं अर्वाक्षिरसो] मुख जागिरा अर्वादी हैं [तं स्कन्म] उस सर्वाधारके विषयमें कह कि वह कीम है । ॥ २० ॥

असृष्टास्त्रां प्रतिष्ठन्तीं परमार्थिना अना विदुः । उतो सन्मन्यन्तेऽनरे ये ते आत्माभ्यासते ॥ ११ ॥  
यत्रादित्याश्च रद्राश्च परसर्वश्च समाहिताः ।

मृत च यत्र मर्त्यं च सर्वं लोकाः प्रतिष्ठिताः स्कम्भ तं ब्रह्म कृतम् । स्थितेव सः ॥ १२ ॥  
यस्य अयस्त्रिंशदेवा निधि रक्षन्ति सर्वदा । निधिं तमद्य को वेत्तु न देवा अभिरक्षन् ॥ १३ ॥  
यत्र देवा ब्रह्मविदो ब्रह्म ज्येष्ठमुपासते । सो वै तान्निद्यात्प्रस्थश्च स ब्रह्मा वेदिता स्यात् ॥ १४ ॥  
बृह तो नाम ते देवा येऽसंतुः परिं अक्षिरे । एकं तदङ्गं स्कम्भस्यासंदाहुः पुरो अवाः ॥ १५ ॥  
यत्र स्कम्भः प्रचनयन् पुराणं व्यवर्तयत् । एकं तदङ्गं स्कम्भस्य पुराणमनुसविदुः ॥ १६ ॥  
यस्य अयस्त्रिंशदेवा अङ्गे गात्रां विभेक्षिरे । तान् वै त्र्यक्षिंशदेवानकं ब्रह्मविदो विदुः ॥ १७ ॥  
हिरण्यगर्भं परममनस्पृह अना विदुः । स्कम्भस्तदग्रे प्राविक्षद्विरण्यं लोके अन्तरा ॥ १८ ॥  
स्कम्भे लोकाः स्कम्भे तपः स्कम्भश्च्युतमाहितम् ।  
स्कम्भं त्वा वेद प्रत्यक्षमिन्द्रे सर्वं समाहितम् ॥ २९ ॥

अर्थ— [असृष्ट आत्मां प्रतिष्ठन्तीं] अनास्तु अनास्तु ह्येव और स्थितान्ते रहनेवाली एक आत्मा है उसे [असृष्ट आत्मां प्रतिष्ठन्तीं] मनुष्य परमार्थे उप है ऐसा मानते हैं । [ उतो ये अनरे सन्मन्यन्ते ] और जो उन्ने मान है वे अनरे उन्ने ही मानते हैं [ये आत्मां उपासते] वे सभी आत्मा की उपासना करते हैं ॥ ११ ॥

[ यत्र ] यहाँ आभित्त च और यत्र [ समग्रविताः ] रहते हैं [ मृत मर्त्यं च ] मृत मर्त्यमा और मर्त्यमा तथा [ सर्वं लोकाः प्रतिष्ठिताः ] यहाँ वे सब लोक आचार विधे हैं [ तं स्कम्भ ] उस सर्वाचारिक नियममें वह कि वह कौन ही ॥ १२ ॥  
[ यत्र विद्या देवाः ] तत्राद्य देव [ यस्य निधिं सर्वदा रक्षन्ति ] जिसके निधि की रक्षा रक्षा करते हैं वे देव ।  
[ न अभिरक्षन् ] जिसकी हम रक्षा करते हैं [ च निधिं अद्य का वेद ] उस निधि को आज कौन जानता है ॥ १३ ॥  
[ यत्र ब्रह्मविदः देवाः ] यहाँ ब्रह्म आभित्ताने विद्या देवा । [ ज्येष्ठं ब्रह्म उपासते ] ज्येष्ठ ब्रह्म की उपासना करते हैं ।  
[ या न तान्निद्यात्प्रस्थश्च ब्रह्मा ] यो निधायकक उनकी शरण्य मानेगा [ या वैदिता ब्रह्मा स्यात् ] वह ब्रह्मा ब्रह्म हो जानका ॥ १४ ॥  
[ ये देवा बृहन्तो नाम ] वे देव बड़े बृहन्तो हैं, [ ये अनरे परि अक्षिरे ] जो अनरे से अनात् प्रकृति के अनरे हुए हैं ।  
[ एत एतं स्कम्भस्य अना ] वह स्कम्भ का एक अना है, जिसको [ अनाः असृष्ट पुरा आहुः ] देवा की ओर अनरे परं ज्येष्ठ देव है ऐसा कहते हैं ॥ १५ ॥

[ यत्र सर्वमाः प्रचनयन् ] यहाँ सर्वाकार आत्मा छवि-वैपत्ति करता हुआ [ पुराणं व्यवर्तयत् ] पुराणकी नियति करता है [ तत् स्कम्भस्य एकं अङ्गं ] वह स्कम्भ पर आत्मा एक अङ्ग [ पुराणं अनुसविदुः ] पुराण करनेवाली मानते हैं ॥ १६ ॥  
[ यस्य अङ्गे गात्राः ] जिसके शरीरके अङ्गवालों [ त्र्यक्षिंशद् देवाः किमेक्षिरे ] त्र्यक्षिंश देव निधाय होकर रहें हैं [ अङ्गं न अत्रा प्रियत् देवम् ] उन तीनों देवोंको [ एकं ब्रह्मविदः विदुः ] ज्येष्ठ ब्रह्म की ही मानते हैं ॥ १७ ॥  
( अना दि पुराणम् ) लोक हिरण्यगर्भ ( यमं अनति उद्य विदुः ) ज्येष्ठ और अद्य जानते हैं ( लोके अनरे ) जो सोरठ अङ्गमें ( अना स्कम्भः सत् हिरण्यं प्रातिष्ठत् ) आभित्त सर्वाकार आत्मानेही वह उपर्यमव हिरण्यमव नियति टिका ॥ १८ ॥

( स्कम्भे लोकाः ) स्कम्भ सर्वाचार परमात्मा है उसके आधारसे सब लोक रहे हैं ( स्कम्भे तपः ) यहाँमें तप रहता है ( स्कम्भे अद्य कर्त आहित ) यहाँके आधारसे अत रहता है ( स्कम्भे ) सर्वाचार । है ( या अनात् वेद ) है लोके प्रत्यक्ष जानता है कि तुल ( स्कम्भे सर्वं तम दिन ) स्कम्भे ही वह सब जानता है ॥ २९ ॥

इन्द्रं लोका इन्द्रे तप इन्द्रेऽध्युसमाहितम् । इन्द्रं स्वा भेद प्रत्यर्थं स्कन्मे सर्वं प्रातिष्ठितम् ३० (२४)  
नाम् नान्ना बोहवीति पुरा खसीत् पुरोपसीः ।

यद्वयः प्रथमं संवभूष स ह सत् स्वराज्यमियाय यस्मान्भवत् परमसि मृतम् ॥ ३१ ॥

यस्य भूमिः प्रमाऽन्तरिक्षमुतोदरम् । दिश यद्वयके मूर्ध्ना तस्मै ज्येष्ठाय प्रक्षणे नमः ॥ ३२ ॥

यस्य सूर्येऽध्वर्युश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः । अग्निं यद्वयके आस्यं तस्मै ज्येष्ठाय प्रक्षणे नमः ॥ ३३ ॥

यस्य घातः प्राजापानौ यधुराक्षिरसोऽमवत् । दिशो यद्वयके प्रक्षानीस्तस्मै ज्येष्ठाय प्रक्षणे नमः ३४

स्कन्मो दाधार द्यावापृथिवी तमे हमे स्कन्मो दाधारोऽन्तरिक्षम् ।

स्कन्मो दाधार प्रदिश पदवीः स्कन्म इदं विश्वं सुखमा विवेक्ष ॥ ३५ ॥

यः भूमात् तपसो ज्ञातो लोकान्तरास्मान्मानुषे ।

सोमं यद्वयके केवलं तस्मै ज्येष्ठाय प्रक्षणे नमः ॥ ३६ ॥

अर्थ- [ इन्द्रे ] इन्द्रं यत्र लोक तप और तप रदता है । हे इन्द्र ! मैं ( स्वा प्रत्यर्थं भेद ) तुझे प्रत्यक्ष जानता हूँ कि तू ( इन्द्रं सर्वं प्रातिष्ठितम् ) स्कन्म है जिसमें यह सब समाया है ॥ ३० ॥

[ सूर्यात् पुनः सप्तः पुनः ] सूर्योदयेके पूर्व सप्तः यत्रके जी पूर्व (नाम्ना नाम बोहवीति) नामके नाम ईश्वरके बलका गान फला है ईश्वरके करता है । [ यत् यत्र प्रथमं सं वभूष ] जब इस प्रकार प्रत्यक्षकी जायता प्रथम ईश्वरके सम्बन्ध लपट होता है [ यः ह सत् स्वराज्यं द्यावा ] यही उस स्वराज्य—अप्रमार्थ स्वराज्यके प्राप्त करता है कि [ यस्मात् यन्भवत् परं मृतं न मयि ] जिससे हृष्टा भेद हूँ जी नया नहीं है ॥ ३१ ॥

[ यस्य भूमिः प्रमाऽन्तरिक्षमुतोदरम् ] जिसकी भूमि एक पाँचका प्रमाण है [ दिश यद्वयके तस्मै ] और अन्तरिक्ष तस्मै है [ वा दिश पूर्वमेतमे ] जिसमें पुनःकरी अपना सिर नवाया है [ तस्मै ज्येष्ठाय प्रक्षणे नमः ] उस भेद भद्रके सिने समस्कार है ॥ ३२ ॥

[ यस्य सूर्यं चन्द्रा ] जिसके बीच सूर्य [ पुनः सप्तः यत्रमाः य ] और अन्तरिक्ष यत्र यत्रेवात् यत्रमा है [ य यत्रेवात् यत्रे ] जिसमें अग्निके अपना मुख नवाया है [ तस्मै ज्येष्ठाय प्रक्षणे नमः ] उस भेद भद्रके सिने समस्कार है ॥ ३३ ॥

[ यस्य घातः प्राजापानौ यधुरा ] जिसके घात और अगान यह बापु है और [ यधुरा ] अगिरसः अमवत् ] अग्नि अगिरस यत्रे है [ वा दिशः प्रमाऽन्तरिक्षमुतोदरम् ] जिसमें दिशाओंके प्रमा अगान काम नवाया है [ तस्मै ज्येष्ठाय प्रक्षणे नमः ] उस भेद भद्रके सिने समस्कार है ॥ ३४ ॥

[ स्कन्मो हमे दाधारः द्यावापृथिवी द्यावा ] इस अर्थकारके ये इच्छी और पुनोका जायत सिने है [ स्कन्मो हमे अन्तरिक्ष द्यावा ] इसीमें शिरगत अन्तरिक्ष जायत सिने है [ स्कन्मो हमे अग्निः द्यावा ] इसीमें है यः यही दिशाई जायत सी है [ स्कन्मो हमे विश्वं सुखमा विवेक्ष ] यही इस सब विश्वमें अग्नि है ॥ ३५ ॥

( वा तपसः भूमात् ज्ञाता ) जो तपके जगके बल होकर ( सर्वात् लोकान् ) सब जायते ) तप लोकोके जायता है ( वा लोकं केवलं यत्रे ) जिसमें सोमपौरी केवल [ यधुरा अगान जीपयित्वा नवाया ] है ( तस्मै ज्येष्ठाय प्रक्षणे नमः ) इस भेद भद्रके सिने समस्कार है ॥ ३६ ॥



कथं वातो नेल्यति कथं न रमते मनः । किमपि सत्यं प्रेप्सन्तीर्नेल्यन्ति कदा पुन ॥३७॥  
 महद्यथं सुषनस्य मध्ये तपसि क्रान्ते सलिलस्य पृष्ठे ।  
 तस्मिन्मप्यन्ते य उ के च देवा ब्रूयस्य स्फुटः परित इव छाखाः ॥ ३८ ॥  
 यस्मै हस्ताम्पां पादांम्पां वाचा भोज्येण चक्षुषा ।  
 यस्मै देवाः सदा बलिं प्रयच्छन्ति विमितेऽमितं रुक्म्य स ग्रही कृत्य स्तिग्धेव सः ॥ ३९ ॥  
 अप तस्य हत सभा व्यावृत्तः स पाप्मना । सर्वाणि तस्मिन् ज्योतीषि यानि श्रीर्बिं प्रजापतौ ४०  
 यो बतस हिरण्यं तिष्ठन्तं सलिलभेदं । स वै शुभः प्रजापतिः ॥ ४१ ॥  
 तन्ममेकं पुवती बिरूप अम्याक्रामं वयतः पशम्युखम् ।  
 प्रान्या तन्तीर्निरते घृते अन्या नापं वृक्षाते न गमातो मन्तेसु ॥ ४२ ॥  
 तयोर्ह धरिनुस्त्वत्पौरिषु न वि जानामि यतुग प्रस्तात् ।  
 पुमाननद्वयमुद्गृणसि पुमानेनद्वि जेमाराधि नाकै ॥ ४३ ॥  
 इमं सुयुक्ता तपं तस्तमुद्दिषु सामानि चक्रुस्तसराणि वातवे ॥ ४४ ॥ (२५)

अर्थ- ( कथं वातः न ईल्यति ) कैसा वातु स्थिर नहीं रहता ? ( कथं न मन रमते ) क्यों मन नहीं रमता ? ( कि कदा प्रेप्सन्तीः ) कदा सलिली मातृश्री इच्छाते कम ( कदा पुन न ईल्यन्ति ) कदा स्थिर नहीं रहता ॥ ३७ ॥

( सुषनस्य मध्ये तपसि बर्ष ) इन विषयके मध्यमें तथा पुन एक देव है ( तपसि क्राण्तं सलिलस्य पृष्ठे ) तप-वन्तों के पृष्ठमें विषय क्राण्तिधाम जो जन्मे वृष्टमाग्य है, ( तस्मिन् के उ के च देवा धन्यते ) वहीने जो कोई देव है - रहते है [ इच्छाव रक्ताः वरितः छाखा इव ] जिस तरह वृष्टा रक्ता और उरके पारों और छाया होते है ॥ ३८ ॥

[ यस्मै हस्ताम्पां पादांम्पां ] जिसके भिन्न हाथों पावों [ वाचा भोज्येण चक्षुषा ] वाणी कानों और आँखों [ वयतः सदा कामिग बलिं वरमे विमिते मयचलित ] देव कदा अगमित अगद्वार जिसके अगमितके भिन्न देते है [ स्कामं वं वृष्टि कृतमः शिवं वृष सा ] उत तप पारके निषर्षक कह कि वह कम है ॥ ३९ ॥

[ तस्य तमः अपहतं ] वृष्टा अकृत वृष्ट हो चुका है [ सा पाप्मना व्यावृत्ता ] वह पापते दूर हो चुका है, [ यानि सीनि ज्योतीषि ] जो सीन ज्योतीषा है [ सवामिगारिभ्यः प्रजापतौ ] वे सब प्रजापतय है ॥ ४० ॥

[ वा मादिक क्षिणवर्षं देवत विह्वलं वेद ] जो अथर्वे उपवनः तत इतरा वृष्टा है वह जानता है [ वा वै शुभः प्रजापतिः ] वही शुभ प्रजापति है ॥ ४१ ॥

[ वृष्ट भिन्ने पुवती ] वा विष्ट वषाणी भिन्ना [ वरं सुयुक्तं तपं ] वर सुयुक्त तप ताना [ आदि सा कामं वन्ता ] वाक्वर सुयुक्त वर वृती है कमते [ अम्या क्रान्ति वरिते ] वरि अम्यो कैलासी है जो [ अम्या भवे ] वरि कमते प न वरती है [ न अगद्वाराने ] न विधाय वरती है और [ न गमातो अर्त ] न मयता वरती है ॥ ४२ ॥

[ पुरितुपारयोः इव सभा ] वाचनी हुई सी उन दोनों विप्रबोधिते [ वरा वरताम् न विजामासि ] वरनी वरनी है न मी गी वरता ॥ [ वरत पुमान वयति ] इनको एक पुन पुमाना है [ वरत पुमान् वरुषाणि ] इनको वृष्टा पुन वरुषाणि है ॥ ४३ ॥

[ वरं वरि विजामा ] लयमें इनको वरता वरता है ॥ ४४ ॥  
 [ इमं सुयुक्तं वरं वरत मधु ] वे वरि वर वरता वर वर वरता है [ सावामि वरते तपामि वरु ]  
 [ वा पुनरुद भिन्ने सुयुक्त वर वरता है ॥ ४५ ॥

## (८) ज्येष्ठ ब्रह्मका वर्णन ।

(आपिः कुस्तः । देवता आत्मा )

यो मृतं च मर्त्यं च सर्वं यथावितिष्ठति । सर्वैर्यस्य च केवलं तस्यै ज्येष्ठाय प्रक्षणे नमः ॥१॥

स्कम्मेनेम विष्टमिते दौष्य भूमिभ्य तिष्ठतः । स्कम्भ इव सर्वमात्मन्वद्यत्प्राणभिर्मिपञ्च यत् ॥२॥

विष्टो ह प्रजा अस्यायमायन् न्यून्या अर्कममितोऽविष्ठन्त ।

पुष्टं ह तस्यौ रजसो विमानो हरितो हरिणीरा विवेद्य ॥ ३ ॥

हार्दश्च प्रघर्षश्चक्रमेकं श्रीणि नम्पानि क उ तर्षिकेत ।

तथाहंस्त्रीणि क्षुतानि ब्रह्मः पृष्टिश्च स्त्रीला अविचाचला ये ॥ ४ ॥

इव संवितर्षि आनीहि पञ्चमा एक एकजः । तस्मिन् हापित्वमिच्छन्ते य एषामेक एकजः ॥५॥

आभिः सभिर्हित गुहा अरुभामं मृदस्पदम् । तत्रेवं सर्वमार्षितुमेक्षत्प्राणत्प्रतिष्ठितम् ॥ ६ ॥

वर्ष [ यः मृतं मर्त्यं ] को मृतकाके और मर्त्यकाके तथा वर्तमानकाके भी [ या सब जवितिष्ठति ] को सब स भविष्य होकर रहता है [ कस्य च केवलं तस्यः ] जिसका केवल प्रकाशमय स्वरूप है [ तस्यै ज्येष्ठाय प्रक्षणे नमः ] वर में प्रक्षक विने नमस्कार है ॥ १ ॥

[ स्कम्भे वि-स्त्वमिते ] इस लोकोपर परमात्माने योगे हुए [ योः च भूमिः च तिष्ठतः ] युक्त और भूमिने योगे है [ यत् प्राणवत् यत् मिमिवत् च ] को प्र न चारण करता है और को आँखें खपकता है [ इवं सर्वं मात्मन्वद्यत् स्कम्भे ] वर सब आत्माने तुल्य विषय स्वर्गमें है ॥ २ ॥

[ विष्टः ह प्रजाः अरुभामं आरुभामं ] तीन प्रकारकी प्रजाएँ जविकमनको प्राप्त होती हैं [ अस्या वर्कं जमिषः वि जमिषः ] एक प्रकारकी [ चरन्गुणी प्रजा ] सर्वमे प्राप्त होती है दूसरी [ पुष्टं ह रजसो विमानः तस्यौ ] वर रजसोको वर रजसो हर्ष रहती है और तीसरी [ हरितोः हरिणीः अविवेद्य ] हरण करनेवाली हरिणीको प्रविष्ट होती है ॥ ३ ॥

[ हाप्य प्रघर्ष ] वारह प्रजावा है [ एकं वर्कं ] एक वर्क है [ श्रीणि नम्पानि ] तीन कामिवा है [ क उ तर्षिकेत ] और चला चले जानता है [ तत्र श्रीणि सतामि यमिः च दाहयः आहवः ] उस चक्रमें तीन को छोट नूटिरी होती है और चले ही [ स्त्रीलाः ] स्त्री कलावे हैं [ अविचाचला ] को हिलनेवाले नहीं है ॥ ४ ॥

[ सविषः ] सविता । [ इवं विज्ञानीहि ] वह ए जान कि वहाँ [ पञ्चमा एक एकजः ] छः भोटे हैं और एक वर्क है । [ य एषां एकजः एकजः ] को इनमें अकेला एक है [ तस्मिन् ] तस्मिन् [ हापित्वं इच्छन्ते ] मिथवसे आत्मा को हिलनेवाले इच्छा जन्म करते हैं ॥ ५ ॥

[ गुहा अरुभामं ] गुहामें लंकार करनेवाला को [ मृदस्पदं ] वर मृदस्पद रजस है वह [ आभिः सभिर्हितं ] वर प्रविष्ट होकर लंकार भी है और [ पञ्चमायाम् ] वर्कमें लंकार और प्राणवाक्य है वह [ तत्र इवं सब आर्षितं प्रतिष्ठितं ] वर वर प्रविष्ट लंकार और प्रतिष्ठित है ॥ ६ ॥

एकध्वरं वर्ततु एकलेमि सुहस्राक्षरु प्र पुरो नि पथा ।

अर्धेन विश्वं सुवर्नं ज्ञानं यदस्यार्थं क॥ तद्वैभूय ॥ ७ ॥

पञ्चवाही नहस्यप्रमेपां प्रष्टेयो युक्ता मनुसंवहन्ति ।

अथातमस्य दक्षे न यात परं नेद्रीयोऽपरं दधीयः ॥ ८ ॥

तिर्यग्विलम्बमस ऊर्ध्वमुष्णस्तस्मिन् यक्षो निहित विग्रहरूपम् ।

तदासह श्रपयः सुप्त साकं ये अस्य गोपा मंडितो नमूषुः ॥ ९ ॥

या पुरस्तादुज्यते या च पश्चादा विद्यते युज्यते या च सर्वतः ।

यथा यन्त्राः प्राक् स्थाप्ये तां स्वां पृच्छामि कर्तुमा सर्वाम् ॥ १० ॥ (२६)

यदेजति पठति यच्च लिखति प्राणदप्राणभिमिषश्च यजुर्वत् ।

तदाभारपुत्रिणी विश्वरूप तत्सुभूय भवत्येकमेव ॥ ११ ॥

अनन्त विरक्त पुरुषानन्तमन्तवशा समन्ते ।

ते नाकपा<sup>३</sup>लधरति विधिन्नि<sup>४</sup>दा-मृतमुत मर्ष्यमस्य ॥ १२ ॥

अर्थ- ( एक पार्श्व एकत्रैव वर्तते ) एक पक्ष एकही सम्प्रदायवादी है, जो [ महान् कार्य प्र दुरः सिद्धं ] इसी कारण कुत्र जाये और पीछे होता है । [ सर्वेण विधिं मुच्यते कथायां ] आगेष्ट एक मुच्यते कथाये है और [ यत् कथं नृणां के यत् कथं ] जो इसका ज्ञान मान है वह कहा रहा है ॥ ७ ॥

[ परस पल्लवाग्नी अर्य बहति ] इमै ओ जंघोति जखनी कालिवाकी है, वह अन्ततक पहुचती है । [ अन्तः ]  
 सुनतः अनुसुतं पश्यति ] ओ लोके ओति है ते ठीक प्रकार कडा रहे है । [ अन्तः अचानक धरते व वासं ] इत्यथ व पश्य  
 ती दीकता है । वरंष्ट पश्यतः नदी बहता । तथा [ पर वैदीयः अन्तरं दृष्ट्वा ] बहुत दूरका बहुत समीप है ओर ओ वाह है,  
 वही अति दूर है ॥ ८ ॥

[ चिन्मयिक कर्त्तव्यता : ] शिखे सुखवाता और ऊपर हृष्टमायवाता एक पात्र है [ अस्मिन् विचक्षणं पक्ष  
निहितं ] उद्यमे जला दधनात् नक्षरं रक्षा है । [ अथ सप्त भद्रवाः साक्ष जातयः ] बहो दाय दाय छत नवि वेडे है [ ये  
करन भद्राः कोवाः यभूयुः ] जो हस महाभुभावके धेरसक हैं । १ ॥

[ वा सुररमा सुगते वा य वमात् ] ओ आगे ओर पीछे छुडी रहती है [ वा बिचरो सुगते वा य वमात् ] ओ  
 बापों ओर से सब पदार छुडी रहती है [ यवा यवा प्रादु तावत ] जिसका वक्ता पुरखी ओर कैमना जाता है [ जल  
 पूरकामि ] सब विपरीत में तुम पूरका हू [ जवा वा कठमा ] कवाभीमें वह कैमनी है ॥ १ ॥

[ बन्नु बज्जति पतति बन्नु च छिपति ] ओ बांछता दे पिरता दे ओर को रियर रहता है [ बन्नु बज्जत्तु मिथिबन्नु च सुन्नत्तु ] ओ प्राण कारण करैनाता तापरहिय ओर ओ भियेपन्नच करता दे ओर को होता है [ ठण् मिथिबन्नु पुत्थिनी द्याता ] तह मिथिबन्नु बरप हस हप्पीछ कारण करता दे [ ठण् संभूच बन्नु बन्नु अबति ] यह सब मिथिबन्नु ६। होता है ५११॥

[अवस्था बुद्धि विमर्श] अनाग याही ओर केलाहे [अवस्था अवस्थान्तरावस्था] अनाग और अवस्थान्तरे से ही एक दूसरे के मिले हैं। [अवस्था वर्णन कल अवस्था के विनिश्चय] इनके भूतकालीन और गतिविध्यकालीन तथा वर्तमानकालीन रूप व रंगों से धारण में विवेक करना हुआ और यहाँ [विज्ञान] सबको जानना हुआ। [आकाशवाक्] वाणी मुखात्कथं प्रजापते ॥ ३१॥

प्रधापंतिभरति गर्भे अन्तरहस्यमानो बहुधा पि नायते ।

अर्धेन विभ्य सूर्यनं ज्ञानं यदस्पाद्यं कसुमः स केतुः ॥ १३ ॥

कृष्णं भर्तन्तमुदुक्कं कम्भेनेनैवोदहार्यमि । पश्यन्ति सर्वे चक्षुषा न सर्वे मनसा विदुः ॥१४॥

दूरे पूर्वेन वसति दूर ऊनेन शीयते । महद्यद्य भवेनस्य मध्ये तस्मै पालि राष्ट्रमर्तो मरन्ति । १५

यतः धर्मो रक्षेत्समा यत्र च गच्छति । तत्रैव मन्येऽहं ज्येष्ठं तद् नास्म्येति किं घन ॥ १६ ॥

ये अर्वाह मध्य उत्त वा पराण वेदै विद्वांसमभितो षडति ।

अद्विष्टमेव ते परि वदति सर्वे अग्निं द्वितीयं त्रिषुतं च इंसम् ॥ १७ ॥

सहस्राक्षं विपत्तावस्य पथौ हरेर्हंसस्य पततः स्वर्गम् ।

स देवान्तस्तद्वर्तुरस्युपदधे सुपश्यन् यामि मुषनानि विशा ॥ १८ ॥

सत्येनोर्ध्वस्तपति मन्त्रणाऽर्वाक् वि पश्यति ।

प्राणेन तिर्यह् प्राणति यस्मिन् ज्येष्ठमधि भित्तम् ॥ १९ ॥

वर्षे [प्रसारित] आदेशमात्र: वर्षे जम्मा [कार्य] प्रसारित आदेश होता हुआ वर्षे जम्मा अपार करता है और [वस्तु] विस्तार [वह] अनेक प्रकारसे उत्पन्न होता है। [अर्थ] विचार-सुख आना [अर्थ] मानते हुए सुख-बोध उत्पन्न करता है, [यह] अर्थ वर्षे सा कथन: वेद।] जो इसका बुरा भाव है उसकी विद्या की वना है। ॥ १३ ॥

[ कुम्भमेव उद्भूतं कार्यं भगवत् उद्धारार्थं ह्य ] भेगा गच्छेत् जलमेः भरकर ऊपर भागियाका पहार होता है । [ सर्वे यत्प्रया  
परमि ] वय भांसक लेकते हैं । [ सर्वे भवसा न विदुः ] परंतु सब मनुते नहीं भावते ॥ ३४ ॥

[एनैत दूरे बसति] एनैत होमैत भी दूर रहता है [ऊनैत दूरे हीबसे] मून होमैत भी दूर हो रहता है। [सुबनस मन्ने महत्त बसत] विशिष्ट बीबसे बसा पूज्य देव है [एनैत शम्भूबस बसि नरमनि] बसके बिने शम्भू देव बसा बसिदान करते हैं ॥ १५ ॥

[illegible]

[ ये बर्बाद मध्ये असत वा पुरातन ] जो बरोवाले कीचट अथवा पुराने [ वेद विद्वांस आनंदा वदन्ति ] वेदवेत्ताधी  
 यो जोरु बर्बाद करते हैं [ ते सर्वे आदिश्वर एव परि वदन्ति ] ये स्व आदिशक्ती ही प्रशंसा करते हैं [ द्वितीय अर्थ ]  
 एव अर्थ जोर [ विद्वत् ब्रह्म ] निवृत्त हों की ही प्रशंसा करते हैं ॥ १० ॥

[illegible]

(भाष्यन कर्त्तव्यः तस्यै) कथमे कथं कथं तस्यै हे, (मन्त्रा कर्त्तव्य विद्वत्सु) कथमे कीमे देवता हे ।  
(भाष्यन निर्देशः शास्त्रिणः) शास्त्रे निर्देशः शास्त्रे न हे (कर्त्तव्यः जेवै कर्त्तव्यः) किमे किं कथं तस्यै हे । १९५

यो वै ते विद्यापुरणीं याम्भीं निर्मज्ज्यते वसु ।

स विद्वान् ज्येष्ठ संनयेत् स विद्याद्वाराजं मुच्यते ॥ २० ॥ (२७)

अपादग्रे सर्वममत् सो अग्रे खं१ रामरत् । चतुष्पाद् भूत्वा भोग्यः सर्वमादत् भोजनम् ॥२१॥

भोग्यो भवदधो अर्धमदद्गुह । यो देवर्मुत्तरावन्तमुपासातै सनातनम् ॥ २२ ॥

सनातनमेतमाहुताद्य स्थात्पुनर्णवः । अहोरात्रे प्र जायते अन्वो अन्यस्व रूपयोः ॥२३॥

अत सुहर्षमपुन न्यु१ कुदमतस्त्रयेय स्वमस्मिभिर्विष्टम् ।

तदेस्य मन्त्रमभिपश्यत एव तस्मादेवो रौचत एव एतत् ॥ २४ ॥

माहादेकमजीयस्कृतैक नेष दृश्यते । ततः परिष्वजीयसी देवता सा मम भिवा ॥२५॥

इय कस्यान्य१मरा मर्त्यस्यामृता गृहे । यस्मै कृता ध्ये स यश्चकार अजरा सः ॥२६॥

अर्थ- ( यो वै ते अती विद्यात् ) जो उस दोनों अरविदोंको आचरा है ( याम्भीं बहुत निर्मज्जते ) मिलते बहुत विद्या किवा आचरा है । ( सः विद्वान् ज्येष्ठ संनयेत् ) वह ज्ञानी ज्येष्ठ ब्रह्मकी आचरा है और ( सः महत् ब्रह्मत् विद्यात् ) वह बड़े ब्रह्मके भी आचरा है ॥ २० ॥

( यत्र अपाद् स अममत् ) पार्श्वमें पादरहित आचरा एक ही था । ( सः अग्रे स्वाः आमात् ) वह पार्श्वमें स्वस्व मंद आचरा रहा । बही ( चतुष्पाद् भोग्यः भूत्वा ) चार पादवाला भोग्य होकर ( सर्वं भोजनं आदत् ) सब भोजनको प्राप्त करने लगा ॥ २१ ॥

( भोग्य अममत् ) वह भोग्य हुआ ( अतो बहुत अर्थ अदत् ) बहुत अर्थ देने लगा । ( सः सनातनं ब्रह्मब्रह्मत् देवं उपासते ) जो सनातन और अहं देवकी उपासना करता है । ॥ २२ ॥

( यन् सनातनं आहुः ) इसे सनातन कहते हैं ( तत आद्य पुनः मयः स्वात् ) और वह आमाही फिर मया होत है । इससे ( अन्वो अन्यस्व रूपयोः ) परस्परके रूपके ( अहोरात्रे प्र जायते ) दिन और रात होते हैं ॥ २३ ॥

( तत सुहर्षं अपुन ) की इयाः यस इयरा ( न्यपुनं अर्धमर्त्यं स्वं अमिष्ट विविष्टम् ) काक अथवा अर्धम स्वरूप इसमें है । ( अत्य अभिपश्यतः एव ) इसके देखते ही ( तत् प्रसित ) वह सरव आचरा करता है ( तस्मात् एव केन पश्यत रोचते ) इससे वह देख इसको मर्षित काका दे ॥ २४ ॥

( एक माहाद् अजीयस्क ) एक माहते भी सुख है ( तत सुहं नैव दृश्यते ) और दृष्ट दीक्षन ही नहीं । ( ततः परिष्वजीयसी देवता ) अतने जो दोनोंको आभिपन्न देनेवाली देवता है ; ( सा मम भिवा ) वह छो भि है ॥ २५ ॥

( इयं कस्यान्य१मरा ) यह कस्यान्य करनेवाली अचरा है ( मर्त्यस्व गृहे अमृता ) मर्त्यवालेके घरमें अमर है । ( यस्मै कृता सः ध्ये ) जिसके करने की जाती है, वह देखता है और ( सः चकार सः अजरा ) जो करता है वह दृष्ट होता है ॥ २६ ॥



यत्र देवार्थं मनुष्याभिरा नामाविभ्रिताः ।

अर्पा स्वा पुष्यं पृच्छामि यत्र उन्मायया द्वितम् ॥३४॥

येमिर्वर्त इष्टितः प्रधाति ये ददन्ते पञ्च दिव्यः सध्वीधीः ।

य आहुतिमत्यमेन्यन्त देवा अर्पा नेवारः कतुमे व आसन् ॥३५॥

इमामेपा पृथिवी वस्त एकोऽन्तरिक्षं पर्येको समूष ।

दिवमेपा ददते यो विप्रता विश्वा आद्याः प्रति रक्षन्त्येकं ॥३६॥

यो विद्यास्त्रं विततं यस्मिन्भोताः प्रजा इमा ।

स्रष्टं स्रष्टस्य यो विद्यात्स विद्याद्वाङ्मयं गृहत् ॥३७॥

वेदाः स्रष्टं विततं यस्मिन्भोताः प्रजा इमाः । स्रष्टं स्रष्टस्याहं वेदाद्यो यद्वाङ्मयं गृहत् ॥३८॥

यदन्तरा घावापृथिवी अमिरैः प्रहर्हन्विश्वदुष्यः ।

यत्रातिमुमेकपत्नीः पुरस्तारकवासी मातुरिषा तुदानीम् ॥ ३९ ॥

अप्स्वामीन्मातुरिषा प्रविष्टः प्रविष्टा देवाः संखिलान्पासन् ।

पुहर्हं तस्यो रसंसो विमानः परमानो दुरित आ विविध ॥ ४० ॥

अथ- [ देवाः य मनुष्याः य ] देव और मनुष्य [ नामी आताः इव यत्र विद्याः ] नामिने और जगन्नेके वचन का अभिप्राय है उस [ अर्पा अथवा आहुतिमि ] आहुति-तत्त्वके पुनराह्वय में ऐसे पुच्छता है कि [ यत्र यत् मानव विद्यया ] जहाँ या मानवके आश्रयित होकर रहता है ॥ ३४ ॥

[ यम इष्टितः यत्रः प्रधाति ] जिसके श्रित हुआ मानु रहता है [ ये सध्वीधीः पञ्च प्रदिशः दृष्टमे ] ये पितृ पुत्री पात्री विष्ट में वारण करते हैं [ ये देवा आहुति अति अमनन्त ] जो देव आहुतिके अधिक मानते हैं, [ ये जगन्नेवारः कतम आसन् ] ये जगन्नेके आता मानते हैं ॥ ३५ ॥

[ एपा देवा इमा इमिषी वस्त ] इममेके एक इस पृथ्वीपर रहता है [ एका अन्तरिक्षं परिवसन् ] एक अन्तरिक्षमें व्याप्त है [ एपा या विप्रता ] इममे जो वारण के वह [ दिव्यं ददते ] पुत्रीवत्ता वारण करता है, और [ ये जगन्नेवारः कतम आसन् ] इस सब विद्याओंकी रक्षा करते हैं ॥ ३६ ॥

[ यस्मिन् इमाः प्रजा भोताः ] जिसमें वे सब प्रजा पितृवर्ग हैं [ यः विप्रस्य स्रष्टं विद्यात् ] जो इस पितृके इनको जगन्ने और [ स्रष्टस्य स्रष्ट यः विद्यात् ] स्रष्टके स्रष्टको जो जानता है [ यः गृहत् वाङ्मयं विद्यात् ] वह वही वाङ्मये व्याप्त है ॥ ३७ ॥ [ यस्मिन् इमाः प्रजाः भोताः ] जिसमें वे प्रजा पितृवर्ग हैं [ यः विप्रस्य स्रष्ट वेद ] ये वह देव इमा स्रष्ट जगन्ने हैं । [ स्रष्टस्य स्रष्ट यः वेद ] स्रष्टका स्रष्ट भी मैं जानता हूँ और [ यः गृहत् वाङ्मयं विद्यात् ] और जो वही वाङ्मय है, वह भी मैं जानता हूँ ॥ ३८ ॥

[ यत् वावापृथिवी अमिरा ] जो पुष्पक और इषीके बीचमें [ विश्वदुष्यः अमिरा अमिरा ] विश्वकी अमिरा व्याप्त होता है [ यत्र अमिरात् एकपत्नीः अतिप्रह ] जहाँ अमिरा एक पत्नीही रहती है [ यदावी मातुरिषा अप इव अमिरा ] उस समय यन्तु यदा वा ॥ ३९ ॥

[ मातुरिषा अप्यु प्रविष्टः आनीत् ] मातु जगन्नेमें प्रविष्ट या [ देवा संखिलानि प्रविष्टाः आसन् ] देव जगन्नेमें प्रविष्ट के [ पुहर्हं ददन्तः विमानः कर्षी ] सब समय वहा ही रक्ता विमान जगन्ने या और [ परमानः दुरित आ विविध ] मातु सूर्यदेवोंके वध या ॥ ४० ॥







यत्ते शिरो यत्ते मुख यौ कर्णौ ये च ते हन् । आमिषां दुहतां दात्रे क्षीरं सपिरयो मधु ॥१३॥  
 यौ च ओष्ठौ ये नासिके ये शृङ्गे ये च तेऽर्क्षिणी । आमिषां दुहतां दात्रे क्षीरं सपिरयो मधु ॥१४॥  
 यत्ते ह्योमा यद्दृढं पुरीतस्तहकण्ठिका । आमिषां दुहतां दात्रे क्षीरं सपिरयो मधु ॥१५॥  
 यत्ते यक्ष्मे मत्तस्ते यदात्र याम्ब ते मुदाः । आमिषां दुहतां दात्रे क्षीरं सपिरयो मधु ॥१६॥  
 बल्ले प्लाक्षिपौ वनिष्ठुर्यौ फुषी यम्ब चर्म ते । आमिषां दुहतां दात्रे क्षीरं सपिरयो मधु ॥१७॥  
 यत् ते मूला यदस्थि यन्माम यम्ब लोहितम् । आमिषां दुहतां दात्रे क्षीरं सपिरयो मधु ॥१८॥  
 यौ च बाह्वे ये दोषणी यावसौ या च ते ककुत् । आमिषां दुहतां दात्रे क्षीरं सपिरयो मधु ॥१९॥  
 यास्तैः प्रीवा ये स्कन्धा याः पूरीर्याम्ब पर्श्वेभः । आमिषां दुहतां दात्रे क्षीरं सपिरयो मधु ॥२०॥ (३१)  
 यौ च कुरु अष्टीवन्तौ ये ओष्ठी या च ते मसत् । आमिषां दुहतां दात्रे क्षीरं सपिरयो मधु ॥२१॥  
 यत्ते पुच्छं यत्ते बाला यदधो ये च ते स्तनाः । आमिषां दुहतां दात्रे क्षीरं सपिरयो मधु ॥२२॥  
 यास्ते बह्वा याः कृष्टिका कृच्छरा ये च ते शृफाः । आमिषां दुहतां दात्रे क्षीरं सपिरयो मधु ॥२३॥  
 यम्ब चर्म क्षतौदने यानि लोमान्यम्बे । आमिषां दुहतां दात्रे क्षीरं सपिरयो मधु ॥२४॥  
 श्लेष्मैः तैः स्तां पुरोद्धाव्नावान्येनाभिधारितौ । तौ पक्षौ देवि कृत्वा सा पृक्कार दिव्यं वह ॥२५॥  
 उखल्ले मुसले यम्ब चर्मणि यो वा शूर्पं तण्डुलः कर्णः ।  
 य वा वातौ मातरिष्ठा पर्वमानो ममाथाधिपदोऽसौ सुदृढं कणोत् ॥ २६ ॥

अब- ( यत् ते शिरो ) जो ते। शिर ( यत् ते मुखं ) जो तेरा मुख है ( यौ च ते कर्णौ ) जो तेरे कर्ण हैं ( ये च ते हन् )  
 ये तेरी हन् हैं ( दात्रे आमिषां क्षीरं सपिंजो मधु दुहतां ) दाताका वही रूप यी क्षीर मधु देवे ॥ १३ ॥

[ यौ च ओष्ठौ ] जो तेरे आठ हैं ( शृङ्गे अर्क्षिणी ) जो तेरे शीर्ष और आंख हैं ( ते ह्योमा इत्यं पुरीतम् मद  
 कण्ठिका ) जो तेरा हृदय मध्यस्थ और कण्ठका नाम है ( ये ककुत् मत्तस्ते बालम् मुदा ) जो तेरा ककुत् मुँह आते  
 और मुदा हैं [ ये स्तनाः ] यनिष्ठु फुषी चर्म ] जो तेरे पिन्ही गुरामाय दोष और चर्म हैं ( ते मूला अस्थि मांस  
 ककुत् ) जो तेरी मूला अस्थि मांस और ककुत् हैं ( ये बाह्वे दोषणी अंशो ककुत् ) जो तेरे बाह्वे दोषणी अंशो ककुत्  
 और हैं ( ये प्रीवा स्कन्धाः पूरीः पर्श्वे ) जो तेरे गर्दन चर्म और शिरः ककुत् हैं ( ये कुरु अष्टीवन्तौ ओष्ठौ मसत् )  
 जो तेरी अष्टीवन्तौ ओष्ठौ मसत् हैं ( ये पुच्छं बालाः अधोः स्तनाः ) जो तेरा पुच्छ बाला गुरामाय और स्तन हैं  
 ( ये बह्वा कृष्टिका कृच्छराः शृफाः ) जो तेरी बह्वा कृष्टिका कृच्छरा हैं ( ये चर्म ओष्ठानि ) जो तेरे  
 चर्म और ओष्ठ हैं ( क्षतौदने ) य। [ दात्रे क्षीरं आमिषां ] दाताको रूप वही यी क्षीर मधु देवे ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥

दे घतौदने यौ । ( ये ओष्ठौ ) तेरे चर्ममाय ( आधेन अभिधारितौ पुरोद्धावौ स्तां ) पीडाका अधिपत पुरोद्धाव  
 हैं। दे देव । ( तौ पक्षौ कृत्वा ) अपने देव बनाकर ( सा पृक्कार दिव्यं वह ) वह पृक्कार दिव्य स्वर्गार ले  
 वा ॥ २५ ॥

[ यत्ते मुखं ] जो कर्ण और मुख [ चर्मणि यो वा शूर्पं तण्डुलः कर्णः ] चर्मण तथा शूर्पे जो चर्मण  
 २६ ॥ २७ ॥ ( य वा वातौ मातरिष्ठा पर्वमानो ममाथाधिपदोऽसौ सुदृढं कणोत् ) य वा वातौ मातरिष्ठा पर्वमानो ममाथाधिपदोऽसौ सुदृढं  
 कणोत् ॥ २६ ॥

अपो देवीर्मधुमतीर्धृतश्चूतो ब्रह्मणा इत्येतेषु प्रपृथक्सादयामि ।

यस्कांम इदममिषिष्यामि वोऽह उन्मे सर्वे स पयसा वयं स्याम परं वो रवन्माह ॥ २७ ॥ (११)

अर्थ—[ मधुमती धृतश्चूता देवीः आपः ] मधुमती नीचे देवेवासी दिव्य जलपाणी ( ब्रह्मणा इत्येतेषु म धृक् अन्व-  
यामि ) शस्त्रादि हाथोंमें जलग्रहण करता है । ( यत् कामा इदं यः अहं अमिषिष्यामि ) मित्रही इच्छा करता हुआ है  
नह आपमें अमिषिक करता हूँ [ वयं स सर्वे पयसा ] नह मुझे सब प्राप्त हो ( अर्थ रवीश्वर पयसा स्वाम ) इन सब पयसों  
पति करें ॥ २७ ॥

## ( १० ) वशा गौ ।

( श्रुतिः—कश्यपः । देवता—वशा । )

नमस्ते श्रावमानायै आतापां वृत ते नमः । शालेभ्यः क्षुफेभ्यो रूपायाभ्ये ते नमः ॥ १ ॥

यो विद्यात्सुप्त प्रवतः सुप्त विद्यात्परावतः । शिरों यज्ञस्य यो विद्यात्स वृद्धां प्रति गृह्णिवन् ॥

वेदाह सुप्त प्रवतः सुप्त वेद परावतः । शिरों यज्ञस्याहं वेदु सोमं चास्वां विष्वक्पद ॥ १ ॥

यया धौर्यवा पृथिवी ययापो गुपिता इमाः । वृद्धां सहस्रचारं ब्रह्मणाच्छावदामसि ॥ ४ ॥

वृत कृताः वृतं दोग्धारः वृतं गोसारो अर्धं पुष्टे अस्याः ।

ये देवास्तस्यां प्रावन्ति ते वृद्धां विदुरेक्षा ॥ ५ ॥

अर्थ—दे ( अन्वये ) इमं करके अमोघ गौ । ( ते श्रावमानाये वयाः ) उत्पन्न होनेके समय मुझे बमस्कार है । ( वयं  
आतापौ ते वयाः ) उत्पन्न हुईं तुमको बमस्कार है । ( ये शालेभ्यः क्षुफेभ्यः कस्यां वयाः ) ठेरे वनों काटों और स्थले जिन  
जगत्कार है ॥ १ ॥

( यः सुप्त प्रवतः विद्यात् ) जो सुप्त प्रवाह—जीवनप्रवाह—जागता है ( यः यः सुप्त परावतः विद्यात् ) और जो सुप्त  
अन्तर्लोके—स्वाप्नलोके—जागता है तथा जो ( यज्ञस्य शिरः विद्यात् ) यज्ञका शिर जागता है वही ( वयां प्रति गृह्णिवन् )  
वृद्धा वीक्ष्य लींकार करे ॥ १ ॥

( अहं सह प्रवतः वेद ) मैं सुप्त जीवनप्रवाहलोके—प्राणलोके—जागता हूँ, ( सुप्त परावतः वेद ) सुप्त स्वाप्नलोके—हृदय  
स्वाप्नलोके—मैं जागता हूँ । ( यज्ञस्य शिरः यः अहं वेद ) यज्ञका शिर मैं—यज्ञका मुख जगता भी जागता हूँ ( वयां विष्वक्पदं  
सोमं यः वेद ) हममें विष्वक् पदमोचनेके सोमकी भी मैं जागता हूँ ॥ १ ॥

( यया धौर्यवा पृथिवी इमा वयाः यः गुपिताः ) विष्वक् सुभोक, पृथिवी और सब जमीनी सारका को है वयं [ वयं  
पारां वयां ] वयं इमां अमृतपारा देवैवासी वया नीची ( यज्ञाणां ब्रह्मणा वयावसि ) ब्रह्मद्वारा वयस रीतिसे प्रवर्धित करते  
हैं वयकी प्रवृद्धा करते हैं ॥ ४ ॥

[ वयसो अमिष्यते ] इसकी रक्षा करनेके लिये इसकी पीठपर [ वयं दोग्धारः वयं पयसा ] यी मधुमती वय कोनेकोने  
की वयस पानीको लेकर धाव धाव [ वयं गोसारः ] यी इसकी रक्षा की इस नीचे धाव चलते हैं । [ ये देवाः वयसं  
प्रावन्ति ] जो देव वय नीचे अमिषित रहते हैं [ वं पृथगा वयां विदुः ] ये एकमतसे योक्ष सहज वयसत् जानते हैं ॥ ५ ॥

यज्ञपदीराक्षीरा स्वभाषाणा महीलुका । वृक्षा पर्जन्यपत्नी देवो अप्यति ब्रह्मणा ॥ ६ ॥  
 अनु स्वाभिः प्राविशदनु सोमो वशे त्वा । ऊर्ध्वस्ते मग्ने पर्जन्यो विद्युतस्ते स्तना वशे ॥ ७ ॥  
 मपस्व धुंशे प्रथमा तुर्वरा अपरा वशे । तृतीयं राष्ट्र घुम्हेऽर्धं क्षीर वशे स्वम् ॥ ८ ॥  
 यदादित्यैर्यमानोपारिष्ठ ऋतावरि । इन्द्रः सहस्रं पात्रान्तोर्मै स्वापायमग्ने ॥ ९ ॥  
 यदनुषान्द्रमेराश्वं श्रपमोऽह्वयत् । तस्मात्ते वृत्रहा पराः क्षीर क्रुद्धोऽह्वरग्ने ॥ १० ॥  
 वशे क्रुद्धो घनपतिरा क्षीरमह्वरग्ने । इदं तदप्य नाकस्त्रिय पात्रेषु रक्षति ॥ ११ ॥  
 त्रिषु पात्रेषु च सोममा देव्यहरद्वष्टा । अयंवा यत्र दीक्षितो वहिष्यास्वं हिरण्यये ॥ १२ ॥  
 च हि सोमेनागतं समु संशेण पदतो । वृक्षा संमुद्रमर्घ्याद्गन्धैः कलिभिः सह ॥ १३ ॥

वर्ष—[यज्ञपदी आक्षीरा] यज्ञमें विद्युत के स्थान प्राप्त हुआ है जो वृष देवी है [स्वभाषाणा महीलुका] अन्नरूप प्राण्यक्ष  
 कारण करनेवाली होनेके कारण इस पृथ्वीपर जो प्रसिद्ध है । यह [पर्जन्यपत्नी वृक्षा] बुद्धिद्वारा प्राप्त आदि अन्नरूप होनेके  
 विषय प्रत्यक्षरूप होता है वह गो ( अह्वय देवाय अयमेति ) अन्नरूप अन्नके देवोंको प्राप्त करती है ॥ ६ ॥

हे ( वशे ) गो ! ( त्वा अग्निः अनुप्रविशत् ) तुझे अग्नि प्राप्त हुआ है ( सोम वज्र ) सोम भी प्राप्त हुआ है । हे ( मग्ने )  
 अन्नदाय करनेवाली गो ! ( ते ऊर्ध्वः पर्जन्या ) तेरा वृषस्थान पर्जन्य ही है । हे वशा गो ! ( ते सवा विद्युत ) तेरे स्तन  
 निपुण हैं । इस तरह अन्नवादि देवताओंकी शक्ति का तेरे अन्दर है ॥ ७ ॥

हे ( वशे ) वृक्षा गो ! ( त्व प्रथमः अणा धुंशे ) तू सबसे प्रथम वज्रको कुहती—देती है, ( अपरा ऊर्ध्वरा )  
 दूसरा वज्रको भीतिके समान प्राण्य देती है । ( तृतीयं राष्ट्रं धुंशे ) तीसरा राष्ट्रीय वज्र देती है ( त्वं अर्धं क्षीरं ) तू  
 वज्र और क्षीर—दूध—देती है ॥ ८ ॥

हे ( वशे ) गो ! हे ( आतावरी ) वृषकपी लक्ष देवेनली गो ! ( यत् आदित्यैः वृक्षमाणा ) जब तू आदित्यों द्वारा  
 वज्र प्राप्त करती हुई ( उपारिष्ठः ) समीप आती है तब ( इन्द्रः सहस्रं पात्रम् ) इन्द्र हजारों बर्तनोंको केन्द्र ( त्वा सोमं  
 श्रपयत् ) सोमरस पिता है ॥ ९ ॥

हे ( वशे ) गो ! ( यत् अनुषीः इन्द्रो देवः ) जब तू अनुषल्लोके इन्द्रको प्राप्त होती है ( त्वा अह्वयः अणा अह्वयत् )  
 तब तुझे वृष समीपके पुष्करता रहा । हे वशा गो ! ( त्वरमात् क्रुद्धः वृत्रहा ) इस कारण क्रोधित हुआ इन्द्र ( ते वशा क्षीरं  
 वरात् ) तेरा वृष और वज्र हरण रहा ॥ १० ॥

हे वशा गो ! ( यत् क्रुद्धः घनपतिः ) जब क्रोधित हुआ घनपति ( ते क्षीरं अह्वरत् ) तेरा वृष लेता है तब वज्रको कि  
 ( इदं तत् वज्र ) वह वज्र आज ( याका त्रिषु पात्रेषु रक्षति ) स्वर्गचामदी कोमके रूपसे तीन बर्तनोंमें रक्षता है ॥ ११ ॥

( यत्र दीक्षित अयंवा ) यहां दीक्षा किया अयंवेदेरी वज्रकर्ता ( हिरण्यये वरिणि आसे ) स्वर्गवज्र अन्नरूप  
 देता है ( सं ) तबके पास ( त्रिषु पात्रेषु सोमो ) तीनों बर्तनोंमें सोम भी ( वशा देवी अह्वरत् ) देवी वशा गो के आती है  
 इस रूपसे पहुंचा देती है ॥ १२ ॥

( वशा सोमेन सं वागत ) गो सोम और वशीको प्राप्त हुए और ( संवेन वृक्षा सं च ) तब वज्रचामदी—वज्रधारीको जो  
 प्राप्त हुई । ( वशा कलिभिः मंत्रैश्च सह ) वह गो वज्र करनेवाला वज्रोंके साथ ( यन्मुद्रं अयमाह्वयः ) अन्नरूप अन्नदाय करती  
 रही । अर्थात् अन्नरूप जो वीर्य नाम देवता है ऐसा वाचवर्ण है ॥ १३ ॥

स हि वातेनार्गतु समु सर्वैः पतत्रिभिः । वृक्षा समुद्रे प्रानृत्यवृक्षः सामानि विभ्रती ॥१४॥  
 स हि सूर्येनार्गतु समु सर्वेषा चक्षुषा । वृक्षा समुद्रमर्त्यस्य वृक्षा न्योतीषि विभ्रती ॥ १५॥  
 अमीवृता हिरण्येन यदतिष्ठ श्रतावरि । अर्थः समुद्रो भूतवाप्यस्कन्दवृक्षे स्था ॥ १६ ॥  
 वृक्षाः समगच्छन्त वृक्षा वेष्टयथो स्वधा । अर्थर्था यत्र वीक्षितो बहिष्प्यास्तं हिरण्यवै ॥१७॥  
 वृक्षा माता राजन्यस्य वृक्षा माता स्वध तव । वृक्षाया युक्त आपुच ततश्चिचमभायत ॥१८॥  
 कुन्तो विदुर्दधरवृक्षणः ककुदादधि । ततस्त्वं वीक्षिषे वक्षे ततो होताजायत ॥१९॥  
 आस्रस्ते गावा अमवक्षुणिहाम्यो बलं वक्षे । पाशस्माज्जिह्वे यज्ञ स्तनेभ्या रुक्ममुत्तप ॥२०॥(१४)  
 ईर्माभ्यामयन ज्ञात सन्धिभ्यां च वक्षे तव । आन्त्रेभ्यो बहिरे अत्रा उदरादधि वीक्ष्यः ११

वर्षे—(वृक्षा जन्म) सामानि विभ्रती) या वृक्षमें जन्मा और सामानों को बारण करती हुई (वातेन से जयत) वसुध के समुद्र (सर्वैः पतत्रिभिः हि सं) एक पाषाणोंसे मिलकर (समुद्रे प्रानृत्यवृक्षः) समुद्रपर जायने लगी । इस तरह बीजा जन्म करती होती है ॥ १४ ॥

(वृक्षा सूर्येन सं जयत) यी सूर्यसे मिली है (सर्वेषा चक्षुषा से व) एक आँखोंसे मिली है । (अत्रा जन्मा ज्योतिषि विभ्रती) फलदायकरीषी यी अनेक देवोंका बारण करती हुई (समुद्रं मर्त्यस्य) समुद्रके परे देखने लगी । उदरक लगी प्रतिष्ठा हुई है ॥ १५ ॥

हे [अत्रावरि] हे अन्नको देनेवाली यी ! [हिरण्येन अमिहृता यत् अतिष्ठा] जब सुवर्णमूल्यसे कुछ होकर जब तु जमी होती है हे [वक्षे] यी ! [स्वा अणि समुद्रा जन्मा वृक्षा वस्तन्यत्] तेरे पास समुद्र अन्न बनकर जा सक, यह चेष्टा महत्त्व है ॥ १६ ॥

[वृक्ष वीक्षितः अर्थर्था] जहाँ जिस वृक्षसे वीक्षित अर्थदेवी (हिरण्यवै बहिषि आस्ते) प्रदर्शनकर आरुचक देख दे वहाँ (महा अमगच्छन्त) सब पुरुष एकत्र हुए और वहाँ (वक्षा वेष्टी जयो स्वधा) दान देनेवाली यी और कर्त्त वक्षस्वमें वरपति हुई ॥ १७ ॥

(राजन्यस्य माता वक्षा) धर्मिणी की माता यी है हे (स्वधे) जन ! (वक्ष माता वक्षा) देवी की माता यी है । (वक्षाया आपुच वक्षे) जैसे कल जलन हुआ है और (तथा विष्ट अभायत) उससे विष्ट वक्ता है । अर्थात् जैसे सब और वृक्ष दोनों होती हैं ॥ १८ ॥

(वृक्षाया ककुदादधि) वृक्षाके ऊपर भागसे (विन्तो कर्भः ककुदारत्) एक रूख बनकर चल पड़ा, हे (वक्षे) यी ! (तथा रवं वीक्षिषे) उससे तु उत्पन्न हुई है । और (तथा होता जायत) उससे ही पश्चात् होता-इव कदा-जन्म हुआ । अर्थात् नैमि वृक्षाज्जिह्वेन वक्षे के क्योंकि यह पक्षिसे हुई है ॥ १९ ॥

हे (वक्षे) यी ! (ते आकाः गावा अययत्) तेरे मुखसे गावाएँ बबी (अमिहृतायाः कर्त्त) तेरे गर्भसे मायसे सब उत्पन्न हुआ है (पाशस्मात् वक्षा वक्षे) तेरे गुरुपाशसे बना हुआ और (तव) तेरे (स्तनेभ्या रुक्मया) कर्त्तों से रिरण हुए हैं । इस तरह जैसे यह सब उत्पन्न हुआ है इत्यादि योका यहिमा है ॥ २० ॥

(यव ईर्माभ्यां) तेरे काहुओंसे तथा (सन्धिभ्यां अर्थर्था कर्त्त) दोनोंसे जन्म होता है । हे (वक्षे) यी ! हे (आन्त्रेभ्याः जन्मा) आँतोंसे अनेक प्रकार और [उदरात् वीक्ष्यः] पेटसे वनस्पतियों उत्पन्न हुई हैं ॥ २१ ॥

यदुद्धर वरुणस्यानुप्राविशया वधे । तर्तस्या म्रशोर्वह्यस्त हि नेत्रमपेक्ष्य ॥ २२ ॥

सर्वे गर्भीदधेयन्तु सायमानादसूक्ष्मः ।

सद्यश्च हि तामाहुर्वधेति ग्रसंभिः क्लृप्तः स ह्यस्या वधुः ॥ २३ ॥

युप एकः सं सृजति यो अस्या एक इक्षी । त्रींषि यज्ञा अमवन्तरसां चक्षुरमवदृष्टा ॥ २४ ॥

वृष्टा युष्टं प्रत्यपृष्टावृष्टा सूर्यमधारयत् । वृष्टायामन्तरविष्टदोषानो म्रक्षणा सह ॥ २५ ॥

वृष्टामेवाधृतमाहुर्वृष्टा मृत्युसुपांसते । वृष्टेह सर्वममवधेया मनुष्या इ मरुताः पितरु अप्रयः ॥ २६ ॥

य एव पिपात्स वृष्टां प्रति गृहीयात् । तथा हि यज्ञः सर्वपादो द्वात्रेज्यस्फुरन् ॥ २७ ॥

विशो विष्टा वरुणस्यान्तर्दीप्तस्यासनि । तासां वा मध्ये राजति सा वृष्टा दुःमतिग्रहा ॥ २८ ॥

धृष्टुर्वा रेतो अमवदृष्टार्याः । आपस्तुरीयममुत्तरीय यज्ञस्तुरीय पृष्ठवस्तुरीयम् ॥ २९ ॥

अर्ध- हे ( वधे ) गी । ( यत् वरुणस्य उद्धरे ) जो वरुण के उद्धरमें लु ( अनुप्राविशयाः ) प्रविष्ट हुई है ( तदा म्रशो त्वा यत् म्रश्वत् ) तब म्रशोने लुके म्रश्वत् किया वा । ( सः हि तत्त नेत्रं अपेक्ष्य ) वह तेरा नेत्र अपेक्ष्य है । अर्थात् पीका महत्त्व को ही म्रश्वत् है ॥ २२ ॥

( वस्तुतः सायमानात् ) प्रसन्नमे अवसर्ग्य पीकी ( गर्भात् सर्वे गर्भेयन्तु ) पर्याप्तस्थितिसे सब गर्भमे जाते हैं । ( तां वधुः यथा वस्तुत इति ) उसीको कहते हैं कि वह गी प्रसन्न के लिये अवसर्ग्य है । ( सः हि म्रक्षणा अस्या वधुः वरुणा ) गी प्रसन्नमे वरुण वधु माना है ॥ २३ ॥

[ एका वधुः संजयति ] एक जोड़ा व्यवसायो करता करता है । ( यः अस्या इत् वधो एकः ) जो इस पीका एक ही वध करेगा है । ( यथाः त्रींषि अमवत् ) वह बार करनेवाले हैं और ( वरुणा वधुः यथा अमवत् ) बार होनेवालों की ओर की जाती है । पीकी उदावलासे सब लोग दुःखसे बार होते हैं ॥ २४ ॥

( यथा वर्धं प्रत्यपृष्टात् ) यथा गी वध कीकाली है, ( यथा सर्वं अप्रारयत् ) यथा गीने सर्वं प्रारम किया है । ( यथावा ओष्ठः अविरात् ) गीमें आत अन्त प्रविष्ट है और वह ( म्रक्षणा सह ) आतके साथ प्रविष्ट हुआ है । नाके आचार से वध, अन्त और आत म्रक्षणा रहते हैं ॥ २५ ॥

( देवा वृष्टा अमुत्त वधुः ) देव पीका अमुत्त करते हैं ( वृष्टा मृत्यु उपांसते ) पीकी मनुष्य समस्तकर उपांसता करते हैं । ( यथा इह सर्वं अमवत् ) गी ही वह सब हुई है अर्थात् ( देवाः मनुष्याः अमुराः पितरः अप्रयः ) देव मनुष्य अप्रय पितर और अप्रि वह वरापासी कप है ॥ २६ ॥

( या एवं विष्टात् ) जो वह उत्पन्नमाना जाता है, ( सः वरुणां प्रतिगृहीयात् ) वह यथा पीका साथ लेने । तथा यथा यत्त पृष्ठको ( यथाः सद्यश्च अमवत्कुलं युष्टे ) सद्यश्च अप्रारये सद्यश्च होकर विपक्षित न होती हुआ युष्टमेय फल प्रदाय करता है ॥ २७ ॥

( वरुणस्य आसनि वरुणा विष्टाः विष्टा ) वरुण के मुखमें तीन विष्टाएँ ( वर्यति ) अमवती हैं । ( तासां मध्य वा राजति ) उनके बीचमे जो विष्टा अमवती है ( या वरुणा ) वह वरुणा की ही है अतः वह ( दुःमतिग्रहा ) ग्राममें लीकार परना कहते हैं ॥ २८ ॥

( यथायाः रेतः अनुर्वा अमवत् ) यथा गीका बीच बार प्रदाते विनय हुआ है । ( वार उत्तरीय ) आत् अनुर्वा मध्य है ( अमुत्त उत्तरीय ) अमुत्त अन्त पीका मान है ( यथा उत्तरीय ) वध पीका मान है और ( वरुणा उत्तरीय ) वध पीका मान है । यह सब वरुणा अनुर्वा बीच है ॥ २९ ॥

यथा दीर्घसा पृथिवी वृक्षा विष्णुः प्रजापतिः॥ वृक्षायां दुग्धमविषमस्ताम्रा वस्त्रमग्नये  
 वृक्षायां दुग्धं पीत्वा साध्या वसंतमश्नते॥ ते वै प्रमत्स्यं विष्टपि पर्वो अस्मा कर्त्तव्यते ॥ ११ ॥  
 सोममेतामके दूधे घृतमेक उपासते । ये एवं विदुषे वृक्षां दुदुस्ते गृतास्त्रिदिवं विभः ॥ १२ ॥  
 ग्राह्यमेभ्यो वृक्षां दुग्धा सर्वास्तोक्तान्समभुवे । अतं कृत्स्नमापि तमवि ग्राह्यो वर्षः ॥ १३ ॥  
 वृक्षां देवा तपं क्षीवन्ति वृक्षां मनुष्या उत । वृक्षेदं सर्वममवृथावृत्तवो विषम्वसि ॥ १४ ॥

॥ इति वज्रमोऽनुवाकः ॥ ५ ॥

॥ इति वृक्षं काण्डं समाप्तम् ॥

( वृक्षा यौः ) वृक्षा यौ है ( वृक्षा पृथिवी ) वृक्षा ही पृथिवी है ( वृक्षा प्रजापति विष्णुः ) वृक्षा ही प्रजापति विष्णु है । ( ये साध्याः वसवः ॥ ) को साध्य और वसु हैं वे ( वृक्षायाः दुग्धं अविषम् ) वृक्षा मोक्ष दुध पीते हैं ॥ ११ ॥

( ये साध्याः वसवः ॥ ) को साध्य और वसु हैं वे ( वृक्षायाः दुग्धं पीत्वा ) वृक्षा मोक्ष दुध पीकर वसवः ( ये वै प्रमत्स्यं विष्टपि ) वे सर्वके स्वाभ्यर्थे ( अस्मा कर्त्तव्यते ) इतं वृक्षों भाति करते हैं ॥ १२ ॥

( वृक्षां सोमं दूधे दूधे ) इतले सोमका कर्त्तव्यी सोम किना है ( दूधे घृतं कर्त्तव्यते ) एवं इतले घृतले कर्त्तव्य करते हैं । ( एवं विदुषे वृक्षां दुदुः ) को इत प्रकारके विद्वान को वीक्ष्य प्रमाण करते हैं ( ते विभः त्रिदिवं विभः ) वे सर्वके भाते हैं ॥ १३ ॥

( ग्राह्यमेभ्यः वृक्षां दुग्धा ) ग्राह्योंको वृक्षा की दुग्धा ( सर्वास्तोक्तान् सं गृह्यते ) एवं मोक्षोंको प्राप्त करते हैं । ( अतं कृत्स्नमापि तमवि ग्राह्यो वर्षः ) इतं कृत्स्न, ज्ञान, तप आश्रित होते हैं ॥ १४ ॥

( वृक्षाः वृक्षा उपजीवन्ति ) वृक्षाएँ वृक्षा नीतर उपजीवित करती हैं ( उत मनुष्याः वृक्षां ) और मनुष्य को वृक्षा की पर ही जीवित रहते हैं । ( वृक्षा दुग्धं सर्वं ममवत् ) वृक्षा की ही वह सब ही कमी है ( वसवः पूर्वा विषम्वसि ) वृक्षां एवं सर्व का प्रकाश पहुँचता है ॥ १५ ॥

चतुर्थ अनुवाक समाप्त ।

वृक्षं काण्डं समाप्तम् ।





परमात्मा प्रविष्ट हुआ था और अधिपत्यकाके विषयमें कितना प्रविष्ट होना और वर्तमानकालमें विषयमें कितना प्रविष्ट हुआ है । अर्थात् इसका उत्तर यही है, कि मृत, वर्तमान और अधिपत्यकीन सब मिलकर मित्र एक अलग अलग बराबर है विद्यते नैवेकमे परमात्माका बराबरन भनैतृष्या है वही वहां करनेका तत्पर है । इस संशयों छिपरा करन लक्ष्य गहराव है वह वह है—

यत् एक संन सदृशता आकरोत् ॥ ( सं ९ )

जो आते एक संनते वही संनो मार्यो विमल करता है। जैसा सर्वका विमाय होकर प्रह और उपमह बने हुएकि विमान होकर स्वावर जंमन वृद्ध पद्ध पक्षी, मनुष्य को । एक अथके छत्रों पक्षी इस तरह समते हैं । वही बात इही सूत्रके १५ में मंत्रमें इस तरह कही है—

ब्रह्मणे वाम ते देवाः ये आसताः पतिवजिरे ।

एकं तद्वत् स्कन्मस्य असवात् । परो जगः ॥ १५ ॥

ये वने देव ब्रह्मणे स्कन्म हो चुके हैं और वह जगत् सर्वकार परमात्माका एक अंग ही है ऐसा ज्ञानी लोग कहते हैं । स्कन्म वाम सर्वकार परमात्मा है इसके ही अंग हैं । एक का वाम पक्ष और दक्षिण वाम अंग है । इन दोनों अंगोंका मिलकर नाम स्कन्म अर्थात् सर्वकार परमात्मा है । इस स्कन्म के एक अंगसे पृथ्वी अन्तरिक्ष और बु आदि सब काक केन्द्राकार बने हैं इतीका बने इसके अंगने एक अंगको सदृशता विमल कर दिया । इस ९ म संशयों रख कह दिया है । पाठक इस तरह मंत्रका व्याख्यान आम सकते हैं । अतपचारि भाष्यमें कहा है कि

हे वाय प्रसन्नो कने सूर्य वैश्वसूर्यं च य

अपके ही रूप में सूर्य और अमृत । इनका अधिक स्वीकरण ऐसा किया है कि सूर्य सारी और अमृत हैं और अमृत प्राण मन मरति हैं । वह सूर्य और अमृत मिलकर ब्रह्मा होता है । वही आकाश स्कन्म नाम सर्वकार परमात्माके अवतार नामक एक अंगसे सब कोककोकन्तर को हैं, इस मंत्रमें जगत् हुआ है और ये कैवे बने हैं इसका स्वीकरण इस स्कन्म नामक विषय मने कने एक अंगको सदृशता विमल करके वह विषय बताया इस ९ म संशयों हुआ है ।

एवम संशयों इस स्कन्म नामक सर्वकार में लोक कोक आम मध्य और पद रहते हैं और ये वहां हैं वह बात

ब्रह्माणी ओम वभावत् आनते है, ऐसा कहा है वह वच का वच छत्रों ही समझना चाहिये ।

आय ११ और १२ इन दो मंत्रों वही बात इत्यर्थ है कि जो पहिले १ से ४ मंत्रोंमें कही है । स्कन्म नामक मित्रकार के अंग में अर्थात् सारीमें जमि जावि वेकनर्त्त जमने रूपमें रही हैं । अर्थात् जमि, जगत् पृथ्वी एवं मित्रकार सब सर्वकार का सार है । आनेके मर मंत्रोंमें मंत्र ११ से १६ तक वही बात कही है —

मंत्र १३ = मित्र सर्वकारके सारीके अंगमें ३१ वेकनर्त्त रही हैं ।

मंत्र १४ = सब पृथ्वीके अंगमें हुए जमि भूमि वाय, धाम वज्र एक सुकन अंगि वे सब सती सर्वकारमें रहते हैं । मंत्र १५ = सुकनमें अपव और पद रहते हैं । सब विषयों वमविता हैं ।

मंत्र १६ = सारी विता-अपविचार मित्रों कविता है वहां वह विषय महत्त्व का स्वाच पाकर रहा है ।

इस तरह सर्वकार परमात्माके सारीके अंग वमर के सब पक्षों रहे हैं । इसका ही स्वीकरण पाठक आम देव कने हैं ।

मंत्र १७ = इस सर्वकारका सुक जमि है जगत् अंगि है, अंग वमर वाय-जगत्प्राण है

मंत्र १८ = ब्रह्मण मित्र सर्वकारका सुक है/मित्र वम-कथा- यो है मित्र का ब्रह्मणम मित्र मित्र है ।

मंत्र १९ = वसते कनेव पदुरेव हुए और आम मित्रों कोम है और जमनी ब्रह्म-विषय सुक है ।

पाठक इस सर्वकार की तुलना ११ से १६ मंत्रोंके साथ करें । मंत्र ११ के १६ तक को कहा है, वही अधिक ब्रह्म करने के अंग मंत्र १७ से २ तक के मंत्र हैं । विषयों परमात्माके वे सर्वविषय वमर हैं वह विषयों वमर सारी है वे ही वमर वमरी है वेदके द्वारा वही वम मनुष्योंके आम लोक रहा है । जो वेदवेता जगत्प्राण है वही वमर सुक है इस तरह जगत्प्राण प्रसन्न हो रहा है पाठक इस मंत्रों परमात्माका व्याख्यान करना ठीक है ।

१७ के मंत्रों परमात्माकाकार करवी और एक विषय जुनिता ही है वह वह है कि —

ये चुके जगत् विदुः ते विदुः परमेष्ठिनम् ॥ ( १० )

‘ जो पुरुषमें-मनुष्यके अन्तर प्रज्ञा जागते हैं वे ही परमेश्वरी परमात्माको जानते हैं । वहां व्यक्ति समष्टि और परमात्मा का भेद देखना पड़िये । व्यक्ति एक व्यक्ति है समष्टि व्यक्तिपरम का नाम है और परमेश्वरी निरंतरचर विश्वपूर्णका नाम है । मनुष्य विश्वव्यापक परमेश्वरी को किंचित्तरह जान सकता है । मनुष्यका इन्द्रियवशुक्त अल्प चक्षित्वाका है उससे विश्वसमाधि का आश्वासन कैसे हो सकता है । अतःमें करते हैं कि मनुष्य अपने अन्तर वही विश्वको चरते मनुष्य करे । मनुष्य अपने अन्तर देखे, कि भेदा जांच सूर्य ही से अग्नि सरीरमें लपटता रूप जानने लिये हैं । जलतरंग रक्तकणसे भरे सरीरमें है और वहहीमें में प्रकटित हो रहा है, वायु भेदा प्राण बना है पृथ्वी भी हृदयोंके रूपसे सरीरमें है विचार्य कर्म में रही हैं इसी तरह ३३ देवताएं भेदे इस कोठेके सरीर में अंतर्कणसे आकर रही हैं और वहां छुपे स्थापना है रही है । मैं जाणू हूं और मे ३३ देव वहां भेदे सहायक होकर इस सरीरमें भेदे लपटा हो रहे हैं । वही जलपुरुष-मनुष्य-के सरीरमें अन्ते कोलने है । वही सरीरमें सूर्य और अमृत प्रसर रहता है । इसको ब्रह्मात्म्य जानने कि वही विश्व-स्वामी है ३३ देव कैसे रहे हैं वह व्यापक नाम सकता है और अपने सरीरके अन्तरमें देवोंका विश्वव्यापक परमस्वरूपमें रहनेवाले देवोंके साथ बना लक्षण है वही देवोंका सा सकता है । जैसा जांचका सूर्यसे सर्वत्र है । इस तरह विचार करनेसे व्यापक अपने आपको परमात्माके विश्वव्यापक रूपमें एक अर्थ अल्प अंतर्कण देख सकता है । जो इस तरह अपने सरीरमें मनुष्य कर सकेंगे वेही प्रज्ञावशसे प्रज्ञा मनुष्य और साक्षात्कार कर सकते हैं । वह प्रज्ञासाक्षात्कार की लक्षणा है ।

जो इस तरह मनुष्य अपने अन्तर प्रज्ञा देख सकते हैं वे परमेश्वरी प्रजापति और उद्देश प्रज्ञाको भी समझा जान सकते हैं और अन्तः सर्वाचार परमात्माकी जान सकते हैं

वही व्यापक अन्तरही ही छिपे मानकर उसकी उपासना करते हैं । जो दूसरे व्यापक रूप को ही छिपे मानकर उपासना करते हैं । इस तरह दोनों उपासनाई मनुष्यों में हुए हैं । वह देव ११ में वर्णन है । परंतु अग्नि ( सं १२ में ) कहा है कि विश्वमें अग्नि का रज और लक्ष रहते हैं, और जिसमें मूल रजम आर अग्नि का नाम के एक कोठकोअन्तर रहे हैं वही सर्वाचार परमेश्वर उपासना उपासना देव है ।

( सं० १३ = ) जिस परमात्माके निमित्त सद्यः सच तैत्तिथ देव करते हैं, उस निमित्तको ही नामात्मा है । इस संज्ञका अनुभव पाठक अपने अन्तर ही देख सकते हैं, क्योंकि सच ३३ देवों द्वारा—देवताओंके अतीतद्वारा ही वहकि अग्रमाभी रक्षा हो रही है । वहां सूर्य चन्द्र, वायु, अग्नि पृथ्वी आदि आते हैं, रहे हैं और वहकि निमित्त रक्षा कर रहे हैं । इसी का सर्वत्र आगेके १४ में वर्णन कहा है कि प्रज्ञाशाली और देव वहां छिपे प्रज्ञाही उपासना करते हैं वह जो जानता है वही ज्ञानी होता है । १५ में वर्णन सर्वाचार परमात्मा का एक भव अन्तर् है, जिससे अग्रमावि सच देवताएं बनी हैं देवा वर्णन है अर्थात् वह वायु वहां स्थ हो चुकी है कि सर्वाचार परमात्मा के सरीर के दो अंतर् हैं एक सच और दूसरा अन्तर् । दोनों निकट सर्वाचार परमात्मा होता है जिसका अन्तर् सच निमित्त है । इसी बातका अधिक स्पष्टीकरण मंत्र १० में करते हैं— जिसके सरीरमें ३३ देव एक एक अवस्थामें रहते हैं, अर्थात् जिसके सरीरके अवस्था इन देवताओंके दि जाने हैं वही सर्वाचार परमात्मा है इसको प्रज्ञाशाली ही जानते हैं ।

इस स्थानपर परमात्मा वर्त अमूर्त दोनों उपासना है वह वायु स्थ हो चुकी है । परमात्माका प्रत्येक मात्र एक एक देवताका बना है । वस्तुतः मनुष्यके समझी सच देवताओंके ही बने हैं । वहां हमारे प्राणी और अंतर्में पृथ्वी, वायु अग्नि वायु आकाश ये देवताएं नहीं हैं ? हैं और अन्तर् हैं । इसी तरह विश्वव्यापक परमात्माके निमित्तदेवके प्रत्येक अवस्था देवताओंके ही बने हैं । इस उपासनाका प्रज्ञाशाली ही जानते हैं अन्तर् सच बना जाते हैं ।

१६ में वर्णन एक विशेष ही महारथकी बात वही है वह यह कि—

१६ मंत्रः पुराणे प्रज्ञावयव उपचरत्तत्पृष्ठ ( १६ )

सर्वाचार परमात्मा अपने पुराणे अंतर्को पुनः अन्तर् देता हुआ अन्तर्को परिचित करता है अर्थात् मना ही बनाता है । यह इस सर्वाचारका अल्प पुराणा होनेपर भी सर्वव्यापी अन्तर्मात्र प्रकटित है । अन्तर्को देवता शाली अल्प मानन है । वही वायु आगे अन्तर् गृह्यते उपासिते—

एको ह देवो प्रमत्ति प्रविष्टिः प्रचलो जातः स च गर्भे अन्तः । ( गृह्य ४ । १८ )



विश्रामके ही हैं। यदि वही सब कुछ है, तो जो चीजता है, वह भी सब वही सब है। वह फिर है।

[ सं ३ ] चीन प्रकरकी प्रकाश है एक कर्णगुणी वृत्ती रजोगुणी और तीसरी तमोगुणी। सब विषय इन तीनों गुणोंसे भरपूर है, कोई वस्तु इन गुणोंसे रहित नहीं है। सत्य गुणी प्रकाशमें रहते हैं, रजोगुणी भोषमें विराजते हैं और तमोगुणी अन्धकारमें जते हैं।

[ सं ४-५ ] बारह महिने तीन काक अर्थात् वर्षा ऋषी और सर्प, और तीन सौ षाठ दिवस वह छत्रिबर काकक है। इसमें ६ ऋतु हैं एक अभिषेक मास है वह अनेक ही रहता है।

[ सं ६-८ ] एक पुण्यककसे विद्यमान महत्त्व है। वही परके काम स्मारक जयम सब कुछ संश्लिष्ट है। कोई वस्तु उसके सर्वत्र न रहनेवाली कहा नहीं है। एक काक है जो अनेकसे बनता रहता है, उसके आगे मानते वह सब विषय कल्पन हुआ है, जो दूसरा आभा माय है वही गूढ है वह हर एक जान नहीं सकता। इससे मति चीजती नहीं है, परंतु सबकी जो स्थिति है, वही चीजती है। यतिये मूलकाक मया है, इस स्थिने चीजती नहीं, और मयिष्य काक आभा नहीं है, इस कारण चीजता नहीं है, वर्तमान काक अति जल्प है, वह अंधा बन चीजता है।

[ सं ९ ] मनुष्यका छिद्र एक नाम है लक्ष्य मुक्त नीचे है इसमें सब विवरणी बस रहता है सब मनुष्यका आकर्ष्य इसमें रहता है। मनुष्य विगड मया ही मनुष्यका ही गड होता है। वहां छात स्थिति काकलाहने हैं दो भाँच, दो काक, दो नाम और एक मुख से छातस्थि हैं। वही इस काकसे बने कर्णक है। मनुष्यको चाहिये कि वह इस का महत्त्व जान और इसकी कथन रखा करे। क्योंकि कर्ण्य मानवता नहीं है।

एकही है।

वत् वक्रति, पयति वत् च

सिपति, मानव, जमान

सिपित् च वत् सुवत्।

वत् निवर्त्तनं वृत्तिं दानाव वत्

संज्ञक वत् वत् मयति। [ सं ११ ]

‘इत विरामे कंस वरम शिवल के मुक्त, श्रममुक्त नाम रीति विधेय करनेवाला देवे जनेक वस्तुमान है। वह सब

मिथकर एकही वत् सत्य होता है और वही सत्य निरवक है अर्थात् सब कर्णोका भारव करता है सर्वत्र इस पूर्णको पारव किया है। वही एक सत्य है सच जो है, वे सब उसके रूप हैं।

( सं १२ ) एक अवस्थ सत सत्य है वही सर्वत्र स्थात है। अवस्थ और सत्य वे दोनों अन्तमें एक दूसरेमें मिले हुए हैं। इसका मूल मयिष्य देवता हुआ मिहान ही आगे बढ़ता है कथति करता है।

( सं १३ ) एक प्रकाशति है वह वस्तुएं आरवमान है वह सर्वमें संचार करता है और गुप्त रूपसे अनेक रूपोंमें उत्पन्न होता है। उसके एक आगे भावसे ही वह सब विषय उत्पन्न हुआ है उसका भी सच माय है, वह गुप्त है वह वह जानना कठिन है।

सब कोय इस वत् सत्यकी आँखसे देखते हैं परंतु सब इसकी मनगते जानते नहीं। ( सं १४ ) जो दिवार्द्र देवा है वह भी वही सब है परंतु वह सबकी समझमें नहीं आता है। ( सं १५ ) वह वत् सत्य सर्वत्र परिपूर है, वह दूर भी है और पास भी है वह पूर्वमी है और हीनमें भी नहीं है। वही बड़ा पवित्र और कथाल है सब इसीके पास कथहार पहुँचाते हैं। ( सं १६ ) जिसके बगले पूर्व कथनको प्राप्त होता है और जिसमें अस्त की प्राप्त होता है वही अन्ध मय है कथते और दूसरा ओइसा अन्ध सत्य नहीं है। [ सं १७ ] वैद्वेया जिसकी प्रवेष्ट करते हैं, वही प्रकाश देवताका आदि का है जो सबका आधार करता है। वही सबका आधार है। वही के आधारसे सब अन्य वेव है। सबको प्रकाशित करने वाला वही एक देव है। [ सं १८ ]

एकही वदेष्ट मय है। सब ज्ञान और ज्ञान वही है सब विदित है। वैसा रोमों नरनिमोंसे अति मिथकता है, वैसा ही सर्वत्र वही सत्य है और प्रकटमी होता है। सर्वत्र [ जगत् ] बारहवित ही सर्व सर्वप्रथम होता है वही आगे [ जगत् ] प्रकाशको प्राप्त करता है और वही मनुष्यार— ही हाथो और दो चर्चति मुक्त— ही कर सब प्रकारके भोग भोगता है। [ सं १९-२१ ] वह जीव होता है मर्यादा होता है बहुत अन्य प्राप्त करता है और और वही कथन देवता की कथकता करते वृत्तक होता है। [ सं २२ ]

वही एक कथान वत् सत्य है। जो विरहे मया मया

होता है जैसे बारबार दिन और रात होते हैं इसी तरह वह उत्पत्ति और वन होता है । [ मं १३ ] जो हजार वर्ष तक अर्धवृत्त पृथिवी इत्यर्थ है, इसकी वह पृथिवी कोइ जग नहीं सकता । यही देव इस सबको प्रकाशित करता है । [ मं १४ ] वायुदेवी वायुम नर है, सबको धेतोवाकी ही वह देवता है और यही प्रियम्प है । [ मं १५ ] यही कन्यापारमेष्ठाकी अम्बर और अमर है । इस युग वैद्यमें वह न मर मेवाकी देवता है । यह भी पुत्रप कुमार कुमारी इह मायि पत्र करोमें होती है इसी विधे इसको विश्वतोमुख कहते हैं । [ मं १६-१७ ]

यही मिटा और यही पुन है, यही ज्येष्ठ है और यही कमिष्ठ है । यही एक देव सबमें प्रविष्ट हुआ है यही एक बार नामवर फिर गर्भमें पुनर्जन्म के विधे जाता है । [ मं १८ ] पूर्ण परमप्रसाधे ही वह पूर्ण सिध बना है क्योंकि वैसा यह पुन है वैसा वह भी पूर्ण है । इसकी जीवन कहीसे मिटा है । अहति इसको जीवन मिटाता है वह मूक मोठ को जानना चाहिये । [ मं १९ ] यही सभापन है और यही वन पुन वन ही है । यही यही देवता है । [ मं २० ] एक देवता है जो अतसे पुन है कचकी ही लक्षिसे ये इस द्वारे मरे वीक रहे हैं । [ मं २१ ] पाठ होवेपर भी शीघ्रता नहीं और पाठ होवेपर भी सदा ज्ञान यही किना जाता । उही ईश्वरका वह वाच्य है जो मासकी नहीं प्रात हीन और जीर्णमी नहीं होता । [ मं २२ ]

अनुस देवतामे प्रेरित हुए जानी सब छोड़ें भोको हैं, इस वालीकी मूल प्रेरणा अहोरात्र पहुँचा देती है यही वरा कहा है । प्रारब्ध ज्ञात करकेका यही ज्ञान है कि वालीनामूल वैशो । [ मं २३ ] यहाँ देव और मनुष्य मायिमें अति इत्येके ज्ञान ज्ञानिष्ठ हुए हैं, यही माया से छिपा हुआ धारण है वहीको अज्ञान पुन कहते हैं क्योंकि वही पुनके सिधका वीज कारण होता है । [ मं २४ ] वायुका ईश्वरम विधाओं का अत्र पाठ तथा अभावान वार्त्त कहीसे हो रहे हैं । [ मं २५ ]

इन्ही अन्तरिक्ष और पुनीक में ही रहता है वह यही एक देव है इसीसे ये वन है प्रत्येक विधमें यही मिश्रित वीकता है । [ मं २६ ] जो इस विधे हुए विज्ञानात्मक अन्तरा वी ज्ञाना है, जिस अन्तमें वह विधके अन्तरीकम्पतर विधे है वह जानी उनीमें है और यहाँ रहते बाहर नहीं

है । [ मं २७-३८ ]

विधको अन्तरीकम्प अन्ति पुनीपर है कचका अन्तमपुन भी अन्तरीकम्प है सुबोधमें सबको प्रकाश देवेसम्प अन्तर्मा पूर्ण है । वह सब एकके ही सामर्थ्यसे जान हो रहा है । [ २९-३१ ] एक कमल है, तीन गुणोंसे वह रंगा है जो द्वार है, उन्हीं यह कमल रहता है । यही हृदयकमल है । जो द्वारोक्तम रूप वह शरीर ही है । इस कमलमें जो पुन देव है यही लक्ष्मी जायते है । [ मं ३२ ]

विधायन धैर्यपुत्र, अमर कन्या, एकसे अन्तु ईश्वरम, यही भी अन्तु यही सर्वत्र भोठभोठ भरा हुआ वह देव है कचकी नवान्तु जायते ही मनुष्य कर कर हो जाता है, यही मात्मा अम्बर, अमर और सदा लक्ष्मी है । यही वन कचियों का केन्द्र है । यही अर्धवृत्त देवेवाका है । उसके वनमपु ज्ञान के विधे ही मनुष्य यहाँ कारण हुए है ।

गी ।

आये एक १ और १ में वीज वर्णन है । वीज का वन ' सतीरवा ' है । वीजों मनुष्योंका अत्र देवेवाकी जो कते रना अन्तर्मा है । अन्तमा कहीसे कि प्रविधिन १ केर दल भी देती है । इस विधाके प्रतिदिन पाँच मनुष्योंका वेद जलते है एक मासमें १५ मनुष्यों का वेद मारती है और का अन्त वधि नामें एक सदा मनुष्योंका वेद पालन करती है । इस विधाके एक जातुमें वी एक हजार मनुष्योंका वेद पालन कर सकती है और कचकी उत्तानके और ज्ञानिक । वीज न्न नरण है । वीज दल वीमारों और वाक्योंको तो अन्त ज्ञान है वाक्योंके विधे तो वी मन्त्रात्मक ज्ञान कारण करती है । वीके एवसे वन विधा और पुनिकी दृष्टि होती है । सतीरवा वीज वह नरण है ।

यह वी सर्वात्मक वस्तु है । जानकेनु यही है जो वी विध ज्ञान कहिये वह सब वन देती है अन्तमा नाम ' अन्तमा ' है । अन्तमेनु यही है । वी विज्ञान ज्ञान को सब देके वरा ज्ञान है, वह ज्ञान अत्र और द्वारों के ज्ञान ( अन्त विध ) हीना जायति । [ मं ७-८ ] यहाँ के ज्ञानिष्ठ ज्ञानके ज्ञान, वैश्विक वस्तु मनुष्य और जादिक से वन वीके ईश्वर है । देव विध मनुष्य मन्त्र और अन्तमपुन से वन वीकी रक्षा कर वाके है क्योंकि वीके पुनके ही अन्तिष्ठान और अन्तमपुन के वन होते हैं । [ मं ९ ]

आ सगोदना मोक्ष दान निदानकी करता है उसको जन्म-  
मिष्ट भूमि दिशा मरुत्तवा जन्म सब जोकर्मो कृतान व्यान  
प्रप्त होता है। (म १) सबकी पवित्रता करती बुद्ध वह  
वे हेतुओ बहुरात्र प्राप्त करनी है। त्रिभोक्यो का दनतार्थ  
वे सब गौरी बुद्ध तुम हाती हैं बुद्ध की हर्षोसे सबको प्राप्त  
होता है। (म ११-१२)

आपने १३ से २४ तक कहा है कि इसी तरह जोका  
बन है कि वह ऐसे अवसर और या हालात बनाव के  
आर बुझाई हुए आदि सब वस्तु लक्ष्मी पर्याप्त प्राप्त हों और  
प्राप्त। आपकी प्रार्थना हो।

आम १७ मैत्रलक आइयोको पूछ् पूछ् गी दाव करमे  
वा बचल है ।

एक ही सूत्रमें जो विद्या ही गाथा बर्णित है। चौथा वाक्य जैन का आशङ्करी वाक्य है इस विषयमें द्वितीय मैत्रके सूत्रका अर्थान्त पारदर्शक है। आशङ्करी तत्त्व जानता है वही गाथा वाक्य जैन । जो अपने प्रायः क विधि में भी नहीं है प्रत्युत वह विधि में भी है वह का जानता है, वही वाक्य जैन का वही ही वाक्य विद्या वाक्य। ( पृ १-३ )

इस समय मोक्ष नाम क्या है। क्या भी वह है कि का समय सोच जाती है। दुबरी मृत्युका है अर्थात् का मोक्ष को क्या कहती है। अलग भी बंधन नहीं रहती। क्या भी सबसे बड़ा है क्योंकि वह न मारती है न मार्य लगती है आर हर समय वह होती है।

संन्यस्त वृत्तों तथा आराम में लगी रहना यह भी बरती है।  
मध्य भारावात वृत्त पक्ष यह भी हास्य का संरक्षण करता  
है। (म ४)

गौका उत्सव ।

का उपक्रमसे काम ही होता है जबका महात्मन करत है  
 ही आगे चलानी कारी है जसरी बीस सा धनुष पान लेकर  
 चलेते है, ली धनुष बाह्य करकेचले चलते है ही प्रत्य  
 जबका दया क बीस लीचि दप म आन है। यदि जेहि हम  
 तह है। अतः कहे जसमय म ते है। ( ५ ) वर  
 कजे बजाहे जात है अतः जस अरजे इसका दह काम  
 मसका जाता है। बजाइरा गाहे कहे मसका बीस दह  
 रासिसे होता है। इससे काम गाथा व कारिह उभय। दवा

जाता है ।

गौरी ब्रह्मपत्नी सर्वात् ब्रह्मका आधार कहा जाता है क्योंकि इससे दृष्ट और वृत्तसंज्ञक हाता है पञ्चम्य से धाम की उत्पत्ति होकर इन गौरी रक्षा होती है (मं ५)। सामग्री की काली है और इनका पाशकाम रूपपर होता है वह रूप धौमेसे यन्त्रधर्मों की सोमका वन ग्रस्त हाता है। दृष्ट वृत्त। इन तो गौरी सर्वात् ही है परंतु वैष्णव काली हाती है, जो स सब रक्षकी रक्षा होती है इन तरह माया सबकी रक्षा करती है। (मं ७-१०)

श्री अन्निकर्षी माता है अन्न की श्री गरी माता है ( म १८ ) ब्रह्मा की विशेष वस्तुतः अन्निकर्षी माता है ( म १९ ), श्री अन्निकर्षी विशेष वस्तु प्राप्त होता है अन्निकर्षी माता का कारण होता है । श्री अन्निकर्षी का रूप है ( म १ - २५ )

मौ अमृत का भारण करती है कि मनुष्ये आर्यर होते हैं वे मौकी उपपत्ति करन हीनचरि होते हैं। मौकी सब कुछ मनी है; देव मानव अमृत विरत और शक्ति मौके पूजयेही पुत्र होते हैं ( म ६१ ) इस तरहका सब ज्ञान को ज्ञानता है वही वक्ष मौका दान लेवे ( म १० ) ।

( म २८ ) वरुण राजाकी कन्या मित्रा कन्या तेजस्विनी होती है और उसका विरोध नहीं कर सकता कन्या तरुण नरका की प्रतिपक्ष करनेके लिये कठिन होती है । अज्ञानी समुच्च कलश दाज कन्या मित्राकता ( म २९ ) । मित्राकता कन्या का वरुणजीमें विमर्श हुआ लक्षमें एक वरुणके रूपमें प्रकट हुआ है । अन्य तीन भाग वरुण जन आर पशुक रूपमें प्रकट हुए हैं ।

साथ वग आदि देव यज्ञादा वृक्ष वीर हो सिद्ध हो प्राप्त हुए । यज्ञा गी हो वृक्ष पर भूमि पौ और प्रजापतिदा वीर कर रही है ( मं ३०-३१ ) । वह यह वग जो कामल देव ज्ञानी की गी वग देकर स्वयं भोगी हुए हैं । ( ३२-३३ )

क्या गीतर देव ब्रह्मदेव करते हैं मैं तो तुम कीदर मनुष्य  
भी जाँचन रहन है । कहतक तुम प्रवालना ह बहानिक  
का निशु मया। कथाकाही पढ़े इतना महरव गौरा ह ।  
पलक हन ताह का वा महरव जाने क्वर नावा न तथा ना  
महरव करत अरना। बुद्धि पल करे और राख मुदा निमन वरन  
बहानी कहे ।

# अथर्ववेदका सुबोध भाष्य ।

## दशमकाण्डकी विषयसूची ।

विषय	पृष्ठ	विषय
अथर्ववेद दशम काण्ड ।		१० सर्वप्र पुरुष ।
ग्रहज्ञानका पद्य	२	११ ग्रहज्ञानका पद्य ।
दशम काण्डकी आविर्देयता छन्दःसूची	३	१२ ग्रहकी जगती ।
[ १ ] हस्तादृक्काम् ।	७	अयोऽपानगती ।
घातक प्रयागका असफल बनाना ।	"	१३ अयमी राजधानीमें
हस्तामयाग ।	११	ग्रहाका प्रवेश ।
[ २ ] कमण्डलम् ।	१३	१४ अयोऽपानके ग्रहका पता ।
कण्डल गरीरमें अथर्वयोंके संपन्नमें प्रश्न ।		१५ केनसूक्त और केनापनिषद् ।
केनसूक्तका विचार ।		[ ३ ] सपत्न्यनाटक वरपत्न्यमिति ।
१ किसने अथर्वय बनाये ?	"	[ ४ ] सपत्न्य वृत्त करना ।
२ नामद्विषों धार मानमिष		[ ५ ] विजयप्राप्ति ।
माधनाभाके नैवेद्यमें प्रश्न ।		दाम्पके पराजयक सिद्ध पत्न ।
३ अधिर प्राण आरिष्य धमरुष्य		[ ६ ] प्रणिबन्धन ।
आद्व-गिर्यमें प्रश्न ।	"	[ ७ ] सर्पाधारका पञ्चन ।
४ मम घाली कम मघा, धन्वा तथा वाद्य		[ ८ ] ज्येष्ठ मासका वर्णन ।
जगन्तु विषयमें प्रश्न ।	१९	[ ९ ] दातीरुमा गी ।
( तामारि स्यादका नैवेद्य )		[ १० ] वजा गी ।
५ नाम धार धामी ।	२०	सर्पाधार भेषु प्रश्न ।
६ इय धार दधन्न ।	२१	हन्तरका दातीर ।
७ अधिरुष्यत ।	२३	ज्येष्ठ मघ । ( सूक्त ८ )
८ अथर्ववेदका उपाय ।	२३	एवही ह ।
९ अथर्ववेद गिर ।	२५	ना ।
		गोवा जगत् ।

